एक ओंकार सतनाम

भगवान श्री रजनीश

नानक लौटे; परमात्मा होकर लौटे। फिर उन्होंने जो भी कहा है, एक-एक शब्द बहुमूल्य है। फिर एक-एक शब्द को हम कोई भी कीमत दें, तो भी कीमत छोटी पड़ेगी।

फिर एक-एक शब्द वेद-वचन है।

*

परमात्मा के मार्ग पर नानक के लिए गीत और फूल बिछे हैं। इसलिए उन्होंने जो भी कहा है, गाकर कहा है। बहुत मधुर है उनका मार्ग; रससिक्त !

नानक वही हैं जो मधवा को बिना तौले पी गये। फिर जीवन भर गाते रहे। ये गीत साधारण गायक के नहीं हैं। ये गीत उसके हैं जिसने जाना है। इन गीतों में सत्य की झनक, इन गीतों में परमात्मा का प्रतिबिंब है।

*

तो नानक कहे चले जाते हैं। अगर तुम प्रेमी नहीं हो तो तुम हैरान होओगे कि क्या यह वही बात लंबी किए जा रहे हैं। यह 'जपुजी' तीन शब्दों में पूरा हो जाता है : एक, 'ओंकार'; या, 'एक ओंकार सतनाम'। क्या बार-बार कहे जा रहे हो ? लेकिन बड़ा रस ले रहे हैं। और अगर तुम्हारे भीतर भी भाव का जन्म होगा, तो तुम भी पाओगे, यह पुनरुक्ति बड़ी मधुर है !

*

थोड़े दिन नानक को सुनकर देखो ! छोड़ दो उस पर।

इसलिए नानक कहते हैं, न जप, न तप, न ध्यान, न धारणा। एक ही साधना है—'उसकी मर्जी'।

—भगवान श्री रजनीश
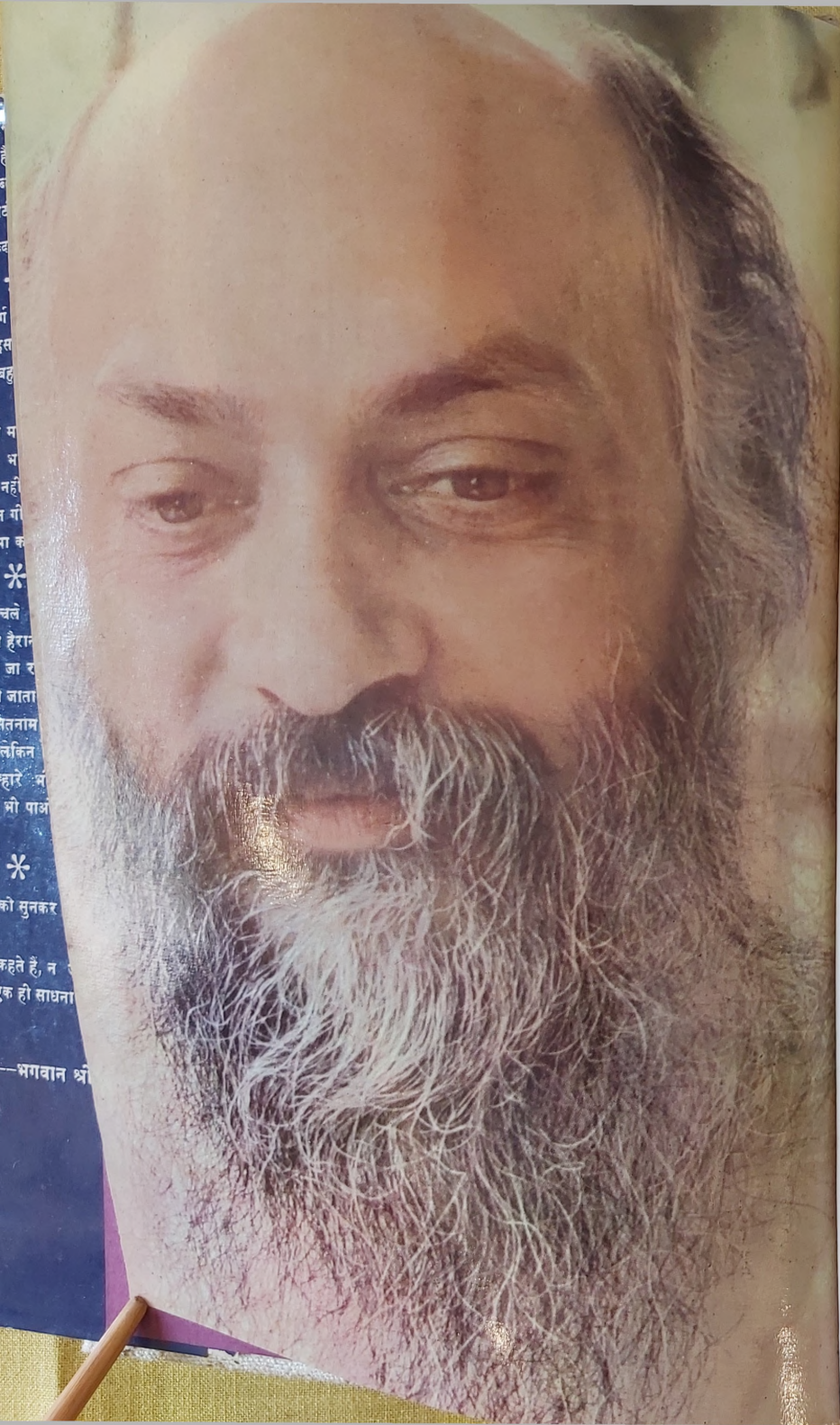
एक ओंकार सतनाम

(नानक-वाणी)

एक ओंकार सतनाम

भगवान श्री रजनीश

संकलन - संपादन

मा अमृत साधना

रजनीश फाउंडेशन प्रकाशन, पूना

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउंडेशन
श्री रजनीश आश्रम, १७-कोरेगाँव पार्क
पूना-४११००१ (महाराष्ट्र)

प्रथम संस्करण : १९७६

प्रतियाँ : ३०००

मूल्य १५०/ रुपये

आवरण-सज्जा
स्वामी आनंद अर्हत

मुद्रक
रा. ब. कुलकर्णी
मनोजय मुद्रणालय
१५४, नारायण पेठ, पूना - ३०.

पूर्व-शब्द

बहुतों की साध उस दिन पूरी हुई जब भगवान श्री रजनीश सतगुरु नानकदेव की अपूर्व वाणी 'जपुजी' पर बोले। धन्य था वह दिन! धन्य था वह क्षण!

भगवान अनेक बार अनेक संदर्भ में सतगुरु नानक के प्रति प्रशंसात्मक वचन कहते थे। स्वभावतः साधकों के मन-प्राण में सतगुरु नानक में और गहरे प्रवेश पाने की प्यास बढ़ती रही। करुणानिधान ने उस प्यास को तृप्ति दी।

'जपुजी' के संबंध में भगवान श्री स्वयं बताते हैं कि सत्योपलब्धि के बाद नानकदेव जी से निकले प्रथम वचन हैं ये। उस लोक से (समाधि से) लौटने के बाद, 'जपुजी' सतगुरु नानक की प्रथम भेंट है जगत को।

स्वभावतः, 'जपुजी' में संग्रहीत ये वचन परमात्म-जगत की ताजे से ताजी खबरें हैं, जो नदी में नानक की तीन दिन की गहन डुबकी से वापिसी पर प्रगटे।

सच तो यह है कि उस आध्यात्मिक डुबकी के बाद नानक तो न लौटे—बचे ही कहाँ—ये खबरें ही लौटीं उनके रूप में। नानक मिट ही गये, शून्य ही हो गये—बचा केवल परमात्मा। बचा केवल वह, जो है। नानक के नाम, रूप, आकार में अब वही बोला।

पर जैसा सदा ही होता रहा है, इन खबरों की व्याख्याएँ जब सोये हुए लोग अपने ढंग से करते हैं तो सब अनर्थ हो जाता है।

परमकारुणिक भगवान श्री रजनीश ने पुनः एक बार सतगुरु नानकदेव के इन दिव्य-वचनों की रहस्यमयता में हजारों-हजारों को—उन सब को—डुबाने की कोशिश की है जिनकी तैयारी है मिटने की, ताकि उनमें भी वही अमृत प्रगट हो सके जो शाश्वत है, जो है। जो एक, जो ओंकार, जो सतनाम कभी किसी नानक में, कभी किसी बुद्ध में, कृष्ण, महावीर या क्राइस्ट में प्रगटा, वही।

क्या आप भी प्यासे हैं जीवन सत्य को, उस परमात्मा को जानने, परखने व पाने को? उसमें प्रवेश पाने व धन्य हो जाने को?

तो आप भी आमंत्रित हैं इस दिव्य-प्रवचनधारा में डूब जाने, मिट जाने व अमृत हो जाने के लिए।

सादर, सप्रेम......

—स्वामी योग प्रताप भारती

श्री रजनीश आश्रम,
१७, कोरेगाँव पार्क,
पूना—१.

जनवरी : १९७६

अनुक्रम

आदि सचु जुगादि सचु

प्रवचन १, दिनांक २१-११-१९७४, श्री रजनीश आश्रम पूना।

मंत्र :

इक ओंकार सति नाम
करता पुरखु निरभउ निरवैर
अकाल मूरति अजूनी
सैभं गुरु प्रसादि

जपु

आदि सचु जुगादि सचु ।
है भी सचु नानक होसी भी सचु

पउड़ी : १

सोचे सोचि न होवई–
जे सोची लख बार ।
चुपै चुप न होवई–
जे लाइ रहा लिवतार ।
भुखिया भुख न उतरी
जे बंना पुरीअं भार ।
सहस सियाणपा लख होहि,
त इक न चले नालि ।
किव सचियारा होइए,
किव कूड़ै तुटै पालि ।
हुकमि रजाई चलणा
"नानक" लिखिआ नालि ।।

एक अंधेरी रात। भादों की अमावस। बादलों की गड़गड़ाहट। बीच-बीच में बिजली का चमकना। वर्षा के झोंके। गाँव पूरा सोया हुआ। बस, नानक के गीत की गूँज।

रात देर तक वे गाते रहे। नानक की माँ डरी। आधी रात से ज्यादा बीत गई। कोई तीन बजने को हुए। नानक के कमरे का दिया जलता है। बीच-बीच में गीत की आवाज आती है। नानक के द्वार पर नानक की माँ ने दस्तक दी और कहा, "बेटे, अब सो भी जाओ। रात करीब–करीब जाने को हो गई।"

नानक चुप हुए। और तभी रात के अंधेरे में एक पपीहे ने जोर से कहा– "पियू, पियू"।

नानक ने कहा, "सुनो माँ, अभी पपीहा चुप नहीं हुआ। अपने प्यारे को पुकार रहा है, तो मैं कैसे चुप हो जाऊँ? इस पपीहे से मेरी होड़ लगी है। जब तक यह गाता रहेगा, पुकारता रहेगा, मैं भी पुकारता रहूँगा। और इसका प्यारा तो बहुत पास है, मेरा प्यारा बहुत दूर है। जन्मों–जन्मों गाता रहूँ तो ही उस तक पहुँच सकूँगा। रात और दिन का हिसाब नहीं रखा जा सकता है।" नानक ने फिर गाना शुरू कर दिया।

नानक ने परमात्मा को गा गा कर पाया। गीतों से पटा है मार्ग नानक का। इसलिये नानक की खोज बड़ी भिन्न है।

पहली बात समझ लेना जरूरी है, कि नानक ने योग नहीं किया, तप नहीं किया, ध्यान नहीं किया। नानक ने सिर्फ गाया। और गा कर ही पा लिया। लेकिन गाया उन्होंने इतने पूरे प्राण से, कि गीत ही ध्यान हो गया, गीत ही योग बन गया, गीत ही तप हो गया।

जब भी कोई समग्र प्राण से किसी भी कृत्य को करता है, वही कृत्य मार्ग बन जाता है। तुम ध्यान भी करो अधूरा-अधूरा, तो भी न पहुँच पाओगे। तुम पूरा-पूरा, पूरे हृदय से, तुम्हारी समग्रता से, एक गीत भी गा दो, एक नृत्य भी कर लो, तो भी तुम पहुँच जाओगे। तुम क्या करते हो, यह सवाल नहीं। पूरी समग्रता से करते हो या अधूरे, यही सवाल है।

परमात्मा के रास्ते पर नानक के लिये गीत और फूल ही बिछे हैं। इसलिये उन्होंने जो भी कहा है, गा कर कहा है। बहुत मधुर है उनका मार्ग; रससिक्त! कल हम कबीर की बात कर रहे थे,

"सुरत कलारी भई मतवारी, मधवा पी गई बिन तौले।"

नानक वही हैं, जो मधवा को बिना तौले पी गये। फिर जीवन भर गाते रहे। ये गीत साधारण गायक के नहीं हैं। ये गीत उसके हैं जिसने जाना है। इन गीतों में सत्य की भनक, इन गीतों में परमात्मा का प्रतिबिम्ब है।

दूसरी बात, जपुजी के जन्म के संबंध में। जिस भादों की रात की मैंने बात कही—तब नानक की उम्र रही होगी कोई सोलह-सत्रह। जपजी का जन्म हुआ तब उनकी उम्र थी, तीस वर्ष, छह माह, पंदरह दिन। जिस घटना का मैंने उल्लेख किया उस भादों की रात, वे साधक थे और तलाश में थे। प्यारे की पुकार चल रही थी, "पियू, पियू"—अभी पपीहा रट लगा रहा था। अभी मिलन न हुआ था।

जपुजी का जब जन्म हुआ–यह मिलन के बाद उनका पहला उद्घोष है। पपीहे ने पा लिया अपने प्यारे को। "पियू, पियू" की रटन पूरी हुई। मिलन हो गया। उस मिलन से जो पहला उद्घोष हुआ है, वह "जपुजी" है। इसलिये नानक की वाणी में जो मूल्य "जपुजी" का है वह किसी और बात का नहीं। "जपुजी" ताज़ी से ताजी खबर है उस लोक की। वहाँ से लौट कर उन्होंने जो पहली बात कही, वह यही है। इस जगत में आ कर, जो पहले शब्द निर्मित हुए वही "जपुजी" हैं। उस घटना को भी समझ लेना है।

नदी के किनारे रात के अन्धेरे में, अपने साथी और सेवक मर्दाना के साथ वे नदी तट पर बैठे थे। अचानक उन्होंने वस्त्र उतार दिये। बिना कुछ कहे वे नदी में उतर गये। मर्दाना पूछता ही रहा, "क्या करते हैं? रात ठंडी है, अँधेरी है।" दूर नदी में वे चले गये। मर्दाना पीछे-पीछे गया। नानक ने डुबकी लगाई। मर्दाना सोचता था कि क्षण-दोक्षण में बाहर आ जायेंगे। फिर वे बाहर नहीं आये।

दस-पांच मिनट तो मर्दाना ने राह देखी, फिर वह खोजने लग गया, कि वे कहाँ खो गये। फिर वह चिल्लाने लगा। फिर वह किनारे-किनारे दौड़ने लगा कि

कहाँ हो? बोलो, आवाज़ दो। ऐसा उसे लगा, कि नदी की लहर-लहर से एक आवाज आने लगी, "धीरज रखो, धीरज रखो।" पर नानक की कोई खबर नहीं। वह भागा गाँव गया, आधी रात लोगों को जगा दिया। भीड़ इकट्ठी हो गई।

नानक को सभी लोग प्यार करते थे। सभी को नानक में दिखाई पड़ती थी कुछ होने की संभावना। नानक की मौजूदगी में सभी को सुगंध प्रतीत होती थी। फूल अभी खिला नहीं था पर कली भी तो गंध देती है! सारा गाँव रोने लगा, भीड़ इकट्ठी हो गई। सारी नदी तलाश डाली। इस कोने से उस कोने लोग भागने-दौड़ने लगे। लेकिन कोई पता न चला।

तीन दिन बीत गये। लोगों ने मान ही लिया कि नानक को कोई जानवर खा गया। डूब गये, बह गये। किसी खाई-खड्ड में उलझ गये। मान ही लिया कि मर गये। रोना-पीटना हो गया। घर के लोगों ने भी समझ लिया कि अब लौटने का कोई उपाय न रहा।

और तीसरे दिन रात नानक अचानक नदी से प्रकट हो गये। जब वे नदी से प्रकट हुए तो जपुजी उनका पहला वचन है। यह घोषणा उन्होंने की।

कहानी ऐसी है—कहता हूँ, "कहानी।" कहानी का मतलब होता है, जो सच भी है, और नहीं भी। सच इसलिये है कि वह खबर देती है सचाई की; और सच इसलिये नहीं है कि वह कहानी है और प्रतीकों में खबर देती है। और जितनी गहरी बात करनी हो, उतनी ही प्रतीकों की खोज करनी पड़ती है।

नानक जब तीन दिन के लिये खो गये नदी में तो कहानी है, कि वे प्रकट हुए परमात्मा के द्वार में। ईश्वर का उन्हें अनुभव हुआ। जाना आँखों के सामने प्यारे को, जिसके लिये पुकारते थे। जिसके लिये गीत गाते थे, जो उनके हृदय की धड़कन-धड़कन में प्यास बना था। उसे सामने पाया। तृप्त हुए। और परमात्मा ने कहा, "अब तू जा। और जो मैंने तुझे दिया है, वह लोगों को बाँट।" जपुजी उनकी पहली भेंट है परमात्मा से लौट कर।

यह कहानी है। इसके प्रतीकों को समझ लें। एक; कि जब तक तुम न खो जाओ, जब तक तुम न मर जाओ तब तक परमात्मा से कोई साक्षात्कार न होगा। नदी में खोओ कि पहाड़ में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन तुमको नहीं बचना चाहिये। तुम्हारा खो जाना ही उसका होना है। तुम जब तक हो तभी तक वह न हो पायेगा। तुम ही अड़चन हो। तुम ही दीवाल हो। तो यह जो नदी में खो जाने की कहानी है----

तुम्हें भी खो जाना पड़ेगा। तुम्हें भी डूब जाना पड़ेगा। तीन दिन लगते हैं। इसलिये तो हम, जब आदमी मर जाता है, तो तीसरा मनाते हैं। तीसरा हम इसलिये मनाते हैं, कि मरने की घटना पूरी होने में तीन दिन लग जाते हैं। उतना

समय जरूरी है। अहंकार मरता है, एकदम से नहीं। कम से कम समय तीन दिन लेता है। इसलिये कहानी में तीन दिन हैं, कि नानक तीन दिन खोये रहें। अहंकार पूरा गल गया, मर गया। और पास, पड़ोस, मित्र, प्रियजन, परिवार के लोगों को तो अहंकार ही दिखाई पड़ता है, तुम्हारी आत्मा तो दिखाई पड़ती नहीं, इसलिये उन्होंने तो समझा, नानक मर गये।

जब भी कोई संन्यासी होता है, घर के लोग समझ लेते हैं, मर गया। जब भी कोई उसकी खोज में जाता है घर के लोग मान लेते हैं, खत्म हुआ। क्योंकि अब यह वही तो न रहा। टूट गई पुरानी श्रृंखला। अतीत मिटा, अब नया हुआ। बीच में तीन दिन की खाई है। इसलिये तीन दिन का प्रतीक है। तीन दिन बाद नानक लौट आये।

जो भी खोता है वह लौट आता है, लेकिन नया हो कर लौटता है। जो भी जाता है उस मार्ग पर, वापिस आता है। लेकिन जा रहा था तब प्यासा था, आता है तब दानी हो कर आता है। जाता था तब भिखारी था, आता है तब सम्राट हो कर आता है। जो भी परमात्मा में लीन होता है, जाते समय भिक्षा-पात्र होता है, लौटते समय अपरंपार संपदा होती है बाँटने को।

जपुजी पहली भेंट है।

परमात्मा के सामने प्रकट होना, प्यारे को पा लेना, इन्हें तुम बिलकुल प्रतीक को, भाषागत रूप से सच मत समझ लेना। क्योंकि कहीं कोई परमात्मा बैठा हुआ नहीं है, जिसके सामने तुम प्रकट हो जाओ। लेकिन कहना हो बात, तो और कुछ कहने का उपाय भी नहीं है। जब तुम मिटते हो तो जो भी आँख के सामने होता है वही परमात्मा। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, परमात्मा निराकार शक्ति है।

तुम उसके सामने कैसे हो सकोगे? जहाँ तुम देखोगे, वहीं वह है। जो तुम देखोगे, वही वह है। जिस दिन आँख खुलेगी, सभी वह है। बस तुम मिट जाओ, आँख खुल जाय।

अहंकार तुम्हारी आँख में पड़ी हुई कंकड़ी है। उसके हटते ही परमात्मा प्रकट हो जाता है। परमात्मा प्रकट ही था, तुम मौजूद न थे। नानक मिटे, परमात्मा प्रकट हो गया। जैसे ही परमात्मा प्रकट हो जाता है, तुम भी परमात्मा हो गये क्योंकि उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

नानक लौटे; परमात्मा हो कर लौटे। फिर उन्होंने जो भी कहा है, एक-एक शब्द बहुमूल्य है। फिर एक-एक शब्द को हम कोई भी कीमत दें तो भी कीमत छोटी पड़ेगी। फिर एक-एक शब्द वेद वचन है।

अब हम जपुजी को समझने की कोशिश करें।

"इक ओंकार सति नाम,"

करता पुरखु निरभउ निरवैर, अकाल मूरति अजूनि सैभं गुरप्रसादि।

'वह एक है, ओंकार स्वरूप है, सत नाम है, कर्ता पुरुष है, भय से रहित है, वैर से रहित है, कालातीत-मूर्ति है, अयोनि है, स्वयंभू है, गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।'

एक है– "**इक ओंकार सति नाम।**"

जो भी हमें दिखाई पड़ता है वह अनेक हैं। जहाँ भी तुम देखते हो, भेद दिखाई पड़ता है। जहाँ तुम्हारी आँख पड़ती है, अनेक दिखाई पड़ता है। सागर के किनारे जाते हो, लहरें दिखाई पड़ती हैं। सागर दिखाई नहीं पड़ता। हालाँकि सागर ही है। लहरें तो ऊपर-ऊपर हैं।

पर जो ऊपर-ऊपर है वही दिखाई पड़ता है क्योंकि ऊपर की ही आँख हमारे पास है। भीतर को देखने के लिये तो भीतर की आँख चाहिये। जैसी होगी आँख, वैसा ही होगा दर्शन। आँख से गहरा तो दर्शन नहीं हो सकता। तुम्हारे पास आँख ही ऊपर की है। तुम लहरों को देख कर लौट आओगे। और लोगों से कहोगे कि सागर हो आया। सागर में जाने का यह ढंग नहीं है। किनारे से तो दिखाई पड़ेंगी लहरें। सागर में हो कर डूबना ही पड़े। इसलिये तो कहानी है कि नानक नदी में डूब गये। लहरों में नहीं है वह, नदी में है। लहरों में नहीं है, सागर में है। ऊपर-ऊपर तो लहरें होंगी। तट से तुम देख कर लौट आओगे, तो तुम जो खबर दोगे वह गलत होगी। तुम कहोगे, सागर हो आया। सागर तक तुम गये नहीं। तट पर तो सागर नहीं है। वहाँ से तो लहरें दिखाई पड़ सकती हैं। लहरों का जोड़ भी सागर नहीं है। जोड़ से भी ज्यादा है सागर।

और जो मौलिक भेद है वह यह है, कि लहर अभी है, क्षण भर बाद नहीं होगी, क्षण भर पहले नहीं थी।

एक सूफी फकीर हुआ जुन्नेद। बहुत प्रेम करता था अपने बेटे को। फिर बेटा अचानक मर गया किसी दुर्घटना में, तो दफना आया। पत्नी थोड़ी हैरान हुई। पत्नी सोचती थी कि बेटा मरेगा तो जुन्नेद पागल हो जायेगा; इतना प्रेम करता था बेटे को। लेकिन जैसे जुन्नेद को कुछ हुआ ही नहीं। जैसे बेटा मरा ही नहीं। जैसे कोई बात ही नहीं हुई, जुन्नेद वैसा ही रहा। आखिर साँझ होते-होते जब लोग बिदा हो गये सहानुभूति प्रगट कर के, तो पत्नी ने पूछा कि कुछ दुख नहीं हुआ तुम्हें? मैं तो सोचती थी तुम टूट जाओगे। इस बेटे से तुम्हें इतना प्रेम था।

जुन्नेद ने कहा, "एक क्षण को धक्का लगा था, फिर मुझे याद आया, जब यह बेटा नहीं था तब भी मैं था और खुश था। अब वह बेटा नहीं है तो दुख होने का क्या कारण? फिर वैसे ही हो गया, जैसे पहले था। बेटा बीच में आया

और गया। न पहले दुखी था तो अब दुखी होने का क्या कारण ? बिना बेटे के मज़े में था। अब फिर बिना बेटे का हूँ। फर्क क्या है ? बीच का एक सपना टूट गया।"

जो बनता है और मिट जाता है, वह सपना है। जो आता है और चला जाता है वह सपना है। लहरें सपना हैं, सागर सच है। अनेक लहरें हैं, एक सागर है। हमें अनेक दिखाई पड़ता है। और जब तक एक न दिखाई पड़ जाय, तब तक हम भटकते रहेंगे।

क्योंकि एक ही सच है : "**इक ओंकार सति नाम**।"

और नानक कहते हैं उस एक का जो नाम है, वही ओंकार है। और सब नाम तो आदमी के दिये हैं। राम कहो, कृष्ण कहो, अल्लाह कहो, ये नाम आदमी के दिये हैं। ये हमने बनाये हैं। सांकेतिक हैं। लेकिन एक उसका नाम है जो हमने नहीं दिया; वह ओंकार है। वह ओम् है।

क्यों ओंकार उसका नाम है ? क्योंकि जब सब शब्द खो जाते हैं और चित्त शून्य हो जाता है और सागर में आदमी लीन हो जाता है तब भी ओंकार की धुन सुनाई पड़ती रहती है। वह हमारी की हुई धुन नहीं है। अस्तित्व की धुन है। वह अस्तित्व की ही लय है। अस्तित्व के होने का ढंग ओंकार है। वह किसी आदमी का दिया हुआ नाद नहीं है। इसलिये "ओम्" का कोई भी अर्थ नहीं होता। "ओम्" कोई शब्द नहीं है। "ओम्" ध्वनि है। और ध्वनि भी अनूठी है। कोई उसका स्रोत नहीं है। कोई उसे पैदा नहीं कर रहा है। अस्तित्व के होने में ही छिपी है। अस्तित्व के होने की ध्वनि है।

जैसे कि जलप्रपात है; तुम उसके पास बैठो तो प्रपात की एक ध्वनि है। लेकिन वह ध्वनि पानी और चट्टान की टक्कर से पैदा होती है। नदी के पास बैठो, कल-कल का नाद होता है। लेकिन यह कल-कल का नाद नदी और तट की टक्कर से होता है। हवा का झोंका निकलता है, वृक्ष से सरसराहट होती है। लेकिन वह सरसराहट हवा और वृक्ष की टक्कर से होती है। हम बोलते हैं, संगीतज्ञ गीत गाता है, वीणा का कोई तार छेड़ता है, लेकिन सभी चीज़ संघर्ष से पैदा होती है। संघर्ष के लिये दो ज़रूरी हैं। तार चाहिये वीणा का, हाथ चाहिये छेड़नेवाला। जितनी ध्वनियाँ द्वैत से पैदा होती हैं, वे उसके नाम नहीं हैं। उसका नाम तो वही है, जब सब द्वैत खो जाता है, फिर भी एक ध्वनि गूँजती रहती है।

इस संबंध में कुछ बातें समझ लेना जरूरी हैं। विज्ञान कहता है कि सारे अस्तित्व को अगर हम तोड़ते चले जायें, और गहराई में विश्लेषण करें, तो अन्त में हमें विद्युत्-ऊर्जा, इलेक्ट्रीसिटी मिलती है। इसलिये जो आखिरी खोज है विज्ञान की, वह इलेक्ट्रॉन है-विद्युत्कण। सारा अस्तित्व विद्युत् से बना है। अगर हम

विज्ञान से पूछें कि ध्वनि किससे बनी है ? तो विज्ञान कहता है, वह भी विद्युत् से बनी है। ध्वनि भी विद्युत् का एक आकार है, एक रूप है। लेकिन मूल विद्युत् है।

इस संबंध में समस्त ज्ञानियों की विज्ञान से सहमति है, थोड़े से भेद के साथ। वह भेद बड़ा नहीं, वह भेद भाषा का है। समस्त ज्ञानियों ने पाया कि अस्तित्व बना है ध्वनि से और ध्वनि का ही एक रूप विद्युत् है। विज्ञान कहता है, विद्युत् का एक रूप ध्वनि है और धर्म कहता है कि विद्युत् ध्वनि का एक रूप है। इतना ही फासला है। मगर यह फासला ऐसा ही दिखाई पड़ता है जैसे ग्लास आधा भरा हो; कोई कहे आधा भरा है, कोई कहे आधा खाली है।

विज्ञान की पहुँच का द्वार अलग है। विज्ञान ने पदार्थ को तोड़-तोड़ कर विद्युत् को खोजा है। ज्ञानियों की पहुँच का मार्ग अलग है। उन्होंने अपने को जोड़-जोड़ कर--तोड़ कर नहीं; अपने को जोड़-जोड़ कर अखंड को पाया है। और उस अखंड में एक ध्वनि पाई है। जब कोई व्यक्ति समाधिस्थ हो जाता है तो ओंकार की ध्वनि गूँजती है। वह अपने भीतर उसे गूँजते पाता है, अपने बाहर गूँजते पाता है। सारे लोक उससे व्याप्त मालूम होते हैं।

चकित हो जाता है पहली बार, जब घटता है। क्योंकि वह देखता है मैं तो बोल नहीं रहा, मैं तो कुछ कर नहीं रहा, यह ध्वनि कहाँ से आ रही है ? तब वह अनुभव करता है कि यह होने की ध्वनि है, किसी भी टक्कर से पैदा नहीं हुई है। यह आहत ध्वनि नहीं है, यह अनाहत नाद है।

नानक कहते हैं वही एक उसका नाम है—ओंकार। नानक बहुत बार नाम शब्द का प्रयोग करेंगे। इसे स्मरण रखना, कि जब भी वे कहते हैं, "उस का नाम"; और उसका नाम ही मार्ग है, और उसके नाम की रटन में जो डूब जायेगा, उसके नाम में जो डूब जायेगा वह उसको पा लेगा; ध्यान रखना, नाम जब भी नानक कहते हैं, तब उनका इशारा ओंकार की तरफ है। क्योंकि वही एक उसका नाम है जो हमने नहीं दिया, जो उसका ही है। हमारे दिये हुए नाम बहुत दूर न जा सकेंगे। और अगर थोड़े बहुत जाते भी हैं, तो इसलिये जाते हैं कि हमारे नामों में भी उसके नाम की थोड़ी-सी झलक होती है।

जैसे समझो, कि राम। अगर कोई "राम, राम, राम, राम", की रटन लगा दे भीतर, तो उस में ओंकार की थोड़ी सी झलक है। वह जो "म" है वह "ओम्" का है। इसलिये "राम" शब्द से भी थोड़ी दूर तक जा सकेंगे हम। लेकिन अगर धुन को तुम करते ही रहे, तो एक दिन अचानक तुम पाओगे कि राम की धुन ओंकार में बदल गई। अगर तुम करते ही जाओगे तो जैसे ही मन शान्त होगा, वैसे ही ओम् तुम्हारे "राम" में प्रविष्ट हो जायेगा। और तुम

धीरे-धीरे पाओगे कि राम तो खो गया, ओम् आ गया। समस्त ज्ञानियों का यह अनुभव है कि उन्होंने किसी भी नाम से शुरू किया हो, लेकिन आखिर में ओम् आ जाता है। जैसे ही तुम शान्त होने लगते हो, वैसे ही ओम् आने लगता है। ओम् सदा मौजूद है, बस, तुम्हारे शान्त होने की ज़रूरत है।

नानक कहते हैं, "**इक ओंकार सति नाम।**"

सत शब्द भी समझ लेने जैसा है। संस्कृत में दो शब्द हैं। एक सत और सत्य। सत का अर्थ होता है--एक्झिस्टन्स, अस्तित्व। और सत्य का अर्थ होता है ट्रुथ। दोनों में बड़ा फर्क है। दोनों की मूल धातु तो एक है। सत, सच, सत्य, सब की मूल धातु एक है। लेकिन थोड़े से फर्क हैं, वे समझ लेने ज़रूरी हैं।

सत्य तो दार्शनिक की खोज है। वह खोजता है कि सत्य क्या है? What is truth? जैसे, दो और दो मिल कर चार होते हैं। यह सत्य है, कि दो और दो मिल कर पांच नहीं होते; दो और दो मिल कर तीन नहीं होते; दो और दो मिल कर चार होते हैं। यह गणित का सूत्र सत्य है, लेकिन सत नहीं है; क्योंकि यह मनुष्य का हिसाब है। This is true but not existantial। दो और दो मिल कर चार होते हैं, यह मनुष्य की ही ईजाद है। यह सत्य तो है, सच नहीं है। सत नहीं है।

तुम सपना देखते हो रात। सपना सत तो है, सत्य नहीं है। सपना है तो! नहीं तो देखोगे कैसे? होना तो है लेकिन तुम यह नहीं कह सकते कि सत्य है क्योंकि सुबह तुम पाते हो, कि न होने के बराबर है। लेकिन हुआ ज़रूर! सपना घटा।

तो दुनिया में ऐसी घटनायें हैं, जो सत्य हैं और सत नहीं। और ऐसी भी घटनायें हैं, जो सत हैं लेकिन सत्य नहीं। गणित सत्य है, सत नहीं। गणित का एक निष्कर्ष सत्य हो सकता है, सत नहीं। सपना है; सपना सत है, सत्य नहीं।

परमात्मा दोनों है। सत भी, सत्य भी। और इसलिये न तो उसे गणित से पाया जा सकता--विज्ञान से उसे नहीं पाया जा सकता, क्योंकि विज्ञान खोजता है सत्य को और न उसे काव्य, कला आर्टस् से पाया जा सकता। क्योंकि कला खोजती है सत को। परमात्मा दोनों है, सत+सत्य। इसलिये न तो कला उसे पूरा खोज सकती है, और न विज्ञान। दोनों अधूरे हैं।

और इसलिये धर्म की खोज दोनों से पृथक् है। धर्म उस की तलाश है, जो दोनों है, एक साथ है। जो इतना सत्य है जितना कि गणित का कोई भी फार्म्यूला और जो इतना सत है जितनी काव्य की कोई भी धारणा। वह दोनों है, और दोनों नहीं है। अगर तुम आधे से देखोगे तो चूक जाओगे। अगर तुम दोनों को मिला कर देखोगे तो ही उसे पा सकोगे।

तो जब नानक कहते हैं, "एक ओंकार सतनाम"; तो इस सत में दोनों हैं–सत्य और सत। उस परम अस्तित्व का नाम--जो गणित की तरह सच है, और जो काव्य की तरह भी सत है; जो स्वप्न की तरह मधुर है, और गणित की तरह ठीक-ठीक सही है; जो हृदय की भावना की तरह भी है, और मस्तिष्क की प्रतीति की भाँति भी है।

जहाँ मस्तिष्क और हृदय मिलते हैं, वहीं धर्म शुरू होता है। अगर मस्तिष्क अकेला रहे, हृदय को दबा दे, तो विज्ञान पैदा होता है। अगर हृदय अकेला रहे, मस्तिष्क को हटा दे, तो कल्पना का जगत्, काव्य, संगीत, चित्र, कला पैदा होती है। और अगर मस्तिष्क और हृदय दोनों मिल जायें, दोनों का संयोग हो जाय, तो हम ओंकार में प्रवेश करते हैं।

धार्मिक व्यक्ति वैज्ञानिक से बड़ा वैज्ञानिक, कलाकार से बड़ा कलाकार है क्योंकि उसकी खोज संयुक्त है। विज्ञान और कला द्वंद्व है। धर्म समन्वय है, सिन्थेसिस है।

नानक कहते हैं, "**इक ओंकार सति नाम**"
वह एक ओंकार स्वरूप, वह सत नाम, कर्ता पुरुष......
ये जो शब्द हैं, उन्हें ऊपर से समझोगे तो भ्रांतियाँ होंगी।

ज्ञानियों की एक अड़चन है, कि शब्द तो उन्हें तुम्हारे ही उपयोग करने पड़ते हैं। तुमसे बात करनी है, तुम्हारी ही भाषा बोलनी पड़ेगी। और जो वे कहना चाहते हैं, वह भाषा के पार है। जो वे कहना चाहते हैं, वह तुम्हारी भाषा में आ नहीं सकता। तुम्हारी भाषा बहुत संकीर्ण है, वह बहुत विराट है। जैसे कोई अपने घर में पूरे आकाश को समा लेना चाहे। जैसे कोई अपनी मुट्ठी में सारे प्रकाश को बाँध लेना चाहे, ऐसी असमर्थता है। तो तुम्हारे ही शब्द उपयोग करने पड़ते हैं।

और तुम्हारे शब्दों के कारण इतने संप्रदाय पैदा हो जाते हैं क्योंकि बुद्ध नानक से दो हजार साल पहले हुए। तो बुद्ध दूसरी भाषा का उपयोग करते हैं, जो प्रचलित थी, जो लोग समझते थे। कृष्ण और दो हजार साल पहले बुद्ध से हुए। वे और दूसरी भाषा का उपयोग करते हैं, जो लोग समझते थे। मुहम्मद और दूसरी भाषा का उपयोग करते हैं क्योंकि दूसरी हवा, दूसरा मुल्क, दूसरे ढंग के लोग। महावीर अलग, जीसस अलग।

भाषाओं के भेद हैं। भाषा तुम्हारी वजह से अलग है, अन्यथा ज्ञानियों में कोई भी भेद नहीं। नानक जो भाषा का उपयोग कर रहे हैं, वह नानक के समय समझी जा सकती थी।

तो नानक कहते हैं, "कर्ता पुरुष"। वही बनाने वाला। लेकिन तत्क्षण

ख्याल में आता है कि अगर वही बनाने वाला है, और हम बनाये गये हैं, तो द्वैत हो गया। नानक तो शुरू में ही इन्कार कर दिये हैं, कि वह एक है। अगर वह बनाने वाला स्रष्टा है, और सृष्टि अलग है जिसको उसने बनाया, तो द्वैत शुरू हो गया।

हमारी भाषा से अड़चन शुरू होती है। जैसे-जैसे नानक आगे बढ़ेंगे वैसे-वैसे अड़चन शुरू होगी। जो उन्होंने पहला शब्द बोला है, समाधि के बाद वह है...“इक ओंकार सत नाम।”

सच तो यह है, कि पूरा सिक्ख धर्म इन तीन शब्दों में समाप्त हो जाता है। इसके आगे तो तुम्हें समझाने की कोशिश है, अन्यथा बात पूरी हो गयी। तुम नहीं समझोगे इससे, इससे आगे फिर विस्तार करना पड़ता है। विस्तार तुम्हारे कारण है, अन्यथा मंत्र तो पूरा हो गया। बात तो पूरी हो गई। “इक ओंकार सत नाम--” सब कह दिया। लेकिन तुम्हारे लिये तो अभी कुछ भी नहीं कहा गया। इन तीन शब्दों से क्या हल होगा? कुछ नहीं हल होता। तब तुम्हारी भाषा शुरुआत होती है।

“कर्ता, पुरुष-” वह बनाने वाला है। लेकिन ध्यान रखना, जो उसने बनाया है वह उससे अलग नहीं है। बनाने वाला, बनायी हुई सृष्टि में लीन है। इसलिये नानक ने गृहस्थ को और संन्यासी को अलग नहीं किया क्योंकि अगर कर्ता परमेश्वर अलग है सृष्टि से, तो फिर तुम्हें सृष्टि के कामधंधे से अलग हो जाना चाहिये। जब तुम्हें कर्ता पुरुष को खोजना है तो कृत्य से दूर हो जाना चाहिये, कर्म से दूर हो जाना चाहिये। फिर बाज़ार है, दूकान है, कामधंधा है, उससे अलग हो जाना चाहिये।

नानक आखिर तक अलग नहीं हुए। यात्राओं पर जाते थे और जब भी वापिस लौटते थे तो फिर अपनी खेतीबाड़ी में लग जाते। फिर उठा लेते हल-बखर। पूरे जीवन, जब भी वापिस लौटते घर, तब अपना काम--कामधाम शुरू कर देते। जिस गाँव में वे आखिर में बस गये थे, उसका नाम उन्होंने “करतारपुर” रख लिया था-कर्ता का गाँव।

अगर परमात्मा कर्ता है, तो तुम यह मत समझना कि वह दूर हो गया है कृत्य से। एक आदमी मूर्ति बनाता है। जब मूर्ति बन जाती है तो मूर्तिकार अलग हो जाता है, मूर्ति अलग हो जाती है। दो हो गये। मूर्तिकार मरने से मूर्ति नहीं मरेगी। मूर्तिकार मर जाय, मूर्ति रहेगी। मूर्ति के टूटने से मूर्तिकार नहीं मरेगा। मूर्ति टूट जाय, मूर्तिकार बचेगा। दोनों अलग हो गये। परमात्मा और उसकी सृष्टि में ऐसा फासला नहीं है।

फिर परमात्मा और उसकी सृष्टि में कैसा संबंध है? वह ऐसा है, जैसे

नर्तक का। एक आदमी नाच रहा है, तो नृत्य है, लेकिन क्या तुम नृत्य को और नृत्यकार को अलग कर सकोगे? नृत्यकार घर चला जाये, नृत्य तुम्हारे पास छोड़ सकेगा? नृत्यकार मरेगा, नृत्य मर जायेगा। नृत्य रुकेगा, फिर वह आदमी नर्तक न रहा। दोनों संयुक्त हैं। इसलिए हिन्दुओं ने बड़े प्राचीन समय से, परमात्मा को नर्तक की दृष्टि से देखा -- नटराज! क्योंकि नटराज के प्रतीक में नर्तक और नृत्य अलग नहीं होते।

कवि भी कविता बनाये तो कविता से अलग हो जाता है। मूर्तिकार मूर्ति बनाये, मूर्ति से अलग हो जाता है। माँ बेटे को जन्म दे, जन्म देते ही अलग हो जाती है। पिता बेटे से अलग है। लेकिन परमात्मा सृष्टि से अलग नहीं है। सृष्टि में समाया हुआ है। अगर ठीक-ठीक, तुम्हारी भाषा का उपयोग न किया जाय, तो कहना होगा— The creater is the creation वह जो स्रष्टा है, सृष्टि है। और भी अगर ठीक कहना हो तो, The creater is nothing but the creativity. स्रष्टा सृजन की प्रक्रिया है। वह स्वयं सृजन है।

इसलिये नानक कहते हैं, कुछ छोड़ कर भागना नहीं है। जहाँ हो तुम, वहीं वह छिपा है। नानक ने एक अनूठे धर्म को जन्म दिया है, जिसमें गृहस्थ और संन्यासी एक है। और वही आदमी अपने को सिक्ख कहने का हकदार है, जो गृहस्थ होते हुए संन्यासी हो; संन्यासी होते हुए गृहस्थ हो।

सिर के बाल बढ़ा लेने से, पगड़ी बाँध लेने से कोई सिक्ख नहीं होता। सिक्ख होना बड़ा कठिन है। गृहस्थ होना आसान है। संन्यासी होना आसान है; छोड़ कर भाग जाओ जंगल में। सिक्ख होना कठिन है। क्योंकि सिक्ख का अर्थ है- संन्यासी, गृहस्थ एक साथ। रहना घर में और ऐसे रहना जैसे नहीं हो। रहना घर में और ऐसे रहना जैसे हिमालय में हो। करना दूकान लेकिन याद परमात्मा की रखना। गिनना रुपये, नाम उसका लेना।

नानक को जो पहली झलक मिली परमात्मा की, जिसको सतोरी कहें ... इस नदी में तीन दिन डूब कर तो जो घटना घटी, वह समाधि की है। उसके बाद तो वे परम पुरुष हो गये। पर उसके पहले अनेक छोटी-छोटी झलकें मिलीं।

जो पहली झलक नानक को मिली, वह मिली एक दूकान पर; जहाँ वे तराजू से गेहूँ और अनाज तौल रहे थे। अनाज तौल कर किसी को दे रहे थे। तराजू में भरते और डालते। कहते- एक, दो, तीन......दस, ग्यारह, बारह...... फिर पहुँचे वे, ‘तेरा’। पंजाबी में तेरह का जो रूप है, वह तेरा। उन्हें याद आ गई परमात्मा की। तेरा, दाईन, दाऊ--धुन बन गई। फिर वे तौलते गये लेकिन संख्या तेरा से आगे न बढ़ी। भरते, तराजू में डालते और कहते “तेरा”। भरते, तराजू में और डालते, कहते, “तेरा”। क्योंकि आखिरी पड़ाव आ गया। तेरा से आगे कोई संख्या है? मंजिल आ गई। “तेरा” पर

सब समाप्त हो गया। लोग समझे कि पागल हो गये। लोगों ने रोकना भी चाहा लेकिन वे तो किसी और लोक में हैं। वे तो कहे जाते हैं, "तेरा"। डाले जाते हैं तराज़ू से, तौले जाते हैं और तेरा से आगे नहीं बढ़ते। तेरा से आगे बढ़ने की जगह ही कहाँ है?

दो ही तो पड़ाव हैं, या तो "मैं" या "तू"। मैं से शुरुआत है, तू पर समाप्ति है।

नानक संसार के विरोध में नहीं हैं। नानक संसार के प्रेम में हैं क्योंकि वे कहते हैं कि संसार और उसका बनाने वाला दो नहीं। तुम इसे भी प्रेम करो, तुम इसीमें से उसको प्रेम करो। तुम इसीमें से उसको खोजो।

नानक जब युवा हुए, तब घर के लोगों ने कहा शादी कर लो। उन्होंने 'नहीं' न कहा। सोचते तो रहे होंगे घर के लोग, कि यह नहीं कहेगा बचपन से ही इसके ढंग, ढंग के नहीं थे। नानक के बाप तो परेशान ही रहे। उनको कभी समझ में न आया कि क्या मामला है। भजन में, कीर्तन में, साधु-संगत में......

भेजा बेटे को सामान खरीदने दूसरे गाँव। बीस रुपये दिये थे। सामान तो खरीदा लेकिन रास्ते में साधु मिल गये, वे भूखे थे। बाप ने चलते वक्त कहा था, सस्ती चीज़ खरीद लाना, और इस गाँव में आकर महँगे बेच देना। यही धंधे का गुर है। दूसरे गाँव में सस्ते में खरीदना, यहाँ आकर महँगे में बेच देना। यहाँ जो चीज़ सस्ती हो खरीदना, दूसरे गाँव में महँगे में बेचना। वही लाभ का रास्ता है। तो कोई ऐसी चीज़ खरीद कर लाना जिसमें लाभ हो। नानक लौटते थे खरीद कर, मिल गई साधुओं की एक जमात। वे पाँच दिन से भूखे थे। नानक ने पूछा, भूखे बैठे हो। उठो, कुछ करो। जाते क्यों नहीं गाँव में?

उन्होंने कहा, यही हमारा व्रत है। जब उसकी मर्जी होगी, वह देगा। तो हम आनंदित हैं। भूख से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

तो नानक ने सोचा कि इससे ज्यादा लाभ की बात क्या होगी, कि इन परम साधुओं को यह भोजन बाँट दिया जाय जो मैं खरीद लाया हूँ बाहर गाँव से? पिता ने यही तो कहा था, कि कुछ काम लाभ का करो।

बाँट दिया था। साथी था साथ में, मित्र था साथ में, उसका नाम बाला था। उसने कहा, क्या करते हो, दिमाग खराब हुआ है? नानक ने कहा, यही तो कहा था पिता ने कि कुछ लाभ का काम करना। इससे ज्यादा लाभ क्या होगा? बाँट कर बड़े प्रसन्न घर लौटे।

इसलिये कहता हूँ, ढंग के न थे। बाप ने कहा, "मूरख! ऐसे कहीं धंधा हुआ है? तू बरबाद कर देगा।"

और नानक ने कहा, "आप नहीं सोचते कि इससे ज़्यादा लाभ की और क्या बात होगी? लाभ कमा कर लौटा हूँ।"

लेकिन यह लाभ किसीको दिखाई नहीं पड़ता था। नानक के पिता कालू मेहता को तो बिलकुल दिखाई नहीं पड़ता था। उनको तो लगता था, लड़का बिगड़ गया। साध-संगत में बिगड़ा। होश में नहीं है। सोचा कि शायद स्त्री से बाँध लेने से राहत मिल जायेगी।

अक्सर लोग ऐसा सोचते हैं। सोचने का कारण है क्योंकि संन्यासी स्त्री को छोड़ कर भागते हैं। तो अगर किसीको गृहस्थ बनाना हो, तो स्त्री से बाँध लो। पर नानक पर यह तरकीब काम न आयी। क्योंकि यह आदमी किसी चीज़ के विरोध में न था।

बाप ने कहा, "शादी कर लो।" नानक ने कहा, "अच्छा।" शादी हो गई। लेकिन इसके ढंग में कोई फर्क न पड़ा। बच्चे हो गये लेकिन उसके ढंग में कोई फर्क न पड़ा।

इस आदमी को बिगाड़ने का उपाय ही न था क्योंकि संसार और परमात्मा में इसे कोई भेद न था। तुम बिगाड़ोगे कैसे? जो आदमी धन छोड़ कर संन्यासी हो गया बिगाड़ सकते हो, धन दे दो। जो आदमी स्त्री छोड़ कर संन्यासी हो गया, एक सुन्दर स्त्री उसके पास पहुँचा दो, बिगाड़ सकते हो। लेकिन जो कुछ छोड़ कर ही नहीं गया, उसको तुम कैसे बिगाड़ोगे? उसके पतन का कोई रास्ता नहीं है। नानक को भ्रष्ट नहीं किया जा सकता।

मैं भी पक्ष में हूँ, कि संन्यासी तो नानक के ही होने चाहिए क्योंकि संन्यासी वही परम है, जिसको भ्रष्ट न किया जा सके। भ्रष्ट तुम उसीको न कर सकोगे जो ठीक तुम्हारे संसार में बैठा है, फिर भी वहाँ नहीं है। तुम उसे कैसे भ्रष्ट करोगे? उसने सब उपाय तोड़ दिये हैं।

वह परमात्मा, जिसको नानक कहते हैं, "कर्ता पुरुष। भय से रहित" क्योंकि भय तो वहीं होता है जहाँ दूसरा हो।

पश्चिम में ज्यां पाल सार्त्र का एक वचन बहुत प्रसिद्ध हो गया। वह वचन है: The other is hell। 'दूसरा नरक है'। तुम्हारा भी अनुभव यही है। कितनी बार तुम नहीं चाहते हो कि अकेला छूट जाऊँ! दूसरा उपद्रव है। मित्र हो तो थोड़ा कम उपद्रव है, शत्रु हो तो थोड़ा ज्यादा उपद्रव है। अपना हो तो थोड़ा कम उपद्रव है, पराया हो तो थोड़ा ज्यादा उपद्रव है। लेकिन दूसरा उपद्रव है।

भय क्या है? दूसरे का भय है। कोई छीन न ले। कोई सुरक्षा तोड़ न दे। फिर मौत आ रही है, वह भी दूसरी है। बीमारी आ रही है, वह भी दूसरी है।

भय क्या है ? तुम दूसरे से घिरे हो यही तुम्हारा नर्क है। The other is hell. ; दूसरा नर्क है।

लेकिन तुम दूसरे से बचोगे कैसे ? हिमालय पर भी जा कर बैठ जाओ तो भी तुम अकेले न हो पाओगे। बैठोगे वृक्ष के नीचे, कौवा बीट कर देगा। गुस्सा कौवे पर आ जायेगा। बैठोगे, वर्षा आ जायेगी, धूप आ जायेगी। दूसरे से तुम भागोगे कहाँ ? तुम जहाँ भी जाओ, तुम दूसरे को पाओगे क्योंकि दूसरे से बचने का एक ही उपाय है, तुम उस एक को खोज लो जहाँ कोई दूसरा न रह जाता। फिर सब भय गिर जाता है। फिर मौत है ही नहीं। फिर बीमारी है ही नहीं। फिर असुविधा है ही नहीं क्योंकि दूसरा न रहा, तुम ही हो। कोई अन्तर नहीं है। भय तब तक रहेगा जब तक तुम्हें दूसरे, दूसरे दिखाई पड़ते हैं।

"इक ओंकार सत नाम"...जिसके मन में यह छा गया, उसे कैसा भय ? परमात्मा को भय नहीं हो सकता। किसका भय होगा ? वही है अकेला। उससे अन्यथा कोई भी नहीं है।

"अकाल भय से रहित, वैर से रहित, कालातीत, अकाल मूरति"। कालातीत मूर्ति है। समय के पार है–बियांड टाईम।

इसे थोड़ा समझ लो। समय का अर्थ ही होता है, परिवर्तन। अगर कोई चीज परिवर्तित न हो तो तुम्हें समय का पता ही न चलेगा। घड़ी में भी समय का पता चलता है क्योंकि काँटा घूमता है। अगर काँटा न घूमे तो समय का पता न चलेगा। चीजें बदल रही हैं। सूरज उगा, दोपहर हो गई, साँझ हो गई। बच्चा था, जवान हो गया; जवान था, बूढ़ा हो गया। स्वस्थ बीमार हो गया, बीमार स्वस्थ हो गया। गरीब अमीर हो गया, अमीर का दिवाला निकल गया..परिवर्तन है। सब चीजें बदल रही हैं। नदी बही जाती है। इस परिवर्तन में ही समय है। समय का अर्थ ही होता है, दो परिवर्तनों के बीच का फासला।

थोड़ा सोचो, अगर आज सुबह तुम उठो, और साँझ तक कुछ भी घटना न घटे, कोई परिवर्तन न हो। सूरज खड़ा रहे, जहाँ था। तुम्हारी उम्र उतनी ही बनी रहे जितनी थी। घड़ी का काँटा न हिले, वृक्ष बूढ़े न हों, पत्ते कुम्हलायें न। सब ठहर जाये तो तुम्हें समय का कैसे पता चलेगा ? समय होगा ही नहीं।

तुम्हारे लिये समय का पता चलता है क्योंकि तुम परिवर्तन से घिरे हो। परमात्मा के लिये कोई समय नहीं क्योंकि वह सनातन है, शाश्वत है, सदा है। उसके लिये कुछ भी परिवर्तन नहीं हो रहा है। उसके लिये सब ठहरा हुआ है। परिवर्तन अन्धी आँख का अनुभव है। परिवर्तन ऐसे है क्योंकि हमें पूरा नहीं दिखाई पड़ रहा है। अगर हमें पूरा दिखाई पड़ जाय तो परिवर्तन समाप्त हो जाय। परिवर्तन के समाप्त होते ही समय खो जाता है। समय परिवर्तन को

नापने का माध्यम है। परमात्मा के लिये सब वैसा का वैसा है। कुछ बदलता नहीं। सब ठहरा हुआ है।

"कालातीत, अकाल मूरति, अयोनि, स्वयंभू।"

वह किसी योनि से पैदा नहीं होता। परमात्मा का न कोई पिता है न कोई माँ। और जो भी योनि से पैदा होता है, वह परिवर्तन की दुनिया में प्रवेश कर जाता है। तुम्हें भी अपने भीतर उसीको खोजना है, जो अयोनिज है। यह शरीर तो पैदा हुआ है, मरेगा। यह शरीर तो दो शरीरों के जोड़ से बना है, बिखरेगा। जब वे दो शरीर ही बिखर गये तो यह शरीर कैसे बचेगा, जो उनसे मिल कर बना है ?

लेकिन उसके भीतर अयोनिज भी है, जो गर्भ में आया, जो गर्भ के पहले था; जो अभी छोड़ दे तो शरीर मुरदे की भाँति पड़ा रह जायेगा। इस शरीर के भीतर कालातीत प्रवेश किया है। अकाल पुरुष इस शरीर के भीतर भी मौजूद है। यह शरीर इसका जैसे उसका सिर्फ वस्त्र मात्र है। एक घर है, जिसमें वह ठहर गया है।

लेकिन तुम जब इसे अपने भीतर पाओगे तभी तुम नानक की वाणी समझ पाओगे। तुम्हें अपने भीतर उसे खोजना है, जो न परिवर्तित होता है, न बदलता है।

अगर तुमने कभी थोड़ा भी आँख बन्द कर के बैठने का अभ्यास किया है, तो तुम्हें एक बात ख्याल में आयी होगी, कि भीतर कोई उम्र नहीं है। तुम चालीस साल के हो कि पचास साल के, भीतर कुछ पता नहीं चलेगा। तुम जब पाँच साल के थे तब भी आँख बन्द करते तो भीतर अपने को वैसा ही पाते, जैसे तुम पचास साल के होकर पाओगे। जैसे भीतर के लिये समय बीता ही नहीं। आँख बन्द कर के भीतर देखो, तुम पाओगे वहाँ कुछ बदलता ही नहीं।

और यह जो भीतर अनबदला है, यह किसी योनि से पैदा नहीं हुआ है। तुम माँ-बाप से आये हो, उनसे पैदा नहीं हुए हो। वे तुम्हारे आने के मार्ग हैं। लेकिन वे तुम्हारे जन्मदाता नहीं हैं। तुम उनसे गुजरे हो क्योंकि तुम्हारे शरीर को बनाने की व्यवस्था उनके भीतर थी। लेकिन जो उस शरीर के भीतर प्रविष्ट किया है, वह पार से आया है। अपने भीतर जिस दिन तुम अयोनिज को पाओगे, उस दिन तुम समझोगे कि परमात्मा की कोई योनि नहीं है। हो भी नहीं सकती। क्योंकि परमात्मा का अर्थ है, समष्टि। परमात्मा का अर्थ है, दि टोटेलिटी। यह पूरा का पूरा किससे पैदा होगा ? पूरे के पार कुछ बचता ही नहीं, जो इस की माँ और पिता बन सके।

इसलिये "अयोनि है, स्वयंभू है, अपने आप है।" स्वयंभू का अर्थ है, अपने आप। कोई सहारा नहीं। किसी कारण से नहीं। कोई आधार नहीं। अपना ही आधार है। तुम भी जिस दिन अपने भीतर इस बात की थोड़ी सी झलक पाओगे उसी दिन मुक्त होओगे चिन्ता से।

तुम्हारी चिन्ता क्या है? चिन्ता यह है, कि हर चीज़ का आधार है। और हर चीज़ का आधार छीना जा सकता है। छीनने से चिन्ता है। छीनने के ख्याल से चिन्ता है। आज धन है, कल न होगा। फिर तुम क्या करोगे? धन के कारण अमीर हो, अपने कारण अमीर नहीं हो।

संन्यासी अपने कारण अमीर है। उससे तुम छीन नहीं सकते। बुद्ध से तुम क्या छीनोगे? नानक से तुम क्या छीनोगे? कुछ भी छीन कर तुम नानक को कम न कर पाओगे। कुछ देकर ज्यादा न कर पाओगे। कुछ जोड़ नहीं सकते। कुछ घटा नहीं सकते। नानक जो भी हैं, उस परम-सहारे के साथ हैं। तुम्हारा कोई सहारा नहीं।

और वह परम-सहारा अलग नहीं है। परमात्मा निराधार है। तुम भी निराधार हो। और जिस दिन तुम निराधार होने को राजी हो जाओगे, परमात्मा और तुम्हारा मिलन हो जायेगा।

यह तो परमात्मा की व्याख्या है, यह व्याख्या दार्शनिक की व्याख्या नहीं है। यह व्याख्या साधक के लिये है; ताकि तुम समझ जाओ कि परमात्मा के ये-ये लक्षण हैं। अगर तुम्हें परमात्मा को पाना है, तो इन्हीं-इन्हीं लक्षणों को तुम्हें अपनी साधना बना लेनी है। छोटे रूप में तुम्हें परमात्मा होने की कोशिश में लग जाना है। जैसे-जैसे तुम उसके समान होने लगोगे, वैसे-वैसे तालमेल बैठने लगेगा। दोनों के बीच धुन बजने लगेगी।

"अयोनि, स्वयंभू है, वह गुरुकृपा से प्राप्त होता है।"

क्यों कहते हैं गुरुकृपा से? क्या मनुष्य का अपना श्रम काफी नहीं है? इस संबंध में एक सूक्ष्म बात समझ लेनी जरूरी है क्योंकि नानक गुरु पर बहुत ज़ोर देंगे। गुरु के बिना तो मिल ही नहीं सकता परमात्मा, वे कहेंगे। क्या कारण है? अगर परमात्मा मौजूद है, तो सीधा-सीधा मैं उससे मिल क्यों नहीं सकता? गुरु को बीच में लाने की जरूरत क्या है?

कृष्णमूर्ति कहते हैं गुरु की कोई ज़रूरत ही नहीं। बुद्धि को, तर्क को ठीक भी मालूम पड़ता है। क्या ज़रूरत? जब परमात्मा मौजूद है, मैं भी परमात्मा से पैदा हुआ हूँ, गुरु भी परमात्मा से पैदा हुआ है, तो गुरु को बीच में क्यों खड़ा करना? क्या आवश्यकता है? मन तो यह चाहता भी है कि गुरु को बीच में न खड़ा किया जाय। इसलिए कृष्णमूर्ति के आसपास अहंकारी लोगों की जमात इकट्ठी हो गई है। कृष्णमूर्ति बिलकुल ठीक कहते हैं। गुरु की ज़रूरत नहीं है अगर तुम अपने अहंकार को खुद ही गिराने में समर्थ हो जाओ।

लेकिन अपने अहंकार को गिराना वैसा ही कठिन है, जैसे अपने जूते के बन्द को पकड़ कर खुद को उठाना। अपने अहंकार को गिराना वैसे ही मुश्किल है, जैसे कुत्ता अपनी ही पूंछ को पकड़ने की कोशिश करे। जितने जोर से छलाँग लगाता है उतनी ज़ोर से पूंछ भी छलाँग लगाती है। अपने अहंकार को तुम गिराओगे कैसे? अगर गिरा सकते हो तो कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं। बिलकुल ठीक कहते हैं। कोई भी ज़रूरत नहीं है किसी गुरु की।

लेकिन वहीं सारी उलझन है। अगर तुम अपने अहंकार को गिराने में समर्थ भी हो जाओ, तुम कहो कि मैंने अपना अहंकार गिरा दिया, तो यह नया अहंकार पैदा हो गया। यह पुराने से ज्यादा खतरनाक है। गुरु की इसलिये ज़रूरत है कि यह दूसरा अहंकार पैदा न हो सके। तम कहोगे, "गुरु प्रसाद से।" तुम यह अहंकार नहीं....। तो तुम यह बता लोगे कि मैं कितना विनम्र हूँ! मुझ जैसा कोई भी विनम्र नहीं है। अब यह "मैं" ने नये रास्ते पकड़े। ये अहंकार ने नयी तरकीबें खोजीं। कल कहता था मुझ से धनी कोई भी नहीं; अकड़! आज कहता है मुझ से विनम्र कोई भी नहीं; अकड़ वही है। रस्सी जल गई, अकड़ रह गई। अकड़ को कौन मिटायेगा? इसलिए नानक का ज़ोर है।

परमात्मा को पाने में तो कोई अड़चन नहीं। सीधे ही पाया जा सकता है क्योंकि वह सामने ही मौजूद है। तुम्हारे नाक की बिलकुल सीध में। जहाँ तुम जाते हो, सब तरफ वह मौजूद है लेकिन एक अड़चन है। और वह अड़चन यह है कि तुम भीतर खड़े हो। कैसे गिराओगे?

इसलिये "गुरु प्रसाद से"। साधक श्रम करेगा, लेकिन धारणा यही रखेगा: होगा गुरु की कृपा से। यह जो गुरुकृपा की धारणा है, यह तुम्हारे अहंकार को बनाने न देगी। पुराने को गिरा देगी, नये को बनाने न देगी। अन्यथा एक बीमारी जाती है, दूसरी उसकी जगह खड़ी हो जाती है।

और इसलिए एक बड़े मजे की घटना घटी है। कृष्णमूर्ति के पास अहंकारियों की जमात इकट्ठी हो गयी है। वह जमात उन लोगों की है जो किसीके सामने झुकना नहीं चाहते। उनको बिलकुल राहत मिल गई। किसीके चरण छूना नहीं चाहते। उनको बड़ा सहारा मिल गया। उन्होंने कहा, गुरु की कोई ज़रूरत ही नहीं, हम खुद ही पा लेंगे। और यही अड़चन है।

अगर नानक जैसा व्यक्ति कृष्णमूर्ति के पास हो, रामकृष्ण जैसा व्यक्ति कृष्णमूर्ति के पास हो, तो कोई अड़चन नहीं है। लेकिन जो लोग इकट्ठे होते

हैं वे वे ही लोग हैं जो अहंकार गिराने में असमर्थ हैं। उनको गुरु की जरूरत है। यह बड़े मजे की घटना है। कृष्णमूर्ति के पास जितने लोग हैं उनको गुरु की जरूरत है।

नानक के पास जितने लोग थे, बिना गुरु के भी पा सकते थे। तुम कहोगे, कि मैं पहेली खड़ी कर रहा हूँ। नानक के पास जो लोग थे, बिना गुरु के पा सकते थे क्योंकि वे तैयार थे गुरुप्रसाद को स्वीकार करने को। वे तैयार थे अपने को छोड़ने को। पाया तो बिना गुरु के ही जाता है। लेकिन गुरु की धारणा तुम्हारे अहंकार को गिराने में सहयोगी हो जाती है। तुम अकड़ से नहीं भरते। नहीं तो तुम कहोगे, "शीर्षासन करता हूँ तीन घण्टे। सुबह ध्यान करता हूँ।"

एक पत्नी मेरे पास आयी और उसने कहा, "मेरे पति आपके पास आते हैं, उन्हें कुछ समझाइए। अब हद हो गई।" सिक्ख हैं पति।

"क्या हुआ ?"

उसने कहा, "वे रात दो बजे से उठ जाते हैं और जपुजी का पाठ शुरू कर देते हैं। तो घर में सोना मुश्किल हो गया है। न बच्चे सो सकते हैं, न मैं सो सकती हूँ। और उनसे कुछ कहो, तो वे कहते हैं तुम सब उठ कर पाठ करो। तो क्या करना ?"

मैंने पति को बुलाया, वें मेरे पास आते थे। मैंने उनसे पूछा, कि कब उठ कर पाठ करते हो ? उन्होंने कहा, "सुबह प्रभातकाल में। बस, दो बजे सुबह उठ जाता हूँ।"

उनके लिए दो बजे सुबह है ! तो मैंने कहा, "तुम्हारी जो सुबह है, दूसरों के लिए बहुत खतरनाक हो गई।"

वे बोले, "वह उनकी गलती है। उन सबको उठना चाहिए। आलसी हैं, काहिल हैं, सुस्त हैं। और मैं तो सबकी सेवा ही करता हूँ। जोर से जपुजी का पाठ करता हूँ। मुहल्ले, पड़ोस के लोगों के कान में भी पड़ जाती है आवाज।

मैंने उनसे कहा कि "तुम ऐसा करो, थोड़ी कम सेवा करो मुहल्ले-पड़ोस की। तुम चार बजे......"

धीरे-धीरे लाना उचित है। अन्यथा जो चढ़े हुए लोग हैं उनको उतारना बहुत कठिन है। उन्होंने कहा, "ऐसा कभी नहीं हो सकता। आपके मुँह से... तुम मेरा धर्म छीनना चाहते हो ?"

अब यही उनकी अकड़ है, कि मुझ जैसा पाठ करनेवाला कोई नहीं। और वही अकड़ बाधा है। जीवन भर दोहराते रहो जपुजी को। असली सवाल तो अकड़ का मिटना है।

इसलिए नानक बार-बार कहेंगे, कि क्या तुम करते हो इससे कुछ भी न होगा, जब तक कि तुम न मिट जाओ। यह गुरु की धारणा स्वयं को मिटाने की बड़ी कीमिया है। क्योंकि करो तुम कुछ, कहते तुम हो, "गुरु प्रसाद से। उसकी कृपा से हो रहा है।"

"मैं कर रहा हूँ"—बस ! अड़चन खड़ी हो जायेगी। अगर तुम अपने मैं को बिना किसी के सहारे के गिरा दो, तो गुरु की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन करोड़ में कोई एक व्यक्ति बिना गुरु के गिरा पाता है। इसलिए वह अपवाद है। उसको हमें गिनती में लेना नहीं चाहिए। उसके कारण नियम बनाना नहीं चाहिए।

कभी-कभी ऐसा हो जाता हैं। कोई व्यक्ति बिना गुरु के गिरा देता है। पर इसके लिये बड़ी गहरी समझ चाहिये, जो तुम्हारे पास नहीं है। इसके लिये इतनी गहरी समझ चाहिये, कि वह अहंकार को आँख के सामने खड़ा करके देख ले। और सिर्फ देखने से अहंकार गिर जाय। उसके लिये वैसी आँख चाहिए जैसी शिव के पास है, कि कामदेव को देख लिया और कामदेव भस्म हो गये। इतनी अवेयरनेस, इतना होश चाहिए। कोई बुद्ध, कोई कृष्णमूर्ति कभी इतनी त्वरा से देख लेते हैं कि उनके देखने की तीव्रता में ही सब गिर जाता है। फिर दूसरा भाव पैदा नहीं होता। सब राख ही गिर गई। उसे ख्याल ही नहीं रहता कि मैंने कुछ किया है...हुआ !

लेकिन तुम कुछ भी करोगे, भीतर एक धुन बजती रहती है, मैंने किया है। भजन करो तो मैंने किया है, ध्यान करो तो मैंने किया है, पूजा करो तो मैंने किया है, तुम्हारा मैं तो हर तरफ से बनता है।

उस एक को हम छोड़ दें क्योंकि उस एक को बीच में लेने की कोई जरूरत नहीं है। यह पा लेगा। लेकिन वे जो करोड़ों लोग हैं, उन करोड़ों लोगों के लिये पाने का एक ही उपाय है कि वे भी करें साधना, भाव यही रखें कि गुरु की कृपा से, गुरु के प्रभाव से हुआ।

भारत में बड़ी पुरानी लोकोक्ति है। कि जब सतयुग था तब गुरु की इतनी जरूरत न थी। लेकिन कलियुग में गुरु की बड़ी जरूरत होगी। क्या कारण है ! हिन्दू किस हिसाब से बाँटते हैं संसार को ? सतयुग वे कहते हैं उस समय को जब लोग बड़े सचेत थे, बड़े सावधान थे। और कलियुग वे कहते हैं उस युग को, जब लोग बड़े सोये हुए हैं, मूर्च्छित हैं।

इसलिए बुद्ध का या महावीर का धर्म उतने काम का नहीं है आज, जितना नानक का धर्म। नानक का धर्म नवीनतम धर्म है हालाँकि उसको भी पाँच सौ साल हो गये। वह भी काफी पुराना हो गया है। और नया चाहिए क्योंकि बुद्ध

और महावीर जिनसे बात कर रहे थे वे हमसे ज्यादा सचेत लोग थे। वे हमसे ज्यादा प्रबुद्ध लोग थे। वे हमसे ज्यादा सरल लोग थे। फिर कृष्ण जिनसे बात कर रहे थे वे और भी सरल लोग थे।

जैसे हम पीछे जाते हैं, वैसे सरलता है। जैसे एक आदमी पीछे जाये तो अपने बचपन में सरल होता है, जवानी में थोड़ा कठिन हो जाता है, बुढ़ापे में तो बड़ा जटिल हो जाता है। बूढ़े आदमी से तो पार पाना ही मुश्किल है। उसे कुछ भी पता नहीं, लेकिन वह समझता है सब मुझे पता है। जिन्दगी की टक्करें खायी हैं, इधर-उधर गिरा है, कहता है अनुभव बहुत है। ठीकरे इकट्ठे किये हैं, लेकिन वह सोचता है बड़े अनुभव से ज्ञान इकट्ठा कर लिया है।

बच्चा सरल है। वह सतयुग है। बूढ़ा बहुत जटिल है। वह कलियुग है। लेकिन बूढ़े की मूर्छा बढ़ती ही जाती है। बढ़नी ही चाहिए क्योंकि मौत करीब आयी है। बच्चे का होश बहुत ताजा होता है क्योंकि जीवन का स्रोत बहुत करीब है। बच्चा अभी परमात्मा से निकली लहर की भाँति है। बूढ़ा धूल से भर गया, परमात्मा में गिरने के करीब है। बच्चा ताज़ा फूल है, बूढ़ा मुरझा गया। जाने के करीब है, जीवन-ऊर्जा क्षीण हो रही है।

कलियुग का अर्थ समय, जब अन्त करीब आ रहा है। जिन्दगी बूढ़ी हो गयी। उस कलियुग में तो गुरु के बिना बिलकुल न हो सकेगा क्योंकि तुम हर हालत में अपने अहंकार से भर जाओगे।

जब तुम छोटे-छोटे काम कर के अहंकार से भर जाते हो, तो तुम साधना करके कैसे न भरोगे। तुमने एक छोटासा मकान बना लिया है तो तुम अकड़े फिरते हो। कि तुमने एक तिजोड़ी भर ली, तुम अकड़े फिरते हो। जब तुम परम धन की खोज में जाओगे तो तुम्हारी अकड़ तो बहुत हो जायेगी।

तो जो आदमी मंदिर जाता है, मस्जिद जाता है, उसकी अकड़ देखो। सबकी तरफ देखता है, कि तुम सब नरक में पड़ोगे, सड़ोगे। मैं मंदिर जाता हूँ रोज। तुम सब भ्रष्ट, पापी। जो आदमी राम नाम लेता है वह समझता है, कि बस ! स्वर्ग का द्वार उसके लिये निश्चित हो गया। और शेष सब नरक में पड़ने-वाले हैं।

मूर्छा जितनी होगी, उतनी गुरु की जरूरत है। इसको तुम ऐसा समझो जितनी तुम्हारे जीवन में निद्रा हो, उतनी गुरु की ज़रूरत। जितनी तुम्हारे जीवन में जागृति हो इतना गुरु कम जरूरी; अगर तुम परिपूर्ण जागृत हो, गुरु की बिलकुल ज़रूरत नहीं। अगर तुम बिलकुल सोये हुए हो तो तुम अपने आप जागोगे कैसे ? कोई तुम्हें हिलायेगा, तो ही तुम जाग सकते हो। तब भी डर है, कि तुम करवट ले कर सो जाओगे।

वह गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।

"आदि सचु, जुगादि सचु, है भी सचु नानक होसी भी सचु।"

वह आदि में सत्य है, युगों के आरंभ में सत्य है, अभी सत्य है। नानक कहते हैं, वह सदा सत्य है। भविष्य में भी सत्य है।

सत्य और असत्य की यही परिभाषा है। असत्य वह जो कभी नहीं था, अब है, और कभी फिर नहीं हो जायेगा। असत्य का अर्थ है दो छोरों पर जो नहीं, और बीच में है ! सपना... सुबह तुम उठे तब खो गया, रात जब तुम सोये तब नहीं था। इसलिये सुबह तुम कहते हो सपना झूठा था, सच नहीं; क्योंकि साँझ नहीं था। सुबह फिर नहीं है।

तुम्हारा यह शरीर एक दिन नहीं था। एक दिन फिर नहीं हो जायेगा। यह शरीर झूठा है। क्रोध आया; एक क्षण पहले नहीं था, और घड़ी भर बाद फिर चला जायेगा। यह क्रोध सपना है। यह सच नहीं है। जो सदा है, वही सत्य है।

और तुम इस धारणा को गहरे ले जाओ तो तुम्हारे जीवन में रूपांतरण हो जायेगा। उससे बहुत ज्यादा ग्रसित मत होना जो बदलता है। तुम उसीकी तलाश करना जो अनबदला है; सदा स्थायी और स्थिर है।

कौन है तुम्हारे भीतर जो कभी नहीं बदलता ? उसको ही खोजो। ज़रूर वह तुम्हारे भीतर है। सब बदलाहट उसी पर होती है। जैसे गाड़ी का चाक चलता है। वह एक कील पर चलता है, जो ठहरी रहती है। चाक चलता रहता है, कील ठहरी रहती है। तुम कील को अलग कर लो, चाक फौरन गिर जायेगा। जो परिवर्तन हो रहा है वह भी शाश्वत के ऊपर हो रहा है। कील आत्मा की ठहरी हुई है। चक्र शरीर का घूम रहा है। जैसे ही कील अलग हुई, चाक गिर जाता है।

नानक कहते हैं,

"आदि सचु, जुगादि सचु, है भी सचु, नानक होसी भी सचु।"

वही सत्य है। वही एक; क्योंकि वह पहले भी था, अभी भी है, कल भी होगा, सदा होगा। और शेष सब सपना है। यह एक वचन तुम्हारे मन में गहरा बैठ जाय–

जब क्रोध आये, तब दोहराना अपने मन में, 'आदि सचु, जुगादि सचु, है भी सचु, नानक होसी भी सचु'। घृणा आये, लोभ आये, दोहराना।

और ध्यान रखना कि जो अभी नहीं था, अभी हुआ, वह सपना है। खो जायेगा। इसमें ज्यादा ग्रसित होने की ज़रूरत नहीं है। साक्षीभाव रखना। धीरे-धीरे तुम

पाओगे, कि व्यर्थ अपने आप गिरने लगा क्योंकि तुम्हारा उससे संबंध टूट गया और सार्थक का जन्म होने लगा। शाश्वत उठने लगा, संसार खोने लगा।

"सोचे सोचि न होवई, जे सोची लखवार।
चुपै चुप न होवई जो लाइ रहा लिवतार।
भुखिया भूख न उतरी, जे बंना पुरीया भार।
सहस सियाणपा लख होहि।
त इक न चले नालि।
किव सचियारा होईए।
किव कूड़ै तुटै पालि॥
हुकमि रजाई चलना, नानक लिखिया नालि।

यह बड़ा कीमती, बहुमूल्य सूत्र है। नानक का सब सार।

सोच कर भी हम उसे सोच नहीं सकते। यद्यपि हम लाखों बार सोच सकते हैं। सोच-सोच कर उसे कभी किसी ने पाया नहीं। सोच-सोच कर ही तो हमने उसे गँवाया है। जितना हम सोचते हैं उतना ही तो विचारों में हम खो जाते हैं।

परमात्मा कोई विचार नहीं है। वह कोई तर्क की निष्पत्ति नहीं है। वह कोई मस्तिष्क का निष्कर्ष नहीं है। परमात्मा तो सत्य है। तुम्हें सोचने का सवाल नहीं। देखना है; सोचने में क्या होगा? सोचने में तो भटक जाओगे। आँख खोलनी है। और अगर आँखें विचारों से भरी हैं, तुम्हारी आँखें अन्धी रहेंगी। आंख निर्विचार चाहिये, तभी दर्शन उपलब्ध होता है।

जिसको झेन फकीर कहते हैं, "नो माईन्ड।" जिसको कबीर कहते हैं, "उन्मनी दशा"; जिसको बुद्ध कहते हैं, "चित्त का खो जाना"। जिसको पतंजलि ने कहा है, "निर्विकल्प समाधि"। सब विकल्प और विचार जहाँ खो गये वही नानक कह रहे हैं।

"सोच-सोच कर भी हम उसे सोच नहीं सकते, यद्यपि हम लाखों बार सोचते रहें। चुप होने से भी उस मौन को उपलब्ध नहीं हुआ जा सकता है। यद्यपि हम लगातार ध्यान में रह सकते हैं।"

क्यों सोच-सोच कर उसे पाया नहीं जा सकता? चेष्टा कर-कर के मौन साधा नहीं जा सकता। क्यों?

क्योंकि जितनी तुम चेष्टा करोगे, उतना ही तुम पाओगे, मौन असम्भव हो जाता है। कुछ चीजें हैं, जो चेष्टा से नहीं घटतीं। जैसे नींद नहीं आती किसीको, तो कितनी ही चेष्टा करे नींद नहीं आयेगी। सच तो यह है जितनी चेष्टा करेगा उतनी नींद मुश्किल हो जायेगी क्योंकि नींद का अर्थ ही यह है कि तुम सब चेष्टा छोड़ दो, तभी आयेगी। तुम कोशिश जारी रखोगे, कोशिश तुम्हें जगाये रखेगी। जागने से कहीं नींद आयी है? कोई उपाय नींद लाने का नहीं क्योंकि नींद आती तब है, जब तुम निरुपाय हो जाते हो। जब तुम कोई उपाय नहीं करते हो। पड़े हो बिस्तर पर निरुपाय, तभी नींद आ जाती है।

तुम अपने को ज़बरदस्ती कैसे मौन करोगे? तुम बैठ सकते हो। शरीर को साध सकते हो पत्थर की मूर्ति की तरह; भीतर मन उबलता रहेगा।

नानक एक मुसलमान नवाब के घर मेहमान थे। नानक को क्या हिन्दू क्या मुसलमान! जो ज्ञानी है, उसके लिए कोई संप्रदाय की सीमा नहीं। उस नवाब ने नानक से कहा कि अगर तुम सच ही कहते हो, कि न कोई हिन्दू न कोई मुसलमान, तो आज शुक्रवार का दिन है, हमारे साथ नमाज़ पढ़ने चलो। नानक राज़ी हो गये। पर उन्होंने कहा, अगर तुम पढ़ोगे तो हम भी पढ़ेंगे। नवाब ने कहा, यह भी कोई शर्त की बात हुई? हम तो नमाज पढ़ने जा रहे हैं।

पूरा गाँव इकट्ठा हो गया। मुसलमान, हिन्दू सब इकट्ठे हो गये। हिन्दुओं में तहलका मच गया। नानक के घर के लोग भी पहुँच गये, कि यह क्या कर रहे हो? लोगों को लगा कि नानक मुसलमान होने जा रहे हैं। लोग अपने भय से ही दूसरों को भी तौलते हैं।

नानक मस्जिद गये। नमाज पढ़ी गई। नवाब बहुत नाराज हुआ। बीच-बीच में लौट-लौट कर देखता था कि नानक न तो झुके, न नमाज पढ़ी। बस! खड़े हैं। जल्दी-जल्दी नमाज पूरी की क्योंकि क्रोध में कहीं नमाज़ हो सकती है! करके किसी तरह पूरी, लोग नानक पर टूट पड़े। और उन्होंने कहा, "तुम धोखेबाज़ हो। कैसे साधु, कैसे सन्त! तुमने वचन दिया नमाज़ पढ़ने का लेकिन पूरी की नहीं।"

नानक ने कहा "वचन दिया था, शर्त आप भूल गये। मैंने कहा था, कि अगर आप नमाज़ पढ़ेंगे तो मैं पढ़ूंगा। आपने नहीं पढ़ी तो मैं कैसे पढ़ता?"

नवाब ने कहा, "क्या कह रहे हो? होश में हो? इतने लोग गवाह हैं, कि हम नमाज़ पढ़ रहे थे।"

नानक ने कहा, "इनकी गवाही मैं नहीं मानता क्योंकि मैं आपको देख रहा था, भीतर क्या चल रहा है। आप काबुल में घोड़े खरीद रहे थे।"

नवाब थोड़ा हैरान हुआ; क्योंकि खरीद वह घोड़े ही रहा था। उसका अच्छे से अच्छा घोड़ा मर गया था उसी दिन सुबह। वह उसकी ही पीड़ा से

भरा था। नमाज़ क्या खाक ! वह यही सोच रहा था कि कैसे काबुल जाऊँ, कैसे बढ़िया घोड़ा खरीदूं। क्योंकि उसके लिये घोड़ा बड़ी शान थी, इज्जत थी।

और नानक ने कहा, "यह मौलवी है तुम्हारा, जो पढ़वा रहा था नमाज, यह खेत में अपनी फसल काट रहा था।" और यह बात सच थी। मौलवी ने भी कहा, कि बात तो यह सच है। फसल पक गयी है और चिन्ता मन पर सवार है।

नानक ने कहा, "अब तुम बोलो, तुमने नमाज़ पढ़ी, जो मैं साथ दूं ?"

तुम ज़बरदस्ती नमाज पढ़ लो, तुम जबरदस्ती ध्यान कर लो, तुम जबरदस्ती पूजा, प्रार्थना कर लो, क्या तुम कर रहे हो इसका कोई मूल्य नहीं है। क्या तुम्हारे भीतर चल रहा है ? तुम पत्थर की मूर्ति की तरह बैठ जाओ, इससे क्या होगा ? शरीर को साध लो, इससे क्या मन सधेगा ? मन में तो वही चलेगा जो चलता रहा था। और भी ज़ोर से चलेगा। जब शरीर काम में लगा था तो शक्ति बँटी थी। अब शरीर बिलकुल निष्क्रिय है, सारी शक्ति मन को मिल गई। अब मन में और ज़ोर से विचार उठेंगे।

इसलिये लोग जब भी ध्यान करने बैठते हैं तब ज्यादा विचार उठते हैं। पूजा करने बैठते हैं तब बाज़ार का ख्याल आता है। जब भी मंदिर जाते हैं, घंटी वगैरह बजाते हैं, तब पाते हैं कि न मालूम मन में क्या खराबी है ! ऐसे सब ठीक चलता है। सिनेमा में बैठते हैं, मौन आ जाता है। थोड़ी शान्ति हो जाती है। लेकिन मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में बिलकुल शान्ति नहीं। बात क्या है ?

सिनेमा तुम्हारी वासनाओं से संगत है। वहाँ वही जगाया जा रहा है, जो तुम हो। वहाँ वही उभारा जा रहा है, जो तुम्हारे भीतर भरा है। वही कूड़ा-करकट, वही कचरा ! तुमसे तालमेल बैठ जाता है। मंदिर में कुछ ऐसी पुकार की जा रही है, जिससे तुम्हारा कोई तालमेल नहीं। वहाँ सब गड़बड़ हो जाती है।

नानक कहते हैं, चुप होने से भी कुछ न होगा। उस मौन को नहीं पाया जा सकता। यद्यपि हम लगातार ध्यान में रह सकते हैं। बैठे रहो दिनरात ! कुछ भी न होगा।

'भूखों की भूख न जायेगी यद्यपि हम पूड़ियों के पहाड़ ही क्यों न जमा कर लें'। क्योंकि यह भूख पूड़ियों से भरने वाली नहीं है यह जो ध्यान की भूख है, यह जो परमात्मा की भूख है, यह कोई साधारण भूख नहीं है। संसार की कोई भी चीज उसे बुझा न सकेगी। यह तृषा अनूठी है। और परमात्मा ही उतरे धार बन कर तो ही बुझ सकती है।

किस भाँति हम सच्चे बनें ? किस भाँति झूठ के परदे का नाश हो?

नानक कहते हैं कि उसके हुक्म, उसकी मर्जी के अनुसार। जैसा उसने नियत कर रखा है, लिख रखा है, उसके अनुसार चलने से ही यह हो सकता है। यह वचन अति-ध्यानपूर्वक समझने का है।

"हुकमि रजाई चढ़ना, नानक लिखिया नालि।"

नहीं, तुम्हारे करने से कुछ भी न होगा। तुम जो भी करोगे, तुम ही करोगे। तुम सच भी बोलोगे तो तुम्हारे झूठे व्यक्तित्व से ही सच निकलेगा। वह सच भी झूठा हो जायेगा। तुम सच लाओगे भी कहां से ? तुम बिलकुल झूठे हो। इससे कोई फर्क न पड़ेगा।

नानक एक गाँव में ठहरे थे। गाँव में जो प्रधान था गाँव का, उसने निमंत्रण दिया था सारे गाँव को भोज का। कोई यज्ञ चल रहा था। नानक को भी बुलाया था। नानक गये नहीं। एक गरीब आदमी के घर में ठहरे थे। उसका नाम था लालू। गरीब बढ़ई था। उसकी कोई हैसियत न थी। रूखी-सूखी रोटियाँ थीं।

और गाँव के अमीर ने निमंत्रण दिया था। अनेक बार आदमी आये बुलाने। नहीं जब माना, अमीर खुद आया। नानक को ले कर गया। नानक ने कहा, तुम चाहते हो तो चलूँगा। उसने पूछा महल में ले जा कर, मेरे शुद्धतम भोजन को इन्कार करते हो और इस गरीब का अशुद्ध भोजन—वह ब्राह्मण भी नहीं है। शुद्ध ब्राह्मण ने स्नान करके गंगा जल से इस सबको तैयार किया है। पवित्रतम ! और तुम इसे इन्कार करते हो ?

नानक ने कहा कि तुम अब जिद ही करते हो, तो कहूँ। तुम अपना भोजन ले आओ। लालू भी पीछे-पीछे चला आया था। उसको कहा, तू भी अपनी सूखी रोटी ले आ।

कहते हैं–प्रतीक कहानी है–कि नानक ने एक हाथ में लालू की रोटी और एक हाथ में हलवा-पूड़ी, उस धनपति की ले कर निचोड़ी। तो लालू की सूखी रोटी से तो दूध की धार बही और दूसरे हाथ से लहू की बूँदें टपकीं।

नानक ने कहा तुम अशुद्ध हो, तो तुम ब्राह्मणों से भोजन बनाओ, कि गंगा के पानी को बुलवाओ, कि एक-एक गेहूँ को साफ कर के बनवाओ, इससे कोई फर्क न पड़ेगा। तुम्हारा सारा जीवन शोषण, बेईमानी, चोरी, झूठ का है। तुम्हारी हर रोटी में खून छिपा है।

खून निकला या नहीं, यह सवाल महत्त्वपूर्ण नहीं है लेकिन बात तो सच है। तुम कैसे सच्चे होओगे ? तुम हो तो सच्चे होओगे न ! कौन उपाय करेगा ?

तो नानक कहते हैं, तुम्हारे किये कुछ भी न होगा। तुम बेईमान हो, तो तुम्हारी सचाई में भी बेईमानी घुस जायेगी। तुम सच भी ऐसा बोलोगे कि तुम्हारी बेईमानी को उससे फायदा होता हो। तुम सच भी इस ढंग से बोलोगे कि दूसरे को दुख पहुँचे। तुम ऐसे सच की तलाश करोगे जिससे हृदय में छुरा लग जाय। तुम झूठ से लोगों को नुकसान पहुँचाते थे, तुम सच से भी नुकसान पहुँचाओगे। तुम जो भी करोगे वह गलत होगा क्योंकि तुम गलत हो।

उपाय क्या है ? तो नानक कहते हैं, उपाय एक ही है। उसके हुक्म और उसकी मर्जी के अनुसार सब उसपर छोड़ दो। जैसा वह जिलाये, जियो। जैसा वह कराये, करो। जहाँ वह ले जाये, जाओ। उसका हुक्म तुम्हारी एक मात्र साधना हो जाय। तुम अपनी मर्जी हटाओ। उसकी मर्जी को आने दो। तुम स्वीकार कर लो जीवन जैसा हो। परमात्मा ने दिया है, वही जाने। तुम इन्कार मत करो। दुःख आये तो दुःख को भी स्वीकार कर लो, कि उसकी मर्जी। और अहोभाव रखो; धन्यभाव रखो कि अगर उसने दुख दिया है तो जरूर कोई राज होगा। कोई अर्थ होगा। कोई रहस्य होगा। तुम शिकायत मत करो। तुम धन्यवाद से ही भरे रहो। वह तुम्हें जैसा रखे। गरीब, तो गरीब। अमीर, तो अमीर। सुख में, तो सुख में। दुःख में, तो दुख में। एक बात तुम्हारे भीतर सतत बनी रहे, कि मैं राजी हूँ। तेरा हुक्म मेरा जीवन है।

और तुम अचानक पाओगे, कि तुम शान्त होने लगे। जो लाख ध्यान में बैठ कर नहीं होता था उसकी मर्जी पर छोड़ देने से होने लगा। हो ही जायगा। क्योंकि चिन्ता का कोई कारण न रहा।

चिन्ता क्या है ? चिन्ता यह है कि जैसा हो रहा है उससे अन्यथा होना चाहिए। बेटा मर गया, नहीं मरना था; यह चिन्ता है। दिवाला निकल गया, नहीं निकलना था; यह चिन्ता है। जैसा हुआ, ऐसा नहीं होना था और जैसा हो रहा है वैसा नहीं होना चाहिए। तुम अपनी मर्जी को थोपने की कोशिश कर रहे हो जीवन पर। यही तुम्हारी चिन्ता है। फिर इससे तुम परेशान हो।

फिर इस परेशानी को भीतर ढोते हुए तुम ध्यान करने बैठते हो। तब तुम खेत में फसल काटोगे, काबुल में घोड़ा खरीदोगे। वह चिन्ता जो तुम्हारी थी, पीछे रहेगी। वह तुम्हारे ध्यान को भी विकृत कर देगी।

तब तुम कैसे शान्त हो सकोगे ? शान्ति का एक ही गुर है। और अगर यह सूत्र तुम्हारी समझ में आ जाय, तो पूरब की सारी खोज समझ में आ सकती

है। पूरब की सारी खोज यह है, लाओत्से से लेकर नानक तक, कि जो हो रहा है उसे स्वीकार कर लो।

इसका पुराना नाम भाग्य है। वह शब्द बिगड़ गया है। सब शब्द बहुत दिन उपयोग करने से बिगड़ जाते हैं क्योंकि गलत लोग उपयोग करते हैं, गलत अर्थ जुड़ जाते हैं। अब तो किसीकी निन्दा करनी हो तो कह दो, कि भाग्यवादी है। लेकिन भाग्य—यही तो अर्थ है भाग्य का।

नानक कहते हैं, "**हुकमि रजाई चढ़ना नानक लिखिया नालि।**"

जो लिखा है वह होगा। जो उसने लिख रखा है वही होगा। अपनी तरफ से कुछ भी करने का उपाय नहीं है। कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। फिर चिन्ता किसको ? फिर बोझ किसको ? जब तुम बदलना ही नहीं चाहते कुछ, जब तुम उससे राजी हो, उसकी मर्जी में राजी हो, जब तुम्हारी अपनी कोई मर्जी नहीं, तब कैसी बेचैनी ! तब कैसा विचार ! तब सब हलका हो जाता है। पंख लग जाते हैं। तुम उड़ सकते हो उस आकाश में, जिस आकाश का नाम है—"इक ओंकार सतनाम।"

नानक की एक ही विधि है। और वह विधि है, परमात्मा की मर्जी। वह जैसा करवाये। वह जैसा रखे।

ऐसा हुआ कि बल्ख का एक नवाब था, इब्राहीम। उसने बाजार में एक गुलाम खरीदा। गुलाम बड़ा स्वस्थ, तेजस्वी था। इब्राहीम उसे घर लाया। इब्राहीम उसके प्रेम में ही पड़ गया। आदमी बड़ा प्रभावशाली था। इब्राहीम ने पूछा, "तू कैसे रहना पसन्द करेगा ?" तो उस गुलाम ने मुस्कुरा कर कहा, "मालिक की जो मर्जी। मेरा कैसा, मेरे होने का क्या अर्थ ? आप जैसा रखेंगे वैसा रहूँगा।" इब्राहीम ने पूछा, "तू क्या पहनना, क्या खाना पसन्द करता है ?" उसने कहा, "मेरी क्या पसन्द ? मालिक जैसा पहनाये, पहनूंगा। मालिक जैसा खिलाये, खाऊँगा।" इब्राहीम ने पूछा, कि तेरा नाम क्या है ? क्या नाम ले कर तुझे पुकारें ? उसने कहा, "मालिक की मर्जी। मेरा क्या नाम ? दास का कोई नाम होता है ? जो नाम आप दें।"

कहते हैं, इब्राहीम के जीवन में क्रान्ति घट गई। उठ कर उसने पैर छुए इस गुलाम के और कहा कि तूने मुझे राज बता दिया जिसकी मैं तलाश में था। अब यही मेरा और मेरे मालिक का नाता। तू मेरा गुरु है।

तब से इब्राहीम शान्त हो गया। जो बहुत दिनों के ध्यान से न हुआ था, जो बहुत दिन नमाज पढ़ने से न हुआ था वह उस गुलाम के सूत्र से मिल गया।

"**हुकमि रजाई चढ़ना, नानक लिखिया नालि।**"

सोचो, थोड़ा प्रयोग करो। जैसा रखे, रहो। अपनी तरफ से तुमने बहुत कोशिश करके भी देख ली, क्या हुआ ? तुम वैसे के वैसे हो। जैसा उसने भेजा था उससे विकृत भला हो गये हो, उससे सुकृत नहीं हुए हो। जैसे आये थे बचपन में भोले-भाले, उतना भी नहीं बचा हाथ में। स्लेट गंदी हो गई, तुमने सब लिख डाला। पाया क्या है ? सिवाय दुःख, तनाव, संताप के क्या तुम्हारे हाथ लगा है ?

थोड़े दिन नानक की सुन कर देखो। छोड़ दो उस पर। इसलिये नानक कहते हैं, न जप, न तप, न ध्यान, न धारणा। एक ही साधना है–"उसकी मर्जी"।

जैसे ही तुम्हें ख्याल आयेगा उसकी मर्जी का, भीतर सब हलका हो जाता है। एक गहन शांति, एक वर्षा होने लगती है भीतर, जहाँ कोई तनाव नहीं, कोई चिन्ता नहीं।

पश्चिम में इतनी चिन्ता और तनाव है। पूरब से बहुत ज्यादा है हालाँकि पूरब बहुत गरीब है, दुखी है, बीमार है, रुग्ण है। भोजन नहीं, कपड़े नहीं, छप्पर नहीं। पश्चिम में सब है, फिर भी चिन्ता, तनाव ! इतना तनाव है, कि करीब–करीब चार आदमी में तीन आदमी विक्षिप्त हालत में हो गये हैं।

क्या कारण है ? क्योंकि पश्चिम ने अपनी मर्जी चलाने की कोशिश की है। आदमी को पश्चिम में भरोसा है, हम सब कर लेंगे। भगवान के कोई सहारे की जरूरत नहीं। भगवान है ही नहीं। आदमी सब कर लेगा।

उसने बहुत कुछ कर भी लिया है। लेकिन आदमी बिलकुल खो गया है, पागल हुआ जा रहा है। बाहर बहुत कुछ कर लिया, भीतर सब रुग्ण हो गया। अगर तुम्हारे जीवन में यह सूत्र उतर जाय तो कुछ करने को नहीं बचता। जैसा हो रहा है होने दो।

तुम तैरो मत, बहो। नदी से लड़ो मत। नदी दुश्मन नहीं है, मित्र है। तुम बहो। लड़ने से दुश्मनी पैदा होती है। और जब तुम उलटी धार तैरने लगते हो तो नदी तुमसे संघर्ष करने लगती है। तुम सोचते हो नदी तुमसे दुश्मनी ले रही है। नदी से क्या दुश्मनी ? नदी को तुम्हारा पता भी नहीं। तुम अपने ही हाथ उलटी धारा बह रहे हो। तुम्हारी मर्जी, यानी उलटी धारा। अहंकार, यानी उलटी धारा।

'उसकी मर्जी'—तुम धारा के साथ एक हो गये। अब नदी जहाँ ले जाय वही मंजिल। जहाँ लगा दे वही किनारा है। डुबा दे, तो वह भी मंजिल। फिर कैसी चिन्ता, फिर कैसा दुःख ! तुमने दुःख की जड़ काट दी।

बड़ा कीमती यह सूत्र है। नानक कहते हैं, उसके हुक्म और उसकी मर्जी के अनुसार। जैसा नियत कर रखा है उसने, लिख रखा है उसके अनुसार चलने ही यह हो सकता है।

तो नानक ने अहंकार के सब द्वार बन्द कर दिये। पहले तो, गुरुप्रसाद। कि तुम जो भी करो, जो भी उपलब्धि हो, वह गुरु की कृपा। और फिर जो भी हो, जीवन की धारा जहाँ ले जाय, उसका हुक्म। फिर कुछ और करने का बचता नहीं।

और ज्यादा देर न लगेगी कि तुम्हें भी पता लग जाय–

इक ओंकार सतिनाम
करता पुरखु निरभउ निरवैर
अकाल मूरति अजूनि सैभं गुरु प्रसादि।
आदि सचु जुगादि सचु, है भी सचु नानक होसी भी सचु।

सोचे सोचि न होवई जो सोचि लखबार।
चुपै चुप न होवई जे लाई रहा लिवतार।
भुखिया भुख न उतरी जे बंना पुरिया भार।
सहस सियाणपा लख होहि त इक न चले नालि।
किव सचियारा होईए। किव कूड़ै तुटै पालि ॥
हुकमि रजाई चलणा, नानक लिखिआ नालि।

० ० ०

हुकमी हुकमु चलाए राह

प्रवचन २, दिनांक २२-११-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी २ :

हुकमी होव न आकार हुकमी न कहिया जाय।
हुकमी होत न जीअ हुकमी मिलै बड़िआई।
हुकमी उत्तम नीचु हुकमी लिखि दुःख सुख पाईअहि।
इकना हुकमी बक्शीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि।
हुकमी अन्दर सभुको—बाहर हुकुम न कोय।
"नानक" हुकमी जे बुझे त हउ में कहे न कोय।

पउड़ी ३ :

गावै को ताणु होवै किसै ताणु।
गावै को दाति जाणै निसाणु।।
गावै को गुण वड़िआइया चारु।
गावै को साजि करे तनु खेह।
गावै को जीअ लै फिरि देह।।
गावै को जापै दिसै दूरि।
गावै को वेखै हादरा हदूरि
कथना कथी न आवै तोटि।
कथि कथि कथी कोटि कोटि कोटि।।
देदा दे लैदे थकि पाहि।।
जुगा जुगन्तरि खाहा खाहि।।
हुकमी हुकमु चलाए राह।
"नानक" विगसै बेपरवाह।।

जीवन के जीने के दो ढंग हैं। एक ढंग है संघर्ष, एक ढंग है समर्पण का। संघर्ष का अर्थ है मेरी मर्जी समग्र की मर्जी से अलग। समर्पण का अर्थ है, मैं समग्र का एक अंग हूँ। मेरी मर्जी के अलग होने का कोई सवाल नहीं। मैं अगर अलग हूँ, संघर्ष स्वाभाविक है। मैं अगर इस विराट् के साथ एक हूँ, समर्पण स्वाभाविक है। संघर्ष लायेगा तनाव, अशान्ति, चिन्ता। समर्पण : शून्यता, शान्ति आनन्द और अन्ततः परम ज्ञान। संघर्ष से बढ़ेगा अहंकार, समर्पण से मिटेगा। संसारी वही है, जो संघर्ष कर रहा है। धार्मिक वही है, जिसने संघर्ष छोड़ा और समर्पण किया। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे जाने से धर्म का कोई संबंध नहीं। अगर तुम्हारी वृत्ति सघर्ष की है, अगर तुम लड़ रहे हो परमात्मा से, अगर तुम अपनी इच्छा पूरी करना चाहते हो—चाहे प्रार्थना से ही सही, पूजा से ही सही, अगर तुम्हारी अपनी कोई इच्छा है तो तुम अधार्मिक हो।

जब तुम्हारी अपनी कोई चाह नहीं, जब उसकी चाह ही तुम्हारी चाह है। जहाँ वह ले जाये वही तुम्हारी मंजिल, तुम्हारी अलग कोई मंजिल नहीं। जैसा वह चलाये वही तुम्हारी गति, तुम्हारी अपनी कोई आकांक्षा नहीं। तुम निर्णय लेते ही नहीं। तुम तैरते भी नहीं, तुम तिरते हो।

आकाश में कभी देखें! चील बहुत ऊँचाई पर उठ जाती है। फिर पंख भी नहीं हिलाती। फिर पंखों को फैला देती है और हवा में तिरती है। वैसी ही तिरने की दिशा जब तुम्हारी चेतना में आ जाय, तब समर्पण। तब तुम पंख भी नहीं हिलाते। तब तुम उसकी हवाओं पर तिर जाते हो। तब तुम निर्भार हो जाते हो। क्योंकि भार संघर्ष से पैदा होता है। भार प्रतिरोध से पैदा होता है।

जितना तुम लड़ते हो उतने नीचे गिर जाते हो। जितने तुम लड़ते नहीं उतन हलके हो जाते हो। जितने हलके होते हो उतने ऊँचे उठ जाते हो।

और अगर तुम पूरी तरह संघर्ष छोड़ दो तो तुम्हारी वही ऊँचाई है, जो परमात्मा की। ऊँचाई का एक ही अर्थ है— निर्भार हो जाना। और अहंकार पत्थर की तरह लटका है तुम्हारे गले में। जितना तुम लड़ोगे उतना ही अहंकार बढ़ेगा।

ऐसा हुआ, कि नानक एक गाँव के बाहर आकर ठहरे। वह गाँव सूफियों का गाँव था। उनका बड़ा केन्द्र था। वहाँ बड़े सूफी थे, गुरु थे। पूरी बस्ती ही सूफियों की थी। खबर मिली सूफियों के गुरु को, तो उसने सुबह ही सुबह नानक के लिये एक कप में भर कर दूध भेजा। दूध लबालब था। एक बून्द भी और न समा सकती थी। नानक गाँव के बाहर ठहरे थे एक कुएँ के तट पर। उन्होंने पास की झाड़ी से एक फूल तोड़ कर उस दूध की प्याली में डाल दिया। फूल तिर गया। फूल का वजन क्या ! उसने जगह न माँगी। वह सतह पर तिर गया। और प्याली वापिस भेज दी। नानक का शिष्य मर्दाना बहुत हैरान हुआ, कि मामला क्या है? उसने पूछा कि मैं कुछ समझा नहीं। क्या रहस्य ? यह हुआ क्या ?

नानक ने कहा, कि सूफियों के गुरु ने खबर भेजी थी कि गाँव में बहुत ज्ञानी हैं, अब और जगह नहीं। मैंने खबर वापिस भेज दी है, कि मेरा कोई भार नहीं है। मैं जगह माँगूँगा ही नहीं। फूल की तरह तिर जाऊँगा।

जो निर्भार है वही ज्ञानी है। जिसमें वजन है, अभी अज्ञानी है। और जब तुमसे वजन आता है तब तुमसे दूसरे को चोट पहुँचती है। जब तुम निर्भार हो जाते हो, तब तुम्हारे जीवन का ढंग ऐसा होता है कि उस ढंग से चोट पहुँचना असंभव हो जाता है। अहिंसा अपने आप फलती है। प्रेम अपने आप लगता है। कोई प्रेम को लगा नहीं सकता और न कोई करुणा को आरोपित कर सकता। अगर तुम निर्भार हो जाओ, ये सब घटनाएँ अपने से घटती हैं। जैसे आदमी के पीछे छाया चलती है वैसे भारी आदमी के पीछे घृणा, क्रोध, वैमनस्य, हत्या, चलती है। हलके मनुष्य के पीछे प्रेम, करुणा, दया, प्रार्थना अपने आप चलती है। इसलिये मौलिक सवाल भीतर से अहंकार को गिरा देने का है।

कैसे तुम गिराओगे अहंकार को? एक ही उपाय है। वेदों में उस उपाय को "ऋत" कहा है। लाओत्से ने उस उपाय को "ताओ" कहा है। बुद्ध ने "धम्म", महावीर ने "धर्म", नानक का शब्द है "हुक्म", उसकी आज्ञा। उसकी आज्ञा से जो चलने लगा, जो अपनी तरफ से हिलता-डुलता भी नहीं है, जिसका अपना कोई भाव नहीं, कोई चाह नहीं, जो अपने को आरोपित नहीं करना चाहता, वह उसके हुक्म में आ गया। यही धार्मिक आदमी है।

और जो उसके हुक्म में आ गया, सब पा गया। कुछ पाने को बचता नहीं। क्योंकि उसके हुक्म को मानना, उसके हृदय तक पहुँच जाने का द्वार है। अपने को ही मानना, उससे दूर हटते जाना है। अपने को मानना है कि तुमने परमात्मा की तरफ पीठ कर ली। उसकी आज्ञा को माना कि तुम्हारा मुख परमात्मा की तरफ हो गया। तुम सूरज की तरफ पीठ कर के जीवन भर भागते रहो तो भी अन्धेरे में रहोगे। और तुम सूरज की तरफ मुँह इसी क्षण कर लो, तो जन्मों-जन्मों का अन्धेरा कट जायेगा।

परमात्मा के सम्मुख होने का एक ही उपाय है और वह यह है, कि तुम अपनी मर्जी छोड़ दो। तुम तैरो मत, बहो। तुम तिरो; वह काफी है। तुम अकारण ही बोझ ले रहे हो। तुम्हारी सफलताएँ, असफलताएँ, तुम्हारे अहंकार के ही रोग हैं।

तुम्हारी हालत वैसी है, जैसा मैंने सुना है, एक रथ गुजर रहा था और एक मक्खी उसके पहिये की कील पर बैठी थी। बड़ी धूल उठती थी। रथ बड़ा था। बारह घोड़े जुड़े थे। बड़ी भयंकर आवाज, बड़ी धूल उड़ रही थी। उस मक्खी ने आसपास देखा और कहा, "आज मैं बड़ी धूल उड़ा रही हूँ।" रथ से उड़ रही है धूल। मक्खी कील पर बैठी है, पर सोच रही है, "आज मैं बड़ी धूल उड़ा रही हूँ।" और जब इतनी धूल उड़ा रही हूँ तो इतनी ही बड़ी हूँ।

तुम सफल भी होते हो उसके ही कारण। जो भी तुम पाते हो उसके ही कारण। तुम रथ पर बैठी एक मक्खी से ज्यादा नहीं हो। भूल कर यह मत सोचना, कि इतनी धूल मैं उड़ा रहा हूँ। धूल है तो उसके रथ की है। यात्रा है तो उसके रथ की है। लेकिन तुम अपने को बीच में मत लेना।

तुमने सुनी होगी बात उस छिपकली की, कि मित्रों ने उसे निमंत्रित किया था और कहा कि आओ आज थोड़ा जंगल में घूम आयें। उस छिपकली ने कहा जाना मुश्किल है। क्योंकि इस छप्पर को कौन सम्हालेगा? छप्पर गिर जायेगा तो जिम्मेवारी मेरे ऊपर होगी। छिपकली सोचती है कि छप्पर को महल के वही सम्हाले हुए है। छिपकली को लगता भी होगा।

तुमने सुनी होगी कहानी, कि एक बूढ़ी औरत के पास एक मुर्गा था। वह सुबह बाँग देता था तभी सूरज उगता था। बूढ़ी अकड़ गई। और उसने गाँव के लोगों को खबर दी, कि मुझसे जरा सोच-समझ कर व्यवहार करना। ढंग और इज्जत से। क्योंकि अगर मैं चली गई अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गाँव तो याद रखना, सूरज इस गाँव में कभी उगेगा ही नहीं। मेरा मुर्गा जब बाँग देता है तभी सूरज उगता है।

और बात सच ही थी। रोज ही मुर्गा बाँग देता था तभी सूरज उगता था। गाँव के लोग हँसे। लोगों ने मज़ाक उड़ाई, कि तू पागल हो गई। तो बूढ़ी नाराज़गी में दूसरे गाँव चली गई। मुर्गे ने बाँग दी और दूसरे गाँव में सूरज उगा। तो बूढ़ी ने कहा, अब रोयेंगे। अब बैठे हुए छाती पीटेंगे। न रहा मुर्गा, न उगेगा सूरज।

तुम्हारे तर्क भी......बूढ़ी का तर्क भी है तो बहुत साफ। क्योंकि ऐसा कभी नहीं हुआ, कि मुर्गे ने बाँग दिये बिना सूरज उगा हो। लेकिन बात बिलकुल उलटी है। सूरज उगता है इसलिये मुर्गा बाँग देता है। बाँग देने के कारण सूरज नहीं उगते। लेकिन बूढ़ी को कौन समझाये? तुमको कौन समझाये? बूढ़ी दूसरे गाँव चली गई और जब उसने देखा कि सूरज अब यहाँ उग रहा है। और जब यहाँ उग रहा है तो हर गाँव में कैसे उगेगा?

तुम अपनी छोटी बुद्धि से छोटे दायरे में सोचते हो। तुम्हारे कारण परमात्मा नहीं है, परमात्मा के कारण तुम हो। यह श्वास तुम्हारे कारण नहीं चल रही है, उसके कारण चल रही है। प्रार्थना भी तुम नहीं करते हो, वही तुम्हारे भीतर प्रार्थना बनता है।

इस भाव को ख्याल में ले लें, तो नानक के ये बड़े बहुमूल्य शब्द समझ में आ जायेंगे। एक एक शब्द कीमती है।

"हुकमी होवन आकार, हुकमी न कहिया जाय।"

हुक्म से आकार की उत्पत्ति हुई। वह हुक्म को शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

हुक्म का अर्थ ठीक से समझ लेना—द कॉस्मिक ला। वह जो सारे जीवन को चलाने वाला महानियम है, हुक्म का वही अर्थ है।

हुक्म से ही जीवों की उत्पत्ति हुई। हुक्म से बड़ाई मिलती है।

"हुकमी होवन आकार, हुकमी न कहिया जाय।"
"हुकमी होतन जीअ, हुकमी मिलै बड़िआई।"

जब तुम जीतो, तो यह मत सोचना कि मैं जीत रहा हूँ। और अगर तुम जीत में ही न सोचोगे कि मैं जीत रहा हूँ, तो हार में भी तुम पाओगे कि मैं नहीं हार रहा हूँ। वही जीतता है, वही हारता है। उसका ही खेल है। इसलिये हिन्दू इस पूरे जगत को लीला कहते हैं। लीला का मतलब है, हारता भी वही, जीतता भी वही। इस हाथ से जीतता है उस हाथ से हारता है। लेकिन जीतने और

हारनेवाले बीच में ही सोच लेते हैं; जो उपकरण हैं, जो निमित्त हैं, जो माध्यम हैं, वे समझ लेते हैं, हम कर्ता हैं।

कृष्ण अर्जुन को गीता में कह रहे हैं, कि व्यर्थ बीच में अपने को मत ले। वही कर रहा है, वही करवा रहा है। युद्ध उसका आयोजन है। जिनको मारना है वह मारेगा। जिनको बचाना है वह बचायेगा। तू यह मत सोच कि तू मारने वाला है और तू बचाने वाला है। कृष्ण पूरी गीता में जो कहते हैं, वही नानक इन शब्दों में कहते हैं।

"हुकमी होतन जीअ, हुकमी मिलै बड़िआई। हुकमी उत्तम नीचु।"

वही छोटे-बड़े को पैदा कर रहा है।

यह थोड़ा सोचने जैसा है। अगर वही छोटे–बड़े को पैदा कर रहा है, तो फिर कोई छोटा नहीं कोई बड़ा नहीं। क्योंकि दोनों का बनाने वाला वही है। तुमने एक छोटी सी मूर्ति बनाई, तुमने एक बड़ी मूर्ति बनाई; बनाने वाले तुम ही हो। जब कर्ता एक है, तो कौन छोटा कौन बड़ा? जब दोनों में उसका ही हाथ है—लेकिन हम सोचते हैं मैं छोटा, मैं बड़ा, और जीवन भर हम पीड़ा उठाते हैं। और तुम इतने बड़े कभी न हो पाओगे कि तुम तृप्त हो जाओ। अगर तुमने रूप को देखा, अपने आकार को देखा तो तुम कभी उतने बड़े न हो सकोगे कि तृप्त हो जाओ। आकार तो छोटा ही होगा, कितना ही बड़ा क्यों न हो।

लेकिन अगर तुमने निराकार के हाथ अपने आकार में देखे, तब तुम तत्क्षण बड़े हो गये। बनाने वाला वही है। एक छोटे से घास को भी वही बनाता है। और दूर आकाश को छूते देवदार के वृक्ष को भी वही बनाता है। अगर दोनों के पीछे उसीका हाथ है, फिर कौन बड़ा कौन छोटा? उसीकी हार है, उसीकी जीत है। फिर हम सब शतरंज के मोहरे हैं। जीते तो वह, हारे तो वह। बड़ाई मिले तो उसे, बुराई मिले तो उसे।

ध्यान रखना, तुमने बहुत बार भक्तों के वचन सुने होंगे, पढ़े होंगे। अनेक भक्त तुमने पाये होंगे; कहते हैं बड़ाई तेरी, बुराई मेरी। ऊपर से देखने से बहुत अच्छा लगता है। वे कहते हैं जो जो भला है, तेरा; जो जो बुरा है, मेरा। लगता है बड़ा विनम्र है, लेकिन अगर भलाई तेरी तो बुराई मेरी कैसे हो सकेगी? यह विनम्रता झूठी है। यह विनम्रता वास्तविक नहीं है। क्योंकि वास्तविक विनम्रता तो सभी दे देगी, कुछ भी न बचायेगी। तुमने अपने अहंकार के लिये थोड़ा सहारा फिर बचा दिया। और तुम कितना ऊपर-ऊपर से कहो कि भलाई तेरी और बुराई मेरी, लेकिन जब बुराई मेरी है तो भलाई तेरी होगी कैसे? असफलता मेरी और सफलता तेरी? यह बात थोथी है। या तो दोनों मेरे होंगे, या तो दोनों तेरे होंगे।

इसलिये झूठी विनम्रता और सच्ची विनम्रता में बड़ा फर्क है। झूठी विनम्रता कहती है कि मैं आपके पैरों की धूल हूँ, लेकिन हूँ जरूर। और जब कोई आदमी कहता है मैं आपके पैरों की धूल हूँ, तब उसकी आँखों में देखना। वह आपसे अपेक्षा कर रहा है, कि आप भी कहो, कि नहीं, नहीं; आप और कैसे? मैं आप के पैरों की धूल हूँ। उसकी आँखों में चाह है और अगर आप मान लो कि बिलकुल ठीक कह रहे हैं, यही तो मेरा विचार है; वह आदमी सदा के लिये दुश्मन हो जायेगा। कभी आप को माफ न कर सकेगा।

बड़ाई भी उसकी, बुराई भी उसकी। हम बीच में आते ही नहीं हैं। हम तो बाँस की पोंगरी हो गये। वह गीत जैसा गाये उसका। इतनी भी अकड़ क्यों अपनी बचा कर रखना? कि अगर भूलचूक होगी तो मेरी–तब तो मैं बच गया। तब तो थोड़ा सा मैंने अपने को बचा लिया। मैं ऐसा रोग है, तुम थोड़ा सा बचाओ, पूरा बच जाता है। या तो उसे पूरा छोड़ो, या वह पूरा बचता है। तुम उसकी रत्ती भी बचाओ, तो वह पूरा का पूरा बचा हुआ है। वह कहीं गया नहीं तुमने छिपाया हैं।

नानक कहते हैं, 'हुक्म से आकार की उत्पत्ति हुई। हुक्म को शब्दों में कहा नहीं जा सकता है।'

जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है उसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता। और हुक्म तो सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। उसके पार तो कुछ भी नहीं है। शब्द तो कामचलाऊ है। साधारण जीवन का काम चल जाता है। लेकिन असाधारण को शब्दों में प्रकट करने का कोई उपाय नहीं है। उपाय न होने के कई कारण हैं, वे समझ लेने चाहिये।

एक; उस अलौकिक की प्रतीति मौन में होती है। और जिसे हम मौन में जानते हैं उसे शब्दों में कैसे कहेंगे? शब्द और मौन विपरीत हैं। जब उसका अनुभव होता है तब भीतर कोई शब्द नहीं होते हैं। तब परम सन्नाटा होता है। उस परम सन्नाटे में उसकी प्रतीति होती है। तो जिसको शून्य में जाना है, उसको शब्दों में कैसे बाँधियेगा?

माध्यम बदल गया। शून्य अलग माध्यम है। शून्य निराकार का माध्यम है। शब्द आकार हैं। सब शब्द आकार देते हैं। तो निराकार को आकार में कैसे बाँधियेगा?

इसलिये जिन्होंने भी जाना है उन्हें बड़ी अड़चन है। कैसे कहें उसको? ऐसा ही समझो, कि तुमने एक सुन्दर संगीत सुना, और तुम किसी बहरे को समझाना चाहते हो...

सूफियों की एक पुरानी कहानी है। ऐसा हुआ, कि एक चरवाहा अपनी भेड़ों को एक पहाड़ के किनारे चरा रहा था। दुपहर हो गई। राह देखते-देखते थक गया, उसकी पत्नी भोजन लेकर न आयी। ऐसा तो कभी न हुआ था। भूख उसे जोर से लगी थी। फिर उसे चिन्ता भी पकड़ी कि कहीं पत्नी बीमार तो नहीं हो गई। कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई। ऐसा कभी हुआ ही न था। लेकिन वह था बिलकुल वज्र बधिर। सुन ही नहीं सकता था। उसने आसपास देखा कि कोई आदमी हो। देखा कि एक लकड़हारा लकड़ी काट रहा था। वह झाड़ पर चढ़ा था। वह झाड़ के नीचे पहुँचा। उसने कहा,

"मेरे भाई! जरा मेरी भेड़ों का ध्यान रखना। मैं जरा घर हो आऊँ। पत्नी भोजन नहीं लायी है। दौड़ कर अभी ले आऊँगा।"

वह आदमी भी बहरा था, जो लकड़ी काट रहा था। उसने कहा, "जा जा। हमारे पास बातचीत का कोई वक्त नहीं है। मैं अपने काम में लगा हूँ, तुझे बातचीत की सूझी।"

जब उसने कहा, "जा जा", तो यह समझा, कि वह कह रहा है कि जा, तू अपनी रोटी ले आ। मैं तेरी भेड़-बकरी की फिक्र कर लूंगा।

यह भागा हुआ घर गया। रोटी ले कर आया। लौट कर उसने अपने भेड़ों की गिनती की, पाया कि ठीक है। धन्यवाद देने गया, कि आदमी बड़ा प्यारा है, अच्छा है, ईमानदार है, फिक्र रखा, एक भी भेड़ न भटकी। फिर उसको ख्याल आया, धन्यवाद कोरा क्या देना? एक लंगड़ी भेड़ थी उसके पास, उसे आज नहीं कल काटना ही था। सोचा, यह इसे भेंट कर दें।

वह लंगड़ी भेड़ ले कर आया। उसने कहा, "मेरे भाई, बड़े बड़े धन्यवाद। तुम्हारी बड़ी कृपा। यह भेड़ स्वीकार कर लो। ऐसे भी इसे काटना ही था।"

दूसरे बहरे ने कहा, "तेरा क्या मतलब? मैंने तेरी भेड़ लंगड़ी की?"

विवाद बढ़ गया। क्योंकि वह एक चिल्ला रहा था, मैंने तेरी भेड़ देखी नहीं। मुझे मतलब क्या? और दूसरा कह रहा था, मेरे भाई, उसको स्वीकार कर लो। पर दोनों बहरे थे और वही कठिनाई थी।

एक राहगीर एक घोड़े पर, एक चोर जो घोड़े को चुरा कर जा रहा था, वह रास्ता भटक गया था। इन दो आदमियों से पूछने आया था। इन दोनों ने उसको पकड़ लिया। वह भी बहरा था। वह समझा, कि पकड़े गये! ये ही घोड़े के मालिक हैं। ये दोनों उससे कहने लगे, कि भाई, जरा उसको समझा दो, कि मैं भेंट दे रहा हूँ और यह नाहक नाराज़ हो रहा है, चिल्ला रहा है।

और वह दूसरा बोला, कि मैंने उसकी भेड़ों को छुआ भी नहीं। लंगड़े होने का कोई सवाल नहीं। तीसरे ने कहा, "भाई, घोड़ा जिसका भी हो ले लो। मुझसे जो भूल हो गई, मुझे माफ करो।"

यह विवाद चल ही रहा था और कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता था। क्योंकि कोई किसीकी सुन नहीं रहा था। तब एक सूफी फकीर वहाँ से गुजर रहा है, उसे तीनों ने पकड़ लिया और कहा, कि हमारा मामला सुलझा दो। उसने मौन की कसम ले रखी थी। जीवन भर के लिए चुप हो गया था। समझ लिया उसने तीनों का मामला। लेकिन अब करे क्या? तो पहले उसने जो घोड़े पर सवार चोर था उसकी आँखों में गौर से देखा। फकीर ने इतनी गौर से देखा, कि थोड़ी ही देर में चोर बेचैन होने लगा, कि यह आदमी या तो संमोहित कर रहा है, या क्या इरादे हैं? वह इतना घबड़ा गया कि छलांग लगा कर अपने घोड़े पर चढ़ा और भाग गया।

तब उस सूफी फकीर ने दूसरे आदमी की आँखों में देखा, जो भेड़ों का मालिक था। उसको भी लगा कि यह आदमी बेहोश कर देगा। देखे ही जाता है अपलक। वह जल्दी से सिर झुका कर अपनी भेड़ों को खदेड़ कर अपने घर की तरफ चल पड़ा।

तब उसने तीसरे की तरफ देखा। वह तीसरा भी डरा। उसकी आँख बड़ी तेजस्वी थी। जो लोग चुप रहते हैं बहुत देर तक. उनकी आँखों में एक अलग तेज आ जाता है। क्योंकि सारी ऊर्जा इकट्ठी होती है और आँख ही अभिव्यक्ति का माध्यम रह जाता है। जब उसने गौर से देखा उस तीसरे की तरफ, वह भी डरा। उसने अपनी लकड़ी बांधी और भागा। सूफी हँसता हुआ अपने रास्ते पर चला गया। सूफी ने मामला हल कर लिया तोन बहरों का—बिना बोले।

यही संतों की तकलीफ है हमारे साथ। तीन बहरे नहीं हैं, तीन अरब बहरे हैं। और जो भी हम कह रहे हैं वह सब संगत-असंगत, उसमें कुछ भी नहीं है। कोई किसी की नहीं समझ रहा है। जिंदगी में संवाद तो हो ही नहीं रहा है, विवाद चल रहे हैं। सन्त क्या करे? जिन्होंने मौन रहना सीख लिया है, वे क्या करें? बोलने का कोई उपाय नहीं है। वे कितना ही बोलें। वह सूफी फकीर कितना ही बोलता तो वे तीन बहरे समझ न पाते। तीन की जगह चार उपद्रव हो जाते। उसने सिर्फ आँख से गौर से उन्हें देखा।

सन्तों ने तुम्हारी तरफ सिर्फ गौर से देखा है और हल करने की कोशिश की है। जो उनके भीतर समाया है, वह तुम्हारी आँखों में उंडेलना चाहा है। इसलिये साध-संगत की बात करते हैं नानक। कि साधुओं के साथ रहो अगर

समझना है, जो उन्होंने जाना है। संगति करो, सत्संग करो। सुनने कहने से बहुत न होगा। कुछ कहा जायेगा, कुछ तुम समझोगे; लोग बहरे हैं। कुछ बताया जाएगा, कुछ तुम देखोगे; लोग अन्धे हैं। तुम अपनी व्याख्या करोगे, तुम शब्दों के अपने अर्थ दे दोगे।

नानक कहते हैं, "हुकमी न कहिया जाय।"

वह कहा नहीं जा सकता। फिर भी इशारे किये जा सकते हैं। ये इशारे हैं। यह कहना नहीं है, ये इशारे हैं। इन शब्दों में वह हुक्म नहीं है। ये शब्द तो मील के किनारे लगे पत्थर की तरह हैं। ये बता रहे हैं कि चले जाओ, आगे है मंजिल। लेकिन बहुत से लोग मील के पत्थर को पकड़ कर बैठ जाते हैं।

वह तुम भी कर सकते हो। तुम भी कर सकते हो, कि रोज सुबह उठकर जपजी का पाठ करो। और उसको दोहराते रहो। और कंठस्थ कर लो। तुमने मील का पत्थर पकड़ लिया। यह तो इशारा है। इसे कंठस्थ करने से कुछ भी न होगा। इसमें जिस तरफ इशारा है उस तरफ चलना पड़ेगा। यात्रा करनी पड़ेगी। धर्म एक यात्रा है। तुम चाहे जपुजी को पकड़ो, चाहे गीता को, चाहे कुरान को, अगर तुम पकड़ कर बैठ गये, तो तुमने मील के पत्थर को छाती से लगा दिया। समझो और आगे बढ़ो। जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ोगे वैसे-वैसे राज प्रकट होगा।

'हुक्म को शब्दों में नहीं कहा जा सकता। हुक्म से ही जीवों की उत्पत्ति होती है। हुक्म से ही बड़ाई मिलती है, हुक्म से ही कोई छोटा है, कोई बड़ा है। हुक्म से सुख-दुःख की प्राप्ति होती है।'

थोड़ा सोचो, जब तुम्हें दुःख मिलता है, तो तुम किसीको जिम्मेवार ठहराते हो। अगर जिम्मेवार ही ठहराना है तो हुक्म को जिम्मेवार ठहराओ। पति दुःखी है तो सोचता है, कि पत्नी जिम्मेवार है। पत्नी दुःखी है तो सोचती है, पति जिम्मेवार है। बाप दुःखी है तो सोचता है, बेटा जिम्मेवार है। अगर जिम्मेवारी ही देनी है, तो परमात्मा को दो। उससे छोटे में काम न चलेगा।

लेकिन बड़ा मजा है। जब तुम दुःखी हो, तो आसपास जिम्मेवारी किसीके कंधे पर टांग देते हो। और जब तुम सुखी हो तब तुम खुद मानते हो, कि मेरे ही कारण मैं सुखी हूँ।

यह तर्क किस भाँति का है? सुखी हो तब तुम अपने कारण और दुःखी हो तब किसी और के कारण! इस वजह से न तो तुम दुःख को हल कर पाते हो और न तुम सुख का राज खोज पाते हो। क्योंकि दोनों हालत में तुम गलत हो।

न तो दूसरा जिम्मेवार है दुःख के लिये और न तुम जिम्मेवार हो सुःख के लिये। दोनों के पीछे परमात्मा जिम्मेवार है। और अगर एक ही हाथ से सुख-दुःख आ रहे हैं तो उनमें भेद क्या करना ! फर्क क्या करना !

एक मुसलमान बादशाह हुआ। उसका एक गुलाम था। गुलाम से उसका बड़ा प्रेम था, बड़ा लगाव था। वह बड़ा स्वामिभक्त था। एक दिन दोनों जंगल से गुजरते थे। एक वृक्ष में एक ही फल लगा था। सम्राट ने फल तोड़ा। जैसी उसकी आदत थी, उसने एक कली काटी और गुलाम को दी। गुलाम ने चखी और उसने कहा, "मालिक, एक कली और।"

और गुलाम माँगता ही गया। फिर एक ही कली हाथ में बची। सम्राट ने कहा, "इतना स्वादिष्ट है?" गुलाम ने झपट्टा मार कर वह एक कली भी छीननी चाही।

सम्राट ने कहा, "यह हद हो गई! मैंने तुझे पूरा फल दे दिया, और दूसरा फल भी नहीं है। और अगर इतना स्वादिष्ट हैं, तो कुछ मुझे भी चखने दे।"

उस गुलाम ने कहा, "नहीं, स्वादिष्ट बहुत है और मुझे मेरे सुख से वंचित न करें। दे दें।" लेकिन सम्राट ने चख ली। वह फल बिलकुल जहर था। मीठा होना तो दूर, उसके एक टुकड़े को लीलना मुश्किल था।

सम्राट ने कहा, "पागल! तू मुस्कुरा रहा है, और इस जहर को तू खा गया? तू ने कहा क्यों नहीं?"

उस गुलाम ने कहा, "जिन हाथों से इतने सुख मिले हों और जिन हाथों से इतने स्वादिष्ट फल चखे हैं, एक कड़वे फल की शिकायत?"

फलों का हिसाब ही छोड़ दिया, हाथ का हिसाब है।

जिस दिन तुम देख पाओगे कि परमात्मा के हाथों से दुःख भी मिलता है, उस दिन तुम उसे दुःख कैसे कहोगे? तुम उसे दुःख कह पाते हो अभी, क्योंकि तुम हाथ को नहीं देख रहे हो। जिस दिन तुम देख पाओगे सुख भी उसका दुःख भी उसका, सुख-दुःख दोनों का रूप खो जायेगा। न सुख सुख जैसा लगेगा, न दुःख दुःख जैसा लगेगा। और जिस दिन सुख-दुःख एक हो जाते हैं उसी दिन आनन्द की घटना घटती है। जब तुम्हें सुख-दुःख का द्वैत नहीं रह जाता, तब अद्वैत उतरता है। तब आनन्द उतरता है। तब तुम आनंदित हो जाओगे।

नहीं! किसी को, पड़ोस में, पति को, पत्नी को, मित्र को, भाई को, दोस्त को, दुश्मन को दोषी मत ठहराना। सब दोषों का मालिक वह है। और जब खुशी आये, सफलता मिले, तो अपने अहंकार को मत भरना। सब सफलताओं,

सब स्वादिष्ट फलों का मालिक भी वही है। अगर तुम सब उसी पर छोड़ दो, तो सब खो जायेगा। सिर्फ आनन्द शेष रह जाता है।

'हुक्म से कोई ऊँचा कोई नीचा, हुक्म से सुख-दुःख की प्राप्ति, हुक्म से ही कोई प्रसाद को उपलब्ध होता है। हुक्म से ही कोई आवागमन में भटकता है। सभी कोई हुक्म के अन्दर हैं। हुक्म से बाहर कभी कोई नहीं। नानक कहते हैं, जो उस हुक्म को समझ लेता है वह अहंकार से मुक्त हो जाता है।'

"नानक हुकमी जे बुझे, त हऊ मैं कहे न कोय।"

जिसने यह सार की बात समझ ली कि सब उसीका है, तो 'मैं' कहने को बचता ही कौन?

इसे थोड़ा समझें। तुम अहंकार को अनेक बार छोड़ना भी चाहते हो, क्योंकि उससे पीड़ा मिलती है। फिर भी छोड़ नहीं पाते। क्या कारण होगा? क्योंकि उसीसे तुम्हें सुख भी मिलता है, इसलिये अड़चन है। अहंकार से दुःख मिलता है यह ज़ाहिर है। क्योंकि जब कोई गाली देता है, पीड़ा होती है। वह पीड़ा अहंकार को होती है। तुम छोड़ना भी चाहते हो—

मुझसे लोग आते हैं और पूछते हैं, दुःख को कैसे छोड़ें? और यह भी कहते हैं कि समझ में आता है, अहंकार ही दुःख है। कैसे छोड़ें? मैं उनसे कहता हूँ, कैसे का सवाल ही नहीं है। अगर तुम्हें सच में दिखाई पड़ता है अहंकार दुःख है तो तुम छोड़ ही देते। पूछना क्या है?

लेकिन बात उलझी हुई है। कोई गाली देता है, अहंकार को दुःख मिलता है, तुम छोड़ना चाहते हो। लेकिन कोई फूलमाला पहनाता है तब अहंकार को सुख मिलता है। अहंकार आधा तुम छोड़ना चाहते हो, आधा तुम बचाना चाहते हो। उसी को निन्दा अखरती है, उसी को प्रशंसा सुख देती है। भूल हो जाती है तो चोट लगती है। ठीक बात घट जाती है तो भली लगती है। लोग निन्दा करते हैं चारों तरफ, अपमान करते हैं, खलता है। लोग प्रशंसा करते हैं, यशगान करते हैं, गीत गाते हैं, गुणगान करते हैं, बड़ा भला लगता है। दोनों ही घटनाएँ अहंकार को घट रही हैं।

और तुम्हारी मुसीबत यह है, कि तुम अगर अहंकार छोड़ो तो सुख भी मिट जायेगा, दुःख भी मिट जायेगा। सुख को तुम बचाना चाहते हो, दुःख को तुम मिटाना चाहते हो। यह कभी हुआ नहीं, कभी होगा नहीं। दोनों ही साथ जायेंगे। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक पहलू को तुम बचाना चाहते हो, दूसरे को फेंक देना चाहते हो। यह कैसे होगा! फेंकते हो, उठा लेते हो। क्योंकि यह दूसरा

पहलू भी साथ में जाता है। हाथ में रखते हो, फेंकना चाहते हो। क्योंकि यह दुःख वाला पहलू भी हाथ में रहता है।

अहंकार को समझो। सुख भी वही देता है, दुःख भी वही देता है। और अगर तुम दोनों परमात्मा पर छोड़ दो, जहाँ से कि वास्तविक स्रोत है जीवन का, अगर तुम सब उसी पर छोड़ दो, तो तुम्हारे मैं को बचने की जगह कहाँ रह जायेगी? तुम कैसे कहोगे "मैं हूँ?"

'मैं' कृत्यों का जोड़ है। तुमने जो-जो किया है, उसका इकट्ठा जोड़ 'मैं'। 'मैं' कोई वस्तु नहीं है। सिर्फ बहुत-बहुत कृत्यों की जोड़ी हुई धारणा है। तुम्हारा अतीत, तुमने जो-जो किया है उसका जोड़ अहंकार है। अगर सारा कर्तृत्व तुम छोड़ दो, और तुम कह दो, "कर्ता तू है--कर्ता पुरुख। मैं केवल माध्यम हूँ।" फिर कैसे अहंकार? जो उसने करवाया वह मैंने किया। जो उसने नहीं करवाया वह मैंने नहीं किया। पापी बनाया तो पापी।

इसे थोड़ा समझो क्योंकि नानक बड़ी अनूठी बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, हुक्म से ही कोई प्रसाद को उपलब्ध होता है, ज्ञान को। और हुक्म से ही आवागमन में भटकता है। नानक यह कह रहे हैं, कि अगर तुम पापी हो, तो मत सोचो कि मैं पापी हूँ। क्योंकि उसकी मर्ज़ी। खतरनाक बात है। क्योंकि तुम कहोगे, ऐसे तो लोग पाप करने लगेंगे। और लोग कहेंगे उसकी मर्ज़ी।

लेकिन यही तो मज़ा है। जिसने जान लिया 'उसकी मर्ज़ी', उससे फिर जो भी होता है वही पुण्य है। जब तक तुम नहीं जानते हो 'उसकी मर्ज़ी' तभी तक तुम्हारे–उसके बीच एक कलह चल रही है। उस कलह में ही पाप का जन्म है। उस कलह से ही सारा दुःख, खुद को और दूसरे को देने की स्थिति बनती है। जिस दिन तुमने सब उस पर छोड़ दिया, उसी दिन पाप तिरोहित हो जाता है। पाप तुम्हारे और परमात्मा के बीच हो रहे संघर्ष का फल है। लेकिन छोड़ना पड़ेगा उसे।

नानक कहते हैं वह भी उसी के द्वारा हो रहा है। तुम पापी हो तो वही, तुम पुण्यात्मा हो तो वही। न तो तुम सोचो कि पुण्य मैंने किया है, और न तुम सोचो कि पाप मैंने किया है। 'मैंने किया है' यही बात भ्रांति है।

एक ही अज्ञान है–"मैंने किया है।" और एक ही ज्ञान है, "कर्ता पुरुष।" वह पुरुष कर्ता है, मैं केवल माध्यम हूँ। हुक्म के बाहर कोई भी नहीं, सभी कोई हुक्म के अन्दर हैं।

"हुकमी अन्दर सभुको—बाहर हुकुम न कोय।"

नानक कहते हैं, "जो उस हुक्म को समझता है, वह अहंकार से मुक्त हो जाता है। कोई उसका बल का गान करते हैं, जिनमें गुणगान करने का बल है।

कोई उसके दान का गीत गाते हैं, और दान को उसका प्रतीक मानते हैं। कोई उसके गुण और सुंदर बड़ाइयों को गाते हैं। कोई उस विद्या को गाते हैं जिसका विचार कठिन है। कोई यह गाते हैं कि वह शरीर रचता है, और उसे फिर खाक कर देता है। कोई गाते हैं कि जीव फिर उससे ही देह ग्रहण करता है। कोई गाते हैं कि वह बहुत दूर दिखाई देता है। और कोई गाते हैं कि वह हमें देखता है और सर्वव्यापी है। उसके गुणगान का अन्त नहीं आता, यद्यपि हम करोड़ों लोग करोड़ों ढंग से कथन करते हैं। दाता देता ही चला जाता है, लेनेवाले लेते लेते थक जाते हैं। युग-युगान्तर से जीव उसको भोग रहे हैं, और उसका अन्त नहीं। वह हुक्मी हुक्म से पथ निर्देश करता है। नानक कहते हैं, "वह बेपरवाह है और आनन्दित है।"

हजारों वर्णन हैं उसके और सब अधूरे हैं। अधूरा मनुष्य पूरे का वर्णन कैसे कर सकेगा? अधूरा मनुष्य जो भी कहेगा वह अधूरा होगा। अंशी की खबर अंश से कैसे मिलेगी? अंश जो भी कहेगा वह अंश की ही समझ होगी। परमाणु परमात्मा को कैसे जानेगा? जानेगा भी, तो परमाणु की ही बुद्धि होगी।

तो जो गीत गा सकते हैं वे उसके गुणों का गीत गाते हैं। लेकिन फिर भी वह जो अज्ञात है, अज्ञात ही रह जाता है। उपनिषद् थक गये, गीता थक गई, कुरान थक गया, बाईबिल थक गई। वह अनिर्वचनीय है, अनिर्वचनीय ही बना है। अब तक हम पूरा गुणगान नहीं कर पाये। सब शास्त्र अधूरे हैं, होंगे ही। अनिवार्यतः होंगे। क्योंकि सभी शास्त्र मनुष्य की चेष्टाएँ हैं उस अनंत को प्रकट करने की।

सूर्य निकला है, चित्रकार उसका चित्र बनाता है। कितना ही ठीक बनाये तो भी उस चित्र से रोशनी तो न मिलेगी। और अन्धेरे में रख कर तुम बैठ जाओ तो इस आशा में मत रहना कि घर प्रकाश से भर जायेगा। कोई कवि उस सुबह से निकलते सूरज का मधुर से मधुर गीत गाये, उसके गीत में बड़ी गंभीरता हो, उसके गीत में बड़ी गहराई हो, उसका गीत हृदय को छुए, तुम उस गीत को गाते रहना अन्धेरे में बैठ कर तो भी रोशनी न मिलेगी।

परमात्मा के संबंध में गाये गये गीत, रचे गये चित्र बस, ऐसे ही हैं। सब चित्र अधूरे हैं। सब गीत अधूरे हैं। कोई गीत पूरा उसे कह न पायेगा। क्योंकि किसी भी गीत में हम उसकी जीवन्तता को न उतार पायेंगे। शब्द थोथे हैं, थोथे ही रहेंगे। तुम्हें प्यास लगी हो तो शब्द "पानी" से न बुझेगी। तुम्हें भूख लगी हो तो शब्द "अग्नि" पर रोटी न पकेगी। और तुम्हें परमात्मा की

अभीप्सा पैदा हो गई हो, तो शब्द " परमात्मा " काफी नहीं है; काफी उन्हीं को है, जिन्हें अभीप्सा नहीं है।

इसे ठीक से समझ लो। अगर तुम्हें प्यास नहीं लगी है तो शब्द पानी भी काफी है, " H_2O " भी काफी है। अगर प्यास लगी है तब अड़चन शुरू होती है। तब न तो " H_2O " काम देगा, न पानी काम देगा, न जल काम देगा, न वॉटर काम देगा। तुम दुनिया भर के सब शब्द इकट्ठे कर लो। कोई तीन हज़ार भाषाएँ हैं। तीन हज़ार शब्द हैं पानी के लिये। सब इकट्ठे कर लो, उनको कंठ से बाँध लो, तो भी बूंद प्यास उनसे न बुझेगी। अगर प्यास न लगी हो तो तुम शब्दों से खेल सकते हो।

दर्शनशास्त्र उन लोगों का खेल है जिन्हें प्यास नहीं लगी है। और धर्म उनकी यात्रा है जिन्हें प्यास लगी है। इसलिये दर्शनशास्त्र शब्दों से खेलता है। धर्म शब्दों से नहीं खेलता। धर्म तो शब्दों का इशारा जिस तरफ है, उस यात्रा पर जाता है। सरोवर की तलाश है; सरोवर शब्द क्या करेंगे? जीवन की खोज है; जीवन शब्द से क्या होगा?

कोई गा नहीं पाया उसे पूरा। कोई बता नहीं पाया उसे पूरा। उसकी सब मूर्तियाँ अधूरी हैं। कोई उसे बना नहीं पाया पूरा। बनायेगा भी कैसे?

थोड़ा इसे समझो। दर्शनशास्त्रियों के सामने एक बड़ा गहन सवाल रहा है और वह सवाल यह है, कि एक यात्री हिन्दुस्तान आता है, तब हिन्दुस्तान का नक्शा उसको दे देते हैं। हिन्दुस्तान को तो जेब में न रख सकोगे, वह नक्शा जेब में रख लेता है। उस नक्शे से हिन्दुस्तान का मेल क्या है? क्या वह नक्शा हिन्दुस्तान जैसा है? अगर हिन्दुस्तान जैसा है तो हिन्दुस्तान जैसा बड़ा होगा। और अगर हिन्दुस्तान जैसा नहीं है तो उसे हिन्दुस्तान का नक्शा क्यों कहते हो? नक्शे का उपयोग क्या है? अगर वह बिलकुल हिन्दुस्तान जैसा हो तो उसका कुछ उपयोग ही नहीं। क्योंकि उसको जेब में न ले जा सकोगे। उसको कार में बैठ कर उपयोग न कर सकोगे। वह दूसरा हिन्दुस्तान हो जायेगा। और अगर वह हिन्दुस्तान जैसा नहीं है, तो बड़ी हैरानी की बात है, वह काम कैसे आता है?

नक्शा प्रतीक है। वह ठीक हिन्दुस्तान जैसा नहीं है। फिर भी हिन्दुस्तान के संबंध में रेखाओं के माध्यम से कुछ इंगित करता है, इशारे करता है। तुम पूरा हिन्दुस्तान घूम कर भी हिन्दुस्तान का नक्शा कहीं न देख पाओगे। जहाँ भी जाओगे, हिन्दुस्तान मिलेगा, नक्शा नहीं। लेकिन अगर नक्शा पास है, तो यात्रा सुगम हो जायेगी। लेकिन नक्शे को मान कर चलना पड़ेगा। नक्शे को छाती से रख कर बैठने से कुछ भी न होगा।

दुनिया भर के धार्मिक लोग नक्शों को छाती से रख कर बैठ गये हैं। जैसे नक्शा सब कुछ है। धर्मशास्त्र नक्शा है, मूर्तियाँ नक्शे हैं, मंदिर नक्शे हैं। उनमें कुछ इशारे छिपे हैं। अगर इशारे चूक जायें, तो नक्शे बोझ हैं। हिन्दू अपने नक्शे ढो रहा है, मुसलमान अपने नक्शे ढो रहा है। न हिन्दू यात्रा कर रहा है न मुसलमान यात्रा कर रहा है। नक्शे इतने हो गये हैं कि यात्रा अब हो ही नहीं सकती। या तो नक्शों को ढोओ—तो तुम चल नहीं सकते। नक्शे संक्षिप्त चाहिये, छोटे चाहिये। और नक्शों की पूजा करने का कोई अर्थ नहीं है। उनका उपयोग करना है।

नानक ने हिन्दू और मुसलमान दोनों नक्शों में जो सार था उसको निचोड़ लिया। नानक को न तो तुम हिन्दू कह सकते हो, न तुम मुसलमान कह सकते हो। नानक दोनों हैं, या दोनों नहीं हैं। नानक को समझने में लोगों को बड़ी मुश्किल हुई। नानक के संबंध में पुरानी उक्ति है।

" बाबा नानक शाह फकीर, हिन्दू का गुरु मुसलमान का पीर। "

वे दोनों हैं। और उनके दो खास शिष्य हैं-मर्दाना और बाला। एक मुसलमान, एक हिन्दू। न हिन्दू के मंदिर में उनको जगह है, न मुसलमान की मस्जिद में उनको जगह है। दोनों जगह संदेह है, कि यह आदमी है किस जगह पर? इसको हम किस कोटि में भरें? कहाँ बिठायें? जो भी महत्त्वपूर्ण था हिन्दू में, जो भी महत्त्वपूर्ण था मुसलमान में उन दोनों नदियों का संगम है नानक। जो भी सार था......

इसलिये सिक्ख न हिन्दू है, न मुसलमान। या तो वह दोनों है और या दोनों नहीं है। वह एक संगम है।

यह जो संगम है, इस संगम को समझना और कठिन हो जाता है। क्योंकि एक नदी का साफ-सुथरा नक्शा होता है। अब यह दो नदियों का नक्शा इकट्ठा मिल गया। इनके कुछ वचन खबर देते हैं इस्लाम की, कुछ वचन खबर देते हैं हिन्दुओं की। और दोनों मिल कर और धूमिल हो जाते हैं। यह धूमिलता तभी हटेगी, जब कोई प्रयोग में उतरेगा। तो धीरे-धीरे बात साफ होती जायेगी। अगर तुमने छाती पर रख लिये शास्त्र, जैसा कि हो गया है, सिक्ख पूज रहा है शास्त्रों को। इसलिये ग्रंथ ही गुरु हो गया। और बड़े मजे की बात है कि हम भूलों को कैसे पुनरुक्त करते हैं!

नानक मक्का गये, तो मक्का के प्रधान पुरोहित ने आकर उनको कहा, कि अपने पैर दूसरी दिशा में करो। तुम्हारे पैर पवित्र पत्थर की तरफ, काबा की

तरफ हैं। तो कहानी है, नानक ने कहा, परमात्मा जहाँ न हो, वहाँ मेरे पैर कर दो। कहानी तो यह है, कि जहाँ-जहाँ उनके पैर किये गये वहाँ-वहाँ काबा हट गया।

लेकिन यह प्रतीक है। अर्थ इतना ही है, कि तुम पैर कहीं भी करोगे, वहीं परमात्मा है। तो पैर कहाँ करोगे? वह सब ओर है।

सुवर्णमंदिर अमृतसर में मुझे निमंत्रण दिया कि मैं आऊँ। मैं गया; तो मैं तो कोई टोपी नहीं लगाता। तो दरवाजे पर ही उन्होंने कहा, कि यह तो बहुत मुश्किल है। आपको सिर पर कपड़ा बाँधना ही पड़ेगा। यह तो परमात्मा का मंदिर है। इसमें सिर पर टोपी चाहिये। तो मैंने उनसे कहा, "तुम भूल गये कि नानक के साथ काबा में क्या हुआ था! तो अभी जहाँ मैं खड़ा हूँ बिना टोपी लगाये, वहाँ परमात्मा नहीं? वहाँ मंदिर नहीं?" पर भूलें वही की वही दोहरायी जाती हैं। मैंने उनसे कहा, "बताओ मुझे वह जगह, जहाँ मैं बिना टोपी रह सकता हूँ। और तुम भी जब स्नान करते होओगे तब पगड़ी निकाल देते होगे। उस वक्त परमात्मा का अपमान होता होगा। तुम भी तो रात सोते होगे, तब पगड़ी अलग कर देते होगे। उस वक्त परमात्मा का अपमान होता होगा।"

तो आदमी की नासमझियाँ वही की वही हैं। बुद्ध कुछ कहें, बुद्ध को माननेवाला सब लीपपोत देता है। नानक कुछ कहें, नानक को माननेवाला सब लीपपोत देता है। फिर वही जाल शुरू हो जाता है। क्योंकि आदमी की नासमझी में कोई फर्क नहीं। उसके बहरेपन में कोई फर्क नहीं है। सुन लेता है, अपने मतलब निकाल लेता है। अपने मतलब से चलता है। जो सुना है उसके अनुभव से नहीं।

ये जो शब्द हैं, नानक कहते हैं, कोई कितने ही गीत गाये, उसे कोई पूरा नहीं कर पाया। अलग-अलग लोग उसके अलग-अलग गीत गाते हैं। क्योंकि अलग-अलग लोग अलग-अलग तरफ से उसकी तरफ पहुँचते हैं। उनके गीतों में कोई विरोध भी नहीं है। कितना ही विरोध दिखाई पड़े, वेद भी वही कहते हैं जो कुरान कहता है। लेकिन मुहम्मद के पहुँचने का ढंग और; याज्ञवल्क्य के पहुँचने का ढंग और। बुद्ध भी वही कहते हैं जो नानक कहते हैं, लेकिन पहुँचने का ढंग और।

अनंत द्वार हैं उसके। तुम जहाँ से भी जाओ वहीं उसका द्वार है। और तब तुम अपने द्वार का वर्णन करोगे। और तुम जिस मार्ग से जाओगे उस मार्ग का वर्णन करोगे। दूसरा जिस मार्ग से पहुँचा है उस मार्ग का वर्णन करेगा। फिर मार्ग से ही फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी समझ, तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारी भावदशा——

एक बगीचे में कवि आता है तो गीत गाता है। चित्रकार आता है, तो चित्र बनाता है। फूलों का सौदागर आता है तो फूलों के दाम के संबंध में सोचता है, व्यवसाय की बात सोचता है। वैज्ञानिक आ जायेगा तो फूलों का विश्लेषण करके देखेगा कि उनके रासायनिक तत्त्व क्या हैं। कोई आदमी जो नशे से भरा हो वह गुज़र जायेगा, उसे फूल दिखाई ही नहीं पड़ेंगे। वह बगीचे से गुज़रा है, इसका भी पता नहीं चलेगा। तुम जो भी देखोगे वह तुम्हारी खिड़की से देखा गया है। तुम्हारी खिड़की का आकार उस पर छा जायेगा।

नानक कहते हैं, 'कोई उसके बल का गान गाते हैं, कि वह महा शक्तिशाली है, परम शक्तिशाली है। ओम्नीपोटेंट——सर्व शक्तिशाली है। कोई उसके दान का गीत गाते हैं, कि वह परमदाता है। कोई उसके गुण और सौन्दर्य का बखान करते हैं, कि वह परम सौन्दर्य है। कोई उसे कहते हैं सत्य, कोई उसे कहते हैं शिव, कोई उसे कहते हैं सुन्दर।'

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि मैंने तो उसे सौन्दर्य में पाया। इससे परमात्मा के संबंध में कोई खबर नहीं मिलती, रवीन्द्रनाथ के संबंध में खबर मिलती है। गांधी कहते हैं, कि वह मेरे लिये सत्य है; ट्रुथ इज़ गॉड, इससे परमात्मा के संबंध में कोई खबर नहीं मिलती, गांधी के संबंध में खबर मिलती है। रवीन्द्रनाथ कवि हैं। कवि को सौन्दर्य में परमात्मा है——परम सौन्दर्य! गांधी कवि नहीं हैं, गांधी से कम कवि आदमी खोजना मुश्किल है। वे बिलकुल हिसाबी-किताबी हैं। काव्य नहीं, गणित। तो गणित की दृष्टि से देखें तो परमात्मा सत्य है। प्रेम की दृष्टि से देखने पर तो प्रेमी, प्रियतम, प्यारा।

किस दृष्टि से हम देखते हैं? हमारी दृष्टि की खबर मिलती है उससे। वह सभी है एक साथ, और कोई भी नहीं है। इसलिये महावीर का एक बहुत अद्भुत प्रयोग है चिंतन के संबंध में, कि जब तक तुम्हारी दृष्टि न छूट जाये, तब तक तुम उसे न जान सकोगे। क्योंकि तुम जो भी जानोगे वह तुम्हारी दृष्टि होगी। महावीर उसको कहते हैं, "नय दृष्टि"। और दर्शन तब मिलेगा जब सब दृष्टि छूट जायेगी।

लेकिन तब तुम चुप हो जाओगे। क्योंकि बिना दृष्टि तुम बोलोगे कैसे? जब कोई भी दृष्टि नहीं होगी तब उसी जैसे हो जाओगे। तब बोलोगे कैसे? तब तुम उतने ही विस्तीर्ण हो जाओगे। तब तुम आकाश के साथ लीन हो जाओगे। तुम बोलोगे कैसे? तुम अलग ही न रहोगे। सब दृष्टियाँ अलग होनेवाले की दृष्टियाँ हैं।

इसलिये नानक सब की दृष्टियाँ गिनाते हैं। वे यह कह रहे हैं कि ये सभी ठीक हैं, और कोई भी पूरा ठीक नहीं है। जब कोई अधूरे को पूरा होने का दावा करता है तभी भ्रांति हो जाती है।

संप्रदाय का अर्थ है, तुमने अधूरी दृष्टि को पूरा होने का दावा कर दिया। संप्रदाय को धर्म कहने का अर्थ है, कि तुमने अधूरी दृष्टि को पूरी होने की घोषणा कर दी, कि यही दृष्टि पूरी है। एक संप्रदाय दूसरे संप्रदाय के विरोध में है। सभी संप्रदाय धर्म की दृष्टियाँ हैं। और कोई संप्रदाय धर्म नहीं है। अगर हम सभी संभव संप्रदायों को मिला दें, तो धर्म पैदा होगा। जो संप्रदाय हुए हैं, जो हैं और जो होंगे...अगर हम सभी दृष्टियों को इकट्ठा कर दें, तो धर्म होगा। कोई संप्रदाय धर्म नहीं है।

संप्रदाय शब्द बड़ा अच्छा है। संप्रदाय का अर्थ है, मार्ग। संप्रदाय का अर्थ है, पहुँचने का रास्ता। धर्म का अर्थ है, मंजिल। मंजिल एक, मार्ग अनेक हैं।

नानक कहते हैं, कोई बल का गान करता है। कोई गुण का गान करता है। कोई उसके दान का गीत गाता है। कोई उसके सौन्दर्य की चर्चा करता। कोई उस विद्या का वर्णन करता है जिसका विचार कठिन है। कोई यह गाते हैं कि उसने शरीर रचा है। फिर वही शरीर को मिटाता है। कोई कहते हैं जीव फिर उसको ही देह ग्रहण करता है। कोई कहते हैं वह बहुत दूर दिखाई देता है। कोई कहते हैं वह बहुत निकट है। कोई गाते हैं वह हमें देखता है और सर्वव्यापी है। उसके गुणगान का अन्त नहीं आता।

"**कथना कथी न आवै तोटि।**"... कहते-कहते थक जाते हैं, और उसके गुणगान का कोई अन्त नहीं आता।

"**कथि कथि कथी कोटि कोटि कोटि**"...'करोड़, करोड़, करोड़ बार कहने पर भी वह अनकहा ही पीछे छूट जाता है। दाता देता ही चला जाता है। लेने-वाले लेते-लेते थक जाते हैं।'

यह बड़ा महत्त्वपूर्ण वचन है। जीवन वही देता है। श्वास वही चलाता है। धड़कन में वही धड़कता है। वह देता चला जाता है। उसके देने में कोई पारा-वार नहीं। उत्तर में हमसे कुछ माँगता भी नहीं।

इसलिये तो जीवन तुम्हें सस्ता मालूम पड़ता है, और चीज़ें महँगी मालूम पड़ती हैं। तुम जीवन गँवाने को कभी भी राजी हो, धन गँवाने को नहीं। क्योंकि धन, लगता है बड़ी मुश्किल चीज़ है। जीवन तो मुफ्त में मिलता है। वह तुम्हें जो भी दिया है, मुफ्त है। उसके बदले में तुमने कुछ भी नहीं दिया है।

और जिस दिन तुम्हें यह एहसास होना शुरू होगा, कि जो भी मिला है उसमें मेरी पात्रता क्या है? अगर मैं न होता तो हर्ज क्या था? तुम्हारे भीतर जो जीवन की संभावना बनी है, और तुम्हारे भीतर चेतना का जो फूल खिला है, अगर न खिलता तो तुम किससे शिकायत करते? और तुम्हारी क्या योग्यता है कि तुम्हें जीवन मिले? तुमने किस भाँति इसे अर्जित किया है?

हर छोटी-छोटी चीज़ के लिये योग्यता चाहिये। तुम एक दफ्तर में क्लर्क हो, उसके लिये योग्यता चाहिये। तुम एक स्कूल में मास्टर हो, उसके लिये योग्यता चाहिये। तुम उसे अर्जित करते हो। तुमने जीवन के लिये क्या अर्जित किया? कैसे अर्जित किया है?

वह दान है। वह तुम्हें ऐसे ही मिला है, तुम्हारी कोई पात्रता के कारण नहीं। और जिस दिन तुम्हें यह प्रतीति होगी उस दिन प्रार्थना का जन्म होगा। उस दिन तुम कहोगे मैं क्या करूँ? मैं कैसे धन्यभाग्य प्रकट करूँ? मैं कैसे तेरे ऋण को चुकाऊँ?

प्रार्थना माँग नहीं है। प्रार्थना जो पहले से ही मिला है उसका धन्यवाद है। और ये प्रार्थना के दो भेद हैं। तुम जब जाते हो मंदिर तो तुम और माँगने जाते हो। तुम्हारी प्रार्थना झूठी है।

नानक भी जाते हैं। वे धन्यवाद देने जाते हैं। वे कहने जाते हैं, जो तूने दिया है वह भरोसे के बाहर है। कोई कारण नहीं मेरे भीतर, कि मुझे मिले। कोई मेरी योग्यता नहीं। न मिले, शिकायत करने का कोई उपाय नहीं। और तू देता चला जाता है।

और हम? हमसे ज्यादा कृतघ्न लोग खोजने कठिन हैं। हम धन्यवाद भी नहीं दे सकते। उसके देने का अन्त नहीं है और हमारी कृतघ्नता का कोई अन्त नहीं। हम कृतज्ञता भी प्रगट नहीं कर सकते। हम यह भी नहीं कह सकते, कि धन्यवाद! कि हम आभारी हैं। कि तेरा शुक्रिया! उतना भी हमसे नहीं होता। उतने में हमें बड़ी कठिनाई मालूम पड़ती है। हमारा कंठ अवरुद्ध हो जाता है।

तुम क्षुद्र बातों के लिये धन्यवाद दे देते हो। तुम्हारा रुमाल गिर गया और कोई उठा कर दे दे, तो तुम उससे कहते हो, "धन्यवाद।" और जिसने तुम्हें जीवन दिया है, तुम उसके लिये धन्यवाद देने भी कभी नहीं गये। और जब भी तुम गये हो, शिकायत ले कर गये हो। जब भी तुम गये हो, तुम बताने के लिये गये हो, कि क्या-क्या तू गलत कर रहा है! मेरा लड़का बीमार पड़ा है, कि मेरी पत्नी दुर्व्यवहार कर रही है, कि धधा ठीक नहीं चल रहा है। और तुम अपनी शिकायतों को बहुत बढ़ा लेते हो। तब तुम्हारी शिकायतों का अंतिम जोड़ यह होता है, कि तुम कहते हो, तू है ही नहीं। तू अगर है, तो ये चीजें पूरी कर।

नास्तिकता का अर्थ है तुम्हारी शिकायतें इतनी बढ़ गईं, कि अब तुम परमात्मा को मान नहीं सकते। तुम्हारी शिकायतों के कारण तुम परमात्मा की हत्या कर देते हो।

आस्तिकता का क्या अर्थ है? आस्तिकता का अर्थ है, तुम्हारा अहोभाव इतना बढ़ गया, तुम्हारा धन्यभाव इतना बढ़ गया, तुम इतनी कृतज्ञता से भर गये हो, कि वह तुम्हें सब जगह दिखाई पड़ने लगता है। हर तरफ उसका हाथ, हर जगह उसकी प्रतीति, हर जगह उसका एहसास होने लगता है। आस्तिकता धन्यवाद की परम स्थिति है। नास्तिकता शिकायत का आखिरी रूप है।

नानक यह कह रहे हैं कि जब दाता देता ही चला जाता है, लेनेवाले लेते-लेते थक जाते हैं लेकिन दाता नहीं थकता। युग-युगांतर से जीव उसका भोग कर रहे हैं, पर उसका अन्त नहीं है।

तुम उसे कितना ही भोगो, तुम उसे चुका न पाओगे। तुम्हारा भोग ऐसा ही है जैसे चम्मच ले कर कोई सागर के किनारे बैठा हो, और चम्मच से सागर को खाली कर रहा हो। यह भी हो सकता है, कि कभी न कभी वह सागर को खाली कर ले। क्योंकि चम्मच की भी सीमा है और सागर की भी सीमा है। लेकिन तुम परमात्मा को खाली न कर पाओगे। क्योंकि उसकी कोई सीमा नहीं।

अनन्त काल से तुम भोग रहे हो। अनेक रूपों में तुम भोग रहे हो और तुम्हारे हृदय से धन्यवाद की आवाज भी नहीं उठी! तुमने एक बार आकाश की तरफ आँखें उठा कर न कहा कि मैं धन्यभागी हूँ और तूने जो दिया है वह अपरंपार है। जब भी तुम उसके पास गये, शिकायत लेकर गये। और जब भी तुमने कुछ कहा, नाराजगी जाहिर की। जब भी तुम गये तुमने ऐसा बताया, कि तुम्हारी योग्यता ज्यादा है और तुम्हें मिला कम है।

कुछ दिन हुए, एक बड़े अधिकारी दिल्ली से मुझे मिलने आये। बड़े से बड़े पद पर हैं। लेकिन जितने बड़े पद पर हों, उतनी शिकायत बढ़ जाती है। क्योंकि वे सोचते हैं, उनको मंत्री होना चाहिये। प्रधान मंत्री होना चाहिये। वे मुझसे कहने लगे, "और सब तो ठीक है, कोई रास्ता बतायें जिससे मेरे साथ जीवन में जो अन्याय हुआ है, उसको मैं सहने में समर्थ हो जाऊँ।"

अन्याय क्या हुआ है? अन्याय यह हुआ है, कि जो मुझे मिलना चाहिये था वह नहीं मिला। जिस पद के मैं योग्य हूँ उससे नीचे रह गया।

सभी को ऐसा लगता है। इसलिये हर आदमी इस दुख में जीता है कि जो मुझे मिलना चाहिये वह नहीं मिला। मैं योग्य तो था कि वाइस चान्सेलर हो जाता, और गाँव में एक स्कूल में मास्टर हो गये। योग्य तो था कि मालिक हो जाता, बना हूँ चपरासी। और यह स्थिति सदा बनी रहती है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जो प्रधान मंत्री बन जाता है वह भी सोच रहा है कि अब... मेरी

योग्यता तो इससे भी बड़ी है, लेकिन अब विस्तार का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता, कि मैं सारी दुनिया का मालिक कैसे हो जाऊँ!

तुम सिकंदरों को तृप्त नहीं कर सकते। और सभी सिकंदर हैं, छोटे, मोटे, बड़े; लेकिन सिकंदर हैं। सभी की बड़ी आकांक्षा है। और आकांक्षा तुमसे आगे जाती है। तुम हमेशा पीछे रहते हो। और योग्यता तुम्हें सदा ज्यादा मालूम पड़ती है। यह अधार्मिक आदमी का लक्षण है।

धार्मिक आदमी का लक्षण यह है कि जो मिल जाय, वह मेरी योग्यता से ज्यादा है। थोड़ा सोचो, देखो। जो तुम्हें मिला है, तुम्हारी योग्यता से ज्यादा है या कम? वह सदा ज्यादा है। वह सदा ही ज्यादा है। क्योंकि कुछ भी हमने अर्जित नहीं किया है। यह विराट जीवन हमें यूँ ही मिला दान में। हमने माँगा तक नहीं था, बिना माँगे मिला है। फिर भी अहोभाव पैदा नहीं होता।

नानक कह रहे हैं, उसको युग-युग तक भोग कर भी हम चुका नहीं पाते। वह हुक्मी हुक्म से पथ निर्देश करता है।

यह बड़ी गहरी चाबी है। और नानक के विचार का बड़ा महत्त्वपूर्ण हिस्सा इसमें छिपा है। वह यह है.. "**हुकमो हुकमु चलाए राह**"

वह हुक्म से दुनिया को चला रहा है, और हमेशा तुम्हें हुक्म देता है। अगर तुम्हारे पास थोड़ी भी सुनने की समझ हो तो तुम उसके हुक्म को समझ सकते हो। उसके अनुसार चल सकते हो। तुम सुनते ही नहीं।

तुम चोरी करने जाते हो, भीतर से वह तुमसे कहता है, "मत करो।" एक बार कहता है, दो बार कहता है, हजार बार कहता है। तुम जाते ही जाते हो, तुम करते ही जाते हो। फिर धीरे-धीरे वह आवाज धीमी होती जाती है। तुम बहरे हो जाते हो। फिर तुम्हें वह सुनाई भी नहीं पड़ती। फिर भी वह आवाज दिये जाता है।

तुम ऐसा पापी न खोज सकोगे, जिसके भीतर आवाज खो गई हो, हुक्म खो गया हो। तुम ऐसा बुरा आदमी न खोज सकोगे, जिसको वह अब भी आवाज न दे रहा हो। वह कभी थकता नहीं और कभी निराश नहीं होता। तुम कितना ही बुरा करो, परमात्मा तुमसे निराश नहीं है। और वह तुम्हें कभी भी इस स्थिति में नहीं मान लेता कि अब कुछ भी नहीं हो सकता। तुम असाध्य कभी भी नहीं हो उसके लिये। तुम्हारा रोग कितना ही बढ़ जाय, उसका इलाज संभव है। परमात्मा की अनन्त आशा, अनन्त संभावना है। वह तुमसे कभी निराश नहीं होता।

ऐसा हुआ; एक सूफी फकीर हुआ बायजीद। उसके पड़ोस में एक आदमी था, जो बड़ा बुरा आदमी था। लटेरा, चोर, बेईमान, दगाबाज, हत्यारा...सब

तरह के पाप उसने किये थे। पूरा गाँव उससे त्रस्त था। एक दिन बायजीद ने प्रार्थना की। परमात्मा से कहा, "मैंने तुझ से कभी कुछ नहीं माँगा। लेकिन यह आदमी अब बहुत ज्यादा उपद्रव कर रहा है। इस आदमी को हटा ले।"

तो बायजीद ने भीतर से आवाज सुनी कि मैं उससे नहीं थका तो तू उससे क्यों थक गया है? और मुझे जब अब भी उसपर भरोसा है, तो तू भी भरोसा रख।

कितने ही पाप तुमने किये हों, कितने ही जन्मों तक, परमात्मा को तुम थका नहीं सकते। न भोग से चुका सकते हो, न पाप से थका सकते हो। वह अब भी आवाज दिये जाता है। वह कभी निराश नहीं होता।

और अगर तुम जरा शान्त होकर सुनो, उसकी धीमी आवाज तुम्हें सुनाई पड़ेगी। और जब भी तुम कुछ करते हो, वह आवाज तुम्हें निर्देश देती है।

नानक कह रहे हैं, वह हुक्मी हुक्म से पथ निर्देश करता है।

इसलिये तो वे उसको हुक्मी कह रहे हैं। क्योंकि उसका हुक्म आता है। तुम्हारे हृदय में दबा हुआ जो अन्तःकरण है, वह उसकी आवाज का यन्त्र है। वहाँ से वह बोलता है। कुछ भी करने के पहले आँख बन्द करके पहले उसकी आवाज सुन लेना। और अगर तुम उसकी आवाज के अनुसार चले, तो तुम्हारे जीवन में आनंद की अपरंपार वर्षा होगी। अगर तुम उसके विपरीत चले तो तुम नर्क अपने हाथ निर्मित कर लोगे। अगर तुमने आवाज न सुनी तो तुमने पीठ कर दी। तुम बड़ा खतरनाक कदम ले रहे हो। कुछ भी करने के पहले, और कुछ भी निर्णय करने के पहले, आँख बन्द करके उससे पूछ लेना। यही तो सारे ध्यान का सूत्र है, कि पहले हम पूछेंगे, पहले हम हुक्म खोजेंगे, फिर हम चलेंगे। एक भी कदम हम बिना हुक्म के न उठायेंगे। आँख बन्द करके उसकी आवाज पहले सुन लेंगे। हम अपनी आवाज से न चलेंगे, उसकी आवाज से चलेंगे।

और एक दफे तुम्हें यह कुंजी मिल जाय, तो यह कुंजी अनन्त द्वार खोल देती है। और यह कुंजी तुम्हारे भीतर है। हर बच्चा लेकर आता है। लेकिन बुद्धि का हम विकास करवाते हैं, अन्तःकरण का कोई विकास नहीं। कांसियन्स —अन्तःकरण अधूरा रह जाता है, अविकसित रह जाता है। और उसके ऊपर हम बुद्धि के इतने विचार थोप देते हैं, इतनी बड़ी पर्त लगा देते हैं कि आवाज गूँजती भी रहे तो हमें पता नहीं चलती।

भीतर की इस आवाज़ को सुनने की कला ही ध्यान है। उसके हुक्म का पता लगाना जरूरी है। वह क्या चाहता है? उसकी क्या मर्जी है?

'वह हुक्मी हुक्म से पथ निर्देश करता है।' और नानक कहते हैं,

"हुकमी हुकमु चलाए राह, नानक विगसै बेपरवाह।"

नानक कहते हैं, वह बेपरवाह है और आनन्दित है। एक तो परवाह का अर्थ होता है चिन्ता। वह तुम्हें दिये जाता है लेकिन दे कर कोई अपेक्षा नहीं करता। कोई उत्तर नहीं चाहता। आवाज़ दिये जाता है। तुम सुनो या न सुनो, दिये जाता है। परवाह नहीं करता इस बात कि, की तुम नहीं सुन रहे हो, बन्द करो। बहुत हो गया। इस आदमी को हटा लो।

परमात्मा को तुम चिन्तित नहीं कर सकते। इसलिये जिस व्यक्ति को परमात्मा की प्रतीति होने लगती है, तुम उसे भी चिन्तित नहीं कर सकते। He will be both simultaneously concerned and unconcerned। वह तुम्हारी परवाह भी करेगा और बेपरवाह भी होगा। तुम उसे चिन्तित नहीं कर सकते।

इधर मैं हूँ। न मालूम कितने लोगों की परवाह करता हूँ, फिर भी बेपरवाह हूँ। तुम आते हो अपना दुःख ले कर। मैं पूरी परवाह करता हूँ, लेकिन उससे तुम मुझे चिन्तित नहीं कर देते। तुम्हारे दुःख से मैं दुःखी नहीं हो जाता। क्योंकि अगर तुम्हारे दुःख से मैं दुःखी हो जाऊँ तो फिर मैं तुम्हें साथ ही न दे पाऊँगा। ज़रूरी है कि मैं तुम्हारे दुःख को सहानुभूति से समझूं। तुम्हारे दुःख के लिये उपाय करूँ, उपाय सोचूँ लेकिन परवाह मुझे पैदा न हो। तुम्हारी चिन्ता मुझे न पकड़े।

और यह भी ज़रूरी है, कि कल जो मैंने तुम्हें बताया है वह न कर आओ, मुझमें नाराज़गी न आये, कि मैंने इतनी परवाह ली और तुमने नहीं किया। तुम जब आओ कल बिना किये — और आओगे ही बिना किये! तो फिर तुमसे परवाह लूँ लेकिन मैं बेपरवाह रहूँ।

परमात्मा को सारे जगत की परवाह है। वह सदा राजी है तुम्हें उठाने को। लेकिन किसी जल्दी में नहीं है। और तुम अगर सोचते हो कुछ देर भटकने का मज़ा लेना है, तो वह बेपरवाह है।

उसकी परवाह का अन्त नहीं है, लेकिन उसकी परवाह अनासक्त है। और इसलिये तो वह आनन्दित है। नहीं तो अब तक किस हालत में हो जाता! पागल हो जाता। तुम सोचो, तुम सरीखे कितने लोग, कितने तरह के उपद्रव, और परमात्मा एक और तुम अनेक! तुमने उसे कभी का पागल कर दिया होता। अस्तित्व बेपरवाह हो, तो ही पागल होने से बच सकता है।

लेकिन बेपरवाह का अर्थ इनडिफरन्स नहीं है, उपेक्षा नहीं है। यह बड़ा सूक्ष्म है। तुम्हारे प्रति पूरी की पूरी चेष्टा है। तुम्हें बदलने, रूपान्तरित करने, तुम्हें उठाने का पूरा भाव है। लेकिन भाव अनाक्रामक है। वह आक्रमण नहीं करेगा। वह प्रतीक्षा करेगा। ऐसे ही, जैसे सूरज तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रहा है, किरणें तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रही हैं और तुम दरवाजा बंद किये अन्दर बैठे हो, तो सूरज जबरदस्ती नहीं घुसेगा, रुकेगा। और ऐसा भी नहीं, कि नाराज हो कर लौट जाय। इस आदमी का दरवाजा बंद है, चलो। अब कभी यहाँ नहीं आयेंगे। रुकेगा, तुम जब दरवाजा खोलोगे, प्रवेश कर जायेगा।

परमात्मा तुम्हारे लिये चिन्तित है, अस्तित्व तुम्हारे लिये चिन्तित है। होगा ही। क्योंकि अस्तित्व तुम्हें पैदा करता है। अस्तित्व तुम्हें विकसित करता है। अस्तित्व की बड़ी आकांक्षायें हैं तुममें। अस्तित्व की बड़ी अभीप्सायें हैं तुममें। अस्तित्व तुम्हारे भीतर से चेतन होने की चेष्टा कर रहा है। अस्तित्व तुम्हारे भीतर से बुद्धत्व पाने की चेष्टा कर रहा है। परमात्मा तुम्हारे भीतर कुछ फूल लाने के प्रयास में लगा है। लेकिन अगर तुम देरी कर रहे हो तो उससे वह चिन्तित नहीं होगा, परेशान न होगा। वह अस्पर्शित रहेगा।

तुम उसकी न सुनोगे..... न सुनोगे..... न सुनोगे..... भटकोगे। और सब करोगे सिवाय उसकी सुनने के, तो भी वह उससे पीड़ित और परेशान न होगा। अगर तुम समझ सको दोनों बातें एक साथ, तभी तुम समझ सकते हो कि अस्तित्व आनंद से भरा है। परमात्मा आनंद है।

नानक कहते हैं, "**हुकमी हुकमु चलाए राह**। देता है हुक्म, राह बताता है, फिर भी, "**नानक विगसै बेपरवाह**।" लेकिन फिर भी बेपरवाह है। और परम आनंद में विकसित होता रहता है। खिलता रहता है उसका फूल।

कठिन है हमें। क्योंकि दो बातें हमें आसान दिखाई पडती हैं; या तो हम परवाह करते हैं, तो चिन्ता पैदा होती है। या परवाह छोड़ दें, तो चिन्ता छूट जाती है। इसीलिये तो हमने संसार और संन्यास को अलग-अलग कर लिया है। क्योंकि अगर घर में रहेंगे, परवाह करेंगे, तो परवाह करते हुए बेपरवाह कैसे होंगे? पत्नी की फिक्र होगी, बीमार होगी, तो चिन्ता पकड़ेगी, रात सो न सकेंगे। बच्चा रुग्ण होगा तो फिक्र पकड़ेगी, चिन्ता पकड़ेगी, इलाज करना पड़ेगा और नहीं ठीक हो सकेगा तो पीड़ा होगी। तो हम भाग जाते हैं। न दिखाई पड़ेंगे पत्नी-बच्चे, भूल जायेंगे। जो आँख से ओझल हुआ, वह चित्त से भी भूल जाता है। तो भाग जाते हैं पहाड़। पीठ कर लेते हैं। धीरे-धीरे विस्मृति हो जायेगी।

दो बातें हमें दिखाई पड़ती हैं। अगर हम संसार में रहेंगे तो परवाह करेंगे। परवाह करेंगे तो चिन्ता होगी। चिन्ता में आनन्द का कोई उपाय नहीं। तो फिर हम ऐसा करेंगे, बेपरवाह हो जायें। छोड़ कर भाग जायें। वहाँ चिन्ता न होगी, तो आनन्द की संभावना बढ़ेगी।

लेकिन यह परमात्मा का मार्ग नहीं। इसलिये नानक गृहस्थ बने रहे और संन्यस्त भी। फिक्र भी करते रहे और बेफिक्र भी। और यही कला है, और यही साधना है, कि तुम चिन्ता भी पूरी लेते हो और निश्चिन्त बने रहते हो। बाहर-बाहर सब करते हो भीतर-भीतर कुछ नहीं छूता। बेटे की फिक्र लेते हो, पढ़ाते हो। बिगड़ जाये तो, न पढ़ पाये तो, हार जाये तो..... तो इससे चिन्ता पैदा नहीं होती।

और जब तक तुम दोनों को न जोड़ दो, संसार में रहते हुए संन्यस्त न हो जाओ, तब तक तुम परमात्मा तक न पहुँच सकोगे। क्योंकि परमात्मा का ढंग यही है। वह संसार में छिपा हुआ है और संन्यस्त है। जो उसका ढंग है, छोटी मात्रा में वही ढंग तुम्हारा चाहिये। तभी तुम उस तक पहुँच पाओगे।

बच्चा बीमार है तो दवा दो, पूरी चिन्ता लो, लेकिन चिन्तित होने की क्या जरूरत है? पूरी फिक्र करो, परवाह पूरी करो, लेकिन इससे भीतर की बेपरवाही को मिटाने का क्या कारण है?

बाहर-बाहर संसार में, भीतर-भीतर परमात्मा में। परिधि छूती रहे संसार को, केन्द्र बना रहे अछूता। यही सार है।

इसीलिये नानक से लोग बड़े परेशान थे। क्योंकि वे थे गृहस्थ और कपड़े-लत्ते पहन लिये थे संन्यासी जैसे। लोग समझ ही न पाते कि मामला क्या है? हिन्दू पूछते कि तुम गृहस्थ हो कि संन्यासी? कि तुम बातें संन्यासी की करते हो, तुम्हारा ढंग-डोल संन्यासी का है फिर घर, बच्चे-पत्नी है। तुम घर वापिस भी लौट जाते हो, बच्चा भी हुआ है, गाँव लौट कर तुम खेती-बाड़ी भी करते हो। तुम किस भाँति के संन्यासी हो?

स्मरण रहे, वही उनसे मुसलमान पूछते कि तुम्हारा वेष तो फकीरी का है फिर तुमने घर-गृहस्थी छोड़ क्यों न दी? अनेक जगह, अनेक गुरुओं ने उनसे कहा कि तुम सब छोड़ कर हमारे शिष्य हो जाओ। छोड़ दो सब। लेकिन नानक उस मामले में कभी भी फर्क नहीं लाये। वे सब के बीच रहते हुए सब के बाहर रहने की कला को ही साधते रहे। और वही परमात्मा का ढंग है। वही साधक का ढंग होना चाहिये।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, कि आप क्या कर रहे हैं? गृहस्थों को संन्यासी के कपड़े दे रहे हैं?

परमात्मा का ढंग यही है। वह इस संसार में है और नहीं है। और यही तुम्हारा सूत्र भी होना चाहिये।

"हुकमी हुकमु चलाए राह, नानक विगसै बेपरवाह।"

विकास कर रहा है, आनंदित हो रहा है, प्रफुल्लित हो रहा है, फूल की तरह खिल रहा है, फिर भी कोई परवाह नहीं। फिक्र करता है तुम्हारी, लेकिन चिन्तित नहीं है।

इसे तुम थोड़ा प्रयोग करोगे तो ही समझ में आ सकेगा। इसे थोड़ा जिंदगी में प्रयोग करो। दूकान जाओ, काम करो, लेकिन दूर भी बने रहो। तुम्हारे काम और तुम्हारे होने में एक फासला बना रहे। काम अभिनय हो जाये, नाटक हो जाये, लीला हो जाये। तुम कर्ता न रहो, बस! सूत्र सध गया। तुम अभिनेता हो जाओ। अभिनय की कला तुम्हारे जीवन का पूरा सूत्र बन जाये। क्योंकि वही परमात्मा के होने का ढंग है। वही तुम्हारा साधना पथ होगा।

• • •
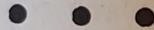
साचा साहिबु साचु नाइ

प्रवचन ३, दिनांक २३-११-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी ४ :

साचा साहिबु साचु नाइ । भाखिया भाउ अपारु ।।
आखहि मंगहि देहि देहि । दाति करे दातारू ।।
फेरि कि अगै रखीऐ जितु दिसै दरबारु ।।
मुहौ कि बोलणु बोलीऐ । जित सुणि धरे पिआरु ।।
अमृत वेला सचु नाउ । वडिआई वीचारु ।।
करमी आवे कपड़ा । नदरी माखु दुआरु ।।
"नानक" एवै जाणिए । सभु आपे सचिआरु ।।

पउड़ी ५ :

थापिया न जाई कीता न होई । आपे आप निरंजन सोई ।।
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु । "नानक" गावीऐ गुणी निधानु ।।
गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ । दुख परहरि सुखु घर लै जाउ ।।
गुरु मुखि नादं गुरु मुखि वेदं । गुरुमुखि रहिआ समाई ।।
गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा । गुरु पारबती माई ।।
जे हउ जाणा आखा नाहीं । कहणा कथनु न जाई ।।
गुरा एक देहि बुझाई --
सभना जीआ का इकु दाता । सो मैं विसरि न जाई ।।

'साहब सच्चा है, उसका नाम सच्चा है, उसका गुणगान अशेष भावों में किया जाता है। गुणगान करते हैं लोग। 'और दो, और दो' करके माँग करते हैं और दाता देता ही चला जाता है। फिर उसके आगे क्या रखा जाये, कि उसके दरबार का दर्शन हो ? और हम कौनसी बोली बोलें जिसे सुन कर वह प्यार करे ? अमृत बेला में सत्य नाम की महिमा का ध्यान करो। कर्म से शरीर मिलता है। कृपा दृष्टि से मोक्ष का द्वार खुलता है। नानक कहते हैं, इस प्रकार जानो कि सत्य ही, परमात्मा ही सब कुछ है।'

"साहब" नानक का परमात्मा के लिये दिया गया शब्द है। परमात्मा के साथ हम दो तरह से जुड़ सकते हैं। एक तो दार्शनिकों की परमात्मा के संबंध में चर्चा है। लेकिन उनके शब्द प्रेम से अधूरे हैं। उनके शब्द सूखे हैं। उनके शब्द बौद्धिक हैं, हार्दिक नहीं।

दूसरा भक्त का मार्ग है; उसके शब्दों में रस है। वह परमात्मा को एक सिद्धांत की तरह नहीं, एक संबंध की तरह देखता है। वह उससे कुछ संबंध जोड़ता है। क्योंकि जब तक संबंध न जुड़ जाये तब तक हृदय प्रभावित नहीं होता। परमात्मा का नाम हम कह सकते हैं सत्य। लेकिन "साहब" में जो बात है वह सत्य में न होगी। सत्य से हम कैसे जुड़ेंगे ? हमारा क्या संबंध होगा ? हमारा हृदय और सत्य के बीच कौन सा सेतु बनेगा ?

लेकिन साहब प्यार का संबंध है। साहब होते ही परमात्मा प्रियतम हो गया। अब हम जुड़ सकते हैं। अब रास्ता खुला है। अब हम दौड़ सकते हैं। सत्य कितना भी ठीक हो फिर भी भक्त के लिये रूखा-सूखा है। भक्त चाहता है कुछ, जिसके साथ स्पर्श हो सके। भक्त चाहता है कुछ, जिसके आसपास नाच सके,

गा सके। भक्त चाहता है कुछ जिसके चरणों में सिर रख सके। "साहब" प्यारा नाम है। उसका अर्थ है मालिक, उसका अर्थ है स्वामी। फिर संबंध बहुत ढंग के हो सकते हैं।

सूफियों ने परमात्मा को प्रेयसी माना है, तो साधक प्रेमी हो जाता है। हिन्दुओं ने, यहूदियों ने, ईसाइयों ने परमात्मा को पिता माना है, तो साधक बेटा हो जाता है। नानक ने परमात्मा को साहब माना है, तो साधक दास हो जाता है।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि इन सभी संबंधों का मार्ग भिन्न-भिन्न होगा। प्रेमी के साथ हम एक ही तल पर खड़े होते हैं। प्रेमी न तो ऊपर होता है न नीचे। प्रेमी और प्रेयसी एक ही तल पर खड़े होते हैं। कोई ऊपर नहीं और कोई नीचे नहीं। पिता और बेटे के बीच जो संबंध है, वह संस्कारगत है। चूंकि हम किसी पिता के घर पैदा हुए हैं इसलिये एक संबंध है। मालिक हम खुद होना चाहते हैं और हमारी चले तो परमात्मा को दास बना लें। तो अहंकार मिटाने के लिये दास की भावना से बड़ी कोई भावना नहीं हो सकती। न तो पिता के संबंध में अहंकार गिरेगा, न प्रेयसी-प्रेमी के संबंध में अहंकार गिरेगा। अहंकार तो गिर सकता है सिर्फ दास की भावना में, कि मैं गुलाम हूँ और तू मालिक है।

और यह सबसे कठिन है। क्योंकि यही अहंकार के विपरीत स्थिति है। अहंकार मानता है, मैं मालिक हूँ, सारा अस्तित्व मेरा गुलाम है। भक्त कहेगा, सारा अस्तित्व मालिक है, मैं गुलाम हूँ। यही वास्तविक शीर्षासन है। सिर को जमीन में करके पैर ऊपर करके खड़े हो जाना असली शीर्षासन नहीं है—अहंकार को नीचे करके! क्योंकि वही सिर है। उसको नीचे करके खड़े हो जाना दास की भावना है। इसलिये दास ही ठीक-ठीक शीर्षासन करता है। वह उलटा हो जाता है। और जैसे तुमने दुनिया को अब तक देखा है मालिक होने के ढंग से, तो दुनिया को तुमने कुछ और ही पाया है।

भिखारी तुमसे माँगता है। क्या उसके माँगने से कभी कोई तुम्हारे मन में और उसके बीच कोई संबंध स्थापित होता है? किसी तरह का लगाव बनता है? उलटी ही हालत होती है। उसके माँगने से तुम खिंच जाते हो और अगर देते भी हो तो बेमन से देते हो। और दुबारा ध्यान रखते हो कि उस रास्ते से संभल कर निकलना है। जब कोई माँगता है तब तुम सिकुड़ते हो, देना नहीं चाहते। और जब कोई माँगता नहीं तभी देने का मन होता है।

तुम जरा अपने को ही समझो तो परमात्मा की तरफ जाने के रास्ते साफ हो जायें। जब कोई तुमसे माँगता है तब तुम देना नहीं चाहते, क्योंकि उसकी माँग छीन-झपट मालूम होती है। वह आक्रमण कर रहा है। सब माँग आक्रमण

है। लेकिन जब तुमसे कोई माँगता नहीं, तब तुम हलके होते हो, तब तुम सहज दे सकते हो।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा है कि जब तुम गाँव में भिक्षा के लिये जाओ तो माँगना मत। सिर्फ द्वार पर खड़े हो जाना। अगर कोई प्रतिउत्तर न मिले तो आगे बढ़ जाना; माँगना मत।

और यही तो भिक्षु और भिखारी में भेद है। भिक्षु को हमने महासम्मान दिया, जो हमने सम्राटों को नहीं दिया। और भिखारी को हम आखिरी जगह रखे हुए हैं। मान तो दूर, उसे हम अपमान देने के योग्य भी नहीं मानते। उससे हम नजर बचा कर निकलते हैं। बुद्ध से भिक्षुओं ने पूछा कि बिना माँगे कोई कैसे देगा? बुद्ध ने कहा, बिना माँगे ही दुनिया में चीजें मिलती हैं। माँगे, कि मुश्किल में पड़े। क्योंकि जब तुम माँगते नहीं तब तुम दूसरे को आतुर करते हो देने के लिये। जब तुम माँगते हो तब तुम दूसरे में संकोच पैदा करते हो।

तुम अपने जीवन के सभी संबंधों में इस कहानी को छिपा हुआ पाओगे। पत्नी कुछ माँगती है, देना मुश्किल हो जाता है। लाते हो तो बेमन से। सिर्फ कलह टालने को। वह प्रेम का संबंध न रहा। वह सिर्फ उपद्रव से बचने की व्यवस्था है। पत्नी माँगती ही नहीं, कभी नहीं माँगती, तब तुम्हारा हृदय प्रफुल्लित होता है। तब तुम कुछ लाना चाहते हो। तब तुम उसे कुछ देना चाहते हो। देना तभी सम्भव हो पाता है जब कोई न माँगे।

तुम परमात्मा से टूटे हो तुम्हारी माँग के कारण। और तुम्हारी सब प्रार्थनाएँ "दो, और दो" से भरी हैं। तुम परमात्मा का उपयोग एक सेवक की तरह करना चाहते हो। तुम कहते हो, मेरे पैर में दर्द है, दूर करो। तुम कहते हो, आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, ठीक करो। तुम कहते हो पत्नी बीमार है, स्वस्थ करो। नौकरी खो गयी है, नौकरी दो। तुम परमात्मा के द्वार पर सदा भिखमंगे की तरह पहुँचते हो, माँगते पहुँचते हो। तुम्हारा माँगना ही बताता है कि साहब तुम अपने को समझ रहे हो और परमात्मा को तुम दास समझ रहे हो। वह तुम्हारी जरूरतें पूरी करने के लिये है। और तुम्हारी जरूरतें इतनी महत्त्वपूर्ण हैं, कि तुम परमात्मा को भी सेवा में रत करना चाहते हो।

नहीं, अगर परमात्मा साहब है और तुम गुलाम हो, तो माँग क्या? और मजा यह है कि तुम माँगते हो और वह देता चला जाता है। ऐसा भी नहीं है कि तुम्हारे माँगने से न मिलता हो; मिलता चला जाता है। लेकिन जितना तुम पाते हो उतना ही तुम उससे दूर हटते जाते हो। क्योंकि तुम और माँगोगे। जितना मिलेगा और माँगोगे। जितना तुम माँगोगे, दूर हटते जाओगे।

माँग कभी भी प्रार्थना नहीं बन सकती। वासना कभी भी प्रार्थना नहीं बन सकती। चाह कभी भी उपासना नहीं बन सकती। प्रार्थना का तो सूत्र ही यही है कि तुम वहाँ धन्यवाद देने जाते हो, माँगने नहीं। उसने पहले ही बहुत दे रखा है। जितनी जरूरत है उससे ज्यादा दे रखा है। जितनी योग्यता है उससे ज्यादा दे रखा है। प्याली पहले से ही भरपूर है और बह रही है।

वास्तविक भक्त उसे धन्यवाद देने जाता है। उसकी प्रार्थना अहोभाव है। वह कहता है कि तुमने मुझे बहुत दिया है। मेरी योग्यता क्या थी! और तुम कहते हो, देखो मेरी योग्यता को, मेरे साथ अन्याय हो रहा है। मुझे और दो। और यह "और" कहीं समाप्त न होगा।

नानक कहते हैं, 'लोग माँगते रहते हैं और दाता देता चला जाता है फिर भी उनकी माँग का कोई अन्त नहीं होता।'

"आखहि मंगहि देहि देहि, दाति करे दातारू"

और वह दे रहा है। और माँगनेवाले माँगते चले जाते हैं। माँग अनंत है। उसके अंत होने का कोई उपाय नहीं। अगर तुम माँगते ही रहे तो प्रार्थना कब करोगे? पूजा कब शुरू होगी? क्योंकि माँग का कोई अंत नहीं है। एक माँग पूरी होती है, दस खड़ी हो जाती हैं। एक वासना समाप्त नहीं हुई कि दस को जन्म दे जाती है। तुम माँगते ही रहोगे, उपासना कब होगी? धन्यवाद कब दोगे? कितने जन्मों से तुम माँग रहे हो। अभी भी तुम भरे नहीं?

तुम कभी भरोगे ही नहीं। क्योंकि भरना मन का स्वभाव नहीं है। मन सदा अतृप्त ही रहेगा। वह उसका स्वभाव है। मन छूट जाये तो तृप्ति होती है। मन रहे तो अतृप्त। मन कभी तृप्त नहीं होता। कोई तुम ऐसा आदमी न पा सकोगे जो कहे कि मेरा मन तृप्त हो गया। और अगर कभी तुम ऐसा आदमी पाओ जो कहे कि मेरा मन तृप्त हो गया है तो तुम गौर से देखना, उसके पास मन होगा ही नहीं।

मन क्या है? मन तुम्हारी सब माँगों का जोड़ है। "देहि, देहि"; "दो और दो, और दो", इन सारी माँगों के जोड़ का नाम मन है। मन से बड़ा भिखमँगा इस जगत में कोई भी नहीं है। कितना ही मिले, कोई अंतर नहीं पड़ता। सिकंदर भी माँग रहा है। रास्ते का भिखारी भी माँग रहा है। मन का स्वभाव समझ लेना जरूरी है।

और मन से तो प्रार्थना कैसे होगी? प्रार्थना का नाम ही अमनी अवस्था है। प्रार्थना का अर्थ है कि तुम माँगने नहीं गये, तुम धन्यवाद देने गये हो। सारी दृष्टि बदल गयी। जैसे ही मन को तुम हटाओगे, तुम पाओगे कि इतना मिला है अब और क्या चाहिये। मन को बीच में लाये कि लगेगा बिलकुल

कुछ नहीं मिला है, सब चाहिये। मन देखता है अभाव को। मन के हटते ही दर्शन होता है भाव का।

इसे ऐसा समझो, एक आदमी है, उसे तुम गुलाब के फूलों की झाड़ी के पास ले जाओ, उसे सिर्फ काँटे दिखाई पड़ते हैं। वह गिनती करता है काँटों की। उसे फूल दिखता ही नहीं। तुम कितना ही उसे दिखाओ; वह कहेगा जहाँ हजार काँटे हैं, वहाँ एक फूल हुआ भी तो क्या? और जहाँ हजार काँटे लगे हुए हैं, वह आदमी कहेगा, सँभलकर फूल को पकड़ना, वह भी काँटों का ही धोखा होगा।

उसका तर्क ठीक भी है। क्योंकि जहाँ काँटे ही काँटे लगे हैं वहाँ फूल लगेगा कैसे? कहाँ काँटे, कहाँ फूल! और जब हजार काँटों में छिद चुका होगा उसका मन तो उसे डर पैदा हो जायेगा। वह फूल पर भी भरोसा न कर पायेगा। आस्था न कर सकेगा। वह कहेगा कोई भ्रम हो रहा है, कोई सपना है। मैं किसी भूल में पड़ा हूँ। या कोई मुझे धोखा दे रहा है। या किसी ने फूल ऊपर से चिपका दिया है। फूल हो कैसे सकता है जहाँ काँटे ही काँटे हैं? अगर काँटों की गिनती करो तो फूल पर भी श्रद्धा चली जाती है।

अगर फूल की गिनती करो, अगर फूल में लीन हो जाओ, अगर फूल की सुगन्ध लो, फूल का स्पर्श तुम्हें पुलकित कर दे तो दूसरी अवस्था पैदा होती है। तुम कहोगे जहाँ इतना प्यारा फूल लगा है, वहाँ काँटे हो कैसे सकते हैं? और अगर हों भी तो फूल की रक्षा के लिये होंगे। और अगर हों भी तो फूल के सहयोगी, साथी होंगे। और अगर हों भी तो परमात्मा की कोई मर्जी होगी। शायद फूल बिना काँटों के नहीं हो सकता, इसलिये काँटे हैं। वे सुरक्षा हैं, वे पहरेदार हैं। वे फूल को बचा रहे हैं।

और फूल में तुम्हारा रस बढ़ता जाये, बढ़ता जाये तो एक दिन तुम पाओगे कि वही रस फूलों में चल रहा है जो काँटों में बह रहा है। इसलिये उनमें विरोध कैसे हो सकता है? मन देखता है काँटों को; मन देखता है क्या नहीं है। मन देखता है कहाँ शिकायत है; मन देखता है कहाँ भूल है। मन देखता है कहाँ कमी है। मन देखता है असंतोष, अतृप्ति। माँग खड़ी हो जाती है। इसलिये मन से भरा जो जाता है मंदिर में, वह माँगने जाता है। वह भिखारी है।

अगर तुम मन को थोड़ा अलग कर के देखो तो पाओगे फूलों को; तो तुम पाओगे जीवन की ऊर्जा को। तब तुम पाओगे जीवन के अहोभाव को। इतना मिला है, पहले से ही इतना मिला है, शिकायत का उपाय कहाँ?

और जिसने इतना दिया है अगर उसने कुछ बचा रखा है तो उस बचाने में कुछ राज होगा। अगर उसने कुछ बचा रखा है तो उस बचाने में कोई कारण

होगा। शायद मैं अभी तैयार नहीं। शायद अभी योग्यता चाहिये। शायद अभी मैं पात्र नहीं हूँ।

और समय के पहले कुछ ऊपर आ जाये तो सुख नहीं लाता, दुख लाता है। हर चीज का समय है। हर चीज की परिपक्वता है। जब मैं पकूँगा तब वह देगा। क्योंकि उसके देने का इतना अपरंपार है मार्ग। उसके हाथ हजारों फैले हुए हैं।

हिन्दू परमात्मा की हजारों हाथों से कल्पना करते हैं। उस कल्पना में बड़ा प्यार है। वह कहते हैं कि वह हजार हाथों से देता है। दो हाथ नहीं हैं उसके। तुम ले न पाओगे। तुम्हारे दो हाथ हैं। तुम कितना सँभालोगे? वह हजार हाथों से दे रहा है लेकिन ठीक समय; समय की ठीक प्रतीक्षा, शिकायत का अभाव—और वर्षा होनी शुरू हो जाती है।

नानक कहते हैं, गुणगान भी करते हैं लोग, तो "दो, दो" कर माँगते चले जाते हैं। और दाता देता ही चला जाता है। और अंधों को दिखाई ही नहीं पड़ता। और माँगते ही रहते हैं कि "दो, और दो"। चारों तरफ वर्षा हो रही है और लोग चिल्लाते रहते हैं कि हम प्यासे हैं। जैसे शिकायत से मोह बन गया है। जैसे दुख से लगाव बन गया है।

"फिर उसके आगे क्या रखा जाये कि उसके दरबार का दर्शन हो?"

यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। नानक कह रहे हैं कि उसने इतना दिया है, माँगने को कुछ छोड़ा नहीं। जब शिकायत हट जाती है और अहोभाव पैदा होता है और तुम धन्यवाद देने जाते हो तो क्या रखें उसके चरणों में? क्या भेंट ले जायें उसके द्वार पर?

"फेरि कि अगै रखीए, जितु दिसै दरबारु"

उसके दरबार में हम क्या रखें? धन्यवाद देने के लिये क्या भेंट ले जायें? क्या चढ़ायें उसके चरणों में? कैसे करें पूजा? कैसे करें अर्चना? तुम फूल ले जाते हो तोड़ कर—उसके ही फूल। बेहतर थे वृक्ष पर; जीवित थे। तुमने तोड़ कर मार डाले। उसके ही फूल मार कर तुम उसीके ही चरणों में चढ़ा आते हो। और तुम्हें शर्म भी नहीं आती। तुम उसे दोगे क्या? सब उसका ही दिया हुआ है।

तुम धन लगाकर मंदिर खड़ा कर दो, नया गुरुद्वारा बना दो, मस्जिद निर्मित कर दो, पर तुम कर क्या रहे हो? उसीकी दी हुई चीजों को वापस लौटा रहे हो। फिर भी तुम अकड़े नहीं समाते हो। तुम कहते हो, "मैंने मंदिर बनाया। मैंने इतने गुरुद्वारे बनाये। मैंने इतना भोजन बाँटा। मैंने इतने वस्त्र बाँटे।" तुम अकड़ते हो। तुम थोड़ा सा दे क्या देते हो, तुम्हारे अहंकार का अंत नहीं होता।

इससे क्या खबर मिलती है? इससे खबर मिलती है कि तुम समझ ही न पाये कि जीवन ने जो तुम्हें दिया है उसे वापस लौटाने में तुम्हारा क्या है? तुम यह भेंट देने जा रहे हो और शर्मिंदा भी नहीं हो।

उसके चरणों में क्या रखें? नानक पूछते हैं उसके आगे क्या रखें, कि उसके दरबार का दर्शन हो? कि हम उसके निकट आ जायें, हमारी भेंट स्वीकार हो जाये। क्या रखें? केसर में रंगे हुए चावल? खरीदे गये फूल? तोड़े हुए पत्ते? धन, दौलत, क्या रखें?

नहीं, कुछ भी रखने से न चलेगा। अगर तुम यह समझ जाओ कि सभी उसका है, बस! भेंट स्वीकार हो गयी। जब तक तुम यह समझ रहे हो कि कुछ मेरा है तभी तुम रखने की बात सोच रहे हो। जब तुम समझते हो मैं खुद मालिक हूँ, चाहूँ तो भेंट कर सकता हूँ, तभी तक तुम भूल से भरे हो। तुम कुछ भी रख दो, सारा साम्राज्य रख दो अपना, तो भी तुमने कुछ रखा नहीं। क्योंकि सभी उसका था। तुम उसके हो। तुमने जो कमा लिया, तुमने जो इकट्ठा कर लिया, वह भी उसीका खेल है।

तो नानक कहते हैं, क्या रखें कि तेरे दरबार का दर्शन हो? कि तेरी प्रतीति मिले? कि तेरा साक्षात् हो, कि तेरी आँख से आँख मिले? क्या लायें तुझे चढ़ाने को? अगर तुम्हें यह समझ में आ जाये सभी उसका है, कुछ ले जाने की जरूरत न रही। फूल वृक्षों पर ही उसी के चढ़े हुए हैं। सब उसी को चढ़ा हुआ है। चाँद-तारे उसको चढ़े हुए हैं। तुम्हारे घी के दिये क्या करेंगे और अब? चाँद-सूरज उसको चढ़े हुए हैं। तुम थोड़े घी के दीये जला कर चढ़ा दोगे तो क्या होगा? व्यक्ति अगर ठीक से आँख खोल कर देखे तो सारा अस्तित्व उसकी अर्चना में है। यही तो अर्थ है "साहब" का। वह सब का मालिक है, सब उसको चढ़ा हुआ है।

इसलिये नानक कहते हैं, क्या लायें? यह प्रश्न है नानक का। क्या चढ़ायें? मुँह से कौन सी बोली बोलें जिसे सुन कर वह प्यार करे? क्या कहें उससे? किन शब्दों का उपयोग करें? कैसे उसे रिझायें? कैसे उसे राजी करें? कैसे हम करें कुछ कि उसका प्यार बरसे?

उत्तर नानक नहीं देते मालूम पड़ते हैं। प्रश्न उठा कर छोड़ दिये हैं। वही कला है। क्योंकि वे यह कह रहे हैं कि हम कुछ भी बोलें, वही हम से बोल रहा है। उसके ही शब्द उसी को चढ़ायें इस में क्या कुशलता है? उसका ही बासा कर के उसीको लौटा दें? यह सिर्फ अज्ञानी कर सकता है। ज्ञानी तो पाता है कि चढ़ाने को कुछ भी न बचा क्योंकि मैं खुद भी चढ़ा हुआ हूँ। और ज्ञानी पाता है कि कोई शब्द उसकी प्रार्थना न बन सकेंगे क्योंकि सभी शब्द उसके हैं।

वही बोल रहा है। वही धड़क रहा है हृदय में। वही श्वासों की श्वास है। तो फिर ज्ञानी क्या करे ?

"नानक कहते हैं, अमृत वेला में सत्य नाम की महिमा का ध्यान करो।" कुछ करने को नहीं है और। समझदार क्या करे ? अमृत वेला में सत्य नाम की महिमा का ध्यान करो।

यह थोड़ा समझ लेना ज़रूरी है। जिसे हिन्दू संध्या कहते हैं, उसे नानक ने अमृत वेला कहा है। संध्या से भी कीमती शब्द अमृत वेला है। हिन्दू तो हज़ारों सालों से श्रम कर रहे हैं जीवन के सत्य की खोज, चैतन्य की खोज; और कहाँ-कहाँ से मार्ग हो सकते हैं। ऐसा कुछ भी हिन्दुओं ने छोड़ा नहीं है, जो छूट गया हो; जो उनकी जानकारी में न आया हो। हज़ारों साल के बाद हिन्दुओं को पता चला धीरे-धीरे, उपनिषद् उसकी चर्चा करते हैं कि चौबीस घंटे में दो संध्या क्षण हैं।

रात जब तुम सोने जाते हो तो सोने और जागने के बीच एक क्षण ऐसा है जब न तो तुम सोये होते हो, न जागे होते हो। उस समय जैसे तुम्हारी चेतना गेयर बदलती है। अगर तुम कार चलाते हो, तो तुम्हें पता है कि एक गेयर से दूसरी गेयर में गाड़ी डालते वक्त बीच को क्षण भर को गाड़ी न्यूट्रल गेयर से गुज़रती है। एक गेयर से दूसरे गेयर में जाते वक्त क्षण भर को गाड़ी किसी गेयर में नहीं होती।

नींद और जागरण दो अवस्थाएँ हैं; बिलकुल अलग। एकदम अलग। जागे में तुम कुछ और हो जाते हो। जागते तुम दुखी थे, रो रहे थे, दीन थे, दरिद्र थे; नींद में तुम सम्राट हो जाते हो। और संदेह भी नहीं आता कि मैं भिखारी कैसे सम्राट होने का सपना देख रहा हूँ! तुम बिलकुल दूसरे गेयर में हो। चेतना का बिलकुल दूसरा तल है, जिसका पहले तल से कोई संबंध न रह गया। नहीं तो थोड़ी तो याद आती। थोड़ा तो स्मरण होता कि मैं भिखमँगा और यह क्या देख रहा हूँ कि मैं सम्राट हो गया ? नहीं, जब तुम सपना देखते हो, सपने पर पूरा भरोसा आता है। ऐसा लगता है कि बारह घंटे जाग कर तुमने जो जीवन जिया था, वह जीवन अलग प्रकोष्ठ है। और रात तुम सो कर जो जीवन देख रहे हो वह अलग प्रकोष्ठ है। तुम दूसरी ही दुनिया में चले आये। दिन में तुम साधु थे, रात तुम असाधु हो। कि दिन में असाधु थे, रात साधु हो गये। संदेह भी पैदा नहीं होता। कभी तुम्हें सपने में संदेह पैदा हुआ है ? अगर सपने में संदेह पैदा हो जाये, तो सपना उसी वक्त टूट जायेगा। क्योंकि संदेह जागरण है, चेतना का हिस्सा है। सपने में संदेह भी पैदा नहीं होता। यह भी ख्याल नहीं आता कि मैं सपना देख रहा हूँ। अगर यह ख्याल आ जाये कि यह सपना है तो सपना तत्क्षण टूट जायेगा।

बहुत सी परंपराएँ हैं साधकों की, जो साधक को यह सूत्र देती हैं साधना का, कि तुम रात जब सोओ तो यह ख्याल रखो कि यह सपना है...यह सपना है... यह सपना है। कोई तीन साल लग जाते हैं तब कहीं यह याददाश्त मजबूत होती है। और जिस दिन साधक को पता चल जाता है कि यह सपना है, उसी वक्त सपना टूट जाता है। और न केवल एक सपना टूटता है, उसके बाद सपने आने बंद हो जाते हैं। क्योंकि अब उसके गेयर अलग-अलग नहीं रहे। अब उसके प्रकोष्ठ इकट्ठे हो गये। अब वह सोया हुआ भी जागा हुआ है। यही तो कृष्ण कहते हैं कि योगी उस समय भी जागता है जब तुम सोये हो। उसके जो दो कमरे अलग-अलग थे, उसने बीच की दीवार हटा दी। दोनों कमरे एक हो गये।

रात तुम जब नींद में उतरते हो, सोने से सुबह फिर तुम जागते हो, ये दो घड़ियाँ हैं जब तुम्हारी चेतना बदलती है। एक क्षण को मध्य काल होता है। उसको हिन्दू संध्या काल कहते हैं। उसी को नानक ने अमृत वेला कहा है। अमृत वेला इसलिये कहा है..

संध्या काल तो वैज्ञानिक शब्द है। संध्या का अर्थ है मध्य का; न यहाँ का, न वहाँ का; न इसका, न उसका। उस संध्या काल में क्षण भर को तुम परमात्मा के निकटतम होते हो। इसलिये हिन्दुओं की प्रार्थना संध्या काल का उपयोग करना चाहती है। उसी को नानक अमृत वेला कह रहे हैं।

अमृत वेला और भी प्यारा शब्द है। क्योंकि उस क्षण तुम अमृत के करीब होते हो। शरीर तो मरणधर्मा है। शरीर के ही एक यंत्र से तुम जागते हो और शरीर के ही दूसरे यंत्र से तुम सोते हो। सब सपने शरीर के हैं। सब जागना–सोना शरीर का है।

इस शरीर के पीछे तुम छिपे हो जो न कभी सोता है, न कभी जागता है। क्योंकि जो सोया ही नहीं, वह जागेगा कैसे ? न कभी सपने देखता है क्योंकि सपने देखने के लिये सोना ज़रूरी है। इन शरीर की अवस्थाओं के पीछे छिपा है अमृत; जो न कभी पैदा होता है, न कभी मरता है। अगर तुम संध्या काल को पकड़ने में समर्थ हो जाओ तो तुम्हें शरीर के भीतर छिपे हुए अशरीरी का पता चल जायेगा। दास के भीतर छिपे हुए साहब का पता चल जाएगा। तुम दोनों हो। अगर तुम शरीर को ही देखते हो तो दास हो; अगर शरीर के भीतर छिपे मालिक को देखते हो तो साहब हो।

तो नानक कहते हैं कि बस एक ही काम करने योग्य है। मंदिरों में माँगने से कुछ न होगा। पूजा, अर्चना, चढ़ाने से कुछ न होगा। फूल-पत्ते रखने से कुछ न होगा क्योंकि उसीका उसीको भेंट कर आने में कौन सी कुशलता है? कौनसी बड़ाई है? एक ही करने जैसी प्रार्थना है। एक ही पूजा-अर्चना है और वह है–अमृत वेला में सत्य नाम की महिमा का ध्यान करो।

"अमृत वेला सचु नाउ, वडिआई वीचारू"।

यह जो संध्या काल है...लेकिन एक क्षण का है। और तुम्हारा मन कभी भी वर्तमान में नहीं होता। इसलिए तुम उसे चूक जाते हो। रोज वह आता है। हर बारह घन्टे के बाद वह घड़ी आती है जब तुम परमात्मा के निकटतम होते हो। लेकिन तुम उसे चूक जाते हो क्योंकि तुम्हारी नजर उतने बारीक क्षण को पकड़ने में अभी कुशल नहीं है। तुम वर्तमान में होते ही नहीं।

तुम यहाँ बैठे मुझे सुन रहे हो या कि तुम जा चुके दफ्तर और तुमने काम शुरू कर दिया ? या कि तुम अपनी दूकान पर पहुँच गये और अपना व्यवसाय शुरू कर दिया ? मैं जो कह रहा हूँ वह तुम सुन रहे हो या कि उसके संबंध में विचार कर रहे हो? अगर तुम उसके संबंध में विचार कर रहे हो तो तुम यहाँ नहीं हो। वर्तमान क्षण से तुम चूक जाओगे।

इस अमृत वेला को पकड़ना हो तो प्रतिपल सजगता से जीना जरूरी है। तुम भोजन करो तो सिर्फ भोजन करो और कोई विचार मन में न चले। तुम स्नान करो तो सिर्फ स्नान करो और कोई विचार मन में न चले। तुम दूकान जाओ तो दूकान ही रहे और कोई विचार न चले। घर भूल जाये। घर जाओ तो दूकान भूल जाये। तुम एक-एक क्षण में जब जाओ तो पूरे वहाँ रहो, यहाँ वहाँ नहीं। तब धीरे-धीरे तुम्हारी दृष्टि सूक्ष्म होगी। और तुम वर्तमान क्षण को, प्रेज़ेन्ट मोमेंट को देखने में समर्थ हो पाओगे।

इसके बाद ही अमृतवेला में तुम ध्यान कर सकोगे क्योंकि वह तो बहुत बारीक क्षण है। एक झटके में बीत जाता है। तुम कुछ और सोचते रहते हो, वह उसी वक्त बीत जाता है।

सोने के पहले पड़े रहो बिस्तर पर। सब तरह से मन को शांत कर लो। विचार यहाँ-वहाँ न ले जा रहे हों। नहीं तो जब क्षण आयेगा, तब तुम वहाँ मौजूद न रहोगे। तुम किसी चिंता-विचार में खोये रहोगे। सब तरह से अपने को शांत कर लो। मन बिलकुल सूना हो जाये, वहाँ कोई विचार न घूमता हो। कोई बादल न घूमता हो। नील गगन जैसा हो जाये मन—खाली, सून। और देखते रहो; क्योंकि खाली सूना होने के साथ खतरा है कि तुम सो जाओ। देखते रहो भीतर क्या घट रहा है। बराबर तुम खटके की एक आवाज सुनोगे। जैसे गेयर बदल रहा है। लेकिन गेयर बहुत सूक्ष्म है। अगर विचार चल रहे हैं तो तुम सुन ही न पाओगे। बराबर तुम देखोगे, कि दिन रात में बदल रही है, रात दिन में बदल रहा है; सोना नींद बन रहा है, नींद जागना बन रही है ..और तुम दोनों से अलग देखने वाले हो। वह देखने वाला ही अमृत है। तुम देखोगे अपने भीतर जागरण गया इस द्वार से, निद्रा आयी। तुम सुबह पाओगे नींद गयी,

जागरण आया। और जब तुम नींद और जागरण दोनों को देख सकोगे, तुम दोनों से अलग हो गये। तुम द्रष्टा हो गये। यही अमृत क्षण है। इसे नानक कहते हैं, इस अमृत वेला में बस, उसकी महिमा का भाव रहे।

महिमा का अर्थ है "साचा साहब, साचा नाम।" बस, उसकी महिमा का भाव रहे। शब्द भी नहीं। अगर तुम जपुजी दोहराते रहे तो भी चूक जाओगे। इसे भी ख्याल में रख लेना कि महिमा का अर्थ शब्द नहीं है। महिमा एक भावदशा है। तुमने अगर कहा कि तू अपरंपार है, तू महान है, तू ऐसा है, वैसा है—इसी बकवास में तुम चूक जाओगे। वह क्षण बारीक है। पर इसे थोड़ा समझना कठिन है।

तुमने कोई भाव जाना? तुम कभी किसी के प्रेम में उतरे? तो क्या ज़रूरी है कहना कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ? जब तुम अपने प्रेमी के पास हो तो क्या बार-बार दोहराना ज़रूरी है कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, कि तुम बड़े सुंदर हो, कि तुमसे सुन्दर और कोई भी नहीं? इन शब्दों से तो बातें थोथी और ओछी हो जाती हैं। सच तो यह है कि तुम जब यह कहते हो, तभी प्रेम की महिमा खो गयी। ये शब्द उस महिमा को नहीं ला सकते।

तुम प्रेमी के पास होते हो तो तुम चुपचाप बैठते हो। लेकिन हृदय में एक भाव गूँजता रहता है प्रेमी की महिमा का। वह भाव है, शब्द नहीं। शब्द तो मस्तिष्क में गूँजते हैं, भाव हृदय में गूँजता है। तुम पुलकित होते रहते हो, तुम आनंदित होते हो, तुम अकारण प्रसन्न होते हो। कुछ वजह नहीं होती और तुम पाते हो भरे हुए हो। कुछ खाली नहीं है। तुम परिपूर्ण होते हो। और तुम्हारी यह परिपूर्णता, तुम्हारी यह ओवर फ्लोइंग, बाढ़ की तरह तुम्हारी बहती हुई यह प्रेम की धारा प्रेमी अनुभव करता है। प्रेमियों को तुम सदा चुप पाओगे। पति-पत्नियों को तुम सदा बातचीत करते पाओगे क्योंकि पति-पत्नी डरते हैं चुप होने से। चुप हुए तो सब संबंध टूट जाता है। बातचीत का ही सब संबंध है। अगर पति चुप है तो पत्नी समझती है, क्यों तुम चुप हो? क्या बात है? अगर पत्नी चुप है तो पति सोचता है कुछ गड़बड़ है। चुप वे होते ही तब हैं जब वे लड़ते हैं। अन्यथा वे बोलते रहते हैं।

इसे थोड़ा सोचना। तुम चुप होते ही तब हो जब तुम्हारा झगड़ा चल रहा है। बातचीत बंद है। लेकिन जब तुम ठीक होते हो तब तुम बातचीत करते रहते हो। तुम मौन का उपयोग झगड़े के लिये करते हो। और मौन का उपयोग बड़े से बड़े प्रेम के लिये करना है।

जब दो प्रेमी सचमुच प्रेम में होते हैं, वे इतने गद्‌गद्‌ होते हैं कि बोलने को कुछ बचता नहीं। आँसू बह सकते हैं। उस गद्‌गद्‌ भाव में वे हाथ एक दूसरे के

हाथ में ले सकते हैं। वे एक दूसरे के आलिंगन में हो सकते हैं। लेकिन वाणी खो जायेगी। प्रेमी गूंगे हो जाते हैं। बोलना ओछा मालूम पड़ता है। बोलना भी विघ्न मालूम पड़ता है। बोले तो यह जो गहन शांति घिर रही है यह टूट जायेगी। बोले तो जो यह तार बन गया है हृदय का, यह छिन्न-भिन्न हो जायेगा। बोले कि कँप जायेगी सागर की सतह, और लहरें उठ आयेंगी। इसलिये प्रेमी चुपचाप हो जाते हैं।

उस क्षण में, अमृत वेला में, महिमा का विचार नहीं करना है, शब्द नहीं बाँधने हैं। महिमा का भाव करना है। अहोभाव, मूकभाव, कि परमात्मा ने सब दिया है। और तुम भरे-पूरे हो। कुछ भी नहीं चाहिये और तुमसे धन्यवाद बह रहा है।

"हम मुँह से कौनसी बोली बोलें कि जिसे सुनकर वह प्यार करे।"

कुछ बोलने को नहीं है। उससे हम क्या कहेंगे? सब कहना व्यर्थ है।

"सत्य नाम की महिमा का ध्यान करो।" सत्य नाम से भर जाओ। और तुम पाओगे एक तालमेल हो गया इस बीच के क्षण में, जब दिन जा रहा है रात आ रही है; जागरण जा रहा है, निद्रा आ रही है; तुम सजग हो गये। तुम चौंक जाओगे। तुम पाओगे तुम प्रकाश की एक लपट हो गये। जिसका न कोई प्रारंभ है न कोई अंत है। जो सदा सच है, जो शाश्वत है। उस लपट में ही जीवन के द्वार खुलते हैं और उस प्रकाश में ही सत्य जो छिपा है, अनावृत होता है।

"कर्म से शरीर मिलता है।"

तब उस घड़ी में तुम जानोगे कि कर्म से शरीर मिलता है और कृपा-दृष्टि से मोक्ष का द्वार खुलता है। यह जो शरीर है यह तुम्हारे किये हुये का फल है। यह तुमने कर-कर के पाया है।

यहाँ कई बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात : कुछ चीजें हैं जो तुम कर के कभी नहीं पा सकते। क्षुद्र को कर के पाया जा सकता है। विराट को कर के नहीं पाया जा सकता। कबीर ने कहा है, "अनकिये सब होय।" उस विराट को पाने के लिये तुम्हें अनकिये की अवस्था में होना चाहिये। तुम सब पा सकते हो जो क्षुद्र है, कर्तृत्व से। जो विराट है वह अकर्तृत्व से उपलब्ध होता है। दोनों की दिशा अलग है। स्वाभाविक भी है, तर्कयुक्त भी है।

मैं जो भी करूँगा वह मुझसे बड़ा न होगा। कैसे होगा? कृत्य कभी कर्ता से बड़ा हुआ है? मूर्ति कभी मूर्तिकार से बड़ी हुई है? कविता कभी कवि से बड़ी हुई है? यह असंभव है। जो तुमसे निकलेगा वह तुमसे छोटा हो सकता है। ज्यादा से ज्यादा तुम्हारे बराबर हो सकता है लेकिन तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम परमात्मा को कैसे पाओगे? तुम्हारे कर्तृत्व से कुछ भी न होगा। और तुम जितनी पाने की कोशिश करोगे, उतने ही तुम भटकोगे।

इसी भटकाव को छिपाने के लिये तो तुमने मूर्तियाँ गढ़ ली हैं मंदिरों में। मूर्ति हम गढ़ सकते हैं। परमात्मा को गढ़ने का तो कोई उपाय नहीं है। परमात्मा हमें गढ़ता है। मूर्ति हम गढ़ते हैं। परमात्मा हमें बनाता है, मंदिर हम बनाते हैं। मंदिर क्षुद्र है। वह तुम्हारे हाथ की कृति है। तुम्हारी कृति में विराट कैसे पाया जा सकेगा? तुम्हारी कृति तुमसे बड़ी न होगी। तुम्हारी कृति में तुम ही तो रहोगे। तुम्हारे ही हाथ की छाप होगी। उस पर परमात्मा का हस्ताक्षर नहीं हो सकता।

हाँ, तुम्हारी कृति में भी कभी-कभी परमात्मा का हस्ताक्षर हो सकता है—जब तुम उसके हाथों में अपने को छोड़ दो; वह करे और तुम केवल उपकरण हो जाओ। बिरला के मंदिर में तुम उसको न पा सकोगे। वह मंदिर बिरला का है। उसका भगवान से क्या लेना-देना? अगर वह भगवान का मंदिर होता, तो बिरला का कैसे हो सकता था? हिन्दू के मंदिर में तुम उसे न पा सकोगे, वह हिंदू का मंदिर है। अगर वह परमात्मा का मंदिर होता, तो हिंदू का मंदिर उसे क्यों तुम कहते? सिक्ख के गुरुद्वारे में तुम उसे न पा सकोगे, वह सिक्ख का गुरुद्वारा है।

परमात्मा के मंदिर का कोई नाम नहीं हो सकता। क्योंकि वह अनाम है। उसका मंदिर भी अनाम होगा। तुम जो भी बनाओगे, कितना ही सुंदर बना लो, सुवर्ण मंदिर बना लो, लेकिन आदमी के हाथ की छाप वहाँ होगी। तुम्हारा मंदिर दूसरे मंदिरों से बड़ा हो, तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम्हारे मंदिर में तभी वह प्रगट हो सकता है जब तुम बिलकुल अप्रगट हो जाओ। तुम्हारी छाप ही न मिले।

अभी तक हम जमीन पर ऐसा मंदिर बनाने में समर्थ नहीं हो सके, जिसमें आदमी के हाथ की छाप न हो। सब मंदिर किसीके हैं। बनानेवाला बहुत प्रगाढ़ होकर वहाँ है। कोई मंदिर उसका नहीं है। सच तो यह है कि उसके मंदिर बनाने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि यह सारा अस्तित्व उसका मंदिर है। पक्षियों में वह कल-कल कर रहा है। वृक्षों में फूल खिला रहा है। हवाओं में बह रहा है। नदियों में उसीका शोर है। गगन उसीका विस्तार है। तुम उसीमें उठी हुई लहरें हो। उसका मंदिर तो बड़ा है। तुम कैसे छोटे मंदिर में उसे समाओगे?

आदमी कर्म से बहुत कुछ कर सकता है। पश्चिम उसका प्रतीक है। उन्होंने कर्म से बहुत कुछ कर लिया है। अच्छे रास्ते बना लिये, अच्छे मकान बना लिये। वैज्ञानिक उपकरण खोजे। हाइड्रोजन बम बना लिया। मौत का बड़ा आयोजन कर लिया, सब कर लिया। लेकिन परमात्मा से बिलकुल वंचित हो गये।

और जितना-जितना उन्होंने कृत्य किया, जो-जो चीज़ें अकर्ता भाव से पैदा होती हैं, वे सब खो गयीं। सबसे पहले पश्चिम से परमात्मा खो गया। तो नीत्से ने सौ साल पहले घोषणा की, "God is dead" ईश्वर मर चुका। पश्चिम के लिये निश्चित मर गया क्योंकि जब तुम कर्म से बहुत भर गये, तो उससे तुम्हारा सारा संबंध टूट गया, मरे के बराबर हो गया। पहले ईश्वर खो गया और जब ईश्वर खो गया, तो प्रार्थना थोथी हो गयी। ध्यान ओछा हो गया। कुछ सार न रहा। किसका ध्यान? कैसा ध्यान? किसलिये? कर्म सब कुछ हो गया। ध्यान तो अक्रिय अवस्था है, जब तुम कुछ भी नहीं करते।

इसलिये पश्चिम में लोग सोचते हैं पूरब के लोग काहिल हैं, सुस्त हैं। नानक के पिता भी यही सोचते थे कि नानक काहिल और सुस्त है। बैठा-बैठा क्या कर रहा है? पिता के पास व्यवसायी बुद्धि थी, तो लगता था कि यह लड़का एक उपद्रव है। न कुछ काम करता न कुछ धाम करता, न कुछ कमाता; इसके भविष्य के संबंध में पिता चिंतित थे। कई बार काम खोजे। सब जगह से बेकाम होकर लौट आया। कुछ नहीं सूझा। पढ़ा-लिखा नहीं क्योंकि पंडित से विवाद हो गया। और पंडित खुद आकर लड़के को वापस पहुँचा गया कि अपने बस के बाहर है क्योंकि यह कहता है आखिरी शब्द हो गया अब और क्या बचा? और पंडित को भी लगा कि कहता तो ठीक है कि अब इसके पार और क्या पढ़ने को है? और नानक ने पूछा कि और पढ़-पढ़ कर क्या होगा? पढ़-पढ़ कर क्या उसको पाया जा सकता है? तुमने उसे पा लिया है? पंडित ने कहा कि पढ़-पढ़ कर तो उसे नहीं पाया जा सकता। मैंने भी उसे पाया नहीं। तो नानक ने कहा, "फिर हम वही रास्ता खोजेंगे जिससे उसे पाया जा सकता है।"

कबीर कहते हैं, "पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ा सो पंडित होय।"

तो नानक ने कहा कि हम भी वे अढ़ाई अक्षर पढ़ेंगे, जिनको पढ़कर लोग ज्ञान को उपलब्ध हो जाते हैं। अब हम यह इतना लंबा किसलिये पढ़ें! इस पढ़ाई का तो प्रयोजन भी दूसरा है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन अपने स्कूल जाता था बच्चों को पढ़ाने। अपने गधे पर बैठ कर जाता था। कई वर्षों से उसी गधे पर आ जा रहा था। स्कूल की हवा गधे को भी लग गयी। एक दिन रास्ते में गधे ने पूछा, "मुल्ला, स्कूल किसलिये रोज जाते हो?"

मुल्ला पहले डरा। फिर उसने सोचा कि कई मैंने बोलने वाले गधे देखे हैं, तो यह गधा बोलने वाला गधा मान लेना चाहिये। घबड़ाने की कोई इतनी जरूरत नहीं है। फिर लगता है इसको स्कूल की हवा लग गयी है। गधा बोलने लगा है। अपनी ही भूल है। रोज स्कूल ले जाते रहे, हवा लग गयी।

मुल्ला ने पूछा, "क्या करेगा जान कर?"

उस गधे ने कहा, "मैं जानना चाहता हूँ कि रोज स्कूल क्यों जाते हो? जिज्ञासा उठ गयी है।"

मुल्ला ने कहा, "स्कूल पढ़ाने जाता हूँ।"

गधे ने पूछा, "पढ़ने से क्या होगा?"

मुल्ला ने कहा, "अक्ल आती है पढ़ने से।"

गधे ने पूछा, "अक्ल से क्या होगा?"

मुल्ला ने कहा, "अक्ल से क्या होगा? अक्ल से मैं तुझ पर सवार हूँ।"

तो गधे ने कहा, "फिर मुल्ला, मुझे भी पढ़ा दो और अक्ल दे दो।"

मुल्ला ने कहा, "ना भाई। क्योंकि तू मुझ पर सवार हो जायेगा। हरगिज नहीं।"

इस दुनिया में तो हम जो पढ़ रहे हैं एक दूसरे पर सवारी करने के उपाय हैं। यहाँ पढ़ना तुम्हारे संघर्ष का आयोजन है। तुम ठीक से लड़ सकोगे अगर तुम्हारे पास डिग्रियाँ हैं। तुम दूसरों के कंधों पर सवार हो सकोगे अगर तुम्हारे पास डिग्रियाँ हैं। ये विद्यालय तुम्हारे हिंसा के फैलाव हैं। इनके कारण तुम ज्यादा कुशलता से शोषण कर सकोगे। दूसरों को व्यवस्था से सता सकोगे। कानून से जुर्म कर सकोगे। नियम से, विधि से वह सब कर सकोगे जो कि नहीं करना चाहिये। सारी पढ़ाई-लिखाई बेईमानी का प्रशिक्षण है। तुम लोगों पर सवार हो सकोगे। इससे कभी कोई ज्ञानी तो नहीं हुआ। इससे तो लोग अज्ञानी होते चले जाते हैं। हमारे विद्यालय अविद्यालय हैं। वहाँ ज्ञान तो कभी घटता नहीं।

तो नानक को उनका स्कूल का अध्यापक पंडित छोड़ गया घर, कि यह अपने बस के बाहर है।

नानक का जनेऊ हो रहा था, तो सारा समारंभ हो रहा था। सब लोग आ गये थे, बैंड बाजे बज चुके थे। पंडित सूत्र पढ़ चुका था। फिर वह गले में जनेऊ डालने लगा तो नानक ने कहा, "रुको। इस जनेऊ के डालने से क्या होगा?" उस पंडित ने कहा कि इस जनेऊ डालने से तुम द्विज हो जाओगे। नानक ने पूछा, कि द्विज का क्या अर्थ है? 'द्विज का अर्थ है, दूसरा जन्म।' क्या इस सूत के धागे को डाल लेने से दूसरा जन्म हो जायेगा? क्या मैं नया हो जाऊँगा। क्या पुराना मर जायेगा और नये का जन्म हो जायेगा? अगर यह होता हो तो मैं तैयार हूँ।

पंडित भी डरा। क्योंकि माला गले में डाल लेने से जनेऊ की क्या होने को है? फिर नानक ने पूछा कि यह जनेऊ अगर टूट गया तो? उसने कहा कि बाजार में और मिलते हैं। इसको फेंक देना, दूसरा ले लेना।

तो नानक ने कहा कि फिर यह रहने ही दो। जो खुद ही टूट जाता है, जो बाजार में बिकता है, जो दो पैसे में मिल जाता है, उससे उस परमात्मा की क्या खोज होगी? जिसको आदमी बनाता है, उससे परमात्मा की क्या खोज होगी? आदमी का कृत्य छोटा है।

नानक के पिता कालू मेहता को यही लगता था, यह लड़का बिगड़ गया है। सब उपाय कर डाले। फिर कुछ रास्ता न बचा तो गाँव में आखिरी उपाय रहता है कि इसको घर के गाय-भैंस चराने भेज दो। नानक को भेज दिया गाय-भैंस चराने। वह बड़े खुशी से गये। वहाँ ध्यान लग गया। वृक्ष के नीचे महिमा में डूब गये। गाय-भैंस पड़ोसियों के खेत चर गयीं। दूसरे दिन वह भी रोक देना पड़ा। आखिर बाप को पक्का हो गया कि इससे कुछ होने जाना नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है कि इस दुनिया में जो लोग कुछ कर पाते हैं वे उस दुनिया से वंचित रह जाते हैं। और जो उस दुनिया को पाने के हकदार होते हैं, करीब-करीब इस दुनिया में कुछ भी करने में समर्थ नहीं होते। ऐसा नहीं कि उनसे कुछ होता नहीं, लेकिन उनके होने का और करने का गुण अलग है। वे उपकरण हो जाते हैं। उनसे बहुत कुछ होता है।

क्या हो जाता अगर नानक ठीक से गाय-भैंस को चरा कर भी लौट आते? बहुत से लोग लौट रहे हैं। क्या हो जाता दुनिया में? क्या हो जाता कि नानक एक दूकान ठीक से चला लेते? बहुत सी दूकानें ठीक से चल रही हैं। लेकिन कृत्य के जगत से हट कर यह व्यक्ति महिमा के जगत में डूब गया।

महिमा का अर्थ है, करने वाला तू है। महिमा का अर्थ है, कि मैं क्या कर सकूँगा! और जैसे ही तुम्हें यह लग जाता है कि मैं क्या कर सकूँगा, तुम्हारा अहंकार बूंद-बूंद खोने लगता है। जिस दिन तुम्हें परिपूर्णता से प्रतीति हो जाती है कि मैं असमर्थ हूँ, मेरे किये कुछ भी न होगा, मैं असहाय हूँ, उसी क्षण मोक्ष का द्वार खुल जाता है।

नानक कहते हैं, 'कर्म से शरीर मिलता है। संसार मिलता है। कृपा दृष्टि से मोक्ष का द्वार प्राप्त होता है। नानक कहते हैं, इस प्रकार जानो कि सत्य ही, परमात्मा ही सभी कुछ है।'

परमात्मा न तो स्थापित किया जा सकता है--इसलिये मंदिर कैसे बनाओगे? न निर्मित किया जा सकता है--इसलिये मूर्तियाँ कैसे गढ़ोगे? वह निरंजन आप में ही सब कुछ है। तुम्हें उसे बनाने की जरूरत नहीं है। तुम नहीं थे, तब भी था। तुम नहीं होगे तब भी रहेगा। "आदि सचु, जुगादि सचु।" तुम उसको बनाने की फिक्र छोड़ो। पूजा, मंदिर, मूर्ति, इनसे कुछ होने वाला नहीं है।

फिर किससे होगा? जिन्होंने उसकी सेवा की, आराधना की, वे महिमा को प्राप्त हुए। अगर वही सब कुछ है तो सेवा ही प्रार्थना है। अगर वही सब कुछ है तो सेवा ही आराधना है। अगर वही सब कुछ है, उसका ही फैलाव है, तो तुम जितनी सेवा में रत हो जाओ, तुम उतने ही उसके निकट पहुँच गये। वृक्ष प्यासा है, पानी डाल दो। गाय भूखी है, घास रख दो। तुम उसीके सामने घास रख रहे हो। तुम उसीकी जड़ों में पानी डाल रहे हो।

बड़ी संवेदनशीलता चाहिये प्रार्थना करने के लिये। छोटे-मोटे मंदिर से नहीं होगा। वे तो तरकीबें हैं प्रार्थना से बचने की। यह मंदिर बड़ा है और विराट सेवा की भावदशा चाहिये। क्योंकि वही है।

जीसस ने कहा है—जब जीसस को सूली लगाने का वक्त आया, तो उनके साथियों ने, संगियों ने पूछा, "अब हम क्या करेंगे?" जीसस ने कहा, "तुम फिक्र मत करो। अगर तुम भूखे को पानी पिलाओगे तो मेरे कंठ में पानी पहुँचेगा। अगर तुम दीन की सेवा करोगे तो तुम मुझे वहाँ छिपा पाओगे।" और जीसस ने कहा है, "अगर तुम नाराज हो, और किसीसे तुमने अपशब्द कहे हैं और किसी पर तुम क्रोधित हुए हो, तो मंदिर आने में अभी कोई सार नहीं है। अगर तुम मंदिर में भी आ गये हो, तुमने घुटने भी टेक दिये और तुम्हें याद आता है कि तुम किसी के प्रति नाराज हो तो उठो, पहले उससे क्षमा माँग आओ। क्योंकि जब तक उसने क्षमा नहीं कर दिया, तब तक प्रार्थना कैसे होगी?"

चारों तरफ फैला है वही। इसलिये नानक कहते हैं जिन्होंने उसकी सेवा की, आराधना की, वे महिमा को प्राप्त हुए।

कैसी आराधना? "सेवा"--सेवा शब्द महत्त्वपूर्ण है। वह जितने गहरे तुम्हारे भीतर उतर जाये उतना अच्छा। लेकिन एक बात ध्यान रखनी जरूरी है, वह फर्क की बात है। तुम जिसकी सेवा कर रहे हो वह परमात्मा है, यह धारणा महत्त्वपूर्ण है।

तुम ऐसे भी सेवा कर सकते हो कि दीन है, गरीब है, बेचारे की सेवा कर दो। जब तुम किसी बेचारे की सेवा करते हो तब तुम ऊपर हो बिचारा नीचे है। तुम कृपा कर रहे हो, सेवा नहीं। फिर यह साधारण सामाजिक सेवा है। यह सेवा आराधना नहीं है। तुम एक सोशल वर्कर हो। लायन्स क्लब के मेम्बर हो, कि रोटेरियन हो; 'वी सर्व', सेवा हमारा लक्ष्य है। मगर तुम बड़ी अकड़ में हो। तुम एक छोटा अस्पताल बना देते हो तो तुम भारी प्रोपेगंडा मचाते हो। सामाजिक सेवा आराधना नहीं है। सामाजिक सेवा में तो तुम टुकड़े फेंक रहे हो भूखों के लिये। बड़ी दया कर रहे हो। एहसान कर रहे हो। तुम ऊपर हो, जिसकी तुमने सेवा की वह नीचे है। और उसे अनुगृहीत होना चाहिये। तब यह आराधना न रही।

सेवा तब आराधना बनती है जब तुम जिसकी सेवा कर रहे हो, वह परमात्मा है। वह साहब है, तुम दास हो। अनुगृहीत वह नहीं है; तुम हो, कि उसने मौका दिया। तुमने एक गरीब को रोटी दी और धन्यवाद भी दो।

पुराना हिन्दुओं का नियम है कि जब किसी ब्राह्मण को भिक्षा दो, फिर दक्षिणा भी दो। यह दक्षिणा क्या है? उसने भिक्षा ग्रहण की, इसका धन्यवाद है। वह ग्रहण न करता तो तुम क्या करते? तो पहले भिक्षा दो, फिर दक्षिणा दो। दक्षिणा का अर्थ है कि तुम्हारी बड़ी कृपा, कि तुमने स्वीकार की मेरी सेवा। जिस दिन तुम अनुगृहीत अनुभव करोगे उसके, जिसकी तुमने सेवा की है, तब आराधना बन गयी। तब सेवा सामाजिक बात न रही, एक धार्मिक कृत्य हो गया।

इस फर्क को ठीक से समझ लेना। अगर तुम सेवा से अकड़ गये और सेवक हो गये, तो यह नानक की आराधना न हुई। सेवा तुम्हें विनम्र करेगी। सेवा दीन को परमात्मा करेगी, तुम्हें दास बनायेगी। जो बिलकुल पीछे खड़ा है वह प्रथम हो जायेगा और तुम पीछे खड़े हो जाओगे। और सेवा का अर्थ है कि जो भी तुम्हें सेवा का मौका दे तुम उसके धन्यवादी हो।

वह निरंजन आप ही सब कुछ है।

"थापिया न जाई, कीता न होई।
आपे आप निरंजन सोई।
जिनि सेविआ, तिन पाइआ मानु।"

और जिन्होंने की सेवा उन्हें बड़ा मान मिला। बड़ी महिमा मिली। यह मान तुम्हारा अहंकार नहीं है। क्योंकि यह मान तो तभी मिलेगा जब तुम्हारा अहंकार मर जायेगा। तब वे बड़े प्रकाशित हुए। तब उनमें बुद्धत्व प्रकट हुआ। तब उनके घर का अंधेरा मिट गया और दिया जला।

"जिनि सेविआ, तिन पाइआ मानु।"

नानक कहते हैं कि उस गुणनिधान का भजन करो। उसका ही भजन करो, श्रवण करो, उसका ही भाव मन में रखो। इस प्रकार दुःख से छूट कर सुख घर ले जाओ। उस गुणनिधान का भजन, श्रवण, उसका ही भाव। तुम जो भी करो, उसे परमात्मा को समर्पित कर दो, तभी यह हो पायेगा।

दूकान पर बैठो और ग्राहक आये, तो तुम ग्राहक को मत देखो, 'उसको' ही देखो। और ग्राहक के साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा परमात्मा आया होता तो तुम उसके साथ व्यवहार करते। क्योंकि चौबीस घंटे अगर उसके भाव में डूबना है, तो इसके सिवाय कोई उपाय नहीं। भोजन करो, तो वही भोजन से तुम में प्रवेश कर रहा है। इसलिये हिंदुओं ने कहा, "अन्नम् ब्रह्म", अन्न ब्रह्म है। तुम ऐसे ही भोजन मत करो। क्योंकि वही खिला है। वही अनाज बना है।

तुम बड़े अनुग्रह भाव से उसे ग्रहण करो। और भोजन को, अन्न को जब तुम ब्रह्म मान लोगे; पानी पियोगे और वही पानी में आया है तुम्हारी प्यास को तृप्त करने को, तभी तो चौबीस घंटे उसका भजन होगा। नहीं तो कैसे होगा?

तुम जाकर गुरुद्वारा में, मंदिर में घड़ी भर भजन कर आओगे। लेकिन जब तुम भजन कर रहे हो तभी भी मन भागा-भागा है। तभी भी तुम बीच-बीच में घड़ी देख लेते हो कि समय ज्यादा हुआ जा रहा है। दूकान खोलने का समय हुआ जा रहा है। तुम कैसे उसका भजन करोगे? खंड-खंड भजन नहीं किया जा सकता कि सुबह कर लिया, कि साँझ कर लिया और चौबीस घंटे साधारण हो गये।

धार्मिक होना चौबीस घंटे का कृत्य है, भाव है। इसे तुम कभी-कभी नहीं कर सकते। न कोई धार्मिक दिवस है और न कोई धार्मिक घड़ी है। समस्त जीवन उसीका है। सब क्षण उसीके हैं। तो तुम इस ढंग से जीयो—धर्म जीने की एक अलग शैली है—तुम इस ढंग से जीयो कि तुम जो भी करो, वह किसी न किसी रूप में परमात्मा से संयुक्त हो जाये।

'नानक कहते हैं, उस गुणनिधान का भजन करो। उसका ही भजन, श्रवण उसका ही, भाव उसका ही।'

तुम मुझे यहाँ सुन रहे हो। तुम ऐसे सुन सकते हो जैसे कोई बोलने वाला बोल रहा है, और तुम ऐसे भी सुन सकते हो कि परमात्मा की आवाज आ रही है। और तत्क्षण तुम्हारे जीवन में फर्क शुरू हो जायेगा। उसका ही भाव मन में रखो। इस प्रकार दुःख से छूट कर सुख घर ले जाओगे। और तब चौबीस घंटे के बाद, मेहनत श्रम के बाद जब तुम घर लौटोगे तो दुःख की जगह सुख ले जाओगे।

अभी तुम दुःख लाते हो। अभी ग्राहक तुम्हें लूट ले गया। किसी ने तुम्हारी जेब काट ली। अभी तुमने जो भी खाया ठीक न था, शिकायत रही। तुमने जो भी पहना सुंदर न था, मजबूरी रही। अभी तुम दुःख इकट्ठा करते हो। अगर तुम्हें परमात्मा सब तरफ दिखाई पड़ने लगे और तुम जो भी करो उस सब में उसकी झलक मिलने लगे, तो नानक कहते हैं तुम सुख घर ले जाओगे।

और न केवल इस साधारण घर तुम सुख ले जाओगे, मरने के वक्त जब असली घर जाने लगोगे, तब तुम सुख ही सुख ले जाओगे। तुम आपूर जाओगे। तुम भरे-पूरे जाओगे। तब तुम रोते-रोते नहीं, नाचते-नाचते जाओगे। और मृत्यु अगर नृत्य न बन जाये तो समझ लेना कि जीवन व्यर्थ गया। अगर मृत्यु एक आनंद, उत्सव न बन जाये तो समझ लेना कि जीवन व्यर्थ गया। क्योंकि

तुम घर लौट रहे हो और घर जाते वक्त भी अगर हृदय तुम्हारा आनंद से भरा हुआ नहीं, तो जीवन में तुमने सिर्फ दुःख ही दुःख इकट्ठे किये।

"नानक गावीऐ गुणीनिधानु।
गावीऐ, सुणीऐ, मनि रखीऐ भाऊ, दुख परहरि, सुखु घर ले जाउ।"

दुःख से छूट कर तुम सुख घर ले जाओगे। अगर तुम दुःखी हो तो सिर्फ इसीलिये कि तुम परमात्मा को छोड़ कर जिंदगी चला रहे हो। उसे तुमने बाद कर रखा है। तुम अपने को ज्यादा होशियार समझ रहे हो। तुम जरूरत से ज्यादा अपने पर भरोसा कर रहे हो। इसलिये दुःखी हो। दुःख का और कोई कारण नहीं है।

और सुख का भी और कोई कारण नहीं है--जिस दिन तुम अपनी अक्लमंदी, अपनी होशियारी छोड़ दोगे और उसे देखने लगोगे और ज्यादा उसमें जीयोगे कम अपने में; और धीरे-धीरे पूरे उसमें जीयोगे, कम अपने में।

क्या जरूरत है कि पत्नी में तुम पत्नी देखो, क्यों न परमात्मा को देखो? क्या जरूरत है तुम अपने बेटे में, बेटे को अपना देखो, क्यों न परमात्मा बेटा देखो? जैसे ही दृष्टि बदलती है, वैसे ही सुख आना शुरू होता है। कल अगर तुम्हारा बेटा मर जायेगा तो तुम दुःखी होओगे। इसलिये नहीं कि बेटा मर गया, इसलिये कि तुम्हारी दृष्टि भ्रांत थी। तुम सोचते थे "मेरा बेटा"। अगर तुमने पहले से ही जाना होता कि परमात्मा का बेटा; तुम कहते कि जब उसकी मर्जी थी भेजा, उसकी मर्जी हुई उठा लिया। उसका हुक्म। और तुम हर हालत में राजी रहोगे। क्योंकि उसका बेटा था, उसने भेजा। जितने दिन भेजा, उसकी कृपा। शिकायत किससे करनी है? जब उठा लिया उसकी मर्जी। हमारा कुछ है ही नहीं। सब कुछ उसीका है। फिर तुम कैसे रोओगे? कैसे चिंतित होओगे? कैसे संताप करोगे? दे, तो तुम राजी रहोगे। ले लें, तो तुम राजी रहोगे।

क्योंकि उसके रास्ते अनूठे हैं। कभी वह तुम्हें देता है और देने के द्वारा तुम्हें निर्मित करता है। और कभी ले लेता है और लेने के द्वारा तुम्हारा विकास करता है। कभी जरूरत होती है कि तुम्हें दुःख मिले क्योंकि दुःख तुम्हें चेताता है, होश लाता है। सुख में तो तुम सो जाते हो, खो जाते हो। दुःख में तुम जाग आते हो।

एक सूफी फकीर हुआ। हसन उसका नाम था। उसके शिष्य ने एक दिन पूछा कि सुख है यह तो समझ में आता है क्योंकि परमात्मा है, वह पिता है, तो वह सुख दे रहा है, लेकिन दुःख क्यों? दुःख समझ में नहीं आता। हसन अपनी नाव में बैठा था और दूसरे पार जा रहा था। उसने शिष्य को भी नाव में बिठा लिया, कुछ बोला नहीं। और एक ही चप्पू से उसने नाव चलानी शुरू कर दी। वह नाव गोल-गोल घूमने लगी। उस युवक ने कहा, "आपका दिमाग तो खराब नहीं हो

गया? अगर एक ही चप्पू से नाव चलायी तो हम यहीं भटकते रहेंगे। इसी किनारे पर गोल-गोल घूमते रहेंगे। दूसरा चप्पू खराब है या आपका हाथ काम नहीं कर रहा? या हाथ में दर्द है तो मैं चलाऊँ।" हसन ने कहा, "तू तो समझदार है। मैं तो समझा कि नासमझ है।"

अगर सुख ही सुख होगा, तो नाव वर्तुल में घूमती रहेगी। कहीं पहुँचेगी नहीं। उसको साधने के लिये विपरीत चाहिये। दो चप्पुओं से नाव चलती है। दो पैर से आदमी चलता है। दो हाथ से जीवन चलता है। रात और दिन चाहिये। सुख और दुःख चाहिये। जन्म और मृत्यु चाहिये। अन्यथा नाव घूमती रहेगी, भँवर बन जायेगी। तुम कहीं पहुँचोगे ही नहीं।

जब कोई ठीक से देखना शुरू करता है कि सभी में वही है, तब तुम उसके दुःख को भी अहोभाव से अंगीकार करते हो। तब तुम उसके सुख को भी अंगीकार करते हो, उसके दुःख को भी। जब तुम दोनों को समान भाव से अंगीकार करते हो, तब न तो सुख सुख रह जाता है, न दुःख दुःख रह जाता है। उनकी भेद-रेखा खो जाती है। और जब तुम दोनों को समभाव से देखते हो, तुम्हारा लगाव सुख से ज्यादा और दुःख का विरोध टूट जाता है, तुम तत्क्षण अलग हो जाते हो। तुम तीसरे हो जाते हो। तुम साक्षी भाव को उपलब्ध हो जाते हो। दुःख से छूट कर तब तुम सुख घर ले जाओगे।

"गुरुवाणी ही नाद है और गुरुवाणी ही वेद है। वह परमात्मा गुरुवाणी में ही समाया हुआ है। गुरु शिव, गुरु विष्णु, गुरु ही ब्रह्मा है। जो भी मैं जानता हूँ, यदि मैं उसे पूरा भी जानता तो भी उसका वर्णन नहीं कर सकता हूँ। क्योंकि वह कथन द्वारा नहीं कहा जा सकता। लेकिन एक गुर से सारी पहेली हल हो जाती है। और वह गुर है कि सभी प्राणियों का एक ही दाता है। उसे मैं न भूल जाऊँ।"

इन्हें थोड़ा समझने की कोशिश करें। नानक ने गुरु को बड़ी महिमा दी है। सारे संतों ने गुरु को बड़ी महिमा दी है। शास्त्रों से ऊपर गुरु को रखा है। अगर गुरु कुछ कहे और वेद में न मिले तो वेद छोड़ दो। क्योंकि गुरु की वाणी वेद है। अगर गुरु कुछ कहे और शास्त्र-सम्मत न हो तो किसको छोड़ोगे? शास्त्र को छोड़ दो। क्योंकि गुरु जीवित शास्त्र है। गुरु का इतना मूल्य संतों ने किसी कारण से दिया है।

कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात, वेद भी गुरुओं के वचन हैं। लेकिन वे गुरु आज मौजूद नहीं हैं। और न ही वचन शुद्ध रह गया है। न वचन शुद्ध रह सकता है। क्योंकि संग्रहीत करने वाले अपने विचारों को मिलायेंगे ही वह उनकी मजबूरी है। वे जान कर मिलाते हैं ऐसा भी नहीं है। वे मिलायेंगे ही।

तुमसे अगर मैं कोई बात कहूँ और कहूँ कि तुम जाकर पड़ोसी को कह दो; बीच में बात से कुछ गिर जायेगा, कुछ जुड़ जायेगा। बात का ढंग बदल जायेगा। अगर तुम शब्द भी वही उपयोग करो, शत-प्रतिशत जो मैंने कहे, तो भी टोन, कहने का ढंग, एम्फेसिस बदल जायेगी। फिर तुम जब बोलोगे, तो तुम्हारा अनुभव, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारी समझ इन शब्दों में भर जायेगी।

मैं तुम्हें फूल दे दूँ हाथ में, तुम उस फूल को अपने हाथ में ले जाओ किसी को देने, लेकिन तुम्हारे शरीर की गंध भी वह फूल पकड़ लेगा। जैसे तुम्हारा हाथ फूल की गंध को पकड़ता है, वैसा फूल तुम्हारे शरीर की गंध को पकड़ेगा। वह फूल वही नहीं रह गया जो मैंने दिया था। और अगर हजारों हाथों से फूल गुजरा तो हजारों शरीरों की गंध पकड़ जायेगी। और अगर दुबारा वह फूल मेरे पास आये तो मैं भी पहचान न पाऊँगा कि यह वही फूल है जो मैंने दिया था। न तो इसमें अब वह गंध रह गयी जो मैंने दी थी। क्योंकि वह खो गयी हजारों हाथ में लग-लग कर। और वह हजारों हाथों की दुर्गंध इकट्ठी कर लायेगा। न इसकी शक्ल वह रह जायेगी जो मैंने दी थी। यह टूट-फूट जायेगा, इसकी पंखरियाँ गिर जायेंगी। अधूरा फूल मेरे पास न लाया जाये इसलिये लोग दूसरी पंखरियाँ इसमें जोड़ लायेंगे ताकि फूल पूरा हो जाय।

वेद गुरु वचन है। जिन्होंने जाना उन्होंने कहा। लेकिन फिर हजारों-हजारों साल बीत गये। उसमें बहुत कुछ जुड़ गया, बहुत कुछ हट गया। इसलिये जीवित गुरु को खोज लेना परम सौभाग्य है। किताब तो बासी हो ही जायेगी।

फिर और बड़े मजे की बात है कि किताब को जब तुम पढ़ोगे तो तुम ही तो उसका अर्थ निकालोगे। अर्थ कौन निकालेगा? तुम ही पढ़ोगे, तुम ही अर्थ निकालोगे। अर्थ तुम से तो ज़्यादा नहीं हो पायेगा। तुम्हारी समझ से पार नहीं हो पायेगा। तुम अपने ही अर्थ को किताब पर आरोपित कर दोगे।

तो गुरु तुम्हारी किताब नहीं हुई, तुम ही गुरु हो गये किताब के। शास्त्र को तुमने नहीं पढ़ा, तुम शास्त्र को ही पढ़ाने लगे। इसीलिये तो इतनी व्याख्याएँ हैं। गीता की हजारों व्याख्याएँ हैं। जो पढ़ता है, अपना अर्थ करता है। कृष्ण खड़े नहीं हैं बीच में कि रोकें; कि भाई, यह मेरा अर्थ नहीं है। कृष्ण का तो एक ही अर्थ रहा होगा। हजारों अर्थ तो नहीं हो सकते। हजारों अर्थ अगर कृष्ण के थे, तो अर्जुन पागल हो जाना चाहिये। कृष्ण का तो एक सुनिश्चित अर्थ रहा होगा। लेकिन कौन कहे वह अर्थ क्या था? अर्जुन भी नहीं कह सकता जिस ने सुना था। क्योंकि वह भी जो कहेगा, वह बदल जायेगा।

और फिर यह पूरी की पूरी गीता संजय ने लिखी है। संजय यानी 'पी. टी. आय,' 'र्यूटर रिपोर्टर।' इसने बड़े दूर बैठकर टेलीविजन से खबर पा कर कही है। वह भी अंधे धृतराष्ट्र को कही है--दूरी बढ़ती जाती है।

क्या कृष्ण अर्जुन से कहते हैं अर्जुन भी ठीक-ठीक रिपोर्ट नहीं दे सकता। वह अपने समझ के अनुसार देगा। जो उसे समझ में आया वह कहेगा। वह नहीं, जो कृष्ण ने कहा है। और यह भी खबर संजय इकट्ठी कर रहा है। संजय रिपोर्टर है। वह भी अंधे धृतराष्ट्र को कह रहा है। बहरे सुन रहे हैं, अंधों से कह रहे हैं।

फिर हजारों-हजारों साल बीत गये। फिर व्याख्याकार--वे व्याख्या कर रहे हैं। फिर एक-एक शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं। फिर गीता में कोई अर्थ नहीं रह जाता। जो तुम डालो वही अर्थ है। फिर गीता पर तुम अपने को आरोपित करते हो।

इसलिये नानक, कबीर, दादू सभी का आग्रह है--क्योंकि इनके समय तक आते-आते सारे प्राचीन शास्त्र बासे और उधार हो गये। इन सब ने एक बात पर जोर दिया है कि जीवित गुरु को खोज लो। उसकी वाणी ही वेद है। और तुम सामने-आमने बैठ कर सुनोगे तो भी बदलाहट तो हो ही जायेगी, लेकिन कम से कम।

"गुरु वाणी ही नाद है। गुरु वाणी ही वेद है। वह परमात्मा गुरु वाणी में समाया हुआ है। गुरु शिव, गुरु विष्णु, गुरु ही ब्रह्मा, वही पार्वती है।"

"गुरुमुखि नादं, गुरुमुखि बेदं, गुरुमुखि रहिआ समाई।
गुरू ईसरु, गुरु गोरखु बरमा, गुरु पारबती माई।
जे हउ जाणा आखा नाहीं, कहणा कथनु न जाई।"

जिन्होंने अपनी आँख से देखा है उस परमात्मा को, वे भी उसे ठीक से नहीं कह पाते। पूरा नहीं कह पाते। और तुम परमात्मा को किताब से खोज रहे हो? गीता, बाईबल, गुरुग्रंथ--तुम परमात्मा को किताब से खोज रहे हो। जीवित गुरु भी उसे पूरा नहीं कह पाता। नानक खुद अपने संबंध में कहते हैं कि जो मैं जानता भी, पूरा-पूरा जानता तो भी उसका वर्णन नहीं कर सकता हूँ। क्योंकि वह कथन द्वारा नहीं कहा जा सकता है।

जो कथन द्वारा नहीं कहा जा सकता, उसे तुम कथा द्वारा समझ रहे हो। जो कथन द्वारा नहीं कहा जा सकता, उसे तुम छपे हुए वचनों द्वारा समझ रहे हो। नहीं, उसकी खबर तो जीवित गुरु के पास ही मिलेगी। वह भी नहीं कि गुरु जो कहता है उससे तुम समझोगे, गुरु जो "है" उससे तुम समझोगे। गुरु की

मौजूदगी समझायेगी। गुरु का होना समझायेगा। उसके साथ होना, उसकी हवा, उसकी क्लाइमेट। गुरु के पास होना एक दूसरी हवा में होना है। कम से कम उतनी देर को संसार खो जाता है। कम से कम उतनी देर को तुम दूसरे लोक में होते हो। कम से कम उतनी देर को तुम्हारी चेतना किसी नये ढाँचे में हो जाती है। गुरु की खिड़की से थोड़ी देर को तुम झाँकने को राजी हो जाओ, उसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं है।"

"जो मैं जानता भी, तो उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता था। क्योंकि वह कथन के द्वारा नहीं कहा जा सकता है।

"जे हउ जाणा आखा नाहीं, कहणा कथनु न जाई।"

लेकिन एक गुर से सारी बात हल हो जाती है। गुर जो दे वही गुरु है। गुर का अर्थ है टेक्नीक। गुर का अर्थ है विधि, गुर का अर्थ है मैथड और वह जिस से मिल जाये, वही गुरु। एक गुर से सारी बात हल हो जाती है, सारी उलझन हल हो जाती है और वह गुर, नानक कहते हैं यह है,

"गुरा एक देहि बुझाई। सभना जीआ का इकु दाता।
सो मैं बिसरि न जाई।"

सबका वही एक मालिक है। सबका वही एक निर्माता है। सबका वही एक स्रष्टा है। उसे मैं भूल न जाऊँ। इस सत्य को मैं स्मरण रख सकूँ कि सबमें वही छिपा है। सब हाथों का हाथ वही है। सब आँख की आँख वही है। वही धड़कता, वही जीवन है।

इसे मैं भूल न जाऊँ। प्रतिपल यह मुझे याद बनी रहे। यह गुर, यह सीक्रेट, पकड़ जाये तो धीरे-धीरे माला के मनकों से हट कर, मनकों के भीतर जो छिपा हुआ धागा है उसको पकड़ लोगे। वह धागा परमात्मा है। तुम मनके हो। तुम्हारे भीतर जो जीवन की धारा बह रही है, जो जीवन का धागा है, वही परमात्मा है। वह धागा मुझमें भी वही है, तुममें भी वही है। वृक्ष में, पशु-पक्षी में, चट्टान-पहाड़ में भी वही है। वही जीता है अनेक रूपों में। वही लहराता है अनेक लहरों में। तो तुम उस धागे को भर न भूलो तो गुर हाथ में आ गया। और सब पहेलियाँ अपने आप हल हो जायेंगी।

क्या करोगे? कैसे इस गुर को सँभालोगे? चौबीस घंटे सँभालना है। बड़ी हिम्मत चाहिये। बड़ी अड़चन भी होगी। अगर अड़चन न होती तो दुनिया कभी की धार्मिक हो गयी होती। अड़चन तो है ही और होनी भी चाहिये। क्योंकि बिना अड़चन कुछ मिल जाये तो व्यर्थ है। बिना यात्रा के तुम मंजिल पर पहुँच जाओ, तो तुम फिर भटक जाओगे। मुश्किल से जिसे तुम पाओगे, उसे तुम सँभालोगे। मुफ्त तुम्हें जो मिल जाये, तुम उसे सँभाल भी न सकोगे। और फिर इतने विराट सत्य को पाने चले हो तो दाँव पर कुछ गँवाना भी होगा।

धर्म एक तरफ से गँवाना है और एक तरफ से पाना है। इसलिये अड़चन है। अगर ग्राहक में तुम परमात्मा को देखोगे तो लूट कैसे सकोगे उसे? जरा मुश्किल हो जायेगी। अगर तुम जेब काटते हो और उसमें परमात्मा को देखोगे तो हाथ ठहर जायेंगे। बुरा कैसे कर सकोगे? अगर तुम्हें वही दिखाई पड़ने लगा तो कैसे किसी को अभिशाप दे सकोगे? कैसे किसी को गाली दे सकोगे, अगर वही दिखने लगा? कैसे होओगे नाराज? कैसे बाँधोगे दुश्मनी? किससे बाँधोगे दुश्मनी?

अगर वही है तो तुम थोड़ी मुश्किल में पड़ोगे। तुम्हारे जीवन का ढाँचा जगह-जगह से गिरने लगेगा। तुमने जो मकान बनाया है, वह उसके विपरीत है। तुमने उसको भूल कर मकान बनाया है। तुम उसे याद करोगे तो तुम्हारा यह मकान तो नहीं टिक सकता।

हाँ, एक बात पक्की है कि तुम्हें बहुत बड़ा मकान मिलेगा। लेकिन वह तुम्हें आज दिखाई नहीं पड़ सकता। इसीलिये तो जुआरी चाहिये। हिम्मत के लोग चाहिये कि हाथ में जो है उसे छोड़ दें; उसे पाने को जिस का अभी पक्का भरोसा नहीं। इसलिये मैं निरंतर कहता हूँ कि व्यवसायियों का काम नहीं है धर्म; जुआरियों का काम है। जुआरी दाँव पर लगा देता है इस आशा में कि दोहरा होकर मिलेगा। मिलेगा कि नहीं, कुछ पक्का नहीं है। पासे कैसे पड़ेंगे, कोई भी नहीं जानता। हिम्मत चाहिये जुआरी की, नानक के साथ चलना हो तो।

इसलिये तो सारे धर्म विकृत हो जाते हैं। क्योंकि हमारे पास जुआरी की हिम्मत नहीं, व्यवसायी का गणित है। और तब इस सूत्र को याद रखना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि यह सूत्र तुम्हारी जिंदगी को आमूल बदल देगा। तुम यही न रह जाओगे। एक छोटा सा सूत्र और तुम्हारी पूरी जिंदगी में आग लग जायेगी। यह जिंदगी न रह जायेगी।

कबीर कहते हैं, "जो घर बारै आपना, चलै हमारे संग।" जो तैयार हो अपने घर में आग लगा देने को, वह हमारे साथ चले।

वह कौन सा घर है? वह घर जो तुमने बना रखा है अपने आसपास—झूठ का, बेईमानी का, क्रोध का, वैमनस्य का, द्वेष का, घृणा का—वह पूरा का पूरा तुम्हारा घर है। अगर तुम इसे सूत्र की तरह पकड़ लो—

नानक कहते हैं, **"गुरा एक देहि बुझाई, सभना जीआका इकु दाता, सो मैं विसरि न जाई।"**

बस, उसका विस्मरण न हो, कि सब के भीतर एक, सबका मालिक एक, सबका साहब एक। तुम्हारी जिंदगी बदल गयी। कुछ और चाहिये नहीं। न तुम्हें

करने की जरूरत है पतंजली के योगासन; न तुम्हें चिंता करने की जरूरत है यहूदियों के टेन कमांडमेन्टस्, दस आज्ञाएँ। न तुम फिक्र करो, गीता क्या कहती है, कुरान क्या कहता है।

एक छोटा सा गुर। तुम्हारी सारी जिंदगी बदल जाये। इस छोटे से गुर से नानक ने पाया, तुम भी पा सकते हो।

लेकिन ध्यान रखना, "जो घर बारै आपना, चलै हमारे संग।"

• • •

जे इक गुर की सिख सुणी

प्रवचन ४, दिनांक २४-११-१९७४, श्री रजनीश आश्रम पूना

पउड़ी ६ :

तीरथि नावा जे तिसु भावा–
विणु भाणे कि नाइ करी।
जेती सिरठि उपाई वेखा,
विणु करमा कि मिलै लई।
मति विच रतन जवाहर माणिक
जे इक गुर की सिख सुणी।
गुरा इक देहि बुझाई –
सभना जीआ का इकु दाता
सो मैं विसरि न जाई ॥

पउड़ी ७ :

जे जुग चारे आरजा। होर दसूणी होई ॥
नवा खण्डा विचि जाणीऐ। नालि चलै सभु काई ॥
चंगा नाउ रखाइकै। जसु कीरति जगि लेइ ॥
जे तिसु नदर न आवई। त बात पुछै केइ ॥
कीटा अन्दरि कीटु करि। दोसी दोसु धरे ॥
"नानक" निरगुणि गुणु करे। गुणवंतिआ गुणु दे ॥
तेहा कोई न सुझई। जि तिसु गुणु कोई करे ॥

एक रात नानक अचानक घर छोड़कर चले गये। किसी को पता नहीं, कहाँ हैं। खोजा गया साधुओं की संगत में, मंदिरों में, जहाँ संभावना थी, पर कहीं भी वे मिले नहीं। तब किसी ने कहा, मरघट की तरफ जाते देखा है। भरोसा किसी को न आया। मरघट अपनी मरजी से कोई जाता ही कैसे? मरघट ले जाने के लिये तो चार आदमियों की जरूरत पड़ती है। बामुश्किल कोई जाता है। मरा हुआ आदमी भी जाना नहीं चाहता, तो जिन्दा आदमी का तो जाने का कोई सवाल नहीं। लेकिन जब नानक को कहीं न पाया, तो लोग मरघट पहुँचे।

मरघट में उन्होंने धूनी जमा रखी थी। बैठे थे ध्यान में। घर के लोगों ने कहा, पागल हो गये हो? घर-द्वार छोड़ कर, पत्नी-बच्चे छोड़ कर यहाँ क्या कर रहे हो? यह मरघट है, यह पता है?

नानक ने कहा, "यहाँ जो आ गया वह फिर कभी मरता नहीं। और जिसे तुम घर कहते हो, वहाँ जो भी है वह आज नहीं कल मरेगा। फिर मरघट कौन सी जगह है? जहाँ लोग मरते हैं वह मरघट? या जहाँ लोग कभी नहीं मरते वह मरघट? और फिर जब एक दिन यहाँ आ ही जाना है, तो चार आदमियों के कंधे पर चढ़ कर क्या आना? शोभा नहीं देता। मैं खुद ही चला आया हूँ।"

यह घटना बड़ी महत्त्वपूर्ण है। जो होना ही है, उससे नानक का संघर्ष नहीं है। जो होना है उसका स्वीकार है। मृत्यु भी होनी है, उसका भी स्वीकार है। और, क्या कष्ट देना दूसरों को यहाँ तक ले जाने के लिये? खुद उठकर ही चले जाना बेहतर है।

जो होगा, उससे हमारा विरोध बना रहता है। हमारी अपनी चाह है, 'ऐसा न हो।' नानक की अपनी कोई चाह नहीं। जो उसकी चाह है; अगर मृत्यु भी उसकी चाह है, तो वह भी नानक को स्वीकार है।

उस रात नानक को लोग समझा-बुझा कर घर ले आये। लेकिन नानक वैसे ही आदमी न रहे, जैसे थे। कुछ उनके भीतर मर ही गया। और किसी नये का जन्म हो गया। जब कोई मरता है भीतर पूरी तरह, तभी नये का जन्म होता है। जन्म की वही प्रक्रिया है। मरघट से गुजरना ही होगा। और जो जान कर गुजर जाये, होश से गुजर जाये, उसे नया जन्म मिलता है। वह नया जन्म नया शरीर का जन्म नहीं। वह नया जन्म नयी चेतना का आविर्भाव है।

तुम डरे हो। और जहाँ भय है वहाँ भगवान से कोई संबंध न हो सकेगा। तुम जितने पूजा-पाठ कर रहे हो, वे भय के कारण हैं। भगवान के प्रेम में नहीं। तुम तीर्थ जा रहे हो, स्नान कर रहे हो, धूप-दीप जला रहे हो, वे सब भय के कारण हैं, भगवान के प्रेम में नहीं। तुम्हारा धर्म तुम्हारे भय की औषधि है, तुम्हारे आनंद का उत्सव नहीं। तुम करते हो सब सुरक्षा के लिये, तुम इन्तजाम सब जुटाते हो; जैसे तुम धन जुटाते हो, मकान बनाते हो, बेलेन्स बनाते हो, बीमा करवाते हो, ऐसा ही भगवान भी तुम्हारा बीमा है। तुम्हारे तीर्थ, तुम्हारे स्नान, तुम्हारे पूजा-पाठ तुम्हारी सुरक्षाएँ हैं भय की।

और भय से कोई उस तक पहुँचा? भय कोई पहुँचने का ढंग है? भय तो टूटने का ढंग है, प्रेम जुड़ने का ढंग है। भय से तो दूरी होती है, प्रेम से निकटता मिलती है। और प्रेम और भय कहीं भी नहीं मिलते। जब भय पूरा छूट जाता है तब प्रेम का उदय होता है। जब तक भय बना रहता है तब तक तुम घृणा कर सकते हो, घृणा को साज-सँवार सकते हो, लेकिन प्रेम नहीं कर सकते।

कैसे तुम प्रेम करोगे जिससे तुम भयभीत हो? जिससे भय है उससे तुम संघर्ष करोगे; समर्पण कैसे करोगे। और अगर समर्पण भी करोगे, तो वह भी संघर्ष की एक नयी तरकीब होगी, कि चलो, शायद इससे ही भय से छुटकारा हो जाये।

लोग तीर्थ जा रहे हैं, स्नान कर रहे हैं, इस स्नान में कोई उत्सव नहीं है। केवल पापों से छुटकारे की आकांक्षा है। जो बुरा किया है, सोचते हैं, गंगा में स्नान से बह जायेगा। लेकिन बुरा तुमने किया है, और गंगा के स्नान से कैसे वह जायेगा? गंगा का दोष क्या है तुम्हारी बुराई में? बुरा तुम करोगे गंगा किस लिये धोने को बहती रहेगी? और बुराई तुमने जो की है, वह शरीर की तो नहीं है, चेतना की है। गंगा का पानी उस चेतना को छू भी कैसे पायेगा? हाँ, तुम गंदे हो, गंगा के स्नान से स्वच्छ हो जाओगे। धूल लगी है शरीर पर, गंगा धो देगी। लेकिन धूल लगी है तुम में। वह शरीर पर लगी नहीं है। तो गंगा क्या करेगी?

शरीर को धोने के लिये तो गंगा ठीक; आत्मा को धोने का वह उपाय नहीं। कोई और गंगा खोजनी पड़ेगी। पुरानी कथा है, कि एक गंगा तो जमीन

पर बहती है और एक गंगा स्वर्ग में। तुम्हें स्वर्ग की गंगा खोजनी पड़ेगी। क्योंकि पृथ्वी की गंगा शरीर को छुएगी, पृथ्वी की है; शरीर तक उसकी पहुँच है। स्वर्ग की गंगा तुम्हें छुएगी, तुम्हें धो देगी। लेकिन स्वर्ग की गंगा तुम कैसे खोजोगे? कहाँ खोजोगे? ये सूत्र स्वर्ग की गंगा की खोज के लिये कहे गये हैं।

"यदि मैं उसको भा गया, तो मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया।"

उसको भा जाना स्वर्ग की गंगा को खोज लेना है। उसको भा जाना बड़ा गहरा सूत्र है। इसे समझने की थोड़ी कोशिश करो।

एक तो; तुम उसे भाओगे तभी, जब तुम उसके विरोध में नहीं खड़े हो। तुम उसे भाओगे तभी, जब तुमने सब भाँति अपने को उससे लीन कर दिया है। तुम उसे भाओगे तभी, जब तुम्हारा कर्ता-भाव मिट गया है। परमात्मा कर्ता है तुम निमित्त हो, बस! तुम भा जाओगे।

लेकिन अभी तो तुम्हारे भीतर धुन बजती है कि मैं कर्ता हूँ। पूजा भी करते हो तो भी कर्ता तुम ही रहते हो। तीर्थों में स्नान करते हो तो भी कर्ता तुम ही रहते हो। दान करते हो तो भी कर्ता तुम ही रहते हो। सब व्यर्थ हुआ! स्नान भी व्यर्थ गया, दान भी व्यर्थ गया, पूजा बेकार हुई। क्योंकि कर्ता का भाव! अभी तुम सोचते हो मेरा है।

धार्मिक व्यक्ति और अधार्मिक व्यक्ति में एक ही अन्तर है। धार्मिक व्यक्ति के लिये कर्ता वह स्वयं है। 'मैं' से किये कुछ हो सकता है यह भाव ही अधर्म है। उसके किये ही सब हो रहा है यह भाव धर्म है। तुम उसे प्यारे हो जाओगे।

तुम अपने ही हाथ से उसकी तरफ पीठ किये खड़े हो। तुम्हारा कर्तापन ही तुम पीठ किये हो। जैसे ही तुम कर्तापन छोड़ोगे, सन्मुख हो जाओगे। विमुखता मिट जायेगी।

तुमने किया क्या है? न जन्म तुम्हारा, न जीवन तुम्हारा, न मृत्यु तुम्हारी; सब वही कर रहा है। लेकिन बीच के अंतराल में तुम अपने कर्ता होने का भाव जुटा लेते हो। और वह जो कर्ता का भाव है फिर वह पाप करे तो भी पाप, पुण्य करे तो भी पाप। इसे ख्याल लेना। तुम सोचते हो पाप करना पाप है और पुण्य करना पुण्य है। तुम गलती में हो। कर्ता होना पाप है, अकर्ता होना पुण्य है। अगर पुण्य करते वक्त भी तुम कहते हो, मैंने किया; मंदिर बनाये, पूजा की, इतने व्रत, उपवास किये, इतनी बार तीर्थ गया, काशी गया, हज गया, हाजी हुआ।

यह तुम जितना कहोगे, मैंने किया, सब पाप हो गया। इसलिये पाप का संबंध कर्म से नहीं, भाव से है। तुम अगर अकर्ता-भाव से कर सके तो इस जगत में कोई भी पाप नहीं है। अगर तुम कर्ता-भाव से करो तो इस जगत में सभी कुछ पाप है।

कृष्ण अर्जुन को गीता में यही कह रहे हैं कि तू कर्ता-भाव छोड़ दे और वह जो करवा रहा है, वही कर। उसकी जो मरजी है होने दे। तू बीच में मत आ। तू अपनी तरफ से चुनाव मत कर। तू विचार मत कर कि क्या ठीक है और क्या गलत है। तू जानेगा भी कैसे कि क्या ठीक है और क्या गलत है? तेरी देखने की सीमा कितनी? तेरी समझ कितनी? तेरा अनुभव कितना? तेरा होश कितना? तू इस छोटे से दीये से देखने की कोशिश मत कर, इसकी रोशनी चार फीट से ज़्यादा दूर नहीं पड़ती। और जीवन का विस्तार अनंत है। वह तुझसे जो करवा रहा है तू कर। तू बीच में मत खड़ा हो। तू सिर्फ माध्यम बन जा। जैसे बाँसुरी से कोई गीत गाये और बाँसुरी केवल राह दे, ऐसी तू राह दे। निमित्त हो जा।

जो निमित्त हो गया वह उसका प्यारा हो गया। जो कर्ता बना रहा वह दुश्मन बना रहा। उसका प्रेम तो फिर भी बरसता रहेगा, क्योंकि उसका प्रेम बेशर्त है। तुम क्या हो, इससे कोई संबंध नहीं। लेकिन तुम ही उसे पाने में असमर्थ हो जाओगे। जैसे घड़ा सीधा रखा हो और वर्षा हो रही हो, तो भर जायेगा। वर्षा तो होती ही रहेगी, घड़ा उलटा रखा है, तो खाली रह जायेगा। वर्षा तो उलटे घड़े पर भी होती रहेगी, क्योंकि वर्षा तो बेशर्त है। उसका प्रेम किसी शर्त से बँधा नहीं है—तुम ऐसे हो जाओ तो मैं प्रेम करूँगा।

इसे भी समझ लेना। नानक का यह वचन सुनकर कई लोगों को ऐसा लगा कि मैं ऐसा हो जाऊँ तो वह मुझे प्रेम करेगा। नहीं, उसका प्रेम तो बरस ही रहा है। अगर उसके प्रेम में भी शर्त हो तो मनुष्य और परमात्मा के प्रेम में कोई अन्तर न रह जाये। यही तो मनुष्य की प्रेम की पीड़ा है कि हम कहते हैं, तुम ऐसा करोगे तो मैं प्रेम करूँगा, तुम ऐसे होओगे तो मैं प्रेम करूँगा। मेरी शर्तें पूरी करो तो मैं प्रेम करूँगा, अन्यथा प्रेम खींच लूँगा। बाप बेटे से यही कह रहा है, पत्नी पति से यही कह रही है, मित्र मित्र से यही कह रहा है कि तुम ऐसा करो। अगर तुमने ऐसा किया तो मुझे जँचोगे।

इस कारण, इस प्रेम के अनुभव के कारण, तुम यह मत सोचना कि नानक यह कह रहे हैं, परमात्मा तुम्हें तब प्रेम करेगा जब तुम कुछ शर्तें पूरी करोगे। नहीं, उसका प्रेम तो बरस रहा है। शर्तें पूरी करोगे तो तुम सीधे घड़े की भाँति हो जाओगे। उसकी वर्षा हो रही है, भर जायेगी। तुम लबालब हो जाओगे। तुम बहने लगोगे भर कर। न केवल उसका प्रेम तुम्हें मिलेगा, तुमसे औरों को भी मिलने लगेगा।

गुरु हम उसी को कहते हैं, कि जिसका घड़ा इतना भर गया परमात्मा के प्रेम से, कि अब समाता नहीं। वही औरों के घड़ों पर बहने लगा। गुरु का मतलब

ही इतना है, कि जिस की अपनी जरूरत पूरी हो गई। जिसकी चाह बुझ गई। जिसकी तृष्णा शांत हो गई। जिसका घड़ा इतना भर गया, कि अब वह देने में समर्थ है। अब वह न दे तो क्या करे? जैसे बादल भर जाये पानी से तो बरसेगा। हलका होगा। जब फूल भर जाये गंध से तो गंध बिखरेगी।

ऐसे ही जब तुम्हारा घड़ा भर जायेगा उसके प्रेम से, तुम्हारे चारों तरफ बँटने लगेगा, बहेगा। और उसकी वर्षा का तो कोई अन्त नहीं। एक बार तुम्हें पता चल जाये सीधे होने से भरना शुरू हो जाता है, वह वर्षा तो होती ही रहती है; तुम कितना ही उलीचो। हजार हाथ से उलीचो तो भी उलीच न पाओगे। तो यह ख्याल रखना, कि नानक जब यह कह रहे हैं, तो उनका प्रयोजन तुमसे है।

"यदि मैं उसको भा गया, तो मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया।"

उसको तो तुम भाये ही हुए हो, अन्यथा तुम होते कैसे? अगर वह एक क्षण को भी न चाहता तुम्हारा होना, तो तुम तिरोहित हो जाते। तुम्हारी श्वास-श्वास में वही है। तुम्हारी हर धड़कन में वही है। अस्तित्व ने तुम्हें चाहा है। अस्तित्व ने तुम्हें प्यार किया है। अस्तित्व ने तुम्हें बनाया है। तुम कैसे हो इसकी फिक्र नहीं है, अस्तित्व तुम्हें अभी भी जीवन दे रहा है। उसे तुम भाये ही हो।

लेकिन तुम उलटे खड़े हो। तुम पीठ किये हो। तुम उसके प्रेम से भी डरे हो। तुम उससे भागे हुए हो। वह तुम्हें भरना चाहता है, तुम बचना चाहते हो। इसलिये जब नानक कहते हैं, "यदि मैं उसको भा गया", तो अर्थ है—जब मैं सीधा हुआ, सन्मुख हुआ। जब मैंने भय छोड़ा।

भय के कारण ही तुम अपने घड़े को उलटा किये बैठे हो, कि कुछ गलत न भर जाये। भय के कारण ही तुमने दरवाजे बंद कर रखे हैं। कहीं कोई चोर, दुश्मन भीतर न आ जाये। भय के कारण तुमने अपने हृदय को सब तरफ से बंद कर लिया है। लेकिन जब तुम दरवाजे बंद कर लेते हो और डाकू नहीं आ सकता, तो प्रेमी भी नहीं आ सकता। क्योंकि द्वार तो वही है, जहाँ से चोर आता है। वहीं से प्रेमी आता है। तो यह हो सकता है कि तुमने इंतजाम कर लिया हो चोर के न आने का, लेकिन ध्यान रखना, तुमने प्रेमी को आने का द्वार भी बंद कर रखा है। और यह जिंदगी किस काम की जिसमें प्रेमी न आया? न आया चोर, तो भी किस काम की?

तुम इतने भयभीत हो इसलिये तुम अपने को उलटा किये हो, कुछ प्रवेश न कर जाये। तुम खाली हो, फिर तुम रोते हो कि मैं खाली हूँ। मेरे द्वार कोई अतिथि नहीं आता, कि कोई मेरे द्वार पर दस्तक नहीं देता। तुम्हारे भय ने तुम्हें परमात्मा से विमुख कर रखा है।

और मजा यह है, कि तुम्हारा सारा धर्म तुम्हारा भय का विस्तार है। तुम्हारे सब तथाकथित भगवान तुम्हारे भय की ही धारणायें हैं। तुम भय के

कारण उन्हें स्वीकार किये हो, तुम डरते हो। तुम संदेह करने में भी डरते हो, इसीलिये संदेह करते नहीं हो। आस्था तुम में पैदा नहीं हुई है।

संदेह करने के डर के कारण, अगर तुम आस्थावान बने हो, तो तुम्हारी आस्था ऊपर-ऊपर है। उस गहनतम से तुम्हारा कैसे मिलन होगा? और आस्था ऊपर हो तो भीतर संदेह छिपा ही है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक चुनाव में खड़ा हुआ। उसे कुल तीन ही वोट मिले। एक उसका खुद अपना, एक उसकी पत्नी का, और एक किसी अज्ञात व्यक्ति का। पत्नी बोली, "तो, हूँ! संदेह सच निकला, जल्दी बताओ यह दूसरी औरत कौन है?"

भीतर तुम्हारे जो पड़ा है, वह कहीं भी बहाना खोज लेगा। तुम भीतर अगर संदेह से भरे हो, तो ऊपर की आस्था, ऊपर का प्रेम कहीं भी टूट जायेगा। कितनी देर लगेगी? जरा सी कोई घटना--और तुम्हारा ईश्वर पर संदेह उठ जाता है। तुम्हारे पैर में काँटा लग जाये, संदेह उठ जाता है। सिर में दर्द हो जाये, संदेह उठ जाता है। नौकरी छूट जाये, संदेह उठ जाता है।

संदेह छिपा ही पड़ा है। फूट जाना है मवाद की तरह। जरा सी चोट और मवाद बाहर आ जाती है। इस मवाद को तुम कितना ही छिपाओ आस्था की मरहम से, कुछ हल न होगा। किसे तुम धोखा दे रहे हो? कौन तुम्हारे धोखे में आ रहा है? तुम खुद भी अपने धोखे में नहीं आ रहे हो तो दूसरा तो कोई क्या आयेगा? तुम भी भलीभाँति जानते हो, कि तुम्हारी आस्था भय के कारण है। और भीतर संदेह भरा है।

तो तुम जाओ, तीर्थों में करो स्नान। जाओ मंदिरों में, गुरुद्वारों—गिरजों में, करो पूजा-प्रार्थना, सब व्यर्थ है। क्योंकि जब तक तुम्हारे हृदय से आस्था का स्वर न उठे, तब तक तुमने उसे पुकारा ही नहीं। और जब तुम भय से जाओगे तुम जरूर कुछ माँगोगे। क्योंकि भय हमेशा माँगता है। और जो माँगता है वह मिल जाये, तो आश्वस्त होता है। न मिले तो संदेह गहन होता है। तुम सदा माँगते हो। आस्था सिर्फ धन्यवाद देना है, कि तूने पहले ही काफी दिया है। तूने योग्यता से ज्यादा पहले ही दिया है। तेरी कृपा है। तेरी अनुकंपा है। आस्थावान सदा अनुग्रह से भरा रहेगा। और जहाँ अनुग्रह है, वहाँ संदेह नष्ट हो जाता है। जहाँ माँग है, वहाँ संदेह मौका खोज रहा है।

तुम माँगते हो; पूरा हो जाये, तो संदेह को छिपाये रखोगे। न पूरा हो, तो संदेह बाहर आ जायेगा। माँग शायद परीक्षा है।

जीसस के जीवन में उल्लेख है, कि जब वे चालीस दिन की अपनी गहन साधना में गये, तो शैतान उनके पास आया, और उसने कहा कि शास्त्रों में लिखा है कि जब तीर्थंकर, पैगंबर पैदा होता है, तो परमात्मा उसकी रक्षा करता है।

तो तुम कूद जाओ इस पहाड़ से। अगर तुम सच में ही पैगंबर हो तो उसके देवदूत तुम्हें हाथ फैलाये नीचे सम्हालने को मिलेंगे।

जीसस ने कहा, "वह तो ठीक है। लेकिन शास्त्रों में यह भी लिखा है, कि उसकी परीक्षा केवल वे ही लेते हैं जो संदेह से भरे हैं। मुझे कोई संदेह नहीं है। देवदूत निश्चित नीचे खड़े मिलेंगे। लेकिन मैं उसकी परीक्षा कैसे लूं? क्योंकि परीक्षा तो संदेह से भरे हुए लोग ही लेते हैं। तुम ठीक कहते हो। देवदूत निश्चित खड़े हैं। लेकिन परीक्षा लेने का मतलब ही क्या होता है? कि मुझे कुछ संदेह था, कि पता नहीं खड़े हैं या नहीं। और पता नहीं कि वह बचाता भी है या नहीं, और पता नहीं, कि मैं उसका पैगंबर भी हूँ या नहीं।"

जहाँ संदेह है, वहाँ परीक्षा है। जहाँ संदेह है, वहाँ जाँच है। जहाँ संदेह है, वहाँ तुम खड़ी करते माँग हो। तुम्हारी परीक्षा का उपाय है कि कर दो यह पूरा, अगर तुम हो। अगर पूरा हो जाये, तो तुम हो। अगर पूरा न हो, तो तुम नहीं हो।

आस्थावान व्यक्ति परमात्मा की कोई परीक्षा नहीं लेता। आस्थावान तो अनुग्रहीत है। वह माँग नहीं करता। और जिस दिन तुम माँग बंद कर दोगे, तुम्हारा भय समाप्त होने लगेगा। जैसे-जैसे तुम अनुग्रह से भरोगे, माँग हटेगी, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि तुम्हारा मुख परमात्मा की तरफ होने लगा। घड़ा सीधा हो गया। और जैसे-जैसे तुम सीधे होओगे, थोड़ी-थोड़ी उसके अमृत की वर्षा की बूँदें तुम में पड़ेंगी, तुम्हारा भय मिट जायेगा। तब तुम पाओगे कि वही बरस रहा है, मैं नाहक भयभीत था। तब तुम द्वार खुले छोड़ दोगे। क्योंकि वही आता है, मैं नाहक भयभीत था। चोर में भी वही आता है, बेईमान में भी वही आता है। और जब तक तुम सभी में उसको देख न लोगे तब तक तुम उसे देख ही न पाओगे।

नानक कहते हैं, "यदि मैं उसको भा गया, तब मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया।"

"तीरथ ही नावा, बिनु भाणे कि नाइ करी।"

और यदि नहीं भाया उसे तो नहा-धोकर क्या करूँगा? नहीं भाया उसे तो नहा-धोकर तैयारी भी किस के लिये करनी है। नहीं भाया उसे, तो मेरा नहाना-धोना भी मेरा अहंकार मजबूत करेगा।

तीर्थयात्री को देखो! उसमें कोई हाजी होकर लौटता है तब उसे देखा? तब एक अकड़ लेकर लौटता है। विनम्र होकर लौटना चाहिये था। हज अगर सच में हुआ, अगर तीर्थयात्रा हो गई, तो आदमी बदल कर लौटेगा। अहंकार

वहीं छोड़कर लौट आयेगा। लेकिन वहाँ से अकड़ कर आता है। तीर्थयात्री जब लौटता है, तो आशा रखता है स्वागत-समारंभ की। लोग पैर छुएंगे, और कहेंगे कि गजब किया। तीर्थ हो आये ? बड़ा पुण्य किया।

पुण्य से भी तुम अहंकार को भरना चाहते हो। तुम उपवास भी करते हो, तो शोभायात्रा की अपेक्षा रखते हो। बैंडबाजे लोग बजायें, गाँव-गाँव खबर हो जाये कि तुमने कितने उपवास किये। वहाँ भी तुम अहंकार को ही खोज रहे हो। और जितना अहंकार मजबूत होता है, उतने ही तुम विमुख हो जाओगे।

तुम जितने ज्यादा, उतने विमुख। इस गणित को ठीक से ख्याल में रख लेना। तुम जितने कम, उतने सन्मुख। तुम बिलकुल नहीं, वही तुम्हारे द्वार पर खड़ा है। तब चोर भी आये, तो वही आता है। तब भय किसी का भी नहीं रह जाता, क्योंकि वही है।

"यदि मैं उसको भा गया तो मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया। और यदि नहीं भाया तो नहा-धोकर क्या करूँगा ? उसने जितनी सृष्टि की और जो दृश्य है उसमें कर्म के बिना किसको क्या मिला ?"

इस सृष्टि में तो जो भी मिलता है वह कर्म से मिलता है। और इसीसे बड़ी भ्रांति हो जाती है। भ्रांति यह हो जाती है, कि जैसे इस सृष्टि में सब कुछ कर्म से मिलता है ऐसे ही परमात्मा को पाना हो तो कुछ कर्म करना होगा, तब मिलेगा।

इसे थोड़ा समझें। जगत में सभी चीजें कर्म से मिलती हैं; प्रेम कर्म से नहीं मिलता, प्रार्थना कर्म से नहीं मिलती, आराधना कर्म से नहीं मिलती, आस्था कर्म से नहीं मिलती, परमात्मा का सान्निध्य कर्म से नहीं मिलता।

क्यों ? क्योंकि कर्म से तो कर्ता ही मजबूत होता है। धन कमाना हो तो बैठे-बैठे नहीं मिलेगा। धन कमाना हो, तो कर्म करना पड़ेगा। यश कमाना हो, तो बैठे-बैठे न मिलेगा। कर्म करना होगा, दौड़-धूप करनी होगी, आपाधापी करनी होगी, चिन्तित, परेशान होना होगा। इस संसार में कुछ भी पाना हो तो श्रम ही मार्ग है। तो इससे हमें ख्याल उठता है, जब क्षुद्र को पाने में इतना श्रम करना पड़ता है, तो विराट को पाने में और कई गुना ज़्यादा श्रम करना पड़ेगा। वहीं हमारा गणित गलत हो जाता है।

इस जगत में जो नियम है, उस जगत में ठीक उसके विपरीत यात्रा है। इस जगत में कुछ भी पाना है तो परमात्मा के तरफ पीठ करनी पड़ती है, इसलिये श्रम करना पड़ता है। इसे थोड़ा समझें।

जितना उसका सहारा हम छोड़ते हैं उतनी ही हमें मेहनत उठानी पड़ती है। क्योंकि हम ही को करना पड़ता है जो वह कर देता। तो फिर उसके श्रम की

पूर्ति हमें अपने ही श्रम और पसीने से करनी पड़ती है। इस संसार में जाने का अर्थ है, उसकी तरफ पीठ। उसका सहारा कम। उसके अमृत की धारा नहीं बहती। बहती रहती है, हम नहीं उसको उपलब्ध करते। हमारे द्वार बंद होते हैं। हम अपने ही तईं जीना चाहते हैं। हम स्वावलंबी होना चाहते हैं। इसलिये तो नानक कहते हैं बार-बार, कि वह साहब है और मैं दास। स्वावलंबी होने की चेष्टा ही अहंकार की चेष्टा है। तो जितना हम स्वावलंबी होना चाहते हैं, जितना हम चाहते हैं, 'मैं कर लूँगा' उतनी ही उसकी शक्ति का सहारा हम नहीं ले रहे हैं।

ऐसे समझो, कि कोई आदमी हवा के रुख से विपरीत चप्पुओं से नाव चला रहा है। नानक ने उसका ही गुर दिया है कि जरूरत नहीं है चप्पुओं से नाव चलाने की और विपरीत जाने की। जिस तरफ उसकी हवाएँ ले जायें, उन्हीं हवाओं के सहारे अपनी नाव के पाल को छोड़ दो।

रामकृष्ण कहते थे कि तुम चलाते ही क्यों हो चप्पू ? तुम हवा के रुख के साथ क्यों नहीं बहते ? खोल दो पाल और विश्राम करो। हवाएँ खुद लिये जा रही हैं। हवाएँ खुद लिये जा रही हैं उस किनारे की तरफ। ठीक समय, और ठीक हवाओं के रुख का ध्यान रखना जरूरी है, बस ! कोई और श्रम करने की जरूरत नहीं है। जब हवाएँ दूसरे किनारे तरफ जा रही हों तो नाव को छोड़ दो। जब हवाएँ इस तरफ आ रही हों तो फिर नाव को छोड़ दो। तुम व्यर्थ बीच में श्रम क्यों करते हो ?

हवाओं के विपरीत जाओगे तो श्रम करना पड़ेगा। नदी से उलटे बहोगे तो मेहनत करनी पड़ेगी, तब भी कहीं पहुँचोगे न, थकोगे। सिर्फ थकोगे। संसार की पूरी दौड़ के बाद आदमी के चेहरे को देखो, सिवाय थकान तुम वहाँ कुछ भी न पाओगे। मरने के पहले ही लोग मर गये होते हैं। बिलकुल थक गये होते हैं। विश्राम की तलाश होती है, कि किसी तरह विश्राम कर लें। क्यों इतने थक जाते हो !

आदमी बूढ़ा होता है, कुरूप हो जाता है। तुमने जंगल के जानवरों को देखा ? बूढ़े होते हैं, लेकिन कुरूप नहीं होते। बुढ़ापे में भी वही सौंदर्य होता है। तुमने बूढ़े वृक्षों को देखा है ? हजार साल पुराना वृक्ष ! मृत्यु करीब आ रही है, लेकिन सौंदर्य में रत्तीभर कमी नहीं होती। और बढ़ गया होता है। उसके नीचे अब हजारों लोग छाया में बैठ सकते हैं। सौंदर्य में कोई फर्क नहीं पड़ता। सौंदर्य और गहन हो गया होता। बूढ़े वृक्ष के पास बैठने का मजा ही और है। वह जवान वृक्ष के पास नहीं मिलेगा। अभी जवान को कोई अनुभव नहीं है। बूढ़े वृक्ष ने न मालूम कितने मौसम देखे। कितनी वर्षाएँ, कितनी सर्दियाँ, कितनी धूप,

कितने लोग ठहरे और गये, कितना संसार बहा, कितनी हवाएँ गुजरीं, कितने बादल गुजरे, कितने सूरज आये और गये, कितने चाँदों से मिलन हुआ, कितनी अन्धेरी रातें–वह सब लिखा है। वह सब उसमें भरा है। बूढ़े वृक्ष के पास बैठना इतिहास के पास बैठना है। बड़ी गहरी परंपरा उसमें से बही है।

बौद्धों ने, जिस वृक्ष के नीचे बुद्ध को ज्ञान हुआ उसको बचाने की अब तक कोशिश की है। वह इसलिये, कि उसके नीचे एक परम घटना घटी है। वह वृक्ष उस अनुभव से अभी आपूरित है। वह वृक्ष अभी भी उस स्पन्दन से स्पन्दित है। वह जो महोत्सव उसके नीचे हुआ था, वह जो बुद्ध परम ज्ञान को उपलब्ध हुए थे, वह जो प्रकाश बुद्ध में जला था, उस प्रकाश की कुछ किरणें अभी भी उसे याद हैं। और अगर तुम बोधिवृक्ष के पास शांत होकर बैठ जाओ, तो अचानक पाओगे ऐसी शांति, जो तुम्हें कहीं भी न मिली थी। क्योंकि तुम अकेले ही शांत हो रहे हो। उस वृक्ष ने एक अपरिसीम शांति जानी है। वह अपने अनुभव में तुम्हें भागीदार बनायेगा।

बूढ़े वृक्ष सुंदर हो जाते हैं। बूढ़े सिंह में और ही सौंदर्य होता है, जो जवान में नहीं होता। जवान में एक उत्तेजना होती है। जल्दबाजी होती है। अधैर्य होता है। वासना होती है। बूढ़े में सब शांत हो गया होता है।

लेकिन आदमी कुरूप हो जाता है। क्योंकि आदमी थक जाता है। वृक्ष परमात्मा के खिलाफ नहीं लड़ रहे हैं। उन्होंने पाल खोल रखे हैं। जहाँ उसकी हवा ले जाये, वह वहीं जाने को राजी है। तुम उसके खिलाफ लड़ रहे हो। आदमी अकेला उसके खिलाफ लड़ता है। इसलिये थकता है, टूटता है, जराजीर्ण होता है। अगर जीवन एक संघर्ष है तो होगा ही।

इस संसार में जो भी पाना है उसके लिये कर्म करना पड़ता है। लेकिन परमात्मा को पाने के लिये किसी कर्म की कोई जरूरत नहीं। पूजा नहीं, प्रार्थना नहीं, योग नहीं, तप नहीं, जप नहीं। कर्म से उसे पाया ही नहीं जा सकता। उसे प्रेम से पाया जाता है। प्रेम और कर्म की दिशा अलग-अलग है।

प्रेम एक भाव है। और जब तुम प्रेम करते हो तो ध्यान रखना, दुनिया में एक ही चीज है जो थकती नहीं--वह प्रेम। बाकी सब चीजें थक जाती हैं। क्योंकि प्रेम कोई श्रम नहीं है। तुम जितना प्रेम करो, उतना ही प्रेम करने में कुशल हो जाते हो। प्रेम की जितनी तुम्हारी अनुभूति बढ़े उतना ही तुम पाओगे, तुम प्रेम करने में समर्थ हो गये हो। प्रेम बढ़ता ही जाता है। प्रेम के ज्वार में भाटा कभी आता ही नहीं। वह हमेशा चढ़ता है, उतार नहीं है।

लेकिन प्रेम एक प्रसाद है। वह तुम्हारा श्रम नहीं है। ठीक से समझो, तो प्रेम तुम्हारा विश्राम है। इसीलिये तो जब तुम प्रेम में होते हो, ताजा अपने को

पाते हो, विश्राम में पाते हो। साधारण प्रेम में भी! अगर एक व्यक्ति से तम्हारा प्रेम है, वह तुम्हारे पास बैठ जाता है तो तुम पाते हो, सब थकान मिट गई। तुम हलके हो गये। ताजे हो गये। प्रफुल्लित हो गये। श्रम की सारी धूल झड़ गयी। तो परमात्मा के प्रेम की तो तुम कल्पना कर सकते हो।

जिस दिन उस प्रेम का जन्म होगा उस दिन कैसा श्रम! कैसी थकान! परमात्मा को प्रयास से नहीं पाया जाता, प्रसाद से पाया जाता है। इसलिये नानक कहते हैं—'गुरु प्रसाद।' परमात्मा से तुम्हारा सीधा संबंध आज नहीं हो सकता। आँखें उसके लिये तैयार नहीं हैं।

अगर तुम्हें इस सूरज को देखने के लिये आँखों को तैयार करना हो तो दीये से शुरुआत करनी पड़ती है। दीये की ज्योति पर त्राटक। फिर और बड़ी ज्योति पर त्राटक, फिर और बड़ी ज्योति पर त्राटक। फिर धीरे-धीरे सूरज की तरफ। अन्यथा तुम जैसे हो, अभी तो सूरज तुम्हारी आँखों को अन्धा कर देगा।

अगर घड़े को भी सीधा करना हो, तो पहले गुरु की तरफ....गुरु तैयारी है। और जब तुम उससे भरने को राजी हो जाओगे और भर के पुलकित और आनंदित होओगे, और तुम्हारे सब भय विर्सजित हो जायेंगे, तब तुम परमात्मा की तरफ खुल पाओगे। एकदम परमात्मा के तरफ खुलना खतरनाक भी हो सकता है। तुम शायद झेल ही न पाओ उतने बड़े दान को। आकाश से गंगा उतारनी हो तो भागीरथ चाहिये। गंगा को तुम झेल न पाओगे। हर कोई न झेल पायेगा। तुम तो छोटे से डबरे में डूब जाओगे।

इसलिये नानक गुरु पर बड़ा जोर देते हैं। जोर इसलिये है, कि गुरु तुम्हें तैयार करेगा। तैयार करेगा गुरु, उससे जो बह रहा है अगर तुम उसे झेलने में धीरे-धीरे समर्थ हो गये, तुम भगीरथ हो जाओगे। फिर स्वर्ग की गंगा को भी झेल सकोगे।

परमात्मा पाया जाता है, कृत्य से नहीं। इस सृष्टि में सभी कुछ कर्म से पाया जाता है। परमात्मा कैसे पाया जाता है?

'जो गुरु की एक सिखावन सुन लेता है'। गुरु की एक सिखावन सुन लेने से परमात्मा मिल सकता है, तुम्हारे कुछ करने से नहीं।

"उस की मति, जो गुरु की एक सिखावन सुन लेता है, रत्न और जवाहर और माणिक जैसी हो जाती है। बहुमूल्य हो जाती है"।

लेकिन गुरु की एक सिखावन सुनना भी मुश्किल है। क्योंकि गुरु की एक सिखावन सुनने के लिये तुम्हें अपना पूरा जीवन रूपांतरित करना होगा। तुम जैसे हो, वहाँ तो तुम्हें कुछ भी सुनाई न पड़ेगा। गुरु की सिखावन के लिये तुम्हें गुरु की तरफ उन्मुख होना पड़ेगा। तुम्हें उसके पास चुप और शांत बैठने की कला

सीखनी पड़ेगी। तुम जब उसके पास जाओ तो तुम्हें सिर अपना घर ही छोड़ कर आना पड़ेगा। अगर तुम सिर अपने साथ ले आये तो तुम सुन न सकोगे। सिखावन भी दी जायेगी तो अर्थ तुम अपने निकालोगे। तुम्हारा सिर बीच में सब रूपांतरित कर देगा, बदल देगा। कुछ कहा जायेगा, कुछ तुम सुनोगे। और तुम खाली हाथ आये थे, खाली हाथ वापिस लौट जाओगे।

क्योंकि गुरु की सिखावन मस्तिष्क से सुनी नहीं जाती। सिर से उसका कोई लेना-देना नहीं है। गुरु की सिखावन तो हृदय से सुनी जाती है। तुम गुरु की सिखावन सुनते वक्त विचार नहीं करते, कि वह गलत कह रहा है या ठीक कह रहा है। इसलिये तो आस्था से सुनी जाती है। गुरु कह रहा है इसलिये ठीक। तुम सोचने वाले नहीं हो। निर्णायक नहीं हो कि वह ठीक कह रहा है कि गलत कह रहा है। अगर तुम अभी भी सोचने वाले हो, तो तुम शिक्षक के पास हो, गुरु के पास नहीं हो। तब तुम विद्यालय में हो, साध-संगत में नहीं। वहाँ तुम सोचो, कि क्या ठीक है, क्या गलत। निर्णायक तुम ही हो।

गुरु के पास आने का अर्थ है कि मैं निर्णय कर-कर के थक गया। निर्णय मुझसे नहीं होता। गुरु के पास आने का अर्थ है कि मैं सोच-सोच कर थक गया, मैं कुछ भी सोच नहीं पाता। गुरु के पास आने का अर्थ है, कि मैं अपने से परेशान हो गया। और मैं अपने को छोड़ने आया हूँ। इसको संक्षिप्त में कहें तो श्रद्धा है।

गुरु के पास तुम तभी आ सकते हो जब तुम अपने से भलीभाँति परेशान हो गये हो। अगर तुम अभी भी समझते हो कि तुम समझदार हो, तो गुरु के पास आने का कोई अर्थ नहीं। अभी तुम ही अपने गुरु हो। अभी कुछ दिन और भटको। अभी कुछ और तकलीफ झेलो। अभी संदेह कर-कर के कुछ और पीड़ा इकट्ठी करो। अभी और संताप जरूरी है तुम्हें पकाने को। लेकिन जिस दिन तुम अपने से ऊब जाओ, उसी दिन गुरु के पास आना। कच्चे आने से कोई सार नहीं।

इसलिये बड़ी कठिनाई होती है। लोग गुरु के पास चले जाते हैं और तैयार नहीं होते। तैयारी का मतलब है, कि अभी ये अपने पर भरोसा करते हैं। तो गुरु जो कहेगा उसमें सोचेंगे, क्या सही, क्या गलत! उसमें से चुनेंगे। जो जँचेगा वह मानेंगे, जो नहीं जँचेगा वह नहीं मानेंगे।—तो तुम अपनी ही मान रहे हो।

इसको श्रद्धा मत कहना। इसको समर्पण भी मत समझना। तुमने कुछ भी छोड़ा नहीं है। गुरु के पास जाने का तो एक ही राज है, कि तुम अपने को छोड़ कर जाना। फिर वह जो कह रहा है, सही है। फिर तुम्हें निर्णय करने को कुछ बचा ही नहीं। और तब तुम उसकी सिखावन सुन पाओगे। क्योंकि ऐसे समग्र हृदय से ही उससे सिखावन सुनी जा सकती है। और तभी तुम सिख हो पाओगे। जिसने सिखावन सुनी वह सिख हुआ।

सिख शब्द बड़ा प्यारा है। वह संस्कृत के शिष्य से बना है। जो सीखने को तैयार है वह सिख। जो सिखावन सुनने को तैयार है वह सिख। जो अभी अपने अकड़ से जी रहा है, जो अभी सीखने को तैयार नहीं, वह सिख नहीं है। तुम वस्त्र पहन सकते हो सिख के, उससे कोई हल नहीं होता। तुम ढंग बना सकते हो सिख का, उससे कुछ हल नहीं होता। क्योंकि सिख होना एक हार्दिक घटना है।

कहते हैं नानक —

"मति विच रतन जवाहर माणिक, जे इक गुर की सिख सुणी।"

और हजार बातें सुनने से कुछ नहीं होता। एक ही सुन लेने से सब हो जाता है। और तुम कितना सुन सके हो, फिर भी कुछ नहीं होता। कितना पढ़ चुके हो, फिर भी कुछ नहीं होता। कारण साफ है। तुमने सुना ही नहीं, जहाँ से सुनना चाहिये था।

दो रास्ते हैं सुनने के। एक रास्ता है बुद्धि का। जब बुद्धि सुनती है, तो बुद्धि हमेशा द्वैत से सुनती है। सोचती है, ठीक या गलत। सही, या न सही। मानूँ, या न मानूँ। बुद्धि कभी अहंकार के पार नहीं जाती। बुद्धि हृदय को पागल मानती है। बुद्धि हृदय का भरोसा नहीं करती।

इसलिये तो तुम सब ने हृदय को मार डाला है। क्योंकि हृदय का भरोसा नहीं, कब कौन सा काम करवा दे, जो कि पीछे महँगा पड़े।

रास्ते से निकलते हो, भूखे को देखकर हृदय कहता है, दे दो। बुद्धि कहती है, रुको। पहले पक्का पता लगा लो कि यह आदमी धोखा तो नहीं दे रहा है! यह कोई व्यवसायी भिखारी तो नहीं! और यह भी तो देखो कि यह भला-चंगा है, कमाता क्यों नहीं? बुद्धि हजार बातें कहेगी। हृदय में एक भाव उठा था, बुद्धि उसे दबा देगी।

प्रेम उठेगा, बुद्धि कहेगी खतरनाक रास्ता है। प्रेम अन्धा है। कहाँ जाते हो? आँख से चलो, होश सम्हाल कर चलो। प्रेम ने कई को बरबाद किया है। बुद्धि का रास्ता राजपथ की तरह साफ-सुथरा है, प्रेम का रास्ता पगडंडी की तरह है। जंगलों में भटक जाती है। कहाँ जा रहे हो? रास्ते से मत उतरो। जहाँ भीड़ चल रही है, वहीं चलो। सब जहाँ हैं, वहीं ठीक है, अकेले कहाँ जाते हो?

प्रेम अकेले का रास्ता है। इसलिये तो प्रेम प्राइवेसी चाहता है। एकान्त चाहता है। प्रेम कहेगा, दे डालो। बुद्धि कहेगी, पहले सोचो, विचारो, सब पता लगा लो, फिर देना। तब तुम कभी न दे पाओगे। प्रेम कहता है, समर्पण कर दो। किसी के चरणों में सिर रख दो और छोड़ दो अपने को। बुद्धि कहेगी ऐसा

कहीं चलेगा ! दुनिया में बड़ी धोखा-धड़ी है। श्रद्धा के नाम पर न मालूम कितने लोग लूट रहे हैं।

मगर तुम्हारे पास है क्या जो लुट जायेगा ? तुम्हारे पास है क्या, जो तुम दे दोगे और चुक जायेगा ? सिवाय दीन-दरिद्रता के भीतर कुछ भी नहीं, लेकिन उसको भी बचाये रखते हो।

और बुद्धि की सुन कर तुम जियोगे तो धीरे-धीरे हृदय सिकुड़ता जाता है। हृदय धीरे-धीरे टूट ही जाता है। इतना फासला हो जाता है, कि हृदय की खबर ही तुम तक नहीं आ पाती। बुद्धि इतने बीच में द्वार लगा देती है। फिर तुम प्रेम भी करते हो, तो बुद्धि से ही करते हो।

तुमने कभी ख्याल किया ? तुम्हारा प्रेम भी खोपड़ी से आता है, हृदय से नहीं। तुम भला कहो कि मैं बड़े हृदय से प्रेम करता हूँ। लेकिन ये शब्द भी बुद्धि से ही आते हैं। तुम जाँच-पड़ताल करोगे अपने हृदय में, वहाँ कुछ होता नहीं मालूम पड़ता। वहाँ कोई पुलक है न कोई नृत्य है, न कोई संगीत है। वहाँ कोई कंपन भी नहीं है।

गुरु की सिखावन तो हृदय से सुनी जा सकती है। कबीर ने कहा है, "जो सिर को काट के जमीन पर धर दे, चले हमारे साथ।"

किस सिर की बात कर रहे हैं ? इस सिर को काटने से कुछ नहीं होगा।

बोधिधर्म एक बौद्ध फकीर हुआ। वह चीन गया। वह बड़ा अनूठा आदमी था। वह दीवाल की तरफ मुँह कर के बैठा था, लोगों की तरफ पीठ। वह कहता था जब कोई शिष्य आयेगा तो उस तरफ मुँह कर लूँगा। तुमसे क्या बात करनी? तुमसे बात करनी या दीवाल से बात करनी बराबर है।

फिर एक आदमी आया, हूइनेंग। वह पीछे खड़ा रहा चौबीस घंटे तक। और उसने कहा, कि बोधिधर्म इस तरफ सिर करो। बोधिधर्म चुप रहा। तो उसने अपना हाथ काट कर बोधिधर्म को भेंट किया। और उसने कहा, अगर देर की तो सिर काट कर रख दूँगा। बोधिधर्म ने कहा, इस सिर को काटने से कुछ भी न होगा। अगर उस सिर को काटने की तैयारी हो...,हूइनेंग ने कहा कि सब तैयारी करके आया हूँ। जो कहो, वह करने की तैयारी है।

नौ साल में पहली दफा बोधिधर्म ने किसी व्यक्ति की तरफ चेहरा किया। हूइनेंग उसका उत्तराधिकारी हुआ। लेकिन उसने पहले पूछा कि इस सिर को काटने से कुछ भी न होगा। 'उस सिर को'—कौन सा वह सिर है ? वह जो अस्मिता है, अहंकार है। मैं हूँ और मैं निर्णायक हूँ—तो तुम शिष्य न हो सकोगे, तो तुम सिखावन न सुन सकोगे।

"और गुरु की जो एक सिखावन सुन लेता है उसकी मति माणिक जैसी हो जाती है।"

उसकी चेतना एक स्वच्छता को, पारदर्शता को उपलब्ध हो जाती है। वह आरपार देखने लगता है। विचार वहाँ हट जाते हैं क्योंकि हृदय में कोई विचार नहीं है। बुद्धि वहाँ से बहुत दूर हट जाती है, सब बुद्धि का धुआँ वहाँ से हट जाता है। एक स्वच्छता, एक ताजगी ! और वही ताजगी स्नान है गंगा का।

नानक ठीक कहते हैं। यदि मैं उसको भा गया, तो मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया है। और यदि मैं उसको न भाया तो नहा-धो कर क्या करूँगा ? यह है एक भीतर का स्नान जहाँ जीवन स्वच्छ, चेतना स्वच्छ हो जाती। जहाँ तुम सोचते नहीं, जहाँ तुम सिर को उतार कर रख देते हो। सिर है भी उधार। हृदय तो तुम लेकर आये थे संसार में, सिर संसार ने दिया है।

जब तुम पैदा हुए थे तब तुम हृदय थे। तब तुम्हारे पास सिर बिलकुल न था। भीतर कोई विचार न थे। आकाश खाली और कोरा था, निर्दोष था। फिर एक-एक करके शब्द और विचार तुम्हें दिये गये। फिर समाज ने तुम्हें सिखाया। फिर समाज ने तुम्हें संस्कारित किया, कन्डीशन्ड किया। फिर संस्कार डाल-डाल कर तुम्हारी बुद्धि को तैयार किया। जिन-जिन चीजों की संसार में जरूरत है, उनके लिये तैयार किया। और जिन-जिन चीजों से संसार में खतरा है, उनको दबाया। तुम्हारे भीतर एक द्वैत निर्मित हुआ। हृदय और बुद्धि अलग-अलग टूट गई।

बुद्धि का अर्थ है जो समाज ने सिखाया तुम लेकर न आये थे। बुद्धि उधार है, सिर दिया हुआ है। हृदय तुम्हारा अपना है। और यह ही दुविधा है कि जो अपना है, वह अपना नहीं रहा। और जो पराया है वह अपना हो गया। जो ऊपर-ऊपर से थोपा गया है, वह तुम्हारा केंद्र बन गया है, और तुम्हारा केंद्र तुम्हें बिलकुल ही विस्मृत हो गया।

इसे हटा दो, तो ही तुम सिखावन सुन सकोगे। सिखावन सुनते ही तुम... एक सिखावन काफी है। कोई हजार की जरूरत नहीं। एक बात भी, एक गुर भी काफी है। और वह गुर क्या है ?

नानक कहते हैं, एक गुर से सब हल हो जाते हैं। कि सभी प्राणियों का दाता एक है, इससे मैं न भूलूँ।

"**सभना जीआ का इकु दाता, सो मैं बिसरि न जाई।**"

इसे थोड़ा समझें। 'स्मरण' और 'विस्मरण' दो शब्द गौर से समझ लें। स्मरण का अर्थ है, कि जिसकी प्रतीति भीतर सतत बनी रहे। तुम कुछ भी करो, चलो, फिरो, उठो, बैठो, उसकी सतत प्रतीति बनी रहे।

जैसे एक गर्भिणी स्त्री होती है। काम करती है, खाना बनाती है, बिस्तर लगाती है, लेकिन पूरे वक्त गर्भ का स्मरण बना रहता है। एक नया हृदय उसके शरीर में धड़कना शुरू हुआ है। एक नये जीवन का अंकुर फूटा है, उसकी प्रतीति बनी रहती है। गर्भिणी स्त्री चलती और ढंग से है। तुम स्त्री को चलते देख कर कह सकते हो कि वह गर्भिणी है। वह बात भी करती रहेगी चलते वक्त, तो भी एक स्मरण भीतर बना हुआ है। एक सतत धार भीतर बह रही है, कि एक जीवन को सम्हालना है।

स्मरण का अर्थ है, कि वह कोई अलग चेष्टा नहीं है। क्योंकि अगर अलग चेष्टा हो, तो भूल-भूल जायेगा। खाना बनाओगे, भूल जायेगा। बाजार में, दूकान में बेचने जाओगे सामान, भूल जायेगा। किसीसे बात करोगे, भूल जायेगा। तो अगर तुम ऐसा " राम-राम, राम-राम, राम-राम " जपते हो, वह स्मरण नहीं है। क्योंकि उसको तुम कब तक जपोगे ? सोओगे, भूल जायेगा। साईकल चलाओगे, भूल जायेगा। और अगर उसे न भूले, सड़क पर भी याद रखने की कोशिश की, तो टक्कर खाओगे। किसी का भोंपू बजेगा और तुम्हें सुनाई न पड़ेगा। जो स्मरण तुम चेष्टा से करोगे, जो तुम्हारी बुद्धि में गूँजेगा, वह स्मरण नहीं है।

जो तुम्हारे रोएँ-रोएँ में समा जाये--उसको नानक अजपा जाप कहते हैं। जिसको जपना भी न पड़े। क्योंकि जपना तो ऊपर ही ऊपर होगा। जो तुम्हारे रोएँ-रोएँ में समा जाये; उठो, बैठो, चलो, फिरो, कुछ भी करो, जिसकी याद बनी रहे, उस याद का नाम, स्मरण। उसको नानक, कबीर सुरति कहते हैं। इसलिये उनका योग " सुरति योग " कहलाता है। सुरति का अर्थ है स्मरण, स्मृति।

और एक दशा है विस्मरण की, विस्मृति की। कि तुम्हें और सब तो याद है। एक बात तुम्हें बिलकुल भूल गई कि तुम कौन हो ? और जिसे यह भी भूल गया है कि मैं कौन हूँ उसे कैसे याद आ सकता है कि यह अस्तित्व क्या है ?

गुरजियेफ ने पश्चिम में इस सदी में " सेल्फ रीमेम्बरिंग ", सुरति पर बड़ी मेहनत की। गुरजियेफ की पूरी विधि यह थी कि तुम चौबीस घण्टे स्मरण रखो कि मैं हूँ। सिर्फ यह स्मरण, कि मैं हूँ। अगर यह स्मरण सघन होता जाये, तो तुम्हारे भीतर एक केन्द्र निर्मित होता है। एक क्रिस्टलाईजेशन होता है। तुम्हारे भीतर कोई चीज सघन हो जाती है। मजबूत हो जाती है। सतत चोट से तुम्हारे भीतर एक संघटित तत्त्व का उदय होता है।

लेकिन गुरजियेफ की विधि में एक खतरा है, जो खतरा महावीर की विधि में भी है। जो खतरा पतंजलि के योग में भी है। और वह खतरा यह है, कि कहीं

तुम इस संग्रहीत तत्त्व को अहंकार के साथ न जोड़ बैठो। क्योंकि वह बहुत करीब-करीब है। जिसको गुरजियेफ क्रिस्टलाइज्ड सेल्फ कहता है, यह जो नया गठन तुम्हारे भीतर हुआ है, कहीं इस पर अहंकार हावी न हो जाये। कहीं तुम इससे अकड़ न जाओ। कहीं तुम यह न कहने लगो कि मैं ही हूँ। यह डर है, कहीं तुम परमात्मा को इनकार न कर दो। तो तुम पहुँच-पहुँच कर भी चूक गये। तुम बिलकुल किनारे गये और लौट आये। तुम आखिरी जगह पहुँच गये थे और वापिस हो गये।

यह खतरा महावीर की विधि में है। क्योंकि महावीर की विधि में भी आत्मभाव को गहन करना है। परमात्मा की कोई जगह नहीं। महावीर कहते हैं जब आत्मभाव भरपूर हो जायेगा, तो वहीं से परमात्मा प्रगट होगा। वही परमात्मा हो जायेगा। यह ठीक है। महावीर को ऐसा हुआ। लेकिन महावीर के पीछे चलने वालों को ऐसा हुआ दिखाई नहीं पड़ता। इसलिये तो महावीर की धारा सिकुड़ गई। उसमें खतरा है। और खतरा यह है, कि आत्मा के नाम पर कहीं अहंकार उद्घोषणा न करने लगे।

इसलिये जैन मुनि को तुम जितना अहंकारी पाओगे किसी दूसरे मुनि को उतना अहंकारी न पाओगे। जैन मुनि हाथ जोड़ कर झुक भी नहीं सकता, नमस्कार भी नहीं कर सकता। उसके हाथ जुड़ते ही नहीं। विधि बिलकुल सही है, लेकिन बड़ी सुगमता से खतरा है। हर विधि का खतरा है, वह याद रखना जरूरी है।

नानक की विधि में वह खतरा नहीं है। क्योंकि नानक खुद को स्मरण करने को नहीं कहते। वे कहते हैं, कि सभी प्राणियों का एक दाता है। उसको मैं न भूलूँ। सब के भीतर एक का ही वास है। अनेक के भीतर एक छिपा है—" एक ओंम्कार सतनाम।" पत्ते-पत्ते में वही कँपता है। हवा के झोंके में वही बहता है। बादल में, आकाश में, चाँद-तारों में, कण-कण में, सबमें वही है। उसे मैं न भूलूँ। वह मुझे याद रहे। उसकी याददाश्त घनी होती जाये। उसकी याददाश्त मेरे भीतर क्रिस्टलाइज्ड हो जाये। मेरे भीतर एक सघन तत्त्व बन जाये।

तो इसमें अहंकार का कोई खतरा नहीं। इसमें तुम कभी अहंकारी न हो सकोगे। इसलिये नानक से विनम्र ज्ञानी खोजना कठिन है। क्योंकि अगर वही है, तो तुम सभी को हाथ जोड़ सकते हो। तुम सभी के पैर छू सकते हो, क्योंकि सभी में वही है।और जिसके तुम पैर छू रहे हो चाहें उसे पता न हो, लेकिन तुम्हें तो पता है।

यह खतरा नानक की विधि में नहीं है, लेकिन एक दूसरा खतरा है। और वह खतरा यह है, कि सभी में वही है, उसकी स्मृति--कहीं ऐसा न हो कि आत्म-विस्मृति बन जाये। कहीं ऐसा न हो कि यही सबमें है, इसलिये तुम भूल ही

जाओ कि मैं भी हूँ। तो एक गहरी नींद लग जायेगी। योग-तन्द्रा हो जायेगी। तब तुम बेहोश-बेहोश से जीने लगोगे। तुम उसे सब जगह देखोगे सिर्फ अपने में न देख पाओगे। वह चारों तरफ दिखाई पड़ेगा। दसों-दिशाएँ उससे भर जायेंगी। तो तुम उसका गुण-गान करोगे, तुम उसकी महिमा गाओगे, लेकिन तुम खुद उस महिमा से वंचित रह जाओगे।

यह खतरा है। लेकिन यह खतरा पहले खतरे से छोटा खतरा है। क्योंकि जो सोया है उसे जगाया जा सकता है। लेकिन जो अहंकार से भर गया है उसकी नींद भयंकर है। वह कोमा में है। उसे जगाना बहुत मुश्किल है। वह कोई साधारण नींद में नहीं है। उसको तुम हिलाओ, डुलाओ, कोई फर्क न पड़ेगा। तन्द्रा तोड़ी जा सकती है। इसलिये योगियों ने उसे अलग से नाम दिया है, योग-तन्द्रा। उसको निद्रा भी नहीं कहा क्योंकि निद्रा को तोड़ने में थोड़ी तकलीफ है। तन्द्रा को तोड़ने में जरा भी तकलीफ नहीं। तुम तन्द्रा में हो और कोई ताली बजा दे तो टूट जायेगी।

नानक का मार्ग महावीर के मार्ग से सुगम है। पर खतरे को हमेशा याद रखना चाहिये। हर मार्ग का खतरा तो होगा ही। क्योंकि हर मार्ग पर भटकने की संभावना है, हर मार्ग से च्युत हो जाने की संभावना है। और तुम ऐसे हो कि अगर तुम्हें खतरा न बताया जाये, तो पूरी संभावना है कि तुम भटक जाओगे। महावीर का मार्ग त्याग में भटक गया। नानक का मार्ग भोग में भटक गया।

क्योंकि महावीर ने कहा कि संसार को बिलकुल छोड़ दो। भोग का कण मात्र न बचने दो। तुम परम संन्यस्त हो जाओ। उसका परिणाम यह हुआ कि महावीर के त्यागी संसार के दुश्मन हो कर जिये। और जब तुम किसी के दुश्मन हो कर जीते हो तो जिसके तुम दुश्मन हो, उससे तुम बँधे रह जाते हो। जिससे तुम्हारी शत्रुता है उसे तुम भूल नहीं पाते। उसका स्मरण बना रहता है। तो महावीर का जो त्यागी है वह चौबीस घण्टे संसार से लड़ रहा है। लड़ने की वजह से संसार का स्मरण कर रहा है। आत्मा वगैरह का स्मरण तो एक तरफ रह गया है, भोजन, कपड़ा, उठना, बैठना, कहाँ सोना, कहाँ नहीं सोना, उस सब में उसकी झंझट लगी हुई है। वह भटक गया त्याग में।

नानक ने ठीक दूसरी बात कही, कि सब कुछ वही है। सब कुछ उसीका है। संसार को छोड़ कर कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं। संसार में ही वह मौजूद है। तो नानक का माननेवाला संसार में भटक गया। नानक ने कहा कि संसार को छोड़कर कहीं जाने की जरूरत नहीं; उसका मतलब यह नहीं, कि संसार काफी है। संसार में ही उसको खोजना है।

इसलिये तुम देखो, पंजाबी हैं, सिख हैं, सिंधी हैं, नानक को माननेवाला जो वर्ग है इस मुल्क में उसको तुम देखो। खाने में, पीने में, कपड़े पहनने में सारा जीवन उसका लगा हुआ है। वह सोच रहा है कि संसार के बाहर तो कुछ है ही नहीं, बस यही सब कुछ है।

संसार में रह कर उसे पाना है। संसार सब कुछ नहीं है। संसार छोड़ कर जाने की कोई जरूरत नहीं, लेकिन तब खतरा है। तब संसार ही सब कुछ बन जाये। इसलिये नानक के पीछे चलनेवाला वर्ग, संसारी हो कर रह गया है। उसके देखने-सोचने का सब ढंग संसारी है।

ये बड़े खतरे हैं। हर मार्ग के साथ खतरा है। और अगर तुम खतरे से सचेत नहीं हो, तो सौ में निन्यान्नबे मौके पर तुम खतरे में ही जाओगे। क्योंकि तुम्हारी बुद्धि जैसी है, वह ठीक तो चल ही नहीं सकती। वह तिरछी चलती है। तुमने कभी गधे को चलते देखा? वह कभी बीच रास्ते पर नहीं चलता। वह हमेशा दीवाल—इस तरफ या उस तरफ, अति पर चलता है।

बुद्धि को गधा कहना उचित है। तुम बुध्दुओं को गधा कहते हो, लेकिन बुध्दिमानी ही गधापन है। क्योंकि बुद्धि चलती ही किनारे पर, एक अति पकड़ती या दूसरी अति। और बुद्धिमान का लक्षण है, मध्य में होना। और वहाँ खतरा है।

इसलिये नानक की परम गुह्य बातें खो गईं। सिख तो हैं, पर नानक के सिख कहाँ? जिसने सिखावन सुनी हो, जिसने अपने सिर को छोड़ा हो, जो श्रद्धालु हृदय से भरा हो। और जिसने एक बात स्मरण रखी हो "एक गुर से सब हल हो जाता है, कि सभी प्राणियों का एक है दाता, उसे मैं कभी न भूलूँ।"

वह स्मरण बना रहे। उसकी सतत प्रतीति बनी रहे। उठते-बैठते वह मुझमें समा जाये। मैं जो भी करूँ, वह उसके स्मरण के साथ ही हो। तो तुम संसार में रहते हुए संसार के पार हो जाओगे। यहाँ रहते हुए वहाँ पहुँच जाओगे। मंदिर जाने की जरूरत नहीं, घर ही मंदिर हो जायेगा। साधारण कामकाज उसकी विशिष्ट गरिमा से भर जायेगा। तुम्हारा कोई काम साधारण न रहेगा, असाधारण हो जायेगा। जहाँ भी तुम नहाओगे वहीं गंगा होगी।

लेकिन डर है, कि तुम सोच लो, फिर कुछ करने को नहीं बचा। फिर हम जहाँ नहा रहे हैं वहीं ठीक है। गंगा का सवाल नहीं है, तुम्हारा सवाल है। तुम जब भिन्न होते हो तो गाँव की साधारण सी नदी गंगा हो जाती है। और तुम जब भिन्न नहीं होते, तुम गंगा को भी साधारण नदी बना लेते हो। तुम्हारे साधारण और असाधारण होने का सवाल है।

क्या है साधारणपन ? साधारणपन है बिना स्मरण के जीना। और असाधारणपन है उसके स्मरण से जीना। और उसका स्मरण मूल्यवान है। उसके लिय कुछ भी खोना पड़े तो तुम तैयार रहोगे, लेकिन उसके स्मरण को खोने को तैयार न रहोगे।

इसलिये नानक कहते हैं, सिखावन जो सुन लेता उसकी बुद्धि रत्न, जवाहर और माणिक जैसी हो जाती है। क्यों माणिक, रत्न और जवाहर की वे बात कर रहे हैं ? इसलिये कर रहे हैं, कि अगर जरूरत पड़ेगी तो तुम और सब छोड़ दोगे लेकिन माणिक को न छोड़ोगे। तुम्हारे खीसे में रुपये का नोट है और माणिक पड़ा है; जरूरत पड़ी तो तुम रुपये का नोट छोड़ दोगे। जरूरत पड़ी तो तुम पूरा घर छोड़ दोगे, लेकिन माणिक को न छोड़ोगे। क्योंकि तुम जानते हो, वह सबसे मूल्यवान है। जीवन से सब छूट जाये लेकिन स्मरण न छूटेगा। क्योंकि तुम जानते हो, सब जीवन दो कौड़ी का है। वह स्मरण माणिक की भाँति है। वह सर्वाधिक बहुमूल्य है।

"और किसी की आयु चारों युगों के बराबर हो जाये, उससे भी दस गुनी हो जाये, अगर नवों खंड के लोग उसे जानते हों और उसके साथ चलते हों, जिसको सुनाम प्राप्त हो, जिसकी कीर्ति सारे जगत में फैली हो, वह भी अगर उसकी दृष्टि में नहीं जँचता है, तो कोई भी मूल्य नहीं है। उसके पूछ का कोई भी अर्थ नहीं है, उसे कोई भी नहीं पूछता"।

"**जे जुग चारे आरजा, होर दसूणी होई।**
नवा खंडा विचि जाणीए, नालि चलै सभु काई।
चगा नाउ रखाइकै, जसु कीरति जगि लेइ।
जे तिसु नदर न आवई, त बात पुछै केइ"।

नानक कहते हैं, तुम्हारे पास चारों युगों की उम्र हो, सतयुग से लेकर कलियुग तक; जितनी इस सृष्टि की उम्र है, उतनी तुम्हारी उम्र हो, उससे भी दसगुनी हो जाये, नवों खंडों के लोग, सारे सृष्टि के लोग तुम्हें जानते हों, तुम्हारे साथ चलते हों, बड़ा तुम्हारा सुनाम हो, सारे जगत में तुम्हारी कीर्ति हो, फिर भी अगर उसकी दृष्टि में तुम न जँचे, तो कुछ भी सार नहीं है।

इसे थोड़ा सोचें। और हमारी यही तलाश है, सारी दुनिया हमें जान ले, सारी दुनिया का साम्राज्य हमारा हो, उम्र हो, धन हो, सुयश हो, सुनाम हो, यही हमारी खोज है। और नानक कहते हैं, तुम सब पा लो, तुम पूरी सृष्टि के मालिक हो जाओ, लेकिन उसे न जँचो, तो कुछ भी सार नहीं है।

क्या बात है ? क्या कारण है ?

सब पा कर भी तुमने कभी किसी को तृप्त होते देखा ? पूछो अरबपतियों से, पूछो सिकंदरों से, हिटलरों से। तुमने कभी उन्हें तृप्त देखा ? कभी तुमने उनके आसपास ऐसा भाव, ऐसी हवा देखी, जो खबर देती हो कि सब मिल गया ?

उलटी ही हालत है। जितना तुम ऐसे लोगों के करीब जाओगे उतना ही पाओगे उन की दरिद्रता बड़ी है। उनका भिक्षापात्र बड़ा हो गया है, वे और माँग रहे हैं। नवखंड काफी नहीं है। चारों युगों की उम्र पर्याप्त नहीं है। उनकी माँग, जो भी मिल जाये उससे बड़ी है। उनका अभाव अनंत है। वह भरा नहीं जा सकता। उसे भरने का कोई उपाय नहीं। उनकी तृष्णा दुष्पूर है, उनकी चाह की कोई सीमा नहीं है। जो भी मिल जाता है, चाह आगे चली जाती है।

चाह आगे ही चलती जाती है। चाह तुमसे मीलों आगे चलती है। तुम जहाँ जाते हो, वह तुमसे पहले पहुँच जाती है। और जितना ज्यादा तुम्हारे पास होता है उतना ही तुम्हें एहसास होने लगता है, कि तुम किसी गलत मार्ग पर चलते हो। क्योंकि तृप्ति तो मिलती ही नहीं। लौट भी नहीं सकते। क्योंकि अहंकार कहता है, कहाँ लौटकर जाते हो ?

दो भिखमंगे एक झाड़ के नीचे विश्राम कर रहे थे। और एक भिखमंगा रो रहा था, शिकायतें कर रहा था। जब सम्राट रोते हैं, शिकायतें करते हैं, तो बिचारा भिखमंगा ! वह कह रहा था, यह भी कोई जीवन है। आज इस गाँव, कल उस गाँव। बिना टिकट सफर करो। कहीं भी उतार दिये जाओ। जो देखे वही उपदेश दे; माँगो रोटी, मिले उपदेश। जो देखे वही कहे, भले-चंगे हो, जाओ काम करो। हर जगह अपमान, हर जगह निंदा; यह भी कोई जीवन है ? और खदेड़े जाते हो हर जगह से। पुलिसवाले सदा पीछे खड़े हैं। जहाँ सोओ वहीं से उठाये जाओ, रात पूरी नींद भी एक जगह नहीं ले सकते।

तो दूसरे ने कहा, तो फिर तुम यह काम छोड़ ही क्यों न देते ? उसने कहा, क्या ? क्या मैं स्वीकार कर लूँ, कि मैं असफल हो गया ?

भिखमंगा भी स्वीकार कर नहीं सकता कि वह असफल हो गया है। तो करोड़पति तो कैसे स्वीकार करे ? राजनीतिज्ञ तो कैसे स्वीकार करे कि असफल हो गया है ? नहीं, वह कहता है सिद्ध कर के रहूँगा। हालाँकि आज तक कोई सिद्ध न कर पाया। नहीं तो महावीर, बुद्ध, नानक सब मूढ़ हैं। कोई भी सिद्ध नहीं कर पाये, कि मिलने से कुछ मिलता है।

लेकिन अहंकार पीछे नहीं लौटना चाहता। अहंकार कहता है और आगे बढ़ो। शायद दूर हो मंजिल। कौन जानता है ? दो कदम और ! आशा का जाल फैलाता चला जाता है। अहंकार पीछे नहीं लौटने देता, आशा आगे की तरफ

खींचती है। आशा भविष्य का रास्ता बनाती है, अहंकार कहता है इतने चल आये, और अब तक कभी स्वीकार न की कमजोरी, कि हम गलत मार्ग पर हैं, अब कैसे स्वीकार करोगे? ढाँक लो, छिपा लो, किसी तरह चलते जाओ। कभी सफलता मिलेगी ही निश्चित।

तुम्हारे सब सफल लोगों के भीतर असफलता के आँसू छिपे हैं। वे प्रकट नहीं करते। इसलिये उनके पब्लिक फेसेस और प्राइवेट फेसेस अलग हैं। उनका चेहरा वे दिखाते हैं जनता में, वह अलग है। उनका चेहरा जो वे अपने बाथरूम में आईने में देखते हैं, वह बिलकुल अलग है। तुम उन्हें रोते पाओगे। जब जनता में देखोगे, तुम उन्हें मुस्कुराते पाओगे। उनकी मुस्कुराहट झूठी है। उस मुस्कुराहट के भीतर कुछ भी नहीं है। सिर्फ आँसू छिपे हैं।

नानक कहते हैं, कि सब मिल जाये तो भी तृप्ति नहीं मिलती। तृप्ति तो तभी मिलती है, यदि तुम उसे भा जाओ। और तब नंगे फकीर को भी मिल जाती है। जिसके पास कुछ नहीं है, उसे भी हमने आनंदित देखा है। और जिनके पास सब है वे भी दुःखी।

तो जरूर तृप्ति का सूत्र कहीं और है। वह तुम्हारे पास क्या है, इससे उसका कोई संबंध नहीं। तुम्हारा परम-सत्ता के साथ क्या संबध है, उससे उसका संबंध है। तुम्हारे पास क्या है इससे निर्णय नहीं होता, कि तुम तृप्त हो। तुम और परमात्मा के बीच क्या नाता है? उस दिशा में तुमने कैसे सूत्र बाँधे हैं, उससे पता चलता है कि तुम तृप्त हो या अतृप्त हो। अगर उससे नाता बन गया, अगर तुम उसकी तरफ सन्मुख हो गये...

और वही है अर्थ इस बात का कि अगर तुम उसे जँच गये। तुम उसे जँचे ही हुए हो, नहीं तो वह तुम्हें पैदा क्यों करे? तुम उसे जँचे ही हुए हो, अन्यथा वह तुम्हें इतना अवसर क्यों दे? तुम उसे जँचे ही हुए हो। लेकिन तुम पीठ किये खड़े हो। जँच जाने का अर्थ है, जब तुम उन्मुख हो जाते हो। और जब तुम उसकी सूरत को सब सूरतों में देखते हो, और तुम हर जगह उसीका पास पाते हो, पत्थर भी तुम्हें धोखा नहीं दे सकता। तुम पत्थर में भी उसी को धड़कते पाते हो। जब तुम सब तरफ उसीको पाते हो, तब तुम जँच गये।

नानक कहते हैं, यदि मैं उसको भा गया, तो मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया। उतरी स्वर्ग की गंगा तुम्हारे ऊपर। यह गंगा जो हिमालय से बहती है प्रयाग और काशी छूती हुई, उस गंगा में नहाने से कुछ भी न होगा। उसकी गंगा उतरनी चाहिये। उसको जँच जाना चाहिये। भा गये तुम उसे! स्वीकार हो गये!

"वह भी अगर उसकी दृष्टि में नहीं जँचता तो कोई उसे नहीं पूछता।"

कितना तुम पा लो, व्यर्थ है। तुम्हारा सब पाना गहरे अर्थों में गँवाना है। तुम्हारी सब संपदा सिवाय विपदा के और कुछ भी नहीं। एक ही संपदा है—उसको जँच जाना। वही सब तुम्हारी खोज बन जाती है, तो तुम संसार में संन्यासी हो गये।

करते तुम सब हो, ध्यान उसका रखते हो। घूमते तुम सब तरफ हो, नजर उसपर रखते हो। क्षुद्र, बड़े, छोटे काम में लगे रहते हो, लेकिन विस्मरण नहीं होने देते। वह तुम्हारे भीतर है। यह जो सुमिरन है, यह जो सुरति है, यह जो अजपा जाप है—धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुम जँच जाओगे। तुम उसे भा जाओगे। और जिस दिन तुम उसे भा जाते हो उस दिन तुम्हारे जीवन में नृत्य उतरता है, उत्सव उतरता है। उस दिन तुम्हारे पास कुछ भी नहीं होता। और सब कुछ होता है।

"वह कीटों में भी कीट बना दिया जाता है, और दोषी भी उसपर दोष मढ़ने लगते हैं।"

जो परमात्मा से वंचित है, सब पा ले, तो भी कीटों में कीट बना दिया जाता है, और दोषी भी उसपर दोष मढ़ने लगते हैं।

नानक कहते हैं, कि वह गुणहीनों को गुणी बना देता है, और गुणवानों को और गुण देता है। प्रभु के सिवाय और कोई नहीं है जो गुण प्रदान कर सके।

प्रभु के सिवाय और कोई नहीं है जो तुम्हें गुण प्रदान कर सके। तुम उसे अगर चूक गये तो सब चूक गये। वही निशाना है। याद रखो प्रतिपल, वही निशाना है। अगर तुम्हारे जीवन का तीर उस तक न पहुँचा, तो कहीं भी पहुँच जाये, वह असफलता है। एक ही सफलता है, वह परमात्मा को पा लेना है। और सब असफलतायें हैं। एक ही उपलब्धि है, उसे जँच जाना।

तुम कभी सोचो; तुम किसी से प्रेम करते हो, और तुम जँच जाते हो। प्रेमी तुम्हें स्वीकार कर लेता है। प्रेमी तुम्हें हृदय से लगा लेता है, तब तुम्हारे जीवन में कैसी पुलक आती है! तब तुम्हारे पैर जमीन पर नहीं पड़ते। तब तुम हवा में उड़ते हो। जैसे तुम्हें पंख लग जाते हैं। और कुछ अज्ञात घुंघरु जीवन में बजने लगते हैं, जो तुमने कभी न सुने। तुम्हारे चेहरे की रौनक बदल जाती है। रंग बदल जाता है। तुम्हारी आँखें किसी और ही बात की खबर देने लगती हैं।

प्रेम को छिपाना इसीलिये तो मुश्किल है। तुम सब छिपा लो, प्रेम को तुम नहीं छिपा सकते। अगर तुम्हें किसी से प्रेम हो गया, तो वह प्रगट होगा ही।

उसको बचाने का कोई भी उपाय नहीं। क्योंकि तुम चलोगे और ढंग से, उठोगे और ढंग से, तुम्हारी आँखें उसकी खबर देंगी। तुम्हारा रोआँ-रोआँ उसकी खबर देगा। क्योंकि प्रेम एक स्मरण है। साधारण जीवन में भी अगर तुम्हारा प्रेमी तुम्हें स्वीकार कर ले तो तुम इतनी पुलक से भर जाते हो; तुम जरा हिसाब लगाओ; पूरा अस्तित्व तुम्हें स्वीकार कर ले तब तुम्हारी पुलक कैसी होगी? पूरा अस्तित्व तुम्हें प्रेम करे, हृदय से लगा ले, आलिंगन घटित हो, तुम पूरे अस्तित्व के साथ प्रेम में बंध जाओ--

यही तो मीरा कह रही है, कि कब कृष्ण तुम मेरी शैय्या पर आओगे? ये प्रतीक प्रेमी के हैं। मीरा कह रही है, मैंने साज-शैय्या को सँवार कर रखा है। फूलों से तुम्हारी सेज बनाई है। कब तुम आओगे? कब तुम मुझे स्वीकार करोगे?

भक्त भगवान के लिये ऐसा ही प्यासा है, जैसी प्रेयसी जैसी प्रेमी के लिये। जैसे चकोर स्वाति की बूंद के लिये। प्यासा है, पुकार रहा है। फिर एक बूंद भी तृप्ति बन जाती है। एक बूंद भी मोती बन जाती है। और जब उतनी पुकार और प्यास से कोई जीता है, तो साधारण पानी मोती हो जाता है।

अगर उतनी ही प्यास और पुकार हो, तो गुरु की एक सिखावन माणिक बन जायेगी। एक बूंद काफी है। एक बूंद सागर हो जायेगी। और जिसने गुरु की सिखावन समझ ली, सिखावन ही क्या है? छोटा सा सूत्र है। समझ लो तो बहुत छोटा है। न समझो, तो अनंत जन्म बीत जाते हैं। छोटा सा सूत्र है, नानक कहते हैं, "गुरा इक देहि बुझाई।" सारी प्यास बुझा देता है एक गुर।

"**सभना जीआ का इकु दाता, सो मैं बिसरि न जाई**"--

बस, उसको भर मैं विस्मरण न करूँ। एक छोटा सा गुर सारी प्यास बुझा देता है। सारी तृष्णा मिटा देता है। सारी चाह खो जाती है।

नानक कहते हैं, "वह गुणहीनों को गुणवान बना देता है। गुणी बना देता है।" उसकी तरफ चेहरा हुआ, कि तुम पात्र हुए। पात्र तुम सदा ही थे; खाली थे। उसकी तरफ चेहरा हुआ, भर गये। उसकी महिमा ने तुम्हें आकर आंदोलित कर दिया। वीणा तो तुम्हारी सदा से तैयार थी। तुमने उसके हाथों में सौंप दी, उसकी अँगुलियों ने छुआ, संगीत का जन्म हो गया। संगीत सोया था, अँगुलियों की प्रतीक्षा थी। लेकिन तुम सौंपो अपनी वीणा को उसे तब!

उस सौंपने का नाम ही श्रद्धा है। सौंपने का नाम ही शिष्यत्व है। सिख हो जाना, सौंपने का नाम ही समर्पण। उस सौंपने का नाम ही संन्यास; कि तुम अपनी वीणा उसके हाथों में दे दो। और तुम कहो, "जो तेरी मर्जी"। तेरी मर्जी अब मेरा जीवन होगा। मैं तुझे स्मरण रखूँ इतना मेरा, शेष सब तेरा। तू मुझे कभी न भूले इतनी मेरी माँग। और फिर सारी माँग समाप्त। एक छोटा सा गुर--

नानक कहते हैं, "वह गुणहीनों को गुणी बना देता है। और गुणवानों को और गुण देता है।"

एक ही तो गुण है जीवन में कि तुम्हारे पात्र में वह समा जाये, भर जाये। कि तुम अकेले न रहो। उसका संग-साथ हो जाये। कि तुम अकेले न भटको। अन्यथा तुम उसे खोजोगे कई जगह, पाओगे न।

कोई उसे धन में खोजता है, कि शायद कोई संगी-साथी मिल जाये। कोई पत्नी में खोजता है, कोई पति में खोजता है। लेकिन वह सब खोज अधूरी है। तुम जब तक उसको सीधा न खोजोगे, तुम उसे न पा सकोगे। उसको पाते ही सब दुर्गुण बिसर जाते हैं।

इसलिये नानक तुमसे न कहेंगे कि एक-एक दुर्गुण को मिटाओ। क्योंकि वे तो अनंत हैं। चोरी छोड़ो, बेईमानी छोड़ो, हत्या छोड़ो, क्रोध छोड़ो, काम, लोभ, मोह, मत्सर, क्या-क्या छोड़ोगे? वे तो अनंत हैं। नानक तुमसे नहीं कहते कि तुम छोड़ने में लग जाओ एक-एक कर के।

नानक तो कहते हैं, तुम उन्मुख हो जाओ परमात्मा की तरफ। उसको स्मरण करो। और जैसे ही वह तुम्हें देखेगा, उसकी नजर तुम पर पड़ेगी, सब बदल जायेगा। तुम स्वीकार हो गये। तुम जँच गये। क्रोध अपने से तिरोहित हो जायेगा। लोभ अपने से गिर जायेगा।

जिस दिन पा लिया उसको, कैसा लोभ! अब क्या पाने को बचा? जिसने उसे पा लिया, अब कैसा क्रोध! अब कौन क्रोध करने को बचा है? जिसने उसे पा लिया, अब कैसा काम! अब कैसी वासना! परम संभोग घटित हो गया। अस्तित्व के साथ मिलन हो गया। आखिरी विवाह हो गया, अब किस प्रेमी की तलाश? कबीर कहते हैं, "मैं राम की दुलहिनिया।" मैं उसकी दुलहन हूँ। और जब राम से लगाव हो गया और जब राम की दुलहन बन गये, अब कैसी कामवासना?

कामवासना में हम उसीको खोजते थे। गंदे नदी-नालों में हम उसीकी गंगा को खोजते थे तृप्त नहीं होते थे, क्योंकि उस गंदगी से हम तृप्त न हो सकेंगे।

ऐसा ही, जैसे हम हंस को पानी पिला रहे हैं नदी-नाले का, गंदे नालियों का और हंस तृप्त न होता हो! उसे मानसरोवर चाहिए। तुम्हारा हंस भी मानसरोवर माँगता है। स्फटिक जैसा स्वच्छ जल माँगता है। परमात्मा से कम तुम्हारी प्यास को कोई भी बुझा न सकेगा। और जैसे ही तुम उसकी तरफ मुड़े, सब दुर्गुण गिर जाते हैं। तुम गुणों से भर जाते हो--गुणियों को और गुण देता है।

कहते हैं नानक, प्रभु के सिवाय और नहीं कोई जो गुण प्रदान कर सके।

" नानक निर्गुणि गुणु करे। गुणवंतिआ गुणु दे ॥ तेहा कोई न सुझई। जि तिसु गुणु कोई करे " ॥

उसके अतिरिक्त तुम कहीं भी भटको, तृप्त न हो सकोगे। उसके अतिरिक्त तुम भटक ही रहे हो जन्मों-जन्मों से। और अभी तक तुम्हें होश नहीं आया। आशा अभी भी बँधी है, कि शायद उसके बिना पहुँच जायेंगे। और अहंकार पीछा कर रहा है कि इतने दिन किया, अब उसको ऐसे ही गँवा दें?

तुम उस तरह के आदमी हो, कि एक आदमी मकान बनाये, और मकान जीर्ण-जर्जर हो, उसकी नींव ठिकाने की न हो, रेत पर रखी हो, और अचानक मकान बनने के करीब आये, और कोई कहे कि इस मकान के भीतर मत जाना। यह मकान गिर जायेगा। इसमें तुम मरोगे। तो तुम्हारा मन कहेगा, कि इतना खर्च किया, इतनी मेहनत की, इतनी मुश्किल से बनाया। क्या वर्षों की मेहनत को ऐसे ही जाने दें? और तुम्हारे मन में आशा उठेगी, कि कौन जाने गिरे न गिरे! कौन जाने यह विशेषज्ञ गलत हो। और अब तक तो खड़ा ही रहा है, तो क्या कठिनाई है कि आगे भी खड़ा ही रहे?

बस, यही तुम्हारी हालत है। जैसे कोई आदमी रास्ते पर भटक जाये और हम उससे कहें, कि तू रास्ता पीछे छोड़ आया।

मैं पढ़ रहा था; एक कवि अपने संस्मरण लिख रहा है। उसने अपने संस्मरण मुझे देखने भेजे। उसमें एक संस्मरण मुझे सच में पसंद आया।

उसने लिखा है, कि वह भटक गया है, हिमालय के एक तराई में यात्रा को गया, रास्ता भटक गया। तो एक झोंपड़े के सामने उसने अपनी कार खड़ी की। एक स्त्री ने दरवाजा खोला। और उसने पूछा उससे, कि मैं ठीक रास्ते पर तो हूँ? मैं मनाली पहुँचना चाहता हूँ, पहुँच जाऊँगा न? उस स्त्री ने गौर से देखा और उसने कहा कि मुझे अभी यह भी पता नहीं कि तुम किस तरफ जा रहे हो? तुम जा किस तरफ रहे हो? कवि ने सोचा कि पहाड़ी स्त्री है। समझदार ज्यादा

नहीं दिखाई पड़ती। तो उसने कहा तू ही मुझे बता दे, कि मेरी गाड़ी का प्रकाश जो है वह ठीक मनाली के रास्ते की तरफ पड़ रहा है? उसने कहा, 'एक प्रकाश पड़ रहा है—लालवाला!'

जब कोई तुम से कहे तुम पचास मील चल कर आ गये, हजार मील चलकर आ गये--और तुम कितने मील चल चुके हो, कुछ गिनती नहीं। अचानक कोई कहे, कि तुम्हारा लाल प्रकाश तो गंतव्य की तरफ पड़ रहा है, तो तुम्हें धक् से सदमा पहुँचेगा। इसका मतलब है, पीछे लौटना पड़ेगा। तुम्हारा अहंकार कहेगा कि थोड़ी और कोशिश कर लो। कौन जाने यह स्त्री सही हो या न हो! पागल हो, झूठ बोलती हो, कुछ प्रयोजन हो उसका, कोई लक्ष्य हो, भटकाना चाहती हो, क्या भरोसा?

पीछे लौटने में अहंकार को चोट लगती है। कि क्या मैं इतनी देर तक गलत था? इसलिये बच्चों को सिखाना आसान, बूढ़ों को सिखाना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि उनका मतलब है कि वे चल चुके साठ साल, सत्तर साल। सत्तर साल से गलत थे? इसलिये बच्चे को सिखाना तो आसान है, क्योंकि वे चले ही नहीं। कोई अहंकार नहीं। जहाँ चलाओ वे चलने को राजी हैं। बूढ़ा, जहाँ चलाओ वहाँ चलने को राजी नहीं, उनके पक्के रास्ते हैं। वह कहता है, मेरा रास्ता ठीक। क्योंकि उन्हीं रास्तों पर उसका अहंकार निर्भर है।

और तुम सब बूढ़े हो। न मालूम कितने जन्मों से चल रहे हो। वही तो अड़चन है। इसलिये छोड़ने की हिम्मत भी नहीं होती। क्योंकि इतने-इतने जन्मों की चेष्टा व्यर्थ गई। इतने-इतने जन्मों तक मैं अज्ञानी था? इसलिये तो ज्ञानी के पास जाने में तुम डरते हो। पहुँच भी जाओ, तो अपने को बचाते हो। पच्चीस दलीलें और तरकीबें खोज-खोज कर बचाते हो। कहीं उसकी वर्षा तुम पर हो ही न जाये! कहीं ऐसा न हो, कि तुम्हारे ज्ञान का और अनुभव का चोगा गिर जाये।

और ध्यान रखो, तुम्हें पीछे लौटना पड़ेगा। क्योंकि रास्ता तो तुम बहुत पीछे छोड़ आये हो। इसलिये तो जीसस कहते हैं, कि फिर से बच्चे की भाँति हो जाओ। वह लौटने के लिये कह रहे हैं। कि कृपा करो, लौटो, रास्ता पीछे छूट गया है। फिर से बच्चे की तरह हो जाओ। बुद्धि को हटा दो। और बहुत गुणों की वर्षा होगी। वह सदा हुई है।

नानक कुछ बहुत पढ़े-लिखे नहीं हैं। न कोई बड़े अमीर हैं। साधारण घर में पैदा हुए हैं। न कोई बड़ी शिक्षा हुई है। पहले दिन ही पाठ चला और बंद हो गया। फिर भी वर्षा हो गई।

जब नानक पर हो गई, जब कबीर पर हो गई वर्षा, तुम पर क्यों न होगी ? बस, कहीं एक ही बात चूक रही है। वह यह, कि तुम विमुख खड़े हो। पीठ किये खड़े हो।

एक ही गुर से सब हल हो जाता है कि सभी प्राणियों का एक दाता है, उसे मैं न भूलूं।

" गुरा इक देहि बुझाई–
सभना जीआ का इकु दाता सो मैं बिसरि न जाई "।

• • •

नानक भगता सदा विगासु

प्रवचन ५, दिनांक २५-११-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी ८ :

सुणिऐ सिध पीर सुरि नाथ । सुणिऐ धरति धवल आकास ।।
सुणिऐ दीप लोअ पाताल । सुणिऐ पोहि न सकै कालु ।।
नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दुख पाप का नासु ।।

पउड़ी ९ :

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु । सुणिऐ मुख सालाहणु मंदु ।।
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद । सुणिऐ सासत सिमृति वेद ।।
नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दुख पाप का नासु ।।

पउड़ी १० :

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु । सुणिऐ अठसठि का इस्नानु ।।
सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु । सुणिऐ लागै सहज धिआनु ।।
नानक भगता सदा बिगासु । सुणिऐ दुख पाप का नासु ।।

पउड़ी ११ :

सुणिऐ सरा गुणा के गाह । सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ।।
सुणिऐ अंधे पावहि राहु । सुणिऐ हाथ होवै असगाहु ।।
नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दुख पाप का नासु ।।

महावीर ने चार घाट कहे हैं, जिनसे उस पार जाया जा सकता है । दो घाट तो समझ में आते हैं--साधु का, साध्वी का; शेष दो घाट थोड़े कठिन मालूम होते हैं--श्रावक का और श्राविका का ।

श्रावक का अर्थ है--जो श्रवण में समर्थ है; जो सुनने की कला सीख गया; जिसने जान लिया कि सुनना कैसे; जिसने पहचान लिया कि सुनना क्या है ।

महावीर ने कहा है कि कुछ तो साधना कर-करके उस पार पहुँचते हैं, कुछ केवल सुनकर उस पार पहुँच जाते हैं । जो सुनने में समर्थ नहीं है, उसे ही साधना की जरूरत पड़ती है । अगर तुम सुन ही लो पूरी तरह तो कुछ करने को बाकी नहीं रह जाता; सुनने से ही पार हो जाओगे ।

इसी श्रवण की महिमा को बताने वाले नानक के ये सूत्र हैं । ऊपर से देखने पर अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम पड़ेंगे कि क्या सुनने से सब कुछ हो जायेगा ? और हम तो सुनते रहे हैं--जन्मों-जन्मों से और कुछ भी नहीं हुआ ! हमारा अनुभव तो यही कहता है कि सुन लो--कितना ही सुन लो--कुछ भी नहीं होता; हम वैसे ही बने रहते हैं । हमारे चिकने घड़े पर शब्द का कोई असर ही नहीं पड़ता; गिरता है, ढलक जाता है; हम अछूते जैसे थे, वैसे ही रह जाते हैं ।

अगर हमारा अनुभव सही है तो नानक सरासर अतिशय करते हुए मालूम पड़ेंगे । लेकिन हमारा अनुभव सही नहीं है; क्योंकि हमने कभी सुना ही नहीं है । न सुनने की हमारी तरकीबें हैं, पहले उन्हें समझ लें ।

पहली तरकीब तो यह है कि जो हम सुनना चाहते हैं, वही हम सुनते हैं; जो कहा जाता है, वह नहीं । हम बड़े होशियार हैं । हम वही सुनते हैं जो हमें बदले न । जो हमें बदलता है, उसे हम सुनते ही नहीं; हम उसके प्रति बहरे

होते हैं। और यह कोई संतों का ही कथन हो, ऐसा नहीं है; जिन लोगों ने वैज्ञानिक ढंग से मनुष्य की इन्द्रियों पर शोध की है, वे भी कहते हैं कि हम अट्ठानवे प्रतिशत सूचनाओं को भीतर लेते ही नहीं; सिर्फ दो प्रतिशत को लेते हैं हम वही देखते हैं, वही सुनते हैं, वही समझते हैं--जो हमसे तालमेल खाता है; जो हमसे तालमेल नहीं खाता वह हम तक पहुँचता ही नहीं। बीच में बहुत सी हमने रुकावटें खड़ी कर रखी हैं।

और जो तुमसे तालमेल खाता है, यह तुम्हें कैसा बदलेगा? वह तो तुम जैसे हो, उसे और मजबूत करेगा। जिससे तुम्हारी बुद्धि राजी होती है, कनविंस होती है, वह तुम्हें कैसे रूपान्तरित करेगा? वह तो तुम्हें और आधार दे देगा जमीन में, और मजबूत पत्थर दे देगा, जिनपर तुम बुनियाद उठा कर खड़े हो जाओगे।

हिन्दू वही सुनता है जिससे हिन्दू-मन मजबूत हो। मुसलमान वही सुनता है जिससे मुसलमान-मन मजबूत हो। सिक्ख वही सुनता है जिससे सिक्ख की धारणा मजबूत हो। तुम अपने को मजबूत करने के लिए सुन रहे हो? तुम अपनी धारणाओं में और भी गहरे उतर जाने के लिए सुन रहे हो? तुम अपने मकान को और मजबूत कर लेने के लिए सुन रहे हो? तब तुम सुनने से वंचित रह जाओगे। क्योंकि सत्य का न तो सिक्ख से कोई सम्बन्ध है, न हिन्दू से, न मुसलमान से। तुम्हारी कंडीशनिंग-- तुम्हारे चित्त का जो संस्कार है, उससे सत्य का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

जब तुम अपनी सब धारणाओं को हटा कर सुनोगे, तभी तुम समझ पाओगे कि नानक का अर्थ क्या है! और अपनी धारणाओं को हटाने से कठिन काम जगत में दूसरा नहीं है; क्योंकि वे बहुत बारीक हैं, महीन हैं, पारदर्शी हैं। वे दिखाई भी नहीं पड़तीं; काँच की दीवार है। जब तक तुम टकरा ही न जाओ, तब तक पता ही नहीं चलता कि दीवार है; तब तक लगता है कि खुला आकाश तो दिखाई पड़ रहा है, चाँद-तारे दिखाई पड़ रहे हैं; लेकिन बीच में एक काँच की दीवार है।

मैं बोल रहा हूँ, तो कभी तुम भीतर कहते हो, हाँ ठीक--जब तुमसे मेल खाता है; कभी भीतर कहते हो--यह बात जँचती नहीं, जब तुमसे मेल नहीं खाता। तो तुम, मैं जो कह रहा हूँ, उसे नहीं सुन रहे हो; जो तुमसे मेल खाता है, जो तुम्हें और सजाता-सँवारता है, शक्तिशाली करता है, वही तुम सुन रहे हो। शेष को तुम छोड़ ही दोगे। शेष को तुम भूल ही जाओगे। अगर कोई बात तुमने सुन भी ली, जो तुम्हारे विपरीत पड़ती है तो तुम उसे भीतर खंडित करोगे; तर्क

जुटाओगे; हजार उपाय करोगे कि यह ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि एक बात तो तुम मान कर बैठे हो कि तुम ठीक हो तो जो तुमसे मेल खाए, वही सच; जो तुमसे मेल न खाए, वह झूठ।

अगर तुम सत्य को ही पा गये हो, तो फिर सुनने की कोई जरूरत ही नहीं है। वह भी तुमने पाया नहीं है; सुनने की जरूरत भी कायम है; सत्य को खोजना भी है और इस धारणा से खोजना है कि सत्य मुझे मिला ही हुआ है! तुम कैसे खोज सकोगे?

सत्य के पास तो नग्न, शून्य खाली होकर जाना पड़ेगा। सत्य के पास तो तुम्हें अपनी सारी धारणाओं को छोड़ देना पड़ेगा। तुम्हारे सारे विश्वास, तुम्हारे सिद्धान्त, तुम्हारे शास्त्र अगर बीच में रहे तो तुम कभी भी न सुन पाओगे; और जो तुम सुनोगे और समझोगे कि मैंने सुना है, वह तुम्हारी अपनी ही प्रतिध्वनि होगी। वह नहीं, जो कहा गया था, वह जो तुम्हारे भीतर प्रतिध्वनित हुआ। तुम अपने ही मन की कोठरी को प्रतिध्वनित होते हुए सुनते रहोगे। तब तुम्हें नानक के वचन बड़े अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम पड़ेंगे।

दूसरा ढंग बचने का है कि लोग अक्सर, जब भी कोई महत्त्वपूर्ण बात कही जाए, तन्द्रा में हो जाते हैं। वह भी मन का बचाव है। वह भी बड़ी गहरी प्रक्रिया है। जब भी कोई चीज तुम्हें छूने के करीब हो तब तुम सो जाओगे।

मैं एक बड़े पंडित के घर मेहमान था। वे बड़े विद्वान हैं, शास्त्रों के ज्ञाता हैं और रामायणी तो उन जैसा दूसरा नहीं। लाखों लोग उन्हें सुनते हैं। रात दोनों जब हम सोने गये तो एक ही कमरे में बिस्तर थे; प्रकाश बुझाकर हम अपने बिस्तरों पर लेट गये, तभी मैंने सुना कि उनकी पत्नी अन्दर आयी और उनके कान में कुछ फुसफुसा कर बोली। वह मुझे सुनाई पड़ गया। पत्नी ने कहा, 'ऐ जी, सुनो! मुन्ना सो नहीं रहा है, चलकर उसे कुछ कह दो।' तो पण्डित जी ने कहा कि मेरे चलकर कहने से क्या होगा! पत्नी ने कहा कि मैंने लाखों लोगों को तुम जब बोलते हो--तुमने बोलना शुरू किया नहीं कि उन्होंने सोना शुरू किया नहीं--लाखों लोगों को तुम्हारी सभा में सोते देखा है, तो यह एक अकेले मुन्ने का क्या बस है! चलकर दो शब्द इससे कह दो, तो सो जाए।

धर्मसभा में लोग नींद पूरी करने के लिये ही जाते हैं। जिनको रात में नींद नहीं आती, उनको भी धर्मसभा में नींद आ जाती है। क्या होता है? तुम्हारे मन का कोई खेल है, तरकीब है। तुम जो नहीं सुनना चाहते, उसके प्रति तुम नींद में अपने को ढाँक लेते हो; अपने को बचा लेते हो; नींद तुम्हारा रक्षा-कवच है।

तो तुम ऐसे लगते हो कि सुन रहे हो लेकिन तुम सजग नहीं होते और बिना सजगता के कैसे सुना जा सकेगा।

तुम बोलते वक्त सजग होते हो, सुनते वक्त सजग नहीं होते और ऐसा कोई धर्मसभा में ही होता हो, ऐसा नहीं है; जब भी कोई दूसरा तुमसे बोलता है, तभी तुम सजग नहीं होते; क्योंकि एक इन्टरनल डायलॉग है–एक भीतर चलने वाला वार्तालाप है, जिसमें तुम दबे हो। दूसरा बोले जाता है। तुम ऐसा भाव भी प्रकट करते हो कि मैं सुन रहा हूँ; लेकिन वह भाव-भंगिमा है, भीतर तुम बोले जा रहे हो। और जब तुम भीतर बोल रहे हो तो तुम किसकी सुनोगे? तुम, भीतर जो बोल रहा है; उसको ही सुनोगे; क्योंकि बाहर के बोलने वाले की आवाज तो तुम्हारे तक पहुँच ही न पायेगी। तुम्हारी अपनी आवाज की गूँज काफी है। और इसलिये तो तुम्हें नींद मालूम होने लगती है। क्योंकि तुम अपने से ऊबे हुए हो।

जब तुम बोलते हो, तब तुम थोड़े सजग होते हो। लेकिन जब तुम सुनते हो तब तुम मूर्च्छित होने लगते हो; क्योंकि तुम अपने से ऊबे हुए हो। यह बात तो तुम कई दफे भीतर कर चुके हो जो आज फिर कर रहे हो। यह तो पुनरुक्ति है। उससे ऊब पैदा होती है। उससे नींद मालूम होने लगती है। वह भी बचाव है और वह इस बात की खबर है कि भीतर एक वार्तालाप चल रहा है।

भीतर का वार्तालाप जो तोड़ देगा, वही सुनने में समर्थ होता है।

श्रवण की कला तब उपलब्ध होती है, जब भीतर का वार्तालाप बंद हो जाता है। और एक क्षण को भी भीतर का वार्तालाप बंद हो जाए तो तुम पाओगे, आकाश खुल गया––अनंत आकाश खुल गया और सब जो अनजाना था, जाना हो गया। जिसकी थाह न थी, उसकी थाह मिल गयी। जो अपरिचित था, उससे परिचय बना। जिससे कोई पहचान न थी––जो अजनबी था––वह अपना हुआ। अचानक!

यह जगत तुम्हारा घर है। अगर एक क्षण को भी तुम्हारा भीतर का वार्तालाप टूट जाए––सारे सत्संगों का, सारे गुरुओं का एक ही सत्य है कि किस भाँति तुम्हारे भीतर का वार्तालाप तोड़ा जाये। वे उसे ध्यान कहें, योग कहें, नामस्मरण कहें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सारी चेष्टा यह है कि भीतर तुम्हारी जो एक सतत धारा चल रही है शब्दों की, उसको छिन्न-भिन्न कैसे करना है; उसमें बीच में खुली जगह कैसे आ जाए! थोड़ी भी देर को खुली जगह आ जाए तो तुम समझ पाओगे कि नानक क्या कह रहे हैं।

नानक कहते हैं–"श्रवण से ही सिद्ध, पीर, देवता और इन्द्र होते हैं। श्रवण से ही धरती और आकाश स्थित हैं। श्रवण से ही द्वीप, लोक, पाताल चल रहे हैं। श्रवण से ही मृत्यु स्पर्श नहीं करती। नानक कहते हैं––श्रवण से ही भक्त सदा आनंदित होते हैं और श्रवण से ही दुःख तथा पाप का नाश होता है।"

भरोसा नहीं आता कि सुनने से ही कोई सिद्ध, पीर, देवता और इन्द्र हो जाता है। और सुनने से ही धरती और आकाश चल रहे हैं। और सुनने से ही द्वीप, लोक, पाताल खड़े हैं। सुनने से ही मृत्यु स्पर्श नहीं करती। अतिशयोक्ति मालूम पड़ती है।

जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। क्योंकि जैसे ही तुम्हें सुनने की कला आयी, तुम्हें जीवन से परिचित होने की कला आ गयी। और जैसे तुम्हें अस्तित्व का बोध होना शुरू हुआ, तुम पाओगे कि जैसा सन्नाटा तुम्हारे भीतर है सुनने के क्षण में, श्रवण के क्षण में जैसी शून्यता तुम्हारे भीतर है वही शून्यता तो सारे अस्तित्व का आधार है। उससे ही आकाश टिका है, उससे ही पाताल टिका है। उसी शून्य पर, उसी मौन में तो सारा जगत परिभ्रमण कर रहा है। उसी मौन में बीज टूटता है और वृक्ष बनता है। उसी मौन में सूरज उगता है। उसी मौन में चाँद-तारे बनते हैं और बिखरते हैं। जब तुम अपने भीतर शब्दों को शून्य कर देते हो, तब तुम उस जगह पहुँच गये जहाँ से सृष्टि पैदा होती है और जहाँ सृष्टि लीन होती है।

ऐसा हुआ कि एक मुसलमान फकीर नानक के पास आया और उसने कहा कि मैंने सुना है कि तुम चाहो तो क्षण में मुझे राख कर दो और तुम चाहो तो क्षण में मुझे बना दो। यह चमत्कार है; मुझे भरोसा नहीं आता। पर आदमी ईमानदार था, मुमुक्षु था; ऐसे ही कुतूहल से नहीं आ गया था; साधक था, जो पूछा था, बड़ी अभीप्सा से पूछा था।

नानक ने कहा तो फिर आँख बन्द कर लो। और शान्त होकर बैठ जाओ तो जो तुम चाहते हो, वह मैं करके ही दिखा दूँ। वह फकीर आँख बंद करके शांत होकर बैठ गया। अगर मुमुक्षु न होता तो भयभीत हो जाता; क्योंकि जो पूछा था, खतरनाक पूछा था कि राख कर दो, मिटा दो, फिर बना दो। प्रलय और सृष्टि तुम्हारे हाथ में है, ऐसा मैंने सुना है।

सुबह की वक्त––ऐसी ही सुबह रही होगी। एक गाँव के बाहर एक वृक्ष के नीचे, एक कुएँ के पास नानक बैठे थे। उनके भक्त बाला और मरदाना मौजूद थे। वे भी थोड़े हैरान हुए कि ऐसा तो नानक ने कभी किसी से कहा नहीं! और अब क्या होगा! वे भी सजग हो गये। उस क्षण जैसे आस-पास वृक्ष भी सजग हो गये होंगे। पत्थर भी सजग हो गये होंगे; क्योंकि नानक ने कहा बैठ जाओ, आँख बन्द करो, शांत हो जाओ। जैसे ही तुम शांत हो जाओगे, मैं चमत्कार दिखा दूँगा।

वह फकीर शांत होकर बैठ गया। बड़ी आस्था का आदमी रहा होगा। वह भीतर बिलकुल शून्य हो गया। नानक ने उसके सिर पर हाथ रखा और ओंकार की ध्वनि की। और कहानी कहती है कि वह आदमी राख हो गया। फिर नानक ने ओंकार की ध्वनि की और कहानी कहती है कि वह आदमी फिर निर्मित हो गया।

अगर कहानी को ऊपर से पकड़ोगे तो चूक जाओगे। लेकिन भीतर यह घटना घटी। जब वह सब भाँति शान्त हो गया और नानक ने ओंकार की ध्वनि की, श्रवण को उपलब्ध हुआ; भीतर का वार्तालाप टूट गया। सिर्फ ओंकार की ध्वनि गूंजी। उस ध्वनि के गूंजने के बाद प्रलय की स्थिति भीतर अपने आप हो जाती है। सब खो गया--सब संसार, सब सीमाएँ—राख हो गया, ना-कुछ हो गया। भीतर कोई भी न बचा, खोजे से भी कोई न मिला। कोई था ही नहीं, घर सूना था। फिर नानक ने ओंकार की ध्वनि की। वह आदमी वापस लौटा उसने आँखें खोलीं। उसने चरणों में, पैरों में सिर रखा और कहा कि मैं तो सोचता था, यह असम्भव है। लेकिन आपने यह करके दिखा दिया!

कहानी को मानने वाले इसे न समझ पायेंगे। वे तो समझते हैं कि वह आदमी राख हो गया, फिर राख से नानक ने उसको बना दिया। ये सब नासमझी की बातें हैं। तब तुम समझे नहीं, चूक गये। पर भीतर प्रलय और सृष्टि की घटना घटती है।

लेकिन वह फकीर सुनने में समर्थ था। जब कोई सुनने में समर्थ होता है तो तुम मुझे ही थोड़े सुनोगे! सुनने की कला आ गयी। मैं तो बहाना हूँ, गुरु तो बहाना है। सुनने की कला आ गयी तो जब वृक्षों में हवायें बहेंगी, तब भी तुम सुनोगे। और उस सन्नाटे में तुम्हें ओंकार का नाद सुनाई पड़ेगा; जीवन का जो मूल स्वर है, वह सुनाई पड़ेगा; पर्वत से पानी का झरना गिरेगा, उसके नाद को तुम सुनोगे। उस नाद में तुम पाओगे कि सभी शून्य में टिका है। नदियाँ उसीमें बहती हैं, सागर उसीमें लीन होते हैं। तुम आँख बन्द कर दोगे तो तुम अपनी ही हृदय की धड़कन सुनोगे; खून की गति की धीमी-धीमी आवाज सुनोगे और तुम पाओगे, यह मैं नहीं हूँ; मैं तो सुनने वाला हूँ; मैं तो साक्षी हूँ। फिर तुम्हें मृत्यु स्पर्श न कर पायेगी।

जिसे सुनने की कला आ गयी, उसे कुछ भी जानने को बाकी न रहा। इसलिए नानक कहते हैं कि श्रवण से ही सिद्ध, पीर, देवता और इन्द्र होते हैं। श्रवण से धरती और आकाश स्थित है। श्रवण से ही द्वीप, लोक, पाताल चल रहे हैं।

सारा अस्तित्व श्रवण से हो रहा है। श्रवण का अर्थ हुआ--सारा अस्तित्व शून्य से हो रहा है और जब तुम श्रवण में होते हो, तब शून्य की छाप तुम पर आती है। तब शून्य तुममें गूंजता है। वही गूंज अस्तित्व की मौलिक गूंज है। वही ध्वनि अस्तित्व की मूल इकाई है।

श्रवण से ही मृत्यु स्पर्श नहीं करती। और एक बार तुमने सुनना जान लिया, फिर कैसी मृत्यु! क्योंकि सुनने वाले को साक्षी का बोध हो जाता है। अभी तुम सोच-सोच कर सुनते हो। सोचनेवाला तो मरेगा। सोचनेवाला तो मरणधर्मा है। जिस दिन तुम बिना सोचे सुनोगे, सिर्फ सुनोगे, उस दिन तो विटनैस, साक्षी हो जाओगे। इधर मैं बोलूंगा, उधर तुम्हारा मस्तिष्क सुनेगा और एक तीसरा भी तुम्हारे भीतर होगा, जो देखेगा कि सुना जा रहा है। उस दिन एक नये तत्त्व का तुम्हारे भीतर आविर्भाव होगा। एक नई प्रक्रिया संगठित होगी। एक नया क्रिस्टलाईजेशन होगा। वह है साक्षी का। साक्षी की कोई मृत्यु नहीं है।

इसलिए नानक कहते हैं- "श्रवण से ही मृत्यु स्पर्श नहीं करती। नानक कहते हैं- श्रवण से ही भक्त सदा आनंदित होते हैं और श्रवण से ही दुःख तथा पाप का नाश होता है।"

कैसे चुप हो जाओ और कैसे तुम्हारे भीतर का चलने वाला सतत वार्तालाप टूटे; कैसे क्षण भर को बादल छटें और खुला आकाश दिखायी पड़े; कैसे सिलसिला भीतर मिटे--यही सारी प्रक्रिया है।

यहाँ तुम बैठे हो। मैं बोल रहा हूँ। साथ-ही-साथ तुम्हें बोलने की कोई भी तो जरूरत नहीं है। तुम चुप हो सकते हो। बस पुरानी आदत है, वह भीतर बोले चली जा रही है। आदत की वजह से!

एक छोटे से बच्चे से मैं पूछ रहा था कि तेरी छोटी बहन बोलने लगी या नहीं! उसने कहा बोलने तो लगी, कब का सीख गई बोलना! अब सब उसको मौन होना सिखा रहे हैं। अब वह चुप ही नहीं होती, बोलती ही रहती है। पहले बिलकुल चुप थी तो हम सबने मिलकर बोलना सिखाया और अब सब मिलकर चुप होना सिखा रहे हैं, जो कि ज्यादा कठिन काम मालूम होता है।

तुम बिन बोले आये, क्या तुम्हारा दिल बोलते-बोलते जाने का है? तब तुम जीवन से भी वंचित हो जाओगे और मृत्यु का भी परम स्पर्श, परम आनंद तुम्हें न हो सकेगा। तुम चुप आये, चुप ही जाने की तैयारी करो। बोलना बीच में है, संसार के लिए है; उपयोगी है। जब तुम दूसरे से बात कर रहे हो,

तब बोलने का उपयोग है। जब तुम चुप बैठे हो, तब बोलना पागलपन है। बोलना एक प्रक्रिया, जिससे हम दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। चुप होना दूसरी प्रक्रिया है, जिससे हम अपने से ही सम्बन्धित होते हैं। चुप रहोगे तो दूसरे से सम्बन्धित होना मुश्किल है; बोलोगे तो अपने से सम्बन्धित होना मुश्किल है। बोलना तो एक सेतु है, जिसके माध्यम से हम दूसरे तक पहुँचते हैं। चुप होना एक सेतु है, जिससे हम अपने तक पहुँचते हैं। कहीं तुम साधन की भूल कर रहे हो।

अगर कोई आदमी चुपचाप बैठा रहे, किसी से बोले ही न, तो उसका कोई सम्बन्ध निर्मित न होगा। धीरे-धीरे लोग उसे भूल जायेंगे। इसलिए गूँगे से दीन आदमी दूसरा नहीं दिखाई पड़ता; अंधा भी उतना दीन नहीं दिखाई पड़ता जितना गूँगा दीन मालूम पड़ता है। तुम कभी गौर करो। गूँगे पर सबसे ज्यादा दया आयेगी। क्योंकि अंधा देख नहीं पाता, यह सच है, लेकिन फिर भी सम्बन्ध तो बना लेता है। पति हो सकता है, पत्नी बन सकता है, बेटे से बोल सकता है, मित्र बन सकता है, समाज का हिस्सा हो सकता है; गूँगा अपने में बन्द! कहीं जाने का कोई उपाय नहीं, किसी से सम्बन्ध होने के लिए कोई रास्ता नहीं खुलता। गूँगा जैसे किसी से सम्बन्धित न हो पायेगा और उसकी तुम अड़चन समझो। बाहर जाना चाहता है, नहीं जा सकता। उसके इशारे गौर से देखो। कितनी तड़प से इशारे करता है और जब तुम नहीं समझते हो तो कैसा बेहाल हो जाता है! कैसा हेल्पलेस, कैसा असहाय अपने को पाता है! गूँगे से ज्यादा दयनीय कोई भी नहीं; क्योंकि गूँगा समाज का हिस्सा नहीं हो पाता। मित्र नहीं बना सकता। किसीसे बोल नहीं सकता। किसी से अपने प्रेम की चर्चा नहीं कर सकता। किसीसे अपने हृदय की बात नहीं कह सकता। किसीसे अपना दुःख नहीं कह सकता कि थोड़ा हल्का हो जाए।

जैसे गूँगा असमर्थ हो जाता है दूसरे से सम्बन्ध बनाने में, वैसे ही तुम असमर्थ हो गये हो अपने से सम्बन्ध बनाने में; क्योंकि वहाँ तुम बोले जा रहे हो। वहाँ गूँगे होने की जरूरत है। वहाँ बिलकुल चुप हो जाने की जरूरत है; क्योंकि दूसरा वहाँ है ही नहीं। वार्तालाप किससे कर रहे हो? किससे बोल रहे हो भीतर? खुद ही जवाब दे रहे हो, खुद ही प्रश्न उठा रहे हो—यही तो विक्षिप्तता का लक्षण है। पागल में और तुममें फर्क क्या है? पागल जोर-जोर से खुद से बात करता है, तुम धीरे-धीरे करते हो, बस इतना ही फर्क है। किसी दिन तुम भी जोर-जोर से करने लगोगे। तब तुम भी पागल हो जाओगे। अभी तुम पागलपन को जैसे दबा-दबा कर बैठे हो, वह कभी भी फूट सकता है। वह नासूर है; उससे मवाद कभी भी बह सकती है।

भीतर की वार्ता क्यों चल रही है? क्या कारण है? आदत! पूरे जीवन तुम्हें सिर्फ बोलना सिखाया गया है। बच्चा घर में पैदा होता है तो जो पहली बात सिखाने की कोशिश करते हैं, वह यह कि किसी तरह बोले। और जो बच्चा जितनी जल्दी बोलता है, वह उतना उपयोगी सिद्ध होता है समाज में। उसको लोग प्रतिभाशाली कहते हैं, वह जितनी जल्दी बोलता है। जितनी देर से बोलता है, उतना प्रतिभाहीन कहते हैं।

बोलने की कला सामाजिक कला है। मनुष्य समाज का हिस्सा है। इसलिए हम पहली चिन्ता यह करते हैं कि बच्चा बोले। और जब बच्चा बोलता है तो माँ-बाप कितने प्रसन्न होते हैं! फिर जीवन की जितनी भी जरूरतें हैं, सब बोलने से पूरी होती हैं; भूख लगी तो बोलो, प्यास लगी तो बोलो, कहो। जीवन की रक्षा है बोलने में।

मौन का फायदा ही क्या है! इस जिन्दगी में कोई फायदा नहीं दिखाई पड़ता। मौन इस संसार में कोई भी तो अर्थ नहीं रखता। मौन से तुम क्या खरीदोगे? मौन से क्या बाजार से लाओगे? मौन से कौन सी जरूरत पूरी होगी? बोलने से शरीर की सब जरूरतें पूरी होती हैं और इसलिए बोलने के हम अभ्यस्त होते जाते हैं। फिर तो हम रात भी बोलते हैं, नींद में भी बोलते हैं। फिर हम चौबीस घंटे बोलते ही रहते हैं। फिर बोलना हमारे भीतर ऑटोनॉमस, यंत्रवत् हो जाता है।

हम बोलते ही रहते हैं। रिहर्सल करते हैं। किसीसे बोलने के पहले भीतर बोलते हैं कि क्या कहेंगे। बोलने के बाद फिर दुहराते हैं कि क्या कहा। फिर धीरे-धीरे हम यह भूल ही जाते हैं कि इस बोलने के द्वारा हम कुछ खो रहे हैं। बाहर तो लाभ हो रहा है, भीतर विनाश हो रहा है। संसार में तो गति हो रही है, अपने से सम्बन्ध टूट रहे हैं। दूसरों से तो पास जुड़ रहे हैं, अपने से दूर जा रहे हैं। दूसरों के तो पास आ रहे हैं, खुद की निकटता खोती जा रही है। फिर जितने तुम कुशल हो जाओगे इसमें, उतना ही मौन कठिन हो जायेगा। आदत...! और आदत को कोई एक क्षण में नहीं तोड़ सकता।

तुम समझ भी लो, तुम्हें बिलकुल समझ में भी आ जाए कि बात सही है—खुद से बोलने की क्या जरूरत है? कोई चलता है तो पैर चलाता है, बैठे-बैठे तो पैर चलाने की कोई जरूरत नहीं; क्योंकि कहीं और जाना हो तो पैर चलाने पड़ते हैं, जब कहीं जाना ही नहीं हो, बैठे हो तब पैर क्यों चलाना! जब भूख लगती है, तब कोई खाना खाता है, जब भूख न लगी हो तब कोई खाना खाता

रहे तो विक्षिप्त हो जायेगा। जब नींद आती हो तब सो जाना पड़ता है। जब नींद न आती हो तब सोने की चेष्टा करनी व्यर्थ परेशान होना है। लेकिन यह तुम बोलने के सम्बन्ध में कभी नहीं सोचते कि जब जरूरत हो तब हम इसका उपयोग करेंगे; जब जरूरत न होगी तब बन्द कर देंगे।

ऐसा लगता है कि तुम भूल ही गये हो कि बोलने की प्रक्रिया रोकी और जारी की जा सकती है। बिलकुल की जा सकती है; अन्यथा सारे धर्म असम्भव हैं। धर्म सम्भव होते हैं मौन से। इसीलिए श्रवण की इतनी तारीफ कर रहे हैं नानक। इधर श्रवण की तारीफ गौर से समझो तो मौन की तारीफ है। वह महिमा मौन की है कि तुम चुप हो जाओ ताकि तुम सुन सको कि क्या कहा जा रहा है। तुम अपने में ही डूबे बैठे हो; तुम अपनी ही चलाये जा रहे हो; तुम अपनी ही बोले जा रहे हो—यह समझ में आ जाए तो भी इसी क्षण रोक नहीं सकते। आदतें समय लेती हैं जाने में और आदतों को तोड़ना हो तो विपरीत आदत बनाने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

तो मौन का अभ्यास करना पड़ेगा। साधुओं के सत्संग में रहने का एक ही तो अर्थ है कि तुम मौन का अभ्यास करो। गुरु के पास जाने का एक ही तो प्रयोजन है कि वहाँ तुम्हें बोलने को क्या है, सिर्फ सुनने का है; तुम सुनोगे, चुप बैठोगे। गुरु के पास तुम वार्तालाप करने को थोड़े ही जाते हो।

एक मित्र कुछ दिन पहले आये। उन्होंने कहा, आपसे कुछ चर्चा करनी है। हमने कहा, चर्चा करनी है तो आप करें, मैं सुनूंगा; लेकिन फिर मैं नहीं बोलूंगा। उन्होंने कहा कि नहीं, विचार का लेन-देन। मैंने कहा आपके पास विचार हों तो मुझे कोई लेना नहीं, कुछ देना नहीं। निर्विचार हों तो मैं कुछ दे सकता हूँ। और आपके पास कुछ देने को हो तो मैं लेने को राजी हूँ।

कुछ भी देने को नहीं है; लेकिन विचार का लेन-देन करना है! लोग कहते हैं, ऐक्सचेंज ऑफ थाट्स—तुम्हारा पागलपन तुम मुझे दो, मेरा पागलपन मैं तुम्हें दूं। वैसे ही दोनों काफी पागल थे और लेन-देन की कोई जरूरत न थी।

गुरु के पास हम वार्तालाप के लिए नहीं आते, चुप होने आते हैं और जब हम चुप हो जाते हैं, तभी हम सुन सकते हैं। श्रवण की महिमा को तुम मौन की महिमा समझना; क्योंकि श्रवण सम्भव ही तभी होगा जब तुम चुप हो। और तुम्हारे चुप होने के लिए तुम्हें थोड़े अभ्यास करने पड़ेंगे।

क्या करोगे चुप होने के लिए? कुछ और ज्यादा करना नहीं। कभी दिन में चौबीस घंटे में जब सुविधा हो, घड़ी भर के लिए शान्त होकर बैठ जाओ। भीतर का वार्तालाप चलेगा। तुम उसमें सहयोगी मत बनो। यह सूत्र है। चल

रही है चर्चा भीतर, तुम सुनो; जैसे कोई दो आदमी बात कर रहे हैं; लेकिन तुम दूर रहो। तुम उसमें बीच में मत पड़ जाओ। तुम उलझो मत! तुम सुनते रहो कि मन का यह कोना मन के दूसरे कोने से बोल रहा है; मैं सुन रहा हूँ। जो आये आने दो। न तुम दबाओ, न तुम हटाओ, न तुम रोकने की कोशिश करो; तुम सिर्फ साक्षी रहो।

बहुत कुछ कचरा निकलेगा, क्योंकि बहुत कुछ तुम दबाये बैठे हो। और मन को कभी खुली छूट नहीं मिली है; फुर्सत नहीं मिली है। जब फुर्सत दोगे तो मन घोड़े की जैसे लगाम टूट गई हो, ऐसा भागेगा। भागने दो। तुम बैठे देखते रहो। बस उस देखने में ही धीरज है; क्योंकि तुम्हारी तबीयत होगी, घोड़े पर सवार हो जाओ; तुम्हारी तबीयत होगी, लगाम पकड़ लो; तुम्हारी तबीयत होगी, घोड़े को बाएँ चलाओ कि दाएँ चलाओ! पुरानी आदत! उसे तोड़ने के लिए तुम्हें थोड़ा सा धैर्य रखना पड़ेगा—कि घोड़े को जाने दो; मन जहाँ जाये जाने दो; मैं सिर्फ देखूंगा। मैं कोई नियंत्रण न करूँगा। एक शब्द दूसरे शब्द को लायेगा; क्योंकि सब चीजें जुड़ी हैं। एक शब्द उठेगा; हजार शब्द उठेंगे; क्योंकि कोई भी चीजें असम्बन्धित नहीं हैं।

फ्रायड ने इस प्रक्रिया का बड़ा उपयोग किया; वह योग की बड़ी पुरानी प्रक्रिया है। फ्रायड को तो शायद पता भी नहीं था; लेकिन उसने पूरे मनोविश्लेषण को इसी के ऊपर आधारित किया। "फ्री एसोसिएशन ऑफ थॉट'—सब चीजें जुड़ी हैं। एक विचार आता है, उसके कुन्दे में फँसा हुआ दूसरा आता है, उसके कुन्दे में फँसा तीसरा आता है—एक श्रृंखला बन जाती है।

एक ट्रेन में मैं सफर कर रहा था। बड़ी भीड़ थी। और टिकिट चैकर आया और एक बूढ़ा आदमी ठीक मेरी सीट के नीचे छिपा हुआ था। उसने उससे पूछा—'ऐ बूढ़े, टिकिट दिखा!' वह बूढ़ा वहीं गिड़गिड़ाने लगा, हाथ जोड़ने लगा, और कहा—'क्षमा कर दें, इस वार बस माफ कर दें। न तो टिकिट है पास और न एक पाई है जेब में। लड़की की शादी करनी है, उसी सिलसिले में गाँव जा रहा हूँ। बड़ी कृपा होगी!' दया आ गई उस टिकिट चैकर को; वह आगे बढ़ गया। लेकिन दूसरी सीट के नीचे एक जवान आदमी भी छिपा हुआ था। उसने सिर्फ मजाक में उससे कहा—'क्यों भाई, तुमको भी अपनी बेटी की शादी करनी है क्या? टिकिट कहाँ है?' उस आदमी ने कहा—'हुजूर, टिकिट तो नहीं है। और बेटी की शादी नहीं करने जा रहा हूं। मैं उस बूढ़े का होने वाला जंवाई हूँ।'

ऐसे ही चीजें जुड़ी हैं—कोई जंवाई है, कोई ससुर है; दोनों छिपे हैं। उनको थोड़ा बाहर लाने की जरूरत है। तुम्हारे भीतर सारी श्रृंखला बँधी है।

तुम खुद ही हैरान होओगे, चकित होओगें कि कैसे-कैसे विचार से कैसे विचारों का सम्बन्ध जुड़ा है; वे कहाँ से चले आते हैं ! तुम भयभीत भी होओगे; क्योंकि लगेगा कहीं मैं पागल तो नहीं हो रहा हूँ !

मगर यह बड़ा अद्‌भुत प्रयोग है। तुम जो भी हो रहा है होने दो। अगर सुविधा हो तो और भी अच्छा होगा कि तुम जोर से बोलो, ताकि तुम सुन भी सको; क्योंकि मन में तो महीन होती हैं बातें। हो सकता है, तुम सचेतन न रह सको। तुम्हारे भीतर जो चल रहा है, उसे तुम जोर से बोलो ! सुनो भी और भीतर सजगता भी रखो कि मैं दूर रहूँगा; जो भी हो रहा है, उसे बोल दूंगा। निष्पक्ष, तटस्थ भाव से। गाली आयेगी तो गाली, अपशब्द आयेगा तो अपशब्द। राम का नाम आयेगा तो राम का नाम, ओंकार आयेगा तो ओंकार--जो भी आयेगा, मैं बोल दूंगा और सुनता रहूँगा।

अगर तुम तीन महीने सतत एक घंटा रोज इस साहचर्य से गुजर जाओ तो तुम धीरे-धीरे तीन महीने के बाद ही अनुभव करोगे कि अब विचार कम आ रहे हैं। क्योंकि तुम्हारा पुराना जो संरक्षित कोष था, वह कम होता जा रहा है। अब चीजें कम रह गई हैं। कभी-कभी एक शब्द आता है; फिर उसकी हुक में बँधा हुआ कोई शब्द नहीं आता, वह अकेले ही आकर रह जाता है। थोड़ी देर टिकता है, खो जाता है। छह महीने के बाद तुम पाओगे कि कभी-कभी बीच में अतराल आने लगा; एक पल को कुछ भी नहीं होता, तुम अकेले रह जाते हो। उसी पल में श्रवण की क्षमता शुरू होगी।

लेकिन छह महीने बड़े धैर्यपूर्वक मन को उलीचना जरूरी है; क्योंकि जिन्दगी भर उसे भरा है। छः महीने भी अगर तुम बड़े धैर्यपूर्वक करो तो ही यह हो पायेगा; नहीं तो छह साल भी लग सकते हैं, छह जन्म भी लग सकते हैं। तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम कितनी त्वरा से, कितनी समग्रता से इस प्रयोग को करते हो।

और कई बार ऐसा मौका आयेगा कि तुम भूल ही जाओगे कि हमें सिर्फ देखना है। तुम सवार हो जाओगे घोड़े पर, यात्रा पर निकल जाओगे। तुम संबंधित हो जाओगे। तुम लीन हो जाओगे; तादात्म्य हो जायेगा। किसी विचार के साथ आइडेंटिटी हो जायेगी। और तब तुम चूक गये, तब प्रयोग असफल हो गया। जैसे ही ख्याल आये, फिर घोड़े से नीचे उतर जाओ। शब्दों को चलने दो तुम ऊपर मत चढ़ो। शब्दों को जहाँ जाना हो, जाने दो; तुम उनके पीछे अनुसरण मत करो। तुम सिर्फ देखते रहो पीछे-पीछे, क्या हो रहा है।

तो धीरे-धीरे मौन--बहुत धीरे-धीरे मौन की पदचाप सुनाई पड़ेगी और जिस दिन तुम्हें मौन की पदचाप सुनाई पड़ेगी, उसी दिन तुम्हें श्रवण की कला का

भी अनुभव होगा। उस दिन तुम सुन सकोगे। उस दिन तुम्हें गुरु को खोजने न जाना पड़ेगा। उस दिन तुम जहाँ रहोगे, वहीं गुरु है। वहाँ वृक्ष में हवा चलेगी, फूल झरेगा, सूखा पत्ता गिरेगा, तुम उसे भी सुन सकोगे। आकाश में बादल गरजेंगे, बिजली चमकेगी, नदी में बाढ़ आयेगी, तुम उसे भी सुन सकोगे। समुद्र के किनारे तुमुल नाद होगा, तुम उसे भी सुन सकोगे। एक पक्षी गुनगुनायेगा गीत, एक बच्चा रोयेगा, रास्ते पर कुत्ता भौंकेगा, तुम वहाँ भी सुन सकोगे।

सुनने की कला आ जाए तो गुरु चारों तरफ है। और सुनने की कला न आये तो सभी सिद्ध-पुरुष तुम्हारे सामने बैठे हों, तो भी गुरु नहीं हैं, गुरु होता है उसी क्षण जब तुम सुनने में समर्थ हो गये।

इसलिए नानक कहते हैं--"श्रवण से ही भक्त आनंदित होते हैं। श्रवण से ही दुःख तथा पाप का नाश होता है।"

अगर तुम्हें सुनने की कला आ गई तो तुम परम आनंदित हो जाओगे; क्योंकि तुम साक्षी हो गये। साक्षी ही तो आनंद है। श्रवण घटा, मन खो गया; मन का खो जाना ही तो आनंद है। मन के पार चले जाना ही तो आनंद है। श्रवण हुआ, शब्द की श्रृंखला टूट गई। शब्द की श्रृंखला के अतीत हो जाना ही तो आनंद है। वही अतिक्रमण, ट्रान्सेन्डेन्स है। अब तुम शब्दों की घाटी में न रहे। अब तुम उत्तुंग शिखर हो गये, जहाँ शब्द पहुँचते नहीं; शब्दों की धूल नहीं पहुँचती। जहाँ परम मौन है; जहाँ मौन कभी टूटा ही नहीं; अब तुम उस शिखर पर खड़े हो। उस शांति के शिखर से आनंद के सिवाय और कोई गूंज पैदा नहीं होती। उस शांति के शिखर पर तुम परम-धन्यता को उपलब्ध होते हो।

"श्रवण से ही दुःख तथा पाप का नाश हो जाता है।"

जिसने सुन लिया, जिसने सुनना जान लिया, फिर कैसा पाप ! क्योंकि पाप होता है विचार के साथ संबंधित होने से। इसे थोड़ा समझो।

मन में एक विचार उठा। रास्ते से एक कार गुजरी। एक झलक, मन में एक विचार आ गया कि यह कार मेरे पास हो। अब तुम इसमें संयुक्त हो गये। अब वह कार कैसे तुम्हारे पास हो, तुम इस धुन में लग गये। ईमानदारी से मिले तो ईमानदारी से, बेईमानी से मिले तो बेईमानी से--कार होनी चाहिए। अगर कार नहीं है तो अब तुम सो न सकोगे। अब तुम्हारी जिंदगी में एक कठिनाई आ गई; जब तक हल न हो जाए तब तक तुम चैन न पा सकोगे। रात सपने में कार, दिन सोचने में कार; अब कार तुम्हें घेरे हुए है !

हुआ क्या ? कार निकली थी, एक विचार उठा। क्योंकि मन में तो जो भी चीज निकलेगी, उसके साथ तत्क्षण प्रतिबिंब बनेंगे। उस विचार के साथ तुम संयुक्त हो गये; तुम दूर न रह सके।

एक सुंदर स्त्री निकली, तुम्हारे मन में एक विचार उठा। मन में विचार उठे, यह बिलकुल ठीक है; क्योंकि मन तो दर्पण है। वह तो है ही इसलिए कि जो भी आसपास घटे, उसमें प्रतिबिंबित हो। लेकिन तुम तत्क्षण जुड़ गये। सुंदर स्त्री का प्रतिबिंब बनता और सुंदर स्त्री चली जाती, प्रतिबिंब भी चला जाता। तुम साक्षी रहते तो पाप का कोई उपाय न होता; लेकिन अब किसी भी तरह यह स्त्री चाहिये। राह से मिले, राह से; बेराह मिले, बेराह; प्रेम से मिले, प्रेम से; हिंसा से मिले, हिंसा से; अगर न हो सके प्रेम तो बलात्कार, लेकिन अब वह स्त्री चाहिए।

अब एक विचार ने तुम्हें ग्रसित कर लिया। एक छाया तुम्हारे मन से गुजरी थी, तुम उसे गुजरते देख लेते और तुम अपने को दूर खड़ा रखते और देखते रहते कि छाया बनी और गयी, तो कोई पाप न उठता। सब पाप उठते हैं, क्योंकि तुम विचार के साथ एक हो जाते हो। फिर विचार तुम्हें इस बरी तरह पकड़ लेता है--एक झंझावात की तरह, एक आँधी की तरह--कि तुम्हें झकझोर देता है। और विचार के साथ जाकर भी कुछ मिलता नहीं। दुःख मिलता है। तुमने इतना दुःख पाया है, वह विचार के साथ जाकर पाया है। पर इतना भी तुम्हें होश नहीं है कि तुम देख सको कि सब दुःख विचार के साथ जाकर पाया है। और सब आनंद निर्विचार में घटित होता है।

नानक कहते हैं--श्रवण से दुःख तथा पाप का नाश होता है; क्योंकि पाप का फल है दुःख। पाप है बीज, फल है दुःख। इधर पाप गया, उधर दुःख गया और जब न पाप है और न दुःख है, तब तुम जिस अवस्था में हो, वही समाधि है, वही आनंद है !

सुनने में जो समर्थ हो गया, उसके दुःख और पाप नष्ट हो गये और नानक कहते हैं, वैसा भक्त आनंद को उपलब्ध हो जाता है। और उसका आनंद विकसित ही होता चला जाता है।

यह 'विगासु' शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें दोनों बातें छिपी हैं--आनंद और निरंतर विकासमान। तो आनंद तो एक फूल है, जो खिलता ही चला जाता है। ऐसी कोई घड़ी नहीं आती, जब वह पूरा फूल खिल जाए; खिलता ही चला जाता है। पूरे से भी ज्यादा; और पूरा, और पूरा, और परिपूर्ण खिलता चला जाता है। जैसे सुबह का सूरज उगता है और उगता ही चला जाता है; और कोई

अस्त न हो, ऐसा वह आनंद है। फूल खिलता है और मुरझाये न, कोई अस्त न हो, ऐसा वह आनंद है।

हृदय में जब शून्यता घनी होती है, मौन का जन्म होता है तो फिर आनंद की लहरें उठती ही चली जाती हैं। ध्यान रखना, आनंद कोई ऐसी घटना नहीं है कि जो वस्तुओं की तरह है; तुमने एक दफे पा ली और खत्म हो गई। वह बढ़ती ही चली जाती है। एक दफा जिसने पा ली, वह बढ़ती ही चली जाती है। उसकी बढ़ती की कोई सीमा नहीं है।

इसलिए तो हम कहते हैं--परमात्मा अनन्त है और इसलिए हम कहते हैं--परमात्मा आनन्द है; क्योंकि आनन्द अनन्त है। तुम कभी उसे पूरा पा न पाओगे और हर बार तुम पाओगे कि और बढ़ता जा रहा है। और हर जगह तुम पाओगे कि तुम पूरे तृप्त हो। यह पहेली है और बुद्धि से सोचने पर हल नहीं होती है; क्योंकि बुद्धि कहती है, अगर मिल गया और तृप्ति हो गई तो अब और बढ़ने को क्या बचा ! तृप्ति भी बढ़ती है; क्योंकि तृप्ति जीवन है, वस्तु नहीं है। तृप्ति एक जीवंत घटना है।

आनन्द कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि ले आये खरीद कर एक सेर, दो सेर, बात खत्म हो गई; आनन्द अनन्त है। एक बार तुम उतर गये तो तुम डूबते ही चले जाते हो। और मजे की बात यह है कि हर घड़ी लगता है कि पूरा मिला, फिर भी बढ़ता है।

पूर्ण भी विकासमान है। पूर्ण भी मृत नहीं है; रुक नहीं गया है; फैलता चला जा रहा है। इसलिए तो हमने इस अस्तित्व को ब्रह्म कहा है। ब्रह्म का अर्थ होता है--जो विस्तृत होता ही चला जाता है। ब्रह्म का अर्थ है--जिसके विस्तार की सीमा कभी नहीं आती; जो उतना ही नहीं है, जितना कल था; जो उतना ही नहीं है, जितना आज है; जो रोज फैलता चला जाता है। जिसका फैलाव अंतहीन है। ब्रह्म शब्द का अर्थ होता है--अंतहीन फैलाव।

"श्रवण से ही विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र होते हैं। श्रवण से ही बुरे मुख से भी उसकी प्रशंसा के गीत निकलने लगते हैं। श्रवण से ही योग की युक्ति और शरीर के भेद ज्ञात होते हैं। श्रवण से ही शास्त्र, स्मृति और वेद का अनुभव होता है। नानक कहते हैं कि श्रवण से ही भक्तगण सदा आनंदित होते हैं तथा दुःख और पाप का नाश होता है।"

सुन लिया जिसने सत्य को, गुरुवाणी को; जिसने जाना है उसकी सुगंध को; जिसने जाना है, उसके पास बैठना जो सीख गया है; जिसे इतनी कला आ गई

कि वह चुप होकर किसी के पास बैठ जाये, जिसे घटना घटी है तो जिसके भीतर घटी है, उससे बहकर तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होने लगती है।

ज्ञान संक्रामक है। आनंद संक्रामक है। तुम्हारे द्वार खुले हों तो बस हवा के झोंके की तरह आनंद तुममें आ जाता है उस आदमी के पास से, जिसके पास था। उसका कुछ कम नहीं होता, तुम्हारा बढ़ जाता है। बँटने से उसका भी बढ़ता है; क्योंकि उतना ही विस्तीर्ण हो जाता है। चुप अगर तुम हो तो तुम्हारे भीतर जगह है। और ध्यान रखना, अस्तित्व शून्यता को पसंद नही करता। तुम इधर शून्य हुए और उधर अस्तित्व ने तुम्हें भरा।

जैसे नदी में तुम पानी भर लो एक घड़े में, तुम भर भी नहीं पाये कि चारों तरफ से पानी दौड़ कर खाली जगह को भर देता है। तुम हवा में से हवा को निकाल लो, चारों तरफ से हवाएँ दौड़कर उसे भर देती हैं। अस्तित्व खाली जगह को पसंद नहीं करता। तुम एक बार खाली होने को राजी भर हो जाओ कि हमेशा ताजी हवाओं से भर दिये जाते हो। तुम इधर खाली हुए, उधर भरे। इस कोने से तुम बाहर निकले, उधर से परमात्मा भीतर आया। तुम जब तक अपने से ही भरे हो, तब तक खाली रहोगे। जिस दिन खाली हो जाओगे, उस दिन उस परम ऊर्जा से भर जाओगे।

नानक कहते हैं, जिनके जीवन में पाप है और जिसके मुख से कभी सुंदर शब्द नहीं निकले; शुभ-वाणी जिनसे कभी प्रकट नहीं हुई; जिनके ओठों से सदा अपशब्द निकले; जिनके मस्तिष्क में सदा अभिशाप रहा--ऐसे बुरे लोग भी अगर एक बार सुन लें तो महिमा से भर जाते हैं। श्रवण की छोटी सी झलक भी तुम्हें ताजा कर देती है, नहला देती है।

नानक पापियों से पाप छोड़ने को नहीं कह रहे हैं। वे कह रहे हैं — तुम सिर्फ सुन लो। पाप छूट जायेगा सुनने से। नानक पापियों को सुधरने को नहीं कह रहे हैं कि तुम पहले सुधर जाओ तब तुम सुन पाओगे, तब तो असंभव हो जायेगा। तब तो तुम कभी भी न पहुँच पाओगे। अगर यह शर्त हो कि पहले जब तक तुम शुद्ध न हो जाओगे, तब तक सुन न सकोगे; तो तुम कभी सुन ही न सकोगे। तब तो तुम्हारे जीवन में कोई आशा नहीं।

नानक कह रहे हैं--तुम सुन लो, पाप की चिन्ता छोड़ो, बुराई की चिन्ता छोड़ो। सुनते ही तुम्हारे जीवन में एक नये सूत्र का आविर्भाव होगा; एक नई चिनगारी पड़ेगी, जो तुम्हारे सारे पाप को जला देगी। तुम्हारा सारा अतीत राख हो सकता है, अगर तुम मौन हो जाओ।

क्योंकि है ही क्या पाप ? अतीत में भी तुमने किया क्या है ? विचार के साथ संयुक्त हो गये थे और फिर विचार को कृत्य बनाने में लग गये थे— यही तो सारा पाप है। आज तुम विचार से अलग हो जाओ, कृत्य टूट जाये, कर्त्ता खो जाये--अतीत से भी सम्बन्ध टूट गया। तब तुम ऐसा पाओगे कि अतीत भी एक स्वप्न था, इससे ज्यादा नहीं। तुमने जन्मों-जन्मों में जो किया वह भी कर्त्ता होने की भ्रांति के कारण हुआ था। आज भ्रांति टूट गई, वे सब कृत्य समाप्त हो गये।

नानक की बात बहुत लोगों की समझ में नहीं पड़ेगी; क्योंकि लोग सोचते हैं कि जो-जो पाप किये हैं, उन पापों के प्रायश्चित में पुण्य करने पड़ेंगे। और जब तक हम पुण्य न करेंगे तब तक पाप कैसे कटेंगे ? जो बुरा किया है; उसके ठीक सम-तोल में तराजू पर भला करना पड़ेगा। हिसाबी-किताबी दिमाग के लोग ठीक ही कहते हैं कि अगर एक बुरा कृत्य किया तो एक भला कृत्य करो, तब तो समतोल होगा। अगर ऐसा होना है तो तुम कभी मुक्त न हो सकोगे; क्योंकि अनंत जन्मों से तुम पाप कर रहे हो। अनंत जन्म तुम्हें लगेंगे पुण्य करने में। और इस बीच भी तुम पाप करने से बचोगे, इसका कोई भरोसा है ! तब तो यह श्रृंखला टूट ही नहीं सकती। तब तो मोक्ष असम्भव है।

अनंत जन्मों से किये हुए पाप हैं। इनके अगर एक-एक पाप का चुकतारा करना हो, अगर परमात्मा कोई दुकानदार हो या अदालत का कोई मैजिस्ट्रेट हो और अगर इनका--एक-एक पाप का चुकतारा करना हो--तो यह चुकतारा कब पूरा होगा ? और इस बीच तुम अगर पुण्य ही पुण्य करते रहो तो चुकतारा अनंत काल में हो पायेगा; लेकिन इस बीच तुमसे आशा है कि तुम पुण्य ही पुण्य करते रहोगे ? नहीं, ज्ञानियों ने कुछ और ही बात कही है। ज्ञानी किसी दूसरे ही गणित से चलते हैं। वे कहते हैं--पाप का सवाल नहीं है; पाप के मूल का सवाल है।

यह वृक्ष खड़ा है सामने, तुम पचास साल से पानी दिये हो इस वृक्ष को; क्या तुम सोचते हो पचास साल लगेंगे पानी वापस निकालने में, तब यह वृक्ष मरेगा ? जड़ को आज काट दो, यह आज मरना शुरू हो जायेगा। पत्ते एक-एक तोड़ने में शायद पचास साल लगें, फिर भी वृक्ष न टूटे ! क्योंकि पुराने पत्ते टूटेंगे, नये आ जायेंगे। और अब तो वृक्ष इतना बड़ा हो गया है कि तुम्हें पानी देने की जरूरत भी नहीं। अब तो वह जमीन से अपना पानी लेता है। नहीं, पत्ते अगर काटे तो यह वृक्ष कभी टूटने वाला नहीं। सच तो यह है कि पत्ते तुम एक काटोगे, दो आ जायेंगे। वही तो कलम की सारी कला है; इधर काटो उधर नये आये। अगर तुम पाप काटोगे, नये पाप आ जायेंगे।

जड़ पकड़ो; जड़ क्या है ? कर्म पत्ते हैं ; कर्ता का भाव जड़ है । अगर तुम कर्ता-भाव को काट दो, इसी वक्त वृक्ष सूख गया। सारा स्रोत तुम्हारे कर्ता-भाव से आ रहा था कि मैं कर रहा हूँ। कर्ता-भाव को तोड़ने की कला साक्षी है; साक्षी यानी श्रवण।

इसलिए नानक ऐसी अनूठी महिमा गा रहे हैं। वे कह रहे हैं कि तुम चुप होकर सुन लो; क्योंकि सुनने के क्षण में तुम कर्ता नहीं रहोगे। सुनना पैसिव, अकर्ता का भाव है। सुनने में तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ता, तुम सिर्फ बैठे हो। सुनना कोई क्रिया थोड़ी है ! तुम्हें कुछ करना थोड़े ही पड़ता है !

बड़े मजे की बात यह है–देखना हो तुम कम से कम आँख खोलनी पड़ती है, कान खुले ही हुए हैं। देखना हो तो कम से कम आँख खोलने की क्रिया करनी पड़ती है; सुनना हो तो कान खोलने की क्रिया भी नहीं करनी पड़ती । इसलिये देखने में तो थोड़ा सा कर्ता का भाव भी आ जाये, सुनने में कर्ता के भाव का कोई उपाय ही नहीं है। कोई दूसरा बोल रहा है, तुम खाली बैठे हो। तुम बिलकुल निष्क्रिय हो। तुम पैसिव हो। तुम अक्रिया में हो। इसलिये देखने से भी वह महिमा उपलब्ध नहीं होती जो सुनने से उपलब्ध होती है।

इसलिए श्रवण पर इतना जोर दिया है। महावीर कहते हैं—सम्यक् श्रवण। बुद्ध कहते हैं—सम्यक् श्रवण। नानक अद्भुत महिमा का वर्णन कर रहे हैं। सुन लो; वहाँ कोई कर्ता नहीं है। वहाँ कोई है नहीं सुनने के क्षण में; अगर तुम चुप हो तो कौन भीतर है ? सुनने के क्षण में सन्नाटा है। एक आवाज गूँजती है, गुजर जाती है। कोई भी नहीं है भीतर। विचार आया कि तुम आये। जब विचार नहीं होता तुम भी नहीं होते। अहंकार विचारों के जोड़ का नाम है। श्रवण अर्थात निर-अहंकार दशा।

कहते हैं नानक, "श्रवण से ही योग की युक्ति और शरीर के भेद ज्ञात होते हैं।" यह बड़ा महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

पश्चिम में, शरीर-शास्त्रियों को बड़ी पहेली रही है कि पूर्वीय मनीषियों ने शरीर के रहस्य-भेद कैसे जाने ! क्योंकि न तो पूरब में लाश बचायी जाती है। पश्चिम में सर्जरी विकसित हो सकी और शरीर का ज्ञान हो सका, क्योंकि ईसाइयत मुर्दे को बचाती है। हिन्दू तो जलाते रहे। तो यहाँ तो मरा हुआ आदमी पाना डिसेक्शन के लिए असंभव था। राख बचती है; उसमें क्या खोजिएगा ? इधर आदमी मरा कि हमने जलाया। तो हिन्दू मरे हुए आदमी को जलाते रहे, बचाया नहीं। पश्चिम में संभव हो सका कि कब्रों से लाशें खोद ली गईं और उनकी जांच-पड़ताल कर ली गई। उससे आदमी के शरीर का ज्ञान हुआ।

पूरब में कैसे हुआ ? फिर पश्चिम में भी ज्ञान अभी हो पाया, वह भी अभी पूरा नहीं हुआ; जब कि इतने वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हैं, जिनसे शरीर की रत्ती-रत्ती जाँच हो सकती है। लेकिन पूरब में कैसे ज्ञान हुआ ? और ज्ञान करीब-करीब ठीक-ठीक हुआ––गणित की तरह ठीक हुआ। न साधन थे, न लाशें उपलब्ध थीं, न वैज्ञानिक विकास था; तकनीक नहीं थी, टेकनालॉजी नहीं थी; कैसे यह हुआ ? बहुत विचार इसपर चलता है। नानक के इस सूत्र में उस विचार का उत्तर है।

श्रवण से ही योग की युक्ति और शरीर के भेद ज्ञात होते हैं। जब तुम शून्य होकर भीतर विराज जाते हो, तब तुम्हें अपना ही शरीर भीतर से ही दिखाई पड़ने लगता है। अभी तुमने अपने शरीर को भी बाहर से देखा है, तो चमड़ी दिखाई पड़ती है। जब तुम अपने शरीर को भीतर से देखोगे तो नाड़ियों का विराट जाल दिखाई पड़ेगा। एक अनूठा अनुभव होता है, जब पहली दफा शरीर भीतर से दिखाई पड़ता है। तुम तो अभी ऐसे हो जैसे अपने ही मकान को चारों तरफ से देखा है, भीतर गये नहीं। बाहर-बाहर घूम रहे हो। तो मकान के बाहर का पलस्तर दिखाई पड़ता है। बस वही तुम्हारा अनुभव है।

जब तुम भीतर जाओगे—जैसा राजमहल में बैठे हुए आदमी को महल भीतर से दिखाई पड़ता है––भीतर का साज-श्रृंगार, भीतर की सजावट––वैसे ही तुम जब शांत होकर अपने भीतर बैठ जाते हो, जब मन उलझन खड़ी न करता...।

क्योंकि मन सदा बाहर ले जाता है। जैसे ही तुम मन के साथ बँधे कि तुम बाहर गये। मन बाहर जाने का द्वार है। सोचोगे क्या ? जो भी सोचोगे, बाहर होगा––धन होगा, स्त्री होगी, मकान होगा, कार होगी, इज्जत होगी, पद-प्रतिष्ठा––जो भी सोचोगे, बाहर होगा। विचार के सभी ऑब्जेक्ट––विषय-वस्तुएँ बाहर हैं।

तुम सोचोगे क्या ? बाहर का ही कुछ सोचोगे। जैसे ही तुम निर्विचार हुए, बाहर जाना बन्द हुआ। ऊर्जा भीतर ठहर गई। तुम अपने सिंहासन पर बैठे और पहली दफे तुम्हें शरीर भीतर से दिखाई पड़ना शुरू हुआ ! तब तुम पाओगे, यह शरीर छोटा नहीं है, छोटा दिखाई पड़ता है। इसलिए तो हिन्दू कहते हैं, क्षण्ड में ब्रह्माण्ड समाया है। इस छोटे से शरीर में––मिनिएचर––समस्त ब्रह्माण्ड छिपा हुआ है। यह छोटा सा शरीर जैसे सारे ब्रह्माण्ड की छोटी सी अनुकृति है, जो कुछ सारे जगत में है, वह सब इस छोटे से शरीर में छोटे परिमाण में––एक मॉडल; जैसे कोई ताजमहल का मॉडल बनाता है––सब बिलकुल ताजमहल जैसा पर छोटी आकृति। ऐसा ही प्रत्येक जीवन समस्त अस्तित्व की छोटी आकृति है।

नानक कहते हैं, जो चुप हो गया, मौन हो गया; जिसने श्रवण की कला सीख ली और जो अपने ही भीतर अपने शरीर को भी सुनने लगा, उसे शरीर के भेद, योग की युक्ति–सब ज्ञात हो जाती है।

पतंजलि ने जो भी योग-शास्त्र में लिखा है, वह किसी दूसरे की शरीर की जाँच से नहीं; अपने ही शरीर के भीतर के अनुभव से लिखा है। और वे वचन अभी भी शत-प्रतिशत सही हैं, कोई अन्तर नहीं पड़ा। योग ने जितनी विधियाँ खोजी हैं, वे अपने ही शरीर के अनुभव से खोजी हैं।

अगर तुम शांत होकर बैठोगे तो कुछ उदाहरण के लिए मैं तुम्हें कहूँ। जैसे ही तुम शांत होकर बैठोगे, तुम पाओगे, तुम्हारे स्वाँस की गति बदल गई। तत्क्षण विचार बन्द हुए, स्वाँस की गति बदल जाती है। विचार चले, स्वाँस की गति बदल जाती है। जब तुम शांत होकर बैठोगे—अगर तुमने पहचान लिया कि स्वाँस की गति बदली, अब कैसी गति है स्वाँस की—जब भी तुम शांत होना चाहो स्वाँस की वही गति कर लो, तुम तत्क्षण शांत हो जाओगे; तुम्हें एक रहस्य पता चल गया; तुम्हें एक कुंजी हाथ में आ गई।

जब तुम बिलकुल शांत होकर बैठे, तब तुम देखो कि तुम्हारी रीढ़ की क्या स्थिति है। जब तुम शांत होकर बैठोगे तुम पाओगे, रीढ़ अपने-आप नब्बे का कोण बना लेती है जमीन से। स्वस्थ आदमी हो, बूढ़ा न हो, बीमार न हो तो जैसे ही शांत होगा, रीढ़ नब्बे का कोण बना लेगी। तुम्हें एक कुंजी हाथ आ गई। जब भी तुम शांत होना चाहो, रीढ़ को नब्बे का कोण बना दो जमीन से। ऐसे धीरे-धीरे योगी अनुभव करता है कि क्या उसके भीतर हो रहा है।

जैसे ही तुम शांत होकर बैठोगे, तुम पाओगे कि जितने तुम शांत होते हो, तुम्हारी रीढ़ से कोई ऊर्जा ऊपर की तरफ उठनी शुरू हो जाती है। तुम उसे प्रत्यक्ष देखोगे, अनुभव करोगे। एक उष्ण ताप तुम्हारी रीढ़ में दौड़ने लगेगा। तरंगें विद्युत की तुम्हारी रीढ़ में उठने लगेंगी, जिनका तुमने कभी अनुभव नहीं किया था। और जैसे-जैसे वे तरंगें ऊपर जायेंगी, वैसे-वैसे तुम आल्हादित पाओगे। जैसे-जैसे वे तरंगें ऊपर उठेंगी, वैसे-वैसे तुम्हारा दुःख, उदासी कम और आनन्द का भाव बढ़ने लगेगा। जैसे-जैसे ऊँचाई बढ़ेगी तरंगों की, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि जीवन की क्षुद्रता छूट गई, दूर घाटी में पड़ी रह गई; तुम जैसे किसी पर्वत पर चले आये हो। वह धुआँ गाँव-बस्ती का, लोगों की चर्चा का, बातचीत का, उपद्रव का—सब पीछे छूट गया। तुम बड़े दूर निकल आये हो।

इसलिए तो हमने रीढ़ को मेरुदंड कहा है। मेरू पर्वत का नाम है, जो स्वर्ग में है। और जब कोई व्यक्ति इस छोटे से मेरुदंड की आखिरी ऊँचाई पर

पहुँच जाता है, तो वह वही ऊँचाई है, जो मेरू पर्वत की है स्वर्ग में। उस ऊँचाई और इस ऊँचाई में कोई फर्क नहीं। और जो आखिरी शिखर है, जहाँ हिन्दू शिखा रखते हैं, जो सातवाँ द्वार है, जहाँ से ऊर्जा अनन्त में मिलती है—जब तुम्हारी तरंगें वहाँ से विकीर्ण होने लगेंगी, ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो जायेगा। तब तुम्हें ब्रह्मचर्य के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ेगा। और जब भी तुम्हें वासना पकड़े तो वासना को दबाने की कोई जरूरत न रह जायेगी; तुम बस रीढ़ को सीधा करके उन तरंगों को ऊपर जाने दो तो जो ऊर्जा वासना से बहती थी, वही ऊर्जा ब्रह्मचर्य बन जायेगी। ऊर्जा तो वही है, एनर्जी वही है; पहले द्वार से निकलती है तो प्रकृति में चली जाती है, सातवें द्वार से निकलती है तो परमात्मा में चली जाती है।

ऐसे जो व्यक्ति चुप होकर बैठने की कला सीख लेगा, उसे उसका ही शरीर हजार-हजार अनुभव दे देगा। अपने ही शरीर से तुम सारे योगशास्त्र को जान सकते हो। पतंजलि को पढ़ने की जरूरत नहीं। सच में तो पतंजलि के शास्त्र बाद में ही पढ़ने की जरूरत है; क्योंकि वे तुम्हें आश्वस्त कर देते हैं कि सब ठीक हो रहा है। तुम जब भीतर प्रयोग करना शुरू करते हो, तब शास्त्र का उपयोग इतना ही है कि तुम कई बार डरोगे कि पता नहीं क्या हो रहा है। अनजान में जा रहे हो; क्या होगा क्या नहीं होगा—भय पकड़ेगा। शास्त्र तुम्हें आश्वस्त कर देगा कि तुम अनजान में नहीं जा रहे हो, जो भी गये हैं, इसी रास्ते से गये हैं। जिसने भी पाया, ऐसे ही पाया है। ये-ये घटनाएँ उन्हें भी घटी हैं और आगे ये-ये घटनाएँ घटने की सम्भावना है; तुम भयभीत न होओ, आश्वस्त रहो।

शास्त्र गवाहियाँ हैं ज्ञानियों की। लेकिन असली ज्ञान शास्त्र से नहीं होता असली ज्ञान तो खुद के भीतर ही शांत होने से होता है।

इसलिए कहते हैं नानक, शास्त्र, स्मृति और वेद श्रवण से ज्ञात होते हैं। नानक कहते हैं– "श्रवण से भक्तगण सदा आनन्दित होते हैं। और दुःख और पाप का नाश होता है। श्रवण से ही सत्य, सन्तोष और ज्ञान उपलब्ध होता है। श्रवण से ही अड़सठ तीर्थों का स्नान प्राप्त होता है। श्रवण से ही पढ़-पढ़ कर मान मिलता है। श्रवण से ही सहज ध्यान लगता है। नानक कहते हैं—श्रवण से भक्तगण आनन्दित होते, दुःख तथा पाप का नाश होता है।"

अड़सठ तीर्थ हिन्दुओं ने माने हैं, जिनमें स्नान करने से परम मुक्ति मिलती है। लेकिन वे अड़सठ तीर्थ तो नक्शे पर बताये गये तीर्थों की भाँति हैं। शरीर के भीतर अड़सठ बिन्दु हैं, जिनसे गुजर कर पुण्य की उपलब्धि होती है।

हिन्दुओं ने बड़ा अद्भुत काम किया है। पृथ्वी पर किसी जाति ने ऐसा अद्भुत काम नहीं किया। बाहर तो प्रतीक हैं और उन प्रतीकों में जब हम भटक

गये तो हिन्दुओं की सारी जीवन-चेतना खो गई। हम कहते हैं कि गंगाजल रामेश्वर ले जाकर चढ़ा रहे हैं। भीतर शरीर के बिंदु हैं। एक बिंदु से ऊर्जा को लेना है और दूसरे बिन्दु पर चढ़ाना है। एक बिन्दु से ऊर्जा को खींचना है और दूसरे बिन्दु तक पहुँचाना है। तब तीर्थ यात्रा हुई। पर हम अब पानी ढो रहे हैं, गंगा से और रामेश्वर तक। हमने पूरी पृथ्वी को नक्शे की तरह बना लिया था, आदमी का फैलाव। आदमी के भीतर बड़ा सूक्ष्म है सब कुछ। उसको समझाने के लिए ये प्रतीक थे। और इन प्रतीकों को हमने सत्य मान लिया तो हम भटक गये।

प्रतीक कभी सत्य नहीं होते, सत्य की तरफ इशारे होते हैं।

नानक कहते हैं— "श्रवणसे सत्य मिलता, संतोष मिलता, ज्ञान उपलब्ध होता। श्रवण से अड़सठ तीर्थों का स्नान प्राप्त होता है।"

तुम अगर चुप हो गये तो तुम्हें भीतर के तीर्थ दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। तुम अगर चुप हो गये तो तुम्हें सोचना नहीं पड़ता कि सत्य क्या है; तुम्हें दिखाई पड़ता है कि सत्य क्या है। जब तक सोचना है, तब तक सत्य होगा ही नहीं; मत होगा, धारणा होगी, कन्सेप्ट होगा, ओपीनियन होगा; सत्य नहीं होगा। सत्य तो अनुभव है। और जब तुम्हें दिखाई पड़ता है, तुम सोचोगे क्यों!

संतोष उपलब्ध होता; क्योंकि जब तक तुम विचार के साथ चलोगे, असंतुष्ट रहोगे। क्योंकि विचार हजार चीजें सुझाता है—यह करो, यह करो, यह करो। कर-कर के तुम असंतुष्ट हो। विचार कहे ही चला जाता है। नयी वासनाएँ जन्माता है। संतोष तो तभी होगा जब तुम विचार का साथ छोड़ दोगे। विचार की दोस्ती बड़ी बुरी है। उसी दोस्ती ने भटकाया। अगर कोई कुसंग है जगत में, तो विचार का। अगर किसी का संग-साथ छोड़ देना है तो विचार का। उपयोग करो उसका; संग-साथ की कोई जरूरत नहीं। उपयोग करो तो बहुत शुभ है। उसकी मानकर चलने लगे तो सब उपद्रव है। विचार शराब की तरह है; उसकी मानकर चले कि भटकायेगा और तब तुम्हें जीवन में कुछ भी सूझे न सूझेगा कि अब क्या करें और क्या न करें।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात ज्यादा पी गया। घर आने की हिम्मत न रही। जो भी ज्यादा पी जाये, उसकी घर आने की हिम्मत कम हो जाती है। जवाब देना पड़ेगा और जवाब कुछ सूझता नहीं। पैर लड़खड़ाते हैं। वह यहाँ-वहाँ भटकता रहा। आधी रात एक कांस्टेबल ने उसे पकड़ लिया और कहा कि क्या कर रहे हो। जवाब दो। वह बिलकुल चुप खड़ा रहा। उस कांस्टेबल ने कहा कि जल्दी जवाब देते हो कि कोतवाली ले चलूँ! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा—अगर

जवाब ही दे सकते तो शाम को अपने घर ही न चले गये होते! जवाब ही तो नहीं है।

विचार एक नशा है; विचार के पास कोई जवाब नहीं है। जवाब ही होता तो कभी के तुम अपने घर चले गये होते। किसलिए भटक रहे हो आधी रात में रास्तों पर? कोई उत्तर नहीं है अपने जीवन को समझाने का। विचार के पास उत्तर है ही नहीं। निर्विचार में उत्तर है।

इसलिए नानक कहते हैं— "संतोष, सत्य—श्रवण से; अड़सठ तीर्थों का स्नान—श्रवण से; श्रवण से ही सहज ध्यान लगता है।"

अगर तुम सुन ही लो, ध्यान हो गया। ध्यान के बिना तुम सुन ही न पाओगे। ध्यान का मतलब क्या है? जहाँ मन नहीं, वह अवस्था ध्यान। जहाँ अन्तरवार्तालाप नहीं, वह अवस्था ध्यान है।

"श्रवण से श्रेष्ठ गुणों की थाह मिलती है। श्रवण से ही शेख, पीर, बादशाह होते। श्रवण से ही अंधे राह पाते। श्रवण से ही अथाह हाथ आ जाता। नानक कहते हैं, श्रवण से ही भक्तगण सदा आनंदित होते; दुःख और पाप का नाश होता है।"

श्रवण से अंधे को राह मिल जाती है। श्रवण से भिखारी बादशाह हो जाता है। श्रवण से जिसकी थाह नहीं मिलती थी—जो अथाह लगता था—उसकी थाह मिल जाती है।

विचार छोटी चम्मच की तरह है, जिससे तुम सागर को नाप रहे हो; श्रवण, सागर में उतर जाना है। थाह तभी मिलती है जब तुम डूबोगे। चम्मचों से तौलने से थाह नहीं मिलती।

अरिस्टोटल बहुत बड़ा विचारक हुआ यूनान का। गुजर रहा था एक समुद्र के तट से; सोच रहा था, अपने सोच में खोया था। एक आदमी को उसने देखा कि जो छोटा-सा गड्ढा खोद कर चम्मच से सागर का पानी गड्ढे में डाल रहा था। जिज्ञासा जगी; पूछा कि भाई क्या करते हो! उस आदमी ने कहा, साफ है, पूछना क्या? आँख हो तो दिखाई पड़ना चाहिए। सागर को खाली करने का इरादा है। इस गड्ढे में भर के रहूँगा।

अरिस्टोटल हँसा और कहा, पागल हो गये हो? होश में हो? कहीं सागरों को चम्मचों से तौला गया? चम्मचों से गड्ढों में भरा गया? क्यों अपना जीवन नष्ट कर रहे हो? वह आदमी खिलखिला कर हँसने लगा और उसने कहा कि मैं तो सोचता था, पागल तुम हो; क्योंकि तुम और भी बड़े सागर को

विचार की चम्मच में भरने की कोशिश में लगे हो। कहते हैं, अरिस्टोटल ने उस आदमी को खोजने की बहुत कोशिश की, लेकिन पता न चल पाया कि वह कहाँ चला गया।

बात उसने ठीक ही कही थी। विचार कितना छोटा है! अस्तित्व कितना बड़ा है! इस विराट अस्तित्व को तुम विचार से तौल-तौल के कहाँ ले जाओगे? क्या करोगे? सिर तुम्हारा कितना छोटा है! यह ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है। तुम्हारे हाथ कितने छोटे हैं! तुम्हारी पहुँच कितनी छोटी है। यह विराट कितना विराट है। तुम व्यर्थ की चेष्टा में लगे हो! शायद वह आदमी कभी सागर को गड्ढे में उतार भी ले; क्योंकि एक चम्मच भी कम होता है, तो सागर कम होता है; क्योंकि सागर की भी सीमा है। लेकिन तुम कभी भी उसे न पा सकोगे विचार से।

इसलिए नानक कहते हैं--" भिखारी बादशाह हो जाता है, जैसे ही मौन हो जाता है। अथाह की थाह मिल जाती है। अज्ञात से परिचय बन जाता है। अनजान प्रीतम हो जाता है। श्रवण से अंधे राह पाते। श्रवण से अथाह हाथ आ जाता। नानक कहते--श्रवण से भक्तगण सदा आनंदित होते हैं और दुःख और पाप का नाश होता है।"

• • •

ऐसा नामु निरंजनु होइ

प्रवचन ६, दिनांक २६-११-१९७४, श्री रजनीश आश्रम पूना

पउड़ी : १२

मंनै की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
कागद कलम न लिखणहारु। मंनै का बहि करनि विचारु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥

पउड़ी : १३

मंनै सुरति होवै मनि बुधि। मंनै सगल भवन की सुधि ॥
मंनै मुहि चोटा न खाइ। मंनै जम कै साथ न जाइ ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥

पउड़ी : १४

मंनै मारगि ठाक न पाइ। मंनै पति सिउ परगटु जाइ ॥
मंनै मगु न चलै पंथु। मंनै धरम सेती सनबंधु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥

पउड़ी : १५

मंनै पावहि मोखु दुआरु। मंनै परवारै साधारु ॥
मंनै तरै तारे गुरु सिख। मंनै नानक भवहि न भिख ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥

मनन शब्द को समझें। विचार और मनन दोनों ही मन की क्रियाएँ हैं, पर दोनों बड़ी भिन्न हैं। भिन्न ही नहीं, वरन् विपरीत भी।

एक तैरनेवाले को देखें—एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, लेकिन रहता नदी की सतह पर है। अ से ब, ब से स स्थान बदलता है, गहराई नहीं बदलती। फिर पानी में डुबकी लगानेवाले को देखें—वह भी स्थान बदलता है लेकिन गहराई बदलती है; अ से अ^1, अ^2, अ^3—एक ही स्थान पर गहरा उतरता है डुबकी लगानेवाला। तैरनेवाला एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, गहराई में नहीं जाता है।

विचार तैरने जैसा है, मनन डुबकी जैसा है। विचार में एक शब्द से दूसरे शब्द पर हम जाते हैं; मनन में एक ही शब्द की गहराई में जाते हैं। स्थान नहीं बदलता, गहराई बदलती है।

विचार रेखाबद्ध प्रक्रिया है सतह वही बनी रहती है। तुम चाहे दुकान की बात सोचो, चाहे मोक्ष की; सतह में कोई फर्क नहीं पड़ता, रहते तुम पानी की सतह पर ही हो। तुम चाहे परमात्मा के सम्बन्ध में सोचो और चाहे पत्नी के, सोच की सतह वही बनी रहती है।

मनन से सतह की जगह गहराई में यात्रा शुरू होती है। मनन में एक ही शब्द को उसकी समस्तता में उसके गहरे तलों तक प्रवेश करने की चेष्टा करनी होती है।

मनन ही मंत्र है।

इसे ठीक से समझ लें तो यह पूरा सूत्र साफ हो जायेगा; और नानक की सारी शिक्षाओं का सार मनन है। इसलिए 'तो एक नाम ओंकार'—बस उस एक ओंकार के नाम को, एक सतनाम को अपने शिष्यों को वे देते रहे।

उसपर विचार नहीं करना है, उसकी गहराई में डुबकी लगानी है। एक ही नाम गूंजता रहेगा—ओम्......ओम्......ओम्......ओम्......और जैसे-जैसे नाम की गूंज बढ़ेगी, वैसे-वैसे तुम्हारी गहराई का तल बदलेगा।

तीन तल हैं। पहले सोच्चार—तुम जोरसे उच्चार करते हो ओंकार का—ओम्......ओंठ का प्रयोग होता है, बाहर वाणी गूँजती है; इसको हम वाणी का तल कहें।

फिर तुम ओंठ बंद कर लेते हो, जीभ भी नहीं हिलाते, मन में ही गूंज होती है—ओम्......। यह दूसरा तल है। यह पहले तल से गहरा है। इसमें शरीर का उपयोग नहीं हो रहा। ओंठ, जीभ सब बन्द हैं, सिर्फ मन का उपयोग हो रहा है। तुम एक सीढ़ी नीचे उतर गये।

फिर तीसरी सीढ़ी है, जहाँ मन का भी उपयोग नहीं हो रहा है; जहाँ तुम ओंकार की ध्वनि नहीं करते, तुम सिर्फ चुप होकर सुनते हो और ध्वनि गूँजती है। तब मन भी गया। जैसे ही मन गया, मनन हुआ। मनन यानी मन का न हो जाना। जहाँ मन न हुआ, वहाँ मनन शुरू हुआ।

सबसे पहले, तुम्हारे भीतर ओंकार की ध्वनि गूँजती है जन्म के साथ। तुम्हें बच्चे प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं—अकारण; अपने झूले में पड़े टाँगें फेंक रहे हैं, हाथ हिला रहे हैं। माताएँ समझती हैं कि शायद पिछले जन्म की कोई स्मृति आ रही है तो आनंदित हो रहे हैं। क्योंकि कोई कारण तो नहीं है आनंदित होने का—न कोई चुनाव जीता है, न कोई धन कमा लिया है, न कोई प्रतिष्ठा पा ली है; अपने झूले में पड़े अभी यात्रा शुरू ही नहीं हुई; अभी प्रसन्नता क्या है? मनस्विद् भी बड़ी चिन्ता करते रहे हैं कि बच्चे की प्रसन्नता का कारण क्या है? जहाँ तक मनस्विदों की समझ जाती है, वे मानते हैं कि शारीरिक स्वास्थ्य है। बच्चा प्रसन्न है, क्योंकि शरीर से स्वस्थ है।

लेकिन जहाँ तक योगियों की खोज ले जाती है, वहाँ कारण दूसरा है। शरीर का स्वास्थ्य काफी नहीं है; भीतर ओंकार का नाद गूँज रहा है। एक मधुर संगीत भीतर गूँज रहा है; जो बच्चा सुनता है, उसकी ताड़ी लग जाती है। सुनता है, मुस्कुराता है, आनंदित होता है। स्वास्थ्य तो बाद में भी रहेगा, लेकिन यह प्रसन्नता खो जायेगी। पीछे भी स्वस्थ रहेगा, लेकिन यह नाद खो जायेगा। ओंकार की ध्वनि को सुनना मुश्किल हो जायेगा; क्योंकि शब्दों की पर्त उसे घेर लेगी।

ध्वनि—एक ओंकार सतनाम—वह पहली घटना है। वहाँ जीवन का स्रोत है। फिर शब्दों का जमाव है। वह हमारी शिक्षा, संस्कार, समाज, सभ्यता!

फिर तीसरी पर्त है शब्दों का उच्चारण—बोलना, बातचीत, वार्त्तालाप। जब तुम बोल रहे हो, तब तुम अपने से सबसे ज्यादा दूर हो। इसलिए तो नानक कहते हैं कि पहले सुनना सीख लो; क्योंकि जब तुम सुन रहे हो, तब तुम मध्य में हो। तब तुम बोलने की तरफ भी जा सकते हो और चाहो तो शून्य की तरफ भी जा सकते हो। तुम बीच में खड़े हो।

तीन स्थितियाँ हुईं—ओंकार की स्थिति, उच्चार की स्थिति और दोनों के मध्य में भाव और विचार की स्थिति। जब तुम सुन रहे हो—श्रवण—तब तुम भाव और विचार की स्थिति में खड़े हो, बीच में खड़े हो। अभी तुम दोनों तरफ झुक सकते हो—दाएँ या बाएँ। जो तुमने सुना, अगर तुम दूसरे को बताने निकल पड़े तो तुम वार्त्ता में उतर गए। जो तुमने सुना, अगर तुम उसको गुनने लगे, मनन करने लगे तो तुम शून्य में चले गए। और बारीक है फासला और हर व्यक्ति को अपने भीतर फासले को ठीक से समझकर संतुलन को व्यवस्था देनी पड़ती है।

मनन उसी क्षण शुरू हो जाता है, जब तुम किसी एक शब्द की गहराई में उतरने लगते हो। कोई भी शब्द काम दे सकता है; लेकिन ओंकार से सुन्दर कोई शब्द नहीं, क्योंकि वह शुद्ध ध्वनि है। अल्लाह भी काम देता है, राम भी काम देता है, कृष्ण भी काम देता है। और कोई ये बड़े-बड़े नाम लेने की जरूरत नहीं है। अँग्रेजी के महाकवि टेनिसन ने लिखा है कि मैं अपना ही नाम दुहरा लेता हूँ और ताड़ी लग जाती है; टेनिसन...... टेनिसन...... टेनिसन... उससे भी लग जाएगी।

कोई भी एक शब्द की गहराई में तुम उतरोगे तो धीरे-धीरे शब्द छूट जाएगा और धीरे-धीरे जैसे-जैसे शब्द छूटेगा, वैसे-वैसे मनन हुआ। शब्द तो छूट जाता है। सभी मंत्र छूट जाते हैं; क्योंकि मंत्र तो तुम्हारे ही मन की—तुम्हारी ही—पकड़ है। महामंत्र तो गूँज ही रहा है। तो मंत्र महामंत्र में नहीं ले जाता; मंत्र तो तुम्हें केवल चुप करवाता है। महामंत्र सुनाई पड़ने लगता है।

और सभी मंत्र तुम्हें तैरने की कला सिखाते हैं। और सभी मंत्र तुम्हें तैरने की जगह डुबकी लगाना सिखाते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर कब तक जाते रहोगे? एक जन्म से दूसरे जन्म तक कब तक जाते रहोगे? एक घटना से दूसरी घटना को कब तक बदलते रहोगे? एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति तक कब तक तुम्हारी यात्रा जारी रहेगी? कब वह शुभ क्षण आयेगा, जब तुम जहाँ हो, उसीकी गहराई में डुबकी लगाओगे, कहीं और न जाओगे? मनन उसी क्षण घटेगा। इस बात को ख्याल में रखकर नानक का यह सूत्र समझने की कोशिश करें।

"मनन की गति कही नहीं जा सकती और जो इसे कहता है, पीछे पछताता है।"

क्यों? मनन की गति इसलिए नहीं कही जा सकती कि पहली तो बात यह है कि वह गति ही नहीं है, वह अगति है। वहाँ यात्रा शुरू नहीं हो रही, बन्द हो रही है। वह हमें गति जैसी लगती है।

तुमने कभी देखा, तुम ट्रेन में जब चलते हो तो तुम्हें लगता है कि वृक्ष आगे जा रहे हैं। भाग तुम रहे हो; लगता है वृक्ष भागे जा रहे हैं। तुम्हारी सदा की गति के कारण जब मन ठहरने लगता है, तब भी तुम्हें ऐसा लगता है कि यह भी गति है। लेकिन जब तुम ठहर ही जाओगे, जब तुम्हारी गाड़ी बिल्कुल रुक जाएगी, तब अचानक तुम पाओगे कि सब वृक्ष, पहाड़ भी रुक गए। वे भाग ही नहीं रहे थे।

तुम्हारे भीतर जो छिपा है, वह कभी चला ही नहीं। उसने कभी एक कदम नहीं उठाया। उसने कोई यात्रा नहीं की। तीर्थयात्रा भी नहीं की। वह कहीं गया ही नहीं घर के बाहर। वह सदा से वहीं है।

मन भागता रहा है और मन की गति इतनी तीव्र है कि वह जो न भागा हुआ है, वह भी भागा हुआ मालूम पड़ता है। जब मन रुकने लगता है, वह भी रुकने लगता है। जब मन बिल्कुल रुक जाता है, मन पाता है कि सब रुका हुआ है। गति को तो कहा जा सकता है, अगति को कैसे कहोगे? कहाँ से कहाँ गये, इसकी तो चर्चा हो सकती है। इसलिए तो यात्री किताबें लिख सकते हैं। लेकिन जो आदमी घर में ही बैठा रहा, वह क्या लिखेगा! कहीं गया ही नहीं, कुछ घटना ही न घटी, कोई परिस्थिति ही न बदली; कहने को क्या है?

अशांत आदमी की जिंदगी की कहानी तुम लिख सकते हो; शांत आदमी की जिंदगी की कहानी क्या लिखोगे! उपन्यासकार, नाटककार, साहित्यकार—सभी का अनुभव है कि जिंदगी तो बुरे आदमी की होती है। अच्छे आदमी की क्या जिंदगी! इसलिए अगर तुम अच्छे आदमी के आधार पर कोई उपन्यास लिखो तो लिखा ही न जा सकेगा। उसकी जिंदगी में कुछ नहीं होता। इसलिए सभी कहानियाँ बुरे आदमी के आसपास लिखनी पड़ती हैं।

तुम यह मत समझना कि रामायण राम के आसपास है; वह रावण के आसपास है। रावण ही असली नायक है; राम तो नम्बर दो हैं। रावण को हटा दो फिर तुम राम की कथा लिखो! न जाये सीता चोरी, न हो सब उपद्रव—सब कथा शांत है! राम की क्या कोई कथा है! तुम परमात्मा की क्या कथा लिखोगे? वह जैसा था, वैसा ही रहा है। उसमें कभी भी रूपांतर नहीं हुआ;

कहानी बनी ही नहीं। इसलिए तो परमात्मा की कोई आत्मकथा नहीं है। उसके सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं लिख सकते। लिखने के लिए यात्रा जरूरी है।

विचार के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा सकता है; निर्विचार के सम्बन्ध में क्या लिखोगे! निर्विचार के सम्बन्ध में क्या कहोगे! जो भी कहोगे, वह गलत होगा। पीछे पछताओगे। इसलिए ज्ञानी जब भी बोलते हैं, पछताते हैं; क्योंकि उन्हें लगता है कि जो कहना था, कह नहीं पाये और जो नहीं कहना था, वह कह दिया। जो कहना था, जो समझाना था, वह सुननेवाला समझ नहीं पाया है। जो वह समझ गया, वह प्रयोजन न था।

इसलिए लाओत्से कहते हैं कि सत्य के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता और कुछ भी कहा, असत्य हो जाएगा। जितना तुम जानोगे, उतना ही तुम पाओगे कि कहना मुश्किल है। एक-एक शब्द कहना कठिन हो जाता है; क्योंकि तुम्हारे भीतर अब कसौटी है, जिससे तुम जाँचते हो। हर शब्द ओछा मालूम पड़ता है, बहुत छोटा मालूम पड़ता है। बहुत बड़ा घटा है, शब्द में समाता नहीं। बड़ा आकाश मिल गया है और शब्द की छोटी-छोटी कैपसूल में उसे भरना है।

और फिर जब तुम बोलते हो, तब पछतावा और भी बढ़ जाता है; क्योंकि सुननेवाले तक जो बात पहुँचती है, वह कुछ और ही है। जो तुमने कही थी, उसका सब राग-रंग बदल गया, उसकी वेषभूषा बदल गयी। जो तुमने दिया था हीरा, देने में ही पत्थर हो गया। तुमने दिया था असली सिक्का, हस्तांतरण में खोटा हो गया, वह दूसरे के पास पहुँचते ही, तुम उसकी आँखों में जो देखते हो कि वह तो नहीं पहुँचा जो तुमने दिया था, कुछ और पहुँच गया और अब यही अब वह दूसरा आदमी ढोता रहेगा।

ऐसे ही तो सम्प्रदाय चल रहे हैं। ऐसे ही तो हजारों की भीड़ चल रही है। जो कभी नहीं दिया गया था, उसे वे ढो रहे हैं। अगर महावीर लौट आयें तो जैनियों को देखकर छाती पीटेंगे। अगर बुद्ध लौट आयें तो बौद्धों पर रोयेंगे। अगर जीसस लौट आयें तो लड़ाई फिर वही की वही शुरू हो जायेगी कि जो यहूदियों से थी, वही ईसाइयों से शुरू हो जायेगी। क्योंकि जो उन्होंने कहा था, वह तो जैसे पहुँचा ही नहीं; कुछ और ही पहुँच गया।

नानक अगर लौट आयें तो जितना नाराज सिक्ख पर होंगे उतना किसी और पर नहीं; क्योंकि किसी और से क्या नाराज होना! जिनसे कहा था, उन पर ही नाराज हुआ जा सकता है; क्योंकि वे कुछ और ही ढो रहे हैं।

हम बड़े होशियार हैं। नानक जैसा व्यक्ति जब बोलता है, तब हम अपने अर्थ उसमें जोड़ लेते हैं—अपने मतलब के अर्थ! हम नानक के अनुसार अपने

को नहीं ढालते; हम नानक के शब्दों को अपने अनुसार ढाल लेते हैं। यह हमारी तरकीब है। इससे सब ठीक हो जाता है।

दो ही उपाय हैं।

मैंने सुना है, एक बहुत बड़ी धनपति महिला थी। थोड़ा झक्की स्वभाव की थी। बड़ी कलात्मक रुचि की थी और हर चीज के सम्बन्ध में बड़ी जिद्दी थी। उसके पास एक ऐश-ट्रे थी, जो कि एक दिन गिर गयी। बड़ी बहुमूल्य थी, बड़ी कीमती थी। और वह बड़ी मुश्किल में पड़ गयी। उसने कलाकारों को बुलाया और उसने कहा कि बिल्कुल ऐश-ट्रे जैसी है वैसी ही बना दो।

उसने ऐश-ट्रे के हिसाब से अपना पूरा कक्ष सजाया हुआ था। उसी रंग की दीवालें थीं। उसी रंग का फर्श था। उसी रंग के पर्दे थे। ऐश-ट्रे आधार थी; वह आत्मा थी उस पूरे घर की।

अनेक चित्रकारों ने कोशिश की। लेकिन बड़ी मुश्किल थी। ठीक--बिल्कुल ठीक--रंग का मेल नहीं बैठ पाता था। आखिर एक चित्रकार ने कहा कि मैं बना दूंगा; लेकिन समय चाहिए और बीच में कोई बाधा न दे; जब सब पूरा हो जाये तभी तुम भीतर आओ। तो एक महीना उसने ले लिया। महिला भी हैरान हुई कि एक महीना! ऐश-ट्रे को! उसने कहा कि अब उसमें इतने दिन तुमने कोशिश कर ली; इतने लोग मेहनत कर लिये, अब मुझे वक्त दो।

एक महीना वह अन्दर घुसा रहा। महिला अन्दर आयी; तृप्त हो गयी। बिल्कुल मिला दिया था उसने सब। बाद में किसी चित्रकार ने उस चित्रकार से पूछा, जो सफल हो गया था, कि भई, हम सब असफल हो गये; तुमने सफलता कैसे पायी? उसने कहा कि मैंने पहले ऐश-ट्रे तैयार की और फिर उसी रंग में सब दीवालें पेंट कर दीं। वे सब के सब दीवालों के हिसाब से ऐश-ट्रे को पेंट करने की कोशिश कर रहे थे। वह असम्भव मामला था। जरा-सा भी फर्क रह जाता था तो बस गड़बड़ रह जाती थी।

नानक तुमसे बोलते हैं, तो दो ही उपाय हैं। एक तो यह है कि तुम नानक के रंग में ढल जाओ तो तृप्ति मिले, नहीं तो बेचैनी रहेगी। नानक जैसे व्यक्ति के पास बेचैनी शुरू होगी; क्योंकि तुम आग के पास हो। या तो तुम जल जाओ--जैसे नानक जल गये, ऐसे तुम जल जाओ। जैसे नानक राख हो गये, ऐसे राख तुम हो जाओ। जैसे नानक खो गये, ऐसे तुम खो जाओ। बूंद गिर जाये सागर में।

एक उपाय तो यह है कि तुम नानक के रंग में रंग जाओ। अगर यह न हो सके तो दूसरा उपाय है कि नानक जो कहते हैं, उसको तुम अपने रंग में रंग लो। दूसरा सरल है, बिल्कुल सरल है। इसलिए तो जो कहा जाता है, हम वही नहीं

सुनते; हम जो सुनना चाहते हैं, वही सुनते हैं। जो बताया जाता है, हम उसमें से वही अर्थ निकाल लेते हैं, जो हमारे अनुकूल है। हम सत्य के पक्ष में नहीं खड़े होते, हम सत्य को ही अपने पक्ष में खड़ा कर लेते हैं। हम सत्य के साथ नहीं जाते, हम सत्य को ही अपने पीछे ले आते हैं।

और यही फर्क है असली खोजी और नकली खोजी में। असली खोजी सत्य के पीछे जाने को तैयार होता है, चाहे सत्य कहीं भी ले जाये; चाहे कोई भी परिणाम हो; चाहे जीवन गँवाना पड़े; चाहे सब खो जाये। सत्य का खोजी सत्य के पीछे जाता है। वह सब गँवाने को तैयार है। दूसरा भी जो सत्य का खोजी जो धोखे में है, वह सत्य के पीछे नहीं जाता, वह सत्य को पीछे लाता है। और जब भी तुम सत्य को अपने पीछे लाते हो, तभी वह असत्य हो जाता है।

तुम्हारे पीछे सत्य कैसे आयेगा? तुम्हारे पीछे असत्य ही आ सकता है; क्योंकि तुम असत्य हो, तुम्हारी छाया असत्य होगी। तुम चाहो तो सत्य के पीछे जा सकते हो, लेकिन सत्य तुम्हारे पीछे नहीं आ सकता। सत्य तुम्हारी धारणाओं में न समायेगा। सत्य तुम्हारे वर्तनों में न आयेगा। सत्य तुम्हारे मस्तिष्क के लिए काफी बड़ा है। और सत्य तुम्हारे पीछे कैसे हो सकता है?

इसलिए नानक कहते हैं--

मंने की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ॥

वह जो कहता है, पीछे पछताता है।

और एक कारण भी ध्यान में रख लेना चाहिए--उस कारण भी पछतावा होता है, जो मैंने शुरू में कहा। जब भी तुम मनन के करीब पहुँचने लगोगे, तभी तुम मध्य में आ जाओगे। वहाँ से दो गतियाँ हैं। या तो तुम दूसरों को बताने निकल पड़ो तो तुम पछताओगे। इसलिए जब भी दूसरों को बताने का ख्याल उठे, गुरु से पूछ लेना। गुरु जब तक न कहे, मत बताने जाना किसीको। तुम अपने पर भरोसा मत करना।

अहंकार के खेल बड़े सूक्ष्म हैं! जरा-सा मिला नहीं कि वह बहुत की घोषणा करने लगता है। मुट्ठी-भर मिला नहीं कि वह पूरे आकाश का दावा कर देता है। जरा-सी झलक आई नहीं कि तुमने कहा कि सूरज उग गया। बूंद भी टपकी नहीं कि तुम सागर की चर्चा करने लगे और फिर चर्चा में चर्चा बढ़ती चली जाती है। फिर धीरे-धीरे चर्चा में बूंद भी खो जाती है। झलक भी मिट जाती है। लोग थोथे पंडित होकर रह जाते हैं। बहुत जानते हैं, बिना जाने। बहुत कहते हैं, बिना अनुभव किये। अगर तुम उनके जीवन में बहुत गौर से देखो तो तुम पाओगे कि जो वे कहते हैं, उसके ठीक विपरीत चलते हैं।

एक ट्रेन में ऐसा हुआ। गाड़ी छूट गयी थी और मुल्ला नसरुद्दीन भागकर चढ़ने की कोशिश कर रहा था। डंडा भी उसने पकड़ लिया। एक पैर पायदान पर रख दिया। तभी गार्ड ने उसे नीचे खींच लिया और कहा कि बड़े मियाँ, चलती गाड़ी में चढ़ना जुर्म है; नीचे उतरें। मुल्ला उतर गया। फिर गाड़ी करीब-करीब निकलने के करीब थी--प्लेटफार्म के बाहर। तब गार्ड का डब्बा आया। गार्ड छलाँग लगाकर अपने डब्बे में चढ़ने लगा। मुल्ला ने झटककर उसको नीचे पटक लिया और कहा--बड़े मियाँ, दूसरों को मना करते हो और खुद वही काम करते हो!

पंडित की अवस्था ऐसी ही है। वह जो दूसरों को कह रहा है, उसमें सिर्फ कहने का रस है; उसमें जीवन की सरिता नहीं बह रही है। वह उसका अपना अनुभव नहीं है और यह खतरा सदा है।

जब तुम मध्य में आओगे, उच्चार को छोड़ोगे, शब्द में ठहरोगे--वहाँ से दो मार्ग खुलते हैं। एक मार्ग है पंडित होने का; क्योंकि अब तुम शब्द के मालिक हो जाओगे। अब तुम शब्द में खड़े हो। तुमने एक पर्त पार कर ली है। कुछ थोड़ी झलक भी पायी है। अब तुम्हारे सामने दो मार्ग हैं--एक तो ज्ञानी का और एक पंडित का। पंडित का मार्ग है कि तुम फिर बाहर चले जाओ उच्चार की दुनिया में। ज्ञानी का मार्ग है कि अब तुम शब्द को भी छोड़ दो, पूर्ण अनुच्चार में लीन हो जाओ। इसलिए गुरु जब तक न कहे, दूसरों को बताने मत जाना।

बुद्ध का एक शिष्य--पूर्ण काश्यप--हुआ। वह ज्ञान को उपलब्ध हो गया; लेकिन चुपचाप बुद्ध के पीछे छाया की तरह चलता रहा। वर्ष भर बाद--उसके उपलब्धि के वर्ष भर बाद--बुद्ध ने उसे बुलाया कि अब तू मेरी छाया की तरह क्यों भटक रहा है? अब तू जा और जो तूने जाना है, लोगों को बता। पूर्ण ने कहा, मैं आप की आज्ञा की प्रतीक्षा करता था। क्योंकि मन का क्या भरोसा! बताने में कहीं रस आ जाये और जो बामुश्किल पाया है, कहीं बताने में खो जाये! कहीं अहंकार निर्मित होने लगे कि मैं जानता हूँ।

ज्ञान को पाना कठिन है, खोना आसान है; क्योंकि बड़ा सूक्ष्म मार्ग है। भटक सकते हो जरा में। तो पूर्णकाश्यप ने कहा, 'जब आप समझेंगे कि बता सकता हूँ, तब आप खुद ही कहेंगे। इसलिए मैं चुप था।'

गुरु जब तक न कहे, तब तक बताने मत जाना, नहीं तो पछताओगे। और पछतावा भारी होगा कि करीब-करीब पहुँचते थे किनारे के और भटक गये। नाव लगने को ही थी फिर किनारा दूर हो गया। हाथ पहुँचने के करीब थे कि तुम किसी और दूसरी बात में लीन हो गये। पांडित्य आखिरी प्रलोभन है; क्योंकि अहंकार आखिरी प्रलोभन है।

नानक कहते हैं—**मंने की गति कही न जाइ, जे को कहै पिछै पछुताइ।**

मनन की गति कही नहीं जा सकती। जो इसे कहता है, वह पीछे पछताता है। न कागज है, न कलम है, न लिखनेवाला है, जो मनन की स्थिति पर विचार कर सके।

कहेगा कौन? क्योंकि जैसे-जैसे मनन गहरा होता है, वैसे-वैसे कर्त्ता खोता जाता है; मन तो समाप्त होने लगता है। मनन मन की मृत्यु है।

मन कह सकता है, बोल सकता है। मन की कुशलता बताने की है। तो तुम जो नहीं जानते, वह भी मन बता सकता है। और बार-बार बताकर तुम इस भ्रांति में भी पड़ सकते हो कि मैं जानता हूँ। क्योंकि जिस बात को तुम बार-बार बताते हो, तुम भूल ही जाते हो कि मैंने भी इसे जाना या नहीं। तुम्हें लगने लगता है, मैं भी जानता हूँ। सोचना, क्या तुम वे ही बातें कहते हो, जो तुम जानते हो या वे बातें भी कहते हो, जो तुम नहीं जानते?

तुम जानते हो परमात्मा को? नहीं जानते तो मत कहना किसीसे कि 'है'। तुमने जाना सत्य को? नहीं जानते हो तो मत बताना किसीको कि 'है'। क्योंकि खतरा यह नहीं कि दूसरा भ्रांति में पड़ेगा, खतरा यह है कि बार-बार दुहराकर तुम खुद ही भ्रांति में पड़ जाओगे। बार-बार पुनरुक्ति करने से तुम्हें यह भरोसा आ जायेगा कि मैं जानता हूँ।

और यह भ्रांति बड़ी सूक्ष्म है। एक बार यह ख्याल आ गया कि मैं जानता हूँ, बिना जाने, तो फिर तुम्हारी नौका कभी भी किनारे न लग पायेगी। सोये को तो जगाया जा सकता है; लेकिन जागा हुआ जो पड़ा है, उसे फिर कैसे जगायें! अज्ञानी को उठाया जा सकता है; लेकिन ज्ञानी जो बना खड़ा है, उसे कैसे उठायें! तुम फिर उनके पास जाने से बचोगे, जहाँ तुम्हारा अज्ञान प्रगट होता हो। तुम उनके ही पास जाओगे, जहाँ तुम्हारा ज्ञान मजबूत होता हो।

पंडित अज्ञानी को खोजेगा। पंडित ज्ञानी से बचेगा। अगर नानक गाँव आ जायें तो पंडित गाँव छोड़कर भाग जाएगा; क्योंकि पंडित को डर एक ही है कि कहीं कोई वह स्थिति न दिखा दे, जो असली स्थिति है। कहीं कोई पर्दा न उघाड़ दे। बामुश्किल पर्दे को सम्हाल पाये, बामुश्किल स्थिति बनी है कहने की कि हम जानते हैं, कोई इसे उघाड़ न दे। और यह इतनी कमजोर है—क्योंकि झूठी है, कमजोर होगी ही। यह तोड़ी जा सकती है जरा सी चोट से।

नानक कहते हैं--जहाँ न कागज, न कलम, न लिखनेवाला है, तो मन की स्थिति तो वहाँ रही नहीं, मनन पर विचार कौन करे! और मनन की खबर कौन लाये!

"वह निरंजन नाम ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है।"

बस, तुम जानोगे--गूँगे का गुड़ हो जायेगा और वह न कह पाओगे, ओंठ बंद हो जायेंगे। अवरुद्ध हो जायेगा कण्ठ। हृदय भर जायेगा। इतना भर जायेगा कि तुम रो सकोगे, हँस सकोगे, कह न सकोगे। लोग तुम्हें पागल समझेंगे; क्योंकि तुम्हारे भीतर इतना भरा होगा कि तुम्हारे रोएँ-रोएँ से छलकेगा।

तुम नाच सकोगे, गा सकोगे; लेकिन तुम कह न सकोगे। इसलिए तो नानक गाये चले जाते हैं। मरदाना बजाये चला जाता है; नानक गाये चले जाते हैं। जब भी नानक से कोई कुछ पूछता तो वे मरदाना को इशारा कर देते कि शुरू कर दे वाद्य और कहते, सुनो और गीत शुरू हो जाता। नानक ने यह सब गाया है, कहा नहीं है।

अगर तुम ज्ञानी के वचन को ठीक से समझो तो तुम पाओगे कि अगर वह कहता भी है, तो भी गाता है। तुम एक काव्य उसमें पाओगे। वह अगर बैठा भी है, तो भी नाचता है। तुम एक नृत्य उसमें पाओगे और तुम पाओगे कि उसके आसपास की हवा में एक नशा है--नशा, जो सुलाता नहीं है, जगाता है। नशा जो विस्मृति में नहीं ले जाता, सुरति को लाता है। और अगर तुम राजी हो उसके साथ बहने को तो वह तुम्हें बड़े अज्ञात तटों की तरफ ले जायेगा। अगर तुम उतरने को राजी हो उसके साथ सागर में तो वह तुम्हें बड़ी दूर की यात्रा पर ले जायेगा--आखिरी यात्रा पर, जहाँ सारी यात्राएँ समाप्त हो जाती हैं।

लेकिन, ज्ञानी के पास जो सुर है, वह वक्ता का कम और गायक का ज्यादा है। वह बोलनेवाला कम, गानेवाला ज्यादा है। क्योंकि जो पाया है, वह बोल करके तो कहा ही नहीं जा सकता। गीत शायद उसकी भनक भी दे दे। शायद थोड़ी-सी गीत में उसकी झलक आ जाये। शायद तुम मस्त हो जाओ।

गुरजियेफ कहा करता था कि कला दो तरह की होती है। एक कला तो साधारण कला है--जिसमें चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ अपने मनोभाव प्रकट करता है। पिकासो जैसे बड़े से बड़े चित्रकार हों तो भी अपने मनोभाव प्रकट करते हैं। जो उनकी मनोदशा है, उसे चित्र में, गीत में बाँधते हैं। यह साधारण कला है। गुरजियेफ इसे 'सब्जेक्टिव आर्ट' कहता है--विषयीगत। और दूसरी कला को वह 'ऑब्जेक्टिव आर्ट' कहता है--विषयगत।

वह कहता है--ताजमहल दूसरे तरह की कला है या अजन्ता, एलोरा की गुफाएँ दूसरे तरह की कलाएँ हैं। इन कलाओं में जो चित्रकार है, मूर्तिकार हैं, वह अपना कोई भाव प्रकट नहीं कर रहा है। इन कलाओं में वह सिर्फ एक

स्थिति पैदा कर रहा है। उसी स्थिति के माध्यम से देखनेवाले में कोई भाव पैदा होगा।

बुद्ध की एक प्रतिमा है। तुम उसे अगर देखते भी रहो--अगर सच में ही ऑब्जेक्टिव आर्ट हो; जिसने बनाया है, उसने बुद्धत्व को जाना हो--प्रतिमा को देखते-देखते तुम्हें ताड़ी लग जायेगी। प्रतिमा को देखते-देखते-देखते तुम पाओगे कि तुम अपने ही भीतर किसी गहरी खाई में उतर गये, गहराई में चले गये। प्रतिमा को देखते-देखते ही डुबकी लग जायेगी। प्रतिमा मनन हो जायेगी।

मंदिरों में प्रतिमाएँ हमने ऐसे ही नहीं रखी थीं ! वे ऑब्जेक्टिव आर्ट थीं। संगीत हमने ऐसे ही नहीं पैदा किया था; संगीत पहले तो समाधि से जन्मा। पहले संगीत के जन्मदाता तो समाधिस्थ पुरुष थे। उन्होंने भीतर ओंकार का नाद सुना, फिर उस नाद को उन्होंने खोजा कि कैसे उस नाद की प्रतिलिपि बाहर पैदा की जा सकती है; ताकि जिन्हें उस भीतर के नाद का पता नहीं, शायद बाहर के नाद से ही थोड़ा उन्हें स्वाद लग जाये ! मंदिर आने के लिए कोई न आये, शायद प्रसाद के लिए ही आ जाये ! छोटे बच्चे तो कम से कम पहुँच जाते हैं। चलो प्रसाद के बहाने ही सही; लेकिन मंदिर में आना ही मूल्यवान है। शायद बाहर की धुन थोड़ा-सा प्रसाद बन जाये और उस धुन में तुम्हें भीतर की याद आ जाए।

संगीत में जो रस है, वह समाधि की ही झलक का है। नृत्य हमने पैदा किये थे, वे ऑब्जेक्टिव आर्ट थे। उनको देखते-देखते तुम अचानक किसी और लोक में भीतर खो जाओगे; नाव तट से छूट जाएगी।

नानक के संबंध में यह स्मरण रखना कि नानक जो भी कहे हैं, वह गाया है उन्होंने। जो भी कहना चाहा है, उसे नाद के साथ पहुँचाया है। क्योंकि असली चीज नाद है। जो वे कह रहे हैं, वह असली बात नहीं है, वह तो बहाना है। तुम्हारे भीतर स्वर गुंजाना है। और अगर स्वर ठीक से गूँजने लगे तो तुम्हारे भीतर जो विचार की प्रक्रिया है, वह छिन्न-भिन्न हो जायेगी और तुम दूसरे तल पर पहुँच जाओगे शब्द के। और अगर तुम राजी हो बहने को; अगर तुम किनारे से जकड़े नहीं हो; अगर तुमने किनारे को पागल की तरह पकड़ नहीं रखा है; अगर तुम छोड़ने की हिम्मत रखते हो तो तीसरी घटना भी घट जाएगी। मनन पैदा हो जायेगा।

कहते हैं नानक--मनन पर कौन, क्या कहे! न कागज, न कलम, न लिखनेवाला; मनन की स्थिति पर विचार कौन करे ! पर वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है। वह गूँगे का गुड़ है, जो चख लेता है, वह जानता है। फिर जिंदगी भर भूलता नहीं, अनंत जन्मों तक नहीं भूलता, अनन्त काल तक नहीं भूलता। एक बार स्वाद आ गया उसका

तो वह स्वाद तुमसे बड़ा है, तुम उसे भूल न सकोगे। वह स्वाद इतना बड़ा है कि तुम उस स्वाद में समा जाओगे; वह स्वाद तुममें न समायेगा। वह स्वाद सागर जैसा है, तुम बूंद जैसे उसमें खो जाओगे।

अगर ठीक से समझो तो परमात्मा का स्वाद कैसे लोगे! परमात्मा ही तुम्हारा स्वाद ले लेता है, अगर तुम राजी हो। तुम उस स्वाद में लीन हो जाते हो, डूब जाते हो, एकतानता सध जाती है। वह नाम निरंजन ही ऐसा है।

"मनन से ही मन और बुद्धि में सुरति-स्मरण का उदय होता है।"

जैसे-जैसे तुम वार्तालाप में जाते हो, वैसे-वैसे स्मृति खो जाती है। तुमने कभी सोचा हो, न सोचा हो; अब सोचना, निरीक्षण करना—तुम्हारी जिंदगी के अधिकतम उपद्रव तुम्हारे बोलने से पैदा होते हैं, नब्बे प्रतिशत, उससे भी ज्यादा। तुम अगर न बोलो तो नब्बे प्रतिशत उपद्रव तो तुम्हारे तत्क्षण गिर जायें। तुम कुछ बोलते हो और उपद्रव में पड़ते हो।

क्या हो जाता है बोलने से? बोलने की अवस्था में सबसे कम स्मृति रहती है; सबसे कम सुरति–अवेयरनेस! क्योंकि बोलने में ध्यान दूसरे पर होता है; अपने से ध्यान चूक जाता है। जब तुम बोलते हो, तब तुम दूसरे की तरफ जा रहे हो, तुम्हारा तीर दूसरे की तरफ जा रहा है। तो तीर का पिछला हिस्सा अपनी तरफ होता है, तीर का फल दूसरे की तरफ होता है। चेतना एक तीर है। वह दूसरे को देखती है। जिससे तुम बोल रहे हो, उसपर ध्यान होता है। अपने पर ध्यान चूक जाता है। इसलिए उस गैर-भान की अवस्था में तुमसे बातें निकल जाती हैं, जिनके लिए तुम जिंदगी भर पछताते हो।

तुम किसी स्त्री से कह बैठे कि मैं तुझे प्रेम करता हूँ। यह कभी सोचकर भी नहीं गये थे। यह पहले कभी ख्याल में भी नहीं आया था। बात-बात में बात हो गयी। अब फँसे! अब इससे लौटना मुश्किल हो गया। अब इस बात से और बातें निकलेंगी। जैसे पत्तों में पत्ते लग जाते हैं, वैसे बात में बात लगती जाती है। अब चल पड़े तुम एक यात्रा पर।

तुमने कभी ख्याल नहीं किया है; ख्याल करोगे तो साफ हो जायेगा कि जीवन के सारे झंझटों की कड़ियाँ शब्दों से शुरू होती हैं। और फिर एक शब्द जब बोल दिया तो फिर अहंकार जकड़ लेता है कि अब उसकी पूर्ति करनी भी जरूरी है।

तुम एक स्त्री से प्रेम करते हो। तुम उससे कहते हो—जन्मों-जन्मों तुझे प्रेम करूँगा। क्षण का तुम्हें भरोसा नहीं, कल का तुम विश्वास नहीं दिला सकते। कल सुबह क्या होगा, कोई जानता नहीं। लेकिन, अभी तुम जन्मों-जन्मों के लिए

बात कह रहे हो। अगर तुम जरा भी होश में हो तो तुम इतना ही कहोगे कि इस क्षण मुझे प्रेम मालूम पड़ता है, कल का क्या पता? लेकिन उससे अहंकार को रस न आयेगा। क्योंकि जब तुम्हें पता चलता है तो तुम सोचते हो—अब सदा प्रेम करूँगा। 'सदा' का, तुम्हें पता है, क्या अर्थ होता है? हर स्थिति में तुम प्रेम कर सकोगे?

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछ रही थी कि अब तुम पहले जैसा मुझे प्रेम नहीं करते; मैं बूढ़ी हो गई हूँ, इसलिए? शरीर मेरा जर्जर हो गया है, इसलिए? और याद तुम्हें है धर्मगुरु के सामने तुमने कहा था कि सुख-दुःख में साथ देंगे। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा–सुख-दुःख में साथ देंगे; बुढ़ापे का किसने कहा था? तो सुख-दुःख में तो साथ दे ही रहे हैं। बुढ़ापे की बात ही नहीं उठी थी।

तुम आज जब कह रहे हो तो तुम्हें पता है कि सदा का कितना अर्थ होता है? उसमें कितनी चीजें छिपी हैं? लेकिन आज तुम कह दोगे, कल फिर इस आश्वासन को पूरा करने में मुश्किल पड़ेगी। न पूरा कर पाओगे तो पछताओगे; पूरा करोगे तो दुःखी होओगे; क्योंकि प्रेम जब हाथ से छूट जायेगा नहीं बचेगा, तब तुम क्या करोगे? कैसे उसे जबरदस्ती लाओगे? तब एक प्रवंचना का जाल शुरू होता है।

अगर व्यक्ति अपने शब्द का होश रख सके, जो कि कठिन है—शब्द के तल पर कठिन है; क्योंकि शब्द के तल पर तुम्हारी नजर दूसरे पर है, इसलिए अपना होश तुम कैसे रखोगे? सिर्फ बुद्धों के लिए बोलना ठीक है; क्योंकि उन्होंने अपने जीवन की साधना से दो फल वाला तीर पैदा कर लिया है। उनके पास ऐसी चेतना है—उसी चेतना का नाम सुरति है, जब तीर में दो फल हैं—दूसरे की तरफ, अपनी तरफ। जब चेतना दोनों तरफ एक साथ देख पाती है; जब चेतना बातचीत करने में खो नहीं जाती, सजग बनी रहती है; बोलने वाला बोलता रहता है, साक्षी भीतर खड़ा रहता है, तब एक भी शब्द तुम्हें झंझट में न ले जायेगा। अन्यथा शब्द तुम्हें झंझट में ले जायेंगे।

एक सूफी कहानी है। गुरु ने चार शिष्यों को मौन के लिए भेजा। साँझ हो गयी। मस्जिद में चारों बैठे हैं। दीया नहीं जलाया किसीने। नौकर पास से गुजरता था तो एक ने कहा, 'ऐ भाई, रात हुई जा रही है, दीया जला दे।' दूसरे ने कहा, 'तुम बोल गये और गुरु ने मना किया था!' और तीसरे ने कहा, 'क्या कर रहे हो? तुम भी बोल गये! गुरु ने मना किया था' और चौथे ने कहा– 'हमीं ठीक; हम अभी तक नहीं बोले।'

बोलने में एक विस्मरण है। यह कहानी तुम्हें हँसने जैसी लगती है, तुम्हारी ही कहानी है। तुम चुप बैठो, तब पता चलेगा कि बोलने का कितना मन होने लगता है। तुम चुप बैठो, तब पता चलेगा कि भीतर तुम किस तरह बोलने लगते हो। और बाहर कोई भी बहाना मिल जाये कि सुरति खो जाओगे।

कहानी का मतलब क्या है? कहानी का मतलब है--उन चारों में से किसी को स्मरण न रहा कि हम चुप होने के लिए यहाँ बैठे हैं। और कहानी का मतलब है कि जब नौकर निकला पास से, दूसरा आया; ध्यान दूसरे पर गया, सुरति चूक गयी।

नानक कहते हैं, "मनन से ही मन और बुद्धि में सुरति उदय होती है।"

'सुरति' शब्द बड़ा प्यारा है। यह बुद्ध के 'सम्यक् स्मरण' से आता है। बुद्ध ने बड़ा जोर दिया स्मृति पर--राइट माइन्डफुलनेस पर, कि जो भी करो, स्मरणपूर्वक करना। बोलो तो स्मरणपूर्वक बोलना। चलो तो स्मरणपूर्वक चलना। आँख भी हिलाओ, पलक भी हिले—स्मरणपूर्वक। होश खोकर मत करना कुछ। क्योंकि जो तुम होश खोकर करोगे, वही पाप है। और जो तुम होश खोकर करोगे, उससे ही तुम अपने से दूर निकलते जाते हो। अपने पास आने की एक ही विधि है कि तुम ज्यादा होश सम्हालना। कैसी भी परिस्थिति हो, तुम एक चीज मत खोना--सब खो जाने देना--वह है होश! घर में आग लगी हो तो भी तुम होशपूर्वक घर के बाहर निकलना।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने एक संस्मरण लिखा है कि उनको वाइसराय ने सम्मान के लिए बुलाया था। गरीब आदमी थे। पुराना बंगाली ढंग का कुरता, कमीज, धोती पहनते थे। फटे-पुराने कपड़े थे। मित्रों ने कहा कि वाइसराय की सभा में इन कपड़ों में जाना उचित नहीं, अच्छे कपड़े बना देते हैं। बात उनको भी जँची। एक-दो दफे इनकार भी किया; लेकिन फिर उनको भी लगा कि ठीक नहीं है। तो कपड़े बनवा लिए।

कल सुबह वाइसराय की सभा में जाने का है, उसके एक दिन पहले की घटना है। साँझ को लौटते थे बगीचे से टहल कर। सामने ही एक मुसलमान अपने कपड़े पहने हुए--चूड़ीदार पायजामा, शेरवानी, हाथ में छड़ी लिए, बड़े शौक से शाम की चहलकदमी करते हुए घर जा रहा था वापस। एक आदमी भागा हुआ आया और उसने कहा, 'मीर साहिब, आपके घर में आग लग गयी, जल्दी करिये।' लेकिन वह वैसे ही चलता रहा, चाल में जरा भी फर्क न आया--जरा भी; जैसे नौकर आया ही नहीं; जैसे नौकर ने कुछ कहा ही नहीं; जैसे कुछ भी न हुआ हो; वह जैसा था, ठीक वैसा ही रहा। सुर जरा भी न बदला उसका। नौकर समझा कि शायद मालिक ने सुना नहीं; क्योंकि आग लगने का मामला है।

उसने कहा कि आप समझे या नहीं; सुना आपने या नहीं? किस विचार में खोये हैं?

मकान में आग लग गयी। नौकर कँप रहा है; पसीना-पसीना है, बड़ा उत्तेजित है। और नौकर है! उसका कुछ भी नहीं जल रहा है। उस मुसलमान ने कहा, 'सुन लिया; लेकिन मकान में आग लग गयी, इस वजह से क्या जिंदगी भर की चाल बदल दें? आते हैं।'

ईश्वरचंद्र पीछे थे। उन्होंने सुना तो बड़े हैरान हुए। तो उन्होंने भी सोचा कि जिंदगी भर के कपड़े बदलें वाइसराय के लिए! और यह भी एक आदमी है..वह वैसे ही...! पीछे गये उसके। देखें, यह आदमी अनूठा है। वह आदमी वैसे गया, जैसे वह रोज जाता था। वही चाल रही, वही छड़ी का हिलना रहा। घर पहुँच गया। आग लगी है। उसने नौकरों से कह दिया कि बुझाओ, और स्वयं बाहर खड़ा रहा। सब इन्तजाम कर दिया; लेकिन उस आदमी में रत्ती भर भी फर्क नहीं है।

ईश्वरचंद्र ने लिखा है कि मेरा हृदय श्रद्धा से झुक गया। ऐसा आदमी तो मैंने देखा नहीं। यह किस चीज को सम्हाल रहा है? उसका नाम सुरति है; उसका नाम स्मृति है। यह एक बात को सम्हाले हुए है कि अपने होश को नहीं खोना है। जो हो रहा है, हो रहा है। जो किया जा सकता है, वह कर रहे हैं। जो करने योग्य है, वह किया जाएगा। लेकिन स्मृति कभी भी खोने योग्य नहीं है। इस दुनिया में ऐसी कोई भी चीज नहीं है इतनी मूल्यवान, जिसके लिए तुम सुरति को खोओ।

लेकिन तुम छोटी-छोटी चीजों में खो देते हो। एक रुपये का नोट गिर गया और देखो, तुम कैसे पगला जाते हो; एकदम ढूँढ़ रहे हैं पागल की तरह! जहाँ नहीं हो सकता, वहाँ भी ढूँढ़ रहे हो।

किसी आदमी को देखो! घर में उसकी कोई चीज खो गयी। चीज बड़ी हो, वह छोटा सा डिब्बा भी खोल कर देख रहा है कि शायद...। तुम स्मृति को खोने को तैयार ही हो; 'खोने को तैयार हो' यह कहना भी शायद ठीक नहीं, तुम्हारे पास है ही नहीं, तुम खोओगे क्या? तुम मूर्च्छित हो!

नानक कहते हैं, "मनन से मन और बुद्धि में सुरति का उदय होता है।"

जैसे-जैसे ओंकार गहरा बैठता है, पहले तुम्हारा उच्चार बंद होता है, वैसे ही तीर भीतर की तरफ मुड़ता है; क्योंकि अब बाहर कोई न रहा, जिससे बोलना है। बोलना यानी बाहर से संबंध बनाना। बोलना यानी सेतु। उससे हम दूसरे तक

जाते हैं। वह दूसरे और हमारे बीच का नाता है; वह तोड़ लिया। नहीं बोलना। चुप हो गये।

चुप का अर्थ है, यात्रा उल्टी हो गयी। तीर वापस लौटा। अंतर्यात्रा शुरू हुई। उसी वक्त से स्मृति की पहली झलक आनी शुरू हो जाएगी। तुम पाओगे, तुम हो। तुम पहली दफा जागकर पाओगे कि मैं हूँ। अब तक सब दिखायी पड़ता था, तुम भर नहीं दिखायी पड़ते थे। तुम भर छाया में खड़े थे। दिया तले अंधेरा था। अब तुम जागोगे। फिर जैसे-जैसे गहराई बैठेगी ओंकार की, मनन शब्द पर आएगा, वैसे-वैसे सजगता बढ़ेगी––उसी अनुपात में।

तुम ऐसा समझो, जैसे तराजू के दो पलड़े हैं; एक पलड़ा ऊपर उठता है तो दूसरा उसी अनुपात में नीचे आता है। जिस अनुपात में तुम भीतर जाते हो, उसी अनुपात में सुरति बढ़ती है और तीसरे तल पर जहाँ शब्द भी खो जाता है, सिर्फ ओंकार की ध्वनि रह जाती है, नाद रह जाता है––एक ओंकार सतनाम––अचानक परिपूर्ण सुरति हो जाती है! तुम जाग कर खड़े होते हो, जैसे हजारों साल की नींद टूट गयी। अंधेरा गया, प्रकाश आया। जन्मों-जन्मों से तुम जैसे सोये थे और एक सपना देख रहे थे। सपना विच्छिन्न हो गया, सुबह हो गयी। भोर हुई। ब्रह्म-मुहूर्त पहली दफा आया!

"मनन से ही सभी भुवनों की सुधि आती है। मनन से ही मुँह में मार नहीं खानी पड़ती। मनन से ही मन के साथ नहीं जाना पड़ता। वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है।"

जिस दिन तुम जागते हो, उस दिन तुम्हें पता चलता है कि यह अनंत आकाश, ये भुवन, यह अस्तित्व, यह परमात्मा की अनंत लीला पहली दफे तुम्हें दिखायी पड़ती है। जब तक तुम अपनी ही वासना में खोये थे, अपने ही मन में डूबे थे, तब तक तुम्हें कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था; तुम अंधे थे। मन अंधापन है; मनन है आँख का खुल जाना।

नानक कहते हैं––"मनन से ही सभी भुवनों की सुधि आती है।"

ये अनंत लोक, सब प्रकट हो जाते हैं। जीवन अपनी परिपूर्ण महिमा में प्रकट होता है। तब तुम देख पाते हो रत्ती-रत्ती में उसके हस्ताक्षर; पत्ते-पत्ते पर उसका नाम; रोएँ-रोएँ में उसकी धुन; हवा के झोंके-झोंके में उसी का गीत। तब यह अस्तित्व पूरा का पूरा उसकी महिमा को प्रकट करता है।

अभी तुम पूछते हो, जीवन में क्या है? लोग पूछते हैं, क्या है अर्थ जीवन का? क्या है प्रयोजन? क्यों हम पैदा किये गये हैं? लोग पूछते हैं, किसलिए जिंदा रहें?

पश्चिम के बहुत बड़े विचारक––मार्शल––ने लिखा है कि जिंदगी में एक ही तो सवाल है और वह है आत्महत्या। कि किसलिए हम जिंदा रहें? क्यों न हम आत्महत्या कर लें? यह बेहोशी की आखिरी अवस्था है, जहाँ आत्महत्या घटित होती है; जहाँ तुम जीवन के बहुमूल्य उपहार को फेंक देते हो वापस। क्योंकि तुम्हें कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता उसमें।

और इनसे विपरीत एक घटना घटती है, जब तुम जागते हो; तब इतनी महिमा है––इतनी अपरम्पार महिमा है! उसके भुवन खुलते चले जाते हैं; पर्त-पर्त चारों तरफ रहस्य खड़ा हो जाता है। तब तुम्हें जीवन का अर्थ, जीवन का आनंद––जिसको हमने समाधि कहा है––उस क्षण तुम जानते हो कि जीवन क्यों है।

अभी तुम जान ही नहीं सकते, अभी तुम कितना ही पूछो; कोई कितना ही कहे, कोई कह दे कि परमात्मा को पाना जीवन का लक्ष्य है, तो भी कुछ हल नहीं होता। समाधि को पाना जीवन का लक्ष्य है––तो भी कुछ हल नहीं होता। बात कुछ जँचती नहीं है। बात जँच ही नहीं सकती। जँचेगी तब जब सुधि आएगी। ये नानक, बुद्ध, कबीर––ये तुम्हें तब तक न जँचेंगे, जब तक सुधि न आएगी। तब तक ये जँचेंगे कि होंगे ठीक हैं, कहते होंगे कुछ! आमतौर से तुम समझते कि ये लोग––कुछ दिमाग इतना ठीक नहीं। अपना दिमाग तुम ठीक समझते हो और तुम्हारे दिमाग से तुम पहुँचे कहाँ? तुम्हारे दिमाग से तुम आत्महत्या के करीब पहुँच रहे हो। कैसे खत्म कर लें, कुछ सार नहीं मालूम पड़ता। कैसे फेंक दें इस बहुमूल्य उपलब्धि को जो जीवन है; इस भेंट को हम कैसे लौटा दें!

जैसे ही जागते हो, वैसे ही जीवन का रहस्य खुलना शुरू हो जाता है। फूल खिलता है; उसकी पंखुड़ी-पंखुड़ी अनंत आनंद बन जाती है।

"मनन से ही मुँह में मार नहीं खानी पड़ती।"

नानक तो सीधे-सादे गाँव के ग्रामीण हैं। पर जो बात कह रहे हैं, वह बड़े पते की है। वे यह कह रहे हैं कि अगर तुमने मनन से कुछ बोला तो तुम्हें कभी अपने शब्दों को थूक कर नहीं चाटना पड़ता; नहीं तो रोज चाटना पड़ेगा। रोज थूकोगे, रोज चाटोगे। रोज मुँह पर मार खानी पड़ेगी। क्योंकि तुम जो बोल रहे हो, वह बेहोशी में बोल रहे हो। तुम जो बोल रहे हो, वह अहंकार की निद्रा में बोल रहे हो। तुम्हारा बोलना नींद में बोला गया है। तुम होश में नहीं हो कि क्या तुम कह रहे हो। क्या तुम कर रहे हो, उसका तुम्हें कुछ पता नहीं है। कहाँ तुम जा रहे हो, क्यों तुम जा रहे हो उसका तुम्हें कुछ पता नहीं है। तो तुम्हें रोज मुँह पर मार खानी पड़ेगी।

आज तुम कहोगे कि प्रेम करता हूँ और कल तुम सुबह पाओगे कि प्रेम तिरोहित हो गया। अभी तुम चाहते हो कि हत्या कर दूँ, घड़ी भर बाद तुम चाहोगे कि कैसे इस आदमी को जिला दूँ वापस ! बड़ी भूल हो गयी। अभी तुम कुछ कहते हो, घड़ी भर बाद कुछ हो जाता है। तुम्हारा कोई भरोसा नहीं। तुम बदलता हुआ मौसम हो। तुम्हारे भीतर कोई भी तत्त्व थिर नहीं है, क्रिस्टलाइज्ड नहीं है। तुम्हें प्रतिक्षण मुँह पर मार खानी पड़ेगी।

नानक कहते हैं—"मनन से ही मुँह पर मार नहीं खानी पड़ती और मनन से ही यम के साथ नहीं जाना पड़ता।"

मरते तो सभी हैं; लेकिन सभी यम के साथ नहीं जाते। यह एक प्रतीक है। इसे थोड़ा समझ लें।

मरते सभी हैं, लेकिन कभी-कभी कोई स्मरणपूर्वक मरता है। बस फिर यम के साथ नहीं जाना पड़ता। जब तक तुम विस्मरण में मरते हो, तब तक तुम्हें यम के साथ जाना पड़ता है। यम का अर्थ है—भय। जब आदमी बेहोशी में मरता है—जिसकी जिंदगी बेहोशी में बीती—तो मरते वक्त कँपता है, रोता है, चीखता है, चिल्लाता है, अपने को किसी तरह बचाना चाहता है। आखिरी दम तक पकड़ रखना चाहता है साँस को, कि किसी तरह बच जाऊँ। कोई भी बहाना..कोई भी बचा ले ! रोता है, गिड़गिड़ाता है। यह जो सारे भय की दशा है; यह जो भय का काला मुँह है; यह जो भैंसे पर सवार भय है—इसका नाम यम है।

लेकिन जो आदमी स्मरण से मरता है; जिसके भीतर कोई भय नहीं; जिसने जीवन को जाग कर देखा, उसका भय चला जाता है। तब वह पाता है कि मृत्यु तो जीवन की परिपूर्णता है, अंत नहीं। और मृत्यु भय नहीं है, वह परमात्मा का द्वार है। वह पाता है कि मृत्यु तो आमंत्रण है; वह तो उसमें लीन हो जाने की प्रक्रिया है। तब वह न घबड़ाता है, न कँपता है, न वह रोता है, न वह चिल्लाता है; तब वह आनंदमग्न उस परम सौंदर्य में प्रवेश करता है। तब वह अपने प्रिय से मिलने जैसे जा रहा है।

नानक जिस दिन मरे, उस दिन उनके ओंठों पर जो शब्द थे, वे बड़े कीमती हैं। नानक ने कहा—'फूल खिल गये हैं ! वसंत आ गया है ! वृक्षों पर बड़ा गीतों का कलकल नाद है !'

किस जगत की वे बात कर रहे हैं ? लोगों ने समझा कि वे जिस गाँव में पैदा हुए थे, वह मौसम था फूलों के आने का और वृक्षों पर पक्षियों की कलकलाहट का। उसी की बात कर रहे हैं। मरते वक्त बचपन की याद आ

गयी। और नानक पर लिखनेवाले सभी लोगों ने यही भूल की। यह मैं तुमसे पहली बार कहता हूँ कि इसका उनके गाँव से कोई संबंध न था। यह संयोग की बात थी कि मौसम वसंत का था। उनके गाँव में भी फूल खिले होंगे, वृक्षों पर नये पत्ते आ गये थे और पक्षी कलरव कर रहे थे। यह ठीक है। यह संयोग की बात है। लेकिन नानक मरते वक्त जन्म को याद करेंगे ? नानक मरते समय कुछ और देख रहे हैं। प्रतीक तो इसी जगत के उपयोग करने पड़ेंगे; क्योंकि जिनसे वे कह रहे हैं......। आखिरी घड़ी में वे एक परम सौंदर्य में प्रवेश कर रहे हैं, जहाँ फूल खिले हैं, जो कभी नहीं मुरझाते; जहाँ पक्षियों के गीत सदा ही गूंजते रहते हैं; जहाँ शाश्वत है सौंदर्य।

जैसे ही कोई व्यक्ति जीवन को जागकर जीता है, मृत्यु परिसमाप्ति नहीं है, मृत्यु अंत नहीं है; परम फूल है। जीवन की परम अवस्था है। मृत्यु में हम कुछ खोते नहीं। इस तरफ द्वार बंद होता है, उस तरफ द्वार खुलता है। ज्ञानी नाचता हुआ जाता है, गाता हुआ जाता है। अज्ञानी रोता हुआ जाता है, चिल्लाता हुआ जाता है। अज्ञानी यमदूत के साथ जाता है, अपने ही कारण। कोई यम नहीं है। कोई भैंसे पर सवार यम तुम्हारे पास नहीं आता। तुम्हारा भय तुम्हारा यम है। तुम अभय हो गये, फिर परमात्मा खुद अपनी बाँहें फैलाता है।

तुम जो हो, वैसा ही तुम्हारा मृत्यु का अनुभव होगा। इसलिए मृत्यु कसौटी है। आदमी कैसा मरता है, इससे पता चलता है कि कैसा जीया। अगर प्रफुल्लित मरता है, शांत मरता है, आनंदभाव, अहोभाव से मरता है तो सारा जीवन कीमती था, मूल्यवान था। यह पूर्णाहुति है। अगर रोता-चिल्लाता मरता है तो जीवन एक संताप था, नर्क था।

इसलिए नानक कहते हैं, "मनन से ही यम के साथ नहीं जाना पड़ता। वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है। मनन से ही मार्ग में बाधा नहीं आती। मनन से ही कोई प्रतिष्ठा के साथ विदा होता है। मनन से ही कोई मार्ग से नहीं भटकता। मनन से ही धर्म से संबंध बनता है। वह नाम निरंजन ही ऐसा है, कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है।"

बाधाएँ तुम्हारे बाहर नहीं हैं; बाधाएँ तुम्हारे भीतर हैं। तुम्हारे भीतर बाधाएँ हैं, क्योंकि तुम मूर्च्छित हो। और बाधाओं को मिटाने का और कोई उपाय नहीं है। अगर तुम एक-एक बाधा को मिटाने में लग जाओगे, तो तुम कभी न मिटा पाओगे। बाधाओं को मिटाने का एक ही मार्ग है कि तुम भीतर जाग जाओ; सभी बाधाएँ खो जाती हैं।

ऐसा समझो कि तुम्हारा घर है अंधेरे से भरा; तुम आते हो, हर कोने में डर मालूम पड़ता है कि पता नहीं, भूत हों, प्रेत हों, चोर हों, डाकू-लुटेरे हों, हत्यारे हों; पूरा घर है, बड़ा भवन है; कोने-कोने में भय है। हजार तरह के भय हैं। एक-एक भय से कैसे जीतोगे? कितने चोर हैं, कितने धोखेबाज हैं, कितने लुटेरे हैं, कितने हत्यारे हैं, क्या पता! साँप हैं, बिच्छू हैं, जहर है, क्या पता! अंधेरे में क्या छिपा है! तुमने अगर एक-एक से निपटने की कोशिश की तो तुम हारोगे। नहीं, एक-एक से निपटा नहीं जा सकता। निपटने का एक ही उपाय है कि तुम दीया जला लो। एक दीये के जलने से सारे भय समाप्त हो जाते हैं, घर प्रकाशित हो जाता है। फिर जो भी है, तुम देख लेते हो। फिर जो भी तुम देख लेते हो, उससे निपटने का मार्ग बन जाता है।

सच तो यह है--जैसा कि बुद्ध ने कहा है कि अंधेरे घर में चोर आकर्षित होते हैं। घर में दीया जलता हो तो चोर उस घर से बच कर निकलते हैं। जिस घर पर कोई पहरा नहीं है, चोर और लुटेरे और डाकू और हत्यारे उस तरफ आते हैं। जिस घर पर पहरेदार है, उससे वे जरा दूर ही चलते हैं। भीतर दीया जल रहा हो और सुरति का पहरेदार खड़ा हो तो तुम्हारे भीतर कोई बाधा नहीं आती; अन्यथा सब बाधाएँ आती हैं।

एक दिन सुबह-सुबह मुल्ला नसरुद्दीन ने मुझे आकर कहा कि अब कुछ करना ही होगा, मैं बहुत परेशान हूँ। और एक चिट्ठी मेरे हाथ में दी। किसीकी चिट्ठी थी, जिसमें लिखा था कि नसरुद्दीन, अगर तुमने मेरी स्त्री का पीछा करना बंद नहीं किया तो तीन दिन के भीतर गोली मार दूंगा। नसरुद्दीन ने कहा--'बोलो, क्या करें।' हमने कहा, 'इसमें इतना उलझने की जरूरत है? उस स्त्री का पीछा बंद कर दो।' नसरुद्दीन ने कहा, 'किसकी स्त्री का करना बंद कर दें? नाम तो लिखा ही नहीं। अब कोई एक स्त्री हो तो पीछा बंद कर दूं।'

एक बाधा हो तो मिटा दो; बाधाएँ अनंत हैं। अनंत स्त्रियों का पीछा चल रहा है। अनंत कामनाएँ हैं। एक को मिटाओ, दस खड़ी हो जाती हैं। अगर तुम ऐसा एक-एक से उलझते रहे तो तुम कभी भी पार न पा सकोगे। कुछ विधि चाहिए, जो अकेली सारी बाधाओं का अंत कर दे। वही विधि जो बता दे, वह गुरु। वही गुर जो समझा दे, वह गुरु।

तो नानक कहते हैं, मनन से मार्ग में बाधा नहीं आती। तुम जपो ओंकार, पहुँच जाने दो ओंकार को अजपा की स्थिति तक, फिर तुम्हारी आँखें खुल जाती हैं। मार्ग में बाधा नहीं आती; क्योंकि बाधाएँ तुम खुद ही खड़ी करते थे। कोई और तुम्हारा शत्रु नहीं है, जिसे हटा दिया जाए। तुम ही अपने शत्रु हो। तुम्हारी

मूर्च्छा ही तुम्हारी शत्रु है। उसके कारण ही तुम उलझे हो। और तुम कितना ही सम्हालकर चलो, तुम नयी बाधाएँ खड़ी करते रहोगे।

दुनिया में नियंत्रण रखनेवाले लोग हैं, संयम रखने वाले लोग हैं, क्या फर्क पड़ता है! किसी तरह सम्हाल कर चलते हैं। संयम अंत नहीं है, सुरति अंत है। संयम का मतलब यह है कि किसी तरह अपने को सम्हालकर चल रहे हैं कि भटक न जाएँ। लेकिन भटकने का सुर तो भीतर गूँज रहा है; वह कभी भी भटका देगा। किसी तरह चलते रहोगे सम्हालकर, किसी भी दिन घाट से नीचे उतार देगा; रास्ते के नीचे उतार लेगा। मौके की बात है। और संयमी आदमी सदा डरा रहेगा क्योंकि भीतर तो असंयम उबल रहा है।

नानक कह रहे हैं, "मनन से मार्ग में बाधा नहीं आती। मनन से कोई प्रतिष्ठा के साथ विदा होता है।"

इस प्रतिष्ठा से तुम यह मत समझना कि सरकार इक्कीस तोपें छोड़ती है; कि जुलूस दो मील लम्बा होता है; कि आकाश से हवाई जहाज से फूल बरसाए जाते हैं; कि सभी अखबारों के मुखपृष्ठ पर तुम्हारी फोटो छपती है। इस प्रतिष्ठा से नानक का कोई संबंध नहीं है। यह प्रतिष्ठा है भी नहीं।

एक और प्रतिष्ठा है जो दूसरों पर निर्भर नहीं होती। जो दूसरों पर निर्भर है, वह क्या प्रतिष्ठा! एक और प्रतिष्ठा है जो आंतरिक गरिमा की है। प्रतिष्ठा से वह आदमी विदा होता है, जिसको मृत्यु परमात्मा का मिलन मालूम होती है। वह आनंदभाव से, अहोभाव से विदा होता है। वह जीवन को धन्यवाद देता हुआ विदा होता है। वह चारों तरफ अनुग्रह के भाव से विदा होता है। तुम उसके अनुग्रह की छाप उसके चेहरे पर पाओगे; उसके रोएँ-रोएँ पर लिखी पाओगे। चाहे उसे कोई पहुँचाये न; चाहे वह रास्ते के किनारे झाड़ के नीचे मर गया हो। पशु-पक्षी उसे खा जाएँ, लेकिन उसकी प्रतिष्ठा है। वह प्रतिष्ठा आंतरिक गरिमा है।

मृत्यु भय नहीं है, तब तुम प्रतिष्ठा से विदा होते हो। मृत्यु अगर भय है तो तुम प्रतिष्ठा से विदा नहीं हो सकते। कैसे विदा होओगे प्रतिष्ठा से? रोते, गिड़गिड़ाते, भीख माँगते, कितने ही लोग तुम्हें पहुँचा दें, इससे क्या फर्क पड़ता है! उनके बैंड-बाजे के शोरगुल में तुम्हारा दुःख न छिपेगा, बरसते फूलों के नीचे तुम्हारी सड़ी हुई गंध न छिपेगी। उनकी गरजती तोपों के भीतर तुम्हारे भीतर का जो तुमुल संताप था, वह न छिपेगा। तुम्हारी मौत अप्रतिष्ठित रहेगी।

जब नानक कहते हैं कि मनन से कोई प्रतिष्ठा के साथ विदा होता है तो वे कहते हैं कि आत्म-प्रतिष्ठा से; एक भीतरी सम्मान, अहोभाव से।

"मनन से ही मार्ग से नहीं भटकता। मनन से ही धर्म से संबंध बनता है।"

शास्त्र कितना ही पढ़ो, धर्म से संबंध न बनेगा। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा कोई धर्म से संबंध न जोड़ पाएगा। क्योंकि तुम्हीं तो गुरुद्वारा जाओगे—सोये, मूच्छित! तुम जो दुकान पर बैठे थे, वही गुरुद्वारा जाएगा। तुम्हारा ढंग बदलना चाहिए। तुम्हारा ढंग बदल गया तो सब बदल गया। अन्यथा, तुम सब करते रहोगे...

नानक हरिद्वार गये और एक घटना घटी। पितृ-पक्ष चलता था और लोग कुएँ पर पानी भर के आकाश में अपने पुरखों को भेज रहे थे। नानक ने भी बाल्टी उठा ली, कुएँ से पानी भरा और लोग तो पूरब की तरफ मुँह करके भेज रहे थे, उन्होंने पश्चिम की तरफ बाल्टी उलटानी शुरू कर दी और जोर से कहा—पहुँच मेरे खेत में। जब दस-पाँच बाल्टी डाल चुके और सब जगह खराब कर दी, पानी से भर दी, तो लोगों ने पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं? आपका दिमाग ठीक है? पुरखों को जो पानी चढ़ाया जाता है, वह सूर्य की तरफ; पूर्व की तरफ, आप यह पश्चिम की तरफ उलटा धंदा कर रहे हैं! और यह क्या कहते हैं कि पहुँच मेरे खेत में? कहाँ खेत है तुम्हारा?

नानक ने कहा—'यहाँ से कोई दो सौ मील दूर है।' लोग हँसने लगे। उन्होंने कहा—'तुम पागल हो; शक तो हमें पहले ही हुआ था। कहीं दो सौ मील दूर यह पानी पहुँच सकता है?' नानक ने कहा—'तुम्हारे पुरखे कितनी दूर हैं?' उन्होंने कहा कि वे तो अनंत दूरी पर हैं। तो नानक ने कहा कि जब अनंत दूरी तक पहुँच रहा है, तो दो सौ मील फासला क्या बड़ा है! जब तुम्हारे पुरखों तक पहुँच जाएगा तो हमारे खेत तक भी पहुँच जाएगा।

नानक क्या कह रहे हैं? नानक यह कह रहे हैं—'थोड़ा सोचो! तुम क्या कर रहे हो? थोड़ा होश सँभालो! कहाँ पानी डाल रहे हो? इस तरह की मूढ़ताओं से क्या होगा?'

लेकिन सारा धर्म इस तरह की मूढ़ताओं से भरा है। कोई पुरखों को पानी पहुँचा रहा है; कोई गंगाओं के स्नान कर रहा है कि पाप धुल जाएँगे। कोई पत्थर की मूर्तियों के सामने बिना किसी भाव के, बिना किसी अर्चना के, सिर झुकाए बैठा है और माँग कर रहा है संसार की। धर्म के नाम पर हजार तरह की मूढ़ताएँ प्रचलित हैं।

इसलिए नानक कहते हैं, न तो शास्त्र से मिलेगा, न सम्प्रदाय से मिलेगा, न अंधे अनुकरण से मिलेगा। धर्म का संबंध होता ही तब है, जब कोई व्यक्ति मनन को उपलब्ध होता है।

जब कोई व्यक्ति जाग जाता है, भीतर सुरति आती है। बस जहाँ से ओंकार का नाद शुरू होता है, वहीं से धर्म का संबंध शुरू होता है। जिस दिन तुम समर्थ हो जाओगे नाद को सुनने में, करनेवाले नहीं रहोगे, सिर्फ सुननेवाले और भीतर नाद हो रहा है, और तुम आल्हादित हो, तुम साक्षी हो, तुम द्रष्टा हो—उसी दिन तुम्हारा धर्म से संबंध जुड़ जाएगा। निश्चित ही यह 'धर्म' मजहब नहीं हो सकता। यह धर्म रिलीजन नहीं हो सकता। इस धर्म का वही अर्थ है जो बुद्ध के धम्म का; इस धर्म का वही अर्थ है, जो महावीर के धर्म का।

धर्म का अर्थ है—स्वभाव। जो लाओत्से का अर्थ 'ताओ' से है, वही धर्म से अर्थ है नानक का। तुम अपने स्वभाव से जुड़ जाओगे और स्वभाव में हो जाना ही परमात्मा में हो जाना है। स्वभाव से हट जाना, खो जाना है। स्वभाव में लौट आना, वापस घर पहुँच जाना है। वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन जानता है।

"मनन से ही मोक्ष-द्वार की प्राप्ति होती है। मनन से ही परिवार को बचा लिया जाता है। मनन से ही गुरु तरता है और शिष्य को तारता है। नानक कहते हैं – मनन से ही भिक्षा के लिए नहीं भटकना पड़ता। वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन जानता है।"

द्वार तुम्हारे भीतर है। भटकाव तुम्हारे भीतर है। बाधाएँ तुम्हारे भीतर हैं। मार्ग तुम्हारे भीतर है। सिर्फ दीया जल जाए तो तुम, दोनों को देख लोगे—क्या है असत्य; क्या है सत्य। दीया जल जाए तो तुम देख लोगे कि कामना है असत्य और कामना का अनुकरण है संसार। दीया जल जाए तो तुम देख लोगे—अकामना है सत्य और अकामना है मोक्ष का द्वार।

तुम बँधते हो, क्योंकि तुम माँगते हो। माँग है बंधन। तुम नहीं बँधोगे अगर तुम माँगोगे नहीं। जब तक तुम माँगते रहोगे, तुम बँधते रहोगे। तुमने न मालूम कितनी जंजीर गढ़ ली है। तुम्हारी हर माँग जंजीर बन जाती है। तुमने माँगा कि तुम फँसे। तुमने माँगा कि तुम कारागृह में प्रविष्ट हुए। और तुम माँगते ही चले जाते हो तो कारागृह मजबूत होता चला जाता है।

नानक कहते हैं कि मनन से ही मोक्ष-द्वार की प्राप्ति होती है। क्योंकि जैसे ही तुम जागे, साफ दिखलायी पड़ जाता है। न माँगोगे, न बँधोगे; न आकांक्षा होगी; न बंधन होगा। न चाह होगी, न जंजीरें होंगी। और जब कोई चाह नहीं, मोक्ष का द्वार खुल गया। अचाह मोक्ष का द्वार है।

"मनन से परिवार को बचा लिया जाता है।"

किस परिवार की बात करते हैं नानक? निश्चित ही उस परिवार की तो नहीं करते हैं--पत्नी, बच्चे, भाई-बहन; क्योंकि वह तो नानक भी नहीं बचा सके। वह तो कोई नहीं बचा सका। वह तो परिवार है ही नहीं। एक और परिवार है--गुरु और शिष्य का परिवार। वही परिवार है; क्योंकि वही प्रेम अपने शुद्धतम रूप में घटित होता है; क्योंकि वही प्रेम अचाह से घटित होता है। वहाँ प्रेम अकारण घटित होता है।

पिता से प्रेम होता है, क्योंकि उसने जन्म दिया है। पत्नी से प्रेम होता है, क्योंकि शरीर की वासना है, कारण है। बेटे से प्रेम होता है--बुढ़ापे का सहारा है; आशा है, कारण है। गुरु से क्या संबंध? इसलिए तो जगत में गुरु खोजना बहुत मुश्किल हो जाता है; क्योंकि अकारण प्रेम खोजना है। बस प्रेम है, कोई कारण नहीं। न उससे कोई आशा है, न कोई आकांक्षा। अगर तुम आशा और आकांक्षा से गुरु के पास गये तो परिवार न बन सकोगे उसके। उसके पास तो तुम्हें अकारण ही जाना होगा। कारण से तुम संसार में बहुत भटक लिये हो, क्या पाया? बिना किसी कारण के, सहज भाव से, बस हो गया!

इसलिए तो श्रद्धा को अंधी कहा है। अंधी दिखती है सोचनेवालों को। वे पूछते हैं--क्यों इस आदमी के पीछे पागल हो? मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि उनके घर के लोग कहते हैं--'क्यों रजनीश के पीछे पागल हो? दिमाग खराब हो गया है?'

वे निश्चित ही पागल हैं और सच कहा जाए तो ठीक ही कहते हैं घर के लोग कि दिमाग खराब हो गया है। वह दिमाग जिससे संसार चलता है, निश्चित ही खराब हो गया है। एक नया प्रेम बना है और इस नये प्रेम के लिए कोई तर्क नहीं दे सकते हो। किसी को सिद्ध भी नहीं कर सकते कि इस प्रेम में कोई कारण है। सिद्ध करने में उनको खुद ही लगेगा कि यह असम्भव है।

नानक कहते हैं कि मनन से ही परिवार को बचा लिया जाता है। एक गुरु का परिवार निर्मित होता है और जब वह परिवार सम्प्रदाय बन जाता है, तब नुकसान शुरू हो जाता है, जब तक वह परिवार रहता है, तब तक एक बात। जब बुद्ध पैदा हो जाते हैं तो हजारों लोग उनके परिवार में सम्मिलित होते हैं। नानक पैदा होते हैं; तब हजारों लोग उनके परिवार में सम्मिलित होते हैं जो लोग नानक के परिवार में सम्मिलित होते हैं; यह सम्मिलित होना ही बड़ी भारी घटना है; क्योंकि यह अकारण-जगत में प्रवेश है, अकारण प्रेम में प्रवेश है। यह नानक का रंग और रस लग गया। यह धुन पकड़ गयी। यह पागल हुए जा रहे हैं।

लेकिन फिर नानक विदा हो जाएंगे। जो परिवार में अपनी स्वेच्छा से सम्मिलित हुए थे, वे विदा हो जाएँगे; फिर उनके बेटे और बच्चे भी सिक्ख रहेंगे। क्योंकि जिस प्रेम को तुमने नहीं चुना, वह तुम्हें रूपांतरित नहीं कर सकता। नानक को चुनना बड़ी क्रांति है। फिर सिक्ख के घर पैदा होना और अपने को सिक्ख मानना कोई क्रांति नहीं है।

मुसलमान के घर में मुसलमान पैदा होता है; हिंदू के घर में हिंदू; जैन के घर में जैन; सिक्ख के घर में सिक्ख। सप्रम्दाय का अर्थ है—जो तुम्हें जन्म से मिले। और परिवार का अर्थ है--जो तुमने अपनी स्वेच्छा से चुना हो। धार्मिक व्यक्ति हमेशा स्वेच्छा से चुनेगा। अधार्मिक व्यक्ति साम्प्रदायिक होगा, जन्मसे चुनेगा।

तुम जन्म से जैन हो, कोई हिंदू हैं, कोई बौद्ध हैं; लेकिन जन्म से कोई हिंदू, जैन, बौद्ध, सिक्ख हो सकता है? जन्म से खून मिल सकता है, हड्डी, मांस-मज्जा मिल सकती है। आत्मा कैसे मिलेगी?

और इसलिए दुनिया में एक बड़ी अनबूझ घटना घटती रहती है कि जब गुरु जिंदा होता है, तब एक रोशनी होती है, जिसमें वह खुद भी तिरता है, और दूसरों को भी तैराता है। जब गुरु जिंदा होता है, तब एक जीवंत घटना घटती है! फिर गुरु विदा हो जाता है, वे जो प्राथमिक, जिन्होंने अपने जीवन की चढ़ोतरी की थी, जिन्होंने अपने जीवन को भेंट किया था, दाँव पर लगाया था—वे विदा हो जाते हैं। तब उनके घर में बच्चे पैदा होते हैं। ये बच्चे फिर सिक्ख होंगे, जैन होंगे, बौद्ध होंगे। धर्म से इनका कोई संबंध न होगा।

एक बात ठीक से समझ लेना--धर्म व्यक्ति का अपना निर्णय है। जन्म से कोई धार्मिक नहीं हो सकता। उस निर्णय से जो परिवार बनता है...

नानक कहते हैं, "मनन से ही परिवार बचा लिया जाता है। मनन से ही गुरु तरता है और शिष्य को तारता है।"

नानक कहते हैं--मनन से ही भिक्षा के लिए नहीं भटकना पड़ता।

जैसे-जैसे मनन गहरा होता है, माँगना छूट जाता है।

संसार क्या है? भिक्षा के लिए भटकना है। तुम गौर करो कि तुम क्या कर रहे हो। तुम माँग रहे हो। चौबीस घंटा माँग जारी है। तुम भिखारी हो। नानक कहते हैं--मनन से ही भिक्षा के लिए नहीं भटकना पड़ता। मनन से आदमी सम्राट हो जाता है, शहंशाह हो जाता है, बादशाह हो जाता है। मनन उसे मुक्त कर देता है भिक्षा से। मनन से वह मिल जाता है, जिसके पार पाने को कुछ बचता नहीं।

मनन से परमात्मा मिल जाता है, फिर और क्या माँगना है? आखिरी मंजिल आ गयी! और आगे कुछ माँगने को कहाँ है? सब मिल गया तो शेष कहाँ रहा? समाधि मिल गयी, सब मिल गया! भिक्षा-वृत्ति छूट जाती है। वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो मनन करता है, उसका मन ही जानता है।

• • •

पंचा का गुरु एकु धिआनु

प्रवचन ७, दिनांक २७-११-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : १६

पंच परवाण पंच परधान । पंचे पावहि दरगहि मानु ॥
पंचे सोहहि दरि राजानु । पंचा का गुरु एकु धिआनु ॥
जे को कहै करै वीचारु । करतै कै करणै नाही सुमारु ॥
धौलु धरमु दइआ का पूतु । संतोषु थापि रखिआ जिनि सूति ॥
जे को बुझै होवै सचिआरु । धवलै उपरि केता भारु ॥
धरती होरु परै होरु होरु । तिस ते भारु तलै कवणु जोरु ॥
जीअ जाति रंगा के नाव । सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ । लेखा लिखिआ केता होइ ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु । केती दाति जाणै कौणु कूतु ॥
कीता पसाउ एको कवाउ । तिस ते होए लख दरीआउ ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥

एक को खोजते ही यात्रा पूरी हो जाती है। क्योंकि एक को खोकर ही संसार प्रारंभ हुआ है। बहुत उपाय हो सकते हैं एक को खोजने के। क्योंकि बहुत प्रकार से एक खंडित हुआ है। जैसे सूर्य की किरण गुजरती है काँच के एक टुकड़े से, सात टुकड़ों में टूट जाती है। इद्रधनुष पैदा होता है। ऐसे ही जीवन बहुत से खंडों में टूट गया है। एक किरण सात रंगों में टूट जाती है। जब रंग जुड़े होते हैं तब श्वेत रंग बनता है। जब टूट जाते हैं तब भिन्न रंगों का निर्माण होता है।

संसार बहुत रंगीला है, परमात्मा शुभ्र है। एक का कोई रंग नहीं है। रंग तो अनेक के हैं। समस्त साधनाएँ पुनः खंडों में अखंड को खोजने की प्रक्रिया है। हिन्दू कहते हैं, एक दो में टूट गया है। चेतना और पदार्थ, पुरुष और प्रकृति। इन दोनों में अगर तुम उसे खोज लो, एक की झलक, यात्रा पूरी हो जाएगी।

एक दूसरा मार्ग कहता है, एक तीन में टूट गया है–– सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्। तुम सत्य में सुन्दर को देख लो, सुन्दर में सत्य को देख लो, शिवम् में सुन्दर दिखायी पड़े, सत्य में शिवम् दिखायी पड़े; इन तीनों के बीच तुम्हें एक की झलक आने लगे, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् खो जाए, और एक ही बचे 'एक ओंकार सतनाम' तो तुम्हारी यात्रा पूरी हो गयी।

नानक कहते हैं एक पाँच में टूटा है पाँच इंद्रियों के कारण; अगर इन पाँचों में तुम एक को खोज लो, तो उपलब्धि हो गयी। तुम सिद्ध हो गये। यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है कि तुम कितने खंडों में तोड़कर देखते हो। अनंत खंड हो गये हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि खंडों के बीच अखंड को कैसे खोज लिया जाए!

पाँच इंद्रियाँ हैं लेकिन पाँचों इंद्रियों के बीच एक ध्यान है। इंद्रियाँ पाँच हैं, ध्यान एक है। इसे थोड़ा समझें, तो पाँचों इंद्रियों के बीच एक का सूत्र हाथ में आ जाएगा। मनके कोई गिनता रहे माला के, कुछ अर्थ नहीं, सब मनके जो एक सूत्र में पिरोये है उसे जो पकड़ ले, उसने परमात्मा की शरण ले ली। मनके गिनना संसार है, मध्य में पिरोये सूत को पकड़ लेना परमात्मा की उपलब्धि है।

पाँच इंद्रियाँ हैं। उनके बीच कौन है एक? जब तुम आँख से देखते हो तो कौन देखता है? जब तुम कान से सुनते हो तो कौन सुनता है? जब तुम हाथ से स्पर्श करते हो तो कौन स्पर्श करता है? जब तुम नाक से गंध लेते हो तो किसे गंध आती है? जब तुम स्वाद लेते हो तो किसे स्वाद आता है?

वह एक है। उसे नानक कहते हैं; वही ध्यान है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम भोजन कर रहे हो...

बड़ी पुरानी कथा है। एक संन्यासी एक सम्राट के द्वार आया। उसके गुरु ने उसे भेजा था, और कहा था, जो मैं तुझे न समझा पाया वह शायद सम्राट तुझे समझा दे। भरोसा तो नहीं आया शिष्य को, कि जो मैं गुरु से नहीं सीख सका वह सम्राट से सीखूंगा? लेकिन गुरु ने कहा तो आज्ञा मानी। वह जब सम्राट के द्वार तक पहुँचा तो वहाँ रागरंग चलता था। शराब पी जा रही थी। नर्तकियाँ नाच रही थीं। तो वह बड़ा दुःखी हुआ, कि कहाँ गलत जगह आ गया! उसने सम्राट से कहा भी कि मैं वापिस लौट जाऊँ। क्योंकि मैं तो कुछ जिज्ञासा लेकर आया था। यहाँ तो आप खुद ही खोये हुए हो। कौन मेरी जिज्ञासा को पूरी करेगा?

सम्राट ने कहा कि मैं खोया हुआ नहीं हूँ। लेकिन थोड़ी देर रुको तो ही तुम्हारी समझ में आ सके। बाहर से देख गये तो व्यर्थ ही लौट जाओगे। भीतर देखोगे तो शायद सूत्र मिल जाए। गुरु ने सोच कर ही भेजा है। सूत्र तो भीतर है इंद्रियों में तो सूत्र नहीं है। इंद्रियों के भीतर जो छिपा है वहाँ सूत्र है।

लेकिन सम्राट ने कहा अब आ गये हो तो रात रुक जाओ। रात बड़े सुंदर बिस्तर पर सुलाया संन्यासी को, श्रेष्ठतम जो भवन का कक्ष था। लेकिन एक नंगी तलवार सूत के धागे से ऊपर लटका दी। रात भर संन्यासी सो न सका। जागा ही रहा, नींद आये ही न। करवट बदले लेकिन ध्यान तलवार पर अटका रहा। और कब टूट जाए! कच्चे धागे में लटकी तलवार, कब छाती में छिद जाए! यह सम्राट ने भी खूब मजाक किया! इतना अच्छा इंतजाम किया सोने का, और ऊपर तलवार लटका दी।

सुबह सम्राट ने पूछा कि ठीक से सोये? संन्यासी ने कहा इंतजाम तो सब सोने का ठीक था, इससे अच्छा इंतजाम हो नहीं सकता। लेकिन यह क्या मजाक कि सिर पर तलवार लटका दी? मैं सो न सका। ध्यान तो वहीं लगा रहा।

सम्राट ने कहा, ऐसे ही मौत की तलवार मेरे ऊपर लटक रही है। मेरा ध्यान वहाँ लगा है। नर्तकी नाचती है। मैं नृत्य में नहीं हूँ। शराब ढाली जा रही है, मैं शराब में नहीं हूँ। सुस्वादु भोजन कर रहा हूँ, मैं स्वाद में नहीं हूँ। क्योंकि मेरे ऊपर मौत की तलवार लटकी है, मेरा ध्यान वहीं है।

पाँच इन्द्रियाँ तुम्हारे जीवन का द्वार हैं। उनसे तुम जीवन में प्रवेश करते हो, उनके बिना तुम्हारा जीवन से संबंध न हो सकेगा। लेकिन जितने तुम उनके भीतर से प्रवेश करते हो उतने ही अपने से दूर निकल जाते हो। और हर इन्द्रिय के भीतर छिपा हुआ ध्यान है। क्योंकि इन्द्रियाँ जब बाहर जाती हैं, तुम्हारा ध्यान बाहर जाता है। वह ध्यान के बाहर जाने का मार्ग हैं।

इसलिए अकसर ऐसा हो जाएगा, कि अगर तुम्हारा ध्यान एक इन्द्रिय से उतर गया हो, तो दूसरी इन्द्रियों का तुम्हें पता न चलेगा। क्योंकि पता इन्द्रियों से नहीं चलता, ध्यान से चलता है। बोधमात्र ध्यान है। समझो, कि तुम्हारे पैर में काँटा गड़ा है। और बहुत पीड़ा हो रही है। और तुम सुस्वादु भोजन कर रहे हो लेकिन स्वाद का पता न चलेगा। क्योंकि पीड़ा इतनी है, कि ध्यान वहीं बह रहा है।

तुम रास्ते से चले आ रहे हो, चारों तरफ सुंदर स्त्री-पुरुष गुजर रहे हैं, लेकिन आज तुम्हें कोई सौन्दर्य दिखायी नहीं पड़ता। क्योंकि अभी-अभी खबर मिली है, कि घर में आग लग गयी। तुम भागे चले आ रहे हो, कोई नमस्कार करता है। सुनायी नहीं पड़ता। किसीको धक्का लग जाता है, माफी माँगने की याद नहीं आती। कौन गुजर रहा है, दुकानों पर क्या बिक रहा है, लोग क्या चर्चा कर रहे हैं, आज कोई उत्सुकता नहीं है, मकान में आग लगी है। तुम्हारा ध्यान उस तरफ है। कान सुनेंगे फिर भी सुनेंगे नहीं। हाथ किसी को छू लेगा फिर भी छूएगा नहीं। और ऐसे समय कोई सुस्वादु से सुस्वादु भोजन तुम्हें दे दे तो भी स्वाद न आएगा।

क्योंकि इन्द्रियाँ बिना ध्यान के कुछ भी अनुभव नहीं कर सकतीं। इन्द्रियों का सारा अनुभव तो ध्यान पर निर्भर है। तुम हर इन्द्रिय में ध्यान को डालते हो, तभी इन्द्रिय सक्रिय हो कर सक्षम हो पाती है। अगर इन पाँचों इन्द्रियों से अपने ध्यान को तुम खींच लो, तो पाँच खो जाएँगे और एक बचेगा। और उसी एक को

तलाश है। तो नानक इस सूत्र में इन पाँच से कैसे एक पर हट जाया जाए, इस की प्रक्रिया का उल्लेख कर रहे हैं।

अब सूत्र को समझने की कोशिश करें।

'पंच प्रधान होते हैं और पंच ही पंच ही प्रमाण होते हैं। पंच का ही उस के द्वार पर सम्मान होता है। पंच ही राजा के दरबार में शोभा पाते हैं। पंच का एक ध्यान ही गुरु होता है।'

'पंच परवाण पंच परधान।
पंचे पावहि दरगहि मानु।
पंचे सोहहि दरि राजानु।
पंचा का गुरु एकु धिआनु।'

पाँच का एक गुरु है और वह ध्यान है। अगर तुम पाँच में बिखरे रहे तो भटक जाओगे। अगर तुमने एक को पकड़ लिया तो तुम उपलब्ध हो जाओगे।

कबीर ने एक पद कहा है। राह से चलते एक स्त्री को चक्की पीसते कबीर ने देखा, और कहा कि 'दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय।' ये दो जो पाट हैं। दोनों के बीच जो पड़ गया, पिस गया। कबीर अपने शिष्यों से कह रहे थे, कि ऐसे ही द्वैत की चक्की के बीच जो पड़ गया वह पिस गया, वह बच न सका।

कबीर के बेटे ने कहा, लेकिन इस चक्की में एक चीज और है। इसमें बीच में एक कील है। जिसने उसका सहारा ले लिया, उसके संबंध में भी कुछ कहें। तो कबीर ने दूसरे पद में कील का स्मरण किया है। कहा है कि दो पाटों के बीच में जो पड़ गया, वह तो नहीं बचा लेकिन जिसने दो के बीच उस एक का सहारा ले लिया, उसे फिर कोई न गिरा सका। चक्की में भी जो गेहूँ का दाना कील का सहारा ले लेता है फिर दो पाट उसे पीस नहीं पाते। तो चाहे दो कहो, चाहे तीन कहो, चाहे पाँच कहो, चाहे नौ कहो, चाहे अनंत-अनेक कहो।

भटकाव के बहुत नाम हो सकते हैं, पहुँचने का नाम एक है।

फिर तुम जो भी भटकाव चुनोगे, उससे गुजरने की प्रक्रियाएँ अलग-अलग हो जाएँगी। अगर नानक की इस प्रक्रिया को समझना हो तो इसका अर्थ हुआ कि तुम जब भोजन करते हो, तब ध्यान पर ध्यान देना। भोजन भीतर जा रहा है, स्वाद निर्मित हो रहा है, तुम ध्यानपूर्वक इस स्वाद को लेना। अगर तुमने ध्यानपूर्वक यह स्वाद लिया तो तुम थोड़ी ही देर में पाओगे कि स्वाद तो खो

गया, ध्यान हाथ में रह गया। क्योंकि ध्यान बड़ी प्रज्वलित अग्नि है। स्वाद तो जल कर राख हो जाएगा, ध्यान हाथ में रह जाएगा।

तुम एक सुन्दर फूल को देख रहे हो; ध्यानपूर्वक देखना, थोड़ी ही देर में तुम पाओगे, फूल तो खो गया, ध्यान हाथ में रह गया। क्योंकि फूल तो सपने जैसा है। ध्यान शाश्वत् है। अगर तुमने गौर से एक सुन्दर स्त्री को देखा और गौर से देखते रहे और ध्यान दिया, भटक न गये विचारों में, तो तुम पाओगे स्त्री तो खो गयी—जैसे पानी पर बनी एक लहर—ध्यान हाथ में रह गया। हर इन्द्रिय में अगर तुमने सावधानी बरती, तुम पाओगे इन्द्रिय के रूप तो खो जाते हैं, निरूप, अरूप ध्यान हाथ में रह जाता है। और उस ध्यान को जिसने पकड़ लिया, फिर उसको मिटानेवाला कोई भी नहीं।

तो नानक कहते हैं, इन पंच इन्द्रियों का एक ही गुरु है और वह ध्यान है। और उसी ध्यान में पाँचों इन्द्रियाँ अपने जल को डालती हैं।

इसलिए तो बहुत महत्त्वपूर्ण घटना है, मनस्विद् अध्ययन करते हैं। और वह यह, कि आँख देखती है, कान सुनते हैं, हाथ छूता है, नाक गंध लेती है; न तो आँख सुन सकती है, न कान देख सकते हैं। फिर इन सबको जोड़ता कौन है?

मैं बोल रहा हूँ, तुम मुझे देख भी रहे हो, तुम मुझे सुन भी रहे हो। कान से तुम सुन रहे हो, आँख से तुम देख रहे हो। लेकिन ऐसा तुम कैसे पक्का कर सकते हो कि जिस व्यक्ति को तुम देख रहे हो वही बोल भी रहा है? आँख और कान तो अलग-अलग हैं। एक खबर देता है कि आवाज आ रही है; एक खबर देता है कि कोई दिखायी पड़ रहा है। लेकिन तुम दोनों को जोड़ कैसे लेते हो? कौन जोड़ता है दोनों को, कि जिस को हम देख रहे हैं वही बोल रहा है?

जरूर तुम्हारी दोनों इन्द्रियों के पीछे एक जगह होनी चाहिए, जहाँ सभी इन्द्रियाँ अपने अनुभव को संगृहीत करती हैं। आँख भी वहीं डाल देती है दृश्य को, कान भी वहीं डाल देता है शब्द को, नाक वहीं डाल देती है गंध को, हाथ वहीं डाल देते हैं स्पर्श को। सभी इन्द्रियाँ एक बिन्दु पर अपने-अपने अनुभव डाल देती हैं। वही बिन्दु ध्यान है। वहीं सब चीजें संगृहीत हो जाती हैं। और तुम अनुभव कर पाते हो।

नहीं तो जीवन बड़ा विक्षिप्त हो जाएगा। पता ही न चले कि तुम जिसे देख रहे हो वही बोल रहा है, कि जिसे तुम सुन रहे हो उसीके शरीर की गंध भी आ रही है। तुम खण्डित हो जाओगे। पाँचों को जोड़ने वाला चाहिए। ये पाँचों

मार्ग किसी एक जगह पर जा कर मिलते हैं। और इन पाँचों का अनुभव संगृहीत हो जाता है। उस जगह का नाम ध्यान है।

नानक कहते हैं, ध्यान पाँच का गुरु है। पंच का एक ध्यान ही गुरु होता है। ये पाँचों तो शिष्य हैं। लेकिन तुमने शिष्यों को गुरु बना लिया है। और गुरु को तुम बिलकुल भूल गये हो। तुमने नौकर-चाकरों को मालिक बना लिया है, मालिक का तुम्हें स्मरण न रहा। तुम इन्द्रियों को मान कर चलते हो, ध्यान से तुम पूछते ही नहीं। तुम्हें इस बात का ख्याल ही भूल गया है, कि इन्द्रियाँ तो ऊपर-ऊपर हैं, गहरे में कौन छिपा है? इन्द्रियाँ तो ध्यान के ही फैलाव हैं। इन्द्रियों के माध्यम से ध्यान ही जगत में जा रहा है।

अगर तुम्हें जीवन को सुचारु रूप से चलाना हो तो इन्द्रियों की मत सुनना। क्योंकि इन्द्रियाँ तो अधूरी हैं। आँख को आँख का पता है। कान का कान को पता है। मुँह का मुँह को पता है। तुम उन की मान के चलोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे। और अकसर तुम पाओगे कि लोगों ने इन्द्रियों की मान ली है। और तुम हर आदमी में किसी न किसी एक इन्द्रिय की प्रधानता पाओगे जिसकी उस ने गुलामी कर ली है। कोई है जो स्वाद का दीवाना है। बस! उसे भोजन; और भोजन सब कुछ है। उसे कुछ और सूझता नहीं। वही खाये चला जाता है।

सम्राट हुआ नीरो; उसने चिकित्सक रख छोड़े थे। क्योंकि एक दफा खाने में उसका मन न भरता। दिन में दो दफा खाने में मन न भरता। तीन भी तृप्ति न होती, चार भी तृप्ति न होती। वह चाहता कि चौबीस घण्टे भोजन ही करता रहे। बस, स्वाद ही सब कुछ हो गया। तो उसने चिकित्सक रख छोड़े थे। वह खाना खाये, वे उसे उलटी करवा दें। उलटी कर के वह फिर खाने पर जुट जाए। जैसे खाना पूरा हो, चिकित्सक उस को दवा देकर फिर उलटी करवा दे। फिर खाने पर जुट जाए।

तुम कहोगे, यह आदमी पागल था। लेकिन तुम पाओगे इसी तरह का पागलपन कम-ज्यादा मात्रा में लोगों के जीवन में है। किसी को आँख का नशा है। बस, वह सौंदर्य की तलाश में घूम रहा है। दर-दर, द्वार-द्वार ठोकर खा रहा है, कि कोई सुंदर चेहरा, कोई सुंदर शरीर दिख जाए। आँख की मान कर चल रहा है।

आँख की अगर मान कर चले, तो भी अन्धे रहोगे। क्योंकि आँख असली देखनेवाला तत्त्व नहीं है। आँख तो सिर्फ झरोखा है, खिड़की है। उस से जो झांकता है वह कोई और है। और खिड़की से मत पूछो, झांकनेवाले से पूछो।

इन्द्रियाँ तो झरोखे हैं। कोई संगीत में दीवाना है। बस, उसे धुन का नशा चढ़ा हुआ है। कोई शरीर की साजसज्जा में लगा है। कोई स्पर्श का दीवाना है, कोई गंध का दीवाना है।

लेकिन सभी इन्द्रियों के दीवाने हैं और नौकरों को मान कर चल रहे हैं। मालिक से पूछो। मालिक कौन है सारी इन्द्रियों का, जिसके हटते ही इन्द्रियाँ व्यर्थ हो जाती हैं?

ऐसा हुआ कि उन्नीस सौ दस में काशी के नरेश का ऑपरेशन हुआ अपेन्डिक्स का। तो उन्होंने कहा कि मैंने कसम ले रखी है कि बेहोशी की कोई दवा कभी न लूँगा। कभी कोई नशा न करूँगा। तो कोई इनेस्थेशिया मैं नहीं ले सकता हूँ। आप ऑपरेशन कर दें लेकिन बिना किसी बेहोशी की दवा लिये। मैं न करवाऊँगा। डॉक्टरों ने कहा, यह कैसे हो सकेगा? कोई छोटा-मोटा काँटा निकालना नहीं है। वह तो पूरा पेट चीरा-फाड़ा जाएगा, हड्डी काटी जाएगी, घण्टों लगेंगे। लेकिन काशी-नरेश ने कहा, आप उसकी फिक्र न करें। सिर्फ मुझे मेरी गीता पढ़ने दें। मैं अपनी गीता पढ़ता रहूँगा, आप अपना ऑपरेशन करें।

कोई और उपाय न था। और अगर ऑपरेशन न किया जाए, तो भी मृत्यु होनी निश्चित थी। तो फिर यह खतरा लिया। कि मृत्यु तो होनी ही है। एक संभावना है, शायद यह आदमी बच जाए।

काशी-नरेश गीता का पाठ करते रहे और ऑपरेशन जारी रहा। ऑपरेशन पूरा हो गया। चिकित्सक चकित हुए, कि यह कैसे संभव हुआ? इतनी पीड़ा हुई! लेकिन काशी-नरेश ने कहा, मुझे पता न चला क्योंकि मेरा ध्यान तो गीता पर लगा था।

पता तो ध्यान से चलता है। अगर तुम्हारा ध्यान बदल जाए, तुम्हें जो-जो पता चलता है वह बदल जाएगा। पता ध्यान से चलता है। तुम्हें वही दिखायी पड़ता है जिस तरफ तुम ध्यान देना चाहते हो। जिस तरफ तुम ध्यान नहीं देना चाहते, वह तुम्हें पता ही नहीं चलता।

तुम उसी बाजार से गुजर जाओगे, लेकिन पता तुम्हें उन चीजों का चलेगा जिन पर तुम ध्यान देना चाहते हो। चमार गुजरेगा, जूतों पर नजर रहेगी। जौहरी गुजरेगा, हीरों पर नजर रहेगी। तुम्हारी नजर वहाँ रहेगी जहाँ तुम्हारा ध्यान है। तुम वही देख लोगे जहाँ तुम्हारा ध्यान बह रहा है।

इसलिए सारे जीवन की गहनतम कला ध्यान की मालकियत को उपलब्ध कर लेना है। फिर अगर तुम परमात्मा की तरफ बह रहे हो, संसार खो जाएगा।

इसलिए तो ज्ञानी कहते हैं संसार माया है। माया का यह मतलब तो नहीं है, कि नहीं है। है तो पूरी तरह। लेकिन ज्ञानी कहते हैं, संसार माया है। और उन्हों ने जाना है कि माया है। जानने का कारण यह है कि जब पूरा ध्यान परमात्मा की तरफ बहता है, संसार खो जाता है। क्योंकि जिस तरफ ध्यान नहीं है, उसके होने न होने में कोई अंतर नहीं रह जाता है। जिस तरफ ध्यान है, उस ध्यान तरफ हम जीवन देते हैं। जहाँ ध्यान है, वहाँ अस्तित्व पैदा हो जाता है। जहाँ से हट गया, वहाँ से अस्तित्व खो जाता है।

ज्ञानी कहते हैं परमात्मा सत्य है, संसार असत्य। क्या इसका यह अर्थ है कि यह जो संसार दिखायी पड़ रहा है वह नहीं है? यह पूरी तरह है, लेकिन ज्ञानी का ध्यान हट गया। अगर तुम्हारे मन में लोभ है तो धन सत्य है। अगर लोभ खो गया तो धन मिट्टी। धन अपने कारण धन नहीं है, तुम्हारे ध्यान के कारण धन है। वासना है तो शरीर बड़ा महत्त्वपूर्ण है, वासना खो गयी तो शरीर गौण हो गया।

जहाँ से ध्यान हटेगा वहाँ से अस्तित्व हट जाता है। जिस तरफ ध्यान जाएगा वहाँ अस्तित्व प्रगट हो जाता है। और जिस दिन तुम यह समझ लोगे, उस दिन तुम अपने मालिक हो जाओगे क्योंकि तुम्हें अपने भीतर के मालिक का पता चल गया। अब तुम नौकरों की नहीं सुनते। अब तुम गुलामों की मान कर नहीं चलते। अब तुम शिष्यों से नहीं पूछते। उनसे क्या पूछना है जिन्हें खुद ही पता नहीं! अब तुम गुरु से पूछते हो।

नानक कहते हैं, पंच का एक ध्यान ही गुरु है। जो कोई उसके संबंध में कहे, वह विचारपूर्वक कहे। क्योंकि उससे गहन, गंभीर और कोई बात नहीं। बहुत सोच कर कहे। ऐसे ही न कह दे। ऐसे बातचीत में न कह दे। क्योंकि उससे ज्यादा सारपूर्ण कुछ भी नहीं है।

लेकिन लोग ध्यान के संबंध में भी बिना जाने बात करते रहते हैं। ऐसे लोगों ने जगत को बड़ी उलझन में डाल दिया है। क्योंकि उन्हें कुछ पता ही नहीं है। लोगों को बिना पता भी कहने में रस आता है।

मेरे पास लोग आते हैं। सैकड़ों तरह की ध्यान-पद्धतियों पर हम प्रयोग कर रहे हैं। लोग आते हैं और कहते हैं, फलाँ आदमी ने कह दिया, यह तुम क्या करते हो? यह भी कोई ध्यान है? मैं उस आदमी से कहता हूँ कि तुम उस आदमी को जा कर पूछो, कि तुमने कभी ध्यान किया है? वह ध्यान को जानता है? अगर ध्यान को जानता है तो उस से सीख लो। क्योंकि सवाल यह नहीं है कि मुझ से

सीखा कि उससे, सवाल यह है कि ध्यान सीखा। वह वापिस जा कर उस आदमी से पूछा तो कहता है, ध्यान? ध्यान का मुझे पता नहीं, न मैंने कभी किया।

लेकिन कौन सी चीज ध्यान नहीं है, वह कहने में वह तैयार है! जिसे ध्यान का कोई पता नहीं है वह भी ध्यान के संबंध में मंतव्य दे देगा।

नानक कहते हैं कि सोच-विचार कर कहना। होश से कहना। जानते हो तो ही कहना। दुनिया अज्ञानियों के कारण नहीं भटक रही है, दुनिया उन ज्ञानियों के कारण भटक रही है, जो ज्ञानी नहीं हैं। अज्ञानी क्या भटकाएगा? लेकिन ऐसे बहुत से लोग हैं, जिन्हें बताने का रस है। जिन्हें खुद भी पता नहीं है। जिन्हें ठीक-ठीक कुछ भी होश नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं? क्यों कह रहे हैं? किन कारणों से कह रहे हैं? लेकिन लोग कहे चले जाते हैं।

और इस संसार में नासमझ खोज लेना कठिन नहीं है। अगर तुम बोलना शुरू कर दो, कुछ भी कहने लगो, अनर्गल भी बको, तुम थोड़े दिन में पाओगे कुछ शिष्य तुमने इकट्ठे कर लिये। तुम से भी बड़े मूढ़ जगत में हैं।

तो शिष्य को खोज लेना कोई अड़चन की बात नहीं है। तुम में भर थोड़ी सी विक्षिप्तता हो, दंभ हो, जोर से चिल्ला कर कहने की आदत हो, लोग इकट्ठे हो जाएँगे। कोई तुम्हारे पीछे चलने लगेगा। तुम्हारे आसपास घटनाएँ घटने लगेंगी। लोग बिलकुल अन्धेरे में हैं। उन्होंने प्रकाश को कभी जाना ही नहीं है। तो तुम्हारी चर्चा में भी फँस जाते हैं। तुम अगर प्रकाश की चर्चा भी शुरू कर दो तब उन्हें ख्याल होने लगता है कि जरूर कोई बात होगी।

फिर लोग बड़े कल्पनाशील हैं। जिसको वे सोच लेते हैं कि होगी, उस की कल्पना करने लगते हैं। और जब कल्पना शुरू हो जाती है, तो स्वप्न शुरू हो जाते हैं। किसीकी कुण्डलिनी जगने लगेगी, किसीको प्रकाश दिखायी पड़ने लगेगा, किसीको रंग-बिरंगे दृश्य आने लगेंगे। और जब ये घटनाएँ घटेंगी, तो जो आदमी बीच में गुरु बन कर बैठ गया है उसका भरोसा और बढ़ने लगेगा। इसलिए तो इतने गुरु हैं।

मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ जिन को ध्यान का कोई भी पता नहीं है। जिन्होंने कभी उसका स्वाद ही नहीं लिया, लेकिन जिनके सैकड़ों शिष्य हैं। और, जब वे गुरु मुझसे एकान्त में मिलते हैं तो वे भी यही पूछते हैं कि ध्यान कैसे करें, ध्यान क्या है?

नानक कहते हैं, ध्यान के संबंध में सोच-विचार कर कहना, क्योंकि यह आग से खेलना है। यह सूक्ष्मतम बात है। उससे सूक्ष्म कुछ और नहीं है। और न

इससे कोई और ज्यादा मूल्यवान है। संसार से परमात्मा तक जाने का जो रास्ता है, उस से महीन, बारीक और कुछ हो ही नहीं सकता। इस संबंध में बहुत सोच-विचार कर कहना। 'जे को कहे करै वीचारू'। पहले तो यह विचार कर लेना कि मैं जानता हूँ? मुझे पता है?

अगर इस संसार में हर व्यक्ति एक बात तय कर ले कि मैं वही कहूँगा जो मुझे पता है; तो इस दुनिया का भटकाव मिट जाए। सिर्फ इतनी सी बात तय कर ले कि मैं वही कहूँगा, जो मुझे पता है। मैं अनधिकार बात न कहूँगा। जो मुझे पता नहीं है, मैं स्वीकार कर लूँगा, मुझे पता नहीं है। अगर इतने पर ही मनुष्य राजी हो जाए, तो इस दुनिया से भटकाव मिट जाए। और सत्य को खोज लेना कठिन न हो।

लेकिन इतना असत्य है चारों तरफ, व्यर्थ के जाल हैं, इतना झूठा गुरुत्व है कि तुम ठीक गुरु को खोज भी न पाओगे। नानक को खोजना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि चारों तरफ न मालूम कितने लोग दावेदार हैं! तुम कैसे पता लगाओगे, कौन सही है, कौन झूठ है? कोई कसौटी भी नहीं है।

इसलिए नानक कहते हैं, बहुत विचार के ही कोई कहे, जान लिया हो तो ही कहे, पहचान लिया हो तो ही कहे। क्योंकि तुम जीवन से खिलवाड़ न करना। तुम जब दूसरे को सलाह दे रहे हो तब तुम दूसरे के जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हो। अगर तुम्हें पता नहीं है, तुम भटका दोगे। तुम्हें भला गुरु होने का मजा आ जाए!

लेकिन इससे बड़ा कोई पाप नहीं हो सकता कि तुमने किसी को ज्ञान के मार्ग से भटका दिया। हत्या भी इससे कम पाप है। चोरी कुछ भी नहीं है। बेईमानी, धोखाधड़ी कुछ भी नहीं है। क्योंकि चोरी में तुम क्या करोगे? किसी की जेब से रुपया निकाल लोगे। रुपये का मूल्य कितना है? हत्या में तुम क्या करोगे? किसी का शरीर काट डालोगे। नया शरीर उपलब्ध हो जाएगा, क्योंकि जीवन का कोई अन्त नहीं है। तुम किसीको मार सकते नहीं। हिंसा ऊपर-ऊपर है, भीतर हो नहीं सकती। कपड़े ही छीन लोगे, आत्मा तो न छीन लोगे। तुम किसी को धोखा दोगे, क्या धोखा दोगे? कुछ क्षुद्र सी चीज पा लोगे।

लेकिन अगर तुमने गुरु होने का भ्रांत भाव पैदा करवा दिया, और तुमने वे बातें बतायीं जिनका तुम्हें पता नहीं तो तुम व्यक्ति को जन्मों-जन्मों तक भटका दे सकते हो। इससे बड़ा और कोई धोखा नहीं हो सकता। और इससे बड़ा कोई पाप नहीं हो सकता। अज्ञानी गुरु जैसा महापाप करता है वैसा महापाप कोई भी नहीं कर सकता।

और ध्यान रखना, एक व्यक्ति बहुत से गलत गुरुओं के पास भटक लेता है तो उसकी आस्था खो जाती है, उसका भरोसा टूट जाता है, उसकी आशा मिट जाती है। और धीरे-धीरे उसे ऐसा लगने लगता है कि सब पाखंड है। जब निन्यान्नबे के पास पाखंड है तो एक के पास कैसे सत्य होगा? और जो निन्यान्नबे के पास पाखंड से गुजरा है, वह अगर एक के पास भी आ जाए, नानक के पास भी आ जाए, तो भी अपने को सम्हाल कर ही रखेगा, कि निन्यान्नबे जगह धोखा खाया, पता नहीं यहाँ भी धोखा हो!

इस संसार में इतनी नास्तिकता है, उस नास्तिकता का कारण गलत गुरु हैं। लोगों की आस्था खो गयी है। नास्तिकता विज्ञान के कारण नहीं है। और न नास्तिकता नास्तिक दार्शनिकों के कारण है। नास्तिकता का मौलिक कारण पाखंडी गुरु हैं। क्योंकि इतना भरोसा तोड़ दिया है, कि अब यह भरोसा ही करना संभव नहीं, कि कोई गुरु है। और यह भी भरोसा करना संभव नहीं है कि कोई परमात्मा है। क्योंकि जब गुरु नहीं तो परमात्मा कैसे होगा? ये गुरु, परमात्मा और यह सब जाल लोगों के शोषण की विधियाँ हैं। ऐसी लोगों की प्रतीति हो गयी है। भले लोग इतने भटकाये गये हैं।

इसलिए नानक कहते हैं, जो भी इस संबंध में कुछ कहे वह बहुत सोच-विचार के कहे। आग से खेलना है। दूसरों को जीवन दाँव पर लगाने की बात कहनी है। सोच कर कहे अन्यथा चुप रहे।

नानक कहते हैं, 'करत कै करने नाही सुमारू।'

और परमात्मा के संबंध में कुछ भी तो नहीं कहा जाता है। क्योंकि न तो उसका कोई अन्त है, न कोई सीमा है। उसके संबंध में तो चुप ही रहा जा सकता है। क्या कहोगे? ध्यान के संबंध में कुछ कहा जा सकता है, लेकिन वह विचार के कहना। परमात्मा के संबंध में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता, इसलिए उस संबंध में तो कुछ कहना ही मत।

इसे थोड़ा समझ लो। ध्यान का अर्थ होता है विधि, मेथड, और परमात्मा का अर्थ होता है अनुभूति, निष्पत्ति। मार्ग के संबंध में कुछ कहा जा सकता है, अगर तुम चले हो मार्ग पर तो। मंजिल के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि मार्ग की तो सीमा है। मार्ग की तो दिशा है। मंजिल की तो कोई सीमा नहीं और कोई दिशा नहीं। मैं तुमसे यह तो नहीं कह सकता कि परमात्मा क्या है? लेकिन यह कह सकता हूँ, कि कैसे वहाँ तक मैं पहुँचा हूँ। मार्ग के संबंध में बताया जा सकता है।

बुद्ध कहते हैं कि बुद्ध-पुरुष केवल इशारा करते हैं। बुद्ध कहते हैं कि बुद्ध-पुरुष केवल विधि बताते हैं। नानक ने तो बार-बार कहा है कि मैं तो एक वैद्य हूँ, जो औषधि बताता हूँ। स्वास्थ्य के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता है। औषधि के संबंध में कुछ कहा जा सकता है कि वह औषधि तुम्हारी बीमारी को काट देगी। फिर जो बच रहेगा, जो शेष रहेगा, बीमारी के हट जाने से जिस आनंद, अहोभाव से तुम भर जाओगे, वही स्वास्थ्य है। उस संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

परमात्मा के संबंध में जो भी कहा जाए वह नकारात्मक होगा। हम यही कह सकते हैं, कि वह यह नहीं है, वह यह नहीं है, वह यह नहीं है। हम यह नहीं कह सकते कि वह यह है। ऐसा सीधा इशारा तो उसे सीमित कर देगा। सीमित को हम अंगुली से बता सकते हैं, कि यह रहा। असीम को हम कैसे बताएँगे? नानक कहते हैं कि परमात्मा के संबंध में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता; तो तुम चुप रहना।

लेकिन परमात्मा के संबंध में भी लोग बहुत बात करते हैं। जितनी बात परमात्मा के संबंध में करते हैं किसी और संबंध में नहीं करते। बड़ा विवाद, बड़ी किताबें, बड़ी चर्चाएँ चलती हैं। प्रमाण जुटाते हैं, सिद्ध करते हैं, कि है परमात्मा या नहीं। और कोई भी इसकी फिक्र नहीं करता कि परमात्मा को सिद्ध नहीं किया जा सकता। और न असिद्ध किया जा सकता। परमात्मा को जाना जा सकता है, जीया जा सकता है। परमात्मा हुआ जा सकता है। लेकिन न तो सिद्ध किया जा सकता है, न असिद्ध किया जा सकता है।

तुम कैसे सिद्ध करोगे कि परमात्मा है? तुम जो भी कहोगे यह असंगत होगा। तुम कैसे सिद्ध करोगे कि नहीं है? तुम जो भी कहोगे वह भी असंगत होगा। क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही है, यह समस्त, टोटेलिटी। यह जो विराट सब तरफ फैला हुआ है, इसका इकट्ठा एक नाम परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति तो नहीं है, कहीं बैठा है आकाश में!

परमात्मा तो एक अनुभव है निमज्जन का, विलीन होने का। परमात्मा तो एक ऐसी परमदशा है जब तुम मिट भी जाते हो और मिटते भी नहीं। होते भी हो और नहीं भी हो जाते हो। एक ऐसा विरोधाभास है। जहाँ एक तरफ से तुम बिलकुल शून्य हो जाते हो, दूसरी तरफ से बिलकुल पूर्ण हो जाते हो। तो परमात्मा न तो कोई व्यक्ति है, न कोई सिद्धांत है, न कोई हाईपोथीसिस है। परमात्मा एक अनुभूति है, और आखिरी अनुभूति है। और ऐसी अनुभूति है, कि जिसमें तुम खो जाते हो। इसलिए लौट कर कहने को कोई बचता भी नहीं।

तो नानक कहते हैं कि उसके संबंध में तो कुछ कहा नहीं जा सकता। ध्यान के संबंध में कुछ कहा जा सकता है। बहुत सोच कर कहना। जाना हो तो कहना, अन्यथा चुप रह जाना। इसे तुम अपने जीवन में तो एक नियम बना लो। छोड़ो संसार को; अपने संबंध में तुम एक नियम बना लो। यह छोटा नियम तुम्हारे सारे जीवन को रूपांतरित कर देगा। जो तुमने जाना हो, वही कहना। इंच भर ज्यादा नहीं।

अतिशयोक्ति करने का मन होता है। इंच भर जानते हो, मीलभर कहने की तबियत होती है। रत्ती भर पता चलता है, पहाड़ की चर्चा शुरू हो जाती है। मन की स्थिति अतिशय की है। क्योंकि अतिशय से अहंकार को रस आता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सड़क पर गिर पड़ा। बेहोश, उसे ले जाया गया अस्पताल। और जब उसे सर्जरी के टेबल पर रखा गया तो उसके खीसे से बँधा हुआ एक कागज का पुर्जा मिला, जिसमें उसने बड़े-बड़े अक्षरों से लिखा था...डॉक्टरों के लिये विशेष सूचना। मुझे मिर्गी का दौर पड़ा है, यह कोई अपेन्डीस की बीमारी नहीं। अपेन्डीस तो मेरी पहले ही अनेक बार निकाली जा चुकी है, 'अनेक बार!'

मन तत्क्षण अतिशय क़रता है। क्योंकि बड़ा कर के देखने में मजा आ जाता है। तुम्हें जरा सा भी पता चला नहीं कि तुम उसे फैला लोगे। तुम उसमें बहुत मिर्च-मसाला मिला लोगे। तुम उसे बहुत से रंग दे दोगे। और तुम रंग दे रहे हो, उतना ही तुमने जाना है वह झूठ हुआ जा रहा है। धीरे-धीरे रंग ही रंग रह जाएगा, असली चीज खो जाएगी।

अतिशय से बचना। जितना जाना हो इंच भर कम कहना, चलेगा। इंचभर ज्यादा मत कहना। थोड़ा कम बताना, चलेगा; उससे कोई किसी का हर्जा नहीं है। ज्यादा कर के मत बताना।

और न केवल परमात्मा, ध्यान के संबंध में; जीवन के संबंध में भी आग्रह मत करना कि मैं जानता हूँ। जीवन बड़ा है, तुमने जो जाना है वह उसका बड़ा छोटा सा हिस्सा है। उससे नतीजे नहीं लिए जा सकते।

तुम एक दुकानदार रहे हो, तुमने दुकानदारी जानी है। जिंदगी बहुत बड़ी है। उसमें अनंत होने के ढंग हैं। तुमने सारी जिंदगी नहीं जान ली है। तुम इतना ही कहना कि मैं एक दुकानदार रहा। और दुकानें भी हजार तरह की हैं। मैंने एक तरह की दुकान की। और एक दुकान पर भी करोड़ों तरह के ग्राहक आ सकते थे। वे सब नहीं आए, थोड़े से ग्राहक आए। थोड़ा सा मेरा अनुभव हुआ। एक रत्ती भर!

न्यूटन ने कहा है कि लोग सोचते हैं कि मैं बहुत जानता हूँ। और मेरी दशा ऐसी है जैसे सागर के किनारे मैंने रेत का एक कण हाथ में ले लिया हो। और रेत का एक कण मेरा ज्ञान है। और मेरा अज्ञान इतना बड़ा है, जितने कण अभी बाकी हैं।

ध्यान सदा अज्ञान पर देना, कि कितना जानने को बाकी है। इससे तुम विनम्र हो जाओगे। जो तुमने जाना है उस पर बहुत ज्यादा ध्यान मत देना, उससे तुम अकड़ जाओगे। उससे अस्मिता जगेगी। उससे अहंकार पकड़ेगा। हमेशा ध्यान रखना कितना जानने को शेष है, कितना अनुभव करने को शेष है। अपार बाकी है। तब तुम पाओगे कि जो जाना है उसका हिसाब ही क्या रखना! कुछ भी तो नहीं जाना है।

इसलिए सुकरात कहता है, ज्ञानी जब परम ज्ञान को उपलब्ध होता है; तब एक ही जानने को बच रहता है कि मैंने कुछ भी नहीं जाना। ज्ञानी को बच रहता है कि मैंने कुछ भी नहीं जाना। ज्ञानी का लक्षण है कि कुछ भी नहीं जाना।

इसलिए नानक कहते हैं सीमा रखना, सरलता रखना, विनम्रता रखना। उतना ही कहना, जितना जानते हो। और उस परमात्मा के संबंध में तो कुछ भी मत कहना। क्या तुम कहोगे? तुम जो कहोगे सब छोटे मुँह बड़ी बात होगी। सिद्ध करोगे तो, असिद्ध करोगे तो, तुम हो कौन? तुम निर्णायक हो? तुम्हारे तर्कों पर उसका होना निर्भर है? तुम्हारे तर्क तोड़े जा सकते हैं। तब क्या वह टूट जाएगा?

रामकृष्ण के पास केशवचंद्र आए। केशवचंद्र ने बड़े तर्क दिये कि परमात्मा नहीं है। तो रामकृष्ण सुनते रहे। बड़े प्रफुल्लित हुए, बड़े आनंदित हुए। छाती से लगा लिए केशवचंद्र को। कहा कि बड़ी कृपा की कि तुम आए। मैं तो गाँव का ग्रामीण हूँ। तो बुद्धि का ऐसा वैभव मैंने कभी नहीं देखा। तुम्हें देख कर ही सिद्ध हो गया कि परमात्मा है। तुम जैसा फूल कैसे खिलेगा बिना उसके?

वे सिद्ध करने आए थे कि परमात्मा नहीं है। और उन्होंने बड़े स्पष्ट तर्क दिये थे। केशवचंद्र बड़े तार्किक व्यक्ति थे। बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। कभी हजारों साल में वैसी प्रतिभा का आदमी होता है। बारीक तर्क दिये थे जिनका उत्तर मुश्किल था। लेकिन रामकृष्ण उनका उत्तर दिये ही नहीं।

रामकृष्ण तो ऐसा प्रफुल्लित हुए, कि तुम्हें देख कर थोड़ा प्रमाण बाकी था वह भी मिल गया। तुम हो सकते हो, तो संसार पदार्थ नहीं है। जब चेतना की ऐसी प्रक्रिया हो सकती है, कि तर्क की ऐसी बारीकी हो सकती है, तो संसार पदार्थ, पत्थर नहीं है, यहाँ चेतना छिपी है। मेरे लिए परमात्मा का प्रमाण हो गया।

केशवचंद्र लौटे हारे हुए। रात अपने डायरी में लिखा कि यह आदमी जीत गया। इसको हराना मुश्किल है। धार्मिक आदमी को हराना मुश्किल है। क्योंकि धार्मिक आदमी तर्क देता ही नहीं। हरा सकते हो उसे, जो तर्क देता हो, क्योंकि तर्क तोड़े जा सकते हैं। तर्क तोड़ने में थोड़े और बड़े तार्किक होने की जरूरत है, और तो कुछ भी नहीं। थोड़ी कुशलता चाहिए।

धार्मिक आदमी को तुम हरा न सकोगे, क्योंकि वह तर्क देता ही नहीं। वह उपाय ही नहीं देता कि तुम उस पर हमला कर सको। वह मार्ग नहीं देता जिसमें तुम प्रवेश कर सको। इसलिए तो धार्मिक व्यक्ति कहता है कि मेरी श्रद्धा है परमात्मा में, मेरा निष्कर्ष नहीं। मेरा भाव है परमात्मा, मेरा विचार नहीं। मेरा हृदय है परमात्मा, मेरी बुद्धि नहीं। इसलिए हृदय तो मौन है। और धार्मिक व्यक्ति परमात्मा के संबंध में मौन रहेगा। हाँ, ध्यान के संबंध में बोलेगा। लेकिन उतना ही, जितना उसने जाना है। जहाँ तक गया है, बस उतना!

बड़े ईमानदार लोग पुराने दिनों में थे। बुद्ध निकले सत्य की खोज के लिए, तो छह वर्ष तक वे अनेक गुरुओं के पास गये। बड़ी मीठी कहानी है। जिस गुरु के पास गये उसने उन्हें जो जानता था; वह सिखाया। फिर एक घड़ी आ गयी जब बुद्ध ने वह सब जान लिया जो गुरु जानता था! फिर उन्होंने गुरु को कहा कि अब? तो गुरु ने कहा कि जितना मैं जानता था उतना मैंने बता दिया, इससे आगे मुझे पता नहीं है। अब तुझे कोई और गुरु खोजना पड़ेगा।

आखिरी गुरु था अलारकालाम नाम का व्यक्ति। महीनों तक बुद्ध उसके पास रहे। जो उसने कहा, वह किया। आखिर एक दिन वह घड़ी आ गयी जहाँ बुद्ध वहाँ पहुँच गये जहाँ अलारकालाम था। बुद्ध ने कहा अब मैं क्या करूँ? अभी भी मेरी तृप्ति नहीं हुई। अलार ने कहा, तब तुम्हें कोई और गुरु खोजना पड़ेगा। क्योंकि जहाँ तक मैं जानता था, मैंने बता दिया। और अगर तुम्हें आगे कुछ पता चले तो मुझे भूल मत जाना। मुझे खबर करना।

इसलिए अतीत में इतने लोग प्रज्ञावान हुए, क्योंकि एक ईमानदारी थी। आज ईमानदारी का कोई सवाल ही नहीं। आज तुम्हें पता हो या न हो, तुम अगर ठीक से दावा कर सको और प्रचार कर सको, तो तुम शिष्य जुटा लोगे। अब तो जैसे बाजार की चीजों के लिए एडवरटाईज करते हैं, वैसा तुम अपने लिए ठीक से एडवरटाईज करो, लोग आ जाएँगे। और अगर तुमने ठीक से विज्ञापन किया, और लोगों की वासना को जगाया, और लोगों के लोभ को उकसाया तो वह तुम्हें गुरु बना लेंगे।

इसलिए नानक कहते हैं, बहुत विचार के कहना ध्यान के संबंध में। 'धर्म ही पृथ्वी को धारण करने वाला है।'

इसलिए जो व्यक्ति धर्म के संबंध में थोड़ा ही गलत-सही कह देता है, वह जीवन को डाँवाडोल कर देता है। धर्म ही तुम्हें धारण किये हुए है। तुम्हें ही नहीं, सारा अस्तित्व धर्म धारण किये हुए है। इसलिए धर्म के संबंध में पता हो तो वही कहना, अन्यथा चुप रह जाना। क्योंकि धर्म के संबंध में थोड़ी सी गलत बात, और जन्मों-जन्मों तक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। यह कोई छोटा काम नहीं है। यह कोई छोटा कलपुर्जा नहीं है, कि जिसको फिर आसानी से बदला जा सके। जीवन का संतुलन डाँवाडोल हो जाता है। एक दफा तुम्हें धर्म के संबंध में कुछ गलत दृष्टि हो गयी, कि तुम्हारे आधार खो जाते हैं।

धर्म पृथ्वी को धारण किये है। वह दया का पुत्र है। उसमें संतोष की स्थापना कर संतुलन बना है।

ये तीनों वचन हृदय में बहुत गहरे में उतर जाने दो।

'धौलु धरमु दइआ का पूतु।
संतोष थापि रखिया जिनि सूति॥
जे को बूझै होवै सचिआरु॥'

धर्म आधार है जीवन का, अस्तित्व का। आधार का अर्थ है, जिसके बिना अस्तित्व बिखर जाए। जिसके बिना अस्तित्व का भवन गिर जाए--बुनियाद है। शेष सब चीजें भवन की सजावट हैं, दीवालें हैं, ईंटें हैं। उनसे भवन बना है। लेकिन धर्म आधार है। धर्म का अर्थ ही होता है, स्वभाव की जो आत्यंतिकता है, स्वभाव का जो आखिरी सूत्र है।

जैसे आग का गरम होना स्वभाव है। आग ठंढी हो जाए तो आग ही न रही। सूरज का प्रकाश देना स्वभाव है। सूरज प्रकाश न दे तो सूरज ही न रहा। प्रकाशहीन सूरज को क्या सूरज कहिएगा; उसने धर्म खो दिया, अपना गुण खो दिया।

जीसस बहुत बार कहते थे कि नमक अगर अपना नमकीनपन खो दे, तो फिर तुम उसे कैसे नमकीन बनाओगे? अगर नमक ही अपना नमकपन खो दे, तो फिर नमकीन बनाने का कोई उपाय न रहा। स्वभाव से कोई भी चीज च्युत हो जाए, तो फिर वह वही न रही, जो थी। क्योंकि जो भी वह थी, स्वभाव के कारण थी।

सूरज सूरज है, प्रकाश के कारण। आग आग है, उत्तप्तता के कारण। मनुष्य मनुष्य है, ध्यान के कारण। वह उसका स्वभाव है। और जो मनुष्य ध्यान खो दे, वह नाम मात्र को मनुष्य है। वह सिर्फ दिखायी पड़ता है कि मनुष्य है, है नहीं। होगा तो वह पशु। जिएगा तो वह जानवर की तरह।

हम जानवर की कभी निंदा नहीं करते। क्योंकि जानवर अपने स्वभाव में जी रहा है। इसलिए यह नहीं कहते हैं, कि क्या कुत्ते की तरह व्यवहार कर रहे हो? कुत्ते से हम कभी नहीं कहते हैं। कहने का कोई मतलब ही नहीं है। कुत्ता जैसा व्यवहार कर रहा है, उसका स्वभाव है। आदमी को हम कभी-कभी कहते हैं, क्या कुत्ते की तरह व्यवहार कर रहे हो? क्या गधे की तरह व्यवहार कर रहे हो?

आदमी से हम यह कह सकते हैं क्योंकि आदमी तभी आदमी की तरह व्यवहार करता है जब वह ठीक ध्यानस्थ होता है। जब वह अपने स्वभाव में होता है। कोई बुद्ध, कोई नानक, कोई कबीर, ठीक स्वभाव में होते हैं। मगर हमारी भीड़ इस बुरी तरह स्वभाव से गिर गयी है कि हम बुद्ध को, कबीर को, नानक को, कृष्ण को अवतार कहते हैं, मनुष्य नहीं। क्योंकि अगर उन को हम मनुष्य कहें तो हम अपने को क्या कहेंगे? हमारी तकलीफ है। अगर हम बुद्ध को मनुष्य कहें, तो फिर हम अपने को क्या कहेंगे? तो फिर हमें अपने को मनुष्य से कुछ नीचे रखना पड़े। अपने को मनुष्य कहना जारी रखना है, इसलिए बुद्ध को हम कहते हैं अवतार। इससे हम ऊपर एक और सीढ़ी उनके लिए बना देते हैं। उससे हमारी झंझट मिटती है। उससे हम कम से कम मनुष्य बने रहते हैं। लेकिन हम मनुष्य नहीं हैं।

मनुष्य शब्द को ठीक से समझना। जब कोई व्यक्ति गहन मनन को उपलब्ध होता है, तभी मनुष्य होता है। जब कोई व्यक्ति गहन ध्यान में ठहर जाता है, तभी मनुष्य होता है। चैतन्य मनुष्य का स्वभाव है। और तुम अपने स्वभाव को पाओगे, तो वही द्वार है तुम्हारा समस्त के स्वभाव में उतरने का। तो परमात्मा के पास जाने का एक ही मार्ग है मनुष्य को, कि वह अपने भीतर अपने स्वभाव की गहरी से गहरी बुनियाद खोज ले।

नानक कहते हैं कि 'धर्म धारण कर रहा है। वह स्वभाव है, वह आधार है। और दया का पुत्र है। संतोष की स्थापना कर संतुलन बनाये'।

दया और संतोष; दो शब्द बड़े मूल्यवान हैं। और पूरा जीवन उन दो में समा सकता है साधक का। दया बाहर, संतोष भीतर। ये दो पलड़े हैं। अपने पर दया कभी नहीं, दूसरे पर संतोष कभी नहीं। अपने पर सदा संतोष, दूसरे पर सदा दया।

इसे थोड़ा समझ लें। क्योंकि इससे उलटा हम करते हैं। एक आदमी भूखा मर रहा है हम कहते हैं, ठीक है। एक आदमी सड़क पर बीमार पड़ा है हम कहते हैं, ठीक है। संतोष तो सिखाया है सदा। सब जैसा है, सब ठीक है। दूसरे पर दया, अपने पर संतोष।

मैं जहाँ हूँ, ठीक हूँ। इस संबंध में जरा भी कुछ करने की जरूरत नहीं है। जो मुझे मिला है, पर्याप्त है। जो मैं हूँ, मैं तृप्त हूँ। जो व्यक्ति अपने पर संतोष करेगा वह परम शांति को उपलब्ध हो जाएगा। क्योंकि अशान्ति पैदा होती है असंतोष से। पहले असंतोष आता है फिर अशान्ति आती है। हमें लगता है कि जो होना चाहिए वह नहीं हो रहा है। जैसा मैं होना चाहिए था वैसा मैं नहीं हूँ। जो मुझे मिलना था नहीं मिला। जो मेरा अधिकार था वह नहीं हो रहा है। परमात्मा मुझ पर नाराज है। मेरे साथ न्याय नहीं हो रहा है। मेरी योग्यता के अनुकूल मुझे प्रतिष्ठा नहीं मिल रही है। मेरी समझ के अनुकूल मुझे धन नहीं मिल रहा है। लोग समझ ही नहीं पा रहे कि मैं कौन हूँ!

जैसे ही तुम्हारे पास असंतोष के शब्द इकट्ठे हुए, जल्दी ही अशान्ति शुरू हो जाएगी क्योंकि असंतोष में अभाव दिखायी पड़ेगा। क्या-क्या नहीं, वह दिखायी पड़ेगा। असंतोष ढंग है अभाव को खोजने का। अपने प्रति संतोष—तब तुम्हें वह दिखायी पड़ेगा जो है। और जैसे ही वह दिखायी पड़ेगा जो है, तुम धन्यवाद से भर जाओगे। आभार, अहोभाव आ जाएगा। तुम परमात्मा को धन्यवाद दे सकोगे, कि तुमने जरूरत से ज्यादा मुझे दिया है।

अपने प्रति संतोष, दूसरे के प्रति दया। दूसरे के लिए जो भी तुम से बन सके करना। उनके जीवन में सुख, जितनी शांति तुम दे सको, देने की कोशिश करना। मिल पाये, न मिल पाये, इस संबंध में संतोष रखना। क्योंकि भीतरी बात है। तुमने कोशिश की फिर भी तुम नहीं दे पाये; तो संतोष रखना।

दूसरे के संबंध में संतोष, अपने संबंध में दया; तुमने ऐसा कर लिया है। तो अपने पर तो हम बड़ी दया करते हैं। अपने पर बड़ी दया करते हैं, कि सब होना चाहिए। दूसरे पर बड़ा संतोष रखते हैं कि जो है, सब ठीक है।

इसलिए तो भारत की ऐसी दुर्गति हुई। भारत की दुर्गति में यह हाथ है, कि हमने संतोष कर लिया सब के प्रति। अपने प्रति नहीं। इसलिए भारत गरीब है, दीन है, बीमार है, सब ठीक है। 'जो उसकी मर्जी', हम कहते हैं। जहाँ खुद का सवाल आता है, वहाँ उसकी मर्जी हम नहीं मानते। वहाँ हम पूरा संघर्ष करते हैं। और हमारे संघर्ष के कारण और मुल्क दीन-दरिद्र होता जाता है।

उसपर हम संतोष कर लेते हैं, 'जो उसकी मर्जी'। जिसके भाग्य में जो लिखा है वह होगा। उसने अमीर को अमीर बनाया गरीब को गरीब बनाया। हमें अमीर बनाया उसको गरीब बनाया। हमें मालिक बनाया उसको गुलाम बनाया। हम बिलकुल संतुष्ट हैं। गुलाम की जिंदगी को बदलने, गरीब की जिंदगी को बदलने के लिए हमारे भीतर कोई दया नहीं। दया हम सब अपने ही ऊपर अपनी खर्च कर देते हैं।

देखो, शब्द दोनों बड़े बहुमूल्यवान हैं। लेकिन उनका रुख अगर तुम बदल दो, तो खतरा होता है। अगर हम अपने प्रति संतोष रख सकें तो जीवन में परम शांति होगी। भरे-पूरे होंगे हम। और दूसरे पर दया रख सकें तो दीनता और दरिद्रता मिटेगी। दूसरे पर दया रख सकें तो सेवा का जन्म होगा। दूसरे पर दया रख सकें तो जीवन में पुण्य और जीवन में प्रार्थना और आराधना हो सकेगी। दूसरे पर दया रख सकें तो वही हमारा परमात्मा के तरफ जाने का मार्ग बन जाएगा।

अगर सिर्फ दूसरे पर दया रखी, और अपने पर संतोष न रखा, तो तुम एक समाज-सुधारक हो सकते हो, लेकिन धार्मिक न हो जाओगे। सिर्फ अपने पर संतोष रखा और दूसरे पर दया न रखी, तो तुम एक मुर्दा साधु हो जाओगे। लेकिन तुम्हारा जीवन खो जाएगा। बहुत से लोग हैं जंगलों में भाग गये हैं। बिलकुल संतुष्ट हैं। लेकिन दया उनमें बिलकुल नहीं है। दया का भाव नहीं है। तो अपना सुख तो उन्होंने खोज लिया लेकिन बड़े गहन स्वार्थी मालूम पड़ते हैं। दूसरे पर कोई दया का भाव नहीं। और दूसरे पर उनकी नजर बड़ी कठोर है।

पूछो एक जैन मुनि को। वह संतोष तो साध रहा है, लेकिन दया? दया वह कहते हैं, अपने-अपने कर्म के फल लोग भोग रहे हैं। इसमें मैं क्या कर सकता हूँ? संतोष वह साध रहा है अपने लिए। अधूरी बात है, संतुलन नहीं है। पूछो ईसाई मिशनरी को। वह दया तो साध रहा है। जंगलों में पड़ा है। बीमारी झेलता है। दीन-दरिद्र की, आदिवासी की सेवा करता है, अस्पताल में रोगी हैं, सब तरह की चिंता लेता है, लेकिन उसके भीतर कोई संतोष नहीं है।

ये अधूरे-अधूरे लोग हैं। ईसाई मिशनरी में दया है, जैन मुनि में संतोष है, लेकिन संतुलन नहीं है। और एक पलड़ा बहुत भारी हो और दूसरा बिलकुल ऊपर उठ जाए, तो जीवन का जो परम संगीत है वह नहीं बज पाता।

इसलिए नानक कहते हैं, 'धर्म दया का पुत्र है, और उसमें संतोष की स्थापना कर संतुलन बनाएँ।'

जिस व्यक्ति ने भी दया और संतोष को साध लिया ठीक मात्रा में, ठीक दिशा में, उस व्यक्ति को जीवन का परम आधार मिल जाएगा। वह पा लेगा कि धर्म क्या है! जो कोई इसको समझता है वह सत्यस्वरूप हो जाता है। भीतर संतोष, बाहर दया; भीतर ध्यान, बाहर करुणा।

बुद्ध का सूत्र भी वही है। बुद्ध ने जो शब्द उपयोग किये हैं वह करुणा और प्रज्ञा। भीतर ज्ञान, बाहर करुणा। भीतर ध्यान, बाहर करुणा। और जब तक दोनों न हों तो बुद्ध ने कहा है, ज्ञान सच्चा नहीं। अगर बाहर करुणा न हो तो ज्ञान अधूरा है। अगर बाहर करुणा हो और भीतर ध्यान न हो, तो भी ज्ञान अधूरा है। क्योंकि दूसरे को दया कर-कर के ही तुम कहीं न पहुँच पाओगे। तुम्हें भीतर भी कुछ करना पड़ेगा।

तुम कितने ही पैर दबाओ मरीजों के, और कितने ही अस्पताल खोलो और धर्मशालाएँ चलाओ, अगर तुमने भीतर स्मृति को न साधा, और ध्यान को न जगाया, और पाँचों इन्द्रियों के बीच एक को न खोजा, तो तुम कहीं न पहुँच पाओगे। तुम खुद ही मरीज हो। तुम दूसरों की सेवा कर के कहाँ पहुँचोगे?

जीवन जैसे दो पैरों से चलता है, जैसे पक्षी दो पंखों से उड़ता है, जैसे तुम दो आँखों से देखते हो तब जीवन की तसबीर पूरी दिखायी पड़ती है। ठीक वैसे ही दो पंख हैं उस अंतिम यात्रा के भी। नानक का नाम है दया, संतोष।

'वही जानता है कि धर्म पर कितना भार है। पृथ्वी अनेक हैं। उनसे परे ही और पृथ्वियाँ हैं।'

अब वैज्ञानिक भी इसे स्वीकार करते हैं कि कम से कम पचास हजार पृथ्वियाँ हैं। और यह भी हमारी जानकारी की सीमा बताता है। इससे पार भी होंगी। जीवन इस अकेली पृथ्वी पर नहीं है, कम से कम पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन है। विराट फैलाव है। इस विराट फैलाव को तुम छोटे से मन से न देख पाओगे। तुम्हें अपने छोटे मन को हटा ही देना पड़ेगा।

और जैसे ही मन के विचार शांत हो जाते हैं, झरोखा टूट जाता है, तुम खुले आकाश के नीचे आ जाते हो, तुम्हें भी दिखायी पड़ना शुरू हो जाएगा कितना अनंत जीवन है! और कितनी महिमा है इस अनंत की, और मैं कैसी क्षुद्रताओं में खो रहा था! कैसी छोटी-छोटी बातों में उलझा था! किसीने गाली दे दी, किसीने अपमान कर दिया, पैर में काँटा चुभ गया, कहीं सिरदर्द हो गया, यही तुम्हारी जिंदगी की कथा है। जहाँ इतना विराट प्रतिपल घटित हो रहा था वहाँ

तुम क्षुद्र में ही लगे रहे। वहाँ तुमने हिसाब व्यर्थ का किया। जहाँ अनंत धन बरस रहा था वहाँ तुम कौड़ियाँ बीनते रहे।

नानक कहते हैं, 'पृथ्वी अनेक हैं, उन से परे भी और पृथ्वियाँ हैं। उनके भार के नीचे कौन सी शक्ति है? जितने जीव हैं, जातियाँ हैं, रंग हैं, सबके नाम उसकी आज्ञा की कलम से लिखे गये। कोई-कोई ही उस लेखा को लिखना जानता है। यदि लिखा जाए तो कितना बड़ा होगा! कितनी उसकी शक्ति है! कितना सुंदर उसका रूप है। उसके दान कितने हैं यह कौन जान सकता है? और कौन अनुमान लगा सकता है? उसके एक शब्द से कितना प्रसार हुआ। उसीसे सृष्टि की लाखों नद-नदियाँ उत्पन्न हुईं। कुदरत का किस प्रकार विचार करें, उसपर बार-बार निछावर जाऊँ तो भी कम है। जो तुझे भावे वही भला है। तू सदा सलामत और निरंकार है।'

जैसे ही तुम अपने क्षुद्र हिसाब से थोड़े बाहर हटोगे, तुम्हारी हालत कैसी है...जैसे बाहर हीरे-जवाहरातों की वर्षा हो रही है, और तुम अपने कंकड़-पत्थर छाती से लगाये बैठे हो। इस डर में, कि कहीं कोई छीन न ले। इस डर में कि कहीं मुट्ठी खोली तो कंकड़-पत्थर गिर न जाएँ।

तुम किस चीज के पास रुके हो? क्या तुम्हारा हिसाब है? तुम किन बातों को निरंतर सोचते रहते हो? तुम्हारे भीतर कौनसा ऊहापोह चलता है? अगर तुम हिसाब लगाओगे, तो पाओगे बड़ा क्षुद्र है। बड़ा क्षुद्र है! उसको क्षुद्र कहना भी ठीक नहीं, क्षुद्रतम है। हिसाब योग्य भी नहीं है। पर उसीमें तुम जीवन गवाँ रहे हो।

और नानक कहते हैं जब यह सब हटता है और तुम निर्विचार होते हो, जब ओंकार की ध्वनि गूँजती है और तुम देखते हो जीवन की विराट महिमा को, अनंत-अनंत जीवन, अमृत का अनंत पारावार, सौंदर्य असीम, शक्ति की कोई सीमा नहीं, तब तुम उसके दरबार में प्रविष्ट हुए। और जब तुम उसके दरबार में प्रविष्ट होते हो तब तुम अनुमान भी नहीं लगा सकते कि कितना विराट अस्तित्व है! कितना सौंदर्य है उसका! कितना रस है इसमें! और हम व्यर्थ ही इसको गँवाये जा रहे थे।

नानक कहते हैं कैसे विचार करूँ? सब विचार ठिठककर रुक जाता है। विचार अवाक् हो जाता है। अचरज, आश्चर्य से आँखें भर जाती हैं। आँख उठाओगे और आश्चर्य से भर जाओगे। आँख ही जमीन पर गड़ा रखी है। वहाँ जमीन में गड़े कंकड़-पत्थर दिखायी पड़ते हैं।

कुदरत का किस प्रकार विचार करें? उसपर बार-बार निछावर जाऊँ तो भी कम है। और जो अपरिसीम घटित हो रहा है, जो अनंत आनंद बरस रहा है उसे कैसे चुकाऊँ? उसपर हजार बार निछावर जाऊँ तो भी कम है, ऐसे अहोभाव का जन्म होता है। ऐसा अहोभाव ही प्रार्थना है। इस प्रार्थना में जो शब्द नानक ने कहे हैं वे बड़े कीमती हैं। 'जो तुझे भावे वही भला है।' जो तेरी मर्जी, वही हो।

ऐसी घड़ी में तुम अपनी मर्जी को बिलकुल छोड़ दोगे। तुम एक ही प्रार्थना करोगे कि मेरी मर्जी भर पूरी मत करना। जो तेरी मर्जी हो, वही पूरी हो। क्योंकि मैं तो जो माँगूँगा वह छोटा ही होगा। बच्चे खिलौने ही माँगेंगे। नासमझ नासमझियाँ माँगेंगे। तू मेरी मर्जी पूरी मत होने देना। और जो तेरी मर्जी, वही भला है। अब मैं सोचने वाला भी नहीं हूँ कि क्या ठीक, क्या गलत! जो तू करता है वही ठीक। जो तू नहीं करता है वही गैर-ठीक। एक ही कसौटी बच जाती है--'जो तुझे भावे वही भला। तू सदा सलामत और निरंकार है।'

और तू सदा है। मैं कभी होता हूँ और कभी खो जाता हूँ। मेरा होना तो पानी पर बने एक बबूले की तरह है। तू सागर है, मैं लहर हूँ। और लहर की क्या माँग? और लहर की माँग कैसे ठीक हो सकती है? क्षण भर का जिसका होना है, उसकी वासना में कैसा सत्य हो सकता है? जीसस ने आखिरी समय सूली पर जो वचन कहे हैं वे ये ही हैं--जो तुझे भावे वही भला है।

'जो तुधु भावै साई भलीकार।
तू सदा सलामति निरंकार।'

जीसस को एक क्षण को संदेह उठ आया था। सूली लगी, सूली पर ही खीलियों से ठोक दिये गये, लहू बहने लगा तब एक क्षण को--वह क्षण भी कीमती है। क्योंकि उससे पता चलता है, आदमी कितना कमजोर है! उस क्षण में जीसस में हमारी पूरी मनुष्यता अपनी पूरी असहाय अवस्था में प्रकट हो गयी। उस क्षण जीसस ने कहा, यह क्या दिखा रहा है? यह तू क्या कर रहा है मेरे साथ?

प्रश्न उठ आया। प्रश्न संदेह से भरा भी नहीं है। लेकिन फिर भी संदेह की कोई रेखा तो है ही। प्रश्न बड़ा आत्मीय है कि यह तू क्या दिखा रहा है मुझे? यह तू क्या कर रहा है? लेकिन शिकायत तो है ही। इतनी बात तो जाहिर है कि जो हो रहा है, जीसस उसे पसंद नहीं कर पा रहे हैं। यह जो सूली का लगना है इसके लिए राजी नहीं हो पा रहे हैं। कुछ बुरा हो रहा है। कुछ जो नहीं होना था हो रहा है।

तो शिकायत हो गयी। हमारी सारी मनुष्यता जीसस की शिकायत में प्रकट हो गयी। तुम्हारे जीवन में भी क्षण आएँगे जब तुम्हारी सारी आस्था डगमगा

जाएगी। तुम्हारे मन में भी पुकार उठेगी कि यह क्या हो रहा है? यह तू क्या कर रहा है? तुझ पर इतना भरोसा किया और यह फल? लेकिन यह बात ही बताती है कि भरोसा पूरा नहीं किया। नहीं तो फल जो भी हो रहा है तुम राजी होते। नाखुश भी राजी हुए, तो राजी होना पूरा नहीं। शिकायत से राजी हुए, तो स्वीकार अधूरा है। श्रद्धा परिपूर्ण नहीं।

लेकिन जीसस सम्हल गये। सारी मनुष्यता जीसस में उस क्षण कँपी। लेकिन एक क्षण में वे सम्हल गये और उन्होंने आकाश की तरफ सिर उठाया और कहा, नहीं, जो तेरी मर्जी हो, पूरी हो। तेरी मर्जी मेरी मर्जी है।

उसी क्षण मनुष्यता विलीन हो गयी, क्राईस्ट का जन्म हुआ। जीसस खो गये, क्राईस्ट का जन्म हो गया। बस, इतना ही क्षण भर का फासला है जीसस और क्राईस्ट में। अज्ञान में और ज्ञान में। इतना ही फासला है तुममें और बुद्ध में। तुममें और नानक में। तुम कितनी ही ऊँचाई पर बैठ जाओ लेकिन एक संदेह मन में बना ही रहता है कि मेरी मर्जी पूरी हो रही है या नहीं। भक्त भी देखता रहता है भगवान की तरफ, कि तू मेरी मान कर चल रहा है कि नहीं। अगर तू मेरी नहीं मान रहा है तो शिकायत है। शिकायत कितने ही मधुर शब्दों में कही जाए, शिकायत शिकायत है। और शिकायत का काँटा तो चुभेगा।

परम भक्त की कोई शिकायत नहीं। क्योंकि परम भक्त का एक ही उद्घोष है, जो तुझे भावे वही भला है--जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामत, शाश्वत और निरंकार है। मैं तो लहर हूँ, मेरी मर्जी का क्या सवाल? तेरी मर्जी पूरी हो--'दाई विल बी डन।' तू जो चाहे वही हो। तेरी चाह और मेरी चाह में कोई फासला न रह जाए। तेरी चाह ही मेरी चाह है। लहर की चाह वही है जो सागर की चाह है। पत्ते की चाह वही है जो वृक्ष की चाह है। अंग की चाह वही है जो अंगी की चाह है। हम अपने को ऐसा बूँद की तरह सागर में छोड़ दें।

पर यह छोड़ना तभी संभव हो पाएगा, जब तुम पाँच के बीच से एक को खोज लो। अभी तो तुम हो ही नहीं, खोजोगे किसको? अभी तो तुम इतने बँटे हो, कि भीड़ हो। अभी तुम एक व्यक्ति भी नहीं हो, इसलिए तुम छलाँग कैसे लगाओगे? अभी तो कोई बायें जा रहा है तुम्हारे भीतर, कोई दायें जा रहा है तुम्हारे भीतर। एक हिस्सा तुम्हारा उस दिशा में जा रहा है, दूसरा हिस्सा उस दिशा में जा रहा है। अभी तो तुम बँटे-बँटे हो। अभी तुम हो ही नहीं। अभी तुम्हारे होने का कोई भी अर्थ नहीं है।

तो पहला काम तो नानक कहते हैं, तुम पाँच के बीच एक खोज लो--ध्यान को।

और दूसरा काम नानक कहते हैं, जैसे ही ध्यान सघन हो, भीतर संतोष, बाहर दया। जैसे-जैसे दया पकेगी, संतोष गहन होगा, वैसे-वैसे यह अहोभाव तुम्हारे जीवन में अपने आप उतर आएगा—'जो तुझे भावे वही भला है।' यही परिपूर्णता है।

• • •

जो तुधु भावै साई भलीकार

प्रवचन ८, दिनांक २८-११-१९७४, श्री रजनीश आश्रम पूना

पउड़ी : १७

असंख जप असंख भाऊ । असंख पूजा असंख तप ताउ ॥
असंख गरंथ मुखि वेद पाठ । असंख जोग मनि रहहि उदास ॥
असंख भगत गुण गिआन वीचार । असंख सती असंख दातार ॥
असंख सूर मुह भख सार । असंख मोनि लिव लाइ तार ॥
कुदरति कवण कहा वीचारू । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भलीकार । तू सदा सलामति निरंकार ॥

पउड़ी : १८

असंख मूरख अंध घोर । असंख चोर हरामखोर ॥
असंख अमर करि जाहि जोर । असंख गलबढ़ हतिआ कमाहि ॥
असंख पापी पापु करि जाहि । असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ॥
असंख मलेछ मलु भखि खाहि । असंख निंदक सिरि करहि भारू ॥
'नानक' नीचु कहै वीचारु । वारिआ न जावा एक बार ॥
जो तुधु भावै साई भलीकार । तू सदा सलामति निरंकार ॥

पउड़ी : १९

असंख नाव अमंख थाव । अगंम अगंम असंख लोअ ॥
असंख कहहि सिरि भारु होई ।
अखरी नामु अखरी सालाह । अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥
अखरी लिखणु बोलणु बाणि । अखरा सिरि संजोगु बखाणि ॥
जिनि एहि लिखे तिसु सिर नाहि । जिव फुरमाए तिव तिव पाहि ॥
जेता कीता तेता नाउ । विणु नावै नाहीको थाउ ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु । वारिआ न जावा एक बार ॥
जो तुधु भावै साई भलीकार । तू सदा सलामति निरंकार ॥

साधक के समक्ष असंख्य मार्ग हैं। किसको चुने ! कैसे चुने ! किस आधार से चुने ! क्या हो कसौटी चुनाव की ? और असंख्य मार्ग ही होते तब भी ठीक था, असंख्य कुमार्ग भी हैं। कैसे बचें कुमार्ग से ? कैसे बचायें भटकन से ? साधक के जीवन की सबसे बड़ी समस्या है, ठीक को कैसे चुने, गलत को कैसे पहचाने ! गलत पहचान में आ जाए, तो छोड़ना कठिन नहीं है। गलत पहचान में आते ही छूटना शुरू हो जाता है। गलत को गलत मानकर कोई चल ही कैसे सकता है ? गलत को गलत जानकर कोई कैसे अनुगमन कर सकता है ? असत्य दिख गया कि असत्य है, फिर तुम उसे सम्हालोगे कैसे ? छूट ही जाएगा। असत्य की पहचान ही असत्य से मुक्ति है। लेकिन कैसे पहचाने ? असंख्य असत्य हैं।

सत्य की पहचान भी सत्य के अनुभव में उतरने की पहली छलाँग है। जैसे ही पहचान कि सत्य है। लग गया रंग, लग गये पंख, उड़ान शुरू हो गयी। लेकिन असंख्य सत्य हैं। सदियों-सदियों में अनंत मार्ग खोजे गये हैं। और अब तो जाल बहुत जटिल हो गया है। एक पहेली है, जो उलझती मालूम पड़ती है। सुलझती मालूम नहीं पड़ती। तो नानक कहते हैं क्या करे साधक ? यह सूत्र उसी संबंध में है।

'असंख्य जन हैं। असंख्य भाव भक्ति। असंख्य पूजाएँ हैं। असंख्य तपश्चर्याएँ हैं। असंख्य ग्रंथ हैं और असंख्य मुख जो वेदपाठ करते हैं। असंख्य योग हैं जिन के द्वारा मन विरक्त रहता है। असंख्य भक्त हैं जो उसके गुण और ज्ञान का विचार करते हैं। असंख्य सात्विक हैं, असंख्य दाता हैं। असंख्य शूरवीर हैं, जो परमात्मा की प्राप्ति के लिए लोहा लेते हैं। असंख्य मौनी हैं जो एकनिष्ठ हो कर ध्यान लगाते हैं।'

क्या करे साधक ? कैसे चुने ? क्या है उचित मेरे लिए ? निश्चित ही मैं अज्ञानी हूँ इसीलिए तो खोज है। इस अज्ञान में मेरे पास कोई भी तो कसौटी नहीं, जिससे परख लूँ कि सोना क्या है, मिट्टी क्या है ! मेरी कसौटी का मूल्य भी क्या होगा ? अज्ञानी के पास कसौटी भी हो तो भी वह कैसे कसेगा ? जिसने कभी सोना न देखा हो उसके हाथ में सोने को कसने की कसौटी भी हो, तो भी वह कैसे पहचानेगा ? जिसने जीवन भर मिट्टी ही जानी हो वह सोने को भी एक ढंग की मिट्टी ही समझेगा। हम वही पहचान सकते हैं जो हमारा अनुभव है। परमात्मा हमने जाना नहीं। उस मंजिल तक हम पहुँचे नहीं। कौन सा मार्ग वहाँ तक ले जाता होगा ?

एक ही उपाय दिखायी पड़ता है सीधा-सादा; जिसको कि मनोवैज्ञानिक कहते हैं 'ट्रायल एन्ड एरर' कि खोजो, भटको, अनुभव करो; ऐसे भटकते, खोजते, भूल-चूक से ठीक मिलेगा।

लेकिन असंख्य हैं भूल-चूकें। अगर 'ट्रायल एन्ड एरर,' अगर हम इस मार्ग का अनुसरण करें तो शायद हम कभी भी न पहुँच पायेंगे। हमारा जीवन कितना छोटा ! मार्ग असंख्य। एक मार्ग को भी तो पूरे जीवन चल कर पूरा नहीं किया जा सकता है। कैसे अनुभव संगृहीत होगा ? कौन है गुरु ? कैसे हम समझें ? कि जिसके पीछे हम चल पड़े हैं उसके पीछे चलने से उपलब्धि होनेवाली है ?

फिर उलझन और बढ़ जाती है। क्योंकि अगर इतना ही सवाल होता कि सत्य के अनेक मार्ग हैं किसको चुनें, तो कोई अड़चन न थी। कोई भी चुन लो, अगर सभी मार्ग सत्य के हैं तो पहुँच जाओगे।

असत्य मार्ग भी हैं। उतने ही जितने सत्य मार्ग हैं, शायद ज्यादा। क्योंकि एक मार्ग सत्य का है तो दस असत्य के हैं। क्योंकि एक आदमी सत्य को उपलब्ध होता है। दस करोड़ तो अंधों की तरह भटकते रहते हैं। उन अंधों ने भी मार्ग निर्मित किये हैं। उन अंधों ने भी शास्त्र लिखे हैं।

सुविधा थी पुराने दिनों में। अगर वेद अकेला शास्त्र था हिन्दुओं के पास और तब न मुसलमान थे और न तब ईसाई थे और न बौद्ध थे। तो कुछ भी खोजना था तो वेद में खोज लेते। एक शास्त्र था, वेदवचन सत्य था, सुविधा थी।

अब तो अनंत वेद हैं, अनंत शास्त्र हैं। अब तो शास्त्र से भी कोई मार्ग मिलेगा नहीं। अभी यह आसान नहीं कि तुम शास्त्र में खोज लो। किस शास्त्र में खोजोगे ? जैनों के अपने हैं, हिंदुओं के अपने, मुसलमानों के अपने। हिंदुओं का

भी एक नहीं, उनके पास अनेक हैं। जैनों के पास अनेक हैं, ईसाइयों के पास अनेक हैं। और गुरुग्रंथ साहब है, जो कि नानक के वक्त में नहीं था। एक वेद और संयुक्त हो गया। संख्या कम नहीं होती, बढ़ती है। संख्या बढ़ने के साथ उलझन बढ़ती है। निर्णय करना असंभव होता जाता है।

शायद मनुष्यता इसीलिए इतनी नास्तिकता में गिर गयी है। क्योंकि निर्णय असंभव हो गया है। आस्तिक होना करीब-करीब असंभव हो गया है। क्योंकि कैसा कोई आस्तिक हो ?

फिर इन सबमें विवाद है। फिर ये एक दूसरे का खंडन करते हैं। अगर जैनों से पूछो तो वे कहते हैं, वेदों में कुछ भी नहीं। बुद्ध से पूछो, वे कहते हैं, वेद असार है; वेद से पूछो, वेद कहता है, मेरे अतिरिक्त और कहीं कोई सार नहीं है। और सब भटकाव हैं। हिन्दुओं से पूछो, तो बौद्ध और जैन नास्तिक हैं, इनकी तो बात सुनना ही मत। कान बंद कर लेना। इनकी बात भी कान में पड़ गयी तो भटकाव हो जाएगा। हिंदुओं से पूछो तो वे कहते हैं, वेद सब से पुराना शास्त्र है इसलिए मानने योग्य है। मुसलमानों से पूछो तो वे कहते हैं, कुरान सबसे नया शास्त्र है इसलिए मानने योग्य है। क्योंकि परमात्मा जब नया शास्त्र भेजता है तो उस नये शास्त्र के साथ ही पुराने शास्त्र रद्द हो गये। नयी आज्ञा के साथ पुरानी आज्ञाएँ रद्द हो जाती हैं।

हिंदू कहते हैं कि वेद एक दफा परमात्मा ने भेज दिया, अब दुबारा और शास्त्र भेजने की जरूरत नहीं। परमात्मा कोई साधारण मनुष्य तो नहीं है कि भूलें करेगा, फिर सुधार करेगा। परमात्मा तो परम ज्ञान है। तो वेद एक दफा हो गये, अब तो कोई जरूरत नहीं। इसके बाद जो शास्त्र हुए वे सब झूठ हैं। परमात्मा ने तो एक आज्ञा भेज दी। इसके बाद सब आज्ञाएँ आदमी की तरकीब है।

लेकिन ईसाई और मुसलमान कहते हैं कि जगत में विकास है। परमात्मा बदलता है, क्योंकि आदमी बदलता है। आज्ञाएँ बदलती हैं, क्योंकि परिस्थिति बदलती है। इसलिए नवीनतम का भरोसा करना। पुराना तो जराजीर्ण हो गया।

किसकी सुनोगे ? किसकी मानोगे ? तब आखिर में तुम्हारी अपनी बुद्धि ही रह जाती है। इस विराट उलझाव के जाल में तुम अपने पैर ही खड़े रह जाते हो। डगमगाने लगते हो।

आदमी नास्तिक है क्योंकि आस्तिक होना मुश्किल होता गया है। तो कोई न कोई विधि खोजनी जरूरी है जिससे सीधा-सादा आदमी आस्तिक हो सके। यह तो बड़े से बड़े दार्शनिक भी निर्णय नहीं कर सकते कि क्या ठीक है ? किस मार्ग पर चलें ? कौन,सी विधि पहुँचाएगी ? फिर सीधा-सादा मनुष्य क्या करे,

जिसके पास न सुविधा है, न समय है, न तर्क का जाल है। वह कैसे चुने ? किस मार्ग को पकड़े ?

तो नानक का सुझाव बड़ा कीमती है। नानक कहते हैं कि इस असंख्य में भटकने से तो कुछ सार न मिलेगा। मैं तो एक ही सूत्र जानता हूँ।

'कुदरति कवण कहा वीचारु वारिआ न जावा एक वार।
जो तुधु भावै साई भलीकार।
तू सदा सलामति निरंकार।'

जो तुझे भावे वही सही है। इसलिए मैं अपने को तेरी मर्जी पर छोड़ देता हूँ। मैं खुद तो चुनाव कर नहीं सकता। मैं अज्ञानी, अन्धकार में खड़ा, अन्धा! मेरे पास कोई सूत्र नहीं है जिसके आधार पर मैं खोज कर लूँ। कोई कसौटी नहीं जिसपर जाँच कर लूँ। तो अब मैं क्या करूँ? मैं समर्पण कर देता हूँ—'तेरी मर्जी।'

इसका क्या अर्थ होता है—'तेरी मर्जी' का? इसका अर्थ होता है जैसा तू बिठाये बैठूँ; जैसा तू उठाये उठूँ, जो तू करवाये करूँ। अपनेको बीच में न लाऊँ। अगर तू भटकाये तो भटकूँ, अगर तू पहुँचाये तो पहुँचूँ। मैं वह भी अड़चन बीच में खड़ी न करूँ कि इससे तो मैं भटक जाऊँगा। मैं अपने निर्णय को हटा दूँ। कृष्ण यही अर्जुन को गीता में कहते हैं—'सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।' तू सब धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण आजा।

वह परमात्मा की तरफ से कहा गया वचन है। यह भक्त की तरफ से कहा गया वचन है, जो नानक कह रहे हैं। जो तुझे भाये वही भला। जो तुझे भाये वही मार्ग, जो तेरी चाह है वही सच। और अब मैं कोई कसौटी न लाऊँगा। तू भटकाये तो मैं समझूँगा यही मार्ग है। तू अन्धेरे में ले जाए तो समझूँगा यही रोशनी है। तू दिन को रात कहे तो रात कहूँगा।

यह कठिनतम है। क्योंकि तुम बीच-बीच में आते ही रहोगे। तुम्हारा मन बीच-बीच में कहेगा ही कि यह क्या हो रहा है? कहीं परमात्मा से कोई भूल तो नहीं हो रही है। कहीं उस पर छोड़ कर मैं भूल तो नहीं कर रहा हूँ? तो जब तुम्हारे मन को भायेगा, तब तो तुम परमात्मा के साथ रहोगे। लेकिन जब तुम्हारे मन को न भायेगा तभी अड़चन आएगी—और तभी कसौटी है, तभी साधना है।

जैसे, तुम पर फूलों की वर्षा हो तो तुम भी कह सकोगे नानक के साथ, 'जो तुधु भावै साई भलीकार।' तेरी मर्जी वही मेरी मर्जी, जो तुझे भाये वही भला। फूलों की वर्षा हो तब तो तुम भी कह सकोगे। तुम्हारे घर सुख दस्तक दे, स्वर्ग उतर आए तुम्हारे आँगन में, तब तो तुम भी नानक से राजी हो

जाओगे। लेकिन जब नर्क तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे, और काँटे तुम पर गिरें, और निंदा तुम्हारे चारों तरफ हो, अपमान और असफलता के सिवा तुम्हें कुछ भी न दिखायी पड़ता हो तब—तभी साधना है। दुःख में, पीड़ा में भी तुम्हारे हृदय में यदि यह भाव बना रहे कि जो तुझे भाये, मैं उसके लिए राजी हूँ।

और यह भाव जबरदस्ती थोपा गया संतोष न हो। इस फर्क को ख्याल ले लें। क्योंकि हम असहाय अवस्था में भी जबरदस्ती का संतोष थोप ले सकते हैं। दुःख है, कुछ करने का उपाय भी नहीं है, हम कहते हैं जो तेरी मर्जी। लेकिन, 'जो तेरी मर्जी' के पीछे शिकायत है। हम कहते हैं कि ठीक है। चलो यही ठीक है। लेकिन भीतर हम जानते हैं होना कुछ और था। जो होना था वह नहीं हुआ। हम कुछ कर भी नहीं सकते, असहाय हैं, नपुंसक हैं, शक्तिहीन हैं। तो ठीक है, कहते हैं कि ठीक, तेरी जो मर्जी।

तुमने नानक का यह वचन असहाय अवस्था में कहा, तो तुम अर्थ नहीं समझे।

संतोष दयनीयता नहीं है। वह तो परमधन्यता है। वह किसी असहाय अवस्था में कहा गया वचन नहीं है, कन्सोलेशन नहीं है, सांत्वना नहीं है। वह तो सत्य की अभिव्यक्ति है। यह तुम्हारी समझ में आना चाहिए। यह तुम्हारी अपने आपको समझा लेने की, अपने आप पर दया करने की वृत्ति से नहीं, कि अब क्या करें?

जब आदमी कुछ भी नहीं कर सकता तब सोचता है तेरी मर्जी। लेकिन तभी, जब कुछ भी नहीं कर सकता। पहले तो अपने कर्ता का भाव को पूरा उपयोग कर लेता है। जब सब तरफ से हार जाता है तब उस पर छोड़ता है। यह छोड़ना, छोड़ना न हुआ। तुम अपनी तरफ से कोशिश ही मत करना। तुम पहले चरण में ही उस पर छोड़ देना।

नानक की धारणा परम-समर्पण की है। वही भक्त की परम साधना है। तब तुम्हें न मार्ग चुनना है, न विधि खोजनी है, न तुम्हें शास्त्र की चिन्ता करनी है, न तर्क, न प्रमाण, न दर्शन; इन सबका तुम्हें कोई उपयोग न रहा। भक्त इन से एक ही झटके में छूट जाता है। और वह झटका है समर्पण का। वह एक ही साथ सब छोड़ देता है। वह कहता है, 'जो तेरी मर्जी।'

अगर तुम इसे थोड़ा सा प्रयोग करोगे तो ही ख्याल में आ सकेगा। क्योंकि नानक कोई दार्शनिक नहीं हैं। वे कोई शास्त्र नहीं रच रहे हैं। वह तो अपना अन्तर्भाव कह रहे हैं। जैसा उन्होंने अनुभव किया है वही कह रहे हैं। अड़चन तुम्हें प्रतिपल मालूम पड़ेगी। क्योंकि अड़चन तुम्हारे अहंकार से आएगी। अहंकार का सूत्र है कि मैं समझता हूँ कि क्या ठीक है और वही होना चाहिए।

टॉलस्टाय ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। मृत्यु के देवता ने अपने एक दूत को भेजा। पृथ्वी पर एक स्त्री मर गयी थी, उसकी आत्मा को लाना था। देवदूत आया लेकिन चिंता में पड़ गया। क्योंकि तीन छोटी-छोटी लड़कियाँ जुड़वाँ; एक अभी भी उस मृत स्त्री के स्तन से लगी है। एक चीख रही है, पुकार रही है। एक रोते-रोते सो गयी है, उसके आँसू उसकी आँखों के पास सूख गये हैं। तीन छोटी जुड़वाँ बच्चियाँ, और स्त्री मर गयी है, और कोई देखने वाला नहीं है। पति पहले मर चुका है। परिवार में और कोई भी नहीं है। इन तीन छोटी बच्चियों का क्या होगा ?

उस देवदूत को यह ख्याल आ गया, तो वह खाली हाथ वापिस लौट गया। उसने जा कर अपने प्रधान को कहा कि मैं न ला सका, मुझे क्षमा करें, लेकिन आपको स्थिति का पता नहीं। तीन जुड़वाँ बच्चियाँ हैं—छोटी-छोटी, दूधपीती। एक अभी भी मृत स्तन से लगी है, एक रोते-रोते सो गयी है, दूसरी अभी चीख-पुकार रही हैं। हृदय मेरा ला न सका, क्या यह नहीं हो सकता कि इस स्त्री को कुछ दिन और जीवन के दे दिये जाएँ ? कम से कम लड़कियाँ थोड़ी बड़ी हो जाएँ और कोई देखने वाला नहीं है।

मृत्यु के देवता ने कहा, तो तू फिर समझदार हो गया; उससे ज्यादा, जिसकी मर्जी से मौत होती है, जिसकी मर्जी से जीवन होता है ! तो तूने पहला पाप कर दिया, और इसकी तुझे सजा मिलेगी। और सजा यह है कि तुझे पृथ्वी पर चले जाना पड़ेगा। और जब तक तू तीन बार न हँस लेगा अपनी मूर्खता पर तब तक वापिस न आ सकेगा।

इसे थोड़ा समझना। 'तीन बार न हँस लेगा अपनी मूर्खता पर'—क्योंकि दूसरे की मूर्खता पर तो अहंकार हँसता है। जब तुम अपनी मूर्खता पर हँसते हो तब अहंकार टूटता है। देवदूत को लगा नहीं; वह राजी हो गया दंड भोगने को, लेकिन फिर भी उसे लगा कि सही तो मैं ही हूँ। और हँसने का मौका कैसे आएगा ?

उसे जमीन पर फेंक दिया गया। एक चमार, सर्दियों के दिन करीब आ रहे थे और बच्चों के लिए कोट और कंबल खरीदने शहर गया था, कुछ रुपये इकट्ठे कर के। जब वह शहर जा रहा था तो उसने राह के किनारे एक नंगे आदमी को पड़े हुए, ठिठुरते हुए देखा। यह नंगा आदमी वही देवदूत है जो पृथ्वी पर फेंक दिया गया था। उस चमार को दया आ गयी। और बजाय अपने बच्चों के लिए कपड़े खरीदने, इस आदमी के लिये कंबल और कपड़े खरीद लिए। इस आदमी को कुछ खाने-पीने को न था, घर भी न था, छप्पर भी न था जहाँ रुक सके, तो चमार ने कहा तुम मेरे साथ ही आ जाओ लेकिन, अगर मेरी पत्नी नाराज हो, जो

निश्चित होगी, क्योंकि बच्चों के लिए कपड़े खरीदने लाया था पैसे तो खर्च हो गये। वह अगर नाराज हो, चिल्लाए, तो तुम परेशान मत होना। थोड़े दिन में सब ठीक हो जाएगा।

इस देवदूत को लेकर चमार घर लौटा। न तो चमार को पता है कि देवदूत घर में आ रहा है, न पत्नी को पता है। जैसे ही देवदूत को ले कर चमार घर पहुँचा, पत्नी एकदम पागल हो गयी। बहुत नाराज हुई, बहुत चीखी-चिल्लायी।

और देवदूत पहली दफा हँसा।

चमार ने उस से कहा, हँसते हो, बात क्या है ? उस ने कहा, मैं जब तीन बार हँस लूँगा तब बता दूँगा। देवदूत हँसा पहली बार, क्योंकि उसने देखा कि इस पत्नी को पता नहीं कि चमार देवदूत को घर में ले आया है, जिसके आते ही घर में हजारों खुशियाँ आ जाएँगी।

लेकिन आदमी देख ही कितनी दूर तक सकता है ! पत्नी तो इतना ही देख पा रही है कि एक कंबल और बच्चों के कपड़े नहीं बचे। जो खो गया है वह देख पा रही है, जो मिला है उसका उसे अंदाज ही नहीं है—मुफ्त ! घर में देवदूत आ गया है। जिसके आते ही हजारों खुशियों के द्वार खुल जाएँगे। तो देवदूत हँसा। उसे लगा, अपनी मूर्खता—क्योंकि पत्नी भी नहीं देख पा रही है कि क्या घट रहा है !

जल्दी ही, क्योंकि वह देवदूत था, उसने सात दिन में ही चमार का सब सीख लिया। और इसके जूते इतने प्रसिद्ध हो गये कि चमार महीने के भीतर धनी हो गया। आधा साल होते होते तो उसकी ख्याति सारे लोक में पहुँच गयी कि उस जैसा जूते बनाने वाला कोई भी नहीं। क्योंकि जूते देवदूत बनाता था। सम्राटों के जूते वहाँ बनने लगे। धन अपरंपार बरसने लगा।

एक दिन सम्राट का आदमी आया, और उस ने कहा कि यह चमड़ा बहुत कीमती है, आसानी से मिलता नहीं, कोई भूल-चूक नहीं करना। जूते ठीक इस तरह के बनने हैं और ध्यान रखना जूते बनाने हैं, स्लीपर नहीं। क्योंकि रूस में जब कोई आदमी मर जाता है तब उसे स्लीपर पहनाकर मरघट तक ले जाते हैं। चमार ने भी देवदूत को कहा कि स्लीपर मत बना देना। जूते बनाने हैं स्पष्ट आज्ञा है, और चमड़ा इतना ही है। अगर गड़बड़ हो गयी तो हम मुसीबत में फँसेंगे।

लेकिन फिर भी देवदूत ने स्लीपर ही बनाये। जब चमार ने देखे कि स्लीपर बने हैं तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया। वह लकड़ी उठा कर उसको मारने को तैयार हो गया, कि तू हमारी फाँसी लगवा देगा। और तुझे बार-बार कहा था कि स्लीपर बनाने ही नहीं हैं, फिर स्लीपर किसलिए ?

देवदूत फिर खिलखिला कर हँसा। तभी आदमी सम्राट के घर से भागा हुआ आया। उसने कहा, जूते मत बनाना स्लीपर बनाना क्योंकि सम्राट की मृत्यु हो गयी है।

भविष्य अज्ञात है। सिवाय 'उस' के और किसीको ज्ञात नहीं। और आदमी अतीत के आधार पर निर्णय लेता है। सम्राट जिंदा था तो जूते चाहिए थे, मर गया तो स्लीपर चाहिए। तब वह चमार उसके पैर पकड़ कर माफी माँगने लगा कि मुझे माफ कर दें, मैंने तुझे मारा। पर उसने कहा, कोई हर्ज नहीं। मैं अपना दंड भोग रहा हूँ।

लेकिन वह हँसा दुबारा। चमार ने फिर पूछा, कि हँसी का कारण? उसने कहा कि जब मैं तीन बार हँस लूं.....

दुबारा हँसा इसलिए कि भविष्य हमें ज्ञात नहीं है। इसलिए हम आकांक्षाएँ करते हैं जो कि व्यर्थ हैं। हम अभीप्साएँ करते हैं जो कभी पूरी न होंगी। हम माँगते हैं जो कभी नहीं घटेगा क्योंकि कुछ और ही घटना तय है। हमसे बिना पूछे हमारी नियति घूम रही है, और हम व्यर्थ ही बीच में शोरगुल मचाते हैं। चाहिए स्लीपर और जूते हम बनवाते हैं। मरने का वक्त करीब आ रहा है और जिंदगी का हम आयोजन करते हैं।

तो देवदूत को लगा कि वे बच्चियाँ! मुझे क्या पता, भविष्य उनका क्या होने वाला है? मैं नाहक बीच में आया।

और तीसरी घटना घटी; कि एक दिन तीन लड़कियाँ आयीं जवान। उन तीनों की शादी हो रही थी। और उन तीनों ने जूतों के ऑर्डर दिये कि उनके लिए जूते बनाए जाएँ। एक बूढ़ी महिला उनके साथ आयी थी जो बड़ी धनी थी। देवदूत पहचान गया ये वे ही तीन लड़कियाँ हैं, जिनको वह मृत माँ के पास छोड़ गया था और जिनकी वजह से वह दंड भोग रहा है। वे सब स्वस्थ हैं, सुंदर हैं। उसने पूछा कि क्या हुआ? यह बूढ़ी औरत कौन है? उस बूढ़ी औरत ने कहा कि ये मेरी पड़ोसिन की लड़कियाँ हैं। गरीब औरत थी, उसके शरीर में दूध भी न था। उसके पास पैसे-लत्ते भी नहीं थे और तीन बच्चे जुड़वाँ। वह इन्हीं को दूध पिलाते मर गयी। लेकिन मुझे दया आ गयी, मेरे कोई बच्चे नहीं, और मैंने इन तीन बच्चियों को पाल लिया।

अगर माँ जिंदा रहती तो ये तीन बच्चियाँ गरीबी, भूख और दीनता और दरिद्रता में बड़ी होतीं। माँ मर गयी इसलिए ये बच्चियाँ तीनों बहुत बड़े धन, वैभव में, संपदा में पलीं। और अब उस बूढ़ी की सारी संपदा की ये ही तीन मालिक हैं; और उनका सम्राट के परिवार में विवाह हो रहा है।

देवदूत तीसरी बार हँसा।

और चमार को उसने कहा कि ये तीन कारण हैं। भूल मेरी थी। नियति बड़ी है, और हम उतना ही देख पाते हैं, जितना देख पाते हैं। जो नहीं देख पाते, बहुत विस्तार है उसका। और हम जो देख पाते हैं उससे हम कोई अंदाज नहीं लगा सकते, जो नहीं देख पाते, जो होने वाला है, जो होगा। मैं अपनी मूर्खता पर तीन बार हँस लिया अब मेरा दंड पूरा हो गया और अब मैं जाता हूँ।

नानक जो कह रहे हैं, वह यह कह रहे हैं कि तुम अगर अपने को बीच में लाना बंद कर दो, तो तुम्हें मार्गों का मार्ग मिल गया। फिर असंख्य मार्गों की चिंता न करनी पड़ेगी। छोड़ दो उसपर। वह जो करवा रहा है, जो उसने अब तक करवाया है उसके लिए धन्यवाद। जो अभी करवा रहा है, उसके लिए धन्यवाद। जो वह कल करवाएगा उसके लिए धन्यवाद। तुम बिना लिखा चेक धन्यवाद का उसे दे दो। वह जो भी हो, तुम्हारे धन्यवाद में कोई फर्क न पड़ेगा। अच्छा लगे, बुरा लगे, लोग भला कहें, बुरा कहें, लोगों को दिखायी पड़े सौभाग्य या दुर्भाग्य, यह सब चिंता तुम मत करना।

इसलिए नानक कहते हैं कि मुझे तो एक ही मार्ग दिखायी पड़ता है, और वह है,

> **'वारिआ न जावा एक बार। जो तुधु भावै साई भलीकार।**
> **तू सदा सलामति निरंकार।'**

तू सदा है। तू निरंकार है। तू शाश्वत है। मैं छोटा हूँ, लहर की तरह हूँ, मैं सब तुझ पर छोड़ देता हूँ। और तूने इतना दिया है और तेरा इतना दान चल रहा है कि मैं हजार बार भी तुझ पर निछावर हो जाऊँ, तो भी थोड़ा है। बस, एक ही मेरा सूत्र है, जो तुझे भाये वही भला है।

'असंख्य घोर मूर्ख हैं, और असंख्य अन्धे हैं। असंख्य चोर हैं, हरामखोर हैं। असंख्य ऐसे हैं जो जबरदस्ती अपना हुक्म चला कर विदा होते हैं। असंख्य गला काटने वाले हैं, और हत्या के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कमाते। असंख्य पापी पाप ही करते हैं। असंख्य झूठे अपने झूठ में ही डोलते रहते हैं। असंख्य म्लेच्छ मल ही को भोजन बना लिए हैं। असंख्य निंदक सिर को भारी किए चलते हैं। इस प्रकार नानक नीच का विचार करते हैं। कहते हैं तुझ पर एक बार नहीं बार-बार निछावर हुआ जाए ऐसा तू है। जो तुझे भाये वही भला कर्म है, तू सदा सलामत और निरहंकार है।'

एक तरफ भले लोगों की, साधुओं की, संतों की, विचारकों की जमात है, जिन्होंने विचार कर-कर के सत्य के असंख्य मार्ग खोज निकाले हैं। असंख्य मार्गों के कारण सत्य खो गया है।

दूसरी तरफ उनके विरोध में खड़े बेईमान, चोर, हत्यारे, पापी हैं। उन्हों ने भी अपने अहंकार की चेष्टा कर-कर के, सत्य से बचने के असंख्य मार्ग खोज निकाले हैं। उन्होंने झूठ की नयी-नयी ईजादें कर ली हैं। वे बड़े आविष्कारक हैं। उन्होंने बड़े मनमोहक झूठ खोज लिए हैं। उन्होंने बड़े प्यारे सपने बना लिए हैं। उनके सम्मोहन में कोई भी फँस जा सकता है। और अब भटक जाता है।

दो हैं भटकने के मार्ग। एक तो तुम असत्य के तरफ जाओ तो भटक जाते हो और या तुम सत्य के विचार में पड़ जाओ, कि कौन सा मार्ग है; तो तुम भटक जाओगे। नानक कहते हैं, मैं दोनों की चिंता नहीं करता। जो तुझे भाये वही भला कर्म है। न मैं इसकी फिक्र करता कि पुण्यात्मा क्या कहते हैं, न मैं इसकी फिक्र करता कि पापी क्या कहते हैं। न तो पुण्य और न पाप; न तो साधु और न असाधु। न, मैं इन दोनों में से नहीं चुनता। न तो मार्ग, न कुमार्ग, मैं चुनता ही नहीं। मैं सब तुझ ही पर छोड़ देता हूँ। जो तू करवाए वही शुभ है। जहाँ तू ले जाए वही शुभ है। जो मार्ग तू बता दे वही मेरा मार्ग है। मंजिल मिले या न मिले।

इसे थोड़ा समझ लें। क्योंकि अगर मंजिल मिलने की भावना बनी रही तो तुम सब उसपर न छोड़ पाओगे। तब तुम यह तो ध्यान रखोगे ही कि मंजिल मिल रही या नहीं मिल रही है। मंजिल की अगर तुम्हारी मन में धारणा बनी रही तो सब छोड़ पाओगे? आधा-आधा छोड़ोगे। और आधा-आधा छोड़ना न छोड़ने से बदतर है। वह छोड़ना है ही नहीं।

नहीं, मंजिल मिले या न मिले, अब मंजिल ही न रही। छोड़ना ही मंजिल है। भक्त के लिए समर्पण अन्त है। उसके पार फिर कुछ भी नहीं बचता। फिर वह डुबा दे तो भी भक्त को लगेगा, वह उबार रहा है। वह मिटा दे तो भक्त को लगेगा वह बना रहा है। वह अन्धेरे में पटक दे तो भी भक्त को लगेगा कि महासूर्यों का उदय हुआ है। सवाल यह नहीं है कि हम कहाँ जाते हैं। सवाल यह भी नहीं है कि हम क्या पाते हैं। सवाल यह है, कि हमारी भावदशा क्या है?

नानक की संपूर्ण प्रक्रिया समर्पण की प्रक्रिया है।

'जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार।'

'तेरे असंख्य नाम हैं, तेरे असंख्य स्थान हैं। असंख्य लोक हैं जो अगम्य हैं। असंख्य कहना भी सिर का भार ही बढ़ाना है। अक्षर से ही नाम है, अक्षर से ही स्तुति है। अक्षर से ही ज्ञान और उसकी गुणगाथा के गीत हैं। अक्षर से ही लिखना और वाणी का बोलना है, अक्षर द्वारा ही भाग्य का संयोग है, लेकिन जो लिखता है वह भाग्य के परे है। वह जैसा फर्माता है वैसा हम पाते हैं। जो कुछ भी उसकी रचना है, सब उसका नाम। नाम बिना कोई स्थान नहीं। नानक किस

प्रकार बखान करे? तुझ पर एक बार नहीं, हजार बार निछावर हुआ जाए। जो तुझे भावे वही भला है, तू सदा सलामत और निरंकार है।'

उसके नाम, जितने लोग हैं उतनी ही खोज लिए गये हैं। हिन्दुओं के पास एक शास्त्र है, विष्णु-सहस्त्रनाम। उस शास्त्र में सिर्फ उसके नाम ही नाम हैं, सहस्त्र नाम। उसमें कुछ और नहीं लिखा है। सिर्फ नाम ही नाम का शास्त्र है। मुसलमानों के अपने नाम हैं। असल में मुसलमानों की परंपरा यह है, कि जो भी नाम मुसलमान किसीका रखते हैं, ये सभी नाम परमात्मा के नाम हैं। रहमान हो, रहीम हो, अब्दुल्लाह हो, सभी नाम परमात्मा के हैं। हिन्दुओं की भी परंपरा यह थी कि सभी नाम परमात्मा के ही रखे जाएँ। तो राम, कृष्ण, हरि।

अगर हम नामों का हिसाब लगाएँ तो जितने लोग हैं उतने ही उसके नाम हैं। और फिर भी उपाय है। हम चाहे जितने और नाम खोज लें। क्योंकि नाम हम देते हैं। उसका कोई नाम नहीं है। नाम हम देते हैं। नाम हमारे द्वारा दिया जाता है। तो हम कोई भी नाम गढ़ लें वही नाम काम करेगा।

तो नानक कहते हैं किस नाम को जपूँ? किससे तुझे पुकारूँ? किस नाम को तू पहचानेगा कि तेरा है? किस नाम से पुकारूँ तो मेरी पुकार तुझ तक पहुँच जाएगी? साधक को बड़ी चिंता होती है कि कौन सा नाम ठीक पड़ेगा? क्योंकि यह तो स्वाभाविक है, तुम पत्र लिखते हो तो पता तो लिखना पड़ता है। और पता ध्यान से लिखते हो सब से ज्यादा।

मैंने सुना है, एक आदमी के घर मुल्ला नसरुद्दीन नौकरी करता था। और उस आदमी को गोपनीय पत्र लिखने की झक थी। बिना दस्तखत किये किसीको भी पत्र लिखा करता था। अखबार के संपादकों को, नेताओं को, ज्ञानियों को। गोपनीय पत्र लिखने का उसको नशा था—रोज!

एक दिन ऐसा हुआ, कि एक पत्र उसनें लिखा, नसरुद्दीन को दिया। नसरुद्दीन पत्र डालकर लौटा तो उसने पूछा कि क्या मुल्ला पत्र डाल दिया? नसरुद्दीन ने कहा, कि डाल आया। तो उसने कहा कि तुमने बताया क्यों नहीं? मैं पता लिखना भूल गया। तो नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने समझा कि शायद इस बार आप पता भी गोपनीय रखना चाहते होंगे।

लेकिन अगर पता भी गोपनीय रखोगे तो पत्र पहुँचेगा कैसे? किस पते से भेजें परमात्मा को लिखी पाती, कि वह पहुँच जाए? इसलिए नाम की बड़ी तलाश चलती है। कौन सा नाम पुकारें? किस नाम से वह सुनेगा? नानक कहते हैं, कि या तो सभी नाम उसीके हैं या कोई भी नाम उसीका नहीं है। और अक्षर उसका नाम है।

अक्षर शब्द को समझना बड़ा कीमती है। संस्कृत और भारतीय भाषाओं से हम क, ख, ग, को वर्णमाला के अक्षर कहते हैं। 'अल्फाबेट' को हम अक्षर कहते हैं। लेकिन अक्षर शब्द का तो अर्थ होता है जो मिटाया न जा सके। तुम्हारा क, ख, ग, तुम लिखो, वह मिटाया जा सकता है। वह तो अक्षर नहीं है, क्षर है। तख्ते पर तुमने लिखा क, ख, ग; पोंछ दो, मिट गया। लिखा था उसके पहले नहीं था, पोंछ दिया फिर नहीं हो गया। वह तो क्षर है, अक्षर नहीं है। अल्फाबेट को अक्षर कहते हैं। उसके पीछे कारण है। क्योंकि हम कहते हैं असली जो है, न तो वह लिखा जा सकता है, न पोंछा जा सकता है। तुम जो लिखते हो वह तो सिर्फ प्रतिध्वनि है।

ऐसा समझो कि आकाश में चाँद है और झील में उसका प्रतिबिम्ब बन रहा है। तुम झील को हिला दो तो झील का चाँद फौरन टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। वह तो क्षर है। लेकिन तुम ऐसा आकाश में हाथ हिलाओ, उससे कोई आकाश का चाँद टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाएगा। वह अक्षर है। हमारी जो भाषा है वह तो परमात्मा की भाषा का केवल प्रतिफलन है। जो हम बोर्ड पर लिखते हैं, किताब में लिखते हैं, वह तो प्रतिफलन है, रिफ्लेक्शन है। वह तो मिट जाएगा। लेकिन जिससे वह आ रहा है, वह अक्षर है। तुम जो बोल रहे हो वह तो क्षर है, लेकिन जिससे वह आ रहा है, वह अक्षर है। तुम जो बोल रहे हो वह तो क्षर है, लेकिन तुम्हारे भीतर जो बोल रहा है, वह अक्षर है।

तो नानक कहते हैं, अक्षर ही उसका नाम है। उसको न तो लिखा जाता है और न मिटाया जा सकता है। उस अक्षर के अतिरिक्त सब आदमी की ईजादें हैं। वह अक्षर क्या है?

उस अक्षर की हमारे पास भी निकटतम प्रतिध्वनि है, वही ओंकार है। इसलिए नानक का यह पूरा का पूरा दर्शन एक बिन्दु पर टिका है, 'एक ओंकार सतनाम।' बस! इन तीनों शब्दों को तुम समझ लो, तो जपुजी समझ में आ गया। पूरे नानक ही समझ में आ गये, वह सारसूत्र है। अक्षर यानी ओंकार। क्योंकि एक ध्वनि है जो बिना लिखे गूंज रही है। जो कभी नहीं मिटेगी। वह अस्तित्व का ही संगीत है। उसके मिटने का कोई उयाय नहीं। जब सब खो जाएगा, तब भी वह गूंजता रहेगा।

बाईबिल में कहा है; और सभी शास्त्रों में उसकी झलक आने ही वाली है, कि सबसे पहले शब्द था—'लोगोस'। जिसको पश्चिम ने 'लोगोस' कहा है, शब्द कहा है, वही ओंकार है। सबसे पहले शब्द था फिर सब उससे हुआ। और जब सब खो जाएगा तब भी शब्द होगा। सब उसीमें लीन हो जाएगा।

भारत में शब्दयोग की प्रक्रियाएँ हैं, जिनमें सिर्फ शब्द को ही साधना होता है। और शब्द का तो अर्थ है, अपने को तो निःशब्द करना होता है ताकि जो मैं बोल रहा हूँ वह तो चुप हो जाए, और जब मेरा बोलना चुप हो जाता है तब जो सुनायी पड़ता है वह परमात्मा की वाणी है। वह उसका उद्घोष है। वह उसका उच्चार है।

नानक कहते हैं असंख्य तेरे नाम हैं, असंख्य तेरे स्थान, अगम्य तेरे लोक। और फिर असंख्य कहना भी सिर का भार बढ़ाना है। नानक कहते हैं, असंख्य कहने से भी क्या सार है?

क्यों असंख्य कहना भी सिर का भार बढ़ाना है? इसे थोड़ा समझें। असल में हम परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ भी कहें उससे सिर का भार बढ़ेगा, घटेगा नहीं। परमात्मा के संबंध में कुछ 'करें', तो सिर का भार घटेगा। कहें, तो बढ़ेगा। क्योंकि जो भी हम कहेंगे वह मौलिक रूप से गलत होगा।

समझो; एक आदमी कहता है समुद्र के किनारे खड़े होकर, कि यह सागर अथाह है। अब इसके दो ही अर्थ हो सकते हैं। एक, या तो इस आदमी ने थाह लेने की कोशिश ही नहीं की, यह किनारे पर ही खड़ा है, और कह रहा है कि अथाह है। अगर यह किनारे पर खड़ा है और इसने थाह लेने की कोशिश नहीं की तो इसके वचन का क्या अर्थ है? गहरा होगा, बहुत गहरा हो सकता है, पॅसिफिक महासागर पाँच मील गहरा है पर अथाह तो नहीं।

तो हम इस आदमी को पूछ सकते हैं कि क्या तुमने थाह लेने की कोशिश की और नहीं पायी? या तुम किनारे पर ही खड़े बातें कर रहे हो? अथाह से तुम्हारा क्या मतलब, बहुत गहरा? बहुत गहरे को भी अथाह नहीं कहा जा सकता। अथाह का तो मतलब है कि जिसकी गहराई का कोई अन्त नहीं।

तो दो ही उपाय हैं। या तो यह आदमी कहे कि मैं तो किनारे पर ही खड़ा हूँ लेकिन बहुत गहरा है। तो हम कहेंगे, तुम गलत शब्द का उपयोग करते हो। या यह भी हो सकता है, यह आदमी कहे, कि मैं भीतर गया और थाह न पा सका। तब भी यह सही नहीं है क्योंकि जहाँ तक वह गया वहाँ तक थाह न मिली, एक हाथ और जाता तो थाह मिल जाती। यह इतना ही कह सकता है कि पाँच मील तक मैं गया और थाह न मिली। अथाह नहीं कह सकता। और अगर यह कहता है कि पूरा ही मैं गया और थाह न मिली तो बिलकुल ही गलत है। क्योंकि अगर तुम पूरे चले गये तो थाह मिल ही गयी। कुछ बचा नहीं; तो थाह आ गयी।

तो परमात्मा के संबंध में हम क्या कहें—अथाह? तो अगर तुम पूरे परमात्मा को जान लिए हो तभी कह सकते हो। लेकिन तब तो कहना व्यर्थ हो

जाएगा। क्योंकि थाह मिल गयी। तुम आखिरी किनारे तक पहुँच गये। या तुम कहते हो कि हम बहुत दूर तक गये, दूर तक गये, लेकिन थाह न मिली। तब भी तुम्हें अथाह नहीं कहना चाहिए। क्योंकि कौन जाने? थोड़ी दूर और जाओ और थाह मिल जाए।

असंख्य कैसे कहोगे? क्या गिनती पूरी कर ली? अगर गिनती पूरी हो गयी तो कितनी बड़ी संख्या हो, असंख्य नहीं है। और अगर तुम कहते हो गिनती अभी पूरी नहीं हुई, करते ही जाते हो और गिनती पूरी नहीं हुई, तो अभी रुको, वक्तव्य मत दो। क्योंकि कौन जाने, गिनती पूरी हो जाए!

तो परमात्मा को, असंख्य को असंख्य कहने से सिर का भार ही बढ़ता है। कुछ हल नहीं होता। अथाह कहो, अनन्त कहो, असीम कहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारे सब शब्द व्यर्थ हैं। परमात्मा के संबंध में कुछ भी कहना व्यर्थ है। तुम जो भी कह रहे हो, वह अपने संबंध में कह रहे हो। जो आदमी कहता है परमात्मा अथाह है, वह यह कह रहा है कि मेरी थाह लेने की सीमा के आगे है। जो आदमी कह रहा है असंख्य...

अब असंख्य भी तुम्हारे सीमा पर है। अब तो अलग-अलग जातियों में असंख्य की अलग-अलग धारणाएँ हैं। अफ्रीका में कुछ जातियाँ हैं जिनके पास बस, तीन की गिनती है। एक, दो, बहुत। बस इतनी की गिनती है। और तीन से ज्यादा असंख्य हो जाता है। क्योंकि अब गिनती हो ही नहीं सकती तो संख्या के बाहर हो गया। अगर तीन से ज्यादा चीजें रखी हैं तो अफ्रीका का वह कबीला कहेगा, असंख्य। क्योंकि उनकी संख्या ही तीन की है। एक, दो तक ही संख्या है असल में। तीन यानी बहुत। और तीन के पार जो बहुत से भी ज्यादा है वह असंख्य।

क्या निश्चित ही परमात्मा असंख्य है? या हमारी गिनती की सीमा आ जाती है? क्या वह अमाप है, या हमारे माप के मापदंड चुक जाते हैं? वह असीम है, या हमारे पैर थक जाते हैं? हम जो भी कहते हैं अपने बाबत कहते हैं। उसके बाबत में हम कुछ भी नहीं कहते। और अच्छा हो कि अपने ही संबंध में कहें। क्योंकि वह सचाई होगी।

परमात्मा के सामने हम सब तरह से असमर्थ हो जाते हैं। असहाय हो जाते हैं। इस दुनिया में जो भी हमारे ढंग काम करते हैं, वहाँ कोई भी काम नहीं करते। हम एकदम हार जाते हैं, पराजित हो जाते हैं। उस पराजय में हम कहते हैं असंख्य, असीम, अथाह। लेकिन उससे हम अपने ही संबंध में कह रहे हैं। इससे हमारा सिर का बोझ ही बढ़ता है। क्योंकि हमें लगता है कि हमने कुछ परमात्मा के संबंध में कहा।

परमात्मा के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जो भी कहा जा सकता है वह परमात्मा के संबंध में नहीं होगा। उसके संबंध में तो केवल चुप रहा जा सकता है। परम मौन ही उसका संकेत है।

इसलिए नानक कहते हैं, असंख्य कहना भी सिर का भार बढ़ाना है।

असंख नांव असंख थाव, अगंम अगंम असंख लोअ।
असंख कहहि सिरि भारु होई।

और असंख्य कहने से भी सिर पर भार पड़ता है। तुम कुछ भी मत कहो। कुछ करो; कुछ कहो मत। कुछ हो जाओ, कुछ बोलो मत। तुम्हारे व्यक्तित्व में रूपांतरण हो, तो तुम परमात्मा के निकट आते हो। तुम्हारे पास शब्दों का जाल बढ़ता जाए, उससे तुम परमात्मा के निकट नहीं आते।

नानक को स्कूल में भरती किया गया तो उन्होंने पहला सवाल यह पूछा—कि क्या तुम जो पढ़ा रहे हो—पंडित को, शिक्षक को, उसे पढ़ने से मैं परमात्मा को जान लूंगा? पंडित थोड़ा चौंका। क्योंकि छोटे बच्चे से हम ऐसी अपेक्षा नहीं करते। उसने कहा परमात्मा को? बहुत कुछ जान लोगे लेकिन परमात्मा को नहीं जान लोगे। तो नानक ने कहा फिर मुझे वही तरकीब बताएँ जिससे परमात्मा को जान लें। बहुत कुछ जान कर क्या करेंगे? उस एक को जानने से सब जान लिया जाता है। नानक ने पूछा कि क्या तुमने जान लिया है उस एक को?

पंडित भी ईमानदार आदमी रहा होगा। वह नानक को घर वापिस लौटा गया। उसने नानक के पिता को कहा, क्षमा करें। इस बच्चे को हम कुछ सिखा न सकेंगे। यह पहले से ही सीखा हुआ है। और यह कुछ ऐसे प्रश्न उठा रहा है जिनके उत्तर मेरे पास नहीं हैं। और यह अवतारी है। यह होनहार है। इसे हम कुछ सिखा नहीं सकते। इससे हम कुछ सीख लें वही बेहतर है।

यह कैसे घटा? इस देश में इसके लिए हमने पुनर्जन्म की एक स्पष्ट रूपरेखा निर्मित की है। यह नानक का शरीर बच्चे का शरीर है, लेकिन यह चेतना बड़ी प्राचीन है। जन्मों-जन्मों में नानक की इस चेतना ने खोज कर पाया है, कि जानने से वह नहीं जाना जाता। शब्दों से उससे कोई संबंध नहीं बनता। मौन होकर ही तुम उसे पाते हो। यह छोटा बच्चा, जो नानक अनेक-अनेक जन्मों में करते रहे हैं, बोलता है।

कोई भी बच्चा बिलकुल बच्चा नहीं है। क्योंकि बच्चे की स्लेट भी बिलकुल कोरी नहीं है। अतीत जन्मों में बहुत कुछ लिख कर लाया है। इसलिए बच्चे को भी बहुत सम्मान से देखना। कौन जाने, वह तुमसे ज्यादा जानता हो!

क्योंकि तुम्हारी उम्र इस शरीर की भला ज्यादा हो, लेकिन उसके अनुभव की उम्र तुमसे गहरी हो सकती है। इसलिए बच्चे के प्रति भी एक सम्मान रखना। क्योंकि जरूरी नहीं है कि तुम उससे ज्यादा जानते हो। और अनेक बार छोटे-छोटे बच्चे तुम्हें झंझट में डाल देते हैं। क्योंकि ऐसे प्रश्न खड़े कर देते हैं जिनके तुम्हारे पास उत्तर नहीं हैं। लेकिन तुम उन्हें दबा देते हो, क्योंकि तुम ज्यादा शक्तिशाली हो।

नानक को ठीक शिक्षक मिला, जो वापिस लौटा गया। क्योंकि उस शिक्षक को एक बात साफ हो गयी। यह जो बच्चा कह रहा है, एकदम ठीक कह रहा है। मैं भी अज्ञानी हूँ और जब मैं सब शास्त्र पढ़ कर ज्ञानी नहीं हो सका तो इस बच्चे को भी वही शास्त्र पढ़ाने से क्या होगा ? सिर का बोझ बढ़ता है।

'एक' है, जिसे जानने से सिर का बोझ मिट जाता है। और सब जानने से सिर का बोझ बढ़ता है। असंख्य कहना भी सिर का भार बढ़ाना है। अक्षर से ही नाम है।

'अखरी नाम अखरी सालाह।'

अक्षर उसका नाम है। ओंकार उसका नाम है। और वही उसकी स्तुति है। तुम कुछ और मत कहो। तुम सिर्फ ओंकार की ध्वनि से भर जाओ, स्तुति शुरू हो गयी। कुछ कहने में अर्थ नहीं है कि मैं पापी हूँ, कि मैं पतित हूँ, कि तुम पतितपावन हो। घुटने टेकने में, रोने-गिड़गिड़ाने में कुछ भी सार नहीं। इससे कुछ स्तुति नहीं होती।

मनुष्यों ने परमात्मा के संबंध में वैसी ही स्तुतियाँ बना ली हैं जैसी हमारे बीच अहंकारी मनुष्य पसंद करते हैं। तुम किसी सम्राट के पास जाओ, घुटने टेक गिर जाओ, हाथ जोड़ कर खड़े हो जाओ और कहो कि आप पतितपावन हैं। वह बड़ा प्रसन्न होता है। तुमने उसी तरह की स्तुतियाँ परमात्मा के संबंध में बना ली हैं।

नानक कहते हैं, वे स्तुतियाँ नहीं हैं। क्योंकि परमात्मा कोई अहंकारी तो नहीं है। तुम किसे धोखा दे रहे हो ? तुम किसकी खुशामद कर रहे हो ? यह मक्खन तुम किसे लगा रहे हो ? यह तुम जो परमात्मा के गुणगान कर रहे हो, क्या तुम उसे फुसलाकर कुछ काम करवा लेना चाहते हो ? यह तुम क्यों कह रहे हो ? इसे कहने का क्या प्रयोजन ?

नहीं, स्तुति का अर्थ उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। हम क्या उसकी प्रशंसा करेंगे ? इसलिए नानक बार-बार कहते हैं, क्या कुदरत की बात कहें ! क्या प्रकृति की बात कहें ! क्या उसके विस्मय को शब्द दें ! कुछ कहने को नहीं है।

फिर स्तुति का अर्थ क्या होगा ? स्तुति का एक ही अर्थ होगा ! कि तुम अक्षर ओंकार से भर जाओ। इसलिए ओंकार की ध्वनि के अतिरिक्त न कोई पूजा है, न कोई पाठ है।

हमने मंदिर इस ढंग से बनाए थे कि इनके भीतर अगर तुम ओंकार की ध्वनि करो तो उसके गोल गुंबज से ध्वनि बरसे वापिस तुम पर। इसलिए हम गुंबज गोल बनाते हैं पत्थर का, संगमरमर का मंदिर बनाते हैं और गूँजने की प्रक्रिया को ध्यान रखते हैं। अगर तुम ठीक से ओंकार का गुंजन करो मंदिर में, तो तुम पाओगे कि ओंकार का गुंजन अनेक गुना हो कर तुम्हारे ऊपर बरसता है।

अभी पश्चिम में एक नयी वैज्ञानिक प्रक्रिया है—बायोफीड बेक। बड़ी महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। और संभव है कि भविष्य में बहुत काम की सिद्ध होगी। तो उन्होंने छोटे-छोटे यंत्र बनाये हैं, जिन यंत्रों के द्वारा, तुम्हारे मन को शांत करने की व्यवस्था की जाती है। समझने की कोशिश करें।

एक छोटा सा पर्दा सामने होता है। उस पर्दे और तुम्हारे मस्तिष्क को तार से जोड़ दिया जाता है। जब तुम्हारे मस्तिष्क में विचार तेजी से चलते हैं, तो पर्दे पर खास तरह के रंग प्रकट होते हैं। समझो, कि लाल धब्बे प्रकट होते हैं। जब मन शांत होता है तो नीले धब्बे प्रकट होते हैं। जब मन बिलकुल शांत हो जाता है तो पर्दा खाली हो जाता है।

तो तुम बैठे हो और पर्दे पर देख रहे हो। अभी लाल धब्बे हैं, मन क्रोध से भरा है, बहुत विचारों से भरा है। फिर तुम थोड़े शिथिल हुए, तुमने मन के तनाव को थोड़ा कम किया, नीले धब्बे प्रकट हो गये। तुम प्रफुल्लित हुए—यह बायोफीड बेक है। क्योंकि अब परदे ने तुम्हारा साथ देना शुरू किया। परदे और तुम्हारे बीच अब लेन-देन शुरू हो गया। तुम प्रफुल्लित हुए और तुम्हें लगा कि किस ढंग से भीतर तुम्हारे घटना घट रही है, जिससे परदे पर नीले धब्बे प्रकट हुए। तुम अनुभव कर सकते हो कि सामने परदे पर नीले धब्बे हैं और तुम्हारे भीतर मन शांत है। अब तुम और शांत हो सकते हो। धब्बे खो गये। फिर विचार आए, फिर धब्बे प्रगट हुए।

धीरे-धीरे इन दोनों को गौर से अध्ययन कर के, तुम अपने भीतर की कला को पकड़ लोगे, कि किस भाँति धब्बे खो जाते हैं। क्या तुम्हारे भीतर होता है ! कैसे तुम्हारा मन शिथिल होता है कि धब्बे खो जाते हैं ! तब तुम चेष्टापूर्वक धब्बे खोने में समर्थ हो जाओगे। तुम बैठ जाओगे आँख बंद कर के। उसी स्थिति को वापिस लाने की कोशिश करोगे, जिसमें धब्बे खो गये थे, परदे पर धब्बे खो जाएँगे। तो परदे और तुम्हारे बीच एक लेन-देन शुरू हुआ। यह जो

बायोफीड बेक है इसके छोटे-छोटे यंत्र तैयार हो गये हैं। अनेक तरह के यंत्र हैं ध्यान के लिए उपयोग में लाये गये हैं पश्चिम में। और कीमती है।

लेकिन पूरब ने इसी तरह के बड़े यंत्र विकसित किये थे। तुम ओंकार की ध्वनि करो मंदिर में, वह 'बायोफीड बेक' है। वह जो गुंबज है उससे ओंकार की ध्वनि तुम्हारे ऊपर गिरेगी, बरसेगी। तुमने ही पैदा की है, तुम पर बरसेगी। और जैसे-जैसे तुम्हारी ध्वनि असली ओंकार के करीब पहुँचने लगेगी वैसे-वैसे मंदिर से बरसने वाली ध्वनि की तीव्रता बढ़ती जाएगी। उसकी सघनता बढ़ती जाएगी। जैसे-जैसे तुम भीतर साज-संगीत में भरने लगोगे, तुम्हारा सुर भीतर सधने लगेगा; जैसे-जैसे तुम्हारा ओंकार वाणी से कम, हृदय से आने लगेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि मंदिर से लौट कर आनेवाली प्रतिध्वनि की गुणवत्ता बदल गयी। उसकी क्वालिटी बदल गयी। वह अब ज्यादा शांतिदायी है।

जितना हृदय गहरे में उतरेगा तुम्हारा ओंकार, उतनी ही मंदिर की ध्वनि आनंददायी होने लगेगी। पहले तो वह शोरगुल मालूम पड़ेगी, जब तुम उच्चार सिर्फ ओंठ से करोगे। जब तुम्हारा उच्चार हार्दिक होगा तब उसमें एक संगीत प्रकट हो जाएगा, जिसका तुम अनुभव करोगे। और जब तुम्हारा उच्चार परिपूर्ण हो जाएगा, तुम कर ही नहीं रहे हो, अब तुमसे उच्चार हो रहा है; तब तुम पाओगे कि मंदिर के कण-कण से आनंद की वर्षा हो रही है।

और मंदिर तो छोटा प्रतीक है, वहाँ तो अभ्यास करना है। वह तो तैरना सीखने के लिए नदी के किनारे उथले में इंतजाम किया है। फिर जब तुम सीख गये ओंकार को, तो विराट सागर में निकल जाना है। फिर यह सारा जगत मंदिर है। फिर तुम जहाँ भी ओंकार की ध्वनि करोगे, वहीं तुम पाओगे कि चारों तरफ से उसकी वर्षा हो रही है। यह गगन का जो विराट मंडप है, यह इस मंदिर का गुंबज है।

नानक कहते हैं, 'अक्षर से ही स्तुति है। अक्षर से ही ज्ञान और उसकी गुणगाथा के गीत हैं। अक्षर से लिखना, अक्षर से वाणी है। अक्षर द्वारा ही भाग्य का संयोग है।'

यह जरा सूक्ष्म है। 'अक्षर द्वारा ही भाग्य का संयोग है।'

'अखरा सिरि संजोगु बखाणि।'

और जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर का अक्षर खुलता है वैसे-वैसे तुम्हारा भाग्य बदलता है। तुम्हारे भीतर जो कुंजी है जीवन की विधि को बदलने की, वह ओंकार है। जितना तुम ओंकार से दूर निकल जाते हो उतना तुम अपने ही हाथों अपने भाग्य को दुर्गति में डालते हो। जैसे-जैसे तुम्हारा संयोग जुड़ता है भीतर की ध्वनि से, शब्दयोग से, अक्षर से, वैसे-वैसे सुगति शुरू हो जाती है।

ओंकार से दूर निकल जाना नर्क है। ओंकार के करीब आ जाना स्वर्ग है। ओंकार के साथ एक हो जाना मोक्ष है। तो तुम्हारे भाग्य की ये तीन दिशाएँ हैं। और कोई उपाय भाग्य को बदलने का नहीं है। तुम कितना ही धन कमाओ! तुम नर्क में हो तो तुम नर्क में ही रहोगे। तुम्हारा नर्क धनी का नर्क होगा। तुम कितना ही बड़ा महल बनाओ! अगर तुम दुःखी हो तो तुम महल में दुःखी रहोगे। जैसे तुम झोंपड़े में दुःखी थे, वैसे तुम महल में दुःखी रहोगे। झोंपड़ा महल बन गया, तुम्हारा दुःख न बदलेगा। तुम्हारा भाग्य वही रहेगा। क्योंकि तुम्हारे जीवन की तरंग नहीं बदली, तुम्हारे जीवन की जो ध्वनि-तरंग है जो भाग्य को लिखती है, वह नहीं बदली।

और दो ही तरह के लोग हैं संसार में। एक, जो स्थितियों को बदलते रहते हैं। कम धन से ज्यादा, छोटे पद से बड़ा पद, छोटे मकान से बड़ा मकान, कम सुंदर स्त्री से ज्यादा सुंदर स्त्री; परिस्थिति को बदलते रहते हैं, लेकिन भाग्य की तरंग उनकी वही रहती है। 'वेव्ह लेंथ' वही रहती है उनके भाग्य की। उसमें कोई फर्क नहीं होता।

दूसरा वर्ग है, जिसको हम साधक कहते हैं। वह जीवन की परिस्थिति की चिंता नहीं करता। वह जीवन का जिसे अनुभव हो रहा है उसकी तरंग को बदलने की कोशिश करता है। जैसे ही वह तरंग बदल जाती है, तो चाहे झोंपड़ा हो या महल, तुम महल में होते हो। उस तरंग के बदले हुए मनुष्य को अगर नर्क में भी डाल दो तो भी वह स्वर्ग में होगा। उसको नर्क में डालने का उपाय नहीं। क्योंकि उसके भीतर जो नाद बज रहा है, वह जिस अहोभाव और आनंद को उपलब्ध हुआ है तुम उसे छीन नहीं सकते। तुम उसे आग में डाल दो।

एक झेन फकीर औरत हुई। मरने के पहले उसने अपने शिष्यों को कहा कि मैं जीते जी चिता पर चढ़ना चाहती हूँ। यह भी कोई ढंग, कि दूसरे के कंधों पर कोई चढ़ कर और चिता पर जाए! और फिर मैं कभी किसीके कंधों पर नहीं चढ़ी। और मैं नहीं चाहती कि मेरे संबंध में यह कहा जाए बाद में, कि मैंने किसीका सहारा लिया। उस एक का सहारा काफी है, अब और किसका सहारा लेना? वह न मानी, तो चिता सजायी गयी। उस चिता पर वह बैठ गयी। चिता में आग लगा दी गयी। लोग दूर भागे क्योंकि आग तेज थी। पास खड़ा होना मुश्किल था। और एक आदमी ने भीड़ में से पूछा, कि वहाँ कैसा लग रहा है? क्योंकि लपटें भयंकर थीं, वह स्त्री जल रही थी। उस स्त्री ने आँख खोली और कहा, 'इस तरह का मूर्खतापूर्ण सवाल तुम ही कर सकते थे।'

उस स्त्री के चेहरे पर वही भाव था जो सदा था। तुम उसे फूलों पर बिठाते तो फर्क न पड़ता। और तुमने उसे आग की चिता पर बिठा दिया तो फर्क नहीं पड़ेगा।

भीतर की तरंग सध गयी तो आग उस तरंग को जला नहीं सकती और फूल उस तरंग को बढ़ा नहीं सकते। इस भीतर की तरंग को ही नानक कहते हैं नियति है। भाग्य तुम्हारे सिर में नहीं लिखा हुआ है। भाग्य तुम्हारे जीवन की तरंग में लिखा हुआ है। और उस तरंग की खोज ओंकार से सधती है।

'अक्षर से लिखना अक्षर से वाणी बोलना है। अक्षर द्वारा ही भाग्य का संयोग लिखा जाता है, लेकिन जो लिखता है वह भाग्य के परे है।'

परमात्मा का कोई भाग्य नहीं, कोई नियति नहीं। परमात्मा का कोई प्रयोजन नहीं। परमात्मा का कोई उद्देश्य नहीं। वह भाग्य के परे है। वह कहीं जा नहीं रहा है। वह किसी यात्रा पर नहीं, वह किसी मंजिल की तलाश में नहीं है। इसलिए तो हिंदू इसे लीला कहते हैं। लीला का अर्थ है, परमात्मा का कोई प्रयोजन नहीं है। लीला का अर्थ है, परमात्मा खेल रहा है। जैसे छोटे बच्चे खेलते हैं। कोई प्रयोजन नहीं। बस, खेलना ही प्रयोजन है। आनंदित हैं, प्रफुल्लित हैं।

जैसे फूल खिलते हैं, किस कारण? जैसे चाँद-तारे चलते हैं, किस कारण? जैसे प्रेम होता है, किस कारण? नदी-झरने बहते हैं, किस कारण?

परमात्मा है; कहीं जा नहीं रहा है। और जिस दिन तुम्हारी तरंग सध जाएगी पूरी, तुम भी पाओगे, तुम्हारे जीवन से भी प्रयोजन चला गया। इसलिए तो हम राम और कृष्ण के जीवन को चरित्र नहीं कहते, लीला कहते हैं। वह चरित्र नहीं है, लीला है। खेल है, एक क्रीड़ा है, एक उत्सव है।

जो लिखता है वह भाग्य के परे है। वह जैसा फरमाता है तैसा हम पाते हैं। जो कुछ भी उसकी रचना है, सब उसका नाम है। इसलिए उसके नाम को क्या खोजना? जो कुछ भी उसकी रचना है सब उसीका नाम है। वृक्ष में, पत्थर में, पौधे में उसीके हस्ताक्षर हैं। जीसस ने कहा है, 'उठाओ पत्थर और तुम मुझे दबा हुआ पाओगे। तोड़ो वृक्ष की शाखा, तुम मुझे छिपा हुआ पाओगे।' सब जगह उसका नाम है। हर ध्वनियों में वही गूंज रहा है। सब ध्वनियाँ ओंकार के रूप ही हैं। उसकी ही सघनता, विरलता के कारण सारी ध्वनियाँ पैदा होती हैं।

'एक छिपा है अनेक में। सब उसका नाम है। नाम बिना कोई स्थान नहीं--कुदरत का किस प्रकार बखान करूँ?'

नानक विस्मय से भर-भर जाते हैं। बार-बार अहोभाव और आश्चर्य से भर-भर जाते हैं। कैसे कुदरत का बखान करूँ? इस स्वभाव का कैसे वर्णन करूँ? तुम पर एक बार नहीं बार-बार निछावर हुआ जाए तो भी कम है। जो तुझे भावे वही भला, तू सदा सलामत और निरंकार है।

असंख नाव असंख थाव । अगंम अगंम असंख लोअ ॥
असंख कहहि सिरि भारु होई ।
अखरी नामु अखरी सालाह । अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥
अखरी लिखणु बोलणु बाणि । अखरा सिरि संजोगु बखाणि ॥
जिनि एहि लिखे तिसु सिर नाहि । जिव फुरमाए तिव तिव पाहि ॥
जेता कीता तेता नाउ । विणु नावै नाहीको थाउ ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु । वारिआ न जावा एक बार ॥
जो तुधु भावै साई भलीकार । तू सदा सलामति निरंकार ॥

छोड़ दो उसपर। एक ही पकड़ छोड़ दो--अपने को पकड़ना। और सब हल हो जाता है। उलझन एक है कि तुम अपनी मान कर चल रहे हो। उलझन एक है कि तुमने खुद को ही अपना गुरु बना लिया है। और सुलझाव भी एक है, कि तुम उसे गुरु बना दो, और तुम बीच से हट जाओ। और जो हो, तुम निर्णय मत लो कि भला या बुरा। उसकी मर्जी के बिना तो कुछ होगा नहीं। इसलिए जो भी होगा, ठीक होगा। जो उसे भाये वही शुभ है।

• • •

आपे बीजि आपे ही खाहु

प्रवचन ९, दिनांक २९-११-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : २०

भरीए हथु पैरु तनु देह । पाणी धोतै उतरसु खेह ॥
मूत पलोती कपड़ होइ । दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि । ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥
पुंनी पापी आखणु नाहि । करि करि करणा लिखि लै जाहु ॥
आपे बीजि आपे ही खाहु । 'नानक' हुकमी आवहु जाहु ॥

पउड़ी : २१

तीरथ तपु दइआ दतु दानु । जे को पावै तिलका मानु ॥
सुणिआ मंनिया मनि कीता भाउ । अंतरगति तीरथि मलि नाउ ॥
सभि गुण तेरे मैं नाही कोइ । विणु गुण कीते भगति न होइ ॥
सुअसति आथि बाणी बरमाउ । सति सुहाणु सदा मनि चाउ ॥
कवणु सुवेला वखतु कवणु । कवणु तिथि कवणु वारु ॥
कवणि सि रुती माहु । कवणि जितु होआ आकारु ॥
वेल न पाईआ पंडती । जि होवै लेखु पुराणु ॥
वखतु न पाइओ कादीआ । जि लिखनि लेखु कुराणु ॥
थिति वारु ना जोगी जाणै । रुति माहु ना कोई ॥
जा करता सिरठी कउ साजै । आपे जाणै सोई ॥
किव करि आखा किव सालाही । किउ वरनी किव जाणा ॥
'नानक' आखणि सभु को आखै । इकदू इकु सिआणा ॥
बडा साहिबु बडी नाई । कीता जा का होवै ॥
'नानक' जेको आपौ जाणै । अगै गइया न सोहै ॥

धर्म आंतरिक स्नान है।

यात्रा करते हैं, मार्ग से गुजरते हैं, तन पर, कपड़ों पर धूल जम जाती है, आसान है धो लेना। लेकिन समय में यात्रा करते हैं, तब मन पर धूल जमती है। उतना आसान नहीं है, जितना शरीर को स्वच्छ कर लेना। क्योंकि शरीर बाहर है, धूल भी बाहर है, पानी भी बाहर उपलब्ध है। मन भीतर है, धूल भी भीतर है। भीतर का कोई पानी उपलब्ध करना पड़े।

एक क्षण भी गुजरता है तो भीतर धूल इकट्ठी हो रही है। कुछ न भी करो, खाली भी बैठे रहो, तो भी धूल इकट्ठी हो रही है। अगर एक आदमी चुपचाप बैठा रहे, कुछ काम भी न करे, तो भी चौबीस घंटे के बाद स्नान की जरूरत पैदा हो जाएगी। मन तो चौबीस घंटे कुछ न कुछ कर ही रहा है। मन के न करने की अवस्था तो बड़ी दुर्लभ है। तो मन के हर कृत्य से धूल इकट्ठी हो रही है। और धूल भीतर इकट्ठी हो रही है। फिर तुम कितना ही स्नान बाहर करो। बाहर का जल भीतर की धूल को न धो सकेगा। भीतर का जल खोजना पड़े।

उस जल के संबंध में ही यह सूत्र है। और सूत्र बड़ा कीमती है। ठीक से समझा और भीतर का सरोवर पहचान में आ गया तो जीवन के रूपांतरण की कुंजी हाथ लग जाती है।

और अब तक जितनी कुंजियाँ तुम्हारे पास हैं, कोई भी लगती नहीं; लग ही जाती तो तुम खुद ही नानक हो जाते। फिर नानक को समझने को कुछ नहीं बचता। कुंजियाँ तो तुम बहुत रखे हुए हो, उनमें से कोई लगती नहीं। लेकिन

अहंकार के कारण तुम यह भी स्वीकार नहीं कर पाते कि मेरी कुंजियाँ काम नहीं कर पातीं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक घर में नौकर था। एक दिन उसने अपने मालिक से कहा, अब बहुत हो गया, आज मुझे आप छुट्टी दे दें। सीमा होती है हर चीज की, और आप को मुझ पर रत्तीभर भरोसा नहीं। अब और नहीं सह सकता इस संदेह की स्थिति को। मालिक ने कहा, क्या कहते हो नसरुद्दीन! भरोसा और तुम पर नहीं? तिजोड़ी की चाबियाँ तक यहाँ टेबल पर पड़ी रहती हैं। नसरुद्दीन ने कहा, चाबियां जरूर पड़ी रहती हैं, लगती उनमें से एक भी नहीं।

तुम्हारे पास भी चाबियाँ कम नहीं हैं, जानकारी बहुत हैं। और जब जानकारी लग जाती है, तब ज्ञान हो जाता है। और जब तक लगती नहीं, तब तक बोझ है।

चाबियाँ तुम ढोते रहो, पूछना जरूरी है उनमें से कोई लगती है? जिंदगी का द्वार खुलता है? प्रकाश आता है? आनंद जन्मता है? किसी अलौकिक के स्वर की ध्वनि सुनायी पड़ती है? कोई मग्नता, कोई धन्यता, कोई ऐसा क्षण भी आता है, जब तुम धन्यवाद दे सको परमात्मा को कि तूने मुझे पैदा किया, तेरी बड़ी कृपा है, अनुकम्पा है?

शिकायत तो अनंत हैं। धन्यवाद एक बार नहीं उठता। उठे भी कैसे? कोई चाबी लगती ही नहीं। इन चाबियों को हटा दो। नानक उस चाबी की बात करते हैं जो लगती है। फिर नानक ही कहते हों ऐसा नहीं, बुद्ध ने भी वही कहा है, महावीर ने भी वही कहा है, जीसस ने भी वही कहा है। बड़े आश्चर्य की बात है कि जो चाबियाँ लगती नहीं, वे तुम ढोते हो और जो लगती हैं—लगती हैं कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि एक ही चाबी है, 'मास्टर की!' हर ताले को खोल देती है जीवन के। उस 'मास्टर की' की चर्चा सनातन से चल रही है। बस, उसको तुम छोड़ कर बाकी चाबियाँ सब ढोते हो।

क्या कारण होगा? जिन चाबियों को तुम ढोते हो, उनसे तुम्हें अपनेको रूपांतरित करने की कोई झंझट नहीं होती। वे लगती ही नहीं। तुम जैसे हो वैसे ही बने रहते हो। खतरा नहीं है। न कुछ खोना है, न कुछ बदलना है। और चाबियाँ हिलाने का और चाबियों की ध्वनि करने का मजा अलग चलता रहता है। चाबियाँ भी हैं, यह भी मजा तुम लेते रहते हो, और जीवन को रूपांतरित करने की जो कठिन प्रक्रिया है, उससे भी बच जाते हो।

नानक, बुद्ध, महावीर को तुम सुनते नहीं। क्योंकि उनकी चाबी में खतरा है। वह लगती है। और लगी, कि तुम वही न रह सकोगे जैसे तुम हो। और तुमने बहुत कुछ इनवेस्ट कर रखा है जैसे तुम हो, उसमें। तुमने बहुत कुछ

दाँव पर लगा रखा है। अगर तुम बदले तो तुम्हारा अब तक का सब श्रम व्यर्थ हुआ। अब तक तुमने जो भवन बनाए, वे सब कागज के पत्तों की तरह गिर जाएँगे। अब तक तुमने जो नावें चलायीं वे सब डूब जाएँगी। और अब तक तुमने जो-जो सँजोया मन में, जो-जो सपने देखे, वे सब झूठे सिद्ध होंगे। चाबी के लगते ही तुम्हारा सारा अतीत झूठा सिद्ध होगा।

तुम्हारा अहंकार यह मानने को राजी नहीं होता। तुम्हारा अहंकार यह कहता है, हो सकता है मैं परम ज्ञानी न होऊँ, लेकिन ज्ञानी तो हूँ ही। हो सकता है मैंने थोड़ी बहुत भूलें की हों, लेकिन सभी कुछ गलत किया है, यह तो नहीं हो सकता। थोड़ी बहुत भूल मुझ से हुई होगी, भूलें किससे नहीं होतीं? तुम हजार ढंग से अपने को समझाते हो। 'टु अर इज ह्यूमन—' भूल करना तो मनुष्य का स्वभाव है, भूल तो होती ही है।

लेकिन एक बात तुम कभी नहीं मानते हो, कि तुम अज्ञानी हो। भूल होती है, वह कृत्य है। लेकिन तुम अज्ञानी नहीं हो, तुम तो ज्ञानी हो। ज्ञानी से भी भूलें हो जाती हैं। जानकार भी भटक जाता है। होशियार भी कभी गड्ढे में गिर जाता है। आँख वाला भी कभी दीवाल से टकरा जाता है, लेकिन तुम अन्धे नहीं हो।

इसे थोड़ा ठीक से समझो। तुम जब भी कुछ भूल करते हो तुम यह कहते हो, बुरा काम हो गया। कर्ता को तुम बचा लेते हो, कर्म को तुम दोषी ठहरा देते हो। तुम्हें क्रोध आ गया, तुम कहते हो बड़ी बुरी बात हुई कि क्रोध आ गया। तुम यह नहीं कहते कि मैं क्रोधी हूँ। तुम कहते हो कि क्रोध एक कृत्य है, हो गया संयोगवशात्। परिस्थिति ऐसी थी, जरूरी था। न करते तो नुकसान होता। दूसरे के हित के लिए करना जरूरी था। तुम यह कभी नहीं कहते कि मैं क्रोधी हूँ। तुम कहते हो कभी-कभी क्रोध हो जाता है, भूल होती है। लेकिन कर्ता को तुम बचाए जाते हो। कर्मों में कहीं-कहीं गलतियाँ होती हैं लेकिन कर्ता तो बिलकुल ठीक है।

वही तुम्हारा अहंकार है। और इसलिए तुम असली चाबी से बचते हो। क्योंकि असली चाबी लगते ही, ताला खुलते ही जो पहली चीज गिर पड़ती है जीवन से, वह अहंकार है। तुम तत्क्षण 'ना कुछ' हो जाते हो। क्योंकि तुमने अब तक जो कमाया वह कचरा सिद्ध होता है। और अब तक तुमने जो इकट्ठा किया, वह असार सिद्ध होता है। उसके साथ ही तुम गिर जाते हो। चाबी के लगने का अर्थ है, तुम मिटे। और इसलिए तुम असली चाबी से बचते हो।

रवीन्द्रनाथ ने एक बहुत मधुर कविता लिखी है, और बड़ी अर्थपूर्ण है। लिखा है, कि बहुत-बहुत जन्मों से परमात्मा को खोजता था। न मालूम कितने पंथों और मार्गों पर, न मालूम कितने द्वारों पर दस्तक दी, न मालूम कितने गुरुओं

की सेवा की, न मालूम कितने योग, तप किये। और फिर एक दिन अन्ततः परमात्मा के द्वार पर पहुँच गया, सफल हुआ। कभी-कभी परमात्मा की झलक मिली थी पहले भी, पर झलक मिलती थी किसी दूर तारे के पास, और जब तक मैं वहाँ पहुँचता, वह जा चुका होता। लेकिन आज तो ठीक उसके घर तक पहुँच गया। तख्ती भी पढ़ ली कि उसीका घर है। सीढ़ियाँ चढ़ गया, बड़ा आनंदित था कि मंजिल पूरी हो गयी। साँकल हाथ में ले ली, खटखटाने को ही था—

तभी एक भय मन में समा गया, कि अगर द्वार खुल गया तो फिर... फिर क्या करूँगा? और अगर परमात्मा मिल गया तो फिर...फिर क्या करूँगा? अब तक जीवन का एक ही तो लक्ष्य था परमात्मा को पाना। फिर सब लक्ष्य खो जाएगा। और अब तक एक तो धुन थी, व्यस्तता थी, वह सब नष्ट हो जाएगी। और अगर परमात्मा मिल गया तो फिर? फिर न कुछ करने को बचा, न कोई भविष्य बचा, न कोई यात्रा बची, न अहंकार के लिए कोई सुविधा बची, कि कुछ पाऊँ।

भय ने कँपा दिया। चुपचाप साँकल हाथ से छोड़ दी। इतनी धीमे छोड़ी कि कहीं आकस्मिक रूप से बज न जाए। कहीं वह द्वार खोल नहीं दे। और फिर जूते उतार लिए पैर से, क्योंकि अब सीढ़ी उतरना जूते पहने खतरनाक था। जरा सी आवाज, कौन जाने द्वार खुल जाए! तो जूते हाथ में लेकर जो भागा हूँ, तो लौट कर नहीं देखा।

और कविता का आखिरी हिस्सा है, अब भी उसे खोजता हूँ। तुम अलग रास्तों पर मुझे खोजता हुआ पाओगे, और मुझे उसका घर पता है। अब भी पूछता हूँ लोगों से कि उसका पता क्या है? और मुझे उसका पता मालूम है। और अब भी खोजता हूँ। दूर कहीं चाँद-तारों के पास उसकी झलक अब भी मिलती है। लेकिन अब मैं आश्वस्त हूँ। मैं जब तक वहाँ पहुँचता हूँ तब तक वह कहीं दूर जा चुका होता है। अब मैं सब जगह खोजता हूँ, एक जगह छोड़कर——जहाँ उसका घर है। उस जगह मैं भूल कर नहीं जाता। उससे भर बचता हूँ।

यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। और अगर तुम ठीक से समझोगे तो यही तुम्हारी दशा है। तुम यह भूल कर मत कहना कि परमात्मा का तुम्हें पता नहीं है। क्योंकि यह हो नहीं सकता। वह सब जगह मौजूद है। यह कैसे हो सकता है कि तुम्हें उसका पता न हो?

यह भूलकर मत कहना कि चाबी का तुम्हें पता नहीं है, इसलिए ताला बंद है। चाबी तुम्हें हजारों बार दी गयी है। तुम उसे हमेशा भूल जाते हो। तुम उसे कहीं रखा छोड़ आते हो। तुम अचेतन रूप से बचने की कोशिश कर रहे हो। और अगर यह दुविधा साफ न हो जाए, तो तुम एक हाथ से उसे खोजते हो, दूसरे

हाथ से खोते हो। एक पैर उसके तरफ उठाते हो, दूसरा पैर उसके विपरीत उठाते हो।

तुम खोजने का बहाना भी जारी रखना चाहते हो, क्योंकि उससे भी बड़ी तृप्ति मिलती है कि परमात्मा को मैं खोज रहा हूँ। मैं कोई साधारण मनुष्य नहीं हूँ। मैं सत्य को खोज रहा हूँ, मैं क्षुद्र नहीं हूँ। बाजारों में जो धन खोज रहे हैं उस जैसा नहीं हूँ। राजनीति में जो पद खोज रहे हैं उन जैसा नहीं हूँ। मैं सत्य खोज रहा हूँ। धर्म खोज रहा हूँ। परमात्मा खोज रहा हूँ।

ये शब्द भी तुम्हारे अहंकार की सजावट हो गये हैं। इनसे भी तुम अहंकार को सजाते हो, मिटाते नहीं। इनसे भी तुम्हें और रंग आता है। तुम्हारी अस्मिता को और जोड़ मिलता है। तुम छोटे-मोटे आदमी नहीं रह जाते, तुम साधक हो। तुम यात्री हो उस परमात्मा के मार्ग के, जब कि दूसरे लोग क्षुद्रताओं में उलझे हैं। छोटे-मोटे घरों में, छोटे-मोटे धंधोंमें, छोटे-मोटे ठीकरों में लगे हैं। जब दूसरे लोग क्षुद्र के साथ जुड़े हैं, तुमने विराट से नाता जोड़ने की कोशिश की है।

इसलिए तुम यह भी कहे जाते हो कि मैं उसे खोजता हूँ। और भीतर से तुम बचते भी हो। इस द्वंद्व को अगर तुम न समझोगे तो तुम उसे कभी न खोज पाओगे।

यह तो ऐसा है जब कोई आदमी मकान बनाए, दिन में बनाए और रात मिटा दे। फिर दूसरे दिन सुबह शुरू कर दे। या एक हाथ से तो ईंट रखे और दूसरे से खींचता जाए। या दो मजदूर लगा ले, कि एक तो ईंट जमाए और दूसरा उखाड़े। ऐसे आदमी का भवन कब बन पाएगा? और अनंत जन्मों से तुम बना रहे हो। तुम्हारा भवन भी बन नहीं पाया। जरूर कहीं न कहीं कोई बुनियादी ऐसी बात हो रही है, जिसके कारण तुम दो विपरीत काम एक साथ कर रहे हो।

तो तुम झूठी चाबियाँ लटकाए फिरते हो। उससे ताले खुलते भी नहीं। तुम तीर्थों में स्नान करते हो, उससे मन धुलता भी नहीं। तुम मंदिर में पूजा करते हो, उससे पूजा होती ही नहीं। तुम फूल चढ़ाते हो, अपने को नहीं। तुम दान-दक्षिणा देते हो। तुम छोटा-मोटा धार्मिक कृत्य कर लेते हो, और उसकी ओट में तुम अपने को बचा लेते हो।

ध्यान रहे, तुम मिटोगे तो ही शुद्ध हो सकोगे। इसलिए ऐसा जल चाहिए जो तुम्हें मिटा दे। जो तुम्हें बचाए न। उसी जल की चर्चा है। समझने की कोशिश करें।

'यदि हाथ, पैर और शरीर के दूसरे अंगों में धूल भर जाए, तो पानी से धोने से मैल साफ हो जाता है। यदि मूत्र से कपड़े अशुद्ध हो जाएँ, तो साबुन से धो कर उन्हें साफ कर लिया जाता है। वैसे ही यदि बुद्धि पापों से भरी हो, तो वह नाम के प्रेम से, प्रेम के रंग से शुद्ध की जा सकती है।'

'भरीए हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह।।
मूत पलोती कपड़ होइ। दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ।।
भरीए मति पापा के संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि।।'

'प्रेम के रंग से,' यह शब्द अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। परमात्मा के बाद प्रेम से ज्यादा महत्त्वपूर्ण और कोई शब्द नहीं है। इस प्रेम शब्द को थोड़ा समझें।

नानक कहते हैं, कि प्रेम के रंग में जो रंग जाता है उसके भीतर के पाप धुल जाते हैं।

प्रेम शब्द तो हम जानते ही हैं। हम कहेंगे, यह भी कोई कुंजी हुई! यह शब्द तो परिचित है। शब्द के परिचय से कुछ न होगा। तुमने भाषाकोश से शब्द सीखा है। तुमने जीवन के कोश से नहीं सीखा। और भाषाकोश में प्रेम के अर्थ लिखे हैं। उन अर्थों से प्रेम का कोई संबंध नहीं। जीवन के कोश में जहाँ तुम्हारे अनुभव से प्रेम उपजता है तब उसकी जीवंतता और है। उसकी अग्नि और है। जैसे भाषाकोश में लिखा है शब्द 'अग्नि'; उससे तुम जल न सकोगे। और लिखा है, 'जल' उससे तुम्हारी प्यास तृप्त न होगी। वैसे ही भाषाकोश में लिखे 'प्रेम' को अगर तुमने समझा, तो तुम्हारे आंतरिक पाप न धुल सकेंगे।

प्रेम तो एक अग्नि है। और जैसे सोना निखर जाता है अग्नि से गुजर कर, वही बचता है जो बचने योग्य है, जो बचाने योग्य है। वह जल जाता है जो कचरा था। ऐसे ही प्रेम की अग्नि से गुजर कर तुम में जो व्यर्थ है वह जल जाता है। जो सार्थक है वह बच जाता है। तुम्हारे भीतर जो-जो पाप है वह खो जाता है, जो-जो पुण्य है वह बच जाता है। शुद्ध निखरा हुआ पुण्य तुम हो जाते हो।

तो प्रेम को ठीक से समझ लें। पहली तो बात कि प्रेम और पाप विपरीत होने चाहिए; तभी प्रेम से पाप मिट सकेगा। तुमने कभी इस तरह शायद सोचा न हो कि प्रेम और पाप दुनिया में गहरे से गहरी स्थितियाँ हैं। क्योंकि जब भी तुम पाप करते हो, तभी प्रेम नहीं होता है इसलिए कर पाते हो। सभी पाप प्रेम के अभाव से पैदा होते हैं। अगर प्रेम हो तो पाप असंभव है।

इसलिए तो महावीर कहते हैं, अहिंसा। अहिंसा का अर्थ है, प्रेम। बुद्ध कहते हैं, करुणा। करुणा का अर्थ है, प्रेम। और जीसस का तो वचन साफ है—

'लव इज गॉड।' वह तो कहते हैं तुम ईश्वर की बात ही छोड़ दो, प्रेम ही परमात्मा है।

और संत अगस्तीन से किसी ने पूछा, कि मुझे संक्षिप्त में बता दें। सार क्या है धर्म का? पापों से कैसे बचूं? और पाप तो अनेक हैं और जीवन छोटा है! उस आदमी ने बड़ी ठीक बात पूछी। उसने कहा, कि जीवन बहुत छोटा है, पाप अनेक हैं। और एक-एक को छोड़ते बैठा रहा तो मुझे भरोसा नहीं कि छूट पाएगा। जीवन छोटा है, चुक जाएगा। तो मुझे कुछ कुंजी ऐसी दे दें कि एक से सब खुल जाए।

तो संत अगस्तीन ने कहा, कि फिर अगर एक ही कुंजी चाहिए तो—प्रेम। तुम प्रेम करो और शेष की चिंता छोड़ दो। क्योंकि जिसने प्रेम किया उससे पाप न होगा। इसलिए 'मास्टर की' है। सभी ताले खुल जाते हैं।

तुम चोरी कर सकते हो क्योंकि तुम जिसकी चोरी कर रहे हो उसके प्रति तुम्हारे मन में कोई प्रेम नहीं। तुम किसीकी हत्या कर सकते हो क्योंकि जिस की तुम हत्या कर रहे हो उसके प्रति तुम्हारे मन में कोई प्रेम नहीं। तुम धोखा दे सकते हो, बेईमानी कर सकते हो, सिर्फ इसलिए कि प्रेम का अभाव है। समस्त पाप प्रेम की गैर-मौजूदगी में पैदा होते हैं। जैसे प्रकाश न हो तो अंधेरे घर में चोर, लुटेरा, साँप, बिच्छू सभी का आगमन हो जाता है। मकड़ियाँ जाले बुन लेती हैं। साँप अपने घर बना लेते हैं। चमगादड़ निवास कर लेते हैं। रोशनी आ जाए, सब धीरे-धीरे विदा होने लगते हैं।

प्रेम रोशनी है। और तुम्हारे जीवन में प्रेम का कोई भी दीया नहीं जलता, इसलिए पाप है। पाप के पास कोई विधायक ऊर्जा नहीं है। कोई पॉजिटीव एनर्जी नहीं है। पाप सिर्फ नकारात्मक है। वह सिर्फ अभाव है। तुम कर पाते हो क्योंकि जो तुम्हारे भीतर होना था वह नहीं हो पाया।

थोड़ा समझें; तुम क्रोध करते हो, और सारे धर्म-शास्त्र कहते हैं क्रोध मत करो। लेकिन अगर तुम्हारे जीवन-ऊर्जा का बहाव प्रेम की तरफ न हो तो तुम करोगे भी क्या? क्रोध करना ही पड़ेगा। क्योंकि क्रोध, ठीक से समझो तो वही प्रेम है, जो मार्ग नहीं खोज पाया। वही ऊर्जा जो फूल नहीं बन पायी, काँटा बन गयी है। प्रेम है सृजन। और अगर तुम्हारे जीवन में सृजनात्मकता, क्रियेटीविटी न हो पाए, तो तुम पाओगे कि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा विध्वंसात्मक हो गयी। डिस्ट्रक्टिव हो गयी।

तुम्हारे सन्तों में और तुम्हारे शैतानों में जो फर्क है वह इतना ही है, कि एक की जीवन-ऊर्जा विध्वंस बन गयी है और एक की जीवन-ऊर्जा सृजन बन गयी है। तो जो आदमी भी सृजन कर सकता है वह शैतान नहीं हो सकता। और जो

आदमी भी सृजन नहीं करता, लाख अपने को समझाए कि संत है, वह संत नहीं हो सकता। वह लाख अपने को समझाए, लेकिन ऊर्जा का क्या होगा ? जीवन शक्ति है, उस शक्ति का तुम क्या करोगे ? कुछ होना चाहिए। अगर तुम प्रेम कर सको तो उसी शक्ति के लिए नयी नहरें खोद लीं। अगर तुम्हारे जीवन में कहीं प्रेम न हो तो तुम्हारी जीवनशक्ति क्या करेगी ? तोड़ेगी, फोड़ेगी, मिटाएगी। अगर तुम बनाने में न लगा सके तो मिटाने में लगोगे। पुण्य जीवन-ऊर्जा की विधायक स्थिति है, पाप नकारात्मक। पाप को सीधा संघर्ष करने की कोई भी जरूरत नहीं है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, क्रोध बहुत है, क्या करें ? मैं उनसे कहता हूँ, क्रोध का तो तुम विचार ही मत करो। क्योंकि तुम जितना विचार करोगे क्रोध का, क्रोध को उतनी ही ऊर्जा मिलेगी। जिस चीज का हम विचार करते हैं उसी तरफ शक्ति बहने लगती है। शक्ति के बहने का ढंग विचार है। विचार नहर की तरह है। तुम जिस तरफ ध्यान देते हो उसी तरफ तुम्हारा जीवन बहने लगता है। जैसे हमने एक तालाब के पास एक नहर खोद दी, उस नहर से तालाब का पानी हम खेत में ले जाने लगे।

जीवन की जो ऊर्जा है, ध्यान उसके लिए नहर है। तुम जिस तरफ ध्यान देते हो, उसी तरफ जीवन की धारा बहने लगती है। गलत ध्यान हुआ, गलत बहने लगेगी। ठीक ध्यान हुआ, ठीक तरफ बहने लगेगी। प्रेम, ठीक ध्यान का नाम है।

और नानक कहते हैं, जिस दिन तुम्हारा प्रेम परमात्मा के नाम की तरफ बहेगा, रंग गये तुम ! फिर धुल जाओगे। और फिर अतीत के पाप से ही नहीं धुल जाओगे, भविष्य की संभावनाओं से भी धुल जाओगे। उसके पहले कि गंदे होओ, धुले रहोगे। तुम सद्यस्नात हो जाओगे। तुम प्रतिपल नहाए हुए होओगे।

इसलिए जब तुम कभी किसी ज्ञानी के पास जाओगे तो एक सद्यस्नात प्रतीति तुम्हें होगी। जैसे वह प्रतिपल नहाया हुआ है। जैसे अभी-अभी नहा कर निकला हुआ है। एक ऐसी ताजगी, जो सुबह के ओस के पास प्रतीति होती है, तुम्हें संत के पास होगी। उसका कारण सिर्फ इतना है, कि धूल इकट्ठी नहीं होती। प्रेम के अभाव में धूल इकट्ठी होती है। और प्रेम से उसे धोया जा सकता है।

तो प्रेम के संबंध में पहली बात, कि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा विध्वंस न बने; क्योंकि विध्वंस ही पाप है। क्या पाप है ? जब तुम कुछ तोड़ते हो; भविष्य में कुछ बनाने के ख्याल से नहीं, सिर्फ तोड़ने में ही रस लेने के लिए।

क्योंकि तोड़ना दो तरह का हो सकता है। एक आदमी मकान गिराता है ताकि नया बन सके। वह तोड़ना नहीं है। वह तो बनाने की प्रक्रिया का अंग है। जब तुम कुछ तोड़ते हो सिर्फ तोड़ने के लिए, तब पाप हो जाता है।

समझो, तुम्हारा छोटा लड़का है; तुम उसे कभी चाँटा भी मारते हो, लेकिन वह चाँटा पाप नहीं है। अगर वह प्रेम से मारा गया है, तो सृजनात्मक है। वह उस बच्चे को मिटाने के लिए नहीं, वह उस बच्चे को बनाने के लिए है। तुमने भरपूर प्रेम से मारा है। तुमने मारा ही इसलिए है, कि तुम प्रेम करते हो। प्रेम न हो तो तुम फिक्र ही नहीं करते। भाड़ में जाओ ! जो करना हो, करो। एक उपेक्षा होती है। ठीक है ! जहाँ जाना हो, जाओ। जो करना हो, करो। एक उदासी होती है। लेकिन तुम प्रेमपूर्ण हो इसलिए बच्चे को हर कहीं नहीं जाने दे सकते। वह आग में गिरना चाहे तो आग में नहीं गिरने दोगे। तुम उसे रोकोगे। तुम उसे मार भी सकते हो। लेकिन उस मारने में पाप नहीं है, उस मारने में पुण्य है क्योंकि सृजन हो रहा है। तुम कुछ बनाना चाहते हो।

लेकिन तुम एक दुश्मन को मारते हो। चाँटा वही है, हाथ वही है, ऊर्जा वही है, लेकिन जब तुम दुश्मन के भाव से मारते हो, तो तुम कुछ बनाने को नहीं मारते। तुम कुछ मिटाने को मारते हो। पाप हो गया ! कृत्य पाप नहीं होते। तुम्हारे भीतर की दृष्टि अगर विधायक है, तो कोई कृत्य पाप नहीं है। अगर तुम्हारी दृष्टि विध्वसात्मक है तो सभी कृत्य पाप हैं।

सूफी कहानी है। एक गाँव में एक सूफी आया। उसे किसी यात्रा पर जाना था। पहाड़ों में छिपा हुआ छोटा सा मंदिर था, जिसकी वह तलाश कर रहा था। उस सूफी फकीर ने गाँव के लोगों से पूछा एक चायघर के सामने जा कर, कि इस गाँव में सबसे सच्चा आदमी कौन है ? और सबसे झूठा आदमी कौन है ? गाँव के लोगों ने बता दिया। छोटे गाँव में सभीको सभीका पता होता है, कि सबसे झूठा आदमी कौन है, सबसे सच्चा आदमी कौन है।

वह सूफी सबसे सच्चे आदमी के पास गया पहले, और उसने पूछा कि मैं उस छिपे हुए मंदिर की तरफ जाना चाहता हूँ, जिसकी चर्चा शास्त्रों में सुनी है। अगर तुम्हें मार्ग पता हो तो सबसे सुगम मार्ग क्या है, वह मुझे बता दो। तो उस ने कहा सबसे सुगम मार्ग पहाड़ों से ही हो कर जाता है। और इस-इस विधि से तुम चलो, लेकिन पहाड़ों से गुजरना होगा।

वह आदमी फिर सब से झूठे आदमी के पास गया और बड़ा हैरान हुआ। क्योंकि उस झूठे आदमी से भी उसने पूछा तो उसने कहा, कि सबसे सुगम मार्ग पहाड़ों से गुजरता है। और यह-यह मार्ग है और तुम्हें इस-इस भाँति जाना होगा।

दोनों के उत्तर समान थे। तब वह बड़ा हैरान हुआ। तब उसने गाँव में जाकर तलाश की, कि यहाँ कोई सूफी तो नहीं है; कोई फकीर तो नहीं है!

ध्यान रखना, सच्चा आदमी, झूठा आदमी दो छोर हैं। और जब कोई आदमी संतत्व को उपलब्ध होता है तो दोनों के पार होता है। अभी यह बड़ी मुश्किल में पड़ गया, कि किसकी मानूँ? और उसने सोचा था कि झूठा आदमी विपरीत बात कहेगा। लेकिन पापी, पुण्यात्मा दोनों ने एक उत्तर दिया, अब कौन सही है?

तो वह एक सूफी फकीर का पता लगा कर उसके पास गया। उस फकीर ने कहा, दोनों ने एक सा उत्तर दिया है लेकिन दोनों की नजर अलग-अलग है। सच्चे आदमी ने इसलिए तुम्हें कहा कि तुम पहाड़ के ऊपर से जाओ, एक मार्ग नदी के ऊपर से जाता है, वह उसे पता है। लेकिन न तो तुम्हारे पास नाव है जिससे तुम यात्रा कर सको, और न नाव से यात्रा करने के अन्य साधन और सामग्री तुम्हारे पास है। फिर तुम्हारे पास यह गधा भी है जिसके ऊपर तुम सवार हो। यह पहाड़ पर तो सहयोगी होगा, नाव में तो उपद्रव होगा। इसलिए तुम्हारी पूरी स्थिति को सोचकर कहा, कि तुम पहाड़ से जाओ। सुगम मार्ग तो नाव से है। लेकिन तुम्हारी स्थिति देख कर सुगम मार्ग पहाड़ से बताया गया।

और झूठे आदमी ने इसलिए पहाड़ से कहा, ताकि तुम मुसीबत में पड़ो। सुगम मार्ग तो नदी से है, और झूठे आदमी ने इसलिए कहा है कि पहाड़ से जाओ ताकि तुम मुसीबत में पड़ो। वह तुम्हें सताना चाहता है। उत्तर एक से हैं, दृष्टि भिन्न है। कृत्य भी एक से हो सकते हैं। इसलिए कृत्यों से कुछ तय नहीं होता। अंतर्भाव से तय होता है।

इसलिए तो बेटे को बाप मार देता है उसका कोई हिसाब नहीं रखा जाता। माँ बेटे को मार देती है इसका कोई हिसाब नहीं रखा जाता। सच तो यह है, कि मनस्विद् कहते हैं, जिस माँ ने अपने बेटे को कभी नहीं मारा उस माँ और बेटे के बीच कोई गहरा संबंध न बन सकेगा। क्योंकि आत्मीयता ही नहीं बन सकी। तुम अगर अपने बेटे को मारने से डरते हो, तो तुम उसे अपना ही नहीं मानते। फासला है। जो बाप बेटे की हर इच्छा पर झुक जाएगा, बेटा उसे कभी माफ नहीं कर सकेगा। क्योंकि जिंदगी में वह पाएगा कि बाप ने उसे बरबाद कर दिया। क्योंकि बेटा तो अनुभवी नहीं है। इसलिए उसकी माँगों का कोई बहुत अर्थ नहीं है। बाप को सोचना ही पड़ेगा कि कौन सी माँग ठीक और कौन सी गलत। वह ज्यादा अनुभवी है। और अगर प्रेम करता है बेटे को तो वह अपने अनुभव से तय करेगा, बेटे की माँगों से नहीं। और अगर किसी बाप ने बेटे को पूरी स्वतंत्रता दे दी तो बेटा कभी क्षमा नहीं कर पा रहा है।

और पश्चिम में बाप ने जितनी स्वतंत्रता बेटे को दी है, दुनिया में कभी नहीं दी गयी थी। पिछले सौ वर्षों के विचारकों ने यही समझाया कि बेटों को पूरी स्वतंत्रता दो। और उसका परिणाम यह हुआ कि बेटे और बाप के बीच इतनी बड़ी खाई पैदा हो गयी है, कि उसे पाटना मुश्किल है। पुराने जमाने में बेटे बाप से डरते थे, पश्चिम में बाप बेटों से डर रहे हैं। और पुराने जमाने में बेटे बाप को अंत तक श्रद्धा देते थे। और नये पश्चिम में रत्तीभर श्रद्धा का भाव नहीं है, प्रेम का भाव नहीं है। और कारण क्या है? कारण यह है कि बेटा एक न एक दिन पाएगा, कि बाप ने मुझे बरबाद किया। उसे रोकना था। अगर मैं गलत कर रहा था तो उसे रोकना था। अगर मैं भटक रहा था तो उसे रोकना था। क्योंकि वह अनुभवी था, मैं गैर-अनुभवी था। मेरी बात क्यों सुनी? उसे झुकना ही नहीं था। यह बेटा अनुभव करेगा।

इसे ध्यान रखना। क्योंकि प्रेम चिंता करेगा। दूसरे का जीवन शुभ हो, सुंदर हो, सत्य हो, महिमा को उपलब्ध हो। उपेक्षा का अर्थ ही है कोई भी आत्मीयता नहीं। जो भी होना हो, हो। हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। संयोग की बात है कि तुम बेटे हो। संयोग की बात है कि मैं पिता हूँ। अन्यथा कुछ लेना-देना नहीं है। तो पश्चिम में अंतःसंबंध गिर गये।

प्रेम भी मार सकता है। क्योंकि प्रेम इतना सबल है, और इतना आस्थावान है कि विध्वंस से भी सृजन को ला सकता है। लेकिन एक बात ध्यान रखनी जरूरी है। सृजन हमेशा लक्ष्य होगा। विध्वंस अगर जरूरी है, तो हमेशा विधि होगी।

गुरु तो शिष्य को बिलकुल ही मारता है। मार ही डालता है। कोई बाप इतना नहीं मार सकता। क्योंकि बाप की चोटें तो ऊपर-ऊपर होंगी, शरीर पर होंगी। जैसे पानी शरीर का मैल धोता है वैसे बाप शरीर को, जीवन को ठीक करेगा। उसकी चोट ऊपर-ऊपर होगी। गुरु तो भीतर मारेगा। गहरी चोट करेगा। जहाँ तक तुम्हें पाएगा, वहाँ तक छेदेगा। वह तुम्हारे अहंकार को गला कर ही रहेगा। और जब तक तुम ऐसा गुरु न पा लो तब तक समझना कि जिसे तुमने पा लिया है उसे तुम माफ न कर सकोगे। आज नहीं कल तुम पाओगे, उस ने तुम्हारा जीवन, तुम्हारा समय नष्ट किया है।

प्रेम का लक्ष्य है सृजन—एक बात; और जब तक तुम सृजनात्मक होते हो जीवन-संबंधों में, तुम पाप नहीं कर सकते। और जब मैं प्रेम करता हूँ तो पाप कैसे संभव है? प्रेम धीरे-धीरे फैलता जाएगा तो तुम पाओगे, मैं ही हूँ सभी के भीतर छिपा हुआ। किसकी चोरी करूँ? किसको धोखा दूँ? किसकी जेब काटूँ! क्योंकि जितना तुम्हारा प्रेम बढ़ेगा उतना तुम पाओगे कि ये सारी जेबें

अपनी ही हैं । और इधर मैं किसीको नुकसान पहुँचाता हूँ, वह अंततः मुझे ही पहुँच जाता है ।

जीवन एक प्रतिध्वनि है । प्रेम करनेवाले को पता चलता है कि जीवन एक प्रतिध्वनि है । तुम जो करते हो वह तुम पर ही बरस जाता है । जितना तुम्हारा प्रेम बढ़ता है, उतना तुम्हें यह साफ होने लगता है कि यहाँ पराया कोई भी नहीं है । जिस व्यक्ति से तुम्हारा प्रेम हो जाता है उससे परायापन मिट जाता है ।

तुम अपनी पत्नी को दुःख न पहुँचाना चाहोगे । क्योंकि उसे पहुँचाया गया दुख अन्ततः तुम्हें ही पहुंचाया गया दुःख सिद्ध होता है । वह दुःखी होती है तो तुम दुःखी होते हो । तुम चाहोगे, वह सुखी रहे क्योंकि वह जितनी सुखी होती है उतनी तुम्हारे सुख की संभावना बढ़ जाती है । तब तुम पाओगे कि दूसरे को दिया गया दुःख तुम्हें भी दुःखी करता है । दूसरे को दिया गया सुख तुम्हें भी सुखी करता है।

हालाँकि हम बिलकुल उलटी भाषा में सोचते हैं । हम सोचते हैं, अपने को सुख दो और दूसरे को दुःख दो । शायद इससे हमारा सुख बढ़ेगा । तुम आखिर में पाओगे कि तुम दुःख ही दुःख से भर गये । क्योंकि जो तुम दूसरे को देते हो वही लौटता है । तुमने अगर सबके लिए काँटे बोये हैं, तो तुम आखिर में पाओगे कि तुम्हारा पूरा जीवन काँटों से भर गया है । और तुमने अगर फिक्र ही नहीं की कि दूसरे क्या कर रहे हैं । तुम फूल ही बोते गये तो आखिर में तुम पाओगे, कि जो तुमने बोया है वही तुम काटोगे । जो दूसरों ने बोया है उनकी फसलें उनके लिए । लेकिन हम उलटा चलते हैं ।

एक महिला मुझसे पूछने आयी थी । वह पति को तलाक देना चाहती है । उसने जो बात पूछी, वह मुझे भूलती नहीं ! उसने मुझसे पूछा, कि तलाक देने की ऐसी भी कोई तरकीब है कि मेरे पति को इससे खुशी न मिले ? वह जानती है भलीभाँति, कि तलाक देने से खुशी मिलेगी क्योंकि उसने काफी सताया है पति को । अब वह यह भी इंतजाम करना चाहती है कि तलाक हो भी जाए तो भी इंतजाम ऐसा हो, कि पति को खुशी न मिल जाए ।

हम साथ हो कर भी दुःख देना चाहते हैं, दूर हो कर भी दुःख देना चाहते हैं । जुड़े हों तो भी दुःख देना चाहते हैं, अलग हो जाएँ तो भी दुःख देना चाहते हैं । लेकिन ध्यान रखो, जब तुम इतना दुःख देना चाहोगे तो तुम्हारी दुःख के प्रति जो इतनी आतुरता है, तुम्हारा दुःख पर जो इतना ध्यान है, वह धीरे-धीरे तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर दुःख का घाव इसी ध्यान से निर्मित होता जाएगा ।

इसीको तो हमने कर्म की जीवन पद्धति कहा है, जीवन का नियम कहा है । कर्म का कुल इतना ही अर्थ है कि तुम जो करते हो, अंततः तुम्हीं को मिल जाता

है । देर-अबेर हो सकती है । इसलिए तुम वही करना जो तुम चाहते हो कि तुम्हें मिले । तुम अगर इतने नर्क में खड़े हो, तो किसी और के कारण नहीं । जन्मों-जन्मों में जो तुमने किया है उसका फल है ।

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, आशीर्वाद दे दें, कि जीवन में सुख हो जाए । अगर आशीर्वाद से सुख होता, तो एक आदमी सभीको सुखी कर देता । क्योंकि आशीर्वाद देने में क्या कंजूसी ?

इतना आसान नहीं है । तुमने दुःख बोया है, मेरे आशीर्वाद से कैसे कटेगा ? तुम मुझसे समझ लो । आशीर्वाद मत माँगो । क्योंकि आशीर्वाद तो बेईमानी का ढंग है । दुःख तुमने दिया है न मालूम कितने लोगों को । तुमने दुःख बोया है सब तरफ, अब तुम उसकी फसल काटने के वक्त आशीर्वाद माँगने आ गये ! और तुम्हारे ढंग से ऐसा लगता है कि जैसे अगर तुम्हें दुःख मिल रहा है तो मैं आशीर्वाद नहीं दे रहा हूँ इसलिए दुःख मिल रहा है । किसीके आशीर्वाद से तुम्हारा दुःख न कटेगा । किसीके आशीर्वाद से तुम्हारी समझ बढ़ जाए तो काफी । किसी के आशीर्वाद से तुम में प्रेम के बीज आ जाएँ तो काफी । पाप तो प्रेम से कटेगा । और दुःख तो तुम जब दूसरों के लिए सुख बोओगे तब कटेगा ।

नानक कहते हैं, बुद्धि पापों से भरी हो, तो नाम के प्रेम से ही शुद्ध की जा सकती है । और जब एक व्यक्ति से तुम प्रेम करते हो, तो उसे दुःख देना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि उस का सुख तुम्हारा सुख, उसका दुःख तुम्हारा दुःख । उसके जीवन और तुम्हारे बीच की सीमा टूट गयी । तुम एक दूसरे में बहते हो।

जब ऐसी ही घटना किसी व्यक्ति के और परमात्मा के बीच घटती है, उस का नाम प्रार्थना, आराधना, पूजा, भक्ति । वह प्रेम का अंतिम स्वरूप है ।

और जब तुम व्यक्ति को सुख दे कर इतने सुखी हो जाते हो, और जब तुम एक व्यक्ति को दुःख दे कर इतने दुःखी हो जाते हो, तो परमात्मा से भी तुम्हारे दो संबंध हो सकते हैं । एक तो प्रेम का, तब तुम स्वर्ग में ही जाओगे । और एक अप्रेम का; तब तुम नर्क में गिर जाओगे ।

परमात्मा का अर्थ है समस्त, टोटैलिटी । यह जो सारा विस्तार है, इस सारे विस्तार के साथ इस भाँति प्रेम, जैसे यह एक व्यक्ति हो । और इस प्रेम में तो तुम्हारे सारे पाप बह जाएँगे । क्योंकि यह प्रेम तो तुम्हें सबके ही प्रेम में गिरा देगा । तुम किसे धोखा दोगे ? तुम जहाँ भी जाओगे उसीको पाओगे झाँकता हुआ । तुम जिस आँख में भी झाँकोगे वहीं परमात्मा को बैठा हुआ पाओगे ।

भक्ति बड़ी क्रांतिकारी प्रक्रिया है । भक्ति का अर्थ है अब उसके सिवाय कोई भी नहीं । और तब तुम्हारा जीवन अनायास सरल हो जाएगा । क्योंकि

अब पाप करने को न बचा। मिटाना किसको है? धोखा किसे देना है? छीनना किससे?

तो भक्ति से तुम यह अर्थ मत समझना कि मंदिर में तुम पूजा कर आते हो; कि गुरुद्वारे में जा कर तुम जपुजी का पाठ कर लेते हो; कि तुम यह मत समझना कि रोज उठ कर तुम जोर से जपुजी यांत्रिक रूप से दोहरा लेते हो, कि नमाज पढ़ लेते हो; इन सबसे कुछ भी न होगा।

क्योंकि फिर तुमने झूठी चाबी बना ली। असली चाबी का तो अर्थ ही यह है कि अब मैं अनंत के प्रेम में गिर गया। अब इस जगत की रत्ती-रत्ती मेरा प्रेम पात्र है। इंच-इंच मेरी प्रेयसी है या मेरा प्रेमी है। पत्ते-पत्ते पर उसीका नाम है, और आँख-आँख में उसीकी झलक है। सभी कुछ उसका है। सभी तरफ उसे मैं पाता हूँ।

अब तुम जिस ढंग से जीओगे--अगर परमात्मा सब तरफ तुम पाते हो--उस ढंग का नाम भक्ति है। वह तुम्हारे जीवन की पूरी शैली बदल देगी। तुम उठोगे और ढंग से। बैठोगे और ढंग से। क्योंकि वह सब जगह मौजूद है। तुम बोलोगे और ढंग से, क्योंकि तुम जिससे भी बोलोगे वही वह है। तुम कैसे गाली दे सकोगे? तुम कैसे निंदा कर सकोगे? तुम कैसे किसी का अपमान कर सकोगे? तुम कैसे अपने को दूसरे की सेवा से बचा सकोगे? क्योंकि सभी चरणों में वही छिपा है।

और अगर यह बोध तुम में गहरा हो जाए, इसको नानक कहते हैं नाम का रंग चढ़ जाना, तुम पर एक मस्ती छा जाएगी। तुम्हारे पास कुछ भी न होगा और सब कुछ मालूम पड़ेगा। तुम बिलकुल अकेले होओगे, और सारा जगत तुम्हारे साथ होगा। अस्तित्व और तुम्हारे बीच तालमेल आ गया। अस्तित्व और तुम्हारे बीच तारी लग गयी। अस्तित्व और तुम्हारे बीच संबंध जुड़ गया।

नानक कहते हैं, ऐसा प्रेम ही पापों को काट सकता है। अन्यथा तुम कुछ भी करो--पूजा करो, पाठ करो, यज्ञ करो, मंदिर बनाओ, मस्जिद बनाओ--तुम कुछ भी करो, तुम्हारे भीतर मूल-सूत्र नहीं है।

एक ट्रेन में मैं सफर कर रहा था। और एक औरत कोई नौ-दस बच्चों को लिए हुए सफर कर रही थी। वे बच्चे बड़ा उपद्रव मचा रहे थे। इधर से उधर दौड़ रहे थे, लोगों का सामान गिरा रहे थे। पूरे कमरे को उन्होंने अराजकता बना रखा था। आखिर एक आदमी से नहीं रहा गया। क्योंकि पहले उन बच्चों ने उसकी पेटी गिरा दी, फिर अखबार फाड़ डाला। तो उसने उससे कहा कि बहनजी, इतने बच्चे को साथ ले कर सफर न किया करें तो अच्छा। आधों को घर छोड़ आया करें। उस स्त्री ने बड़े क्रोध से उस आदमी की तरफ देखा और कहा,

'क्या समझा है? क्या तुम मुझे बेवकूफ समझते हो? आधों को मैं घर ही छोड़ आयी हूँ।'

समझ का सूत्र न हो, तो तुम कितने ही घर छोड़ आओ, क्या फर्क पड़ने का है? और जब बीस बच्चों को पैदा करते वक्त समझ काम नहीं आयी, तब छोड़ते वक्त कहाँ से आ जाएगी?

हजार पाप हैं। पुण्य तो एक ही है। हजार पुण्य नहीं हैं, पुण्य तो एक ही है। हजार तरह की बीमारियाँ हैं, स्वास्थ्य तो एक ही है। स्वास्थ्य थोड़े ही हजार तरह का होता है। कि तुम अपने ढंग से स्वस्थ, मैं अपने ढंग से स्वस्थ। बीमार हम अलग हो सकते हैं, कि तुम टी. बी. के बीमार, कि कोई केन्सर का बीमार, कि कोई कुछ और का बीमार। बीमारियों में भेद हो सकता है, बीमारियों में मौलिकता हो सकती है, निजीपन हो सकता है। बीमारियों पर तुम्हारे हस्ताक्षर हो सकते हैं। क्योंकि बीमारियाँ अहंकारों का हिस्सा हैं। अहंकार अलग-अलग, उन की बीमारियाँ अलग-अलग। लेकिन पुण्य तो एक है। स्वास्थ्य तो एक है। क्योंकि परमात्मा एक है। उस संबंध में तुम अलग-अलग नहीं हो सकते।

वह क्या है स्वास्थ्य, जो एक है? वह है प्रेम का भाव। और धीरे-धीरे उस में रमते जाना है। उठो ऐसे जैसे प्रेमी मौजूद है। अकेले कमरे में भी तुम ऐसे ही प्रवेश करो जैसे परमात्मा मौजूद है।

एक सूफी फकीर हुआ जुन्नेद। वह अपने शिष्यों को कहता था, भीड़ में जाओ तो ऐसा जाना जैसे तुम अकेले हो। और जब अकेले में जाओ तो ऐसा जाना जैसे कि परमात्मा चारों तरफ मौजूद है।

ठीक कहता है। क्योंकि भीड़ में अगर तुम अपना अकेलापन याद रख सको तो परमात्मा की याद रहेगी; नहीं तो भीड़ छा जाएगी। तुम भीड़ में भटक जाओगे। और एकान्त में अगर तुम परमात्मा की याद न रख सको, तो अपने में भटक जाओगे।

दो खतरे हैं। या तो दूसरे में भटक जाओ या अपने में भटक जाओ। या तो भीड़ में, या खुद में। और परमात्मा दोनों के पार है। और अगर तुम यह याद रख सको कि भीड़ में मैं अकेला हूँ और अकेले में वह मौजूद है, तो तुम कभी भी न खोओगे।

नानक कहते हैं कि नाम के प्रेम में जो रंग गया, वह भीतर से शुद्ध हो गया। उसने अन्तरंग स्नान कर लिया।

'कहने से न तो कोई पुण्यात्मा होता है न पापी।'

तुम कितना ही सोचते रहो और तुम कितना ही विचार करते रहो, और तुम कितना ही कहते रहो कि मैं कोशिश कर रहा हूँ पुण्यात्मा होने की। कहने से कुछ भी नहीं होता।

'जो-जो कर्म हम करते हैं वे लिख लिए जाते हैं। मनुष्य स्वयं ही बोता है और स्वयं ही खाता है।"

सिर्फ कहने से कुछ न होगा, सोचने से कुछ न होगा। क्योंकि बड़े मजे की बात है, कि पुण्य के बाबत में तुम सदा सोचते हो और पाप के संबंध में तुम क्षणभर नहीं सोचते; करते हो। अगर कोई तुमसे कहे, कि जब क्रोध आए, तो आधा घड़ी रुक जाना, फिर करना। तो तुम कहोगे यह कैसे हो सकता है? जब क्रोध आता है तो रुकने का सवाल ही नहीं रह जाता। रुकनेवाले का पता ही नहीं रह जाता, रोकने की बुद्धि खो जाती है। जब क्रोध होता है तब हम होते ही कहाँ? क्रोध तो उसी वक्त करते हैं हम, कभी पोस्टपोन नहीं करते।

लेकिन अगर कोई कहे ध्यान, तो तुम कहते हो आज समय नहीं, कल। फिर अभी जल्दी भी क्या है? जीवन इतना पड़ा है। और ध्यान इत्यादि तो जीवन के अंत में करने की बातें हैं, जब मौत करीब आने लगती है। और मौत तुम्हें कभी भी नहीं लगती कि आएगी, मरते हुए आदमी को भी नहीं लगती।

एक नेता मर गये, तो मुल्ला नसरुद्दीन व्याख्यान करने गया, उनकी मृत्यु पर, शोक-समारंभ में। उसने बड़ी काम की बात कही। उसने कहा कि देखो, भगवान की कैसी कृपा है! कि हम जब भी मरते हैं, जीवन के अंत में मरते हैं। सोचो, अगर मौत कहीं जीवन के प्रारंभ में या मध्य में आ जाती, तो कैसी मुसीबत होती! सोचो, कि मौत अगर जीवन के प्रारंभ में या मध्य में आ जाती, तो कैसी मुसीबत होती! सोचो, कि मौत अगर जीवन के प्रारंभ में या मध्य में आ जाती तो कैसा दुःख आता! अंत में आती है बड़ी उसकी कृपा है।

और अंत को हम दूर टालते रहते हैं। अंत कभी आता हुआ मालूम नहीं पड़ता—जब तक आ ही न जाए। अंत आ जाता है तब दूसरों को पता चलता है, तुम्हें पता नहीं चलता। तुम तो गये!

तो, ठीक से समझो तो तुम कभी मरते ही नहीं। तुम अपनी धारणा में तो जिंदा ही रहते हो। मरने की घटना भी दूसरों को पता चलती है। तुम तो मरते क्षण में भी योजना बनाते रहते हो जीवन की। और कल पर टालते रहते हो। शुभ को हम टालते हैं। अशुभ को हम तत्क्षण करते हैं।

जिस दिन इससे विपरीत हो जाओगे तुम, उसी दिन नाम का रंग लग जाएगा। जिस दिन तुम अशुभ को टालोगे और शुभ को तत्क्षण करोगे। जब देने का भाव उठे तब देर मत करना, उसी वक्त दे डालना। क्योंकि तुम अपने पर ज्यादा भरोसा मत करना। क्षण भर बाद तुम्हारा मन हजारों तरकीबें खड़ी कर देगा।

मार्क ट्वेन ने लिखा है कि एक सभा में मैं गया। और जो पुरोहित बोल रहा था, बड़ा अद्भुत बोल रहा था। पाँच मिनिट सुन कर मुझे लगा कि आज मेरे पास जो सौ डॉलर हैं, दान कर जाऊँगा। दस मिनट के बाद——मार्क ट्वेन लिखता है कि——मुझे भीतर विचार उठने लगा कि सौ डॉलर जरा ज्यादा हैं, पचास से भी काम चल सकता है।

अब सौ के ख्याल करने से सारा संबंध ही टूट गया। क्योंकि अब एक अंतरंग वार्तालाप चलने लगा, उसके भीतर। आधा घण्टा बीतते-बीतते वह पाँच डॉलर पर आ चुका था। और जब करीब-करीब व्याख्यान तीन चौथाई पूरा हो गया था तब उसने सोचा कि किसीसे कहा थोड़ी है, किसीको पता थोड़ी है कि मैं सौ देने की सोचा था! कौन देता है सौ? एक डॉलर भी लोग नहीं देते हैं, लोग पैसे देते हैं। एक डॉलर से काम चल जाएगा। और जब थाली उसके पास आयी भेंट माँगने के लिए, तो उसने लिखा है कि वह एक डॉलर तो मेरे खीसे से न निकला, मैंने एक डॉलर उठा कर अपने खीसे में डाल दिया.. कि कौन देखता है? किसको पता चलेगा?

तुम अपने पर ज्यादा भरोसा मत करना! क्योंकि शुभ कठिन है। कभी-कभी किन्हीं क्षणों में तुम उन चोटियों पर होते हो जब शुभ करने की भावना जगती है। तुमने अगर वह मौका खो दिया तो शायद दुबारा न जगे। शुभ के लिए सोचना ही मत। क्योंकि शुभ का अर्थ ही यह है कि जिसमें सोचने जैसा कुछ भी नहीं है, करने जैसा है। जब तुम देना चाहो, दे देना। जब बाँटना चाहो तब बाँट देना। जब त्यागना चाहो, त्याग देना। जब संन्यस्त होना चाहो, हो जाना। क्षणभर मत खोना। क्योंकि कोई भी नहीं जानता वह क्षण दुबारा तुम्हारे जीवन में कब आएगा? आएगा, न आएगा?

और जब बुरा तुम्हारे मन में उठे, तो स्थगित करना। चौबीस घण्टे का नियम बना लेना कि किसीको नुकसान पहुँचाना हो, चौबीस घण्टे बाद पहुँचाएँगे। जल्दी क्या है? अभी कोई मौत नहीं आयी जा रही है। और आ भी गयी तो कुछ हर्जा नहीं होगा। नुकसान नहीं पहुँचेगा, और क्या होगा?

अगर तुम चौबीस घण्टे भी रुक जाओ बुरा करने से तो तुम बुरा न कर पाओगे। क्योंकि बुरा करने की मूर्छा भी क्षण में ही आती है। जिस तरह शुभ करने की जागृति क्षण मे आती है, वैसे ही बुरा करने की मूर्छा भी क्षण में आती है। अगर तुम थोड़ी देर रुक गये, तो तुम खुद ही पाओगे कि क्या हत्या करनी? हत्यारे को अगर दो क्षण रोक लिया जाए, तो हत्या नहीं होगी। नदी में कोई डूबने जा रहा है, आत्महत्या करने जा रहा है, तुम जरा हाथ पकड़ कर उसको

एक मिनिट रोक लो, बात गयी ! क्योंकि कृत्य किन्हीं क्षणों में संभव होता है। और तुम्हारे भीतर मूर्छा के क्षण होते हैं, सघन मूर्छा के, और सघन जागृति के क्षण भी होते हैं।

जब सघन जागृति का क्षण होता है तब तुम प्रेम से भरे होते हो, सृजन से। और जब मूर्छा का क्षण होता है, तब तुम बेहोशी से भरे होते हो, विध्वंस से। तब तुम तोड़ डालना चाहोगे, फिर पीछे पछताओगे। पछताने से कोई सार नहीं। अगर पछताना ही हो तो पुण्य करके पछताना। पाप कर के क्या पछताना ? लेकिन तुम हमेशा पाप करके पछताते हो। और पुण्य तो तुम करते ही नहीं, इसलिए पछताने का सवाल ही नहीं उठता।

नानक कहते हैं, कि सोचने से कुछ भी न होगा। कहने से कुछ भी न होगा। शब्दों से पाप और पुण्य का कोई लेना-देना नहीं है। पाप और पुण्य का लेना-देना कृत्यों से है। और परमात्मा के समक्ष जो तुम्हारा हिसाब है वह तुम्हारे शब्दों का नहीं, तुम्हारे कृत्यों का है। उसके सामने तुम्हारा जो निर्णय है, वह तुमने क्या किया है, क्या हो, उसपर आधारित होगा। तुमने क्या कहा था, क्या पढ़ा था, क्या सोचा था, उससे कोई संबंध नहीं है। तुम्हारे विचार मूल्यवान नहीं हैं। अंतिम निर्णायक बात तुम्हारे कृत्य हैं।

तो नानक कहते हैं, मनुष्य स्वयं ही बोता है और स्वयं ही खाता है।

'आपे बीजि आपे ही खाहु'।

साधारणतः हमारा मन कहता है कि दुःख हमें दूसरे दे रहे हैं। साधारणतः हमारा मन कहता है, सफलता तो मैं पाता हूँ, असफलता दूसरों की अड़चन की वजह से आती है। शुभ तो मेरे जीवन में मेरी उपलब्धि है और अशुभ दूसरों के द्वारा मेरे जीवन पर आरोपण है। यह बात बिलकुल ही गलत है। तुम्हारे जीवन में जो भी है, वह तुम्हारे ही कृत्यों की श्रृंखला है। शुभ, अशुभ, अच्छा, बुरा, फूल लगे, काँटे लगे, सभी का संपूर्ण दायित्व तुम्हारे ऊपर है। जिस दिन कोई व्यक्ति इसका अनुभव करता है टोटल रिस्पॉन्सिबिलिटी, समग्र दायित्व मेरा है, उसी दिन से जीवन में क्रांति शुरू हो जाती है।

जब तक तुम दूसरों पर टालते हो तब तक क्रांति नहीं होगी। क्योंकि अगर दूसरे दुःख दे रहे हैं तो तुम क्या करोगे ? जब तक सभी दूसरे न बदले जाएँ तब तक दुःख जारी रहेगा। और दूसरे कब बदले जाएँगे ? तो फिर दुःख को झेलने के सिवा कोई उपाय नहीं है। इसलिए धर्म के अतिरिक्त दुःख के रूपांतरण की कोई कीमिया नहीं है। जिस दिन तुम जानोगे मैं अपने ही बोये हुए बीजों की फसल काटता हूँ और जो दुःख मैं पा रहा हूँ वह मैंने ही दिया है, फैलाया है, वही अब लौट रहा है...

निश्चित ही बीज बोने में और फल आने में वक्त लगता है। वक्त लगने के कारण तुम भूल ही जाते हो कि तुमने ये बीज बोये थे, और अभी ये फल आने शुरू हो गये। जब फल आते हैं तब तुम बीज बोये थे, यह ख्याल विस्मरण हो गया है। उस विस्मरण के कारण तुम सदा सोचते हो दूसरे कुछ कर रहे हैं। ध्यान रखना, यहाँ कोई दूसरा तुममें चिंतित नहीं है। दूसरे अपने लिए चिंतित हैं। दूसरे अपने कारण परेशान हैं। तुम अपने कारण परेशान हो। और हर आदमी अपने ही कृत्यों की खोज में रहता है। इस बात को जितना तुम ठीक से पहचान लो, उतनी ही गहरी क्रांति संभव हो जाएगी। क्योंकि जैसे ही यह समझ में आता है कि मैं ही जिम्मेवार हूँ, कुछ किया जा सकता है।

दो काम : एक, कि जो मैंने किया है पीछे उसे मैं शांति से भोग लूँ, उसके भोगने में और नयी अशांति खड़ी न करूँ; तो अतीत की निर्जरा हो जाएगी। लेन-देन साफ हो जाएगा।

बुद्ध के ऊपर एक आदमी थूँक गया, तो बुद्ध ने थूँक पोंछ लिया अपनी चादर से। वह आदमी बहुत नाराज था। बुद्ध के ऊपर थूँका तो बुद्ध के शिष्य भी बहुत नाराज हो गये। लेकिन जब वह आदमी चला गया तो आनंद ने पूछा कि यह बहुत सीमा के बाहर हो गयी बात। और सहिष्णुता का यह अर्थ नहीं है। और इस तरह तो लोगों को प्रोत्साहन मिलेगा। और हमारे हृदय में आग जल रही है। आप का अपमान हम बर्दाश्त नहीं कर सकते।

बुद्ध ने कहा, तुम व्यर्थ ही उत्तेजित मत होओ। यह तुम्हारा उत्तेजित होना तुम्हारे कर्म की श्रृंखला बन जाएगी। मैंने इसे कभी दुःख दिया था, वह निपटारा हो गया। मैंने कभी इसका अपमान किया था, वह लेना-देना चुक गया। इस आदमी के लिए ही मैं इस गाँव में आया था। यह न थूँकता तो मेरी मुसीबत थी। अब सुलझाव हो गया। इससे मेरा खाता बन्द हो गया। अब मैं मुक्त हो गया। यह आदमी मुझे मुक्त कर गया है मेरे ही किसी कृत्य से। इसलिए मैं धन्यवाद करता हूँ उसका।

और तुम नाहक उत्तेजित मत हो। क्योंकि तुम्हारा तो कुछ लेना-देना नहीं है इसमें। लेकिन अगर तुम उत्तेजित होते हो और तुम उस आदमी के खिलाफ कुछ करते हो तो तुम एक नयी श्रृंखला बनाते हो। मेरी श्रृंखला तो टूटी और तुम्हारी व्यर्थ बन गयी। तुम बीच में क्यों आते हो ? जिन्हें मैंने दुःख दिया है उनसे मुझे उत्तर लेना ही पड़ेगा। और मेरी परिपूर्ण समाप्ति के पूर्व--जिसको वे महा-परिनिर्वाण कहते हैं, इसके पहले कि मैं अनंत में पूरी तरह लीन हो जाऊँ; व्यक्तियों से, वस्तुओं से, संबंधों में, क्रोध में, अपमान में, घृणा में, मोह में, लोभ

में जो भी नाते-रिश्ते बने हैं, उन सबकी निर्जरा हो जानी जरूरी है। उसको ही हम परममुक्त पुरुष कहते हैं, जिसके सारे कर्मों की निर्जरा हो गयी।

तो एक ध्यान रखना कि अतीत में जो किया है, उसे शांत भाव से, संतोष से, परम तृप्ति से, निपटारा समझ कर, प्रसन्नता से, पूरा हो जाने देना। नयी श्रृंखला खड़ी मत करना। तो अतीत से संबंध धीरे-धीरे शांत हो जाता है।

और दूसरी बात है कि नया कुछ मत करना दूसरे को दुःख देने के लिए, अन्यथा फिर तुम बँधे हुए चले आओगे। हम अपने ही भीतर अपनी जंजीरों को ढालते हैं। तो पुरानी जंजीरों को तोड़ना है और नयी बनानी नहीं। ये दो बातें ख्याल रखना।

महावीर के दो शब्द बड़े प्रिय हैं। एक शब्द है "आस्रव" और एक है "निर्जरा"। आस्रव का अर्थ है नये को आने मत देना और निर्जरा का अर्थ है पुराने को गिर जाने देना। धीरे-धीरे एक ऐसी घड़ी आएगी कि पुराना कुछ बचेगा नहीं, नया कुछ होगा नहीं; तुम मुक्त हो गये। और जब वैसी दशा आती है तब परम आनंद फलित होता है।

"नानक कहते हैं, मनुष्य स्वयं ही बोता है, और स्वयं ही खाता है। उसके हुक्म से ही आवागमन होता है। तीर्थ यात्रा, तप, दया, दान और पुण्य से तिल भर मान मिलता है। लेकिन जो कोई परमात्मा का श्रवण और मनन करता है, उस का मन प्रेमपूर्ण हो जाता है। और आंतरिक तीर्थ में मल-मल कर उसका स्नान हो जाता है।"

"तीरथ तपु दइआ दतु दानु। जे को पावै तिलका मानु॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ। अंतरगति तीरथि मलि नाउ॥"

तीर्थयात्रा से, तप से, जप से, पुण्य से, दया से, सेवा से तिल भर मान मिलता है। कोई बड़ी क्रांति घटित नहीं होती, सम्मान मिलता है। और वह सम्मान भी खतरनाक हो सकता है। क्योंकि तुम उस तिल का अपने अहंकार के कारण पहाड़ बना सकते हो। तुम कह सकते हो मैंने इतनी तीर्थयात्राएँ कीं। मैं हाज़ी हूँ, मैंने हज़ किया। कि मैंने इतने मंदिर बनाए।

भारत से एक संन्यासी बोधिधर्म चीन गया। चीन का सम्राट उसके पास आया। चीन का सम्राट बौद्ध हो गया था। और उसने सैकड़ों विहार, मठ, आश्रम बनवाए थे। हजारों शास्त्र छाप कर मुफ्त बाँटे थे। लाखों भिक्षुओं को भोजन करवाता था। पहली ही बात उसने बोधिधर्म से पूछी; उसने पूछा, कि मैंने इतना पुण्य किया है, इतने मंदिर, इतने तीर्थ निर्मित किये हैं। इतनी बुद्ध की प्रतिमाएँ बनायी हैं।

उसका बनाया हुआ एक मंदिर अभी है। उस में दस हजार बुद्ध की प्रतिमाएँ हैं। विराट मंदिर बनाए, पहाड़ के पहाड़ खोद डाले। और बड़ा पुण्य किया, लाखों रुपये लुटाए, गरीबों को दान दिया। तो उसने सारी फेहरिस्त बोधिधर्म के सामने कही, कि मैंने यह किया, यह किया, यह किया। और उसने तो तिल भी नहीं किया था पहाड़ ही किया था। और हम तो तिल को पहाड़ बना लेते हैं तो उस ने अगर पहाड़ को पहाड़ कहा तो कुछ आश्चर्य की बात न थी।

बोधिधर्म चुपचाप खड़ा रहा। अंत में उसने पूछा कि मेरे ये सब पुण्य का क्या फल होगा? बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं। तू महानर्क में पड़ेगा। वह सम्राट तो हैरान हुआ। यह तो भरोसे की ही बात नहीं थी कि पुण्य के कारण और महानर्क में पड़ूँगा? उसने कहा क्या कहते हैं आप, होश में हैं? बोधिधर्म ने कहा पुण्य से तो कोई अड़चन नहीं। लेकिन पुण्य किया इस भाव से बड़ी अड़चन है। पुण्य हुआ, तू उसे अपने ऊपर मत ले। और अगर तूने यह ख्याल बना लिया कि मैंने किया, तो पुण्य भी व्यर्थ गया। तब औषधि भी जहर हो गयी। औषधि को भी ढंग से पीना पड़ता है नहीं तो जहर हो जाए। क्योंकि अक्सर औषधियाँ जहर से तो बनी ही होती हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन को एक डाक्टर ने कहा––पुराने दिनों की बात है––पत्नी को नींद नहीं आती है, रात बड़बड़ करती है, और झगड़ा-झाँसा मचाती है, तो उसने कहा यह ले जाओ दवा, एक चौअन्नी के ऊपर रखकर––तब चौअन्नी चलती थी––जितनी चौअन्नी पर बने, उतनी दवा दे देना।

कोई सात दिन बाद नसरुद्दीन चला जा रहा था तो डाक्टर ने पूछा कि कहो, पत्नी कैसी है? उसने कहा बड़ा गजब का काम हुआ। सो ही रही है तब से, उठी ही नहीं। डाक्टर ने कहा कि अभी तक सो रही है सात दिन से? उसने कहा बड़ी परम शांति है घर में। दवा गजब की थी। उस डाक्टर ने पूछा कि तुमने दवा कितनी दी? तो उसने कहा, घर में चौअन्नी न थी, तो चार अन्नियों पर रख कर, जितनी आपने कही थी, चौअन्नी के बराबर दी। अन्नी थी घर में, चौअन्नी थी नहीं, चार अन्नियों पर रख कर दे दी, परम शांति है। गजब की दवा है।

औषधि जहर हो सकती है। उसकी मात्रा है। पुण्य भी जहर हो सकता है, उसकी मात्रा है। ध्यान रखना, अगर पुण्य कृत्य रहे तो ठीक। अगर कृत्य से हटा और कर्ता बन गया, तो खतरनाक मात्रा शुरू हो गयी। और पुण्य कोई इस भाव से करे कि मेरे पापों की निर्जरा होगी तो ठीक, और कोई इस भाव से करे कि पुण्य का अर्जन होगा, तो खतरा है। तिल भर का मान मिल सकता है पुण्य से, लेकिन उसको धर्म मत समझ लेना।

एक बस में मैं मुल्ला नसरुद्दीन के साथ सफर कर रहा था। अचानक चलती बस में वह खड़ा हो गया और उसने ज़ोर से चिल्ला कर कहा, भाइयों! किसीके सुतली में बँधे नोट तो नहीं गिरे? अनेक आवाजें आयीं कि हमारे गिरे, हमारे गिरे, कई लोग खड़े हो गये। उसने कहा, शांति रखो। अभी मुझे केवल सुतली मिली है।

धर्म तो नोट है, पुण्य सुतली है। सुतली पर बहुत मत अकड़ जाना। क्योंकि सुतली से कुछ होता जाता नहीं। नोटों पर बँध जाए तो कीमती हो जाती है। पत्थरों पर बँधी रहे तो क्या मूल्य है उसका? तो पुण्य जब निरअहंकार भाव के साथ बँधता है, तब तो नाव बन जाता है। और जब अहंकार के साथ बँध जाता है तो छाती में पत्थर की तरह लटक जाता है। कई पुण्य में डूब जाते हैं। कुछ पाप में डूबते हैं, कुछ पुण्य में डूब जाते हैं। क्योंकि नाव तो निरअहंकार की उस तरफ ले जाती है।

इसलिए ऐसा भी हुआ कि कई बार पापी तर गये हैं और पुण्यात्मा डूब गये। क्योंकि पापी कम से कम निरअहंकारी तो हो ही जाता है आसानी से। वह सोचता है मैं पापी हूँ। वह सोचता है मैं क्या पहुँच सकूँगा उस तक? वह सोचता है मेरी आवाज कहाँ सुनी जा सकेगी? मुझ में कोई तो गुण नहीं। दुर्गुण ही दुर्गुण हैं। अहंकार न हो तो पापी भी तिर जाता है। और अहंकार हो तो पुण्यात्मा भी डूब जाता है।

नानक कहते हैं तिल भर मान मिल सकता है, लेकिन उसको धर्म मत समझ लेना। धर्म तो तभी शुरू होता है जब कोई परमात्मा का श्रवण और मनन करता है। और जब किसीका मन प्रेमपूर्ण हो जाता है। आंतरिक तीर्थ में तब मल-मल कर स्नान होता है।

हे परमात्मा, सभी गुण तुझ में हैं मुझ में कुछ भी नहीं, ऐसी भावदशा निरंतर बनी रहनी चाहिए। कहीं अकड़ न आ जाए कि गुण मुझ में हैं। कि मैं त्यागी, कि मैं दानी, कि देखो मैंने यह किया, यह किया, यह किया। वह चीन के सम्राट की अकड़ न आ जाए। नहीं तो बोधिधर्म ठीक कहता है, कि महानर्क में पड़ोगे।

"हे परमात्मा, सभी गुण तुझ में हैं। मुझ में कुछ भी नहीं। बिना गुण कर्म के भक्ति नहीं होती। तो मैं तो इस योग्य भी नहीं हूँ, कि तेरी भक्ति कर सकूँ। मेरी कोई योग्यता ही नहीं है।"

इसलिए तो नानक कहते हैं कि उसके प्रसाद से सब मिलता है, हमारी योग्यता क्या है? सभी भक्तों ने वही कहा है। उसकी कृपासे मिलता है। तुम्हारी योग्यता से नहीं।

इस फर्क को ठीक से समझ लें। क्योंकि योग्यता का तो मतलब है, उसे देना ही पड़ेगा। हम योग्य हैं। न देगा तो हम शिकायत करेंगे। और देगा तो धन्यवाद का कोई कारण नहीं, क्योंकि हम योग्य हैं।

तुम्हारे मन में शिकायत है। वह शिकायत इस बात की खबर है, कि तुम समझते हो तुम योग्य हो और तुम्हें नहीं मिला।

भक्त के मन में अहोभाव होता है। क्योंकि वह कहता है, योग्य तो मैं बिलकुल नहीं हूँ और इतना मिला। उसकी सारी दृष्टि दूसरी है। तो कीर्तन-भजन करने से कोई भक्त नहीं होता। जीवन की पूरी दृष्टि दूसरी है। दृष्टि यह है कि मैं योग्य नहीं और फिर भी इतना मिल रहा है। तो भक्त की प्रार्थना धन्यवाद है। तुम्हारी प्रार्थना शिकायत है।

नानक कहते हैं, "मुझ में तो कोई गुण नहीं, और बिना गुणकर्म के तो भक्ति भी नहीं होती।" तो मैं भक्ति भी क्या कर सकता हूँ? सिर्फ तेरे गुणगान कर सकता हूँ। "हे प्रभु। आप धन्य हैं," बस, ऐसा कह सकता हूँ। आप की धन्यता के गीत गा सकता हूँ। मुझ में तो कोई और गुण नहीं है। मैं सिर्फ स्तुति कर सकता हूँ। तुम्हारी प्रशंसा का गुणगान कर सकता हूँ। योग्यता मेरी कुछ भी नहीं कि मुझे कुछ मिले।

"आप वाणी हैं, आप ब्रह्मा हैं। आप की सत्ता सदा शोभायुक्त है और मनभावन है, ऐसे मैं गीत गा सकता हूँ। वह कौन सी बोली थी, कौन सा समय था, कौन सी तिथि थी, कौन वार था, कौन सी ऋतु थी, कौन महीना था, जब तुमने आकार लिया? पंडितों को उसका पता नहीं था। यदि होता तो वह पुरानों में जरूर लिख देते। और काज़ियों को भी उसका पता नहीं था। होता तो वे कुरान में जरूर लिख देते। तिथि और वार योगी भी नहीं जानते कि कब तू निराकार आकार बना। कब तू निर्गुण सगुण बना, कब तू घना हुआ? कब तू संसार बना? किसीको कुछ पता नहीं। तेरे सिवाय किसीको पता हो भी नहीं सकता। जो कर्ता सृष्टि को साजता है वही सब जानता है।"

और मैं तो बिलकुल गुणहीन हूँ। पंडित नहीं जानते, काज़ी नहीं जानते, शास्त्रों मे तेरी कोई खोज-खबर नहीं मिलती। कौन है तू, कहाँ है तू, कैसे तूने रूप रखा, कैसे तू आकारित हुआ, कैसे यह सृष्टि निर्मित हुई। ज्ञानियों को यह पता नहीं, मैं तो अज्ञानी हूँ मैं क्या कर सकता हूँ?

भक्त, क्या है इसकी चिंता नहीं करता। ज्ञानी इसकी फिक्र करता है, कि क्या है इसका पता लगाना चाहिए। ज्ञानी परमात्मा को उघाड़-उघाड़ कर खोजने की कोशिश करता है। भक्त सिर्फ अहोभाव में आनंदित है। वह कहता है कैसे पता चलेगा? तेरे अतिरिक्त किसको पता हो सकता है कि यह सब कैसे हुआ? तू ही

जानता है। बाकी सब जानने वाले नासमझी में हैं। इसलिए भक्त जानने का कोई दावा नहीं करता। भक्त का दावा तो सिर्फ प्रेम का है। और ध्यान रखना, ज्ञान का दावा अहंकार का दावा है। प्रेम का दावा निरअहंकार का दावा है।

नानक कहते हैं, तू ही जानता है। पर मैं तुझे किस प्रकार संबोधित करूँ? मुझे तो ठीक संबोधन भी नहीं आता है। किन शब्दों का उपयोग करूँ कि भूल न हो जाए? कौनसे संबंध उचित होंगे, कौनसे संबोधन उचित होंगे, कौनसे शब्द तेरे योग्य हैं? मुझे कुछ भी पता नहीं। किस प्रकार तेरा बखान करूँ? कैसे तुझे जानूं? नानक कहते हैं, वर्णन करने के लिए सभी एक से एक बढ़ कर सयाने लोग उसका वर्णन करते हैं। ऐसे तो वर्णन मैंने सुने हैं, बड़े सयाने लोग उसे वर्णन करते हैं।

लेकिन सभी वर्णन अधूरे हैं। और असली सयाना वही है, जिसने जान लिया कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। उसको हम क्या कह कर कह सकते हैं? हम जो भी कहेंगे छोटा पड़ जाएगा। हम जो भी कहेंगे वह ओछा हो जाएगा।

नानक कहते हैं, "वह साहब महान है। उसका नाम महान है। उसीका किया सब होता है। जो कोई अपने को कुछ समझता है, वह उसके आगे जा कर शोभा नहीं पाता।"

'नानक जे को अपौ जाणै अगै गइया न सोहै।'

और जिसने भी सोचा कि मैं कुछ हूँ, वह उससे चूक जाता है। क्योंकि एक ही हो सकता है। या तो वह या तुम। या तो मैं, या वह। उस म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।

रूमी की बड़ी प्रसिद्ध कविता है। प्रेमी ने द्वार पर दस्तक दी। भीतर से प्रेयसी ने पूछा, "कौन?" तो उसने कहा, "मैं हूँ, द्वार खोलो!" लेकिन भीतर सन्नाटा हो गया। उसने बार-बार दस्तक दी और कहा, "मैं हूँ तेरा प्रेमी। द्वार खोलो।" भीतर से अन्ततः आवाज आयी, कि इस घर में दो न समा सकेंगे। यह घर प्रेम का है। दो को न सम्हाल सकेगा। और फिर सन्नाटा हो गया।

प्रेमी गया वापिस। भटकता रहा वर्षों तक वनों में, तपश्चर्या की, साधना की, प्रार्थना की, पूजा-अर्चना की। उपवास किये। शुद्ध किया स्वयं को। निखारा चित्त को। ज्यादा जागरूक हुआ। समझा स्थिति को। फिर अनेक-अनेक वर्षों बाद वापिस लौटा। उसी द्वार पर फिर से दस्तक दी। भीतर से वही सवाल, "कौन है?" लेकिन इस बार उत्तर बदल गया। इस बार बाहर से आवाज आयी, "तू ही है।"

और रूमी कहते हैं, द्वार खुल गया।

परमात्मा के द्वार पर अगर तुम कुछ भी हो कर गये, कुछ भी! पुण्यात्मा, त्यागी, संन्यासी, ज्ञानी, पंडित, कुछ भी होकर तुम गये कि तुम चूक जाओगे। वह द्वार उन्हीं के लिए खुलता है जो न-कुछ होकर जाते हैं। प्रेम का द्वार उन्हींके लिए खुलता है जो अपने को मिटा कर जाते हैं।

साधारण जीवन में भी प्रेम तभी खुलता है जब तुम खो जाते हो। जब तुम डूब जाते हो। जब 'मैं' की आवाज बंद हो जाती है। और जब 'मैं' से भी महत्त्वपूर्ण 'तू' हो जाता है। और 'तू' ही जब तुम्हारा जीवन हो जाता है। तुम अपने को मिटा सकते हो प्रेमी के लिए, प्रेयसी के लिए, आनंदभाव से तुम मृत्यु में उतर सकते हो, तभी प्रेम प्रफुल्लित होता है। जब साधारण जीवन में प्रेम फलित होता है, तब भी वही झलक आती है, कि एक ही रह जाता है, दो मिट जाते हैं।

लेकिन जब उस परम प्रेम का उदय होता है तब तो निश्चित ही तुम्हारी रूप-रेखा भी नहीं बचनी चाहिए। तुम्हारा नाम-ठिकाना भी नहीं बचना चाहिए। तुम तो बिलकुल ही मिटोगे तभी हो सकेगा। जीसस का वचन है, "जो अपने को बचाएँगे वे खो जाएँगे। जो अपने को खो देंगे, बच जाएँगे।" वहाँ तो मिटनेवाला सब कुछ पा लेता है और बचानेवाला सब कुछ खो देता हैं।

कहते हैं नानक, जो कोई अपने आप को कुछ समझता है वह उसके आगे जा कर शोभा नहीं पाता। सच तो यह है, वह उसके आगे पहुँच ही नहीं पाता।

क्योंकि जिसकी आँखों में अकड़ है, उसकी आँखें अंधी हैं। और जिसके हृदय में ख्याल है, मैं कुछ हूँ, उसका व्यक्तित्व बहरा है। जड़ है। वह मरा ही हुआ है। वह परमात्मा के सामने आ ही नहीं सकता। परमात्मा तो सदा तुम्हारे सामने है। लेकिन जब तक तुम हो, तुम उसे न देख पाओगे क्योंकि तुम ही बाधा हो। जैसे ही बाधा गिर जाती है, तुम्हारी आँखें निर्मल होकर खुलती हैं। बिना किसी भाव के, कि मैं हूँ। तुम बिलकुल ना-कुछ की तरह होते हो। एक शून्य! उस शून्य में तत्क्षण वह प्रवेश कर जाता है।

कबीर ने कहा है, "सूने का घर पाहुना।"

जैसे ही तुम शून्य हुए वह अतिथि आ जाता है। जब तक तुम अपने से भरे हो तुम उसे चूकते रहोगे। जिस दिन तुम खाली होओगे, वह तुम्हें भर देता है।

• • •

आपे जाणै आपु

प्रवचन १०, दिनांक ३०-११-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : २२

पाताला पाताल लख
आगासा आगास ।
ओड़क ओड़क भालि थके
वेद कहनि इक बात ॥
सहस अठारह कहनि कतेबा
असुलू इकु धातु ।
लेखा होइ त लिखीऐ
लेखै होइ विणासु ॥
नानक बडा आखीए
आपे जाणै आपु ॥

पउड़ी : २३

सालाही सालाहि एती
सुरति न पाइया ।
नदिआ अतै वाह पवहि
समुंदि न जाणी अहि ॥
समुंद साह सुलतान
गिरहा सेती मालुधनु ।
कीड़ी तुलि न होवनी
जे तिसु मनहु न वीसरहि ॥

एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में एक बड़ी अनूठी घटना घटी। उस प्रयोगशाला में सभी तरह के ज़हर, पायज़न मौजूद थे। उन्हींका अध्ययन उस प्रयोगशाला का लक्ष्य था। फिर उस प्रयोगशाला में बहुत चूहे बढ़ गये। उन चूहों को मारने के लिए बहुत उपाय किये। लेकिन मारना आसान न हुआ क्योंकि जो भी ज़हर डाला जाता, चूहे उसे खाने के पहले से ही आदी थे। चूहे ईम्यून हो गये थे। ज़हर ही ज़हर थे प्रयोगशाला में। ज़हर डाला जाता, चूहे मरते तो न, ज़हर खा जाते। उसे भोजन बना लेते।

तब किसीने सुझाव दिया कि पुराना ही रास्ता अखत्यार करना ठीक है। चूहे पकड़ने की जो पुरानी व्यवस्था है, चूहे की जाली, उसीमें उनको फाँसना उचित होगा। चूहे की जालियाँ लायी गयीं उनमें चीज के टुकड़े डाले गये, रोटी के टुकड़े डाले गये। लेकिन चूहों ने कोई ध्यान न दिया। वह ज़हर खाने के इतने आदी हो गये थे, कि और चीज़ उन्हें जँची ही नहीं। एक भी चूहा न फँसा।

तब किसीने सुझाव दिया, कि अब एक ही उपाय है कि चीज़ और रोटी के ऊपर ज़हर की पर्त लगा दो तभी ये चूहे जाल में फँसेंगे। यही किया गया। और रास्ता कामयाब सिद्ध हुआ। चीज़ पर और रोटी के टुकड़ों पर ज़हर लगा दिया गया। ज़हर के कारण चूहे जाल के भीतर गये, और फँसे।

कहानी बड़ी अजीब लगती है, लेकिन सच है। ऐसा एक प्रयोगशाला में हुआ। आदमी की हालत भी करीब-करीब ऐसी ही है। मनुष्य शब्द का इतना आदी हो गया है, कि अगर मौन भी उसे समझाना हो, तो शब्द में ही समझाना पड़े। भोजन देना हो, तो भी ज़हर में लपेटना पड़े।

अनंत की तरफ इशारा करना हो, तो भी क्षुद्र शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। शून्य में ले जाना हो, तो भी शब्द का उपयोग करना पड़ता है।

सागर की बात कहनी हो तो भी बूंद का उपयोग करना पड़ता है। अब बूंद की चर्चा से सागर की तरफ कोई इशारा नहीं जाता। जा भी नहीं सकता। कहाँ बूंद, कहाँ सागर ! कहाँ शब्द, कहाँ शून्य ! कहाँ क्षुद्र मनुष्य की बुद्धि और कहाँ अमाप विस्तार ! आकाश ही आकाश पाताल ही पाताल––जो कहीं समाप्त नहीं होते।

लेकिन उनका लेखा-जोखा भी बड़ी छोटी सी बुद्धि में बाँधना पड़ता है। क्योंकि आदमी बुद्धि का आदी हो गया है। हम जिस बात के आदी हो जाते हैं, उसके बाहर जाना सबसे कठिन बात है। सत्य दूर नहीं है, हमारी आदतों की बाधा है। सत्य बिलकुल पास है। हृदय की धड़कन से भी ज्यादा पास; स्वाँसों से भी ज्यादा पास; तुमसे भी तुम्हारे ज्यादा पास परमात्मा है।

लेकिन आदतों का एक जाल है, और आदतें बीच में खड़ी हैं। और उन आदतों के कारण देखना मुश्किल हो जाता है। आदत ही तो तुम्हारा मन है। इसलिए सारे संतों की एक ही चेष्टा है, कैसे मन छूट जाए ! कैसे तुम उन्मन हो जाओ ! कैसे नो-माइन्ड की अवस्था आ जाए !

जैसे ही मन छूटा, वैसे ही किनारा छूट गया। तुम सागर में उतर गये। और दूसरा कोई उपाय नहीं है सागर को जानने का। सागर ही होना पड़ेगा। उससे कम में काम न चलेगा। किनारे पर खड़े रह-रह कर तुम कितनी ही सागर की चर्चा करो, तुम कितने ही सागर के बखान करो, सब व्यर्थ है। तुम किनारे पर खड़े हो, यही बता रहा है, कि तुम्हारी पहचान सागर से नहीं हुई। क्योंकि जो सागर को पहचान गया वह क्यों किनारे खड़ा रहेगा ? जिसे उस अनंत की पहचान आ गयी, वह क्यों रुकेगा किनारे पर ? फिर उसे कौन सी शक्ति किनारे पर रोक सकेगी ? अनंत का आकर्षण उसे खींच लेगा। उससे बड़ी कोई चुंबकत्व नहीं है। फिर सभी आकर्षण टूट जाएँगे। अनंत उसे खींच लेगा।

लेकिन हम चर्चा कर रहे हैं। घरों के भीतर बंद, खुले आकाश की बात कर रहे हैं। अपने-अपने पिंजड़ों में बंद, स्वतंत्रता की चर्चा कर रहे हैं। अपने-अपने शब्दों में बंद, निराकार का बखान कर रहे हैं।

नानक के ये सूत्र बड़े कीमती हैं। इन्हें समझने की कोशिश करें। कहते हैं नानक––

'पाताला पाताल लख आगासा आगास।'

आकाश ही आकाश है। एक ही आकाश अनंत हो जाता है। क्योंकि आकाश की कोई सीमा तो नहीं है। एक ही आकाश असीम है। और नानक कहते हैं, आकाश ही आकाश है। अनंतानंत !

एक ही इनिफिनिट नहीं है; एक ही अनंत नहीं है, अनंत अनंत हैं। आकाश ही आकाश हैं। जहाँ भी तुम जाओ वहीं तुम असीम को पाओगे। जिस दिशा में बहो, वहीं असीम को पाओगे। जो भी तुम छुओगे, वही असीम है। सब तरफ असीम है।

इस असीम के बीच तुम शब्दों के छोटे पिंजड़े ले कर परमात्मा को पकड़ने की कोशिश कर रहे हो। तुम उसे किताबों में बंद कर रहे हो। तुम उसे वेद और कुरान में लिखने की कोशिश कर रहे हो। यह ऐसे ही है जैसे कोई मुट्ठी में आकाश को बंद कर लेना चाहे। और बड़े मजे की बात तो यह है, कि जब मुठ्ठी खुली होती है तो आकाश होता है। जब मुट्ठी बंद होती है तब जो होता है वह भी निकल जाता है। खुली मुट्ठी में तो आकाश होता है। क्योंकि खुली मुट्ठी आकाश में होती है। लेकिन जितना जोर से तुम मुट्ठी बाँधते हो उतना आकाश मुट्ठी के बाहर हो जाता है। बिलकुल बंद मुट्ठी में कोई आकाश नहीं होता, मुट्ठी ही रह जाती है।

शब्दों का भी ऐसा प्रयोग करना जो खुली मुट्ठियों जैसे हों। बंद मुट्ठियों जैसे शब्दों का उपयोग मत करना। लेकिन खुली मुट्ठी जैसे जो शब्द हैं, वे तर्कयुक्त नहीं रह जाते। जितना तर्कयुक्त बनाना हो शब्द को, उतना उसे बंद करना पड़ता है। परिभाषित, सीमित ! उस की डेफिनीशन बनानी पड़ती है। और जब भी किसी चीज की परिभाषा बनती है, वह सीमित हो जाता है। उस के चारों तरफ एक दीवाल खड़ी हो जाती है।

जितना तर्कयुक्त शब्द होगा उतना ही परमात्मा को सूचन करने में असमर्थ हो जाएगा। मुट्ठी बँध गयी। जितना तर्कयुक्त शब्द होगा उतना कहता तो मालूम पड़ेगा, लेकिन कहेगा कुछ भी नहीं। कंठ दब गया। और जितना तर्कमुक्त शब्द होगा उतना कहता कम मालूम पड़ेगा, लेकिन कहेगा। इस फर्क को ख्याल में ले लें।

नानक के शब्द किसी तर्कशास्त्री के शब्द नहीं हैं। वे एक कवि के शब्द, एक गीतकार के शब्द हैं। एक सौंदर्य-प्रेमी के शब्द हैं। इन शब्दों से नानक कोई परिभाषा नहीं दे रहे हैं परमात्मा की। ये खुली मुट्ठी की तरह हैं। इन शब्दों से इशारा कर रहे हैं। ये शब्द कुछ कह नहीं रहे हैं, बल्कि जो नहीं कहा जा सकता उसकी तरफ सिर्फ इंगित कर रहे हैं। तुम शब्दों को मत पकड़ लेना, अन्यथा चूक जाओगे।

जैसे मैं चाँद को दिखाऊँ अँगुली से और तुम मेरी अँगुली पकड़ लो, तो तुम चाँद को कैसे देख पाओगे ? अँगुली का तो कोई अर्थ ही न था। वह तो सिर्फ

चाँद की तरफ इशारा करती थी। अँगुली को तो छोड़ देना है, चाँद को देखना है। लेकिन लोग अँगुलियों को पकड़े होते हैं।

इसीलिए तो किताबों की पूजा शुरू हो जाती है। कोई वेद को पूजता है, कोई कुरान को, कोई गुरु-ग्रंथ को पूजता है। पूजा किताब की शुरू हो जाती है। अँगुली को लोग पकड़ लेते हैं। और जिस तरफ इशारा था, उस तरफ आँख उठती ही नहीं।

और जितने जोर से तुम किताब को पकड़ लोगे, उतने ही दूर तुम सत्य से हो जाओगे। मुट्ठी बँध गयी। शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया। शब्द की कोई महत्ता नहीं है। महत्ता तो निःशब्द की है। क्योंकि निःशब्द से ही पता चल सकता है।

'पाताला पाताल लख आगासा आगास।
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक बात॥'

'और सारे वेद सिर्फ एक ही बात कहते हैं, कि लाखों खोज-खोज कर थक गये लेकिन खोज नहीं पाये।'

सारे वेद एक ही बात कहते हैं और वह बात है, कि मनुष्य असमर्थ है। सारे वेद एक ही बात कहते हैं, कि बुद्धि से खोजा तो कभी वह खोजा नहीं गया। खोजने वाले ही खो गये और वह नहीं मिला। उसकी कोई थाह न मिली। जो थाह लेने गये वे पिघल गये, विलीन हो गये। खोजी तो मिट गये। लेकिन जिसे खोजने निकले थे उसकी कोई थाह न मिली।

सारे वेद मनुष्य की बुद्धि की असमर्थता की कहानी हैं। सब धर्मशास्त्र एक संबंध में राजी हैं, कि आदमी कुछ भी करे, उसके किये का जाल इतना छोटा है, कि उस किये के जाल में परमात्मा नहीं पकड़ा जा सकता। और जितना ही तुम पकड़ने की कोशिश करते हो, उतना ही तुम पाते हो मुट्ठी खाली रह गयी।

परमात्मा को पाने के ढंग अलग हैं। वहाँ तुम्हारी पकड़ से काम न चलेगा, वहाँ सब पकड़ छोड़ देनी पड़ेगी। वहाँ तुम्हारे सोच-विचार से रास्ता न मिलेगा। वहाँ तो सब सोच-विचार छोड़ देना पड़ेगा। वहाँ तुम्हारे तर्क मार्ग पर काम न आएँगे, वही तो बाधाएँ हैं। वहाँ बुद्धि सीढ़ी न बनेगी, वही दीवाल है। जितना तुम अपनी बुद्धि पर भरोसा रखोगे उतना ही तुम पाओगे, कि तुम भटकते हो। वहाँ तो सारा भरोसा उसीपर छोड़ देना है।

बुद्धि पर भरोसा भी अहंकार है। बुद्धि के भरोसे का अर्थ है मैं खोज लूँगा। क्योंकि कभी तुमने सोचा, कि तुम जिसे खोज लोगे वह तुमसे छोटा हो जाएगा या नहीं? जिसे-जिसे मैं खोज लूँगा वह मुझसे छोटा हो जाएगा। जिसे मैं पा लूँगा वह मुझसे छोटा हो जाएगा। जो मेरी मुट्ठी में आ जाएगा वह मुझ से छोटा हो जाएगा। परमात्मा को तुम कैसे पा सकोगे? अगर तुमने पा लिया तो वह परमात्मा ही न रहेगा।

तो फिर परमात्मा को कैसे पाएँ? उसे पाने का ढंग बड़ा उलटा होगा। जो आदमी अपने को खोने को राजी है वह उसे पाता है। और उसके पाने का एक ही रास्ता होता है और वह यह है, कि तुम उसकी मुट्ठी में हो जाओ। हमारी चेष्टा है, कि वह हमारी मुट्ठी में हो जाए। हम उसे भी घर बाँध कर ले आएँ और हम लोगों को दिखा सकें कि देखो, हमने परमात्मा को भी पा लिया है।

यह कोशिश असफल होने ही वाली है। क्योंकि विराट को घर बाँध कर नहीं लाया जा सकता। आकाश को पोटली में बाँध कर नहीं लाया जा सकता। पोटलियाँ घर आ जाएँगी, आकाश नहीं आएगा। उसे पाने का रास्ता तो यह है कि तुम अपने को उसकी मुट्ठी में छोड़ दो।

इसलिए तो नानक बार-बार कहते हैं, कि हजार बार निछावर होऊँ तुझ पर, तो भी कम है। और जो तेरी मर्जी, वही शुभ है। जो तू कराए वही मार्ग है। जो तू बता दे, वही सत्य है।

इस सारे कथन का एक ही अर्थ है, कि मैं अपने को हटाता हूँ। मैं अपने को तुझ पर नहीं थोपूँगा। मेरी कोई मर्जी नहीं है, न मेरा कोई लक्ष्य है, और न मेरा कोई प्रयोजन है। मैं तुझ में बहूँगा।

इसीलिए श्रद्धा मूल्यवान है और तर्क घातक है। तर्क का अर्थ है, निर्णायक मैं हूँ। तर्क का अर्थ है, न्यायाधीश मैं हूँ। श्रद्धा का अर्थ है, न्यायाधीश तू है।

'लाखों पाताल हैं, लाखों आकाश हैं। उसके अंत की खोज करते-करते अनेकों थक गये। वेद यही बात कहते हैं।'

वेद शब्द बड़ा कीमती है। वेद से कुछ हिन्दुओं की चार किताबों का ही संबंध नहीं है। वेद शब्द से अर्थ है जिन्होंने भी जाना, उनके शब्द। वेद शब्द का अर्थ है, ज्ञानियों के शब्द। वेद बना है 'विद्' से। विद् का अर्थ होता है जानना। और वेद का अर्थ होता है उसके वचन, जिन्होंने जान लिया। बुद्धों के वचन, जिनों के वचन, ऋषियों के वचन। वेद से कुछ ऋग्वेद, अथर्ववेद इनका कोई संबंध नहीं है। वे भी ज्ञानियों के वचन हैं। लेकिन वहाँ भी किसीने जाना है। वहीं वेद निर्मित हो जाता है। तुम जान लोगे तो तुम्हारा वचन वेद हो जाएगा। वेद की कोई सीमा नहीं है। जितने जाननेवाले हैं उतना वेद बढ़ता जाता है। जितने जाननेवाले अतीत में हुए हैं, आज हैं और भविष्य में होंगे, उन सब के वचन वेद हैं। वेद का अर्थ है, सारभूत ज्ञान।

नानक कहते हैं, सारे वेद एक ही बात कहते हैं कि उसके अंत की खोज करते-करते अनेकों थक गये।

इसे थोड़ा ख्याल में ले लें। क्योंकि साधक के जीवन में इस थकने का बड़ा मूल्य है। जब तक तुम थक न जाओगे, तब तक तुम मिटने को राजी न होओगे। जब तक तुम बिलकुल ही न थक जाओगे तब तक तुम खुद को पकड़े ही रहोगे। एक ऐसी घड़ी आ जाएगी जब तुम्हारा कोई प्रयास सार्थक न मालूम पड़ेगा। जब तुम कुछ भी करोगे, तो भी तुम जानोगे, इससे कुछ होने वाला नहीं। जहाँ तुम्हारे कर्ता का भाव आखिरी पड़ाव पर आ जाएगा, कि जो भी मैं करता हूँ, व्यर्थ ! जो भी मैं खोज लेता हूँ, व्यर्थ ? जो भी मैंने पा लिया है, वह व्यर्थ ! जो मेरी वासनाएँ कह रही हैं, वह व्यर्थ; पा भी लूँगा तो क्या होगा ? जिस दिन तुम इतने गहन विषाद में भर जाओगे, कि मेरा किया कुछ भी नहीं होता। उसी दिन तुम अहंकार को छोड़ोगे, उसके पहले नहीं।

उसके पहले छोड़ोगे भी कैसे ? उसके पहले आशा बनी रहती है, कि कुछ न कुछ पा लूँगा। और थोड़े प्रयास की जरूरत है। अगर नहीं मिला अब तक, तो गलत खोज रहा हूँ। विधि बदलूँ, गुरु बदलूँ, मिल जाएगा। मंदिर से मस्जिद चला जाऊँ, मस्जिद से चर्च चला जाऊँ, चर्च से गुरुद्वारा चला जाऊँ, बदलाहट कर लूँ। जब तक तुम बिलकुल नहीं थक गये हो, पूर्ण नहीं थक गये हो, विषाद समग्र नहीं हो गया, तब तक तुम अहंकार को पकड़े ही रहोगे।

बुद्ध के जीवन में घटना है, कि बुद्ध ने छह वर्ष तक बड़ी खोज की। शायद ही किसी मनुष्य ने इतनी त्वरा से खोज की हो। सब कुछ दाँव पर लगा दिया। जो भी जिसने बताया उसे पूरा-पूरा किया। तो कोई भी गुरु बुद्ध को यह न कह सका, कि तू पहुँच नहीं रहा हैं क्योंकि तेरी चेष्टा कम है, यह तो असंभव था। यह तो कहना ही संभव न था। क्योंकि चेष्टा तो उनकी इतनी समग्र थी कि उस संबंध में कोई भी शिकायत न की जा सकती थी। जो जिसने कहा, वह उन्होंने पूरी तरह किया।

किसी गुरु ने कहा कि सिर्फ एक चावल के दाने पर--रोज एक चावल का दाना भोजन में लेकर—तीन महीने तक रहो, तो वे वैसे ही रहे। सूख कर हड्डी-हड्डी हो गये। पीठ-पेट एक हो गये। श्वाँस लेना तक मुश्किल हो गया। क्योंकि इतनी कमजोरी आ गयी। जो जिसने बताया वह उन्होंने पूरा किया। सब कर डाला, ज्ञान नहीं हुआ। क्योंकि किये से कभी ज्ञान नहीं होता।

सब कर डाला लेकिन उसमें भी कर्ता का भाव तो बना ही रहा। उपवास किया, जप किया, तप किया, योग साधा, लेकिन भीतर एक सूक्ष्म अहंकार बना ही रहा, कि मैं कर रहा हूँ। मुट्ठी बँधी रही। मैं मौजूद रहा।

और उसे पाने की तो शर्त एक है, कि 'मैं' खो जाए। इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम दूकान चला रहे हो, कि पूजा कर रहे हो ? दोनों हालत में मैं तो बना ही रहता है। दूकान भी तुम चलाते हो, पूजा भी तुम करते हो। दोनों दूकानें हैं। जहाँ तक अहंकार है, वहाँ तक दूकान है। जहाँ तक अहंकार है, वहाँ तक व्यवसाय है, वहाँ तक संसार है। जिस क्षण अहंकार गिरता है उसी क्षण परमात्मा शुरू होता है। इधर तुम गिरे, उधर वह हुआ। तुम गये बाहर, वह आया भीतर। और दोनों एक साथ न रह सकोगे। वहाँ दुई नहीं चल सकती। वहाँ एक ही रह सकता है--या तो तुम या वह !

अंततः बुद्ध थक गये। सब कर लिया, कुछ भी न पाया। हाथ खाली के खाली रहे। निरंजना नदी में स्नान कर के निकलते थे, वे इतने कमजोर थे, कि निकल न सके। नदी बहाने लगी। तैरने की भी क्षमता नहीं। सिर्फ किनारे से लटकी एक वृक्ष की शाखा को पकड़ कर लटके रहे। उस क्षण उन्हें विचार आया, कि मैंने सब कर लिया और कुछ न पाया। सच तो यह है कि यह सब करने में मैंने अपनी सारी शक्ति भी गँवा दी। और जब मैं इतना कमजोर हो गया, कि इस छोटी सी नदी को पार नहीं कर पाता, तो भवसागर को कैसे पार कर पाऊँगा ? यह कर-कर के इतना ही हाथ लगा। संसार तो पहले ही व्यर्थ हो गया था। वह तो दौड़ बेकार हो गयी थी। राजमहल पहले ही व्यर्थ हो गया था। धन मिट्टी हो चुका था। उस क्षण थकान इतनी गहरी हो गयी भीतर, कि अध्यात्म भी व्यर्थ हो गया। मोक्ष भी व्यर्थ हो गया। बुद्ध के मन में उस क्षण उठा, कि न तो संसार में कुछ पाने योग्य है, न मोक्ष में कुछ पाने योग्य है, और न तो कोई और कुछ पा सकता है। यह सारी कथा ही व्यर्थ है। यह सारी दौड़-धूप व्यर्थ है।

किसी तरह बाहर निकले। वृक्ष के नीचे बैठ गये। और उस क्षण उन्होंने सारी चेष्टा छोड़ दी, क्योंकि कुछ पाने को ही न रहा। और पा-पा कर, सब प्रयास कर के देख लिया, कुछ मिलता भी नहीं। विषाद परिपूर्ण हो गया-- 'फस्ट्रेशन टोटल'; अब रत्तीभर आशा न रही। जब तक आशा है तब तक अहंकार बना रहेगा। उस रात उस वृक्ष के नीचे वे सो गये। वह पहली रात थी जन्मों-जन्मों के बाद, जब पाने को कुछ भी नहीं था, जाने को कहीं नहीं था। कुछ बचा नहीं था। अगर मृत्यु उसी वक्त आ जाती तो बुद्ध यह न कहते मृत्यु से, कि एक क्षण रुक जा। क्योंकि जरूरत न थी। सब आशाएँ टूट गयीं।

थकान का अर्थ है, जहाँ सब आशा के इंद्रधनुष गिर गये। सब सपने बिखर गये। उस रात बुद्ध सो गये। उस रात कोई सपना भी न उठा। जब पाने को ही कुछ न रहा तो सपने उठने बंद हो जाते हैं। उस रात कोई विचार भी मन में न आया। क्योंकि सब विचार वासनाओं के अनुचर हैं। वे वासनाओं के पीछे चलते

हैं। वासना आगे चलती है, विचार पीछे छाया की तरह चलते हैं। वे वासना के चाकर हैं। कोई वासना नहीं, तो विचार भी नहीं हैं।

सुबह नींद खुली। रात का आखिरी तारा डूबने के करीब था। बुद्ध की आँखें खुलीं। उठ कर भी करने को कुछ नहीं था। आज सब व्यर्थ हो गया था। कल तक तो दौड़ थी, आत्मा पानी थी, धर्म पाना था, परमात्मा पाना था। आज कुछ भी पाना नहीं था। अब अपने किये कुछ होता ही नहीं; तो पड़े रहे। आखिरी तारा डूबता गया, और वह चुपचाप देखते रहे, और कथा है, कि उसी क्षण उन्हें ज्ञान उपलब्ध हुआ।

क्या हुआ उस क्षण में? जो इतना पा कर न मिला, जो इतनी कोशिश से न मिला, जो इतने दौड़ने से न मिला, उस रात क्या घटा? उस सुबह कौन अनूठी बात हुई, कि वृक्ष के नीचे लेटे बुद्ध परम ज्ञान को उपलब्ध हो गये? घटना यह घटी, जिसकी नानक बात कर रहे हैं, थकान आ गयी, अहंकार बिलकुल ही बिखर गया। मेरे किये कुछ भी न होगा, प्रयास छूट गया।

और जैसे ही प्रयास छूटता है प्रसाद उपलब्ध होता है। जैसे ही तुम्हारी आशा खत्म हो जाती है, जैसे ही तुम्हारी दौड़-धूप रुक जाती है, आपाधापी बंद होती है, जैसे ही तुम्हारा अहंकार गिर जाता है, मुट्ठी खुल जाती है।

ख्याल किया तुमने, कि मुट्ठी को खोलना नहीं पड़ता, बाँधना पड़ता है। बँधी मुट्ठी में श्रम होता है। जब तुम मुट्ठी बाँधे हो, तो मेहनत करनी पड़ती है। अगर तुम कुछ न करोगे तो मुठ्ठी अपने आप खुल जाएगी, क्योंकि खुला होना स्वभाव है। बंद मुट्ठी चेष्टा से होती है। प्रयास करना पड़ता है। खुलती अपने आप है। खोलने के लिए थोड़े ही कुछ करना पड़ता है? बस, बाँधो मत; खुल जाती है। बाँधने के लिए कुछ करना पड़ता है; खोलने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। उस सुबह बिना कुछ किये मुठ्ठी खुल गयी।

कबीर ने कहा है--'अनकीये सब होय।' उस क्षण कुछ भी नहीं किया था और सब हो गया। थक गये! थक गये, अहंकार गिर गया। इधर गया अहंकार बाहर घर के, उधर परमात्मा का प्रवेश!

नानक कहते हैं, वेद एक ही बात कहते हैं कि उसके अंत की खोज करते-करते अनेकों थक गये। और जब थके, बस, तभी ज्ञान उपलब्ध हो गया। तुम अगर थक जाओ, तो ही उसे पा सकोगे। तुम्हारी थकान से ही उसका आगमन होगा। जब तक तुम थके नहीं हो, तब तक तुम उसे न पा सकोगे।

इसलिए सारे योग--एक ही लक्ष्य है उनका, कैसे तुम्हें थका दें। योग से परमात्मा नहीं मिलता, योग से सिर्फ अहंकार थकता है। विधियों से परमात्मा नहीं मिलता, विधियों से केवल तुम थकते हो। और एक ऐसी थकान की, परिपूर्ण

विश्रांति की अवस्था आ जाती है, जब मुट्ठी खुल जाती है। तुम इतने थके होते हो, कि मुट्ठी बाँध भी नहीं सकते।

खोजते-खोजते अनेक थक गये, और वेद एक ही बात कहते हैं। जब कोई थक जाता है, तभी उपलब्धि हो जाती है।

इसीलिए तो सद्‌गुरुओं ने कहा है, कि परमात्मा प्रसाद से मिलता है प्रयास से नहीं। कृपा से मिलता है, उसकी अनुकंपा से मिलता है, तुम्हारी चेष्टा से नहीं। अगर तुम्हारी चेष्टा से मिलेगा तो तुमसे छोटा हो जाएगा। अनुकंपा से मिलता है। तुमसे छोटा नहीं है, तुमसे बड़ा है। और जैसे ही तुम खाली होते हो तुम भर दिये जाते हो।

वर्षा होती है; पहाड़ पर भी होती है, झील में भी होती है। झील में तो भर जाता है पानी, पहाड़ खाली का खाली रह जाता है। पहाड़ पहले से ही भरा हुआ है जगह ही नहीं, कि वर्षा भर सके। झील खाली है। तो गड्ढों में तो जल भर जाता है और झील बन जाती है। पहाड़ जो भरे ही हुए हैं, खाली के खाली रह जाते हैं।

परमात्मा तो सब पर एक सा बरसता है। उसके लिए कोई भेदभाव नहीं। अस्तित्व सब के लिए एक सा है। वहाँ रत्ती भर का अंतर नहीं है। वहाँ योग्य अयोग्य का हिसाब नहीं है। पापी और पुण्यात्मा का भी कोई हिसाब नहीं है। परमात्मा सभी पर बरसता है, जैसे सभी के ऊपर आकाश का साया है। लेकिन जो खुद से भरे हैं, वे वंचित रह जाते हैं। क्योंकि उनके भीतर जगह नहीं है। और जो खुद से खाली हैं, वे भर जाते हैं क्योंकि उनके भीतर जगह है।

खुदी मिटते ही खुदा हो जाता है। और खुदी तब तक नहीं मिटती जब तक आशा है, कि पा लूँगा।

'कतेबों--अंजिल, कुरान, तुरेत का कहना है, कि अठारह आलम हैं लेकिन तत्त्वतः एक ही सत्ता है।'

'सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु।'

लेकिन इस सारे अनंत विस्तार में छिपा है एक। विस्तार अनेक हैं, अनंत रूप हैं, लेकिन जो छिपा है, वह एक है। और अगर तुमने विस्तार पर ध्यान दिया तो तुम संसार में भटक जाओगे। और अगर तुमने एक पर नजर रखी, तो तुम परमात्मा पर पहुँच जाओगे।

इसे ऐसा समझो, एक माला है, उसमें मनके हैं, मनके अनेक हैं। हर मनके के भीतर लेकिन एक ही धागा पिरोया हुआ है; अनुस्यूत एक ही धागा है।

अगर तुमने मनके पकड़े, तो तुम संसार में भटक जाओगे। अगर तुमने धागा पकड़ लिया, तो तुम परमात्मा को उपलब्ध हो जाओगे।

सतह पर सागर के अनेक लहरें हैं, अनंत लहरें हैं। अगर तुमने सागर पर ध्यान न दिया और लहरों का ख्याल किया, तो तुम भटकते ही चले जाओगे। क्योंकि लहरें बनती ही रहेंगी, मिटती ही रहेंगी। उनका कोई पारावार नहीं है। एक लहर दूसरे में ले जाएगी, दूसरी तीसरे में ले जाएगी। तुम लहरों पर भटकती हुई एक क्षुद्र कागज की नाव जैसे हो जाओगे, जो इस लहर से उस लहर में जाएगी। इस लहर में डूबेगी, उस लहर में डूबेगी। इधर दुःख पाएगी, उधर दुःख पाएगी। तुम मंजिल तक नहीं पहुँच पाओगे क्योंकि लहरों में मंज़िल नहीं हो सकती। लहरों में तो परिवर्तन है। और मंजिल तो शाश्वत होगी। लहरों में विश्राम नहीं हो सकता। विश्राम तो वहाँ होगा, जहाँ सब लहरें शांत हो जाती हैं। वहाँ तुम उसे पा लेते हो, जो बदलता ही नहीं।

तुमने ख्याल किया ? जितनी तुम्हारे जीवन में बदलाहट होती है, उतनी ही अशांति होती है। इसलिए तो आज की दुनिया में बहुत अशांति बढ़ गयी है। क्योंकि बदलाहट बहुत बढ़ गयी है। बदलाहट प्रतिपल हो रही है। वैज्ञानिक हिसाब लगाते हैं, कि ईसा के पहले पाँच हजार साल में जितनी बदलाहट होती थी, ईसा के बाद हजार साल में उतनी बदलाहट होने लगी। फिर ईसा के हज़ार साल बाद दो सौ वर्षों में उतनी बदलाहट होने लगी। इस सदी में पहुँचते-पहुँचते, ईसा के पहले पाँच हज़ार साल में जितनी बदलाहट होती थी उतनी अब पाँच साल में होती है। इस सदी के पूरे होते-होते उतनी बदलाहट पाँच महीनों में होने लगेगी। बदलाहट इतनी तीव्रता से हो रही है, कि तुम ठहर ही नहीं पाते एक लहर पर, कि दूसरी लहर आ जाती है।

अगर तुम बूढ़े आदमियों से गाँव में जा कर पूछो, तो वे कहेंगे, उनका गाँव करीब-करीब वैसा ही रहा है, जैसा था। जब वे जन्मे थे तब भी ऐसा था, अब भी वैसा है। लेकिन तुम्हारे शहर, जो कि भविष्य के नकशे हैं, वहाँ कुछ भी दूसरे दिन वैसा नहीं है। सब बदल रहा है। और पश्चिम में तो बदलाहट बड़ी भयंकर हो रही है।

अमरीका में आदमी तीन साल से ज्यादा एक गाँव में नहीं रहता। औसत आदमी के रहने की व्यवस्था तीन साल हो गयी है। हर तीन साल में दूसरे गाँव में पहुँच जाता है। और यह तो औसत आदमी की बात है। इसमें पचास प्रतिशत तो ऐसे लोग हैं, जो काफी देर तक रुकते हैं, उनका भी हिसाब जोड़ा हुआ है। कुछ लोग तो हर दो चार महीने में बदल रहे हैं। गाँव बदलता है, हवा बदलती है, मौसम बदलता है, कपड़े बदलते हैं, कार बदलती है, खाना बदलता

है, लहरें बढ़ती जाती हैं। और तुम्हारे मन को ऐसा लगता है, जितनी बदलाहट होती है, उतना तुम सुख पा रहे हो।

जितनी बदलाहट होती है, उतना तुम दुःख पा रहे हो। क्योंकि हर बार जैसे पौधे को उखाड़ना पड़े उसकी जड़ों से, फिर नयी जगह लगाना पड़े, फिर उखाड़ना पड़े, फिर नयी जगह लगाना पड़े——तुम लग भी नहीं पाते, तुम्हारी जड़ें बैठ भी नहीं पातीं एक लहर में, कि दूसरी लहर आ जाती है।

जितना परिवर्तन होता है, उतना जीवन नारकीय हो जाएगा। इसलिए पश्चिम में नर्क बहुत सघन हो गया है। प्राचीन दिनों में पूरब बड़ा शांत था क्योंकि परिवर्तन न के बराबर था। चीजें ठहरी हुई थीं। और उस ठहराव से सागर में उतरना आसान था। क्योंकि जड़ें जमी हुई थीं। और गहरे उतरने की हिम्मत होती थी।

ध्यान रखना एक बात; लहर के साथ अगर तुम बहते रहे तो तुम सांसारिक हो। और अगर लहर में तुमने धीरे-धीरे सागर को खोजना शुरू कर दिया, तुम संन्यासी हो गये। परिवर्तन में शाश्वत की खोज संन्यास है। बदलते हुए में न बदलते हुए को पकड़ लेने की कला संन्यास है। वही धर्म है। वही सारे वेदों, सब कुरानों, सब इंजिलों का......

नानक कहते हैं, 'कतेबों का कहना है कि अठारह हजार आलम हैं। अठारह हजार अस्तित्व हैं, लेकिन तत्त्वतः एक ही सत्ता है।'

तुम किसको पकड़ोगे, इसपर निर्भर करेगा। दोनों खुले हैं। चाहो तो परिवर्तनशील को पकड़ लो, जो आता है, जाता है। और चाहो तो उसे पकड़ लो, जो न कभी आता है और न कभी जाता है, सदा है। और जिसकी छाती पर सब परिवर्तन होते हैं और घटते हैं और जो अपरिवर्तित बना रहता है।

जिसने उस एक को पकड़ लिया, उसके जीवन में आनंद की वर्षा हो जाती है। और जिसने अनेक को पकड़ा, वह एक दुःख से दूसरे दुःख में जाता है। उसे सुख कभी मिलता नहीं। बस, सुख का उसे आभास मालूम होता है। जब एक दुःख से दूसरे दुःख में जाता है, तो बीच में जो थोड़ा सा अंतराल होता है बदलाहट का, उसमें उसे सुख की आशा होती है।

तुमने कितनी बार मकान बदले ! कितनी बार कार बदली ! जब तुम पुरानी कार को बदलते हो नयी कार से, तो बदलाहट के बीच में थोड़ा सा अंतराल होता है, जिसमें तुम्हें लगता है बड़ा सुख मिलने वाला है। लेकिन ऐसा ही तुम्हें पहले भी लगा था, जब तुमने पहली कार बदली थी। और ऐसा ही तुम्हें फिर लगेगा जब तुम फिर कार बदलोगे। एक पत्नी से दूसरी पत्नी को

बदल लो, एक पति को दूसरे पति से बदल लो। बस, बीच में एक आशा की किरण मालूम होती है।

ऐसे ही, जैसे तुमने देखा हो लोग मरघट ले जाते हैं किसीकी लाश को कंधों पर, तो रास्ते में कंधा बदलते हैं। एक कंधे पर वजन बढ़ जाता है, उठा कर दूसरे पर रख लेते हैं। बस थोड़ी देर को। लगता है कि राहत मिली। क्योंकि वजन तो वही का वही है। राहत मिलेगी कैसे ? बस, कंधा थोड़ी देर में थक जाता है, फिर कंधा बदल लेते हैं।

तुम कंधे बदल रहे हो। बस बीच में थोड़ा सा आसार लगता है, कि सुख मिला। सुख तुम्हें कभी मिला नहीं। लौट कर तुम देखो, तुम्हें एक क्षण को ऐसा नहीं मालूम पड़ेगा जब तुमने सुख को जाना हो, जिसके लिए तुम परमात्मा को धन्यवाद दे सको। दुःख ही दुःख है। और लोग एक दुःख से दूसरे दुःख में बदलते रहते हैं। पुराना दुःख छोड़ते हैं नया पकड़ते हैं। थोड़े दिन में यह भी पुराना हो जाता है। फिर उसे छोड़ते हैं, फिर नया पकड़ते हैं। आशा बनी रहती है, कि कभी सुख मिलेगा।

यह रास्ता सुख को पाने का नहीं। क्योंकि तुम लहरों को लहरों से बदल रहे हो। सुख को पाने का रास्ता है, लहर से सागर में उतरना। लहरें अनेक, सागर एक। अठारह हजार होंगे अस्तित्व, लेकिन सत्ता एक है। सब के भीतर एक ही छिपा है। सारे जीवन की कला इस एक छोटे सूत्र में पूरी हो जाती है, कि तुम एक को खोज लो। तुम धागे को पा लो।

'यदि उसका लेखा हो तो लिखें; लेकिन सब लेखा-जोखा मिट जानेवाला है। नानक कहते हैं, वह सबसे महान है और वह अपने को आप ही जानता है।'

'लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होई विणासु ।
नानक वडा आखीऐ, आपे जाणै आपु ॥'

उसके संबंध में कुछ लिखा नहीं जा सकता, क्योंकि लिखा हुआ तो मिट जाता है। और वह कभी मिटता नहीं। तो जो कभी मिटता नहीं उसे मिटने वाली चीज कैसे खबर देगी ? सब लेखे खो जाते हैं। कितने शास्त्र खो चुके हैं। जितने शास्त्र आज हैं, वे भी सभी खो जाएँगे। कितने शब्द पैदा हुए जगत में और लीन हो गये, लेकिन सत्य तो बना हुआ है।

तो दोनों का गुणधर्म अलग है, क्वॉलिटी अलग है। जो लिखा जाता है, वह तो मिट जाएगा। जो बिना लिखा है, अगर तुम कोरे कागज को पढ़ना सीख लो तो तुम परमात्मा को समझ पाओगे।

ऐसा हुआ, महाराष्ट्र में ही हुआ। तीन संत हुए। एकनाथ हुए, निवृत्तीनाथ हुए और एक फकीर औरत हुई, मुक्ताबाई। एकनाथ ने पत्र लिखा

निवृत्तीनाथ को। लेकिन पत्र कोरा कागज था। उसमें कुछ लिखा नहीं था। बस, खाली कागज संदेशवाहक के हाथ भेजा था। निवृत्तीनाथ के हाथ में कागज गया, उन्होंने बड़े रस से पढ़ा। लिखा उसमें कुछ भी नहीं था। पर बड़े गौर से पढ़ा। और पढ़ कर फिर मुक्ताबाई को दिया, कि तुम भी पढ़ो। फिर मुक्ताबाई ने भी उसे गौर से पढ़ा। और फिर दोनों आनंद-भाव से प्रसन्न हुए। और संदेशवाहक को कहा, कि हमारा पत्र ले जाओ उत्तर में। और वही कोरा कागज वापिस दे दिया।

संदेशवाहक बड़ी मुश्किल में पड़ा। पहले जब लाया था तब तो उसे पता नहीं था, कि कागज कोरा है। लिफाफे में बंद था। अब तो उसने देख लिया, कि उसमें कुछ लिखा नहीं। उसने कहा, "महाराज, इसके पहले कि मैं जाऊँ, एक छोटी सी जिज्ञासा मेरी भी पूरी कर दें। लिखा कुछ भी नहीं है, तो पढ़ा कैसे ? और न केवल आपने पढ़ा, मुक्ताबाई ने भी पढ़ा, और आप दोनों प्रसन्न भी हुए, और इतने गौर से पढ़ा कि जरूर कुछ पढ़ा ! मुझे भी लगा। क्या पढ़ा ? और फिर यही कागज आप वापिस भेज रहे हैं बिना कुछ लिखे"

निवृत्तीनाथ ने कहा, कि एकनाथ ने खबर भेजी है कि अगर 'उसे' पढ़ना है तो खाली कागज पर पढ़ना पड़ेगा। और भरे कागज पर तुम जो भी पढ़ोगे वह 'वह' नहीं है। हम राजी हैं। हम समझ गये बात, यही उत्तर है हमारा, कि हम समझ गये। हम राजी हैं। बात बिलकुल ठीक है।

किताबें तो लिखी हुई हैं, परमात्मा तो अनलिखा है। किताबें कैसे उसे कहेंगी ? अनलिखे को पढ़ना सीखना हो तो वेद पढ़ो, गुरुग्रंथ पढ़ो, कुरान पढ़ो, लिखे हिस्से को छोड़ देना। गैर-लिखे को सम्हाल लेना। पंक्तियों के बीच में, शब्दों के बीच में जहाँ-जहाँ खाली जगह हो, उसको पढ़ लेना। उसको गुन लेना।

अगर तुमने लिखे को पढ़ा तो तुम पंडित हो जाओगे, अगर तुमने अनलिखे को पढ़ा तो ज्ञानी हो जाओगे। अगर लिखे को याद कर लिया तो तुम्हारे पास बड़ी सूचनाएँ इकट्ठी हो जाएँगी, और अगर अनलिखे को याद कर लिया तो तुम छोटे बच्चे की तरह सरल हो जाओगे। और अनलिखे से द्वार है।

इसलिए नानक कहते हैं, उसका कोई लेखा है जो लिखा जा सके ? किसीने भी उसके संबंध में कुछ जाना है, जिसको जानकारी बनाया जा सके ? कोई सूचना उसकी सूचना नहीं बन सकती। जिन्होंने जाना है वे तो चुप हैं। अगर वे कुछ कहते भी हैं, तो केवल चुप्पी की तरफ इशारा करने को कहते हैं। अगर उन्होंने कुछ लिखा भी है, तो इसलिए लिखा है ताकि तुम अनलिखे को पढ़ना शुरू करो।

न उसका कोई लेखा है जो लिखा जा सके, और जो लिखा गया है वह सब तो मिट जानेवाला है। कितना ही सम्हालो किताबों को, वे खो ही जाएँगी। कागज की किताबें हैं। स्याही से लिखे अक्षर हैं। इससे ज्यादा परिवर्तनशील तुम और कुछ पाओगे ? कागज की नाव समझो !

जो लोग शास्त्रों पर सवार हो कर परमात्मा तक पहुँचने की कोशिश कर रहे हैं, वे कागज की नाव पर सवार हैं। नावें तो डूबेंगी ही, उनके साथ यात्री भी डूबेंगे। तुम कागज की नाव पर मत जाना। बच्चों को खेलने के लिए ठीक हैं कागज की नावें, यात्रा करने के लिए उचित नहीं हैं। और यह यात्रा महान है। इससे बड़ी कोई यात्रा नहीं है। क्योंकि इससे महान कोई सागर नहीं है।

नहीं, शास्त्र से काम न चलेगा। शास्त्र का इंगित समझ लेना। और इशारा एक ही है, कि तुम खाली हो जाओ।

लेकिन आदमी की मूढ़ता का कोई अंत नहीं। जो हमसे कहते हैं खाली हो जाओ, हम उन्हींको पकड़ कर अपने को भर लेते हैं। हम उन्हींको अपनी खोपड़ी में सम्हाल कर रख लेते हैं। फिर हम परिवर्तनशील के चक्कर में पड़ जाते हैं। और, हमारी आकांक्षाएँ और हमारी बुद्धि--जिसको हम बुद्धि कहते हैं, जरा भी बुद्धिमानी की खबर नहीं देती।

मैंने सुना है, कि सिकंदर उस जल की तलाश में था जिसे पीने से लोग अमर हो जाते हैं। बड़ी प्रसिद्ध कहानी है उसके संबंध में; अमृत की तलाश में था। कहते हैं कि दुनिया भर को जीतने का उसने जो आयोजन किया, वह भी अमृत की तलाश के लिए।

और कहानी है, कि आखिर उसने वह जगह पा ली। वह उस गुफा में प्रवेश कर गया, जहाँ अमृत का झरना है। आनंदित हो गया। जन्मों-जन्मों की जीवन की आकांक्षा की तृप्ति का क्षण आ गया। सामने कल-कल नाद करता हुआ झरना है। इसी गुफा की तलाश थी।

झुका ही था कि अंजलि में भर ले अमृत को और पी जाए, अमर हो जाए, कि एक कौवा बैठा हुआ था गुफा के भीतर। वह जोर से बोला, 'ठहर, रुक ! यह भूल मत करना।' सिकंदर ने कौवे की तरफ देखा। बड़ी दुर्गति की अवस्था में था कौवा। पहचानना मुश्किल था कि कौवा है, पंख झड़ गये थे, आँखें अंधी हो गयीं थीं। ऐसा जीर्ण-शीर्ण उसने कौवा ही नहीं देखा था। बस, कंकाल था। सिकंदर ने पूछा रोकने का कारण ? और रोकनेवाला तू कौन ?

कौवे ने कहा, मेरी कहानी सुन लो। मैं भी अमृत की तलाश में था। और यह गुफा मुझे भी मिल गयी थी, और मैंने यह अमृत पी लिया। और अब मैं मर

नहीं सकता। और अब मैं मरना चाहता हूँ। देखो मेरी हालत ! आँखें अंधी हो गयी हैं, देह जराजीर्ण हो गयी है, पंख झड़ गये हैं, उड़ नहीं सकता, पैर गिर गये हैं, गल गये हैं, लेकिन मर नहीं सकता। एक बार मेरी तरफ देख लो। फिर तुम्हारी मर्जी हो, तो अमृत पी लो।

लेकिन अब मैं चिल्ला रहा हूँ, चीख रहा हूँ, कि मुझे कोई मार डाले, लेकिन मारा नहीं जा सकता। जी भी नहीं सकता क्योंकि जीने के सब उपकरण क्षीण हुए जा रहे हैं। और मर भी नहीं सकता क्योंकि यह अमृत दिक्कत हो गया है। और अब प्रार्थना एक ही कर रहा हूँ परमात्मा से कि मुझे मार डालो, मुझे मार डालो। बस, एक ही आकांक्षा है कि किसी तरह मर जाऊँ। अब मर नहीं सकता। रुक जाओ; सोच लो एक दफा, फिर तुम्हारी मर्जी !

और कहते हैं सिकंदर सोचता रहा, और चुपचाप गुफा से बाहर वापिस लौट आया। उसने अमृत पिया नहीं।

तुम जो भी चाहते हो अगर वह पूरा हो जाए तो भी तुम मुश्किल में पड़ोगे। अगर वह पूरा न हो, तो तुम मुश्किल में पड़ते हो। तुम मरना नहीं चाहते। अगर यह हो जाए, गुफा तुम्हें मिल जाए और तुम अमृत पी लो, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तब--तब तुम पाओगे अब जी कर क्या करें ? और जब जीवन तुम्हारे हाथ में था, जब तुम जी सकते थे, तब तुम आकांक्षा करते थे कि अमृत मिल जाए क्योंकि जब मृत्यु है, तो जियें कैसे ? न मृत्यु के साथ जी सकते हो, न अमृत के साथ जी सकते हो। न गरीबी में जी सकते हो, न अमीरी में जी सकते हो। न नर्क में, न स्वर्ग में। और फिर भी तुम अपने को बुद्धिमान समझते हो !

सूफी फकीर हुआ बायजीद। वह अपनी प्रार्थना में परमात्मा से कहता था, मेरी प्रार्थनाओं का ख्याल मत करना। तू उन्हें पूरी मत करना। क्योंकि मेरे पास इतनी बुद्धिमत्ता कहाँ है, कि मैं वही माँग लूँ जो शुभ है !

आदमी बिलकुल बुद्धिहीन है। वह जो भी माँगता है उसीके जाल में भटकता है। अगर पूरा हो जाता है, तो मुश्किल खड़ी हो जाती है। पूरा नहीं होता, तो मुश्किल खड़ी होती है। तुम सोच कर देखो, अतीत में लौटो। अपनी जिंदगी का एक दफा लेखा-जोखा करो। तुमने जो माँगा, उसमें से कुछ पूरा हुआ है। उससे तुम्हें सुख मिला ? तुमने जो माँगा उसमें से कुछ पूरा नहीं हुआ है, उससे तुम्हें सुख मिला ? तुम दोनों हालत में दुःख पा रहे हो। जो माँगा है उससे उलझ गये, जो मिला है उससे उलझ गये। जो नहीं मिला है, उससे उलझे हुए हो।

बुद्धिमानी क्या है ? बुद्धिमत्ता का लक्षण क्या है ? बुद्धिमत्ता का लक्षण है, उस सूत्र को माँग लेना जिसे माँग लेने से फिर दुःख नहीं होता। इसलिए धार्मिक

व्यक्ति के अतिरिक्त कोई बुद्धिमान नहीं है। क्योंकि सिर्फ परमात्मा को माँगनेवाला ही पछताता नहीं। बाकी तुम जो भी माँगोगे, पछताओगे।

इसे तुम गाँठ बाँध कर रख लो। तुम जो भी माँगोगे, पछताओगे। सिर्फ परमात्मा को माँगनेवाला कभी नहीं पछताता। उससे कम में काम भी नहीं चलेगा। वही जीवन का गंतव्य है।

लेकिन क्या तुम उस परमात्मा को शास्त्रों में पा सकोगे? नानक कहते हैं, वहाँ तुम उसे न पा सकोगे। वहाँ तुम्हें शब्द मिल जाएँगे, सिद्धांत मिल जाएँगे, सत्य नहीं मिलेगा। सत्य कहाँ मिलेगा? सत्य, नानक कहते हैं—

'वह सबसे महान है, और वह अपने को आप ही जानता है।'

तुम उसे दूर-दूर रह कर न जान सकोगे। तुम जब उसमें डूब जाओगे तभी उसे जान सकोगे। सत्य का वही एक मार्ग है। परमात्मा के साथ एक हुए बिना कोई सत्य को नहीं जान सकता।

हम पदार्थ के संबंध में जानकारी ले सकते हैं। विज्ञान इसी तरह की जानकारी है। दूर खड़े हो कर, बाहर खड़े हो कर वैज्ञानिक परीक्षण करते हैं, पदार्थ के संबंध में, ज्ञान हो जाता है। लेकिन परमात्मा के संबंध में कोई ज्ञान बाहर से नहीं हो सकता। वहाँ तो भीतर ही जाना होगा। वहाँ तो इतने भीतर जाना होगा जहाँ कि तुम्हारी और उसकी सीमा खो जाती है। तुम उसके हृदय की धड़कन बन जाते हो, वह तुम्हारे हृदय की धड़कन बन जाता है। जहाँ इतनी एकता सध जाती है, वहीं ज्ञान है।

शास्त्रों से यह कैसे होगा? शब्दों से यह कैसे होगा? यह तो प्रेम से ही हो सकता है। इसलिए नानक कहते हैं, बस, प्रेम कुंजी है। और अगर उसके नाम का प्रेम जग जाए, अगर उसकी धुन तुम्हारे भीतर बजने लगे, और तुम उसके प्रेम में पागल हो जाओ, तो तुम जान सकोगे।

शास्त्रों से तुम बुद्धिमानी मत समझना, कि तुम बुद्धिमानी कर रहे हो। वह नासमझी है। वहाँ तुम्हें बहुत से तर्क और सिद्धांत मिल जाएँगे। लेकिन असली चीज चूक जाएगी। तुम न तो अपने को जान सकोगे और न परमात्मा को। क्योंकि दोनों को जानने का एक ही मार्ग है। अगर तुम स्वयं को जानना चाहते हो तो परमात्मा के साथ एक हो जाओ। क्योंकि उसके साथ एक होने पर ही वह प्रज्ञा उपलब्ध होती है जिसको जानकारी हो सके, जानना हो सके। अगर तुम परमात्मा को जानना चाहते हो तो भी उसके साथ एक हो जाओ। क्योंकि जब तुम उसके साथ एक हो जाओगे तभी उसको पहचान सकोगे। स्वाद लिए बिना कोई रास्ता नहीं है। अन्यथा तुम्हारे सब तर्क बचकाने रहेंगे और मूढ़तापूर्ण रहेंगे।

ऐसा हुआ, कि मुल्ला नसरुद्दीन अस्सी साल का हो गया। और तब अचानक उसने अपने बेटे को बुला कर कहा, बड़े बेटे को, जिसकी उम्र कोई साठ साल होगी, कि मैंने फिर से विवाह का तय कर लिया है। तेरी माँ को मरे काफी महीने हो गये और अब मैं बिना स्त्री के नहीं रह सकता हूँ।

बेटा थोड़ा चिंतित हुआ, क्योंकि अस्सी साल में अब शादी? उसने कहा, 'लेकिन किससे शादी का इरादा है? कौन लड़की है?'

नसरुद्दीन ने कहा, कि सामने पड़ोसी की लड़की है।

लड़का हँसने लगा, उसने कहा, 'आप भी मजाक करते हैं। या सिर फिर गया? उसकी उम्र अठारह साल से ज्यादा नहीं है।'

नसरुद्दीन ने कहा, 'सिर फिर गया? जब मैंने तेरी माँ से शादी की थी तब उसकी उम्र भी अठारह साल थी; तो फर्क क्या है? अठारह साल से क्या फर्क पड़ता है?'

मनुष्य जितने तर्क खोजता है परमात्मा के संबंध में, वे ऐसे ही हैं। बाहर-बाहर हैं। बाहर से तो कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन यह तो याद ही नहीं आती, कि मैं अस्सी साल का हो गया हूँ। परमात्मा के संबंध में तर्क और सिद्धांत तुम बाहर से पकड़ने की कोशिश करते हो। तुम अपना स्मरण ही नहीं करते, कि तुम्हें भीतर प्रवेश करना है। और तुम्हें सिद्धांत का हिस्सा बनना है।

पंडित बाहर रहता है, ज्ञान उसके लिए सामग्री है जिसको वह जमाता है। लेकिन खुद बाहर रहता है। ज्ञानी भीतर चला जाता है। पंडित ज्यादा चालाक है, ज्यादा होशियार है। भीतर में नहीं पड़ता। बाहर-बाहर से हिसाब रखता है। लेकिन यह होशियारी मूढ़ता सिद्ध होती है। क्योंकि भीतर गये बिना कोई रास्ता नहीं।

यह ऐसे है जैसे कोई प्रेम के संबंध में किताबें पढ़ ले और सोचे, कि मैंने प्रेम को जान लिया। कोई सुबह के संबंध में किताबों में पढ़ ले और सोच ले, कि मैंने सुबह को जान लिया। कोई फूलों के संबंध में चित्र देख ले, और समझे कि मैंने फूलों को जान लिया। जानकारी हो जाएगी। लेकिन फूलों का साक्षात्, सुबह उगते सूरज का साक्षात्—वह साक्षात्, जिस में तुम भी एक हो जाते हो! सूरज बाहर नहीं रहता, अलग नहीं रहता। तुम और सूरज दोनों का मिलन हो जाता है। जहाँ तुम दोनों थोड़ी देर के लिए साथ-साथ धड़कते हो।

फूलों का साक्षात्, जहाँ उसकी सुगंध और तुम्हारा जीवन-अस्तित्व ओतप्रोत हो जाता है। एक दूसरे में लीन हो जाते हैं, एक दूसरे को छूता है, आनंदित होता है। एक दूसरे के साथ हवा में थिरकता है और नृत्य करता है। वह क्षण तो किताब से नहीं मिल सकता।

और जब साधारण फूलों के साथ एक होने का क्षण किताब से नहीं मिल सकता, तो परम फूल जीवन का, जो परमात्मा है, उसके साथ तो कैसे...कैसे शब्द और सिद्धांत का नाता जोड़ा जा सकता है ?

उससे तो नाता जोड़ना हो तो तुम्हें भीतर प्रवेश करना पड़े। इसलिए पागल ही प्रवेश करते हैं, बुद्धिमान वंचित रह जाते हैं। क्योंकि बुद्धिमानी तुम्हारी, चालाकी तुम्हारी, वस्तुतः बुद्धिमानी नहीं है। इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ है, बहुत बार कहना ठीक नहीं, सदा ही ऐसा हुआ है कि पागलों ने उसे पा लिया, समझदार पीछे रह गये।

नानक कहते हैं, बस एक ही उपाय है और वह है यह जानना—

'नानक बडा आखीए, आपे जाणै आपु।'

'वह महान है। और वह स्वयं ही अपने को जान सकता है।'

तुम उसे बाहर से न जान सकोगे जब तक कि तुम उसकी स्वयं-सत्ता में लीन न हो जाओ। तुम ही उसके साथ एक हो जाओ। परमात्मा को जानना हो तो परमात्मा हुए बिना और कोई उपाय नहीं। उसी ऊँचाई पर, उसी गहराई में, तुम भी पहुँच जाओ, तो ही उसे जान सकोगे। उसके साथ एक हो जाना पड़ेगा।

'स्तुति करनेवाले उसकी स्तुति करते हैं, उन्हें उसकी स्मृति नहीं मिली।'

'सालाही सालाहि एती, सुरति न पाइया।'

कितनी ही स्तुति करते रहो, और कहो कि तू महान है, लेकिन तुम स्तुति करके भी दूर ही बने रहोगे। फासला कायम रहेगा। वह भगवान होगा, तुम भक्त होओगे। तुम बोलते रहोगे शब्द; और शब्दों से बीच की दूरी घटेगी नहीं, बढ़ेगी।

तुम्हारी प्रार्थनाएँ वक्तव्य नहीं, श्रवण बनना चाहिए। तुम सुनो, तुम बोलो मत। तुम चुप होओ, ताकि वह बोल सके। तुम चुप होओ, ताकि तुम उसे सुन सको।

लेकिन तुम बोलते हो। इतने जोर-जोर से बोलते हो कि कबीर को कहना पड़ा, कि क्या तुम्हारा खुदा बहरा हो गया है, कि तुम इतने जोर-जोर से चिल्लाते हो? क्या उसके कान नहीं हैं? तुम किसके लिए चिल्ला रहे हो? और जोर-जोर से चिल्लाने से क्या तुम्हारी आवाज़ जल्दी पहुँच जाएगी?

'स्तुति करनेवाले उसकी स्तुति करते हैं लेकिन उन्हें उसकी सुरति नहीं मिली।'

'सुरति' शब्द बड़ा कीमती है। यह नानक के जीवन-साधना का सार शब्द है। और सभी संत सुरति में लीन हो जाते हैं। सुरति शब्द आता है बुद्ध से। बुद्ध 'स्मृति' शब्द का उपयोग करते हैं। उसका स्मरण! जिसको गुरजियेफ ने 'सेल्फ रिमेम्बरिंग' कहा है। जिसको कृष्णमूर्ति 'अवेयरनेस' कहते हैं—एक जागरुक भाव; उसको नानक 'सुरति' कहते हैं।

सुरति बहुत बारीक शब्द है। और समझने के लिए थोड़े से परोक्ष में से उतरना जरूरी है। एक माँ खाना बना रही है, वह खाना बनाती रहती है, उस का छोटा बच्चा खेल रहा है आसपास। वह खाना बना रही है। जहाँ तक ऊपर से देखो, उसका सारा ध्यान खाना बनाने में लगा है, लेकिन उसकी सुरति बच्चे में लगी है। वह बच्चा कहीं गिर न जाए! वह कहीं सीढ़ी के करीब तो नहीं पहुँच गया? वह कहीं झूले से नीचे तो नहीं उतर गया? उसने कोई चीज हाथ में तो न ले ली, जो नहीं खानी है?

काम में लगी है। लेकिन सारे काम में ओतप्रोत एक स्मरण है, वह बच्चे का है। माँ रात सोती है। आकाश में बादल गरजें, बिजली कड़के, तो भी नींद नहीं टूटती उसकी। और बच्चा थोड़ा सा कुनकुनाये, और उस की नींद टूट जाती है। तूफान गुजरता रहे घर के ऊपर से, माँ गहरी नींद में पड़ी रहती है। लेकिन बच्चा थोड़ी सी करवट ले, तो जल्दी उसका हाथ उठ जाता है। नींद में भी सुरति है। स्मरण बच्चे का बना है।

सुरति का अर्थ है, एक सातत्य स्मरण का। मनकों में धागे की तरह। सब तुम करते रहो संसार में, सुरति उसकी बनी रहे। उठो, बैठो, जो करने योग्य है करो, भागने से तो कुछ होगा नहीं। दूकान पर जाओगे, दफ्तर में जाओगे, फेक्टरी में काम करोगे, गड्ढा खोदोगे, धन भी कमाना होगा, बच्चों की चिंता भी लेनी होगी, सारा जाल है। इस सारे जाल के बीच, लेकिन स्मरण उसका बना रहे। यह सब ऊपर-ऊपर हो, भीतर-भीतर वह हो। यह सब तुम्हारे बाहर-बाहर रहे, वह तुम्हारे भीतर रहे। नाता उससे जुड़ा रहे।

इसलिए नानक कहते हैं, संसार छोड़ कर जाने की कोई भी जरूरत नहीं। सुरति को पा लो, कि तुम संन्यासी हो गये। सुरति सम्हल गयी कि सब सम्हल गया। और तुम जंगल भी भाग जाओगे तो क्या फायदा है, अगर सुरति संसार की बनी रही!

और अक्सर ऐसा होता है। लोग जंगल में बैठ जाते हैं जा कर, फिर यहाँ की याद करते हैं। मन का तो यह ढंग ही है, कि तुम जहाँ होते हो वहाँ की फिक्र ही नहीं करते। जहाँ नहीं होते, वहाँ की फिक्र करते हो। जब तुम यहाँ हो तब तुम्हें लगता है, हिमालय में बड़ा आनंद होगा। फिर तुम हिमालय पहुँच गये, तब

तुम सोचते हो, पता नहीं उधर बहुत आनंद आ रहा हो, पूना में। और पता नहीं हम भटक गये, सारी दुनिया तो वहीं है। सभी तो गलत नहीं हो सकते। अब हम यहाँ बैठे-बैठे क्या कर रहे हैं झाड़ के नीचे ?

वहाँ भी तुम रुपये गिनोगे। वहाँ भी तुम हिसाब लगाओगे। वहाँ भी पत्नी और बच्चों के चेहरे तुम्हारे आसपास घूमेंगे। तुम रहोगे हिमालय में लेकिन सुरति तो तुम्हारी यहाँ लगी रहेगी।

नानक कहते हैं, रहो तुम कहीं भी, सुरति परमात्मा में हो। स्तुति से कुछ न होगा, सुरति से होगा। क्योंकि स्तुति तो ऊपर-ऊपर होती है। सुरति भीतर-भीतर होती है। यह चिल्ला कर कहने की जरूरत नहीं, कि तुम महान हो, कि मैं पापी हूँ, कि तुम पतितपावन हो, कि मैं भिखारी हूँ और तुम दाता हो; यह कहने की क्या जरूरत ? इसको चिल्लाने से क्या होगा ? इसको तुम किसको बता रहे हो ? किसको तुम यह समझा रहे हो ?

नहीं ! सुरति की जरूरत है, स्तुति की नहीं। याद रखो उसकी। वह भूले न ! उसे तुम सम्हालो, रहो भीतर।

जैसे कि तुम्हें कोहिनूर हीरा मिल जाए; तुम उसे जल्दी से अपने खीसे में रख लो, गाँठ बाँध लो; फिर तुम बाजार जाओगे, सब्जी खरीदोगे, घर लौटोगे, मित्रों से बात करोगे, लेकिन सुरति हीरे की बनी रहेगी। वह तुम्हारी गाँठ में बँधा हुआ है। याददाश्त वहाँ लगी रहेगी। याददाश्त की चोट वहाँ पड़ती रहेगी। एक धीमी-धीमी भनक भीतर आती रहेगी, कि हीरा खीसे में है। तुम बीच-बीच में उसे टटोल कर भी देख लोगे, है या नहीं ! खो तो नहीं गया !

ऐसे ही तुम परमात्मा को सम्हालते रहो। और बीच-बीच में टटोल कर देखते रहो। रास्ते पर चलते एक क्षण को चौंक कर खड़े हो कर देख लो, कि भीतर सुरति का धागा चल रहा है कि नहीं ? खाना खाते वक्त एक क्षण रुक जाओ, आँख बंद करके देख लो, कि भीतर उसकी याद चल रही है या नहीं ?

धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, अभ्यास गहन होता जाता है। फिर तुम सोये भी रहो, तो भी उसकी याद चलती रहती है। और जब उसकी याद चौबीस घण्टे चलती रहती है, तब तुमने अपने और उसके बीच रास्ता बना लिया। तब तुम्हारे और उसके बीच सेतु बन गया। अब तुम जब चाहो आँख बंद करो और उसमें लीन हो जाओ। एक क्षण में रास्ता तैयार है। एक बार तुमने आँख बंद की, तुम उस में लीन हुए।

और जब तुम उससे लौटोगे वापिस संसार में तो ताजे, परिपूर्ण शक्ति से भरे, नये स्नान किये हुए, सद्यस्नात ! इसलिए नानक कहते हैं हजारों तीर्थों का स्नान सुरति में हो जाता है।

'स्तुति करनेवाले उसकी स्तुति करते हैं लेकिन उन्हें उसकी सुरति नहीं है। नदी और नाले समुद्र में गिरते हैं लेकिन वे उसको जान नहीं सकते।'

नदी-नाले समुद्र में गिर जाते हैं। लेकिन इतना थोड़ी काफी है, कि समुद्र में गिरने से कोई जान लेगा ? नदी-नाले को कोई होश नहीं। गिरते समुद्र में हैं लेकिन होश न होने से कुछ भी पता नहीं। हम भी चौबीस घण्टे परमात्मा में ही गिर रहे हैं। लेकिन हमें कोई होश नहीं है। चौबीस घण्टे हम उसीके आसपास घूम रहे हैं। बार-बार हम उस में गिरते हैं। हर मृत्यु में हम उसीमें गिरते हैं और हर जन्म में हम उसीसे पैदा होते हैं, लेकिन सुरति नहीं है।

तो हम भी नदी-नालों की भाँति हैं। सागर में भी गिर जाते हैं तो पता नहीं चलता, कि क्या हो रहा है ? होश नहीं है; बेहोश हैं, मूर्छित हैं। एक नशे में चल रहे हैं। जागे नहीं हैं, सोये हुए हैं। एक तन्द्रा पकड़े हुए हैं। नदी और नाले विराट सागर में गिर कर भी वैसे ही दीन बने रहते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता, कि क्या हो गया ?

हम भी प्रतिक्षण उसीमें जाते हैं और आते हैं। अगर गौर करोगे और धीरे-धीरे सुरति जगेगी, तुम पाओगे हर श्वाँस उसीमें जाती है और उसीसे वापस लौटती है। श्वाँस बाहर जाती है तब तुम परमात्मा में गये। श्वाँस भीतर लौटती है तब परमात्मा तुम में आया। प्रतिपल श्वाँस-श्वाँस में वही छा जाता है। और तब आनंद का कोई पारावार नहीं है।

तब तुम्हारे जीवन में पहली बार धन्यता की प्रतीति होगी। और तब तुम कह पाओगे परिपूर्ण भाव से, 'तेरी अनुकंपा है'। तब तुम कह पाओगे, कि धन्यभागी हूँ। और तब तुम्हारे जीवन में आस्तिकता की पहली आभा उतरेगी। स्तुति करने से कोई आस्तिक नहीं होता है, सुरति से कोई आस्तिक होता है।

'समुद्र के जैसे बादशाह और सुलतान, जिनके पास इतना माल-धन हो कीड़ी की बराबरी नहीं कर सकते जो तुझे मन से नहीं विसरती है।

'समुन्द साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु।
कीडी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि।'

एक छोटी सी कीड़ी भी, एक चींटी भी जो तुझे याद रखती है; बड़े से बड़ा सम्राट, जिसके पास समुद्र जैसा विशाल धन हो, पर्वतों के अंबार हों वैभव के, वे भी एक छोटी सी कीड़ी का मुकाबला नहीं कर सकते। क्योंकि उसने परम धन पा लिया। उसने सुरति पा ली। दरिद्र से दरिद्र, सुरति के मिलते ही महान

से महान से महान सम्राट हो जाता है। और महान सम्राट भी सुरति के बिना दीन और दरिद्र बना रहता है।

एक ही दरिद्रता है, परमात्मा को भूल जाना। और एक ही समृद्धि है, उसकी याद को उपलब्ध हो जाना। जिसकी उसकी सुरति जग गयी, उस ने सब पा लिया, जो पाने-जैसा है। चाहे उसके पास कुछ भी न हो, एक लंगोटी न हो, सिर पर छाया न हो, लेकिन जिसने उसकी याद को पा लिया, उसने सब पा लिया। उसके लिए पाने को कुछ भी न बचा। और चाहे तुम्हारे पास कितने ही महल हों, धन का अंबार हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, भीतर तुम दरिद्र और भिखारी ही रहोगे। भीतर तुम जानते ही रहोगे उस पीड़ा को, जो दरिद्रता की है।

नानक कहते हैं, एक ही धन है। और वह है, उसकी याद। और एक ही निर्धनता है और वह है उसका विस्मरण।

तुम सोच लेना ठीक से। तुम धनी हो या गरीब? और जब तुम सोचो धनी या गरीब, तो अपने बैंक के खाते से मत सोचना। वह धोखा है। तब तुम भीतर के खाते को खोलना, और वहाँ देखना कि कितनी सुरति लिखी है? बस, उसी मात्रा में तुम अमीर हो। और जरा भी सुरति न हो, तो समझना कि अभी तो धन की खोज भी शुरू नहीं हुई। और तुम बाहर कितना ही इकट्ठा कर लो उससे अंततः कोई फर्क न पड़ेगा।

सिकंदर मरा तो उसने कहा मेरी अर्थी को जब ले जाओ, तो मेरे दोनों हाथ अर्थी के बाहर लटके रहने देना। उसके वजीरों ने पूछा, कि हम समझे नहीं कारण। और ऐसा रिवाज नहीं है। हाथ तो अर्थी के भीतर ही छिपाए जाते हैं। सिकंदर ने कहा लेकिन रिवाज हो या न हो, मेरे हाथ बाहर लटके रहने देना। उन्होंने पूछा कारण? तो उसने कहा मैं चाहता हूँ कि लोग देख लें, कि मैं भी खाली हाथ मर रहा हूँ। मेरे हाथों में कोई संपदा नहीं है।

सिकंदर भी दीन-हीन मर जाते हैं। बड़े शक्तिशाली अंततः नपुंसक सिद्ध होते हैं। लेकिन एक कीड़ी भी उसकी याद से भर जाए तो सिकंदरों को फीका कर देती है।

नानक, कौन हैं? न धन है, न पद है, न कोई साम्राज्य है, लेकिन कितने सम्राट फीके पड़ गये! और नानक उसकी सुरति के कारण बहुमूल्य हो गये। सम्राट आते-जाते रहेंगे, नानक टिकेंगे। पद-प्रतिष्ठाएँ बनेंगी और मिटेंगी, नानक का मिटना मुश्किल है। क्योंकि जिसने उसका सहारा ले लिया जो कभी नहीं मिटता, उसका मिटना असंभव हो जाता है।

तुम एक छोटी कीड़ी भी बने रहो तो कोई हर्ज नहीं; बस, उसकी याद न भूले। तुम बड़े सम्राट होने के पागलपन में मत पड़ना। क्योंकि अक्सर ऐसा होता

है, कि जितना तुम बाहर का धन इकट्ठा करते हो उतनी उसकी याद भूलती है। क्योंकि बाहर का धन इकट्ठा करने में भी उसको भूलना जरूरी है। तुम उसे याद रखोगे तो बाहर का धन कैसे इकट्ठा करोगे? बाहर का धन मिट्टी मालूम पड़ेगा। मिट्टी को कोई इकट्ठा करता है? जिसके पास उसकी याद है, वह बाहर की प्रतिष्ठा की चिंता ही न करेगा, क्योंकि उस में कुछ सार ही नहीं है।

जैसे छोटे बच्चे कंकड़-पत्थर इकट्ठा करते हैं, तुम उनसे कहते हो, क्या पागलपन कर रहे हो? फेंको! ये सब कंकड़-पत्थर हैं। लेकिन उसको वे बड़े बहुमूल्य मालूम पड़ते हैं। वो चोरी-छिपे फिर उनको घर के भीतर ले आते हैं। रात माँ को फिर उनके खीसे में से वे ही पत्थर निकालने पड़ते हैं। लेकिन यही बच्चा कल बड़ा हो जाएगा, इसकी समझ जगेगी, प्रौढ़ता आएगी, फिर वह पत्थरों को इकट्ठा नहीं करेगा। यही बात वह अपने बच्चों को कहेगा, फेंको ये पत्थर!

संसार में तुम जो इकट्ठा कर रहे हो, वह तभी तक बहुमूल्य है, जब तक सुरति की समझ नहीं जगी। जैसे ही सुरति जगी, तुम प्रौढ़ हो गये। तब एक समझ का दिया जला। उस दिये में तुम पाओगे, वह सब तो कूड़ा-करकट है, कचरा है। यह मैं क्यों इकट्ठा कर रहा था? तुम हैरान होओगे कि मैं क्यों पागल था इसके पीछे? यह सब पा कर मैंने क्या पाया?

यह सब अचानक ही व्यर्थ और असार हो जाएगा। सुरति के जगते ही जीवन रूपांतरित हो जाता है। एक क्रांति घटित होती है। पुराना तुम्हारा जो व्यक्तित्व था वह मर जाता है। नये का जन्म होता है।

इस नये के जन्म की तलाश ही धर्म है। इसको तुम सोचना। इसको तुम मनन करना। इसको तुम विचारना, कि तुम्हारे भीतर कहीं भी सुरति के लिए थोड़ी सी कोई जगह है—कोई कोना? तुम्हारे भीतर कोई मंदिर है, जहाँ सुरति गूँजती है? तुम्हारे भीतर सुरति का सुर चलता है? तुम्हें उसकी याद बनी रहती है, या तुम भूल-भूल जाते हो, या तुम उसे याद ही नहीं करते?

इसका अगर तुम विचार भी करने लगे, इसपर अगर तुम सोचने भी लगे तो यह सोचना और विचारना ही उसकी सुरति बनने में कारण हो जाएगा। क्योंकि जैसे-जैसे तुम विचारोगे, आखिर तुम उसीको विचारोगे! जैसे-जैसे तुम याद करोगे, तुम उसीकी याद करोगे। तुम यह भी अगर सोचोगे, कि मुझ में उसकी याद नहीं है, तो भी उसकी याद आएगी।

और वह याद आती रहे तो, धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर यह चोट पड़ती रहे तो, निशान गहरा बन जाता है। और पत्थर पर भी निशान बन जाते हैं, तो यह तो हृदय है; इसपर तो निशान बन ही जाएगा।

कबीर ने कहा है, ' रस्सी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान । '

रस्सी भी आती-जाती है कुएँ की सिल पर, तो निशान बन जाता है । तो सुरति की रस्सी अगर तुम्हारे हृदय पर आती-जाती रहेगी, तो पत्थर पर निशान बन जाते हैं, हृदय पर क्यों न बनेगा ? हृदय पर भी निशान बन जाएँगे । और हृदय से कोमल तो इस जगत में कुछ भी नहीं है । बस ! चाहिए इतना, कि सुरति की रस्सी आती जाती रहे ।

● ● ●

ऊचे उपरि ऊचा नाउ

प्रवचन ११, दिनांक १-१२-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : २४

अंतु न सिफती कहणि न अंतु । अंतु न करणै देणि न अंतु ॥
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु । अंतु न जापै किआ मनि मंतु ॥
अंतु न जापै कीता आकारु । अंतु न जापै पारावारु ॥
अंत कारणि केते बिललाहि । ताके अंत न पाए जाहि ॥
एहु अंत न जाणै कोइ । बहुता कहिऐ बहुता होइ ॥
बडा साहिबु ऊचा थाउ । ऊचे उपरि ऊचा नाउ ॥
एवडु ऊचा होवै कोइ । तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ॥
जेवड आपि जाणै आपि आप । नानक नदरी करमी दाति ॥

पउड़ी : २५

बहुता करम लिखिआ न जाइ । बडा दाता तिलु न तमाइ ॥
केते मंगहि जोध अपार । केतिआ गणत नही वीचारु ॥
केते खपि तुटहि वेकार ।
केते लै लै मुकरु पाहि । केते मूरख खाही खाहि ॥
केतिआ दूख भूख सद मार । एहि भी दाति तेरी दातारि ॥
बंदि खलासी भाणै होइ । होरु आखि सकै न कोइ ॥
जे को खाइकु आखणि पाइ । ओहु जाणै जेतिआ मुहि खाइ ॥
आपे जाणै आपे देइ । आखहि सि भि केई केइ ॥
जिसनो बखसे सिफति सालाह । नानक पातिसाही पातिसाहु ॥

उसकी महिमा का कोई अंत नहीं। जो भी हम कहें वह थोड़ा है। और जो भी हम कहें उससे हमारी असमर्थता पता चलती है।

रवींद्रनाथ मरणशय्या पर थे। एक पुराने मित्र ने उनसे कहा, कि आप तो प्रसन्न भाव से विदा हो सकते हैं। क्योंकि जो करना था आप ने कर लिया। खूब सम्मान पाया, गीत लिखे, सारे जगत में ख्याति पायी, महाकवि की तरह लाखों लोगों ने भक्ति दी; आप तो निश्चित मन से जा सकते हैं। कुछ अधूरा नहीं छोड़ा।

रवींद्रनाथ ने आँख खोली और उन्होंनें कहा कि मत कहो ऐसी बात। क्योंकि मैं तो परमात्मा से यही प्रार्थना कर रहा था कि जो मैं गाना चाहता था वह तो अभी तक गा नहीं पाया। जो कहना चाहता था, वह तो अभी तक कहा नहीं। और अभी तक तो केवल साज बिठाने में ही समय बीत गया। अभी तेरी महिमा का गान शुरू कहाँ हुआ था। और यह तो विदा का क्षण आ गया।

रवींद्रनाथ ने छः हजार गीत लिखे। और रवींद्रनाथ के सारे गीत ही परमात्मा के महिमा के गीत हैं। फिर भी रवींद्रनाथ कहते हैं कि अभी साज ही बिठा पाया था। अभी संगीत शुरू कहाँ हुआ था? और यह जाने का वक्त आ गया।

यही नानक कहते हैं। यही सभी ऋषियों का अनुभव है कि जो भी हम कहें वह साज का बिठाना ही सिद्ध होता है। उसका गीत गाया ही नहीं जा सकता।

कौन गायेगा उस का गीत? हम इस छोटे से व्यक्तित्व में कैसे उस विराट को समाएँगे? मुट्ठी में आकाश को बाँधने की कोशिश कैसे पूरी होगी? हमारे

सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं। और सब कर के ही सिर्फ हमें अपनी असमर्थता का पता चलता है।

पर वही पता चल जाए तो समझ का जन्म हुआ। यह ख्याल में आ जाए कि मैं बहुत छोटा हूँ तो ही उसके बड़ा होने का ख्याल पैदा होगा। नासमझों को लगता है कि हम काफी बड़े हैं। समझदारों को लगता है कि हम बहुत छोटे हैं। जैसे-जैसे समझ बढ़ती है वैसे-वैसे हम छोटे-छोटे हैं, उसका विराट प्रकट होता है। एक ऐसी घड़ी भी आती है इस खोज में, जब कि तुम बिलकुल ही खो जाते हो। वही शेष रह जाता है।

कहने वाला खो जाता है, कहेगा क्या ? सिर्फ वही रह जाता है। उसकी महिमा, उसका अहर्निश नाद। देखने वाला खो जाता है, दृश्य ही रह जाता है। तुम तो मिट ही जाते हो, कौन उसकी खबर देगा ? कौन उसके संबंध में कुछ कहेगा ?

इसलिए जो भी आदमी ने कहा है वह सारी चर्चा असमर्थता की चर्चा है। असहाय अवस्था की, हेल्पलेसनेस की। जैसे कोई बहुत बड़ी घटना के करीब आकर अवाक् हो जाता है, वैसे ही परमात्मा के करीब आकर आदमी अवाक् हो जाता है। अवाक् का अर्थ है जहाँ 'वाक्', जहाँ वाणी खो जाती है। जहाँ बोलना नहीं होता। हतप्रभ ! वाणी रुद्ध, साँस तक ठहर जाती है। उसके जानने के क्षण में तुम बिलकुल ही रुक जाते हो। न विचार की गति होती है, न शब्द की गति होती है, न स्वांस की गति होती है। हृदय भी नहीं धड़कता। क्योंकि इतनी धड़कन भी चूकना हो जाएगी। उतना कंपन भी बिछुड़ना हो जाएगा।

उस अवाक् क्षण में नानक ने ये वचन कहे हैं। ये वचन किसीको समझाने को नहीं, अपनी व्यथा को प्रकट करने को कहे हैं।

नानक कहते हैं, 'अंत नहीं उसके गुणों का। न ही उसके कथन का अंत है।'

'अंतु न सिफती कहणि न अंतु।
अंतु न करणै देणि न अंतु॥
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु।
अंतु न जापै किआ मनि मंतु॥
अंतु न जापै कीता आकारु।
अंतु न जापै पाराबारु॥'

'उसके गुणों का अंत नहीं है, न उसके कथन का ही अंत है। उसके कामों का अंत नहीं, उसके दानों का भी अंत नहीं। न उसके दर्शन का अंत है

और न उसके श्रवण का अंत है। उस के मन के रहस्यों का भी अंत नहीं जाना जा सकता। उसके किये हुए सृष्टि-प्रसार का कोई अंत नहीं। उसके ओर-छोर का अंत नहीं। उसका अंत जानने के लिए कितने चिल्लाते हैं तो भी उसका अंत नहीं पाया जा सकता। कोई भी उसका अंत नहीं जानता है।'

इन वचनों में तीन बातें ख्याल में ले लेने जैसी हैं। एक : जब तक तुम्हें लगता है कि तुमने परमात्मा को जाना तब तक तुम भ्रांति में हो। तब तक तुम किसी भूल में हो। क्योंकि जिसे तुम ने जान लिया, वह परमात्मा न होगा। जिसे तुमने नाप लिया, वह परमात्मा न होगा। जिस की थाह तुम ने पा ली, वह परमात्मा न होगा।

तुम किसी ताल-तलैया में डुबकी लगा रहे होओगे, तुम सागर के करीब नहीं पहुँचे। तुम किसी छोटी-मोटी घाटी में उतर गये होओगे। तुम ने उसके अंतहीन खड्ड को नहीं जाना, जहाँ गिरना शुरू होता है तो अंत नहीं आता। तुमने कोई छोटी-मोटी ऊँचाई पा ली होगी। गाँव के पास का टीला कोई तुम चढ़ गये होगे। लेकिन तुमने उसका गौरीशंकर नहीं जाना जहाँ चढ़ने का कोई उपाय नहीं है। हिमालय के गौरीशंकर पर तो हम चढ़ जाते हैं। देर-अबेर, कठिनाई से, मुसीबत से। उसके गौरीशंकर पर तो हम कभी न चढ़ पाएँगे। यह असंभव है।

यह असंभव क्यों है ? इसे थोड़ा समझ लें। यह असंभव इसलिए है कि हम उसके ही अंग हैं। और अंग अंगी को कैसे जानेगा ? यह मेरा हाथ है, यह मुझे कैसे जानेगा ? और इस हाथ से मैं दुनिया की सब चीजें पकड़ लूँ, लेकिन इस हाथ से मैं अपने को कैसे पकड़ पाऊँगा ? यह मेरी आँख है। यह आँख सब कुछ देख ले, यह मुझे कैसे देख पाएगी ? और पूरा-पूरा कैसे देख पाएगी ? यह आँख मेरा ही हिस्सा है।

अंश कभी अंशी को नहीं जान सकता। झलकें मिलेंगी, लेकिन पूर्णता कभी न होगी। हम इस विराट के अंश हैं इसलिए कठिनाई है। अगर हम अलग होते परमात्मा से, तो हम उसे जान लेते। हम अगर भिन्न होते, तो हम उसे पकड़ लेते। हम अगर पृथक होते, तो हम उसके चारों ओर चक्कर लगा कर परिक्रमा कर लेते। लेकिन हम उसके ही हिस्से हैं। उस की ही धड़कन हैं हम। उसकी ही स्वाँस-प्रस्वाँस हैं। कैसे उसका चक्कर लगाएँ ? कैसे उसकी परिक्रमा करें ? कैसे उसे पकड़ें ?

मनुष्य एक कण है उस विराट में। एक बूँद है उस सागर में। तो यह छोटी सी बूँद कैसे सागर को पकड़ ले ? यह छोटी सी बूँद कैसे पूरे सागर को जान ले ?

यह बड़े मजे की बात है। यह बूंद सागर में है। और यह बूंद सागर ही है। तो एक अर्थ में तो सागर को जानती है। बड़े गहन अर्थ में सागर को जानती है। क्योंकि सागर इससे भिन्न नहीं है। लेकिन फिर भी एक अर्थ में सागर को नहीं जान सकती, क्योंकि सागर अभिन्न है।

यह धार्मिक जीवन का सब से बड़ा पैराडॉक्स है। सब से बड़ा विरोधाभास है। परमात्मा को हम जानते भी हैं एक अर्थ में क्योंकि कैसे हम बिना जाने रहेंगे? वह हममें धड़कता है, हम उसमें धड़कते हैं। हम उससे दूर नहीं हैं। इंच भर का फासला नहीं है। इसलिए हम उसे जानते भी हैं एक अर्थ में, पहचानते भी भली भाँति हैं। और फिर भी बिलकुल नहीं जानते क्योंकि हम तो अंश हैं। अंश पूर्ण को कैसे जान सकेगा? हम उसमें डूबते हैं, तैरते हैं। हम उसमें रहकर कभी उसका विस्मरण भी करते हैं, कभी उसका स्मरण भी करते हैं। कभी हम पास लगते हैं, कभी दूर लगते हैं। और कभी-कभी किन्हीं स्पष्टता के क्षणों में ऐसा लगता है, जान लिया। हृदय आपूर हो जाता है, पहचान लिया। रिकॅग्निशन हो गया। आ गयी प्रज्ञा, बोध हुआ। फिर बोध खो जाता है। फिर गहन अंधकार हो जाता है। फिर हम डगमगाने लगते हैं। लेकिन जानने और न जानने के मध्य का यह जो क्षण है, यही धार्मिक व्यक्ति की स्थिति है।

बुद्ध से कोई पूछता है परमात्मा के संबंध में, वे चुप रह जाते हैं। क्या कहें संबंध में? विरोधाभास कहे नहीं जा सकते। अगर बुद्ध कहें मैं जानता हूँ, तो भूल हो गयी। क्योंकि कौन कह सकता है कि जानते हैं? और बुद्ध अगर कहें कि नहीं जानता तो गलत बात है, क्योंकि जानते हैं।

एक दिन सुबह एक पंडित ने बुद्ध को पूछा, बुद्ध चुप हो रहे। वह चला गया तो आनंद ने बुद्ध को कहा कि आप कुछ तो बोलते! वह बहुत बड़ा पंडित है। वह बड़ा जानकार है और योग्य अधिकारी आदमी था। आपको उसे कुछ कहना था। लेकिन बुद्ध ने कहा, क्योंकि वह अधिकारी था इसलिए बोलना और मुश्किल हो गया। यदि मैं कहूँ 'है', तो गलत हैं क्योंकि जब तक पूरा न जान लिया जाए किस तरह कहो, कि है? किस तरह कहो कि मैंने जान लिया? कौन कहे, कि मैंने जान लिया! सब दावे अहंकार के हैं। और अहंकार तो उसे कभी भी नहीं जान सकता। और अगर मैं कहूँ कि नहीं है, या कहूँ कि मैंने नहीं जाना, तो भी गलत है, क्योंकि मैं जानता हूँ। और यह आदमी योग्य था, समझदार था इसलिए चुप रह जाना पड़ा। और वह आदमी मेरी चुप्पी का अर्थ समझा, क्योंकि वह आदमी झुक कर प्रणाम करके गया।

तभी आनंद को ख्याल आया कि वह आदमी बहुत अहोभाव से झुक कर प्रणाम कर के गया है। तो आनंद ने पूछा कि हैरानी की बात है, यह मेरे ख्याल में न आया। क्या वह समझ गया?

तो बुद्ध ने कहा, कि घोड़े तीन तरह के होते हैं। एक; तुम उन्हें मारो तभी वे इंच-इंच कर के सरकेंगे। दूसरे; उन्हें मारने की उतनी जरूरत नहीं, धमकाना काफी है। और तीसरे; उन्हें धमकाने की भी जरूरत नहीं, कोड़ा बताने की भी जरूरत नहीं, कोड़े की छाया काफी है– शैडो ऑफ दि व्हिप! यह तीसरे तरह का घोड़ा था। इसे मारने की जरूरत नहीं, न धमकाने की जरूरत हुई, इसे सिर्फ छाया बता दी कोड़े की और वह समझ गया और यात्रा पर निकल गया।

शब्द तो कोड़ा है, मौन छाया है। शब्द की जरूरत पड़ती है, क्योंकि वह घोड़ा पास नहीं, जो कोड़े की छाया मात्र से यात्रा पर निकल जाए। बुद्ध ने कहा यह आदमी समझ गया।

यही तो स्थिति है कि जो जान लेता है, वह कह नहीं सकता कि मैं जानता हूँ और यह भी नहीं कह सकता कि मैं नहीं जानता हूँ। दोनों के मध्य में वैसी घटना घटती है।

नानक कहते हैं, अंत नहीं उसका। जितना कहो थोड़ा है। कहते चले जाओ और तुम पाते हो कि वह तो सदा शेष है। तुमने कुछ भी कहा नहीं। कथन हमेशा अधूरा है। सभी शास्त्र अधूरे हैं। कोई पूरा शास्त्र पृथ्वी पर नहीं है। हो नहीं सकता। क्योंकि पूरे शास्त्र का अर्थ ही यह होगा, जिसने परमात्मा को पूरा कह दिया। सभी शास्त्र अधूरे हैं। और सभी शास्त्र उन घोड़ों के लिए हैं जो कोड़ों की छाया नहीं समझ सकते।

'न अंत है उसके गुणों का, न उसके कथन का अंत है, न उसके कामों का, न उस के दानों का।...'

जैसे-जैसे व्यक्ति के जीवन में धर्म की गहराई बढ़ती है, वैसे-वैसे उसके काम तो दिखायी पड़ते ही हैं, उसके दान दिखायी पड़ने शुरू होते हैं।

यह दूसरी बात है। काम तो चारों तरफ फैला हुआ है। लेकिन अधिक लोगों को तो काम भी दिखायी नहीं पड़ता। वे कहते हैं; 'कहाँ है परमात्मा?' वे पूछते हैं, 'कौन है स्रष्टा?' सृष्टि को देखकर भी उन्हें इशारा नहीं मिलता। यह चारों तरफ इतना विस्तार है, यह उन्हें दिखायी ही नहीं पड़ता। वे पूछते हैं, किसने बनाया? कौन है बनाने वाला? है भी कोई बनाने वाला? इतने विराट कार्य-जाल के पीछे उन्हें कोई हाथ दिखायी नहीं पड़ता। और मजे की बात है, यही वे लोग हैं जो दूसरी दिशाओं में अंधों की तरह मान लेते हैं।

आज तक किसी वैज्ञानिक ने इलेक्ट्रॉन नहीं देखा। विद्युत का आखिरी कण जिसको विज्ञान कहता है, जिसके आधार से सारा जगत बना है। इलेक्ट्रॉन के ही संगठन से सारा जगत निर्मित है। लेकिन आज तक किसी वैज्ञानिक ने इलेक्ट्रॉन

देखा नहीं । और न आशा है कभी देख पाने की । फिर वैज्ञानिक कैसे यह मान लेता है कि इलेक्ट्रॉन है ? वह कहता है, उसके परिणाम दिखायी पड़ते हैं ।

कारण सूक्ष्म हैं, परिणाम स्थूल हैं । हाथ नहीं दिखायी पड़ते परमात्मा के, लेकिन कृत्य दिखायी पड़ता है । इलेक्ट्रॉन को तो मान लेते हैं हम, क्योंकि परिणाम दिखायी पड़ते हैं । परमात्मा को इनकार करते हैं। परिणाम चारों तरफ मौजूद हैं।

फूल खिलता है, यह परिणाम है । लेकिन कोई हाथ छिपे उसे खिलाते हैं, अन्यथा कैसे फूल खिलेगा ? बीज टूटता है, यह परिणाम है । लेकिन कोई बीज को तोड़ता है, अंकुरित करता है और जहाँ पत्थर जैसा लग रहा था बीज, वहाँ सुकोमल फूल खिलने शुरू हो जाते हैं ।

सब तरफ उसके हस्ताक्षर हैं, लेकिन हाथ नहीं दिखायी पड़ते। हाथ दिखायी पड़ेंगे भी नहीं । क्योंकि सूक्ष्म और स्थूल का संतुलन है । कारण सदा सूक्ष्म होता है, कार्य सदा स्थूल होता है । कारण दिखायी नहीं पड़ते । परमात्मा महाकारण है। लेकिन कार्य तो चारों तरफ दिखायी पड़ रहे हैं ।

तो तीन तरह के लोग हैं जगत में । तीन तरह के घोड़े, जिनको बुद्ध ने कहा । एक, जिनको उसके काम भी दिखायी नहीं पड़ते । बिलकुल अंधे ! वे पूछते हैं, कैसा परमात्मा ? कैसा स्रष्टा ? क्या सबूत है ? इतनी बड़ी सृष्टि सबूत नहीं है ! वे और कोई सबूत चाहते हैं। इतना बड़ा प्रमाण प्रमाण नहीं है, वे और कोई प्रमाण चाहते हैं ! और जिनको इतना बड़ा प्रमाण नहीं दिखता, उन्हें कोई और प्रमाण समझ में आ सकेगा ?

इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है, कि जीवन एक क्रमबद्ध गति से, संतुलित गति से चल रहा है । विराट-लीला में कहीं भी कोई विच्छेद नहीं है । धारा अनवरत है । अहर्निश एक संगीत बज रहा है । जैसा होना चाहिए वैसा ही हो रहा है । जगत कोई केयॉस नहीं, कॉसमॉस है । यह कोई ऐसा ही संयोग-वश घट रहा है, ऐसा नहीं है । उसके पीछे सुनिश्चित नियम काम कर रहा है ।

उसी नियम को हम ने 'धम्म' कहा है, 'धर्म' कहा है । लाओत्से ने ताओ' कहा है । नानक ने 'हुक्म' कहा है। उस नियम का नाम है । जब नानक कहते हैं, सब उसके हुक्म से हो रहा है तो तुम ऐसा मत समझना कि वह कोई खड़ा है हेड कांस्टिबल की तरह और कह रहा है, 'करो'। हुक्म का मतलब है कि जगत एक ऑर्डर है । एक व्यवस्था है । एक अराजकता नहीं है । यहाँ कुछ भी नहीं हो रहा है । होने के पीछे सुनियोजित हाथ है । सुनियोजित व्यवस्था है । होने के पीछे प्रयोजन है। जो हो रहा है वह एक लक्ष्यकी तरफ, एक अंत की तरफ विकासमान है ।

अगर तुम्हें सृष्टि नहीं दिखायी पड़ती तो तुम बिलकुल अंधे हो । बहुत लोग हैं जिनको सृष्टि के पीछे कोई सृजन का हाथ नहीं दिखायी पड़ता । एक छोटी सी मूर्ति रखी हो, तो तुम तत्क्षण पूछते हो, किसने बनायी ? एक छोटा सा चित्र टँगा हो दीवाल पर, तो तुम तत्क्षण पूछते हो, कौन है चित्रकार ? तुम कभी भी नहीं सोचते कि अनायास, संयोगवशात् यह मूर्ति बन गयी होगी । अनायास, संयोगवशात् प्राकृतिक कारणों से यह चित्र टँग गया होगा ।

लेकिन इतना विराट चित्र टँगा हुआ है चारों तरफ, पत्ती-पत्ती पर उसकी कला है। और तुम्हें परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता ! तुमने जैसे पक्का ही कर रखा है उसकी तरफ पीठ कर रखने का । जैसे तुम देखना ही नहीं चाहते । जैसे कि देखने में तुम्हें खतरा मालूम पड़ रहा है। जैसे कि देखने से तुम डरे हो।

निश्चित ही डर है; क्योंकि जैसे ही तुम्हें उसका हाथ दिखायी पड़ेगा, तुम जैसे हो वैसे ही न रह सकोगे । जिसको भी परमात्मा के कृत्य की भनक पड़ जाएगी, उसे पूरी जिंदगी बदलनी पड़ेगी । क्योंकि अगर उसका हाथ सब तरफ है तो तुम जैसा कर रहे हो अभी तक, वैसा ही न कर पाओगे । तुम्हारा आचरण गलत हो जाएगा । अभी तुम ऐसे चल रहे हो जैसे कोई परमात्मा नहीं है । करो दुर्व्यहार, करो पाप, करो अनाचरण । अभी जो भी करना है करो, क्योंकि कोई परमात्मा नहीं है। अभी जैसे तुम्हें पूरी छूट है ।

जैसे ही तुम्हें उसका हाथ दिखायी पड़ेगा, तुम्हारी छूट समाप्त हो जाएगी। तब तुम्हें सोच कर करना पड़ेगा । तब तुम्हें विचार के करना पड़ेगा । तब तुम्हें ज्यादा ध्यान और सुरति रखनी पड़ेगी । क्योंकि वह देख रहा है, क्योंकि वह मौजूद है। सब जगह वह छिपा है और तुम किसीके साथ भी कुछ करो, उसीके साथ कर रहे हो। जेब काटे किसीकी, तो उसीकी कटेगी। चोरी करो किसीकी, उसीकी होगी । हत्या करो किसीकी, तुम उसे ही मारोगे।

इसलिए आदमी का एक बड़ा वर्ग उसे देखना ही नहीं चाहता । उसको देखने में झंझट है । उसकी मौजूदगी—तुम वही न रह सकोगे, जो तुम हो । तुम्हें आमूल ताजगी से गुजरना पड़ेगा । तुम्हें जड़-मूल बदल जाना पड़ेगा। और वह बदलाहट इतनी बड़ी है कि उस झंझट से बेहतर यही है, कि उसे इनकार करते चले जाओ ।

नीत्से ने सौ साल पहले कहा है कि 'गॉड इज़ डेड एण्ड नाव मैन इज़ टोटली फ्री'—ईश्वर मर गया है और आदमी अब परिपूर्ण स्वतंत्र है। वही परिपूर्ण स्वतंत्रता चाहने के लिए तुम ईश्वर को इनकार करते हो । तब तुम्हें छूट है । तब तुम कुछ भी चाहो, करो। तब कोई नहीं है जिसके हाथ में निर्णय है। तब तुम स्वच्छंद हो। जो स्वच्छंद रहना चाहता है वह परमात्मा को न देखने की जिद

करता रहेगा। तुम उसे कितना ही दिखाओ, वह इनकार करता रहेगा। और इनकार किया जा सकता है। क्योंकि स्थूल कृत्य दिखायी पड़ सकता है, सूक्ष्म कर्ता तो दिखायी नहीं पड़ता।

तो लोग कहते हैं, सृष्टि अपने आप चल रही है। सब अपने आप हो रहा है। लेकिन यही तो परमात्मा की परिभाषा है, कि जो अपने आप चल रहा है, अपने आप हो रहा है। जो स्वयंभू है।

दूसरा वर्ग है, जो परमात्मा के काम तो देख लेता है और उसके छिपे हाथ को भी स्वीकार कर लेता है; लेकिन वह स्वीकृति बौद्धिक है। वह धमकी में आ गया है। वह डरा हुआ है। वह भयभीत है। तुम ऐसे ही आदमी को मंदिर-मस्जिद में, गुरुद्वारे में प्रार्थना करते पाओगे। नंबर दो का आदमी। वह भय के कारण वहाँ गया है। वह धमकी में आ गया है। जिंदगी का कोड़ा उसपर जोर से पड़ गया है। वह डरा है। वह प्रार्थना कर रहा है। वह माँग रहा है सुरक्षा, आश्वासन, धन, प्रतिष्ठा, पद। वह कुछ माँग ले कर गया है।

भय हमेशा भिखारी है। और भय हमेशा माँगता है। कुछ मिल जाए, कुछ मिल जाए। वह कामों की थोड़ी सी भिन्नक उसके कान पर पड़ी है। और उसे थोड़ा सा एहसास हुआ है भय के कारण, कि परमात्मा है, तो वह डरा हुआ है। लेकिन उसे तीसरी बात का कोई पता नहीं चलता है--परमात्मा के दानों का। इसलिए तो वह माँग रहा है।

तीसरा आदमी है, जिसको नानक भक्त कहेंगे। उसे कृत्य दिखायी पड़ रहे हैं। चारों तरफ सृष्टि उसका हाथ बता रही है। और कृत्य ही नहीं दिखायी पड़ रहे, उसे परमात्मा का दान, उसका प्रसाद भी दिखायी पड़ रहा है। प्रसाद को देखना सूक्ष्म वात है। वह कोड़े की छाया को देखना है। उसे दिखायी पड़ रहा है कि अहर्निश उसका दान मिल रहा है। माँगने को और बचा क्या है? माँगना क्या है। सिर्फ उसे धन्यवाद देना है। इसलिए परम भक्त मंदिर धन्यवाद देने जाता है, माँगने नहीं। उसकी कोई माँग ही नहीं है। अगर परमात्मा खड़ा होकर भी सामने उसको कहे कि तू कुछ माँग ले, तो भी वह माँगेगा नहीं। क्योंकि वह कहेगा, सब दिया ही हुआ है। सब पहले से ही जरूरत से ज्यादा दिया हुआ है। मेरी योग्यता से ज्यादा तुमने मुझे पहले ही दिया हुआ है। किस मुँह से माँगूँ! और माँगने में तो शिकायत होगी कि तुमने कुछ कम दिया है।

तुम्हें जीवन मिला है यह क्या कम है? लेकिन जीवन की तुम कोई कीमत नहीं करते।

मैंने सुना है, कि एक कंजूस--महाकंजूस--की मौत करीब आयी। उसने करोड़ों रुपये इकट्ठे कर रखे थे। और वह सोच रहा था कि आज नहीं कल

जीवन को भोगूंगा। लेकिन इकट्ठा करन में सारा समय चला गया; जैसा कि सदा ही होता है। जब मौत ने दस्तक दी तब वह घबड़ाया, कि समय तो चूक गया, धन भी इकट्ठा हो गया, लेकिन भोग तो मैं पाया नहीं। सोच ही रहा था कि भोगना है। यह तो जिंदगी भर से सोच रहा था और स्थगित कर रहा था कि जब सब हो जाएगा तब भोग लूंगा।

उसने मौत से कहा, कि मैं एक करोड़ रुपये दे देता हूँ; सिर्फ चौबीस घंटे मुझे मिल जाएँ। क्योंकि मैं भोग तो पाया ही नहीं। मौत ने कहा, कि यह सौदा नहीं हो सकेगा। उसने कहा कि मैं पाँच करोड़ दे देता हूँ, मैं दस करोड़ दे देता हूँ--चौबीस घंटे! आखिर वह इस बात पर राज़ी हो गया कि मैं सब दे देता हूँ--सिर्फ चौबीस घंटे!

यह सब उसने इकट्ठा किया पूरा जीवन गँवा कर। अब वह सब देने को राजी है चौबीस घंटे के लिए। क्योंकि न तो उसने कभी पूरे मन से साँस ली, न कभी फूलों के पास बैठा, न उगते सूरज को देखा, न चाँद-तारों से बात की। न खुले आकाश के नीचे हरी दूब पर कभी क्षण भर लेटा। जीवन को देखने का मौका न मिला। धन इकट्ठा करता रहा और सोचता रहा, आज नहीं कल, जब सब मेरे पास होगा, तब भोग लूंगा। सब देने को राजी है, लेकिन मौत ने कहा कि नहीं। कोई उपाय नहीं। तुम सब भी दो, तो भी चौबीस घंटे मैं नहीं दे सकती हूँ। कोई उपाय नहीं, समय गया। तुम उठो, तैयार हो जाओ।

तो उस आदमी ने कहा, 'एक क्षण; वह मेरे लिए नहीं, मैं लिख दूँ, मेरे पीछे आने वाले लोगों के लिए। मैंने जिंदगी गँवायी इस आशा में, कि कभी भोगूंगा और जो मैंने कमाया उससे मैं मृत्यु से एक क्षण भी लेने में समर्थ न हो सका।' उस आदमी ने यह एक कागज पर लिख दिया और खबर दी कि मेरी कब्र पर इसे लिख देना।

सभी कब्रों पर यही लिखा हुआ है। तुम्हारे पास पढ़ने को आँखें हों तो पढ़ लेना। और तुम्हारी कब्र पर भी यही लिखा जाएगा, अगर चेते नहीं। अगर तुम देखो, तो तुम्हें जो मिला है वह अपरंपार है।

जीवन का कोई मूल्य है? एक क्षण के जीवन के लिए तुम कुछ भी देने को राजी हो जाओगे। लेकिन वर्षों के जीवन के लिए तुमने परमात्मा को धन्यवाद भी नहीं दिया। मरुस्थल में मर रहे होगे प्यासे, तो एक घूंट पानी के लिए तुम कुछ भी देने को राजी हो जाओगे। लेकिन इतनी सरिताएँ बह रही हैं, वर्षा में इतने बादल तुम्हारे घर पर घुमड़ते हैं, तुमने एक बार उन्हें धन्यवाद नहीं दिया। अगर सूरज ठंडा हो जाएगा तो हम सब यहीं के यहीं मुर्दा हो जाएँगे, इसी वक्त! लेकिन हमने कभी उठ कर सुबह सूरज को धन्यवाद न दिया!

असल में आदमी का एक बड़ा अद्‌भुत तर्क है। जो उसके पास होता है वह उसे दिखायी नहीं पड़ता। जो नहीं होता है वह दिखायी पड़ता है। जब तुम्हारा दाँत एक टूट जाएगा, तो तुम्हारी जीभ बार-बार उसी जगह जाएगी। जब तक दाँत था तब तक कभी न गयी। खाली जगह को टटोलेगी। तुम चेष्टा भी करोगे कि जीभ को वहाँ न ले जाएँ। क्या सार है? लेकिन जीभ वहीं-वहीं जाएगी।

आदमी का मन खाली जगह को टटोलता है। भरी जगह के प्रति अंधा है, खाली के प्रति आँखें हैं। जो तुम्हारे पास है, तुमने कभी उसका हिसाब लगाया है? और जब तक तुम्हें वह हिसाब साफ न हो जाए, तुम परमात्मा के दानों का हिसाब न लगा पाओगे। वे अनंत हैं।

लेकिन कम से कम जो तुम्हें मिला है वहाँ से तो तुम सोचो। जो तुमने पाया है, उसे तुम देखो।

और चारों तरफ उसके दानों की वर्षा हो रही है। जैसे हर कृत्य के पीछे उसका हाथ है, वैसे ही हर कृत्य के पीछे उसका दान है। यह पूरा अस्तित्व तुम्हारे लिए खिल रहा है। यह पूरा अस्तित्व उसकी भेंट है। और जब कोई इसको देख पाता है, तब एक नयी तरह की भक्ति का जन्म होता है।

एक है नास्तिक, वह अकड़ा हुआ है अहंकार से। एक है आस्तिक, वह कँप रहा है भय से। वे दोनों ही धार्मिक नहीं हैं। धार्मिक है तीसरा व्यक्ति, जो नाच रहा है अहोभाव से। जो आनंदमग्न है, कि जो मिला है वह अपरंपार है।

नानक कहते हैं, कि 'न उसके कृत्यों का कोई अंत है, न उसके दानों का कोई अंत है। और उसके मन के रहस्यों का भी अंत जाना नहीं जा सकता। उसके किये हुए सृष्टि-प्रसार का कोई अंत नहीं। उसके ओर-छोर का अंत नहीं। उसका अंत जानने के लिए कितने चिल्लाते हैं तो भी उसका अंत नहीं पाया जाता। कोई भी उसका अंत नहीं जानता। जितना अधिक उसको कहिए उतना ही अधिक वह होता जाता है। वह साहब महान है और उसका स्थान ऊँचा है, उससे भी ऊँचा उसका नाम है।'

यह जरा कठिन लगेगा समझने में। 'उससे भी ऊँचा उसका नाम है। नाम कैसे उस से ऊँचा होगा? हमारे लिए, यात्रियों के लिए उससे उसका नाम ऊँचा है। क्योंकि उसके नाम के द्वारा ही हम उस तक पहुँचेंगे। नाम छूट जाए तो उस तक पहुँचने का रास्ता टूट गया। सेतु गिर गया। तो हमारे लिए तो उसका नाम ही उससे महान है। यात्रा-पथ मंजिल से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यात्रा-पथ के बिना मंजिल तक पहुँचना असंभव है।

इसलिए नानक कहते हैं कि उसका एक नाम जो जान लेता है उसे कुंजी मिल गयी। कुंजी महल से भी बड़ी है। कुंजी महल में छिपी सम्पदा से ज्यादा

मूल्यवान है। ऐसी तो दिखायी पड़ती है लोहे का टुकड़ा। लेकिन वही लोहे का टुकड़ा अनंत खजाने को खोलेगा।

उसका नाम जिसको नानक 'ओंकार' कहते हैं, वही कुंजी है। उस कुंजी से उसका द्वार खुलेगा। और अगर ओंकार की सुरति तुम्हारे भीतर बैठने लगी तो वह कुंजी तुम अपने भीतर ढाल लोगे। वह कुंजी कुछ ऐसी नहीं है कि कोई तुम्हें दे दे। वह तुम्हें ढालनी पड़ेगी। तुम्हें ही वह कुंजी बन जाना पड़ेगा। तुम ही धीरे-धीरे ओंकार की धुन में गूँजते-गूँजते कुंजी बन जाओगे। तुम में ही वह क्षमता प्रकट हो जाएगी कि उसके द्वार को तुम खोल लो।

मनुष्य की दो अवस्थाएँ हैं। एक अवस्था है विचार की। और एक अवस्था है निर्विचार की। विचार की अवस्था में तुम हो, जहाँ मन में तूफान चलते ही रहते हैं। मन का आकाश सदा बदलियों से भरा रहता है। ऊहापोह, अनंत विचार! एक भीड़ मन में लगी रहती है। एक बाजार भरा हुआ है। यह विक्षिप्त जैसी दशा है।

एक दूसरी अवस्था है निर्विचार की, जहाँ बाजार खाली हो गया, दुकानें बंद हो गयीं, विचार जा चुके। हाट उजड़ गयी। सन्नाटा हो गया। चुप्पी हो गयी। जब तक तुम विचार से भरे हो, तब तक तुम संसार से जुड़े रहोगे। जैसे ही तुम निर्विचार हुए कि परमात्मा से जुड़ गये। तुम खाली हुए कि द्वार खुला।

विचार से निर्विचार तक जाने की जो कुंजी है वह उसका नाम है। ओंकार की धुन तुम्हारे भीतर समा जाए। पहले तो ओंकार का जप। सुबह उठ आए, या रात कभी एकांत अंधेरे में बैठ गये अपने कमरे में, और जोर से ओंकार का उच्चार किया कि तुम्हारे चारों तरफ ओंकार की धुन गूँजने लगे। और ओंकार बड़ा मधुर संगीत है। क्योंकि यह कोई मनुष्य निर्मित ध्वनि नहीं है। वह अस्तित्व में गूँजती हुई लयबद्धता है। तुम जैसे ही ओंकार की ध्वनि जोर से करोगे, वैसे ही चारों तरफ तुम्हारे रोएँ-रोएँ पर उसकी छाप अंकित होने लगेगी। यह जाप की स्थिति है—जप।

फिर धीरे-धीरे ओंठ बंद कर लेना और जिस तरह बाहर गुंजा रहे थे ओंकार को, वैसे ही भीतर गुंजाना। तब ओंठ बंद रहेंगे। जीभ शांत रहेगी। कंठ चुप रहेगा। सिर्फ मन में ही गूँज होगी। यह जाप और अजाप के बीच की मध्य कड़ी है।

यह गूँज भीतर बढ़ती जाए, बढ़ती जाए, बढ़ती जाए, तो धीरे-धीरे तुम इस गूँज को करना भी और सुनना भी। दो काम करना। भीतर ओंकार की गूँज भी

कहना और सुनना भी, कि यह गूंज हो रही है । फिर धीरे-धीरे करने को छोड़ते जाना और सुनने को बढ़ाते जाना और एक ऐसी घड़ी आती है जब करना तुम बंद कर देते हो और गूंज अपने से होती है । तुम सिर्फ सुनते हो । तब अजपा-जाप शुरू हो गया ।

और जब गूंज अपने से होती है, तब असली ओंकार प्रकट हुआ । अब यह हम नहीं कर रहे हैं । अब यह तुम्हारे होने में से ही प्रकट हो रही है । अब यह तुम्हारे जीवन के भीतर बहते हुए झरने का नाद है । और जिस दिन तुम इसे सुन लोगे, फिर तुम उसे चौबीस घण्टे सुन सकते हो । क्योंकि यह तो हो ही रहा है । इसे करने की जरूरत नहीं है । तुम जब भी जरा भीतर आँख बंद करोगे, वहाँ यह नाद सुनायी पड़ने लगेगा ।

जब भी चिंता पकड़े, तनाव पकड़े, बेचैनी हो, क्रोध आए, तुम आँख बंद कर के जरा ही इस नाद को सुन लेना । एक नाद की भनक—क्रोध तिरोहित हो जाएगा । नाद का जरा सा बोध—घृणा समाप्त हो जाएगी । नाद का जरा सा स्मरण और तुम पाओगे चित्त, जो तुम्हें बेचैन किए था, तत्क्षण हट गया । यह ऐसे ही हो जाता है जैसे अंधेरा घर में भरा हो और तुम टार्च का बटन दबाओ, प्रकाश हो जाता है और अंधेरा खो जाता है । ऐसे ही भीतर के नाद को तुम सुनो, क्षण-भर को भी सुन लो, तो बाहर का जो भी अंधकार था उसी वक्त टूट जाता है ।

इसलिए तो नानक इतना जोर देते हैं — 'एक ओंकार सतनाम' । सारी साधना उनकी इस वास्तविक ओंकार के नाद को पा लेने की है । इसीको उन्होंने 'सबद' कहा है । इसीको वे नाम कहते हैं । और नानक कहते हैं, तुझ से भी बड़ा तेरा नाम है । तू अंतहीन है । हमारे लिए तो नाम का सहारा है । नाम से ही हम तुझ से जुड़ेंगे । तू है भी, हमें पता नहीं । नाम से ही हमें तेरी खबर आएगी । नाम से ही हम धीरे-धीरे तेरी तरफ खिचेंगे । और एक ऐसी घड़ी आती है कि नाद अपने आप गूंजता है, तो तुम खींच लिये जाते हो परमात्मा की तरफ ।

वैज्ञानिक कहते हैं, एक ऊर्जा है जिसका नाम ग्रेव्हीटेशन—गुरुत्वाकर्षण है । हम जमीन पर इसीलिए हैं कि जमीन हमको खींचे हुए है । अगर जमीन हमें छोड़ दे, हम आकाश में खो जाएँ । जमीन हमें अपनी तरफ खींचे है । इसलिए तो पत्थर को हम फेंकते हैं, वापिस जमीन पर गिर जाता है । जमीन उसे खींच रही है । हर चीज को जमीन खींचे हुए है । इसका नाम ग्रेव्हीटेशन है ।

इस युग में एक बहुत महत्त्वपूर्ण महिला हुई—सिमन वैल । उसने कहा कि जिस तरह ग्रेव्हीटेशन है, उसी तरह एक और शक्ति है जिसका नाम है ग्रेस । उसने एक बड़ी महत्त्वपूर्ण किताब लिखी है 'ग्रेस एण्ड ग्रेव्हीटेशन' । न तो ग्रेव्हीटेशन

दिखायी पड़ता है । जमीन का गुरुत्वाकर्षण तो दिखायी पड़ता नहीं, लेकिन फिर भी खींचे हुए है ।

अभी वैज्ञानिक चिंतित हो रहे हैं । क्योंकि कल ही अखबार में खबर थी कि गुरुत्वाकर्षण कम हो रहा है । बहुत छोटी मात्रा में कम हो रहा है, लेकिन कम हो रहा है । और अगर कम होता गया तो जमीन बिखर जाएगी । क्योंकि जमीन उसी शक्ति की वजह से चीजों को पकड़े हुए है । वृक्ष जमीन में गड़े हैं, आदमी जमीन पर चल रहा है, पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं, जानवर जमीन पर चल रहे हैं, सब गुरुत्वाकर्षण है । जमीन का गुरुत्वाकर्षण कम हो जाए, चुम्बक उसकी कम हो जाए, सब चीजें बिखर जाएँगी, अनंत में खो जाएँगी । पर गुरुत्वाकर्षण दिखायी नहीं पड़ता, जो जमीन से बाँधे हुए है ।

सिमन वैल ने बड़ी अच्छी बात कही है कि ठीक ऐसे ही ग्रेस दिखायी नहीं पड़ती । ग्रेस, जिसको नानक प्रसाद कहते हैं, उस की अनुकंपा कहते हैं । जमीन हमें बाँधे हुए है नीचे की तरफ, वह हमें बाँधे हुए है ऊपर की तरफ । जैसे ही जैसे तुम्हारे भीतर ओंकार का नाद बढ़ता है, वैसे ही वैसे जमीन की कशिश कम हो जाती है । और उसकी कशिश बढ़ती जाती है । एक ऐसी घड़ी आती है कि तुम बिलकुल निर्भार हो जाते हो । इसलिए तो योगियों को बहुत बार ऐसा अनुभव होता है ।

यहाँ मेरे पास जो लोग गहरा ध्यान कर रहे हैं उनमें से अनेकों को अनुभव हुआ है कि अचानक ध्यान करते-करते, उन्हें लगा कि वे जमीन से उठ गये । बाहर से दिखायी भी नहीं पड़ता किसी को, कि वे उठ गये हैं । वे भी अपनी आँख खोल कर देखते हैं, तो उठे नहीं हैं, अपनी जगह पर बैठे हैं । लेकिन आँख बंद करते ही भीतर से लगता है, कि ध्वनि गूंजती है, वैसे ही वेटलेसनेस का अनुभव होता है । तुम्हारा यह शरीर तो जमीन पर ही बना रहता है, लेकिन तुम्हारा भीतर का शरीर जमीन से हट जाता है, ऊपर उठ जाता है । और अगर यह यात्रा जारी रहे तो एक दिन तुम पाओगे कि तुम्हारे दो शरीर हो गये । एक शरीर जमीन पर बैठा है, एक शरीर ऊपर उठ गया है और नीचे जमीन पर बैठे शरीर को देख रहा है । उन दोनों के बीच प्रकाश का एक पतला सा धागा है, जो जोड़े हुए है ।

इसलिए ध्यान रखना, अगर कोई भी ओंकार का प्रयोग कर रहा हो और ध्यान में बैठा हो, तो उसे चौंका कर मत हिलाना । उसे कभी धक्का दे कर मत उठाना । क्योंकि उससे कभी खतरे हो सकते हैं । अगर उसके दोनों शरीरों के बीच फासला हो उस समय, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर थोड़े अलग हो गये हों, और भीतर का शरीर ऊपर उठ गया हो, और तुम धक्के दे दो, तो उन दोनों

का संतुलन सदा के लिए बिगड़ जाएगा । उन दोनों के बीच जो ताल-मेल है वह सदा के लिए अस्तव्यस्त हो जाएगा । वह ताल-मेल बहुत सूक्ष्म है ।

ठीक ध्यान की अवस्था में व्यक्ति इस शरीर से बाहर निकलता है, फिर वापस लौट आता है। और जब तुम इस कला में पूरे पारंगत हो जाते हो, कि कैसे बाहर निकलें, कैसे भीतर आ जाएँ; तुम जान गये कि कैसे परमात्मा में प्रवेश करें और कैसे वापस लौट आएँ । तब इस संसार और परमात्मा में कोई विरोध नहीं रह जाता । तुम रहो इस शरीर में, पर उसकी सुरति बनी रहती है । मन का धागा वहाँ जुड़ा रहता है ।

नानक कहते हैं कि उसका नाम उससे भी महान है । जितना बड़ा वह है, वह आप ही अपने को जान सकता है । यदि कोई उतना ऊँचा हो तो वह उस ऊँचे को जान सकता है । नानक कहते हैं, जिसपर उसकी कृपा-दृष्टि होती है, उसी पर उसकी देन, उसका दान उतरता है ।

यह जरा समझने जैसा है और जटिल है । क्योंकि जगत में दो साधना-पद्धतियाँ हैं, सिर्फ दो ! एक साधना-पद्धति का आधार संकल्प है, और एक साधना-पद्धति का आधार समर्पण है । दोनों पहुँचा देती हैं । लेकिन मार्ग दोनों बड़े विपरीत हैं ।

महावीर, पंतजलि, गोरख इनकी साधना-पद्धति संकल्प की है । प्रयास करना है । और संपूर्ण जीवन की शक्ति को प्रयास बना देना है । जिस दिन तुम्हारे भीतर रत्ती भर भी बची हुई शक्ति न रह जाएगी, जिस दिन तुम अपने को पूरा दाँव पर लगा दोगे, उसी दिन घटना घट जाएगी । जिस दिन संकल्प पूरा हो जाएगा, भीतर कोई भाग न बचेगा, कोई भी चीज तुमने बचायी न होगी, सभी कुछ दाँव पर रख दिया होगा, उसी दिन संकल्प पूरा हो जाएगा। उसी दिन तुम परमात्मा से मिल जाओगे । उसी दिन घटना घट जाएगी ।

दूसरा मार्ग है समर्पण का । नानक, मीरा, चैतन्य उन सबका मार्ग बिलकुल भिन्न है । और वह मार्ग यह है कि हमारे प्रयास से उपलब्धि नहीं होती, उसके प्रसाद से उपलब्धि होती है । हमारी चेष्टा से कुछ न होगा । उसकी अनुकंपा से सब कुछ होगा। इसका यह मतलब नहीं कि तुम प्रयास मत करना, इसका मतलब इतना ही है कि तुम प्रयास पर भरोसा मत रखना । अकेले प्रयास पर भरोसा मत रखना । प्रयास तो तुम करना, लेकिन यह बात जानते रहना कि होगा उसकी अनुकंपा से ।

यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है । क्योंकि अगर प्रयास का ही भरोसा हो तो अहंकार के जन्मने की संभावना है । इसलिए यह हो सकता है कि योगी अकड़ जाए और समझने लगे कि सब मेरे कारण हो रहा है । जो भी हो रहा है, मैं कर रहा हूँ ।

और यह अहंकार अगर बन जाए तो इससे छुटकारा बहुत मुश्किल है । धन का अहंकार छोड़ना आसान है । पद का अहंकार छोड़ना आसान है । लेकिन प्रयास का अहंकार छोड़ना बड़ा कठिन है । तो संकल्प के मार्ग पर जो सब से बड़ा खतरा है वह यह है कि कहीं प्रयास करते-करते अहंकार मजबूत न हो जाए, कहीं ऐसा न लगे कि सब मुझ से हो रहा है, मैं कर रहा हूँ इसलिए हो रहा है । तो मैं महत्त्वपूर्ण हो जाऊँगा, परमात्मा भी गौण हो जाएगा । तब सब करने के बाद, सब द्वार खोलने के बाद आखिरी द्वार पर मैं अटक जाऊँगा । यह खतरा है संकल्प के मार्ग का । इसलिए महावीर, पतंजली, गोरख उस वर्ग के यात्री एक बात पर बहुत जोर देते हैं, कि अहंकार छोड़ो, अहंकार छोड़ो । प्रयास करो और अहंकार छोड़ो । कहीं अहंकार प्रयास के साथ चला, तो दूर प्रयास अहंकार को मजबूत करता है । तुम जो भी करते हो उससे लगता है ' मैं ' मजबूत हो रहा हूँ । मैंने किया जप, तप, योग, मैंने सिद्धियाँ पायीं । और यह अकड़ अगर साथ आ गयी तो सब व्यर्थ हो गया ।

इसलिए नानक कहते हैं, ' प्रयास करो लेकिन याद रखो मन में, कि होगा उस की अनुकंपा से । ' तो वह आखिरी खतरा जो संकल्प में आता है, नहीं आएगा । लेकिन तब दूसरा खतरा है । संकल्प के मार्ग पर आखिर में खतरा आता है और समर्पण के मार्ग पर पहले ही खतरा है । और पहले ही खतरे से निपट लेना बेहतर है ।

पहला खतरा यह है, कि कहीं ऐसा न हो जाए कि तब तुम सोचो कि कुछ करने की जरूरत ही नहीं है । होगा जब उसकी ही कृपा से, तो हम क्या करें ? तो यह न करने का बहाना बन जाए ! तब तुम सोचते रहोगे, होगा उसकी कृपा से जब होना है, हमारे करने से क्या होना है ? और जिंदगी की जो व्यर्थता है, तुम उसमें ही उलझे रहोगे । क्योंकि जब वह चाहेगा, तब होगा । जब उसकी मर्जी होगी, होगा । हम क्या करें ? यह कहीं संसार में भटकने के लिए आधार न बन जाए । ये कहीं क्षुद्र को करने का रास्ता न बना रहे । और यह कहीं तरकीब न हो, बहाना न हो टालने का कि जब उसको करना होगा करेगा, हम क्या कर सकते हैं ? समर्पण के मार्ग पर पहले ही खतरा है, कि कहीं तुम आलस्य में न डूब जाओ ।

इसलिए, प्रयास तो पूरा करना है । और फल सदा उसकी कृपा से मिलेगा, यह स्मरण रखना है । तो नानक बार-बार दोहराते हैं, कि जिसपर उसकी कृपा-दृष्टि होती है, उसीपर उसकी देन, उसका दान उतरता है । लेकिन कृपादृष्टि उसकी किसपर होती है ? उसी पर होती है, जो प्रयास से अपने को तैयार करता है ।

इसे थोड़ा समझें। क्योंकि सामान्य जीवन में कृपा-दृष्टि का बड़ा अलग अर्थ है। कृपा-दृष्टि का मतलब यह है, कि क्या वह भी पक्षपाती है, कि अपनों पर कृपा करता है और दूसरों को छोड़ देता है, कि किसी को चुन लेता है और उसीपर करता है, और दूसरों को छोड़ देता है। यह तो अन्याय होगा। परमात्मा के साथ अन्याय को तो हम जोड़ ही नहीं सकते। फिर तो कोई सार ही न रहा। फिर तो पापी पर उसकी कृपा हो सकती है और पुण्यात्मा पर न हो। फिर तो सब करना व्यर्थ है।

नहीं, उसकी कृपा-दृष्टि का यह अर्थ नहीं है कि वह किसीको अकारण चुन लेता है, कि खुशामदियों को चुन लेता है, कि स्तुति करने वालों को चुन लेता है। उसकी कृपा-दृष्टि तो सभी पर बरस रही है। वर्षा उसकी सभी पर हो रही है। लेकिन कुछ लोग अपनी मटकी को उलटा किये बैठे हैं। जिन की मटकी उलटी है, कृपा-दृष्टि तो उन पर भी हो रही है लेकिन उनकी मटकी भर नहीं पाती। कुछ लोग अपनी मटकी सीधी किये बैठे हैं। उनकी मटकी भर जाती है। तुम्हारी मटकी सीधी होने से वर्षा नहीं हो रही है! वर्षा तो हो ही रही है। लेकिन तुम्हारी मटकी सीधी होगी तो भर जाएगी। और तुम कितनी ही मटकी सीधी करो, अगर वर्षा नहीं हो रही तो कैसे भर पाएगी?

इसलिए नानक कहते हैं, भरना तो उसकी कृपा-दृष्टि से होता है; लेकिन इतना तो प्रयास तुम्हें करना पड़ेगा कि मटकी को तुम सीधी रखो। इतना ध्यान तुम्हें रखना पड़ेगा कि मटकी में तलहटी है या नहीं! फूटी तो नहीं है! इतना ध्यान तुम्हें रखना पड़ेगा कि मटकी उलटी तो नहीं रखी है! तिरछी तो नहीं रखी है, कि कृपा बरसे भी तो भर न पाए। अनुकंपा आए भी तो भी बह जाए।

हर आदमी पर उसकी अनवरत वर्षा हो रही है। परमात्मा अनवरत बरस रहा है। लेकिन तुम कुछ उलटे-सीधे, आड़े-तिरछे हो। तुम वंचित रह जाते हो अपने कारण।

इसे समझ लेना। यह बड़ा उलटा दिखायी पड़ेगा। वंचित रहते हो तुम अपने कारण, पाओगे उसके कारण। मिलेगा उसके प्रसाद से, खोओगे अपने कारण।

समर्पण के मार्ग पर यह स्मरण रखना जरूरी है, कि अगर मैं खो रहा हूँ तो मैं ही कुछ उलटा हूँ। अगर पाऊँगा तो उसकी अनुकंपा है। अगर यह तुम याद रख सको तो अहंकार के सघन होने की कोई जगह न रह जाएगी। तुम्हारे भीतर कोई स्थान न बचेगा जहाँ अहंकार मजबूत हो जाए। और जिसके पास अहंकार नहीं, उसके पास परमात्मा है।

'उसकी महान कृपा का वर्णन नहीं हो सकता। वह दाता इतना महान है कि उसमें बदले में पाने की तिल मात्र भी लालच नहीं।'

और दान का अर्थ समझ लेना। तुम भी दान देते हो, लेकिन उसमें पाने की कोई आकांक्षा छिपी रहती है। तुम अगर भिखारी को दो पैसे भी देते हो तो भी पाने की आकांक्षा रहती है कि शायद स्वर्ग में इसका प्रतिकार मिलेगा। और, ना सही स्वर्ग में, कम से कम मोहल्ले-पड़ोस के लोग देख लेंगे—कि मैं दानी हूँ। इज्जत बढ़ेगी, प्रतिष्ठा मिलेगी।

एक अंधा आदमी एक चर्च में जाता था। अंधा भी था, बहरा भी था। बहुत जोर से कोई चिल्लाए तो बामुश्किल सुन सकता था। तो चर्च में न तो प्रवचन पुरोहित का उसे सुनायी पड़ता था, न चर्च में चलता भजन-संगीत उसे सुनायी पड़ता था। न वह कुछ देख सकता था। पर जाता नियम से था। एक दिन एक आदमी ने उस से पूछा कि हमारी कुछ समझ में नहीं आता, तुम किसलिए यहाँ आते हो? न तुम देख सकते, न तुम सुन सकते हो, तो किस लिए इतनी परेशानी उठाते हो? उस आदमी ने कहा, मैं इसलिए आता हूँ ताकि दूसरे देख लें कि मैं चर्च आने वाला धार्मिक आदमी हूँ।

और तुम्हारे पास भला आँखें हों, आते तुम भी इसीलिए हो। और भला तुम्हारे पास कान हों, आते तुम भी इसीलिए हो। मंदिर, गुरुद्वारा, मस्जिद जाना भी सामाजिक कृत्य हो गया है। एक औपचारिकता है, जो निभानी पड़ती है। तुम अगर दो पैसे दान भी देते हो तो भी प्रतिकार छिपा है। तुम पाना चाहते हो। वह दान न रहा, सौदा हो गया।

सौदा और दान में यही तो फर्क है। जब तुम कुछ वापस पाना चाहते हो, तब सौदा। तब तो बड़ा कठिन हो जाएगा। तब तो तुमने कभी दान नहीं दिया। तुमने सदा सौदा ही किया है। और लोग जो तुम्हारा शोषण करते हैं, भली-भाँति समझ गये हैं, कि तुम सौदा ही करते हो। तो वे तुम्हें समझाते हैं कि यहाँ दो एक, वहाँ मिलेंगे लाख। यहाँ दो ब्राह्मण को, वहाँ पाओगे। यहाँ चढ़ाओ, वहाँ फल मिलेगा। करोड़ गुना प्राप्त होगा स्वर्ग में। जो तुम्हारा शोषण करते हैं वे भी समझ गये हैं कि तुम सौदागर हो! दान तो तुम दे नहीं सकते।

क्या तुम ऐसे मंदिर में भी दान दोगे, जहाँ कहा जाए कि तुम दान दो भला, मिलेगा कुछ भी नहीं? दो, तुम्हारी मर्जी, तुम्हारी खुशी; वापस कुछ न पाओगे। उस मंदिर में दान देने वाला खोजना मुश्किल हो जाएगा। वह मंदिर गिर ही जाएगा। उसका बनना ही मुश्किल है। वैसा मंदिर कहीं भी नहीं है।

जब तुम परमात्मा के दान की बात सोचो तो तुम अपनी भाषा का हिसाब मत रखना। तुम ऐसा मत सोचना कि जैसा दान तुम देते हो। नानक कहते हैं कि वह देता है और तुम से कुछ पाना नहीं चाहता। तुम्हारे पास है भी क्या जो तुम दोगे? उसका दान शुद्ध है, अनकंडीशनल है। उस में कोई शर्त नहीं है, बेशर्त है।

तुमने वापस क्या दिया है ? जीवन तुमने पाया था ! और अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम आया तो तुमने वापस क्या दिया है ? और अगर तुमने हलकी झलकें भी पायीं अगर स्वास्थ्य की, सौंदर्य की, सत्य की, तो तुम ने वापस क्या दिया है ? बड़े आश्चर्य की बात है कि हम कभी इस भाँति सोचते ही नहीं कि हमें जो मिला है, उसके उत्तर में हमने क्या दिया है ?

तुम्हें जो मिला है, अगर तुम्हें ख्याल आ जाए तो तुम अनंत तक नाचते रहोगे उत्सव में। तुम उसका गुणगान करते रहोगे। यह गुणगान किसी भय से पैदा न होगा। यह गुणगान सिर्फ अहोभाव होगा, कि जो दिया है वह इतना ज्यादा है—और बिना कारण दिया है। न कोई योग्यता है, न कोई लौटाने का उपाय है। पिता के ऋण से मुक्त हुआ जा सकता है, माँ के ऋण से मुक्त हुआ जा सकता है, परमात्मा के ऋण से कैसे मुक्त होओगे ? वह दान बेशर्त है।

तो नानक कहते हैं, वह दाता इतना महान है कि इसमें बदले में पाने की तिल मात्र भी लालच नहीं है।

'बहुता करम लिखिआ ना जाइ। बडा दाता तिलु न तमाइ।'

'कितने ही बड़े योद्धा हों, उससे माँगते ही रहते हैं।' और हमारे भिखारी तो माँगते ही हैं, हमारे योद्धा भी माँगते हैं। हमारे भिखारी और हमारे सम्राटों में बहुत फर्क नहीं है। मात्रा का ही फर्क होगा। क्योंकि माँगते तो दोनों ही रहते हैं।

और ध्यान रखना, जब माँग मिट जाती है, तभी तुम्हें उसका दान दिखायी पड़ना शुरू होता है। तुम्हारी माँग के धुएँ के कारण दान तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता। तुम माँगे ही चले जाते हो। तुम्हें फुर्सत नहीं, कि तुम देख लो जो मिल रहा है। जिस दिन माँग बंद होती है उस दिन दान दिखायी पड़ता है। जिस दिन माँग बंद होती है उस दिन प्रार्थना का गलत रूप गिर जाता है, सही रूप प्रकट होता है।

'माँगने वालों की गिनती का विचार भी नहीं किया जा सकता। कितने ही विकारों में वे खप कर नष्ट हो जाते हैं।'

नानक यहाँ बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, कि तुम्हारा माँगना भी ऐसा अंधा है, कि तुम जो माँगते हो उसको पाकर ही नष्ट होते हो। तुम माँगते भी गलत हो। तुम गौर से देखो, तुम्हारी जिंदगी जितने कष्ट में है, उस कष्ट का कारण अगर तुम खोजोगे, तो कहीं न कहीं तुम्हारी अपनी ही माँग पाओगे।

तुम बड़े पद पर होना चाहते हो। फिर बड़े पद की चिंताएँ हैं। रात नींद नहीं आती। दिन चैन नहीं मिलता। पश्चिम में वे कहते हैं, कि अगर चालीस

साल की उम्र तक 'हार्ट अटैक' का पहला दौरा न पड़े, तो उसका मतलब साफ है, कि तुम असफल आदमी हो। चालीस साल की उम्र तक 'हार्ट अटैक' का दौरा पड़ना ही चाहिए। सफल आदमी का लक्षण वह है। अगर पेट में अल्सर न हो जाए, तो तुम गरीब आदमी हो। क्योंकि अमीर को अल्सर होना जरूरी है।

सफल आदमी सफलता की माँग कर-कर के पाता क्या है ? और जो उसने माँगा, वह मिल जाता है। बड़े मज़े की बात तो यह है, कि तुम जो माँगोगे, मिल जाएगा। देर-अबेर मिल ही जाएगा। इसलिए माँगना थोड़ा सोच-समझ कर। क्योंकि फिर पछताना मत। पहले माँगने में समय गँवाया, फिर पछताने में समय गँवाओगे।

तुम गौर से अगर अपनी जिंदगी का विश्लेषण करो तो तुम पाओगे कि तुम अपने ही हाथ मुसीबत में फँसे हो। तुम ने जो-जो माँगा था, वही पाकर फँस गये हो। वह मिल गया। तुम्हें धन चाहिए था, धन मिल गया। पर धन के साथ धन की चिंता भी आती है। और धन के साथ आत्मा का सिकुड़ाव भी आता है। और धन के साथ हजार तरह के रोग भी आते हैं। और धन के साथ हजार तरह का अभिमान, अहंकार भी आता है। वह सब भी उस के साथ है। जुड़ा हुआ है। उसे तुम छोड़ न सकोगे। तुम जो माँगते हो, मिल जाता है। और फिर तुम पछताते हो।

तो नानक कहते हैं, कितने ही विकारों में खप कर नष्ट हो जाते हैं। अपनी ही माँग, अपनी ही प्रार्थनाएँ !

कितने ही ऐसे हैं, जो ले-लेकर मुकर जाते हैं। एहसान भी नहीं मानते हैं। माँग कर लेते हैं, मिल जाता है। धन्यवाद भी नहीं देते।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन रोज सुबह नमाज के वक्त चिल्ला कर कहता था, 'हे परमात्मा, एक बात ख्याल रख; जब भी लूँगा, पूरे सौ रुपये लूँगा। कम मैं न लूँगा। जब भी तुझे देना हो, सौ की पूरी थैली गिरा देना। और ध्यान रख, निन्यान्नबे भी न लूँगा।'

पड़ोस का एक आदमी रोज यह सुनता था। उसे मजाक सूझी। उसने कहा कि रोज यह एक ही बात किए जा रहा है। और निन्यान्नबे तो यह लेगा नहीं। तो खतरा भी नहीं है। तो उस ने एक थैली में निन्यान्नबे रुपये रखकर, जब दूसरे दिन वह नमाज पढ़ रहा था, उस के छप्पर में से नीचे गिरा दी। उसने नमाज़ बीच में ही छोड़कर पहले रुपये गिने और जोर से कहा, 'वाह रे वाह ! एक रुपया थैली का काट ही लिया !'

आदमी धन्यवाद भी देने को राजी नहीं है। उसने फिर भी शिकायत ही की, कि वाह रे वाह ! एक रुपया काट ही लिया थैली का !

सुना है मैंने, कि एक बहुत बड़ा धनपति समुद्र-यात्रा से वापिस लौट रहा था। भयंकर तूफान उठा। जहाज अब डूबा, तब डूबा, ऐसी हालत हो गयी। पहले तो वह कोरी-कोरी प्रार्थना करता रहा, लेकिन जब जिंदगी बिलकुल मौत के करीब आ गयी, तब उसने कहा कि अगर आज बच गया, अगर तूने आज बचा लिया परमात्मा, तो मेरा जो महल है राजधानी में, उसे बेच कर गरीबों को बाँट दूंगा। तूफान शांत हो गया। नाव किनारे लग गयी, अब वह मुश्किल में पड़ा। पछताने लगा कि यह तूफान तो शांत हो ही जाना था। मैं नाहक फँस गया। क्योंकि लोगों ने भी सुन लिया। उस ने इतना जोर से कह दिया था। गलती हो गयी। इसलिए तो लोग चुप-चुप कर प्रार्थना करते हैं।

सारे जहाज के लोगों ने सुन लिया और लोग जहाज से उतरे नहीं कि सारे नगर में खबर फैल गयी, कि धनपति ने प्रार्थना की है, कि उस के महल को बेच देगा और गरीबों को बाँट देगा। बहुत झंझट में पड़ा। बहुत सोच-विचार किया।

आखिर एक दिन उसने गाँव में खबर कर दी कि ठीक है, मकान बेचना है, जिनको भी खरीदना हो, आ जाएँ। दस लाख का मकान था। बड़े खरीददार इकट्ठे हुए। बड़ा महल था। राजधानी में उससे बड़ा कोई मकान न था। सब बड़े हैरान हुए जब उस अमीर ने घोषणा की, कि यह मकान और यह बिल्ली जो दरवाजे पर बँधी है, दोनों साथ ही बिकेंगे। बिल्ली का दाम दस लाख रुपया और मकान का दाम एक रुपया। मगर दोनों साथ!

लोग बहुत हैरान हुए, कि यह क्या पागलपन है? और बिल्ली का दाम कभी सुना दस लाख? और इस महल का दाम सिर्फ एक रुपया? लेकिन लोगों ने कहा कि हमें इससे क्या प्रयोजन! खरीददार मिल गये। दस लाख का मकान था ही, और बिल्ली एक रुपये की थी। इसमें कुछ अड़चन न थी। तो दस लाख में बिल्ली खरीद ली और एक रुपये में मकान। उस ने दस लाख जेब में रख दिये और एक रुपया गरीबों में बाँट दिया। क्योंकि जो वचन दे चुका था, कि महल को बेच कर गरीबों में बाँट दूंगा।

परमात्मा के साथ भी लोग लीगल, कानूनी संबंध रखते हैं। वहाँ से भी तो हिसाब, निकाल ही लेते हैं रास्ता। मिल जाए तो, नानक कहते हैं, बहुत ऐसे हैं जो ले-लेकर मुकर जाते हैं। मिल जाता है तब कहते हैं, संयोग की बात है। यह तो होने ही वाला था। हो गया। बहुत से तो ऐसे हैं जो इतना भी नहीं कहते। बात ही भूल जाते हैं, कि माँगा और मिला। हमने कभी माँगा भी था, यह भी भूल जाते हैं। एहसान, उसका अनुग्रह भी नहीं मानते।

कितने ऐसे हैं जो माँगते रहते हैं और वह देता रहता है और खाते रहते हैं। और कभी उस माँगने और खाने की वृत्ति से ऊपर नहीं उठते हैं। भोगते

रहते हैं। और भोग करीब-करीब ऐसा है, कि उस से कोई कहीं पहुँचता नहीं। कुछ पाता नहीं। सिर्फ समय गँवाता है। कितना ही खाओ, क्या मिलेगा? कितना ही पहनो, क्या मिलेगा? कितने ही हीरे-जवाहरात से सजा लो शरीर को, क्या मिलेगा? जीवन के बहुमूल्य क्षण ऐसे ही जा रहे हैं, जिनमें प्रार्थना हो सकती थी। जिनमें ध्यान का धन मिल सकता था। जीवन ऐसे ही जा रहा है, कंकड़-पत्थरों के इकट्ठा करने में।

नानक कहते हैं, 'और कितने ऐसे भी हैं जिन पर सदा दुःख और भूख की मार पड़ती रहती है फिर भी जिन्हें स्मरण नहीं आता।'

खुद की ही माँगों के कारण दुःख की मार पड़ती रहती है फिर भी जागते नहीं, कि हम जो माँगते हैं उसीसे दुःख पाते हैं। हमारे कष्ट हमारी आकांक्षाओं का फल हैं। और हमारे नर्क हमारी ही वासना से आते हैं। पर हम संबंध ही नहीं जोड़ते। हम दोनों को अच्छा ही कर के देखते हैं। तुम सदा सुख माँगते हो, लेकिन कभी तुम ने यह देखा, कि तुम्हारी सारी वासनाएँ तुम्हें दुःख में ले जाती हैं? और फिर भी तुम कहते हो, सुख क्यों नहीं मिलता?

जैसे कोई आदमी सूरज की तरफ पीठ किये चलता हो और कहता हो कि मुझे प्रकाश क्यों नहीं मिलता? सूरज के दर्शन क्यों नहीं होते? सूरज के दर्शन तो अभी हो सकते हैं, लेकिन वासना में जाता हुआ चित्त दुःख में जाएगा, नर्क में जाएगा, अंधेरे में जाएगा। और तुम्हारी प्रार्थनाएँ भी तुम वासनाओं में ही रंग लेते हो। भक्त अपनी वासना को भी अपनी प्रार्थना के प्रति समर्पित करता है। तुम अपनी प्रार्थना को भी अपनी वासना की सेवा में लगा देते हो।

तो नानक कहते हैं, कितने ही ऐसे हैं जिन पर दुःख की मार पड़ती रहती है, फिर भी जागते नहीं।

कितने जन्मों से तुम पर दुःख की मार पड़ रही है! नहीं, बुद्ध का हिसाब ठीक नहीं है। घोड़े चार तरह के होते हैं। एक, जिनको मारो तो भी इंच नहीं हिलते। जिन को मार-मार कर मार डालो--असली अड़ियल घोड़े! वे हटते ही नहीं। तुम जितना मारो, उतना मजबूती से वे रुक जाते हैं।

क्योंकि कितने दुःख की मार पड़ रही है, तो भी तुम सचेत नहीं होते। तुम झेले चले जाते हो। तुम आदी हो गये हो। तुम धीरे-धीरे मान ही लिए हो कि दुःख ही जीवन का ढंग है। तुम भूल ही गये हो कि जीवन परमानंद है। जीवन परम उत्सव है। और अगर तुम दुःखी हो, तो तुम्हारी किसी भूल के कारण हो।

'हे दाता, ये भी तेरे ही दान हैं।'

और नानक कहते हैं कि ये भी तेरे ही दान हैं। लोग माँगते हैं और तू दिए चला जाता है। ध्यान रखना, तुम ने अगर गलत माँगा तो गलत भी मिल

जाएगा। क्योंकि अस्तित्व तुम्हें देने को बेशर्त राजी है। तुम ने अगर गलत माँगा, तो गलत भी मिल जाएगा। क्योंकि परमात्मा देता है और तुम्हारी स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं डालता। तुम ने अगर भटकाव माँगा, तो भटकाव मिल जाएगा।

इसे थोड़ा समझें। क्योंकि इससे एक सवाल उठता है, कि परमात्मा तो जानता है कि क्या गलत है। हम गलत माँगते हों। वह गलत क्यों दे ?

अगर तुम्हारी माँग को पूरा न करे तो तुम्हारी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। तब तुम धागों से बँधी कठपुतलियाँ हो जाते हो। फिर वह जो चाहे वह तुम्हें दे। तुम्हारी माँग की भी स्वतंत्रता न रह जाए। तब तो मनुष्य की सारी गरिमा खो जाती है। मनुष्य की गरिमा यही है, कि वह गलत भी जा सकता है। सही जाना चाहे, सही जा सकता है। गलत जाना चाहे, गलत जा सकता है। स्वतंत्रता की संभावना है। तुम बिलकुल जकड़े नहीं हो जंजीरों में। तुम्हें सचेतन अवसर है चुनाव का। तुम जहाँ जाना चाहो। तुम्हें परमात्मा कहीं से अवरोध नहीं देता। वह तुम्हारा विरोध नहीं करता। वह तुम्हारे बीच में खड़ा नहीं होता। वह सब तरफ तुम्हें मार्ग देता है। सब तरफ दिशाएँ खुली हुई हैं।

तुम चाहो तो गिर जाओ आखिरी नर्क तक। तो भी तुम्हें वह रोकेगा नहीं। तुम चाहो तो तुम उठ जाओ आखिरी स्वर्ग तक, तो भी वह तुम्हें रोकेगा नहीं। हर हालत में उस की शक्ति तुम्हें मिलती रहेगी। उस का दान बेशर्त है। और उस के दान में तुम्हें परतंत्र बनाने की चेष्टा नहीं है। वह तुम्हें देता है और तुम जैसा भी उपयोग करना चाहो कर लो।

इसलिए नानक कहते हैं कि 'हे दाता, ये भी तेरे ही दान हैं। बंधन और मुक्ति तेरी ही आज्ञा से होते हैं।'

लेकिन माँगते हम हैं। हम बंधन माँगते हैं तो बंधन घट जाता है। आज्ञा उसकी है। हुकुम उसका है। कानून उसका है। नियम उसका है।

जैसे तुम वृक्ष पर चढ़ जाओ और कूद पड़ो, तो हड्डी टूट जाएगी। जो जमीन का गुरुत्वाकर्षण तुम्हें संभालता था, और गिरने नहीं देता था, वही हड्डी टूटने का कारण हो जाएगा। तुम जमीन पर सीधे चलो, गुरुत्वाकर्षण तुम्हारे चलने में सहारा देता है। तुम इरछे-तिरछे चलो तो गिर जाते हो, फ्रैक्चर हो जाता है। शक्ति वही है।

शक्ति निरपेक्ष है, तटस्थ है। परमात्मा बिलकुल निरपेक्ष और तटस्थ है। तुम अगर ठीक से उपयोग कर लो, तो तुम परम अनुभव को उपलब्ध हो जाते हो। तुम अगर गलत भटको, तो तुम जीवन के गहन से गहन गड्ढे में गिर जाते हो। नानक कहते हैं, सब तुझ से ही मिलता है, स्वर्ग भी नर्क भी, लेकिन माँग

हमारी है पीछे। कानून तेरा काम करता है। लेकिन हम माँग-माँग कर खुद थक जाते हैं।

मैंने सुना है कि एक राजनीतिज्ञ मरा। बड़ा नेता था और बड़ा होशियार आदमी था। पुराना खिलाड़ी था। और सब तरह के दाँव-पेंच जानता था। जब वह स्वर्ग के द्वार पर पहुँचा तो उसने कहा, कि पहले मैं स्वर्ग और नरक दोनों देख लेना चाहता हूँ। फिर मैं चुनाव करूँगा, कि कहाँ रहना है। स्वर्ग दिखाया गया। उसे स्वर्ग थोड़ा सा उदास लगा—राजनीतिज्ञ था, दिल्ली में रहने का आदी था। स्वर्ग जरा उदास लगा। जो लोग सदा उत्तेजना में रहे हैं उन्हें स्वर्ग उदास लगेगा ही! क्योंकि वहाँ लोग शांत थे। न कोई शोरगुल था, न कोई उपद्रव था। न कोई झगड़ा-झाँसा था। न कोई आंदोलन हो रहा था, न कोई घेराव हो रहा था। कुछ भी नहीं हो रहा था।

पूछा, 'अखबार ?'

तो कहा, 'अखबार यहाँ छपता नहीं।'

क्योंकि अखबार तभी छपे जब कोई न्यूज हो, जब कोई समाचार हो। समाचार ही कुछ नहीं है। यहाँ बस सब शांति है। समाचार का मतलब ही उपद्रव होता है। कुछ उपद्रव हो तो समाचार! तुम अगर समाचार बनना चाहो, तो कुछ उपद्रव करो। तुम समाचार बन जाओगे। खाली बैठे रहो, अपने झाड़ के नीचे बुद्ध बने, कोई समाचार नहीं है।

उसने कहा, कि यह तो बड़ा उदास-उदास, फीका-फीका सा लगता है। मैं नरक भी देखना चाहता हूँ। पहुँचा नरक। जँचा बहुत। दिल्ली को भी मात करता था। कई अखबार छपते थे। बड़े आंदोलन, बड़ा शोरगुल, बड़ी रौनक, चहल-पहल, होटलें, संगीत, बाजे, वह जँचा। उसने कहा कि यह बात जँचती है। लेकिन हम तो सदा पृथ्वी पर उलटा ही सोचते रहे कि स्वर्ग में बड़ा आनंद है और नरक में बड़ा कष्ट है। यहाँ हालत उलटी है।

शैतान से कहा, जो कि द्वार पर स्वागत करने आया था कि मामला क्या है? पृथ्वी पर तो लोग उलटा ही समझे बैठे हैं। मैं भी अगर चुपचाप स्वीकार कर लेता, तो स्वर्ग में फँस जाता। हम तो जो मरता है उसको कहते हैं, स्वर्गवासी हुआ। यहाँ आना चाहिए। यह आने योग्य जगह है, जिंदगी मालूम पड़ती है। रंग है, रौनक है, वैभव है! पृथ्वी पर उलटी खबर क्यों है ?

शैतान ने कहा, कारण है। मेरी वहाँ कोई सुनता नहीं और विपरीत पक्ष के लोगों ने प्रचार कर रखा है। ये धार्मिक लोग स्वर्ग का प्रचार कर रखे हैं। सदा से। और मेरी कोई सुनता नहीं। और मैं अगर किसीको कहूँ भी, तो लोग

कहते हैं, कि शैतान है, सावधान ! तो मेरे साथ बड़ा अन्याय हुआ है। और अब आप अपनी आँखों से देख लो।

राजनीतिज्ञ ने लौट कर देवदूत से कहा, जो स्वर्ग से यहाँ तक पहुँचाने आया था, कि मैंने चुन लिया। तुम वापिस लौट जाओ। मैं नर्क में ही रहूँगा। जैसे ही उसने चुना, दरवाजा बंद हुआ, और एकदम नर्क की शकल बदल गयी। जैसे कि फिल्मों में चित्र एकदम से बदल जाते हैं। अनेक लोग उसपर टूट पड़े। और घूँसा-बाजी, और उसको पटकने लगे जलते कड़ाह में।

उसने कहा कि यह क्या कर रहे हो ? और अब तक सब ठीक था। शैतान ने कहा, कि यह व्हिज़िटर्स के लिए था। अब असली नर्क शुरू होता है। वह तो ऐसे ही, जो टूरिस्ट्स--व्हिज़िटर्स, उनको दिखाने के लिए बना रखा था। अब असली चीज ! एक दफा चुन लिया, अब आप निवासी हो गये। अब आप मजा देखोगे।

नर्क भी लोग चुनते हैं, क्योंकि हर वासना का शुरू का हिस्सा व्हिज़िटर्स के लिए है। हर वासना का प्राथमिक चरण लुभाने के लिए है। वह शो-विण्डो है। वह असली चीज नहीं है। वह सिर्फ प्रलोभन है। विज्ञापन है। एक बार चुन ली वासना, फिर असली नर्क शुरू होता है। तुम चुन-चुन कर अपने ही हाथ नरक में पड़े हो।

और स्वर्ग शुरू में बे-रौनक है। क्योंकि आनंद शुरू में बे-रौनक होगा ही। क्योंकि आनंद परम शांति है। और दुःख शुरू में बड़ा रंग-रौनक वाला मालूम पड़ता है, क्योंकि उत्तेजन है। तुम उत्तेजन को चुनते हो, दुःख पाते हो। जिस दिन तुम शांति को चुनोगे, उस दिन तुम आनंद पाओगे। होता सब उसके हुकुम से है, उसके कानून से। लेकिन उसका कानून जैसी तुम माँग करते हो, वैसा ही तुम्हारे अनुकूल ढल जाता है। वह तटस्थ है। वह अपनी माँग को तुम्हारे ऊपर नहीं थोपता। और थोप भी दे, तो भी तुम राजी न होगे।

क्योंकि स्वर्ग अगर तुम्हें जबरदस्ती दे दिया जाए तो नर्क से भी बदतर मालूम पड़ेगा। नर्क भी तुम अपनी मौज से चुनो, तो स्वर्ग है। क्योंकि तुम्हारी स्वतंत्रता अक्षुण्ण रहनी चाहिए।

यह एक बारीक से बारीक सवाल है मनुष्य के दर्शन-शास्त्र का, कि परमात्मा और मनुष्य की स्वतंत्रता साथ-साथ कैसे हो सकती है ? इसलिए महावीर ने परमात्मा को इनकार कर दिया। क्योंकि उससे स्वतंत्रता समाप्त हो जाएगी। अगर सब उसी के हुकुम से हो रहा है तो आपकी भी स्वतंत्रता का अंत हो गया। और जब स्वतंत्रता न रही, तो आत्मा का क्या मूल्य ? इसलिए महावीर ने कहा, कोई परमात्मा नहीं, स्वतंत्रता है। ऐसे लोग हुए जिन्होंने कहा, कि कोई स्वतंत्रता नहीं है, भाग्य है। परमात्मा है। कोई स्वतंत्रता नहीं है।

नानक दोनों के मध्य में हैं। वे कहते हैं, मनुष्य की स्वतंत्रता है और परमात्मा भी है। स्वतंत्रता माँग की है। तुम जो चाहो माँगो। उसके लिए प्रयास करो, वह मिलेगा। लेकिन मिलता परमात्मा की अनुकंपा से है। दुःख माँगो तो भी मिल जाता है।

अब यह बड़े मजे की बात है, कि तुम दुःख क्यों माँगे चले जाते हो ? और अगर तुम सुख नहीं माँग रहे हो, तो परमात्मा लाख उपाय करे तुम्हें सुख नहीं दे सकता।

ऐसा हुआ। सूफी फकीर जुन्नेद हुआ। वह कहता था, किसीको जबरदस्ती सुख नहीं दिया जा सकता। किसीको जबरदस्ती शांति नहीं दी जा सकती।

मैं भी राजी हूँ। बहुत लोगों को मैंने भी कोशिश कर के देख ली कि जबरदस्ती भी दे दो--असंभव है। तुम जितना देने की जबरदस्ती करोगे, उतना आदमी चौंककर भागता है, कि कोई खतरा है। आनंद भी नहीं दे सकते किसी को। क्योंकि कोई लेने को राजी ही नहीं है।

तो एक दिन एक भक्त ने कहा कि यह बात मैं मान ही नहीं सकता। तो हम एक प्रयोग करें। वह एक आदमी को लाया और उसने कहा कि यह आदमी बिलकुल दीन-दरिद्र है। और सम्राट आपके भक्त हैं। आप उनसे कहें कि इसको एक करोड़ स्वर्ण-अशर्फियाँ दे दें। फिर हम देखें कि कैसे यह आदमी दीन-दरिद्र रहता है। कैसे दुःखी रहता है। जुन्नेद ने कहा...' ठीक ! '

एक दिन प्रयोग किया गया, और एक करोड़ अशर्फियाँ एक बहुत बड़े मटके में भर कर एक नदी के पुल के बीच में रख दी गयीं। पुल पर आवागमन बंद किया गया। और वह आदमी रोज शाम को टहलने उस पुल पर से निकलता था, ठीक उस वक्त आवागमन बंद किया गया। भरा हुआ मटका अशर्फियों का रख दिया बीच पुल पर, कोई नहीं है। और दूसरी तरफ सम्राट, जुन्नेद और उसके साथी, जो प्रयोग कर रहे थे, वे चुपचाप खड़े हो गये।

तो कोई अड़चन नहीं है इस आदमी को। कोई पुलिस नहीं है, कोई जनता नहीं है, पुल खाली है। पुल पर मटका रखा हुआ है। स्वर्ण की अशर्फियाँ चमक रही हैं सूरज की धूप में। और वह आदमी चला आ रहा है उस तरफ से।

पर बड़ी हैरानी की बात है ! वह आदमी मटकी के पास से गुजर गया और दूसरी तरफ आ गया। उसने मटकी को न तो देखा, और न छुआ। जुन्नेद और उसके साथियों ने उसे पकड़ा और कहा कि तुम्हें मटकी दिखायी नहीं पड़ी।

उसने कहा कि कैसी मटकी ? जब मैं पुल पर आया तब मुझे ख्याल उठा कि आज पुल पर कोई भी नहीं है। कई दिन से ख्याल उठता था लेकिन कर

नहीं सकता था। आज प्रयोग कर लूं। कई दिन से सोचता था कि आँख बंद कर के पुल पार कर सकता हूँ कि नहीं ! लेकिन भीड़-भाड़ रहती थी, कभी कर नहीं पाया। आज सन्नाटा देख कर ख्याल आया कि आज कर लेना चाहिए। तो मैं आँख बंद कर के गुजर रहा था। कैसी मटकी ? किस मटकी की बात कर रहे हो ? और प्रयोग सफल रहा। आँख बंद किए पुल पार किया जा सकता है।

जुन्नेद ने कहा, 'यह देखो, जिसे चूकना है वह कोई ख्याल पैदा कर लेगा और चूक जाएगा। जो चूकने के लिए ही तैयार है, तुम उसे बचा न सकोगे।'

परमात्मा भी तुम्हें वह नहीं दे सकता जिसे देने के लिए तुम तैयार नहीं हो गये हो। तुम अगर दुःख के लिए तैयार हो, दुःख। तुम अगर सुख के लिए तैयार हो, स्वर्ग, सुख। तुम वही पाते हो जो तुम्हारी तैयारी है। मिलता उसकी अनुकंपा से है। पाते तुम अपनी तैयारी से हो। बरसता वह सदा है। भरते तुम तभी हो, जब तुम तैयार होते हो, उन्मुख हो।

'बंधन और मुक्ति तेरी ही आज्ञा से है। हे दाता, ये भी तेरे ही दान हैं। कोई दूसरा इसमें कुछ भी नहीं कर सकता। तो कोई गप्प हाँकने वाला इस में कुछ कहने जाता है, उसे अपनी मूर्खता का पता तब चलता है जब उसके मुँह पर मार पड़ती है। वह आप ही जानता है और आप ही देता है। उसका वर्णन भी विरला ही कर सकता है। वह जिसे भी चाहे अपनी स्थिति का गुण प्रदान कर सकता है। नानक कहते हैं, 'वह बादशाहों का भी बादशाह है।'

'कोई गप्प हाँकने वाला—' और बहुत हैं धर्म के जगत में गप्प हाँकनेवाले। क्योंकि जितनी सुविधा गप्प हाँकने की धर्म के जगत में है, उतनी और कहीं भी नहीं है। क्योंकि सारा मामला ही अलौकिक है। और सारा मामला ही रहस्यपूर्ण है। और सारा मामला अंधकार में है। प्रमाण तो कुछ है नहीं। इसलिए बहुत गप्पें धर्म के नाम पर चलती हैं।

इसलिए तो दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। नहीं तो तीन सौ धर्म हो सकते हैं ? और इन तीन सौ धर्मों के भी तीन हजार संप्रदाय हैं छोटे-मोटे। निश्चित ही सत्य के संबंध में बहुत सी गप्पें हाँकी गयी हैं। और रास्ता तो कुछ भी नहीं है जाँचने का, कि क्या गप्प है और क्या सही है ! और गप्प हाँकनेवाले बहुत कुशल हैं।

महावीर सात नर्कों की बात करते थे, कि सात नर्क हैं। कैसे प्रमाण लगाओगे ? कैसे पता लगाओगे कि सात हैं ? महावीर का विरोधी था मक्खली गोसाल नाम का एक आदमी। जब उसके शिष्यों ने उसे जाकर कहा कि तुम्हें भी पता है ? उसने कहा कि महावीर को पूरा पता नहीं, नर्क सात सौ हैं।

अब क्या करोगे ? यह मक्खली गोसाल ठीक कहता है, कि महावीर ठीक कहते हैं ? रास्ता क्या है ? दोनों के बीच कौन सही है ?

लेकिन वही हुआ, जो नानक कहते हैं। मक्खली गोसाल के जीवन में वही हुआ। उसने जीवन भर गप्पें हाँकीं, मरते वक्त पछताया। क्योंकि जब मौत करीब आयी तो वह घबड़ाया कि क्या होगा ? जब मौत करीब आयी तब वह कँपने लगा। जब मौत करीब आयी तब उसने अपने भक्तों से कहा कि जो भी मैंने कहा है, वह सब झूठ था। और तुम मेरी लाश को सड़कों पर घसीटो। जब मैं मर जाऊँ तो तुम मेरी लाश को सड़कों पर घसीटना और लोगों से कहना, मेरे मुँह पर थूकें। क्योंकि उस मुँह से मैंने सिवाय झूठ के और कुछ भी नहीं बोला।

पर मक्खली गोसाल भी आदमी हिम्मत का रहा होगा, नहीं तो यह भी कौन करे ! और यह आदमी भी ईमानदार होगा, नहीं तो जिंदगी भर झूठ बोलता रहा, एक क्षण के लिए और साध लेता चुप्पी, और मर जाता। तो शायद मक्खली गोसाल का एक धर्म होता। क्योंकि उसके बड़े भक्त थे और उसके कई माननेवाले थे। वह महावीर के बड़े से बड़े प्रतियोगियों में से एक था। पहले महावीर का शिष्य था। फिर जब उसने कुछ थोड़ा सा सीख लिया तो उसने अलग संप्रदाय खड़ा करने की कोशिश की।

निश्चित ही गप्प हाँकनेवाला होगा। क्योंकि जब महावीर को पता चला, तो महावीर ने कहा कि यह तो बड़ी हैरानी की बात है। उसे तो अभी पहली झलकें भी नहीं मिली थीं। लेकिन वह महावीर के पास, जो वे कहते थे, समझाते थे, वह सब उसने समझ लिया। होशियार आदमी था, कुशल आदमी था, बोल सकता था, लिख सकता था। पंडित था। उसने अपना संप्रदाय खड़ा कर लिया।

महावीर जब गाँव में आए, जिस गाँव में मक्खली गोसाल ठहरा था, तो उन्होंने कहा कि मैं तो मिलूँगा, क्योंकि वह मेरा पुराना शिष्य है। और उससे पूछूँगा, पागल ! तू यह क्या कर रहा है ? तुझे खुद भी पता नहीं है। मक्खली गोसाल से मिलना हुआ। तो झूठ बोलने वाले का तो तुम भरोसा ही नहीं कर सकते। उसने महावीर को ऐसा देखा जैसा कभी देखा ही न हो। महावीर ने कहा, कि क्या तू बिलकुल भूल गया कि तू वर्षों मेरे साथ रहा ?

मक्खली गोसाल ने कहा, 'आप भ्रांति में हैं। जो आप के साथ था वह आत्मा तो जा चुकी। इस शरीर में, उसी शरीर में यह नयी आत्मा तीर्थंकर की प्रवेश कर गयी है। मैं वह नहीं हूँ जो आप के साथ था। यह देह भर आप के साथ थी, यह मुझे पता है। सुना है। लेकिन वह आदमी मर चुका, जो तुम्हारा

शिष्य था। इसलिए भूल कर अब किसी से यह मत कहना कि मक्खली गोसाल मेरा शिष्य था। यह तो एक तीर्थंकर की आत्मा मुझ में प्रवेश कर गयी है।

महावीर चुप रह गये होंगे। अब इस आदमी से क्या कहना! और उसका बड़ा प्रभाव था। उसके हजारों भक्त थे। लेकिन फिर भी आदमी अच्छा रहा होगा। मरते वक्त उसे यह एहसास तो हो गया।

वही नानक कह रहे हैं, कि जो कोई गप्प हाँकने वाला इस में कुछ कहने जाता है तो उसे अपनी मूर्खता का पता तब चलता है, जब उसके मुँह पर मार पड़ती है। जब मौत की मार पड़ती है। और जब जिंदगी हाथ से छूटने लगती है तब उसे पता चलता है, कि मैं व्यर्थ बातें करता रहा स्वर्गों-नरकों की। मुझे कुछ भी पता नहीं। और जिंदगी हाथ से बीत गयी। मैं जिंदगी के कोई आधार न रख पाया। कागज की नावें बहाता रहा। अब डूबने का वक्त आया, तब पता चलता है।

सम्हालना! कभी भी धर्म के संबंध में जो पता न हो, भूल कर मत कहना। पता हो तो ही कहना, अन्यथा चुप रहना। क्योंकि मन बड़े अन्वेषण कर लेता है। मन बड़े आविष्कार कर लेता है। मन खोजने में बड़ा कुशल है। और एक दफा तुम्हारा मन खोजने लगे और बातें करने लगे और चर्चा चल पड़े, तो एक जाल शुरू हो जाता है जो अपने आप बढ़ता है। तुम्हें फिर कुछ करना नहीं पड़ता। एक शब्द दूसरे को पैदा कर देता है। एक बात दूसरी बात को पैदा कर देती है। फिर तुम आगे बढ़ने लगते हो।

ऐसा हुआ, कि एक धर्मगुरु एक सराय में आकर ठहरा। उसने अपना घोड़ा झाड़ के नीचे बाँधा। मुल्ला नसरुद्दीन यह देख रहा था। घोड़ा बड़ा प्यारा था, और बड़ा कीमती था। और धर्मगुरु प्रसिद्ध था, और अपने घोड़े से उसका बड़ा लगाव था। वह दूर-दूर की यात्रा अपने घोड़े पर करता था। वह दोपहर के विश्राम के लिए रुका।

मुल्ला नसरुद्दीन घोड़े के पास गया। घोड़े को सहलाया। जब वह घोड़े को सहला रहा था और खुश हो रहा था—घोड़ा सच में बहुमूल्य था—तभी एक घोड़े का खरीददार पास से निकलता था। उसने नसरुद्दीन से कहा, 'तुम्हारा घोड़ा है?'

अब इतना शानदार घोड़ा! कहना मुश्किल हो गया कि अपना नहीं है।
नसरुद्दीन ने कहा, 'हाँ, अपना ही घोड़ा है।'
उस आदमी ने कहा, 'बेचते हो?' बात में बात बढ़ गयी।
नसरुद्दीन ने कहा, 'खरीदने की हिम्मत है?'

हजार रुपये का घोड़ा था, नसरुद्दीन ने दो हजार दाम माँगे। न कोई देगा, न बात उठेगी, बात खत्म हो जाएगी। वह आदमी दो हजार देनेको तैयार हो

गया। अब बात यहाँ तक बढ़ गयी थी कि पीछे लौटना मुश्किल हो गया। तो उसने बेच दिया। फिर उसने सोचा, कुछ हर्जा भी क्या है? दो हजार मुफ्त हाथ लग रहे हैं। और धर्मगुरु सोया हुआ है।

वह जब दो हजार गिन कर खीसे में रख ही रहा था, खरीददार तो घोड़ा लेकर जा चुका था, धर्मगुरु बाहर आया। भागने का मौका न मिला। तो रुपये तो उसने खीसे में रख लिए, अब क्या करें? कुछ सूझा नहीं, तो जहाँ घोड़ा खड़ा था, वहाँ घोड़े की रस्सी अपने गले में डालकर और घास का एक टुकड़ा मुँह में ले कर खड़ा हो गया।

धर्मगुरु खुद भी बहुत घबड़ाया। देखी उसने यह हालत, तो उसके भी हाथ-पैर कँप गये कि यह हुआ क्या है? यह मामला क्या है?

नसरुद्दीन ने कहा, 'अब आप से क्या छिपाना! सच बात कह दूँ?'

उस धर्मगुरु ने कहा कि मुझे तुम्हारी सच बात जानने का कोई प्रयोजन नहीं, वह मेरा घोड़ा कहाँ है? क्योंकि तुम तो मुझे आदमी पागल मालूम पड़ते हो। मेरा घोड़ा कहाँ है?

नसरुद्दीन ने कहा, कि आप के घोड़े की बात और मेरी बात दो अलग-अलग बातें नही हैं। मैं ही आप का घोड़ा हूँ।

धर्मगुरु ने कहा, कि यह तुम क्या कह रहे हो? होश में हो? शराब पी हुई है?

नसरुद्दीन ने कहा, कि आप पूरी कहानी सुन लें। बीस साल पहले एक स्त्री के साथ मैंने व्याभिचार किया, पाप किया। परमात्मा बहुत नाराज हो गया और उसने गुस्से में मुझे घोड़ा बना दिया—आप का घोड़ा। ऐसा मालूम होता है कि मेरा दंड पूरा हो गया है और मैं वापस आदमी हो गया हूँ। मेरा नाम नसरुद्दीन है।

धर्मगुरु भी घबड़ा गया। परमात्मा की ऐसी नाराजगी, कि आदमी को घोड़ा बना दिया! एकदम घुटने पर टिक गया। खुद भी उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि क्षमा कर, पाप तो मैंने बहुत किये हैं। मगर दया कर। तेरी अनुकंपा का सहारा माँगता हूँ।

फिर उसने नसरुद्दीन से कहा, 'भाई, यह तो ठीक है, अब मुझे आगे जाना है। अब जो हुआ हुआ, तुम अपने घर जाओ, और मैं बाजार जाकर घोड़ा खरीद लूँ।' वह बाजार गया तो घोड़े बेचने वाले की दूकान पर उसने अपने घोड़े को खड़ा पाया। तो और उसकी छाती घबड़ा गयी। वह पास गया घोड़े के और कान में कहा, 'नसरुद्दीन फिरसे? इतनी जल्दी?'

एक दफा मन शुरू कर दे झूठ, तो जैसे झाड़ों में पत्ते लगते हैं, ऐसे झूठ में और झूठ लगते जाते हैं। एक झूठ को बचाना हो तो फिर हजार बोलने पड़ते हैं। फिर झूठ इतने हो जाते हैं, कि तुम भूल ही जाते हो कि वे झूठ हैं। फिर बार-बार बोलने से वे सच से मालूम पड़ने लगते हैं। फिर तुम झूठ से सम्मोहित हो जाते हो।

और हजारों ऐसे झूठ हैं जो प्रचलित हैं। जिन का कोई सत्य से संबंध नहीं है। और धर्म के संबंध में सब से ज्यादा आसानी है। क्योंकि वहाँ कोई परीक्षण का उपाय नहीं, कोई प्रयोगशाला नहीं जिसमें जाँच हो सके, कौन सही है? इसके निर्णय का कोई आधार नहीं। धर्म तो भरोसे पर जीता है। वहाँ तो कोई वैज्ञानिक-परीक्षण हो नहीं सकता।

इसलिए स्मरण रखना, अन्यथा पछताओगे। एक शब्द भी झूठ मत बोलना। झूठ बोलने की मन की बड़ी गहरी आदत है।

मेरे पास लोग आते हैं। कहते हैं कि हम दस साल से विपश्यना कर रहे हैं, बौद्ध-ध्यान कर रहे हैं। मैं पूछता हूँ कि कुछ हुआ? और उनके चेहरे पर तत्क्षण भाव आ जाता है, कि कुछ नहीं हुआ, लेकिन वे कहते हैं कि हाँ, बहुत कुछ हुआ है, कई अनुभव हो रहे हैं। अब मैं उनका चेहरा देख रहा हूँ कि कुछ भी नहीं हुआ है। कहते हैं, अनुभव हो रहे हैं। फिर बात यहाँ की करके मैं उससे पूछता हूँ कि सच-सच कहो, कुछ हुआ? अगर हुआ हो, तो फिर मुझसे बात करने की जरूरत न थी। अगर न हुआ हो तो पहले तो यह पक्का करो कि न हुआ है, तो मैं आगे हाथ लूं। तो वे कहते हैं, कि ऐसे अगर आप पूछते हैं तो कुछ हुआ तो नहीं है। अब दो क्षण पहले ही यह आदमी कह रहा था. बहुत कुछ हो रहा है। यह मानने का भी मन नहीं होता कि दस साल से कुछ कर रहा हूँ और कुछ भी नहीं हुआ।

मन बहुत बेईमान है। उससे सावधान रहना, और जितना तुम मन के जाल में पड़ जाओगे, उतने एक दिन पछताओगे। क्योंकि जीवन चूक जाएगा, और मौत सिर पर आ खड़ी होगी, तब तुम पछताओगे कि क्यों व्यर्थ में झूठ में अपने को गँवाता रहा?

'जो कोई गप्प हाँकनेवाला इस में कुछ कहने जाता है, उसे अपनी मूर्खता का पता तब चलता है जब उसके मुँह पर मार पड़ती है। वह आप ही जानता हैं और आप ही देता है।'

परमात्मा आप ही जानता है, आप ही देता है। जानना उसका है, देना भी उसका है। हमें तो सिर्फ पात्र होना काफी है। ज्ञान उसका है। अस्तित्व उसका है। दोनों हमें मिल जाएँगे। सिर्फ हमें राजी होना जरूरी है। उन्मुख होना जरूरी है। उसकी तरफ आँखें उठाना जरूरी है।

मन के जाल में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं। न तो मन ज्ञान दे सकता है, न अस्तित्व दे सकता है। मन तो सिर्फ झूठ दे सकता है। मन की जो सुनता है वह झूठ में उतर जाता है। मन कुछ भी नहीं दे सकता।

तुमने शायद एक पुरानी कहानी सुनी होगी कि एक आदमी ने बड़ी भक्ति की। और देवता प्रसन्न हो गये। तो देवता ने उस आदमी को एक शंख दिया। शंख की खूबी यह थी, कि जो तुम उस से माँगो मिल जाए। कहो एक महल, तो तत्क्षण एक महल तैयार हो जाए। कहो सुस्वादु भोजन, तत्क्षण थाली लग जाए। बड़ा आनंदित हुआ। वह आदमी बड़े महलों में, बड़े सुख से रहने लगा।

फिर एक दिन एक धर्मगुरु यात्रा करते हुए उस महल में रुका। उसने भी इस शंख के बाबत बात सुनी। लालच पकड़ा। उसके पास भी एक शंख था। उस शंख का नाम महाशंख था। उसने इस आदमी को कहा कि क्या तुम शंख के पीछे पड़े हो! मैंने भी भक्ति की बहुत। मैंने महाशंख पाया। इस महाशंख की बड़ी खूबी है। तुम माँगो एक महल, यह देता है दो।

उस आदमी का लोभ जगा। उसने कहा कि बताओ। उसने महाशंख निकाला। बड़ा शंख था। उस धर्मगुरु ने उसे नीचे रखा और कहा कि भाई, एक महल बना दे। उसने कहा, 'एक क्यों? दो क्यों नहीं?'।

जँच गयी बात। उस आदमी ने अपना शंख गुरु को दे दिया, धर्मगुरु को। महाशंख ले लिया। फिर बहुत खोजा उस गुरु को, उसका पता न चला। क्योंकि वह महाशंख सिर्फ बोलता था। तुम कहो, 'दो', तो वह कहे, 'चार क्यों नहीं?' तुम कहो, 'चार' तो वह कह कहे, 'आठ क्यों नहीं?' मगर बस, इसी तरह बात चलती थी। लेने-देने का कोई काम ही न था। वह बिलकुल महाशंख था।

मन महाशंख है। जो कुछ मिलता है परमात्मा से, मन कहता है इतना क्यों नहीं? और ज्यादा क्यों नहीं? मन तो बातचीत है। मन तो एक झूठ है। मन से कुछ भी नहीं घटता।

और तुम परमात्मा को छोड़ कर मनको पकड़ लिए हो। वह दोहरे की बात करता है। उससे लोभ जगता है। लेकिन तुम सोचो, मन ने कभी कुछ दिया? मन से कुछ मिला?

नानक कहते हैं, वह आप ही जानता और आप ही देता है। उसका वर्णन भी विरला कर सकता है। वह जिसे चाहे अपनी स्थिति का गुण प्रदान कर सकता है। नानक कहते हैं, 'वह बादशाहों का बादशाह है।'

और एक बात आखिरी, जो इस सूत्र में बहुत कीमती है। झुन-नुन एक फकीर हुआ इजिप्त में। और जब उसे परमात्मा की प्रतीति हुई तो उसने यह उद्घोष सुना। परमात्मा ने कहा, कि इसके पहले कि तू मुझे खोजने निकला था,

मैंने तुझे पा लिया था। और अगर मैं न तुझे पाया होता तो तू मुझे खोजने ही न निकलता।

नानक यही कह रहे हैं, वह जिसे चाहे उसे स्तुति का गुण प्रदान कर सकता है। सच तो यह है, तुम उसे खोजने ही तब निकलते हो, जब उसने तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे दी। तुम अपने आप उसे खोजने भी कैसे निकलोगे? तुम्हें उसकी खोज का बोध भी कैसे आएगा? तुम्हें उसका स्मरण भी कैसे भरेगा? उसकी स्तुति भी कैसे पैदा होगी?

फिर कितनी ही देर लग जाए खोजने में, असल में उसने तुम्हें पा ही लिया है। इसलिए तुम खोजने निकले हो। वह आ ही गया है तुम्हारे जीवन में, इसलिए तो खोज शुरू हुई है। उसकी प्यास जग गयी है। नानक कहते हैं, वह भी उसने जगायी है।

नानक का मार्ग यह है--सब उसीपर छोड़ देना है। अपने हाथ में कुछ मत रखना क्योंकि अकड़ बड़ी सूक्ष्म है। तुम यह भी कहोगे कि 'मैं खोजी, मैं साधक, मैं जिज्ञासु, मैं मुमुक्षु। मैं परमात्मा को खोज रहा हूँ।'

यह 'मैं' कहीं से भी निर्मित न हो, इसलिए नानक कहते हैं कि तेरी मर्जी से ही स्तुति का गुण मिलता है। हम तो तेरी महिमा भी तभी गा सकेंगे जब तू गवाये। तेरे बिना हमसे तेरी स्तुति भी हो सकेगी? और तो बात करनी फिजूल है। हम तेरी तरफ आँख भी नहीं उठा सकते अगर तू ही हमारी आँखों को सहारा न दे। हमारे पैर तेरी तरफ नहीं जा सकेंगे अगर तू ही उन्हें उस तरफ न ले जाए। हम तेरी धारणा का, तेरे विचार का, तेरा सपना भी न देख सकेंगे अगर तूने पहले ही हमें चुन न लिया हो।

नानक इस भाँति अहंकार की सारी जड़ काट लेते हैं। और जहाँ अहंकार नहीं, वहाँ उसका द्वार खुला है, जहाँ अहंकार नहीं, वहाँ ओंकार का नाद अनायास शुरू हो जाता है। तुम्हारे अहंकार के शोरगुल के कारण ही वह धीमी और छोटी आवाज सुनायी नहीं पड़ती।

● ● ●

आखि आखि रहे लिवलाइ

प्रवचन १२, दिनांक २-१२-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : २६

अमुल गुण अमुल वापार । अमुल वापारीए अमुल भंडार ॥
अमुल आवहि अमुल लै जाहि । अमुल भाइ अमुला समाहि ॥
अमुलु धरमु अमुलु दीवाणु । अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ॥
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु । अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ॥
अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ । आखि आखि रहे लिवलाइ ॥
आखहि वेद पाठ पुराण । आखहि पड़े करहि वखियाण ॥
आखहि बरमे आखहि इंद । आखहि गोपी तै गोबिन्द ॥
आखहि ईसर आखहि सिध । आखहि केते कीते बुध ॥
आखहि दानव आखहि देव । आखहि सुरि नर मुनि जन सेव ॥
केते आखहि आखणि पाहि । केते कहि कहि उठि उठि जाहि ॥
एते कीते होरि करेहि । ता आखि न सकहि केई केइ ॥
जेवडु भावै तेवड होइ । 'नानक' जाणै साचा सोइ ॥
जेको आखै बोल बिगाडु । ता लिखीए सिरि गावारा गावारु ॥

नानक उस परमात्मा की स्तुति में एसे बोलते हैं, जैसे एक मदहोश आदमी बोले। वे किसी पंडित के वचन नहीं हैं; वरन् उसके वचन हैं, जो प्रेम की शराब में पूरी तरह डूब गया है। इसलिए वे दोहराते चले जाते हैं। मस्ती में बोले गये वचन हैं। जैसे शराबी बोलता हो रास्ते के किनारे खड़े हो कर—बोले चला जाता है। एक ही बात को बहुत बार कहे चला जाता है। ऐसी ही किसी गहरी शराब में डूब कर वे बोल रहे हैं।

बाबर नानक के समय भारत आया। उसके सिपाहियों ने नानक को भी संदिग्ध समझ कर कैद कर लिया। लेकिन धीरे-धीरे बाबर तक खबर पहुँचने लगी। कि यह कैदी कुछ अनूठा है। और इस कैदी के आस-पास एक हवा है, जो साधारण मनुष्यों की नहीं। और एक मस्ती है। कि यह कैदी कारागृह में गाता रहता है। और यह खबर बाबर को लगी, कि यह कुछ ऐसा आदमी है कि इसे कैद किया नहीं जा सकता। इसकी स्वतंत्रता भीतरी है।

तो कहते हैं, संदेश भेजा नानक को, कि तुम मुझसे मिलने आओ। नानक ने कहा कि मिलने तो तुम्हें ही आना पड़े। क्योंकि नानक वहाँ है, जहाँ से अब मिलने जाने का सवाल नहीं।

बाबर मिलने खुद कारागृह में आया। नानक से बहुत प्रभावित हुआ। नानक को साथ ले गया अपने महल में, और उसने बहुमूल्य से बहुमूल्य शराब नानक को पीने के लिए निमंत्रित किया। नानक हँसे; और उन्होंने एक गीत गाया। जिस गीत का अर्थ है, कि मैं परमात्मा की शराब पी चुका। अब इस शराब से मुझे नशा न चढ़ेगा। आखिरी नशा चढ़ गया है। अच्छा हो बाबर, कि तुम ही मेरी शराब पियो, बजाय अपनी शराब पिलाने के।

यह गीत शराबी के गीत हैं। नानक कहे चले जाते हैं। या तो एक छोटे बच्चे की तरह, या एक शराबी की तरह। वे गुनगान करते हैं। उसमें बहुत हिसाब नहीं है। और न ही इन वचनों को, साजा-संवारा गया है। यह अनगढ़ पत्थरों की तरह है।

एक कवि लिखता है, तो सुधारता है। हेर-फेर करता है। जमाता है। व्याकरण की चिंता करता है। लय की, पद की, छंद की चिंता करता है, मात्राओं का हिसाब रखता है। बहुत बदलाहट करता है।

रवींद्रनाथ की हैसियत का महाकवि भी ! अगर रवींद्रनाथ की डायरियाँ देखें, तो कटी-पिटी हैं। एक-एक लाइन को काट-काट कर फिर से लिखा है, बदला है। फिर जमाया है।

ये वचन न तो बदले गये हैं और न जमाए गये हैं। ये तो वैसे ही हैं, जैसे नानक ने कहे थे। ये तो बोले गये हैं। इन में कुछ हिसाब नहीं है; न भाषा का, न मात्रा का, न पद का, न छंद का। अगर इनमें कोई छंद है, तो भीतरी आत्मा का है। और अगर इन में कोई व्याकरण है, तो मनुष्य की नहीं, परमात्मा की है। और इनमें अगर कोई लय मालूम पड़ती है, तो वह लय भीतर के नशे की है। वह काव्य की नहीं है। इसलिए तो नानक कहे जाते हैं। जब भी उनसे कोई पूछता है, तो वे गा कर ही जवाब देते थे। उनसे कोई सवाल पूछता और वे कहते, सुनिए। और मर्दाना अपना साज छेड़ देता और वे गीत गाना शुरू कर देते।

इस बात को याद रखना। अगर इस बात को याद न रखा तो ऐसा लगेगा, क्या नानक पुनरुक्ति किये चले जाते हैं ? कि उसके गुण अपार, कि उसका मूल्य अपार, फिर वे कहे ही चले जाते हैं।

ना ! ये मस्ती में गुनगुनाए गये शब्द हैं। यह किसी दूसरे से कहे गये नहीं। ये अपनी ही मस्ती में हैं। अपने ही भीतर गुनगुनाए गये हैं। दूसरे ने सुन लिया है यह दूसरी बात है। यह ख्याल में रहेगा तो बहुत अर्थ प्रकट होने शुरू होंगे।

कहते हैं नानक, 'उसके गुण अमूल्य हैं। और उसके व्यापार भी अमूल्य हैं। उसके व्यापारी भी अमूल्य हैं। और उसके भण्डार भी अमूल्य हैं। जो लेने आता है वह भी अमूल्य है। उसका भाव अमूल्य है। उसकी समाधि अमूल्य है। उसका धर्म अमूल्य है। उसका दरबार अमूल्य है।

अमुल गुण अमुल वापार । अमुल वापारीए अमुल भंडार ॥
अमुल आवहि अमुल लै जाहि । अमुल भाइ अमुला समाहि ।।

अमुलु धरमु अमुलु दीवाणु । अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ।
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु । अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ।
अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ । आखि आखि रहे लिवलाइ ॥

पहली बात, कि वह अमूल्य है। उसका सभी कुछ अमूल्य है। मूल्य आँकने का कोई उपाय भी नहीं है। क्योंकि न तो कोई बाँट है जिससे हम तौल सकें; न कोई मापदंड है, जिससे हम उसे माप सकें। कोई उपाय ही नहीं है, जिससे हम अंदाज लगा सकें कि वह कितना है ? क्या है ? कहाँ तक फैला हुआ है ?

और जो भी उसको मापने जाता है, धीरे-धीरे पाता है सारे मापदंड टूट जाते हैं। सब तराजुएँ गिर जाती हैं। न केवल मापदंड टूटते हैं, वरन् माप करने वाला मन भी टूट जाता है।

संस्कृत में शब्द है 'माया'। माया उसी धातु से बना है, जिससे माप। और अंग्रेजी का 'मेजर' शब्द भी उसीसे बना है, जिससे 'माप'। फ्रेंच का 'मीटर' शब्द भी उसीसे बना है, जिससे 'माप'। और अंग्रेजी का 'मीटर' शब्द भी उसीसे बना है, जिससे 'माप'। जिससे माया बना है, उसीसे मैटर, उसीसे मेजर, उसीसे माप।

बड़ा महत्त्वपूर्ण शब्द है 'माया'। माया का अर्थ है, जो मापा जा सके। जिसको हम तौल सकें, जिसकी नाप हो सके। और जिसे हम न तौल सकें वह ब्रह्म है। जो-जो तुम तौल लो, समझ लेना कि माया है। जिस-जिस का मूल्य तुम आँक लो, समझ लेना कि माया है। जिस-जिस की परिभाषा तुम कर लो, समझ लेना कि माया है। जिसकी परिभाषा न हो सके, जिसको तुम तौलो, खुद थक जाओ और तौला न जा सके; जिसको तौलने बैठो और पाओ कि इन बटखरों से कैसे हम उसे तौलेंगे ? और तौलते रहेंगे तो अनंत-अनंत काल भी बीत जाएगा तो भी कुछ चुकेगा नहीं, तौल पूरी नहीं होगी, जहाँ तुम अमाप के करीब आ जाओ, समझ लेना कि धर्म शुरू हुआ।

इसलिए विज्ञान कभी धर्म को न जान पाएगा। क्योंकि विज्ञान की पूरी विधि तौलना है। तराजू विज्ञान का प्रतीक है। मापना ढंग है। तो विज्ञान कभी भी परमात्मा के पास न आ पाएगा, और इसलिए विज्ञान सदा कहता रहेगा कि परमात्मा नहीं है। क्योंकि विज्ञान मानता ही उस चीज को है, जो तौली जा सके। जिसको हम प्रयोग कर सकें। प्रयोगशाला की तराजू पर जिसकी कोई नाप-जोख हो सके। मार्क्स ने कहा है, कि अगर परमात्मा प्रयोगशाला में प्रकट हो सके तो ही मैं मानूंगा। लेकिन अगर परमात्मा प्रयोगशाला में प्रकट हो जाए तो परमात्मा ही न होगा।

क्या तुम्हें प्रतीत नहीं होता कि कुछ अमाप हमारे चारों तरफ है ? माप के भीतर भी छिपा है। एक फूल है; तुम जाओ, इसे प्रयोगशाला में तौल सकते हो

क्योंकि फूल में वजन है। नाप सकते हो लंबाई, चौड़ाई। रासायनिक-तत्त्वों से मिल कर बना है। केमिस्ट्री पता चल जाएगी।

लेकिन एक चीज फूल में अमाप है, वह सौंदर्य है। तुम सब तौल लोगे। और तुम जब फूल का सारा अनॅलिसीस, सारा विश्लेषण कर चुकोगे, तो अचानक तुम पाओगे, कि फूल तो खो चुका है। इसमें सौंदर्य का तो कोई पता न चला। इसलिए वैज्ञानिक सौंदर्य को स्वीकार नहीं करेगा।

और बड़े आश्चर्य की बात है कि फूल को देख कर जो पहला भाव तुम्हारे मन में उठता है, वह सौंदर्य का है। और वही विज्ञान में खो जाता है। विज्ञान में जो चीज नष्ट हो जाती है, वही पहली चीज है जो तुम्हें प्रतीत होती है। फूल को देख कर जो पहला अंतर्भाव, जो पहली ऊर्मि उठती है जीवन में, जो भीतर की चेतना में पहला प्रतिबिंब पड़ता है, वह सौंदर्य का है। अनकहा! अनबोला! भीतर एक भाव जगता है। एक बादल भीतर घेर लेता है सौंदर्य का। वही विज्ञान की पकड़ में खो जाता है।

एक छोटा बच्चा नाच रहा है, खेल रहा है, हँस रहा है। उसे देख कर जो पहली प्रतीति होती है, वह जीवन की, ऊर्जा की, एनॅर्जी की। उस बच्चे को विज्ञान को दे दो। विज्ञान इसकी जाँच-पड़ताल कर के सब पता लगा देगा। नाप-जोख पूरा कर देगा, लिस्ट बना देगा। विज्ञान बता देगा, कितना अलमोनियम, कितना लोहा, कितना फॉसफोरस, कितनी मिट्टी, कितना पानी, कितना मेग्नेशियम इस बच्चे की हड्डियों में है; लेकिन उसमें जीवन खो जाएगा।

मैंने सुना है, एक वैज्ञानिक अपने मित्र के साथ जा रहा था। और एक बहुत सुंदर युवती पास से गुजरी। मित्र ठिठक गया। वैज्ञानिक ने कहा बहुत परेशान मत हो। नब्बे प्रतिशत तो पानी है। आदमी के शरीर में नब्बे प्रतिशत तो पानी है ही। और बाकी दस प्रतिशत भी चीजें ही हैं, जिनको हम बोतलों में बंद कर सकते हैं। कहते हैं, कि आदमी के शरीर की सब चीजों का मूल्य पाँच रुपये से ज्यादा नहीं है। लोहा निकाल लें, फॉसफोरस निकाल लें। और बेचने जाएँ तो पाँच रुपये से ज्यादा नहीं है। इसीलिए तो लाश को जला देते हैं। क्योंकि निकालने में ज्यादा खर्च हो जाएगा, उतनी बिक्री नहीं होगी। किसी काम का नहीं है।

विज्ञान सब नाप लेगा, और आखिर में कहेगा कि कोई आत्मा नहीं पायी। आत्मा मिलेगी भी नहीं, क्योंकि आत्मा अमाप है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है आज, कि मापने के द्वारा, अगर अमाप का पता न चले तो हम यह कहते हैं कि अमाप है ही नहीं। बुद्धिमान अगर हम हों, तो हम कहेंगे, हमारे माप के ढंग माया तक जाते हैं, ब्रह्म तक नहीं। तो हमें कोई और ढंग खोजना चाहिए जो मापने का नहीं है। ताकि हम उसे जान सकें।

विज्ञान का ढंग है— मापना, खोजना, जाँचना, परिभाषा।

धर्म का ढंग बिलकुल अलग है। धर्म का ढंग है, न खोजना, न मापना, न परिभाषा करना; वरन् खो जाना, लीन हो जाना, डूब जाना। अपने को डुबा देना। वैज्ञानिक अलग बना रहता है अपनी खोज से। धार्मिक लीन हो जाता है, डूब जाता है, एक हो जाता है।

नानक एक बार लाहौर में ठहरे। तो लाहौर का जो सब से धनी आदमी था, वह उनके चरणों में नमस्कार करने आया। वह बहुत धनी आदमी था। लाहौर में उन दिनों ऐसा रिवाज था, कि जिस आदमी के पास एक करोड़ रुपया हो वह अपने घर पर एक झंडा लगाता था। इस आदमी के घर पर कई झंडे लगे थे। इस आदमी का नाम था, सेठ दुनीचंद। उसने नानक के चरणों में सिर रखा और कहा, कि कुछ आज्ञा दें मुझे। मैं कुछ सेवा करना चाहूँ। और बहुत है आप की कृपा से। आप जो भी कहेंगे, वह मैं पूरा कर दूँगा।

नानक ने अपने कपड़ों में छिपी हुई एक छोटी सी कपड़े सीने की सुई निकाली, दुनीचंद को दी, और कहा, इसे सम्हाल कर रखना, और मरने के बाद मुझे वापस लौटा देना।

दुनीचंद अपनी अकड़ में था। उसे समझ ही न आयी। उसे कुछ ख्याल ही न आया, कि यह क्या नानक कह रहे हैं! उसने कहा, जैसी आप की आज्ञा। जो आप कहें, कर दूँगा। अकड़ का समय होता है आदमी के मन का तब आदमी अंधा होता है, कि कुछ चीजें असम्भव हैं। धन से तो हो ही नहीं सकतीं।

घर लौटा। लेकिन घर लौटते-लौटते उसे भी ख्याल आया, कि मर कर लौटा दें। लेकिन जब मैं मर जाऊँगा तब इस सुई को साथ कैसे ले जाऊँगा?

वापिस लौटा। और कहा कि आपने थोड़ा बड़ा काम दे दिया। मैं तो सोचा बड़ा छोटा काम दिया है। क्या मजाक कर रहे हैं? सुई को बचाने की जरूरत भी क्या है? लेकिन संतों का रहस्य! सोचा, होगा कोई प्रयोजन। लेकिन क्षमा करें। यह अभी वापिस ले लें। क्योंकि यह उधारी फिर चुक न सकेगी। अगर मैं मर गया तो सुई को साथ कैसे ले जाऊँगा?

तो नानक ने कहा, 'सुई वापस कर दो। प्रयोजन पूरा हो गया है। यही मैं तुमसे पूछता हूँ, कि अगर एक सुई न ले जा सकोगे, तो तुम्हारी जो करोड़ों-करोड़ों की संपदा है, उसमें से क्या ले जा सकोगे? अगर एक छोटी सी सुई को तुम न ले जा सकोगे पास, तो और तुम्हारे पास क्या है, जो तुम ले जा सकोगे? दुनीचंद तुम गरीब हो। क्योंकि अमीर तो वही है जो मौत के पार कुछ ले जा सके।

लेकिन जो भी मापा जा सकता है, वह पार नहीं ले जाया सकता। जो अमाप है, इम्मेजेरेबल है, जिसको हम माप नहीं सकते, वही केवल मौत के पार ले जाता है।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक, जो मापने की ही चिंता करते हैं। खोज करते हैं उसकी, जो मापा जा सकता है, तौला जा सकता है। और एक, जो उसकी खोज करते हैं, जो तौला नहीं जा सकता। पहले वर्ग के लोग धार्मिक नहीं हैं, संसारी हैं। दूसरे वर्ग के लोग धार्मिक हैं, संन्यासी हैं।

अमाप की खोज धर्म है। और जिसने अमाप को खोज लिया वह मृत्यु का विजेता हो गया। उसने अमृत को पा लिया। जो मापा जा सकता है वह मिटेगा। जिसकी सीमा है वह गलेगा। जिसकी परिभाषा हो सकती है वह आज है, कल खो जाएगा। हिमालय जैसे पहाड़ भी खो जाएँगे। सूर्य, चंद्र, तारे भी बुझ जाएँगे। बड़े से बड़ा, थिर से थिर--पहाड़ को हम कहते हैं अचल; वह भी चलायमान है। वह भी खो जाएगा। वह भी बचेगा नहीं। वह भी थिर नहीं है। जहाँ तक माप जाता है वहाँ तक सभी अस्थिर है। जहाँ तक माप जाता है, वहाँ तक लहरें हैं। जहाँ माप छूट जाता है, सीमाएँ खो जाती हैं, वहीं से ब्रह्म का प्रारंभ है।

इसलिए नानक कहते हैं, 'गुण अमूल्य हैं। उसके व्यापार भी अमूल्य हैं।' तुम मूल्य न आँक सकोगे।

इसलिए तो बड़ी कठिनाई है। नेपोलियन का तुम मूल्य आँक सकते हो। सिकंदर का मूल्य आँक सकते हो। क्योंकि उसकी संपदा और साम्राज्य ही उसका मूल्य है। लेकिन बुद्ध का तुम कैसे मूल्य आँकोगे? नानक का क्या मूल्य है? जिनके पास कुछ है, पोजिशन, उनका तुम मूल्य आँक सकते हो। क्योंकि जो उनके पास है वही उनकी आत्मा है। अगर करोड़ है, तो करोड़; अगर दस करोड़ है, तो दस करोड़; लेकिन जिनके पास कुछ नहीं है, केवल परमात्मा है, उनका मूल्य तुम कैसे आँकोगे?

इसलिए तो बहुत बार हम नानक को देख नहीं पाते। बहुत बार बुद्ध हमारे करीब से गुजरते हैं और हम अंधे की तरह खड़े रहते हैं। क्योंकि हमने तो नापने की ही कला सीखी है। वही हमें दिखायी पड़ता है। अगर बुद्ध के हाथ में हीरा होता तो हीरा हमें दिखायी पड़ेगा। बुद्ध हमें दिखायी नहीं पड़ेंगे। और हीरा दो कौड़ी का है। और बुद्ध अमूल्य हैं। लेकिन दिखायी हमें हीरा पड़ेगा।

हमारी आँखें, हमारे सोचने का ढंग, हमारा मन! इसे ख़्याल में ले लें। बाहर जो माप का जगत है, वही भीतर मन है। इसलिए मन और माया एक हैं। बाहर मापना है, भीतर मापने वाला है। वह मन है। संसार और मन यह एक जोड़ा। बाहर जो अमाप है--ब्रह्म, उससे मन का कोई नाता नहीं बनता। उससे आत्मा का नाता बनता है। क्योंकि भीतर भी एक अमाप है। तुम जैसे हो उसीसे तुम्हारा संबंध हो सकेगा। मन की सीमा है, इसलिए उससे तुम सीमित को जान

सकोगे। आत्मा की कोई सीमा नहीं है, इसलिए तुम असीम को जान सकोगे। मूल्य क्या है परमात्मा का? कोई भी तो मूल्य नहीं है!

जीसस के संबंध में कहानी है, कि जूडास ने केवल उसे तीस चाँदी के सिक्कों में बेच दिया दुश्मनों के हाथ में। हमें हैरानी लगती है कि जीसस जैसा मनुष्य, जैसा कभी-कभी घटता है संसार में, उसे जूडास तीस रुपये में बेच सका? भरोसा नहीं आता।

लेकिन तुम भी बेचते। तीस में न बेचते, तीस हजार में बेचते; फर्क क्या पड़ता है? तीस और तीस हजार में कोई भी फर्क नहीं है। क्योंकि माप यानी माप। लेकिन एक बात समझ लेने जैसी है कि जूडास को जीसस के पास बरसों रह कर भी जीसस दिखायी नहीं पड़े। और जब किसी ने कहा कि हम तीस रुपये देते हैं। पता ठिकाना दे दो, ताकि हम उस आदमी को पकड़ लेते हैं। तो तीस रुपये ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़े।

हमें वही दिखायी पड़ता है, जिसका हम मूल्य आँक सकते हैं। हम मूल्य से फँसे हैं।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान से क्या मिलेगा? क्या फायदा? ध्यान करने से कौन सा लाभ होगा?

ऐसा नहीं है कि उन्हें पता नहीं है, कि ध्यान से उन्हें परमात्मा मिलेगा। वह उन्हें पता है। लेकिन परमात्मा में लाभ नहीं दिखायी पड़ता। ऐसा भी नहीं है कि उन्होंने न सुना हो, कि ध्यान से आनंद मिलेगा; लेकिन आनंद का बाजार में कोई भी तो मूल्य नहीं है। बेचने जाओ तो कौन खरीदेगा? वे पूछते हैं, भाषा उनकी जो है, वे यह पूछ रहे हैं कि कुछ मूल्य कर के बताएँ, कि कितने मूल्य की चीज ध्यान से मिलेगी?

ठीक भी है उनका पूछना। क्योंकि सारी इकॉनामिक्स, सारा अर्थशास्त्र जीवन का, मूल्य के हिसाब से चलता है। एक घंटा हम ध्यान करेंगे, उस एक घंटे में अगर हम बाजार में काम करेंगे तो पचास रुपये, सौ रुपये कमा लेंगे। सौ रुपये घंटे भर में बाजार में कमा लेंगे और सौ रुपये के मूल्य का कुछ ध्यान में मिलता हो, ज्यादा मिलता हो, तो हमें समझ में आता है कि कुछ करने योग्य है। और अगर सौ रुपये के मूल्य की चीज न मिलती हो ध्यान में, तो क्या सार! वे यह पूछ रहे हैं, कि हमें ठीक-ठीक मूल्य कर के बता दें कि ध्यान से कितने मूल्य का लाभ होगा? तो हम हिसाब लगा लें, अपनी इकॉनामिक्स को ठीकसे जमा लें।

लेकिन ध्यान में जो मिलता है उसका तो कोई भी मूल्य नहीं है। और जब तक तुम मूल्य की खोज कर रहे हो तब तक तुम ध्यान में जा न सकोगे। क्योंकि

मूल्य का जगत तुम्हें पकड़े रहेगा। संसार यानी मूल्य का जगत। और परमात्मा यानी जहाँ तुम निर्मूल्य में प्रवेश करते हो, या अमूल्य में प्रवेश करते हो।

'उसके गुण अमूल्य हैं। उसके व्यापार अमूल्य हैं। उसके व्यापारी भी अमूल्य हैं। और उसके भंडार भी अमूल्य हैं।'

कौन है उसका व्यापारी? जिन को हम संत कहते हैं, सिद्ध कहते हैं, बुद्ध कहते हैं, वे उसके व्यापारी हैं। वे तुम्हें बेचने आए हैं कुछ, जो तुम खरीदने की हिम्मत नहीं कर पाते। वे तुम्हें कुछ देना चाहते हैं, जो अमूल्य है। लेकिन तुम लेने को तैयार नहीं। तुम्हारे ख्याल में ऐसा लगता है कि जो मुफ्त मिलता है, वह बिना मूल्य का होगा। परमात्मा मुफ्त मिलता है। इसलिए तुम उसकी चिंता नहीं करते। अगर उसपर भी दाम लगे हों, तो तुम उसकी चिंता करोगे। बुद्ध, नानक, कबीर, व्यापारी हैं। लेकिन व्यापार बड़ा गड़बड़ है उनका। वह हमारी समझ के बाहर है व्यापार। वह हमें व्यापारी मालूम ही नहीं पड़ते।

ऐसी कहानी है, कि नानक को घर में कुछ करते न देखकर पिता ने कहा. कि अब तुम इतना ही करो कम से कम, बिलकुल काहिल, व्यर्थ मत बनो। किसीके काम के भी तो थोड़े से सिद्ध होओ।

पिता को भी नानक में दिखायी नहीं पड़ा, कि इस आदमी में कुछ मूल्यवान है। कभी दूसरे आकर नानक के पिता को कह जाते थे, कि बड़ा मूल्यवान है। लेकिन नानक के पिता को कभी भरोसा नहीं आया, कि मूल्यवान क्या खाक है? एक पैसा कमाने की अकल नहीं, सिर्फ गँवाना जानता है। मूल्यवान कैसे? इस जगत में जो कमाना है, उस जगत में वह गँवाना है। उस जगत में जो कमाना है, वह इस जगत में गँवाने जैसा मालूम पड़ता है!

तो नानक को कहा, कि कुछ न बने तो तुम कम से कम जानवरों को जंगल ले कर चरा आओ। इतना तो कर ही सकते हो। यह तो आखिरी काम है, जो बुद्धू से बुद्धू कर सकता है। जब लोग नाराज होते हैं, अपने बेटों पर, तो वे कहते हैं, अगर कुछ न बना, तो ढोर चरा आओ। वह आखिरी है।

नानक के बाप ने कहा, तब तुम यही करो। यह बैठ कर गीत गाकर, यह आकाश की तरफ आँखें लगा कर कहीं दुनिया चली है! बाप संसारी आदमी हैं। और बेटे की चिंता करते हैं कि बेटा कुछ काम का हो जाए, नहीं तो कैसे जिएगा!

नानक राजी हो गये। लेकिन नानक के राजी होने का कारण दूसरा था। नानक राजी हुए, क्योंकि नानक ने हमेशा पाया, कि आदमियों की बजाय जानवरों की संगत में ज्यादा शांति है। क्योंकि जानवर कम से कम इकॉनामिक्स तो नहीं मानते। कोई अर्थशास्त्र तो नहीं है उनका। धन, पैसा, हिसाब तो नहीं लगाते।

होते हैं। तो नानक एकदम राजी हो गये। उनको सदा पसंद था, गाय-भैंसों के पास बैठना। कम से कम पैसों की बात तो वहाँ नहीं चलती। चुप्पी तो होती है। लाभ-हानि का हिसाब नहीं होता। कम से कम जानवरों ने अपने को उसकी मर्जी पर छोड़ दिया है। उनका कोई अहंकार तो नहीं है।

तो वे चले गये गाय-भैंसों को लेकर। लेकिन ऐसे आदमी के साथ सदा उपद्रव होगा। गाय-भैंसें चरने लगीं। और उन्होंने उनसे कहा, चरो मजे से, आनंद से।

वे आँख बंद कर के अपनी मस्ती में लीन हो गये। पास के खेत में सब जानवर घुस गये। और उन्होंने सब खेत साफ कर दिया। तो वह आदमी पागल हुआ भागा आया, जो खेत का मालिक था। और उसने कहा, यह तुमने क्या करवाया है? इसके पैसे भरने पड़ेंगे एक-एक, मेरी पूरी फसल नष्ट हो गयी। नानक ने आँख खोली और कहा, तू घबड़ा मत। उसके ही जानवर हैं, उसका ही खेत है। उसने ही चरवाया है, तू घबड़ा मत। बड़ा वरदान तुझ पर बरसेगा।

उस आदमी ने कहा, 'चुप रह! बकवास मत कर। वरदान बरसेगा? मैं बरबाद हो गया।'

वह भागा हुआ गया। नानक के बाप को पकड़ा, और गाँव का जो मुखिया था उसके पास नानक के बाप को पकड़ कर ले गया, कि पूरी फसल चुकानी पड़ेगी। वह जो मुखिया था वह नानक का भक्त था। वह मुसलमान था। बूलर उसका नाम था—शाह बूलर। उसने कहा, नानक को भी पूछ लेना चाहिए; क्या हुआ? नानक को बुलाया गया। नानक ने कहा, सब उसकी मर्जी से हो रहा है। उसके हुक्म से। और सब ठीक ही होगा। और उसीने सब जानवर भेजे। और उसीने फसल उगायी। और उसने जब एक बार उगायी, तो वह हजार बार उगा सकता है। घबड़ाने की क्या बात है? मुझे नहीं लगता कि कोई भी नुकसान हुआ है।

तो उस आदमी ने कहा, कि सब साथ चलें, मेरा खेत बरबाद पड़ा है। और यह आदमी कहता है, कोई नुकसान नहीं हुआ।

कहानी कहती है, कि जब वे वापिस पहुँचे तो पाया कि खेत खूब लहलहा रहा है। वहाँ कोई नुकसान नहीं हुआ। सच तो ऐसा कि आस-पास के खेत फीके पड़े हैं। इस खेत में जैसी फसल आयी है, ऐसी कभी देखी नहीं गयी।

यह कहानी घटी हो, न घटी हो; पर बड़े मतलब की है। जो उसपर छोड़ देता है उसके खेत की फसल का क्या कहना! और नानक ने उसपर छोड़ दिया।

तो नानक के जीवन में ऐसी फसल आयी जैसी कि किसी के जीवन में कभी-कभी मुश्किल से आयी है। पर छोड़ने की हिम्मत...

वह खेत का मालिक तो भरोसा ही न कर सका कि यह क्या हुआ है! इस जगत में सब से बड़ा चमत्कार है, परमात्मा पर अपने को छोड़ देना। तब तुम्हारे जीवन में ऐसा घटने लगेगा रोज-रोज, जिसके लिए जवाब देना बिलकुल मुश्किल है। जिसको समझाना मुश्किल है। जिसकी कोई रैशनल, कोई तर्कयुक्त व्याख्या नहीं हो सकती।

इतना ही अर्थ है कहानी का, कि जो उस पर छोड़ देते हैं, उनके जीवन में प्रतिपल ऐसी घटनाएँ घटने लगती हैं, जिनका कि कोई बुद्धियुक्त हल नहीं हो सकता। जो पहेलियाँ मालूम होती हैं।

क्यों? क्योंकि जब अमाप तुम्हारे जीवन में प्रवेश कर जाता है तब पहेलियाँ शुरू हो जाती हैं। पहेली का एक ही अर्थ है, रहस्य का एक ही अर्थ है, कि तुमने माप की दुनिया से आँखें उठा लीं अमाप की तरफ। सीमा की तरफ से तुम हटे। और असीम की तरफ झुके। ज्ञात को तुमने थोड़ा छोड़ा और अज्ञात तुम्हारे जीवन में आया। जैसे ही तुम अज्ञात को थोड़ी सी जगह देते हो अपने जीवन में, वैसे ही रहस्य घटने शुरू हो जाते हैं। चमत्कार की फसल उठनी शुरू हो जाती है।

नानक व्यापारी हैं किसी और दूसरी दुनिया के। और उस दूसरी दुनिया के व्यापारियों के साथ हमने सदा दुर्व्यवहार किया। जीसस को हमने सूली पर लटका दिया। सुकरात को जहर पिला दिया। और हमने सूली भी न दी हो, जहर भी न पिलाया हो, तो भी हमने उस दुनिया के व्यापारियों की बात कभी नहीं सुनी। हमने पूजा भी की हो तो भी नहीं सुनी। पूजा भी हमारी एक तरकीब है बचने की। कि हम कहते हैं, 'आप बहुत महान हो। हम आपको कैसे पा सकते हैं? तो आपके चरणों में हम फूल चढ़ाते हैं। लेकिन हम तो जैसे हैं, वैसे ही रहेंगे।'

और हम पूजा करके वैसे ही बने रहते हैं। तुम्हारी पूजा झूठी है, अगर तुम वैसे ही बने रहते हो। एक ही कसौटी है पूजा के सच होने की, कि पूजा तुम्हें बदले। अगर तुमने सच में नानक को आदर दिया तो तुम दूसरे ही आदमी हो जाओगे। लेकिन तुम नानक को आदर भी देते हो और वही के वही आदमी रहते हो, तो आदर झूठा है। और आदर भी बचने की तरकीब है। तुम कहते हो, हम मानते हैं कि आप जो कहते हैं बिलकुल ठीक है। लेकिन अभी हमारा समय नहीं आया। जब आएगा, तब हम भी इस मार्ग पर चलेंगे। लेकिन अभी संसार में बहुत काम करने बाकी हैं। पहले उनको निपटा लेने दें। और जल्दी भी क्या है? कल!

हम पोस्टपोन करते हैं। हमारा आदर भी बड़ा होशियारी से भरा है। ध्यान रखना, आदर ज्यादा चालाक तरकीब है। जहर पिलाना सीधी-सादी बात। हम

इस आदमी से छुटकारा पाना चाहते हैं। इसलिए यूनान में हम ने सुकरात को जहर खिला दिया। यहूदियों ने जीसस को सूली पर लटका दिया। हिंदुस्तान ज्यादा चालाक है। क्योंकि पुरानी जाति! ज्यादा होशियार है। हमने बुद्ध को, नानक को, महावीर को, कृष्ण को सूली पर नहीं चढ़ाया और न ही हमने उनको जहर पिलाया। हमने उनकी पूजा की।

और ध्यान रखना, यहूदी जीसस को सूली पर चढ़ा कर अभी तक छुटकारा नहीं पा सके। यहूदी के पीछे जीसस घूम रहा है। क्योंकि जिसको तुम सूली दोगे, उसके लिए तुम्हारे भीतर एक अपराध का भाव पैदा हो जाएगा। अभी तक जीसस से छुटकारा नहीं हुआ है यहूदियों का। और कभी नहीं होगा। क्योंकि एक अपराध का भाव भीतर बैठ गया है। और बार-बार उन्हें जीसस की याद आती है।

लेकिन हमने पहले ही छुटकारा कर लिया है। हमें किसी की याद नहीं आती। हम बहुत होशियार लोग हैं। हमने दिन बाँध दिये हैं याददाश्त के, कि तुम्हारा जन्म-दिन आएगा, तो हम तुम्हारी याद कर लेंगे। बाकी समय तुम हम पर कृपा करो! हमें अपना व्यापार करने दो। अभी हमारी उत्सुकता, उस दुनिया के व्यापार में नहीं है। भारत बहुत चालाक है। इसलिए हमने किसी को फाँसी नहीं दी। क्योंकि हम छुटकारे की सरल तरकीबें जानते हैं; फिर इतना उपद्रव क्यों खड़ा करना? और सूली देने का मतलब यह है, कि हमने तुम्हें बहुत गंभीरता से लिया।

हम तुम्हारी पूजा करेंगे। यह बड़ी सरल और अहिंसात्मक प्रक्रिया है छूटने की। हम तुम्हें भगवान कहेंगे। गुरु कहेंगे। संत कहेंगे। सिद्ध पुरुष कहेंगे। लेकिन तुम हमें 'हम' रहने दो। तुम वहाँ मंदिर की वेदी पर रहो, हम यहाँ संसार में। और जब हमें संसार में किसी चीज की जरूरत होगी, तो हम तुमसे माँग लेंगे। हम तुम्हारा उपयोग करेंगे, लेकिन हम तुम्हारे कारण बदलेंगे नहीं।

यह ज्यादा चालाक, होशियार कौम है। पुरानी कौम है। बूढ़े आदमी हमेशा चालाक होते हैं, क्योंकि जिंदगी का अनुभव उन्हें बता देता है कि बचने की तरकीबें, कुशलता से निकाली जा सकती हैं। इतना जाल, इतना जहर पिलाना, इतना सूली लगाना, इतना उपद्रव क्या करना! मंदिर की वेदी पर बिठा दो, छुटकारा हो जाता है। हमने अपने उन सब व्यापारियों को, जो दूसरे जगत की खबर लाए, पूज्य बना लिया। और पूज्य बना कर हमारा निपटारा हो गया। नाता-रिश्ता तय हो गया। हम भक्त हैं; तुम भगवान हो। हम पुजारी हैं, तुम आराध्य हो। बात निपट गयी!

असली सवाल है, नानक हो जाना। असली सवाल नानक की पूजा नहीं है। असली सवाल गुरुग्रंथ हो जाना है कि तुम्हारे शब्द का उच्चार उस एक ओंकार की ध्वनि लाने लगे। लेकिन तब तुम्हें बदलाहट से गुजरना पड़े।

'उसके व्यापारी भी अमूल्य हैं।'

और इसीलिए तो हम पहचान नहीं पाते। इसीलिए तो हमें लगता है कि वे जो कुछ कह रहे हैं, वह हमारे तर्क में नहीं बैठता। वे जो कुछ बता रहे हैं वह हमारी समझ के साथ संगत नहीं होता। तो हम अपने बीच और उनके बीच एक दीवाल खड़ी कर लेते हैं। और हमने अपने बीच और उनके बीच कंपार्टमेंट बना लिए हैं।

जब तुम गुरुद्वारा जाते हो तब तुम और तरह के आदमी होते हो। जब तुम दूकान पर बैठते हो तब तुम और तरह के आदमी होते हो। जब तुम मंदिर जाते हो तब देखो तुम्हारा भाव! आँखों से आँसू बह रहे हैं, तुम ऐसे गद्गद् मालूम होते हो! मस्जिद में तुम्हें नमाज पढ़ते देखना, और फिर बाजार में तुम्हें दूकान पर देखना। भरोसा ही नहीं आता कि तुम एक आदमी हो। ऐसा लगता है, तुम दो आदमी हो। यह भी बचने की बड़ी कुशल तरकीब है।

तो हम एक कोना अलग ही बना दिए हैं धर्म का। वह हमारा संडे-कॉर्नर है। वहाँ हम सुबह चर्च जाते हैं। और चर्च से हम बाहर निकले कि वहाँ हम उस कोने को वहीं छोड़ आते हैं। फिर सात दिन हम उसे आँख उठा कर भी नहीं देखते। जैसे धर्म का संबंध हमारे चर्च में होने से है! और बाकी जिंदगी? बाकी जिंदगी हम अपने हिसाब से चलते हैं। चर्च में, गुरुद्वारे में, मंदिर में, हम व्यापारियों की बात सुनते हैं। वह भी सुनने की है। वह भी हम कहाँ ठीक से सुनते हैं! वह भी एक सामाजिक उपचार है।

नानक कहते हैं, उसके व्यापारी भी अमूल्य हैं। और अगर तुम उसकी तरफ जाना चाहते हो तो उसके व्यापारियों को समझने की कोशिश करना। और उसके व्यापारी भी तुम्हें अकूत मालूम पड़ेंगे। उनको भी तुम तौल न सकोगे। तुम्हारी बुद्धि उनके साथ भी थक जाएगी। तुम्हारे मापदंड वहाँ भी गिर जाएँगे। तुम पाओगे, तुम उन्हें जिस तरह से भी तौलो, तुम पाते हो वे तुम्हारी तौल से बड़े हैं।

'जो लेने आता है वह अमूल्य है, जो ले जाता वह अमूल्य है।' वहाँ अमूल्य का ही सारा कारोबार है, अकूत का, अमाप का। वहाँ ग्राहक भी जो आता है वह भी अमूल्य है। वहाँ जो सामान ले जाता है वह भी अमूल्य है। वहाँ बिक्री ही उस एक की हो रही है—एक ओंकार सतनाम।

'उसका भाव अमूल्य है, उसकी समाधि अमूल्य है।'

तुम्हारे भीतर उसका भाव पैदा हो जाए, तो तुम दूसरे जगत में प्रवेश कर गये। तुम फिर यहाँ नहीं हो। उसका भाव पैदा हो जाए तो तुम कहीं और चले गये।

रामकृष्ण के सामने कोई परमात्मा का नाम ले देता, वहीं वे खड़े हो जाते। आँख बंद हो जाती और आँसुओं की धार लग जाती। शरीर जड़ हो जाता। वे कहीं और चले गये। वे अब यहाँ नहीं हैं। स्मरण मात्र! और एक नया आयाम भीतर खुल गया। तत्क्षण कोई और दुनिया खुल गयी। यह दुनिया बंद हो गयी। इस दुनिया के दरवाजे बंद हो गये। और एक नये लोक का द्वार खुल गया।

नानक कहते हैं, उसका भाव, स्मरण मात्र, उसकी सुरति, जरा सी उसकी स्मृति, एक रेखा—और तुम कहीं और चले गये। उसका भाव ही जब परिपूर्ण हो जाता है तो उसका नाम समाधि है।

भाव और समाधि के भेद को समझ लें। भाव का अर्थ है, एक झलक। भाव का अर्थ है, एक तरंग। भाव का अर्थ है, एक क्षण को तुम उसमें डूबे, लेकिन तुम बने रहे। डुबकी तो लगायी, मिटे नहीं। जैसे पानी में कोई डुबकी लगाए, कितनी देर डुबकी लगाएगा? एक क्षण बाद बाहर आ जाएगा, और डुबकी जब लगाए हुए है, तब भी मौजूद तो है ही!

शेख फरीद हुआ एक सिद्ध पुरुष। नानक के ही करीब-करीब समय में। एक दिन नदी जा रहा था स्नान करने और एक भक्त ने पूछा कि भगवान को कैसे पाया जाए? उसने कहा, तू मेरे साथ आ। नदी के किनारे भक्त से कहा, चल पहले स्नान कर ले। फिर तुझे बता दूंगा। और मौका लगा तो स्नान करने में ही बता दूंगा।

भक्त थोड़ा डरा। भगवान की बात पूछी, और यह आदमी कह रहा है कि स्नान करने में ही बता दूंगा, अगर मौका लगा। थोड़ा भय भी आया। लेकिन अब पूछ बैठा था, फँस गये! न भी न कर सका। और जिज्ञासा भी जगी, कि पता नहीं शायद, नदी में कुछ बताये। तो उतर गया स्नान करने। जैसे ही उसने डुबकी लगायी शेख फरीद उसके ऊपर सवार हो गया। और उसे नीचे दबाने लगा। वह भक्त तड़फड़ाने लगा। हाथ-पैर फेंकने लगा। सारी ताकत दाँव पर लगा दी। भक्त ऐसे कमजोर दुबला था। शेख फरीद तगड़ा आदमी था। बा-मुश्किल—लेकिन सारी ताकत लगा दी, तो फरीद को भी उसने फेंक दिया।

बाहर निकल कर बोला कि तुम संत हो लेकिन हत्यारे मालूम पड़ते हो। यह कोई ढंग हुआ! यह कोई बात है? तुम पागल हो, या होश में नहीं हो? अगर नहीं मालूम, तो पहले ही कह देना था।

फरीद ने कहा, कि पीछे कर लेंगे यह हिसाब-किताब, कि होश में हूँ, कि पागल हूँ; कि कौन होश में है, कौन पागल है? पहले मैं यह पूछता हूँ, क्योंकि वक्त निकल गया तो तू भूल जाएगा। तेरी स्मृति कमजोर है। मैं तुझ से यह पूछता हूँ, कि जब मैं तुझे पानी में दबाए ही जा रहा था तब तेरे मन में कितने विचार थे?

उसने कहा, विचार—पागल हुए हो ? एक ही भाव था कि किस तरह बाहर निकल जाऊं और एक स्वाँस हवा मिल जाए। बस एक भाव था, कि किसी तरह बाहर आ जाऊँ। और एक स्वाँस।

फरीद ने कहा, बस तू समझ गया। जिस दिन ऐसा ही कोई विचार न होगा और एक ही भाव होगा परमात्मा का, उस दिन तू जान लेगा। और जब तक जीवन दाँव पर न लगाएगा, तब तक परमात्मा को जानना मुश्किल है।

भाव का अर्थ है, जहाँ कोई विचार न रहा। केवल उसकी सुरति रह गयी। अगर तुम भी हो, थोड़ी देर में तुम पानी के बाहर आ जाओगे।

समाधि, भाव की परिपूर्ण दशा है। तुम गये तो गये ! प्वाईंट ऑफ नो रिटर्न। वहाँ से फिर तुम वापिस नहीं आते। फिर वह भाव सदा रहता है। फिर तुम भाव के साथ एक हो गये। वह डुबकी नहीं है, वह लीनता है। तुम पानी ही हो गये। अब कौन बाहर आएगा ? कौन भीतर जाएगा ? जैसे तुम नमक के पुतले थे और पिघल गये पानी में और खो गये। जैसे तुम शक्कर की डली थे और पानी में खो गये और एक हो गये। अब कोई पानी को चखेगा तो तुम्हारा स्वाद पाएगा। लेकिन अब तुम एक हो गये ? अब तुम अलग नहीं हो। भाव में तुम अलग होते हो। क्षण भर को झलक मिलती है। समाधि में तुम एक होते हो। झलक शाश्वत हो जाती है। नानक कहते हैं, उसका भाव भी अमूल्य है। तो समाधि का तो कहना ही क्या !

'अमुल भाइ अमुला समाहि।'

'उसका धर्म अमूल्य है, उसका स्वभाव अमूल्य है। उसका तुला अमूल्य है। उसका वरदान अमूल्य है। उसका प्रतीक अमूल्य है।'

इसे थोड़ा समझें। उसका प्रतीक भी अमूल्य है। प्रतीक के साथ बड़ी जटिलता है। हिंदू हैं; उन्होंने हजारों तीर्थ खोजे हैं। मूर्तियाँ बनायीं, तीर्थ बनाये, यह सब प्रतीक हैं।

मुसलमान को समझ में भी नहीं आता कि मूर्ति में क्या रखा हुआ है ? वह मूर्ति को तोड़ देता है। और तोड़ कर उसे ऐसा भी लगता है कि जब मूर्ति अपनी ही रक्षा नहीं कर सकती, तो भक्तों की क्या खाक रक्षा करेगी ?

दयानंद को भी ऐसा ही हुआ अनुभव। वह पूजा करते थे। रात सो गये, और देखा कि एक चूहा मूर्ति पर चढ़ा है, और मूर्ति चूहे को भी नहीं भगा सकती ! पर मुसलमान भी चूकते हैं और दयानंद भी चूके। क्योंकि प्रतीक, प्रतीक है। प्रतीक परमात्मा नहीं है।

प्रतीक का अर्थ होता है, कि उसके सहारे तुम किसी यात्रा पर जा रहे हो। वह खुद मंजिल नहीं है। समझो, तुम्हारी प्रेयसी ने तुम्हें एक रूमाल भेंट कर दिया; वह चार आने का है। अगर बाजार में तुम उसे बेचने जाओगे तो दो आना भी नहीं मिलेगा। पहले तो कोई खरीदने को तैयार ही नहीं होगा, कि पुराने रूमाल का क्या करेंगे ? पर गुदड़ी बाजार में शायद कोई दो आने में खरीद ले। लेकिन तुम्हें तुम्हारी प्रेयसी ने दिया है वह रूमाल। उसका मूल्य लगाना कठिन है। हिसाब ही लगाना कठिन है। तुम उसे साज-सँवार कर रखते हो। वह कहीं खो न जाए।

तुम्हारे लिए वह रूमाल सिर्फ रूमाल नहीं है, प्रतीक है। उस रूमाल के साथ प्रेयसी से तुम्हारा नाता जुड़ा है, इस बात को कोई दूसरा न जान सकेगा, उसके लिए वह सिर्फ रूमाल होगा। तुम्हारे लिए वह सिर्फ रूमाल नहीं है। किसी गहरे अर्थ में तुम्हारी प्रेयसी उस रूमाल के साथ संयुक्त है। वह रूमाल तुम्हारी प्रेयसी की हवा को छुआ है। उस रूमाल ने तुम्हारी प्रेयसी के हाथों में स्पर्श पाया है। प्रेयसी ने रूमाल का चुंबन लिया है और तुम्हें भेंट किया है। प्रेयसी ने अपने हाथों से थोड़ी सी कसीदाकारी की है। वह प्रेयसी बड़े गहरे अर्थों में उस रूमाल में समा गयी है। किसी और के लिए वह प्रतीक साधारण रूमाल है, तुम्हारे लिए वह साधारण रूमाल नहीं है।

क्या फर्क है ? तुम्हारे लिए प्रतीक है। दूसरों के लिए रूमाल है।

हिंदू की मूर्ति, हिंदू के लिए प्रतीक है, अगर उसने भाव को सँजोया है। मुसलमान के लिए साधारण पत्थर है। जैन की मूर्ति, जैन के लिए प्रतीक है, हिंदू के लिए पत्थर है। बुद्ध की मूर्ति, बौद्ध के लिए प्रतीक है, जैन के लिए किसी मूल्य की नहीं। प्रतीक का मूल्य भाव पर निर्भर होता है। प्रतीक का कोई सार्वजनिक मूल्य नहीं होता। प्रतीक प्राइवेट है। वह एक निजी बात है। जो जानता है वह जानता है। जिसका उससे लगाव है, उसका लगाव है।

इसलिए भूल कर भी कभी किसीके प्रतीक के खिलाफ कुछ मत कहना। क्योंकि वह तुम्हारे लिए साधारण है, और तुम भी सच हो। और जिसके लिए वह असाधारण है, वह भी सच है। तुम भी सच हो कि यह रूमाल रूमाल है, क्या छाती से चिपकाये फिरते हो ? और खो जाए तो डर क्या है ? हजार खरीद कर ला देंगे। बाजार में मिलता है।

लेकिन जिसके लिए वह प्रतीक है, वह भी सच है। क्योंकि यह रूमाल फिर नहीं मिल सकता। ऐसा रूमाल दुबारा नहीं मिल सकता। यह रूमाल अनूठा है। पर यह जो अनूठापन है, यह निजी घटना है।

नानक कहते हैं, उसके प्रतीक भी अमूल्य हैं। वह तो अमूल्य है ही, लेकिन अगर तुमने किसी के माध्यम से उसकी झलक पायी है, वह भी अमूल्य है। और प्रत्येक प्रतीक का सम्मान करना है, क्योंकि कौन जाने किस प्रतीक से उसे रास्ता मिलता हो! और किसीके प्रतीक को कभी गलत मत कहना। क्योंकि प्रतीक गलत और सही होते ही नहीं। किसी के लिए प्रतीक होते हैं, किसी के लिए नहीं होते। प्रतीक के गलत और सही होने का सवाल ही नहीं उठता।

अब बड़ी हैरानी की बात है। मुसलमान को दिखायी पड़ता है कि सारी मूर्तियाँ व्यर्थ हैं, लेकिन काबा का पत्थर? उसको वे चूमते हैं। उस पत्थर पर जितने चुम्बन पड़े हैं, दुनिया में किसी पत्थर पर नहीं पड़े। यह पत्थर चुम्बनों से भर गया है। उस पत्थर के एक-एक इंच पर अरबों-खरबों चुम्बन पड़ चुके हैं। पिछले चौदह सौ वर्षों में करोड़ों-करोड़ों लोगों ने उस पत्थर को चूमा है। ऐसा कोई पत्थर खोजना मुश्किल है। मुसलमान को वह पत्थर तो चूमने जैसा लगता है, हिंदू की मूर्ति तोड़ने जैसी लगती है। क्योंकि वह पत्थर उसके लिए प्रतीक है। और यह प्रतीक नहीं है।

लेकिन धार्मिक व्यक्ति को इतनी समझ होनी ही चाहिए, कि जो मेरे लिए प्रतीक नहीं है, वह दूसरे के लिए प्रतीक हो सकता है। और प्रतीक निजी घटना है। और उसको सार्वजनिक रूप से सिद्ध करने का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि वह भाव की बात है। वह अंतर्भाव है। वह बड़ी गहन और भीतरी घटना है। उसको बाहर लाने का उपाय नहीं। बाहर लाते-लाते ही वह खो जाती है।

किसी आदमी के लिए पीपल का वृक्ष प्रतीक है। तुम उससे मत कहना, कि क्या वृक्ष को पूज रहे हो? पागल हो गये हो? सवाल किस को पूज रहे हो यह है ही नहीं, सवाल पूजा का है, किस बहाने पूजा हो जाए? सभी बहाने ठीक हैं। और सभी बहाने गलत हैं। अगर तुम वैज्ञानिक ढंग से सोचो, तो पीपल का वृक्ष, पीपल का वृक्ष है। पत्थर, पत्थर है; रूमाल, रूमाल है। लेकिन विज्ञान का क्या लेना-देना है यहाँ! धर्म प्रेम का राज्य है, तर्क और बुद्धि का नहीं। पर बड़े मजे की बात है, हर आदमी अपने प्रतीक को तो मान कर चलता है, दूसरे के प्रतीक के साथ मुसीबत खड़ी हो जाती है। तुम अपनी प्रेयसी के रूमाल को तो सम्हाल कर रख हो, दूसरों को भी सम्हाल कर रखने दो। वह उनकी प्रेयसियों के रूमाल हैं।

नानक कहते हैं, प्रतीक भी! जिससे भी इशारा मिल जाए। अब समझो, किसी आदमी को अगर पीपल के वृक्ष के देवता में ही रस है, और वह यदि पीपल के वृक्ष के पास समाधिस्थ हो जाता है, और आनंदमग्न हो कर नाचने लगता है, तो असली सवाल वृक्ष थोड़े ही है! असली सवाल तो यह आनंदमग्न-नृत्य है।

यह नृत्य जहाँ भी घटित हो जाए, जिस बहाने भी उसकी याद आ जाए, वही अमूल्य है।

'उसका वरदान अमूल्य है। उसका प्रतीक अमूल्य है। उसकी कृपा अमूल्य है। और उसकी आज्ञा अमूल्य है। वह अमूल्य से भी कितना अमूल्य है, इसका बखान नहीं हो सकता। उसका बखान ही करते-करते कितने ध्यानस्थ होते रहते हैं।'

उसके बखान का प्रयोजन ही इतना है, इसे थोड़ा समझें। नानक बार-बार कहते हैं, उसका बखान नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं बखान करने का, और फिर भी बखान करते चले जाते हैं।

कर क्या रहे हैं नानक? यदि उसका बखान नहीं हो सकता, तो ये सारे शब्द कर क्या रहे हैं? यह सब उसका बखान है। तब एक बड़ी तार्किक पहेली खड़ी हो जाती है।

अनेक लोग मुझसे आ कर पूछते हैं, कि बुद्ध कहते हैं कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर बुद्ध बोलते क्यों है? मुझ से कहते हैं, कि आप कहते हैं कुछ कहा नहीं जा सकता, और आप रोज बोले चले जाते हैं! संगति नहीं मालूम पड़ती। 'कन्सिस्टन्सी' नहीं मालूम पड़ती।

इसे थोड़ा समझें। नानक कहते हैं, उसका बखान नहीं हो सकता और बखान किए चले जा रहे हैं। क्योंकि बखान करते-करते ही समाधि लग जाती है। बखान तो नहीं हो पाता। लेकिन उसकी चर्चा करनी ही इतनी मधुर है! चर्चा हो नहीं पाती। कह कर भी कुछ कहा नहीं जाता। अनकहा, अनकहा रह जाता है। लेकिन उसकी चर्चा करना ही इतना आनंदपूर्ण है कि उसकी चर्चा करते-करते ही ध्यान लग जाता है। बोल-बोल कर कुछ कहा तो नहीं जा सकता लेकिन बोलते, बोलते, बोलते बोलनेवाला खो जाता है।

'उसका बखान ही करते-करते कितने ध्यानस्थ हो जाते हैं। वेद उसका वर्णन करते हैं। पुराण उसका पाठ करते हैं। विद्वान उसका वर्णन और बखान करते हैं। इंद्र और ब्रह्मा उसका वर्णन करते हैं। गोपी और गोविंद उसका वर्णन करते हैं। विष्णु और सिद्ध उसका वर्णन करते हैं। अनेक-अनेक बुद्ध उसका वर्णन करते हैं। दानव और देव भी उसका वर्णन करते हैं। सुर, नर और मुनिजन और सेवकजन उसका वर्णन करते हैं।'

उसका वर्णन, वर्णन के लिए नहीं है। उसका वर्णन भी ध्यान की एक विधि है। उसकी चर्चा उसमें खो जाने का एक उपाय है। उसकी बात करना, उसकी तरफ उन्मुख होने का मार्ग है। जहाँ उसकी बात चलती है, वहाँ बैठ कर

उसकी बात सुन लेना भी—तुम्हारे भीतर भी शायद एक आध बूँद की वर्षा हो जाए ! शायद तुम्हारे प्यासे कंठ पर भी कोई चीज पड़ जाए। शायद अनायास कुछ सुनायी पड़ जाए। शायद तुम्हारी बधिरता को तोड़कर कोई शब्द भीतर प्रवेश कर जाए। शायद तुम्हारी अंधी आँखें भी थोड़ी सी रोशनी से भर जाएँ। और तुम्हारी बुद्धि के विचार भी थोड़ी देर को उसकी चर्चा के राग, उसकी चर्चा के रंग में, उसकी चर्चा के संगीत में डूब जाएँ। थोड़ी देर को तुम चुप हो जाओ, तुम्हारी भीतरी, जो चल रही वार्तालाप की विधि है, वह क्षीण हो जाए। तुम्हारा 'इंटर्नल डॉयलॉग' टूट जाए !

इसलिए नानक उसके गीत गाते हैं। उसके गीत गाते हैं, क्योंकि गाते-गाते, गायक उनमें खो सकता है। गाते-गाते, सुनने वाला भी उसमें खो सकता है। और इसलिए नानक ने कहा नहीं, गाया। क्योंकि गाने से ज्यादा आसान होगा। और संगीत का भी उपयोग किया। क्योंकि तुम्हारा सुर भीतर का सध जाएगा। थोड़ी देर संगीत की थाप में तुम शायद उस गहन शांति को एक क्षण को भी छू लो, जिसका स्वाद फिर भूले नहीं भूलेगा।

इसलिए नानक साधु-संगत का बड़ा मूल्य मानते हैं, कि जहाँ उसकी चर्चा चल रही हो वहाँ बैठना, सुनना। सुनते-सुनते, धीरे-धीरे तुम पर भी रंग चढ़ जाएगा। अगर तुम बगीचे से गुजरोगे, तो अनजाने भी तुम्हारे वस्त्र में फूलों की गंध, थोड़ी सी गंध आ जाएगी। और तुम अगर सुबह के सूरज के पास खड़े होओगे, तो उसकी उत्तप्त और ताजी किरणें तुम्हारे खून को भी आंदोलित करेंगी। और रात अगर तुम चांद के पास बैठोगे, लेट जाओगे भूमि पर और देखोगे आकाश में चांद को, तो उसकी शीतलता थोड़ी सी तुम्हारे भीतर भी मार्ग बनाएगी।

साधु-संगत का अर्थ है, जहाँ उसका गुणगान हो रहा है।

हिंदुओं ने कहा है, जहाँ उसकी निंदा हो रही हो, वहाँ अपने कान बंद कर लेना। जहाँ उसकी चर्चा हो रही हो, वहाँ तुम अपने समस्त व्यक्तित्व को कान ही बना देना, सिर्फ सुनने वाले हो जाना। इसलिए तो नानक कहते हैं बार-बार, 'सुनिए'। वे उसकी चर्चा कर रहे हैं। उसका बखान कर रहे हैं। लेकिन एक बात बार-बार स्मरण दिलाते हैं, कि बखान करने से भी उसका बखान होता नहीं। क्योंकि तुम इस भूल में मत पड़ जाना, कि जो कहा है उससे उसका माप हो गया। जो कहा है, उससे इशारा हुआ। उससे माप नहीं हुआ। जो कहा है, उससे वह चुक नहीं गया। पूरा का पूरा चुक नहीं गया। शुरुआत हुई, अंत नहीं हुआ। इसलिए बखान भी करते हैं और कहते भी हैं, कि उसका बखान हो भी नहीं सकता।

'वेद उसका वर्णन करते हैं। शास्त्र उसका वर्णन करते हैं।'

और बड़ी अद्‌भुत बात कही, कि गोपी और गोविंद भी उसका वर्णन करते हैं।

गोपी और गोविंद तो बोलते ही नहीं; वे तो नाचते हैं। लेकिन उस नाच में भी उसका ही वर्णन है। उस नृत्य में भी उसकी ही खबर है। गोपी और गोविंद तो चर्चा ही कहाँ करते हैं ! वे तो नाचते हैं। रासलीला होती है चाँद तले। गोविंद नाचते हैं गोपियों के साथ। लेकिन नानक कहते हैं, वह भी उसीका वर्णन है।

ढंग अलग हैं। कोई नाच कर कहता है, कोई गा कर कहता है, कोई चुप हो कर कहता है। लेकिन सभी उसका वर्णन है।

लेकिन जिसने उसे जान लिया वह कुछ भी करे, उसके हर कृत्य में, उसके हर इशारे में, गेस्चर में भी उसीका वर्णन है। बुद्ध का हाथ भी उठे, तो उस हाथ में भी उसीकी तरफ इशारा है। बुद्ध की आँख भी खुले तो वह आँख भी उसीकी तरफ इशारा है। बुद्ध चुप हों, तो भी उसीकी बात कर रहे हैं। बुद्ध बोलें, तो भी उसीकी बात कर रहे हैं।

फिर हर व्यक्ति के अलग ढंग हैं। बुद्ध नाच नहीं सकते। वह उनके व्यक्तित्व में नहीं है। वह उन्हें जमेगा भी नहीं। नाचते हुए बड़े असंगत मालूम पड़ेंगे। नाच से उनका तालमेल न होगा। वे प्यारे लगते हैं बोधिवृक्ष के नीचे। जैसे बैठे हैं, वैसे ही। वही उनका नृत्य है। वे कँपते भी नहीं, कंपन भी नहीं है। हिलते भी नहीं, डुलते भी नहीं। ठीक पत्थर की तरह !

बुद्ध की मूर्ति के कारण ही अरबी और अरबी से संबंधित भाषाओं में, मूर्ति के लिए जो शब्द है वह 'बुत' है बन गया। 'बुत', 'बुद्ध' का अपभ्रंश। बुद्ध इतने मूर्तिवत हैं, कि अगर तुम उन्हें जिंदा भी पाओगे तो लगेंगे कि संगमरमर की मूर्ति हैं। अगर बुद्ध के पीछे करोड़ों-करोड़ों मूर्तियाँ बनीं संगमरमर की, तो उसका कारण था। बुद्ध वैसे लगते थे। उनका होनेका ढंग इतना मौन था। वहाँ कोई कंपन न था। नृत्य तो बहुत मुश्किल है। वे ऐसे बैठे थे जैसे कि पत्थर हों। संगमरमर का पत्थर ठीक उनकी याद दिलाता है। वैसे ही शीतल, वैसे ही स्थिर। लेकिन वही बुद्ध का ढंग है। उस तरह वे कहते हैं।

कृष्ण नाच रहे हैं। बड़ा उलटा ढंग है उनका बुद्ध से। तुम सोच भी नहीं सकते कि बुद्ध, मोर-मुकुट बाँधे खड़े हैं। बड़े नाटकीय लगेंगे। जँचेगा भी नहीं। लेकिन कृष्ण को अगर तुम बुद्ध की तरह बिठा दो तो वे भी उतने ही नाटकीय लगेंगे। वह भी नहीं जँचेगा; अभिनय मालूम पड़ेगा, झूठा लगेगा। कृष्ण पर थोपा नहीं जा सकेगा। कृष्ण का व्यक्तित्व और ढंग का है। वे मोर-मुकुट में ही शोभते हैं। वे नाचते हैं। चारों तरफ गोपियों का नृत्य चलता है।

नानक कहते हैं, गोपी और गोविंद के नृत्य में भी उसका ही बखान है। यह बड़ा प्यारा वक्तव्य है नानक का, कि उसकी ही खबर है।

हजारों तरह से बुद्धों ने उसे कहा है। जागृत-पुरुषों ने उसे कहा है। इशारे हजारों हैं। जिसकी तरफ इशारा है, वह एक है—एक ओंकार सतनाम।

'ब्रह्मा और इंद्र उसका वर्णन करते हैं। विष्णु और सिद्ध उसका वर्णन करते हैं। अनेक-अनेक बुद्ध उसका वर्णन करते हैं। कितने तो वर्णन कर पाते हैं। और कितने वर्णन करते-करते ही विदा हो जाते हैं। उसने जो किया है वह उसे और भी भरेगा। उसका हिसाब कोई भी नहीं लगा सकता है। वह जैसा चाहता है, वैसा ही हो जाता है।'

ये शब्द बहुत विचारने जैसे हैं।

'एते कीते होरि करेहि।
ता आखि न सकहि केई केइ॥
जेवडु भावै तेवड होइ।
'नानक' जाणै साचा सोइ॥'

उसका वर्णन इसलिए भी नहीं हो सकता, कि परमात्मा कोई पूरी हो गयी घटना नहीं है। अगर कोई चीज पूरी हो गयी हो, तो वर्णन हो सकता है। लेकिन कोई चीज अगर अधूरी हो, तो वर्णन कैसे होगा? कोई चीज अगर होती ही जा रही है, तो वर्णन कैसे होगा?

अगर किसी आदमी की आत्मकथा लिखनी हो तो उसके मरने तक हमें रुकना पड़ेगा। अगर उसकी जीवन-कथा हमें लिखनी हो, तो मृत्यु के बाद ही लिखी जा सकती है। क्योंकि आदमी अभी अधूरा है। अभी और अध्याय बाकी हैं।

परमात्मा की जीवन-कथा कैसे लिखें? क्योंकि वह कभी भी मरेगा नहीं, कभी बूढ़ा नहीं होगा। कभी आखिरी चरण नहीं आएगा, जहाँ हम कह दें—दि एन्ड। जहाँ 'इति श्री' हो जाए।

वह होता ही रहेगा। परमात्मा सतत होना है। इटरनल, शाश्वत अभिव्यक्ति। वह फूल खिलता ही चला जाता है। उसकी पंखुड़ियाँ उस जगह नहीं आतीं, जहाँ हम कह दें, फूल पूरा खिल गया। वह सदा से खिलता रहा है। और सदा खिलता रहेगा।

यह जो परमात्मा की अनंत होने की क्षमता है, इसलिए वर्णन सब अधूरे हैं। सब कपड़े छोटे पड़ जाते हैं, वह बड़ा हो जाता है। इसलिए जितनी हमने परमात्मा की मूर्तियाँ बनायीं, और जितने हमने वर्णन किये, वे सब अधूरे पड़ गये। वह ऐसे, जैसे हम छोटे बच्चे के कपड़े बना देते हैं। वे फिर छोटे पड़ जाते

हैं, क्योंकि बच्चा बड़ा हो रहा है। एक उम्र आ जाती है, फिर नाप ही ठहर जाता है। फिर कपड़े का डर नहीं होता। फिर कपड़ा हम जो बना लेते हैं वह काम आता है। फिर नाप निश्चित हो जाता है। फिर दर्जी को बार-बार नाप देने की जरूरत भी नहीं पड़ती। वह नाप नोट कर लेता है। लेकिन बच्चों के नाप नोट नहीं किए जा सकते, क्योंकि वे बढ़ते जा रहे हैं।

और परमात्मा सदा बढ़ रहा है। इसलिए जितने कपड़े हम बनाते हैं, सब छोटे पड़ जाते हैं। इसलिए सब शास्त्र छोटे पड़ जाते हैं, और पुराने पड़ जाते हैं। इसलिए तो नये धर्म आविर्भाव होते हैं। और नये बुद्ध पुरुष फिर से उसका बखान करते हैं। और जब नये बुद्ध पुरुष उसका बखान करते हैं; थोड़ी देर तक वह बखान सही रहता है। क्योंकि कपड़े फिर छोटे हो जाते हैं। और सदा जरूरत रहेगी बुद्ध पुरुषों, की वह उसका गीत गाते रहें।

और हर नया गीत, थोड़ी देर ही लागू होता है। जितनी देर हम गाते हैं, उतनी देर भी लागू नहीं हो पाता। क्योंकि वह रोज बढ़ता जा रहा है। हमारे गाने की क्षमता छोटी, और उसके बढ़ने की क्षमता बहुत बड़ी है। इसलिए अगर तुम पिछले पाँच हजार साल का धर्मों का इतिहास देखो तो तुम पाओगे परमात्मा की शक्ल बदलती गयी है।

परमात्मा की शक्ल नहीं बदलती, हमारा वर्णन छोटा होता है। फिर हमें बदलाहट करनी पड़ती है। फिर हमें उसमें हेर-फेर करना पड़ता है। फिर कुछ काटना, छाँटना पड़ता है। फिर नये नाक-नक्श देने पड़ते हैं। जब तक हम दे पाते हैं, तब तक वह आगे जा चुका है। जब तक हम नाक-नक्श सुधारते हैं तब तक हम पाते हैं, कि वह कुछ और हो गया है। सभी अधूरा रहेगा।

हिंदू बड़े अद्भुत लोग हैं। इसलिए उन्होंने परमात्मा की ऐसी भी मूर्तियाँ बनायीं जिसमें नाक-नक्श नही है। सिर्फ हिंदुओं ने ऐसा काम किया है। अन्यथा दुनिया में और जगह भी मूर्तियाँ बनती हैं तो नाक-नक्श हैं। हिंदू एक पत्थर को उठा लेते हैं, सिंदूर से रंग देते हैं, हनुमान जी हो गये! न नाक है, न नक्श। क्योंकि हिंदू कहते हैं, क्या नाक-नक्श बनाना! जब तक हम बनाएँगे, तब तक वह आगे निकल जाएगा। तो यह पत्थर काम देगा।

हिंदुओं ने शंकर की, शिव की जो प्रतिमा बनायी है शिव-लिंग, उसमें कोई भी नाक-नक्श नहीं है। वह अंण्डाकार है। और वह शाश्वत प्रतिमा है। वह सदा लागू रहेगी। परमात्मा कैसा ही हो जाए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन हम जो भी उसका वर्णन करेंगे; हम कर भी नहीं पाएँगे, कि हम पाएँगे कि वर्णन 'आउट ऑफ डेट' हो गया।

नानक कहते हैं, **एते कीते होरि करेहि।'**

अब तक इतना किया है, और भी करता ही रहेगा।

'ता आखि न सकहि केई केइ।'

और अगर वह पूरा हो गया होता तो हम कुछ आख लेते। हिसाब लगा लेते। लेकिन वह और आगे होता ही रहेगा। और क्या होता रहेगा इसका अनुमान करना भी असंभव है। अनप्रेडेक्टिबल है। परमात्मा के संम्बध में हम कोई भविष्य-वाणी नहीं कर सकते कि वह कैसा हो जाएगा? या संसार क्या रूप-रंग लेगा; सब अज्ञात में छिपे हैं।

'जो उसने किया, वह उसे और भी करेगा। उसका हिसाब कोई भी लगा नहीं सकता। वह जैसा चाहता है, वैसा हो जाता है।'

उसका भाव--और वैसी घटना घट जाती है। ईसाई कहते हैं, यहूदी कहते हैं, कि परमात्मा ने कहा, 'हो जा;' और जगत हो गया।

हमारे कृत्य में और भाव में अंतर होता है। क्योंकि हमारी शक्ति सीमित है। अगर आप चाहते हैं एक मकान बनाना, तो आज भाव उठता है, दो साल बाद मकान बन पाएगा। यह दो साल का समय लगता है, क्योंकि हमारी शक्ति सीमित है। अगर शक्ति थोड़ी ज्यादा हो, तो एक साल में बन जाएगा। शक्ति और थोड़ी ज्यादा हो तो एक दिन में बन जाएगा। और अगर शक्ति सर्वज्ञ हो, परिपूर्ण हो, जैसी की परमात्मा की है, तो फिर भाव में और कृत्य में समय का भेद न रहेगा।

इसलिए समय हमारे लिए है, परमात्मा के लिए कोई समय नहीं है। समय मानवीय घटना है। परमात्मा के लिए समय है ही नहीं। क्योंकि समय है ही इसीलिए, क्योंकि हम कमजोर हैं। हमारी कमजोरी से समय है।

कभी तुमने ख्याल न किया हो, लेकिन अब ख्याल करना। जितने तुम कम-जोर होओगे, उतना समय लंबा मालूम पड़ेगा। समझो, कि तुम्हारी पत्नी बुखार से बीमार है। एक सौ चार डिग्री बुखार है, और तुम भागे हुए बाजार जाते हो। दवा खरीद कर पाँच मिनट में वापिस लौट जाते हो। लेकिन पत्नी कहती है, देर बहुत लगा दी। बुखार में समय लंबा मालूम पड़ता है।

अब तो इसके वैज्ञानिक प्रमाण भी मिल गये हैं, कि जब आदमी बुखार में होता है तो समय लंबा मालूम पड़ता है। बीमार आदमी को समय ज्यादा मालूम पड़ता है। बीमार आदमी को ही नहीं, बीमार आदमी के पास तुम बैठो घड़ी भर, तो बहुत लंबी मालूम पड़ती है। अगर कोई आदमी मर रहा हो, और उसके पास बैठो रात भर, तो ऐसा लगेगा कि अंत ही नहीं आता। रात लंबी ही होती चली जाती है।

जब तुम स्वस्थ होते हो, समय छोटा हो जाता है। जब तुम प्रफुल्लित होते हो, समय छोटा हो जाता है। जब तुम दुःखी होते हो, लंबा हो जाता है। हमारी शक्ति पर समय निर्भर है।

परमात्मा परिपूर्ण शक्ति है। ऑम्नीपोटेंट, सर्वशक्तिमान। उसके लिए कोई भी समय नहीं है। उसका भाव ही कृत्य हो जाता है। तो नानक कहते हैं,

'जेवडु भावै तेवड होइ।'

जो भाव करता है, वैसा ही घट जाता है। उसी क्षण घट जाता है। क्षण की भी देरी नहीं होती--युगपत्। सिमल्टेनिअस। इधर भाव, उधर घटना घट जाती है। भाव ही कृत्य है।

नानक कहते हैं, इसे जो जान ले, वह सत्य है।

इस वचन के दो अर्थ हो सकते हैं।

जेवडु भावै तेवड होइ। नानक जाणै साचा सोइ।'

इस वचन के दो अर्थ हो सकते हैं, कि इस बात को जो जान ले वह स्वयं सत्य हो गया। वही सच है जो इस बात को जान लें। परमात्मा की इस सर्व शक्तिमत्ता को जो जान ले, वही सत्य है।

और दूसरा अर्थ हो सकता है, कि नानक कहते हैं, वह सत्य पुरुष ही अपने को जानता है। हम उसे न जान सकेंगे। क्योंकि न उसके भविष्य का कोई हमें बोध है, और न अतीत का। और वह कभी पूरा नहीं होगा। पूरा होता रहेगा। पूर्णता से और पूर्णता...और पूर्णता...। वह अपूर्ण नहीं है, जो अपूर्ण से पूर्ण हो रहा हो; वह पूर्ण से पूर्णतर हो रहा है।

तो एक अर्थ हो सकता है, कि वही केवल जानता है। हमारे सब अनुमान, अनुमान हैं। दूसरा अर्थ हो सकता है, कि जो परमात्मा की इस सर्व-शक्तिमत्ता को अनुभव कर लेता है, वही सच है। वह व्यक्ति भी सत्य हो गया।

'पर यदि कोई उसका वर्णन करने का दंभ भरे, तो वह गँवारों का भी गँवार हो गया।'

जे को आखै बोल बिगाडु। ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु।

अगर गँवारों की कोई फेहरिस्त बनानी हो तो सबसे ऊपर, सिर पर उसका नाम लिखना चाहिए, जो यह दंभ करे कि उसका वर्णन किया जा सकता है।

वर्णन नानक करते हैं। क्योंकि वर्णन बड़ा रसपूर्ण है। वर्णन डुबो देता है। वर्णन ध्यान है। उसके भाव की बात करते-करते, करते-करते हृदय खिल जाता है। भीतर उमंग पैदा हो जाती है। रस बहने लग जाता है।

लेकिन अगर कोई सोचता हो कि उसका वर्णन हो सकता है, तो वह गँवारों में गँवार है। ज्ञानी वही है जो जानता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

वर्णन करता है, क्योंकि उसका नाम लेने में बड़ा आनंद है। चर्चा उसकी करता है, चर्चा बड़ी प्रीतिकर है। उसी-उसी की बात करता है। कुछ दूसरी बात ही नहीं करता। क्योंकि उसकी बात करते उसका द्वार खुलता है। उसकी चर्चा उसके द्वार पर दस्तक देने जैसी है।

तुमने कभी ख्याल किया है, जब पहला बच्चा पैदा होता है तब माँ उसी-उसी की चर्चा करती है। पड़ोसियों से करती है, घर मेहमान आते हैं, उनसे करती है। वे ही बातें बार-बार दोहराती है।

प्रेमी जब किसी के प्रेम में पड़ जाता है, तो अपनी प्रेयसी से बार-बार कहता, कि मैं तुझे प्रेम करता हूँ। बार-बार कहता है, तुझ से ज्यादा सुंदर कोई भी नहीं। बार-बार कहता है, तू अनूठी है, अद्वितीय है। बार-बार कहता है, तुझ जैसा कभी कोई हुआ ही नहीं। बार-बार कहता है, कि मैं धन्यभागी हूँ। और न तो प्रेयसी समझती है कि पुनरुक्ति करता है; कि क्या बार-बार दोहरा रहे हो ? और न प्रेमी को यह ख्याल आता है, कि ये मैं बार-बार वही बातें क्यों कह रहा हूँ ? बार-बार दोहराने से प्रेम बढ़ता है। प्रेम की बात बार-बार दोहराने से गहन होती है। बार-बार दोहराने से जैसे भँवरा फूल के पास घूमता है, ऐसी गुनगुनाहट प्रेयसी के पास गूंजने लगती है।

जो साधारण प्रेम में होता है, वही परमात्मा के प्रेम में होता है विराट पैमाने पर। पैमाना बदल जाता है, बात वही है।

तो नानक कहे चले जाते हैं। अगर तुम प्रेमी नहीं हो, तो तुम हैरान होओगे कि क्या यह वही बात लंबी किए जा रहे हैं! यह जपुजी तीन शब्दों में पूरा हो जाता है एक 'ओंकार'; या 'एक ओंकार सतनाम'। क्या बार-बार कहे जा रहे हो ? लेकिन बड़ा रस ले रहे हैं। और अगर तुम्हारे भीतर भी भाव का जन्म होगा, तो तुम भी पाओगे, यह पुनरुक्ति बड़ी मधुर है।

एक माँ ने सुना, कि एक बेटा सोने जा रहा है। और उसे कहा गया है कि रोज प्रार्थना कर के सोना। तो उसने कान लगा कर सुना कि वह प्रार्थना कर रहा है कि नहीं ? उसने एक शब्द कहा, और कंबल ओढ़ कर अंदर हो गया। माँ ने कहा, कि इतनी जल्दी प्रार्थना पूरी हो गयी ? उसने कहा, 'रोज-रोज, वही-वही क्या कहना ? मैं रोज कह देता हूँ, 'डिट्टो !' जो कल कहा था, वही। और क्या परमात्मा इतना समझदार नहीं है कि समझ न पाए ?

बुद्धि तो यही कहना चाहेगी, कह दो 'डिट्टो,' क्या बार-बार दोहराना! लेकिन भाव दोहराना चाहेगा। हृदय 'डिट्टो' को जानता ही नहीं। हृदय दोहराता है। दोहरा-दोहरा कर रसलीन होता है। जितना दोहराता है, उतना डूबता है। यह भँवरे की गुनगुन है। और यह गुनगुन बड़ी कीमती है। पर भाव हो, तो ही समझ में आ सकती है।

पर ध्यान रखना, इसलिए नानक अंत में फिर दोहराते हैं कि इस दंभ में मत पड़ जाना कि उसका वर्णन हो सकता है। वैसा दंभ आ जाए, तो गँवारों में गँवार ! वर्णन कर-कर के तुम्हारा अहंकार खो जाए, तो तुम बुद्धिमानों में बुद्धिमान। और वर्णन करते-करते यह अहंकार आ जाए कि मैं वर्णन करने वाला हूँ, मैंने वर्णन कर लिया, जो कोई न कह सका वह मैंने कह दिया; कोई न बता सका, वह मैंने बता दिया, तो फिर गँवारों में गँवार !

● ● ●

सोई सोई सदा सचु साहिबु

प्रवचन १३, दिनांक ३-१२-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : २७

सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले ।
बाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ॥
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे ।
गावहि तुहनो पउणु पाणी वैसंतरु गावे राजा धरम दुआरे ॥
गावहि चितगुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ॥
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे ॥
गावहि इंद इंदासणि बैठे देवतिया दरि नाले ।
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे ॥
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे ।
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले ॥
गावनि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले ।
गावनि रतनि उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ।
गावहि खंड मंडल वरमंडा करि करि रखे धारे ॥
सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ।
होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किया विचारे ॥
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ।
है भी होसी जाई न जासी रचना जिनि रचाई ॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ।
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ।
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥

एक सूफी कहानी है। एक सम्राट अपने वजीर पर नाराज हो गया। और उसने अपने वजीर को आकाश-छूती मीनार में कैद कर दिया। वहाँ से कूद कर भागने का कोई उपाय न था। कूद कर भागता तो प्राण ही खो जाते। लेकिन वजीर जब कैद किया जा रहा था, तब उसने अपनी पत्नी के कानों में कुछ कहा।

पहली ही रात पत्नी मीनार के करीब गयी। उसने एक साधारण सा कीड़ा दीवार पर छोड़ा और उस कीड़े की मूँछों पर थोड़ा सा मधु लगा दिया। कीड़े को मधु की गंध आयी। मधु को पाने के लिए कीड़ा मीनार की तरफ, ऊपर की तरफ सरकने लगा। मूँछ पर लगा था मधु, तो गंध तो आती ही रही। और कीड़ा मधु की तलाश में सरकता गया। उस कीड़े की पूँछ से एक पतला रेशम का धागा पत्नी ने बाँधा हुआ था। सरकता-सरकता कीड़ा उस तीन सौ फीट ऊँची मीनार के आखिरी हिस्से पर पहुँच गया। वजीर वहाँ प्रतीक्षा कर रहा था। कीड़े को उठा लिया, पीछे बँधा हुआ रेशम का धागा पहुँच गया। रेशम के धागे में एक पतली सी सुतली बाँधी। सुतली में एक मोटा रस्सा बाँधा था, और वजीर रस्से के सहारे उतर कर कैद से मुक्त हो गया।

कहानी कहती है, कि वजीर न कि इस कैद से मुक्त हुआ, बल्कि उसे उस मुक्त होने के ढंग में जीवन की आखिरी कैद से भी मुक्त होने का सूत्र मिल गया।

पतला सा धागा भी पकड़ में आ जाए तो छुटकारे में कोई बाधा नहीं है। पतले से पतला धागा भी मुक्ति का मार्ग बन सकता है। लेकिन धागा पकड़ने में आ जाए! एक छोटी सी किरण पहचान में आ जाए, तो उसी किरण के सहारे हम सूरज तक पहुँच सकते हैं।

सभी धर्म, सभी गुरु किसी पतले से धागे को पकड़कर परमात्मा तक पहुँचे हैं। वे धागे अनेक हो सकते हैं। अनेक तरह के कीड़ों पर धागा बाँधा जा सकता है। और जरूरी नहीं कीड़े की मूँछों पर मधु ही लगाया जाए; कुछ और भी लगाया जा सकता है। वे गौण बातें हैं। असली बात यह है कि धागा कैदी तक पहुँच जाए। धागा ही फिर सेतु बन जाता है मुक्ति तक।

नानक ने जो धागा पकड़ा है, वह धागा है बड़ा साफ और बहुत स्पष्ट। लेकिन चूँकि हम बहरे और अंधे हैं, इसलिए हमें सुनायी नहीं पड़ा।

जीवन को तुम गौर से देखोगे तो अस्तित्व में जो सबसे ज्यादा प्रकट बात दिखायी पड़ती है वह है, 'गीत'। पक्षी अभी भी गा रहे हैं। सुबह होते ही गीत पक्षियों का शुरू हो जाता है। हवाओं के झोंके वृक्षों से टकराते हैं और गाते हैं। पहाड़ों से झरने गिरते हैं और नाद उत्पन्न होता है। आकाश में बादल आते हैं और तुमुल-घोष होता है। नदियाँ बहती हैं। सागर की तरंगें तटों से टकराती हैं। अगर जीवन को चारों तरफ तुम गौर से देखो और सुनो, तो तुम्हें पूरा अस्तित्व गाता मालूम पड़ेगा।

गीत से ज्यादा स्पष्ट अस्तित्व में और कोई बात नहीं है। सिर्फ जब जीवन शांत हो जाता है, मृत हो जाता है, तभी गीत बंद होता है। जब कोई मर जाता है, ध्वनि खोती है। अन्यथा जीवन में तो ध्वनि है। लेकिन आदमी बहरा है। इसलिए साफ धागा हाथ में होते हुए भी पकड़ में नहीं आता।

अगर जीवन इतना गीत से भरा है तो इस गीत के पीछे परमात्मा का हाथ होगा। और इस गीत में छिपा हुआ कहीं न कहीं परमात्मा है। अगर हम भी गा सकें, अगर हम भी इस गीत में लीन हो सकें, तो धागा हाथ में आ जाएगा। गीत में लीन होना धागा है। फिर इस संसार की कैद से परमात्मा के मोक्ष तक जाने में देर नहीं।

नानक ने गीत को साधना का माध्यम बनाया है। तुम्हें भी जब तुम गाते हो तब एक मस्ती पकड़ने लगती है। तब एक नशा छाने लगता है। लेकिन लोग गाने से डर गये हैं। कोई पक्षी इसकी चिंता नहीं करता है, कि उसकी ध्वनि मधुर है या नहीं; आदमी बहुत भयातुर हो गया है। थोड़े से लोग गा सकते हैं जिनकी ध्वनि बहुत मधुर हो। बाकी लोग ज्यादा से ज्यादा स्नानगृह में थोड़ा गुनगुनाते हैं। वह भी डरे-डरे! स्नानगृह में गुनगुनाते हैं, क्योंकि कोई देखने वाला नहीं, कोई सुनने वाला नहीं। और ध्यान रखना, स्नान से भी तुम्हें इतनी ताजगी नहीं मिलती, जितना गुनगुनाने से मिलती है। क्योंकि स्नान तो शरीर को ऊपर-ऊपर ही छूता है, गुनगुनाहट भीतर उतर जाती है। और जो आदमी गुनगुनाना

नहीं जानता, उस आदमी के सभी संबंध परमात्मा से टूट गये। वह अस्तित्व से दूर हो गया, वह जीते जी मुर्दा है।

कबीर ने कहा है कि 'ई मुर्दन के गाँव'। हमारे गाँव के लिए कहा, कि ये मुर्दों के गाँव हैं। जिंदगी का गीत यहाँ गूँजता ही नहीं। न कोई नाचता है अहोभाव में, न कोई गाता है आपूर हृदय से। न कोई डूब जाता है अपने गीत में।

यह सवाल नहीं है कि स्वर मधुर है या नहीं। क्योंकि गीत कोई बाजार में बेचने के लिए नहीं, गीत तो अहोभाव के लिए है। और गीत की असली सार्थकता उसके माधुर्य में नहीं, उसकी लीनता में है। तुम उसमें लीन हो सकते हो। तुम उसमें इतना लीन हो सकते हो कि तुम बिलकुल मिट ही जाओ। तुम बचो ही न और गीत ही बचे। गुनगुनाहट रह जाए और कर्ता खो जाए। गीत ही बचे और गायक समाप्त हो जाए। यह हो सकता है। और यह सरलतम है। इससे ज्यादा सरल धागा तुम न पा सकोगे। पक्षी गा लेते हैं, पौधे गुनगुना लेते हैं, झरने गाते हैं, तुम इतने असमर्थ हो क्या, कि झरनों का मुकाबला भी न कर सको? कि पक्षियों का मुकाबला भी न कर सको? कि वृक्षों से भी होड़ न ले सको?

लेकिन तुम डर गये हो। और तुमने गीत को बाजार में खड़ा कर दिया है। तुम गीत को बेचते हो। और फिर एक मजेदार घटना घटी है, कि जब गीत बिकता है, तो सभी नहीं गा सकते। क्योंकि तब गीत जीवन का सहज कृत्य नहीं रह जाता। बाजार की सामग्री हो गयी। फिर तुम सोचोगे कि ध्वनि योग्य है या नहीं! शिक्षण हुआ या नहीं! तुमने संगीत सीखा है या नहीं! कोई झरना संगीत सीखने नहीं जाता। संगीत तो जीवन की सहज सरिता है। सीखने का कोई सवाल नहीं। संगीत तो वहाँ अनसीखा मौजूद है।

सिर्फ थोड़ी हिम्मत जुटाने की जरूरत है। थोड़े पागल होने की हिम्मत चाहिए, और संगीत फूट पड़ेगा। और जब पक्षी विश्वविद्यालय में नहीं जाते, तो तुम्हें जाने की क्या जरूरत है? लेकिन पक्षियों को चिंता नहीं कि कौन क्या कहता है? पक्षियों को यह विचार नहीं, कि बाजार में बिकेगा यह गीत, या नहीं? पक्षी आनंद से गाते हैं।

चूँकि हम बेचते हैं गीत को, धीरे-धीरे एक दूसरी दुर्घटना घटती है। और वह यह, कि फिर हम गा तो नहीं सकते हम सिर्फ सुन सकते हैं। तब पैसिविटी पैदा होती है। तब कोई गाता है और हम सुनते हैं, कोई नाचता है और हम देखते हैं। तुम सोचो जरा, यह बड़ी दीनता है। और किसी दिन ऐसा जरूर आ जाएगा, जब कोई प्रसन्न होगा, हम देखेंगे।

तुम फर्क समझते हो ? कोई प्रसन्न होता है तुम देखते हो इसमें, और तुम प्रसन्न होते हो, अंतर दिखायी नहीं पड़ता ? कोई प्रेम कर रहा है और तुम देखते हो इसमें, और तुम प्रेम करते हो, इसमें तुम्हें भेद नहीं मालूम पड़ता ? देखने से कभी कोई प्रेम को जान सकेगा ? प्रेम तो करके ही जाना जा सकेगा।

दूसरा गा रहा हो, कोकिल-कंठ हो, बड़ा संगीतज्ञ हो, लेकिन तुम सुन कर तुम न जान सकोगे। यह तो उधार हो गया। कोई दूसरा गा रहा है, तुम मुर्दे की भाँति बैठे सुन रहे हो। इससे संगीत से तुम्हारा संबंध न जुड़ेगा। संगीत में उतरने के लिए तुम्हें सक्रिय होना पड़ेगा। नाच कर ही नाच जाना जा सकता है, देखकर नहीं। देखना तो सब्स्टीटयूट है, वह तो परिपूरक है। वह तो झूठा है। असली नहीं है, प्रामाणिक नहीं है।

और आदमी धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सभी चीजें दूसरों पर छोड़ दिया है। कोई दूसरे करते हैं, तुम देख लेते हो। कोई खेलता है, लाखों लोग देखते हैं। कोई नाचता है, हजारों लोग देखते हैं। कोई गाता है, हजारों लोग सुनते हैं। न तुम गाते हो, न तुम खेलते हो, न तुम नाचते हो। तुम्हारे जिंदा रहने का प्रयोजन क्या है ? तुम जिंदा क्यों हो ? सभी काम विशेषज्ञ पूरा कर देते !

और मजे की बात यह है कि देखने वाले को भी वह उपलब्धि नहीं हो पाती और वह जो कर रहा है उसे भी नहीं हो पाती। क्योंकि उसकी नजर पैसे कमाने पर है। वह भी नाच आत्मा का नहीं है ; और वह भी नाच सिर्फ ऊपर की कुशलता का है। उसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह नाच रहा ही नहीं। उसके भीतर भी नाच इतने गहराई तक नहीं उतरता कि उसमें वह डूब जाए। क्योंकि उसकी नजर पैसे पर लगी है।

ऐसा हुआ ; कि अकबर ने तानसेन को पूछा कि तुम्हारे गुरु को मैं मिलना चाहता हूँ। क्योंकि कल रात जब तुम गाकर विदा हुए, तो मेरे मन में ऐसा भाव था, कि तुमसे श्रेष्ठ गायक न तो कभी हुआ है, और न होगा। तुम परम हो। तुम आखिरी हो। लेकिन जब मैं यह सोच रहा था तभी मुझे ख्याल आया कि तुमने भी किसी से सीखा होगा। कोई होगा तुम्हारा गुरु। तो मेरे मन में जिज्ञासा उठ गयी कि कौन जाने तुम्हारा गुरु तुम से आगे हो। तो मैं तुम्हारे गुरु को मिलना चाहूँगा। मैं तुम्हारे गुरु को भी सुनना चाहूँगा।

तानसेन ने कहा, जरा कठिन है। गुरु मेरे हैं, और अभी जीवित हैं। सुनना भी हो सकता है, लेकिन बड़ी कठिनाई है। उन्हें दरबार नहीं बुलाया जा सकता। फरमाइश पर वे नहीं जाते। उनका गान तो पक्षियों जैसा है। तुम कोयल से कितनी ही प्रार्थना करो, कि गाओ। तुम्हारी प्रार्थना की वजह से ही, कोयल गा रही होगी तो चुप हो जाएगी, कि क्या मामला है ? वे जब गाते हैं तभी सुना जा

सकता है। तो अगर आप उनको सुनना चाहते हैं तो हमें ही उनके झोंपड़े के पास चलना पड़ेगा। और वह भी छिप कर ही सुना जा सकता है। क्योंकि हम पहुँचेंगे तो वे शायद रुक जाएँ। तो मैं पता लगाऊँगा कि अभी कब गाते हैं वे ! क्योंकि जब वे गाते हैं, तो हम छिपे रहेंगे।

पता चला कि वे रात तीन बजे उठते हैं। वे तो फकीर हैं। हरिदास उनका नाम था। वे तीन बजे उठते हैं। यमुना के तट पर उनका झोंपड़ा है। अब वहीं वे अपने झोंपड़े में गाते हैं। अपनी मस्ती में गाते हैं। वही गीत पक्षियों का है। उस गीत का किसीसे कुछ लेना-देना नहीं है।

अकबर और तानसेन रात दो बजे जाकर झोंपड़े के पास छिप गये। तीन बजे संगीत शुरू हुआ। अकबर मूर्ति की तरह ठगा रह गया। आँख से झर-झर आँसू की धार लग गयी। जब वापिस लौटे अपने रथ में, तो रास्ते भर तानसेन से कुछ बोल न सका। ऐसा भावविभोर हो गया। भूल ही गया तानसेन को।

महल में उतरते इतना ही कहा, कि अब मैं सोचता था कि तेरा कोई मुकाबला नहीं है। और आज मैं सोचता हूँ कि तेरे गुरु के सामने तू तो कुछ भी नहीं है। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इतना फर्क क्यों ?

तानसेन ने कहा, कि फर्क पूछने की भी जरूरत है क्या ? मैं आप के लिए गाता हूँ, मेरे गुरु परमात्मा के लिए गाते हैं। और जब मैं गाता हूँ तो मेरी नजर लगी है पुरस्कार पर, कि क्या मिलेगा ? मैं गाता हूँ ताकि कुछ मिले। मेरा गाना व्यवसाय है। मेरे गुरु कुछ पाने के लिए नहीं गाते हैं। ठीक स्थिति उलटी है। मेरे गुरु तभी गाते हैं, जब उन्हें कुछ मिला होता है। जब वे इतने भरे होते हैं परमात्मा के भाव से, जब उन्हें कुछ मिला होता है, जब उनका कंठ भरा होता है, जब उनके हृदय में लहरें उठ रही होती हैं, जब वे आपूर होते हैं उसके दान से, तब बहते हैं। उन्हें जब कुछ मिला होता है, तब वे गाते हैं। गाना उनकी छाया की तरह है। मिलना पहले है, गीत बाद में है। और मैं गाता हूँ, मिलना पीछे है। तो कर्म-फल पर मेरी नजर लगी है। और इसलिए मैं क्षुद्र हूँ। आप ठीक कहते हैं। मेरे गुरु से मेरा क्या मुकाबला ? मैं कितना ही कुशल हो जाऊँ, मेरे हाथ कितने ही सध जाएँ, मेरा गला कितना ही प्रवीण हो जाए, लेकिन आत्मा उसमें प्रवेश न पा सकेगी। मैं विशेषज्ञ रहूँगा और मेरे गुरु कोई विशेषज्ञ नहीं हैं। उनका गीत एक पक्षी का गीत है।

तो तुम जिन्हें सुनते हो उनका गीत व्यवसाय है। सुनने वाला खाली, व्यर्थ बैठा है। निष्क्रिय है। गाने वाला व्यवसायी है। तुम परमात्मा के गीत से बिलकुल दूर ही चले गये। जो चित्रपट पर प्रेम का प्रदर्शन कर रहा है उसके लिए प्रेम

धंधा है। वह उस प्रेम में जो भी कर रहा है वह अभिनय है। और देखने वाला निष्क्रिय बैठा है, अपनी कुर्सी में बँधा हुआ।

जीवन के सत्य सक्रियता से जाने जा सकते हैं। जीवन के सत्यों में तुम्हें उतरना पड़ेगा। कोई दूसरा तैरेगा तो तैरने का आनंद तुम कैसे ले पाओगे? थोड़ा सोचो! जब देखने से इतना सुख मिलता है, तो हो जाने से कितना सुख न मिलता होगा!

गाओ, नाचो, भूल जाओ सारे जगत को। उसकी याद ही तो तुम्हें नाचने नहीं देती और गाने नहीं देती। और तब तुम परमात्मा के द्वार पर खड़े हो।

नानक बड़े मधुर शब्दों में यह बात कहते हैं। वे कहते हैं,

'सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले।'

वह द्वार कहाँ है? वह घर कहाँ है? जहाँ बैठ कर तू सबकी सम्हाल कर रहा है? तेरे घर का द्वार कहाँ खोजूँ? जिसके भीतर छिपा, तू सबको सम्हाले ए है। और उत्तर देते हैं——

'बाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ।।
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे।'

'वह द्वार कहाँ, वह घर कहाँ, जहाँ बैठकर तू सबकी सम्हाल करता है?' यह प्रश्न है। और उत्तर देते हैं,

"अनेक नाद बज रहे हैं, और कितने असंख्य बजानेवाले हैं। असंख्य गायक हैं, अनंत राग-रागिनियाँ हैं। पानी और अग्नि और पवन यश गा रहे हैं। और धर्मराज तेरे द्वार पर बैठ कर गीत गा रहा है। चित्रगुप्त भी, शिव, ब्रह्मा, देवी सभी तेरा गान कर रहे हैं। इंद्रासन पर बैठे इंद्र गाते हैं। देवता तेरे द्वार पर बैठे गा रहे हैं। समाधि में बैठ कर सिद्ध और ध्यान में बैठ कर साधु गाते हैं।

नानक पूछते हैं, कहाँ तेरा द्वार? कहाँ तेरा घर? और तत्क्षण कहते हैं, अनेक नाद बज रहे हैं, कितने असंख्य बजाने वाले हैं।

नानक कह रहे हैं, तेरा द्वार है। नाद में छिपा ही तू सारे जगत को सम्हाले हुए है। 'ओंकार' तेरा द्वार। उसीमें छिपा हुआ तू सारे जगत को सम्हाले हुए है। और अगर गीत की एक कड़ी तुम्हें पकड़ जाए, तो उस धागे को पकड़कर उस परमात्मा के द्वार तुम जा सकोगे। नाद जब तुम्हारे भीतर बजेगा, जब तुम नाद में लीन हो जाओगे, उसी क्षण द्वार के सामने अपने को पाओगे।

'सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले।
बाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ।।
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे।'

कितने राग, कितनी रागिनियाँ, कितने नाद, कितने गायक! यही तेरा द्वार है। सुबह से साँझ तक, साँझ से सुबह तक असंख्य राग बज रहे हैं।

तुम जीवन में उन रागों को पहचानना शुरू करो। मनुष्य का सारा संगीत अस्तित्व के रागों से पैदा हुआ है। मनुष्य के सारे वाद्य अस्तित्व की नकल से पैदा हुए हैं। पक्षी गाते हैं, झरने गाते हैं, हवाएँ गाती हैं, आकाश में बादल गरजते हैं, इन्हीं सबसे नाद पैदा हुए। मनुष्य के सारी राग-रागिनियाँ पैदा हुईं। इनसे ही सारे वाद्य निर्मित हुए।

अस्तित्व में राग को पहचानने की कोशिश करो। सुबह उठकर पहला ध्यान सारी हो रही ध्वनियों पर डालना। और अगर तुम्हें ध्वनियाँ सुनायी पड़ने लगें, तो तुम पाओगे कि वे दिन भर तुम्हें सुनायी पड़ती रहेंगी। क्योंकि वे सदा जारी हैं। सिर्फ तुम बहरे हो।

रात के सन्नाटे में बैठ जाना और सुनना सन्नाटे को। सन्नाटे का नाद बहुत निकट है अहंकार के। इसलिए जब भी तुम्हारे भीतर ओंकार बजेगा तो पहले तो तुम्हें सन्नाटे का नाद ही सुनायी पड़ेगा। सन्नाटे की झाँई; जैसे झींगुर बोलते हों और रात बिल्कुल चुप हो, वैसी झाँई तुम्हें पूरे वक्त सुनायी पड़ने लगेगी——चौबीस घंटे! बाजार में, दुकान पर, दफ्तर में तुम पाओगे कि वह झाँई बजती ही जाती है। क्योंकि वह बज ही रही है। बाजार के शोरगुल में दब जाती है, बजना बंद नहीं होता। उपद्रव में खो जाती है, समाप्त नहीं होती। और तुम्हें पकड़ने आ जाए, तो तुम उसे भी पहचान लोगे। और जैसे-जैसे तुम्हारी पकड़ साफ होती जाएगी, और पहचान निखरेगी, वैसे-वैसे तुम पाओगे चौबीस घंटे, अहर्निश उसके द्वार पर राग-रागिनियों का मेला लगा हुआ है।

ध्यान रखो, जिन्होंने भी उसे जाना है उन्होंने उसे 'सच्चिदानंद' कहा है। जब भी कोई आनंद से भर जाता है, तो गीत से भर जाता है। गीत और आनंद में बड़ा नैकट्य है। बड़ी समीपता है। दुःख में कोई नहीं गाता, सिवाय फिल्मों को छोड़ कर! दुःख में आदमी रोता है, गाता नहीं है। दुःख में आँसू बहते हैं, गीत नहीं। जब कोई आल्हादित होता है, आनंदित होता है, तब गाता है। और तब अगर आँसू भी बहें, तो भी उन आँसुओं में गीत होता है। आनंद के क्षण में तुम जो भी करोगे उसमें गीत होगा। उसमें गीत की झनक होगी। तुम्हारे उठने-बैठने में गीत होगा। तुम्हारे चलने-फिरने में गीत होगा। तुम्हारी श्वाँस लेने और छोड़ने में गीत होगा। तुम्हारे हृदय की धड़कन में नाद होगा। जैसे-जैसे तुम आनंद के करीब पहुँचते हो, वैसे-वैसे गीत के करीब पहुँचते हो। निश्चित ही गीत उसका द्वार है। क्योंकि भीतर परमानंद है।

ऐसी भी घड़ी आती है जब गीत भी बंद हो जाता है। क्योंकि गीत भी द्वार है। क्योंकि जब तुम द्वार के भीतर प्रविष्ट हो जाते हो, तो गीत खो जाता है। क्योंकि ऐसी घड़ी भी आती है जब गीत भी बाधा मालूम पड़ता है। तब उसका ही गीत चलता है, तुम्हारा गीत बिल्कुल खो जाता है। तब तुममें अनंत ध्वनियाँ गूँजती हैं। तुम्हारी अपनी कोई ध्वनि नहीं होती। तुम सूने घर हो जाते हो।

हमने मंदिर इस ढंग से बनाए थे कि उनमें आवाज गूँजे। आवाज गूँजने को ध्यान में रखा था। मंदिर का पूरा स्थापत्य उसकी पूरी आवाज की गूँजने को ध्यान में रख कर बनाया था। वह इस खबर को देने के लिए कि एक तो मंदिर खाली है। उसमें हम कुछ रखते नहीं। वह खाली होना ही चाहिए। क्योंकि वह हमारी आखिरी अवस्था का प्रतीक है। वहाँ हम बिल्कुल खाली हो जाएँगे और जहाँ नाद गूँजेगा। मंदिर के द्वार पर ही हमने घंटा लटकाए रखा था। जो भी आए पहले घंटे को बजाए, क्योंकि द्वार पर नाद है।

ये सब प्रतीक हैं। उस परमद्वार से बिना घंटा बजाए कोई मंदिर में प्रवेश न करे। क्योंकि नाद में ही प्रवेश है। और घंटे की यह खूबी है कि तुम बजा दो, तो भी वह गूँजता रहता है, और जब तुम प्रवेश करते हो मंदिर के द्वार में तब घंटे का नाद गूँजता रहता है। उस नाद में ही मंदिर में प्रवेश करने की व्यवस्था है। बिना बजाए कोई प्रवेश न करे।

क्योंकि वैसे ही नाद में, तुम परमात्मा में भी प्रवेश करोगे। परमात्मा का घर है। यह मंदिर उसका प्रतीक घर है। वहाँ तुम्हें घंटा न बजाना पड़ेगा, वहाँ नाद बज ही रहा है। लेकिन हमने प्रतीक में भी व्यवस्था की थी। फिर जब तुम वापिस मंदिर से लौटो द्वार पर, फिर घंटा बजाना। गूँजते नाद में ही वापिस लौटना। पूजा है, प्रार्थना है, वह घंटा-नाद से ही शुरू होती है।

नानक कहते हैं, 'अनेक नाद बज रहे हैं। कितने असंख्य बजाने वाले हैं।'

और नानक ऐसे नहीं कह रहे हैं, जैसे कहीं दूर से वर्णन कर रहे हों; जैसे द्वार पर खड़े हैं। इसलिए जो शब्द उन्होंने उपयोग किए हैं वे सीधे हैं।

'वह द्वार कहाँ ? वह घर कैसा ? जहाँ तू बैठ कर सबकी सम्हाल कर रहा है। अनेक नाद बज रहे हैं। कितने असंख्य बजाने वाले हैं।'

जैसे यह सब नानक की आँख के सामने हैं।

'असंख्य गायक, अनंत राग-रागिनियाँ, पवन, पानी, अग्नि तेरा यश गाते हैं। धर्मराज भी तेरे द्वार पर बैठ कर गाते हैं।'

थोड़ा समझें। क्योंकि धर्मराज का तो काम ही धर्म और अधर्म का भेद करना है। धर्मराज का अर्थ है नीति की पराकाष्ठा। वे नीति के देवता हैं। क्या

शुभ है, क्या अशुभ है, उसकी ही बारीक खोज करना, शुभ-अशुभ का निर्णय करना ही धर्मराज की व्यवस्था है। नानक कहते हैं, उनको भी मैं देख रहा हूँ कि वे भी तेरे द्वार पर बैठे गीत गा रहे हैं।

क्योंकि धर्मराज से ज्यादा गंभीर आदमी तो खोजा नहीं जा सकता। धर्मराज का अर्थ ही यह है, बहुत गंभीर होगा। इंच-इंच सोचेगा, कि क्या ठीक, क्या गलत; क्या करूँ, क्या न करूँ; क्या करने योग्य, क्या न करने योग्य! उनको भी देखता हूँ, कि वे भी मस्ती में गीत गा रहे हैं। तेरे द्वार पर धर्मराज तक गीत गा रहे हैं।

चित्रगुप्त भी गीत गा रहे हैं, जिनका सारा काम ही पाप-पुण्य लिखना है। पाप-पुण्य का जो हिसाब-किताब रखता हो, वह क्या गीत गाएगा !

अदालत में देखते हैं, मैजिस्ट्रेट कैसा बैठा होता है ! ये छोटे-मोटे चित्रगुप्त हैं ! अकड़ कर बैठा रहता है। कपड़े भी उसके हम उस तरह के बनाते हैं—काले, कि गंभीरता की, मौत की खबर दें। पुरानी व्यवस्था तो यही थी कि मैजिस्ट्रेट जब अदालत में बैठे तो वह सफेद बालों का 'विग' पहने। काले कपड़े, सफेद बाल, वह भी विग—सब झूठा। और चेहरे पर गंभीरता; वह हँसे न। अदालत में हँसना तो अदालत की तौहीन। सजा दी जा सकती है कि कोई अदालत में हँसे। वहाँ गान कैसा ! गीत कैसा ! और चित्रगुप्त यानी आखिरी अदालत।

नानक कहते हैं, कि देखता हूँ, कि चित्रगुप्त भी गीत गा रहे हैं। जैसे सारी गंभीरता मिट गयी तेरे द्वार पर। तेरा द्वार उत्सव का द्वार है।

इसे थोड़ा समझ लेना। क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि जीवन के पाप-पुण्य का हिसाब लगाते-लगाते तुम बहुत गंभीर हो जाओ। जो गंभीर हुआ, उसने खोया। जीवन में क्या ठीक है, क्या गलत है, इसीमें उलझे-उलझे तुम सिकुड़ मत जाना, सूख मत जाना। क्योंकि उसके द्वार पर सूख गये, जड़ हो गये, गंभीर हो गये लोगों का प्रवेश नहीं है। उदासी का वहाँ प्रवेश नहीं है। वहाँ तो नाचते हुए की गति है। वहाँ तो गीत गाता ही प्रवेश पा सकेगा। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है, कि तुम्हारे तथाकथित साधु उससे सदा दूर रह जाते हैं। क्योंकि वे अति-गंभीर हो गये हैं।

एक बात समझ लें; गंभीरता हमेशा अहंकार का हिस्सा है। गंभीर आदमी और निरहंकारी न हो सकेगा। गंभीर आदमी तो अहंकारी होगा ही। और अहंकारी आदमी भी गंभीर होगा, अकड़ा हुआ होगा। छोटे बच्चे जैसी सरलता वहाँ न होगी।

और नानक का तो नाम ही निरंकारी था। 'नानक निरंकारी' उनका पूरा नाम है। और मर्दाना सदा तैयार है वाद्य को छेड़ देने को। और नानक बोलते

नहीं; गाते हैं। तुम कितना ही गंभीर प्रश्न पूछो, उनका उत्तर प्रसन्नता है। तुम कितनी ही गहरी बात पूछो, उनका उत्तर उत्सव है। वे गा कर ही उत्तर देते हैं। मर्दाना वाद्य छेड़ देता है। और नानक गाना शुरू कर देते हैं। किसी विशेष कारण से उन्होंने यह विधि चुनी। क्योंकि उसके द्वार पर वाद्य बज रहा है, नाद बज रहा है।

उत्सव धार्मिक आदमी का लक्षण है। लेकिन तुम साधारण धार्मिक आदमी को देखो, तो तुम उन्हें उत्सव से बिलकुल विपरीत पाओगे। तुम उन्हें बिलकुल अकड़ा हुआ पाओगे। और तुम उनकी आँखों में गीत नहीं देखोगे, क्योंकि उनकी आँखों में निंदा है। बुरे और भले का विचार करते-करते वे जड़ हो गये हैं। वे इसी सोच-सोच में मरे जा रहे हैं—गीत की फुर्सत किसे? कि क्या ठीक है और क्या गलत? यह खाना खाएँ या न खाएँ? इतने बजे उठें या न उठें? यह कपड़ा पहनना कि नहीं पहनना? उनका चौबीस घंटे अनुशासन की जड़ता में जकड़ा हुआ है।

निश्चित ही उत्सव का भी एक अनुशासन है, लेकिन वह अनुशासन ऊपर से थोपा हुआ नहीं है। उत्सव का भी अनुशासन है, लेकिन वह भीतर से जन्मता है। वह एक 'इनर डिसिप्लिन' है। उदासी का भी एक अनुशासन है, जो ऊपर से थोपा जाता है। भीतर कुछ भी हो, लेकिन चेहरे को तुम गंभीर करके बैठ जाते हो। शरीर को तुम मुर्दा कर लेते हो। ये धार्मिक आदमी के लक्षण नहीं हैं। सच तो यह है, कि ये बहुत भयभीत आदमी के लक्षण हैं। यह आदमी इतना डरा हुआ है, कि हँस भी नहीं सकता। क्योंकि हँसा तो इसे डर है, यह किसी पाप में उतर जाएगा। हँसी पाप हो गयी है। और उदासी और लंबे चेहरे पुण्य के प्रतीक हो गये हैं।

नानक की विधि में उत्सव है, संगीत है। और इसी उत्सव के सूत्र को पकड़ कर उसके द्वार पर कोई प्रवेश कर सकता है।

कहते हैं, 'समाधि में बैठ कर सिद्ध और ध्यान में बैठ कर साधु गा रहे हैं। यती, सती, संतोषी, महान शूरवीर गा रहे हैं। पंडित, विद्वान, ऋषीश्वर और उनके वेद युग-युग से तुझे ही गाते हैं। मन को मोहनेवाली स्वर्ग की अप्सराएँ तेरा गुणगान करती हैं। और पाताल-पाताल की मछलियाँ भी तेरे ही गीत गाती हैं। स्वर्ग से लेकर पाताल तक तेरे गीत के अतिरिक्त और कोई धुन नहीं है। तेरे उत्पन्न किये चौदह रत्न गाते हैं, अड़सठ तीर्थ गाते हैं, योद्धा, महाबली, शूरवीर गाते हैं। चार योनियों के जीव गाते हैं, जो तेरे द्वारा उत्पन्न और धारण किए गये हैं। वे खंड, मंडल, ब्रह्मांड तेरा ही गीत गाते हैं। जो तुझे भाते हैं, और तुझमें अनुरक्त हैं, वैसे रसिक भक्त तेरा यशोगान करते हैं।'

नानक थकते नहीं कहते, कि तेरा गीत चल रहा है समस्त में। सब तरफ से अस्तित्व एक सेलीब्रेशन है, एक उत्सव है। परमात्मा हँस रहा है, रो नहीं रहा है। रोती शकलें उसे भाती ही नहीं। उदासी का अस्तित्व से क्या लेना-देना? उदास होने का अर्थ ही यह है, कि तुम अस्तित्व से कहीं टूट गये। कहीं परमात्मा के विपरीत पड़ गये।

जब तुम्हारे जीवन में उदासी छा जाए, तो जानना कि तुमने कोई कदम गलत लिया। जब तुम दुःख से भर जाओ तो जानना कि तुम कहीं भटके। दुःख तो केवल सूचक है। दुःख को तुम जीवन की विधि मत बना लेना। दुःख को जीवन की शैली मत बना लेना। आत्मपीड़क मत बन जाना। क्योंकि आत्मपीड़क होना तो एक रोग है। मनोवैज्ञानिक उसको एक खास नाम देते हैं। वे कहते हैं 'मैसोचिसम'। ऐसे लोग हैं, जो खुद को दुःख देने के रोग से पीड़ित हैं।

मैसोच एक लेखक हुआ, जिसके नाम पर मैसोचिसम रोग पैदा हुआ। मैसोच खुद को ही मारता था। कोड़ों से मारता था, काँटे चुभाता था, लहू निकाल लेता था। मैसोच ने घाव बना रखे थे अपने हाथ में, पैरों में। अपने जूतों में उसने खीले लगा रखे थे अंदर की तरफ। वह चलता तो घाव में चुभते रहते।

ऐसे मैसोचिस्ट तुम सब जगह पाओगे। काशी में तुम उन्हें काँटों पर लेटा हुआ पाओगे। ये आत्मपीड़क हैं। ये बीमार हैं। तुम इन्हें उपवास करते हुए, सड़ते, गलते पाओगे। जगह-जगह मठों में, मंदिरों में इस तरह के रुग्ण लोग बैठे हुए हैं। और लोग उनकी पूजा भी करेंगे।

क्यों? क्योंकि एक दूसरी बीमारी है। जिसको मनोवैज्ञानिक 'सॅडिजम' कहते हैं। दूसरे को दुःख में देखने में दूसरे लोगों को रस आता है। इन दोनों का बड़ा मेल बैठ जाता है। दुःख देनेवाले लोग हैं, और दूसरे को दुःख मिले इसमें रस लेनेवाले लोग हैं। वह तुम ध्यान रखना, जब तुम किसी दुःखी, उदास और अपने को सताने वाले आदमी को आदर देते हो, तो तुम भी बीमार हो। वह बीमार है एक बीमारी से, और तुम्हारी बीमारी दूसरी बीमारी है। लेकिन दोनों बीमारियाँ एक दूसरे से मेल खाती हैं। इसलिए तुम इन दुष्टों के पास, जो अपने को सता रहे हैं, दूसरे तरह के दुष्टों की जमात पाओगे, जो इनको सताने में मजा ले रहे हैं। वे कहेंगे, 'आह! कैसी तपश्चर्या है। धन्य, कि आप काँटों पर लेटे हैं।' और इस तरह वे उनके अहंकार को फुसला रहे हैं। और उनको सहारा दे रहे हैं।

ध्यान रखना, कभी किसी आदमी को दुःख में देख कर कोई सहारा मत देना। क्योंकि दूसरे को दुःख में सहारा देना पाप है। वह दूसरे को दुःख देने के बराबर है। वह बड़ी सूक्ष्म तरकीब है। मैं तुम्हारी छाती में छुरा भोंकना चाहता

हूँ, यह पाप है, लेकिन तुम खुद छाती में छुरा भोंक लो तो मैं कहता हूँ, बड़ी कुरबानी की; तुम शहीद हो गये। यह भी पाप है। क्योंकि मैं भी उसमें भागीदार हूँ। जो आदमी काँटों पर लेटा पड़ा है, वह खुद तो भागीदार है ही, वे सब लोग भी, जो उसके पैरों में पैसे चढ़ा जाते हैं और फूल रख जाते हैं, वे भी पाप के भागीदार हैं। क्योंकि वे सब आदमी को सहारा दे रहे हैं, कि तुम पड़े रहो। वे कह रहे हैं, कि तुम बड़े महात्मा हो।

दो तरह के रुग्ण लोग हैं जगत में। खुद को सतानेवाले, और दूसरों को सताने वाले। ये दोनों ही चित्त की अस्वस्थ, परवर्टेड, विकृत स्थितियाँ हैं। इनसे सावधान रहना।

स्वस्थ आदमी न तो दूसरे को सताता है, और न अपने को सताता है। स्वस्थ आदमी सताता ही नहीं। जैसे-जैसे स्वस्थ होता है वैसे-वैसे आनंदित होता है। वह अपना आनंद बाँटता है। और उसका आदर हमेशा आनंद के लिए होगा। जब तुम किसी आदमी को नाचते देखो, तब उसके पैर में फूल चढ़ा आना। लेकिन यह तुमने कभी नहीं किया है। नहीं तो दुनिया के आश्रम भिन्न होते। मठ भिन्न होते। वहाँ उत्सव होता, वहाँ गीत होते, वहाँ नृत्य होता।

लेकिन वहाँ रुग्ण, बीमार आदमी भरे हैं, जिनको पागलखाने में होना चाहिए। और जिनकी मानसिक-चिकित्सा की जरूरत है, वे भरे हुए हैं। तुम्हारे कारण! क्योंकि तुमने उनको आदर दिया, उनके अहंकार को फुसलाया, बड़ा किया। तुमने कभी प्रसन्न आदमी को आदर दिया है?

कल ही एक संन्यासिनी ने मुझे साँझ आकर कहा, कि एक बड़ी हैरानी की घटना घट रही है। और वह यह, जैसे-जैसे ध्यान गहरा हो रहा है, बहुत आनंदित अनुभव करती हूँ। लेकिन आनंद के अनुभव के साथ ऐसा लगता है, कि कोई गलती हो रही है, अपराध हो रहा है। जैसे कुछ गलत रास्ते पर जा रही हूँ। आनंद के भाव के साथ ऐसा प्रतीत होता है।

ऐसा सभी को होगा। क्योंकि बचपन से ही तुम्हें दुःखी होने के लिए तैयार किया गया, आनंदित होने के लिए नहीं। बच्चा अगर उदास बैठा है एक कोने में, तो माँ-बाप कहेंगे, 'बिल्कुल ठीक! राजा बेटा।' और बच्चा अगर नाच रहा है, प्रफुल्लित हो रहा है, तो सारा घर उसका दुश्मन है। 'चुप रहो, शांत बैठो, यह क्या कर रहे हो? बंद करो यह आवाज।' जब भी बच्चा आनंदित है तब कोई न कोई कहनेवाला मिल जाता है, कि बंद करो, यह गलत है। और आँखें और भी ज्यादा कहती हैं, जो कि शब्द नहीं कह पाते। हर जगह बच्चा पाता है, कि जब भी वह प्रसन्न होता है, तब भी कहीं कोई गलती हो जाती है। जब उदास

होता है, तब बिल्कुल सब ठीक चलता है। धीरे-धीरे यह बात अचेतन में बैठ जाती है, कि प्रसन्न होना कुछ भूल है। दुःखी होने में कुछ बड़ा गुण-गौरव है।

तो जब ध्यान में कोई गहरा उतरता है तो उलटी प्रक्रिया शुरू होती है। क्योंकि ध्यान में जैसे-जैसे कोई जाता है, तो प्रसन्नता, और गीत, और परमात्मा के द्वार की तरफ बढ़ा, कि उत्सव पास आता है। जैसे उत्सव पास आता है, दबी हुई वृत्तियाँ सदा की, और दूसरों की आँखें, और निंदा, और निंदा का भाव बीच में खड़ा हो जाता है। वह कहता है, आनंदित हो रहे हो? वह हजार तरह की तरकीब खोजता है। वह दमन का भाव है।

एक मित्र ने मुझे आकर कहा, कि ध्यान तो ठीक लग रहा है। लेकिन एक ख्याल आता है कि जब सारी दुनिया दुःखी है तो अपने को आनंदित करना क्या स्वार्थ नहीं?

अब उन्होंने बड़ी बौद्धिक तरकीब खोजी। वे अपने आनंद से भयभीत हैं। छः महीने पहले आये थे तब वे यही कहते आये थे, कि मैं दुःखी हूँ, किसी तरह आनंद चाहिए। तब उन्हें दुनिया से मतलब न था। अब जब आनंद के करीब आने लगे, और पहला सुराख खुला, और पहली धुन बजने लगी, तब वे भयभीत हो गये। उन्होंने जल्दी से अपने मन को बंद कर लिया। मुझसे बोले, कि मैंने तो ध्यान वगैरह बंद कर दिया है। क्योंकि यह तो बड़ा स्वार्थ मालूम होता है। तो मैंने कहा, 'दुःखी होओ खूब! उससे बड़ी सेवा होगी। रोओ, छाती पीटो, अपने को सताओ, आत्महत्या कर लो, उससे जगत का बड़ा उद्धार होगा!'

तुम्हारे दुःखी होने से कैसे दूसरे का उद्धार होगा? तुम्हारे दुःखी होने से दूसरे का दुःख बढ़ेगा। तुम दुःखी हो, तो तुम इस जगत के दुःख की मात्रा बढ़ा रहे हो। तुम अगर सुखी हो, तो तुम इस जगत के दुःख की मात्रा कम कर रहे हो। और एक भी आदमी अगर सुखी हो, तो उससे ऐसी तरंगें उत्पन्न होनी शुरू हो जाती हैं जो दूसरे को भी सुखी होने में सक्षम बनाती हैं।

एक घर में भी दिया जल रहा हो, तो एक तो, पड़ोसियों को अपने अंधेरे का पता चलता है। और जब एक दिया जल रहा हो, तो जले हुए दिये से बुझे हुए दिये को जला लेने में कितनी कठिनाई है? एक दिया सारे संसार के दिये जला सकता है।

लेकिन मन दुःख के लिए राजी किया गया है। और सारा जगत दो तरह के दुःखी लोगों में विभक्त है। एक जो चाहते हैं दुःखी किये जाएँ, और दूसरे जो चाहते हैं कि कोई मिले जिसको वे सताएँ और दुःख दें। इन दोनों से धर्म का कोई संबंध नहीं। क्योंकि इन दोनों में से किसीको भी गीत सुनायी नहीं पड़ेगा।

ये तो एक ही दुःख के सिक्के के दो पहलू हैं। और दुःख से परमात्मा का कोई नाता नहीं।

तुम्हारा जब नाता टूटता है तभी तुम दुःखी होते हो। बीमारी का अर्थ है, कि इस प्रकृति से तुम्हारा नाता टूटा। दुःख का अर्थ है, कि परमात्मा से तुम्हारा नाता टूटा। शरीर जब प्रकृति से विपरीत चलता है तो बीमारी; और जब चेतना परमात्मा के विपरीत चलने लगती है तो दुःख। जब शरीर प्रकृति के अनुकूल चलता है और साथ-साथ बहता है, तो स्वास्थ्य। और जब आत्मा परमात्मा के साथ-साथ चलती है, अनुकूल बहती है, तो आनंद।

नानक कहते हैं, कि गीत उसके द्वार पर हैं। गीत ही उसका द्वार है। उत्सव उसकी साधना है। यह सारा अस्तित्व नानक कहते हैं, उसके गीत से भरा है। बहरे हो तुम। दिखायी नहीं पड़ता, सुनायी नहीं पड़ता। एक-एक पत्ती पर, एक-एक फूल पर वही लिखा है। इतने रंग उसने लिए हैं। इन सभी रंगों में, इन इंद्रधनुषी रंगों में उसीका तो गान है। उसीका उत्सव है।

'जो तुझे भाते हैं और तुझ में अनुरक्त हैं, ऐसे रसिक भक्त तेरा यशोगान करते हैं।' नानक के शब्द प्यारे हैं --

गावहि तुहनो पउणु पाणी वैसंतरु गावे राजा धरम दुआरे ॥
गावहि चितगुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ॥
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे ॥
गावहि इंद इंदासणि बैठे देवतिया दरि नाले ।
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे ॥
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे ।
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले ॥
गावनि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले ।
गावनि रतनि उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ।
गावहि खंड मंडल वरमंडा करि करि रखे धारे ॥
सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ।
होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किया विचारे ॥

'नानक कहते हैं, कि और कितने तेरा गुणगान करते हैं इसका अनुमान मैं नहीं लगा सकता। मैं क्या विचार करूँ? वही और वही सच्चा साहब है, वही सत्य है, वही सत्यनाम है। वह है, और वह सदा होगा। वह न जाता है, न जाएगा।'

'सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ।
है भी होसी जाई न जासी रचना जिनि रचाई' ॥

वह परमात्मा एक मात्र सत्य है, और शेष सब उस सत्य का उत्सव है।

नानक, माया में जो दंश है उसे अलग कर लेते हैं। माया में जो निंदा का भाव है, उसे अलग कर लेते हैं। और जिस रहस्य को शंकर नहीं खोल पाते उसे नानक खोल लेते हैं। शंकर की वह बड़ी कठिनाई है। क्योंकि शंकर बहुत तर्क-निष्ठ चिंतक हैं। और उनकी पूरी आकांक्षा यह है कि जगत की पूरी व्यवस्था को तार्किक ढंग से समझाया जा सके, गणित के ढंग से समझाया जा सके। वह बड़ी कठिनाई में हैं। माया और ब्रह्म--

एक तरफ तो शंकर जानते हैं कि माया नहीं है। क्योंकि जो नहीं है, उसीका नाम माया है। जो दिखायी पड़ती है और नहीं है, उसीका नाम माया है। और ब्रह्म, जो दिखायी नहीं पड़ता और है। माया सदा परिवर्तनशील है, सपने की भाँति। ब्रह्म सदा सत्य है, शाश्वत है।

शंकर के सामने सवाल है, पूरे अद्वैत-वेदांत के सामने सवाल है; कि माया पैदा कैसे होती? क्यों होती? अगर बिलकुल नहीं है, तब तो सवाल ही क्या है! तब तो किसीको यह भी कहना क्या, क्यों माया में उलझे हुए हो? यह तो नासमझी है। क्योंकि जो है ही नहीं, वह उसमें क्यों उलझेगा? तब यह कहना कि छोड़ो माया, व्यर्थ की बकवास है। क्योंकि जो है ही नहीं, उसे कोई छोड़ेगा कैसे? तो माया है तो! कभी छोड़ना है, कभी पकड़ना है।

और अगर माया है तो बिना परमात्मा के कैसे होगी? उसका सहारा तो होने के लिए चाहिए। सपना भी होगा, तो वह सपना देखते हैं इसलिए। तो बड़ी कठिनाई है अद्वैत-वेदांत के सामने, कि कैसे हल करे इस बात को? अगर परमात्मा ही पैदा कर रहा है माया, तो ये महात्मागण जो लोगों को समझा रहे हैं छोड़ो माया; ये परमात्मा के दुश्मन मालूम पड़ते हैं। और अगर परमात्मा ही पकड़ा रहा है तो हम कैसे छोड़ सकेंगे? हमारा क्या बस? और जब उसकी ही मर्जी है तो उसकी मर्जी ठीक है।

माया आती कहाँ से है? अगर ब्रह्म से ही पैदा होती है, तो जो सत्य से पैदा होती है, वह असत्य कैसे होगी? सत्य से तो सत्य ही पैदा होगा। या अगर माया असत्य है, तो जिस ब्रह्म से पैदा होती है वह असत्य होगा। दोनों एक गुणधर्म के होंगे; या तो दोनों सत्य, या तो दोनों असत्य। शंकर सुलझा नहीं पाते।

लेकिन नानक समझा लेते हैं। दार्शनिक जिसको नहीं सुलझा पाते, उसको भक्त सुलझा लेते हैं। क्योंकि नानक के लिए माया, ये जो अनंत रूप-रंग हैं चारों

तरफ, उसका उत्सव है। ये जो राग-रागिनियाँ बज रही हैं इतनी, यह उसके द्वार पर चल रहा अहर्निश नाद है। ये जो इतने रंग हैं फूलों के, तितलियों के, वृक्षों के, पत्तों के यह उसका आनंद-भाव है। वह इतने-इतने रूपों में प्रकट हो रहा है। वह इतने-इतने रूपों में प्रसन्न हो रहा है। इतने रंगों में, इतने फूलों में खिल रहा है। यह उसकी परम-ऊर्जा का फैलाव है। तो माया और ब्रह्म विपरीत नहीं है। माया उत्सव है, वह ब्रह्म का नृत्य है। या ब्रह्म का गीत!

शंकर का ब्रह्म बिलकुल रूखा-सूखा है। क्योंकि माया तो बिलकुल कट जाती है। वह तो गणित के सिद्धांत की तरह है। उसमें कोई राग नहीं, रंग नहीं; उसमें कोई दुःख नहीं, कोई खुशी नहीं; उसमें कुछ भी नहीं है। वह एक शून्य की भाँति है। उससे तुम क्या प्रेम करोगे? शंकर के ब्रह्म से प्रेम करना मुश्किल है। कैसे प्रेम करोगे? कहीं तर्क के सिद्धांतों से प्रेम होता है? गणित के सिद्धांतों से कहीं प्रेम होता है? दो और दो चार होते हैं, यह ठीक है। सिद्धांत साफ है; लेकिन इससे क्यों प्रेम करोगे? शंकर का ब्रह्म बिलकुल रूखा-सूखा है। गाणितिक है, मैथेमेटिकल है।

नानक का ब्रह्म बिलकुल भिन्न है। वह एक गणितज्ञ की धारणा नहीं है। बल्कि एक सौंदर्य-प्रेमी की, एक कवि की धारणा है। नानक कवि हैं। दार्शनिक नहीं हैं। और दार्शनिक जो हल नहीं कर पाता वह कवि हल कर लेता है। क्योंकि दार्शनिक को तो तर्क बिठाना होता है। कवि को तर्क की कोई चिंता नहीं। वह अतर्क्य हो सकता है। वह जोड़ लेता है। जो नहीं जुड़ता, वह जुड़ जाता है कवि की धारणा में, उसके प्रेम में, उसकी भक्ति में।

इसे ख्याल रखना, कि नानक के लिए माया उसका उत्सव है। इसलिए नानक ने अपने शिष्यों को, सिक्खों को संसार छोड़ने को नहीं कहा। छोड़ना कहाँ है? छोड़ना क्या है? जो उसका ही है उसको छोड़कर भागना क्या? इसलिए नानक ने अपने शिष्यों को कहा, कि तुम संसार में रह कर ही उसको खोजना, क्योंकि संसार भी उसीका है। और तुम संसार में से ही उसकी तरफ यात्रा-पथ खोजना। माया से भागना मत, डरना मत। वह उसी का खेल है।

इतना पक्का है, कि तुम खेल में ही मत खो जाना। खेलनेवाले पर ध्यान रखना; वह सुरति है। नृत्य में ही मत खो जाना, नृत्य जिसका चल रहा है उसका स्मरण रखना। वृक्षों को देखना, पक्षियों के गीत सुनना, उनमें इतना मत खो जाना कि तुम यह भूल जाओ, कि उस गीत के पीछे कौन छिपा है! माया यानी प्रकट ब्रह्म है। तुम प्रकट के भीतर अप्रकट को खोजते रहना। दृश्य के भीतर अदृश्य को देखते रहना।

नानक कहते हैं, 'और कितने तेरा गुणगान करते हैं इसका मैं अनुमान भी नहीं लगा सकता। मैं क्या विचार करूँ? वही और वही सच्चा साहिब है। वही

सत्य है। वही सत्यनाम है। वह है, वह सदा होगा, वह न जाता है, न जाएगा। उसने ही यह सारी रचना रची है।' '**रचना जिनि रचाई**'—उसने ही यह सारी रचना रची है। उसने अनेक रंग, भाव और प्रकार की माया की वस्तुएँ उत्पन्न की हैं। वह रच-रच कर अपनी रचना को देखता है। उसकी देख-भाल करता है, और उसे बड़प्पन देता है।'

> **'सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ।**
> **है भी होसी जाई न जासी रचना जिनि रचाई ॥**
> **रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ।**
> **करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ॥**
> **जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ।'**

बड़ी अद्‌भुत बात नानक कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, कि परमात्मा बनाता है। बना कर अपनी सृष्टि को देखता है।

जैसे कोई चित्रकार अपना चित्र बनाए। तुमने अगर कभी चित्रकार को बनाते देखा है चित्र, तो वह बनाएगा, फिर चार कदम पीछे हटेगा फिर गौर से देखेगा, फिर बायें खड़ा होगा, फिर दायें जाएगा, फिर खिड़की के पास, फिर दरवाजे के पास; फिर चित्र को प्रकाश में रखेगा, फिर छाया में देखेगा। हजार तरह से देखेगा। मूर्तिकार मूर्ति को बनाएगा, देखेगा सब दिशाओं से।

नानक कहते हैं, 'वह बना-बना कर अपनी कृति को देखता है। और इस भाँति जिसे उसने बनाया है उसे बड़प्पन देता है।'

तो परमात्मा संसार के विपरीत नहीं, नहीं तो बनाए ही क्यों? और परमात्मा माया के शत्रु नहीं हैं अन्यथा वह माया हो ही क्यों? तर्क के लिए जो कठिनाई थी, प्रेम के लिए कठिनाई नहीं है। नानक कहते हैं, न केवल वह बनाता है, बल्कि बना-बना कर देखता है और बनाए हुए को बड़प्पन देता है।

ध्यान रखना, अगर तुम्हें यह समझ में आ जाए कि तुम्हें परमात्मा ने बनाया है और तुम्हें बना-बना कर चारों तरफ से देखा है और देखता चला जा रहा है। और तुम्हें बड़प्पन और महिमा दे रहा है, क्योंकि तुम कृत्य उसके हो; अगर यह तुम्हें स्मरण आ जाए, तो तुम्हारे जीवन से पाप अपने आप विसर्जित हो जाएगा, क्योंकि तब तुम उस तरह उठोगे और चलोगे, जिसको परमात्मा ने बनाया है, तुम उस तरह बोलोगे, उस तरह व्यवहार करोगे, जिसको परमात्मा ने बनाया है। और न केवल परमात्मा ने बनाया है, परमात्मा जिसे बचा रहा है। बहुमूल्य साज-सँवार कर रहा है। और बार-बार देख रहा है, निरख रहा है। परमात्मा तुमसे प्रसन्न है। और तुम कितने ही भटक जाओ, तो भी उसकी आँख तुम्हें देखती रहेगी। और, वह तुम से उदास नहीं है और निराश नहीं है। अन्यथा तुम्हें भी मिटा दे। तुम कितने ही बुरे हो जाओ, तो भी उसकी आशा का दिया नहीं

बुझता। तुम कितने ही दूर चले जाओ, तुम बिल्कुल उसकी तरफ पीठ कर लो, तुम उसे बिल्कुल विस्मरण कर दो, तो भी वह तुम्हें देख रहा है। और जानता है कि आज नहीं कल तुम वापिस लौट आओगे। जो दूर गया है, वह वापिस लौटेगा। लौटना सुनिश्चित है। देर, अबेर और बात! क्योंकि जितने तुम दूर जाओगे उतने तुम दुःखी होओगे। उतने तुम भटकोगे। जैसे छोटा सा बच्चा घर से भाग जाए...

एक छोटा बच्चा, ज्यादा नहीं चार साल की उम्र ही होगी; एक छोटा सा बिस्तर और पोटली बाँधे हुए सड़क पर एक कोने से दूसरे कोने आ-जा रहा है। पुलिसवाले ने पूछा मामला क्या है? बहुत बार--कहाँ जा रहे हो? उसने कहा, घर से भाग रहा हूँ। लेकिन माँ ने मना किया है कि चौरास्ते के उस तरफ मत जाना। और न सड़क के उस तरफ जाना। और घर से भाग खड़ा हुआ हूँ, इसी लिए चौरास्ते और घरके बीच आ-जा रहा हूँ। उस तरफ जा भी नहीं सकता, क्योंकि माँ ने मना किया है।

छोटा बच्चा है घर से भागेगा भी कितनी दूर! और माँ से नाराज भी हो जाए, तो भी माँ ने मना किया है। उस सीमा का उल्लंघन कैसे करेगा?

तुम परमात्मा से कितने दूर जाओगे? चौरास्ते और घर के बीच में ही घूमोगे। जा भी कितने दूर सकते हो? जाओगे भी कहाँ? क्योंकि जहाँ भी जाओगे वह उसकी ही सीमा है। जहाँ भी होओगे, उसमें ही होओगे। तुम्हारी नाराजगी छोटे बच्चे की नाराजगी है जो कि प्रेम का हिस्सा है। तुम्हारी नाराजगी से परमात्मा नाराज नहीं हो जाता। नानक कहते हैं,

करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई।

और बड़ाई देता है और महिमा देता है। जो उसने बनाया है, वह उसको देखता है। कुछ उसे भाता है। वह वही करता है। उसके हुक्म में कोई दखल नहीं दे सकता है। वह बादशाहों का बादशाह है।

नानक कहते हैं कि उसकी मर्जी के भीतर ही रहना।

'हुकमु न करणा जाई।
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु
नानक रहणु रजाई।'

उसकी जो रजा है, उसकी जो आज्ञा है, उसका जो हुक्म है, उसके भीतर रहना। बाहर चले जाने से वह नाराज नहीं हो जाएगा; बाहर चले जाने से तुम अकारण दुःख पाओगे। दुःख पाना उसके द्वारा दिया गया दंड नहीं है। दुःख पाना उससे विपरीत जाने का फल है।

जैसे तुम दीवाल से निकलने की कोशिश करो और सिर टूट जाए, तो दीवाल तुम्हारे सिर को तोड़ नहीं रही है। तुम दीवाल से निकलने की कोशिश कर रहे हो। तुम खुद ही अपना सिर तोड़ रहे हो, जब कि दरवाजा उपलब्ध है।

'नानक रहणु रजाई'

वह दरवाजा उसकी रजाई है। जब दरवाजा उपलब्ध है तो तुम दीवाल से क्यों निकलना चाह रहे हो? निकलोगे तो सिर टूटेगा। और ध्यान रखना कि परमात्मा नाराज होकर सिर नहीं तोड़ रहा है। तुम अपनी ही नासमझी से सिर तोड़ रहे हो। और जब तुम सिर को तोड़ रहे हो तब भी अस्तित्व तुम्हारे लिए अनुभव करता करुणा का। इसलिए तुम कितना ही सिर तोड़ो अस्तित्व बार-बार तुम्हारे सिर को ठीक करता रहता है। तुम कितने भटको, हाथ-पैर तोड़ लो, फिर ठीक हो जाते हो। अस्तित्व तुम्हें सम्हालता है अनंत तक। न मालूम तुम कितने-कितने जन्मों से दीवार से टकरा रहे हो! फिर भी तुम हो। और अभी भी साजे हो, पूरे हो। अभी कुछ टूट नहीं गया। आत्मा खंडित नहीं होती; पर व्यर्थ दुःख झेलने का अपने हाथ से उपाय हो जाता है।

इसलिए नानक कहते है, 'नानक रहणु रजाई।' उसकी आज्ञा में रहना, उसके हुक्म में रहना।

कैसे जानो कि उसका हुक्म क्या है? कैसे पक्का करोगे, कि क्या है उसकी रजाई? बड़े-बड़े चिंतक वहाँ जाकर अटक गये हैं, क्योंकि यह तो ठीक है, मान लिया उसकी आज्ञा में रहना। क्या है उसकी आज्ञा? कसे तुम निश्चित करोगे, यही उसकी आज्ञा है? उसकी आवाज उसकी ही है, तुम्हारी नहीं, किसी और की नहीं, कैसे पहचानोगे? इन हजारों आवाजों के मेले में तुम कैसे पकड़ पाओगे?

रास्ता है। विचार से नहीं खुलता। विचार से तुम कभी तय न कर पाओगे उसकी आज्ञा क्या है? रास्ता खुलता है, जैसे-जैसे तुम उसकी धुन में डूबते हो, जैसे-जैसे तुम्हारा अहंकार खोता है, जैसे-जैसे तुम लीन होते हो ध्यान में, समाधि में, तत्क्षण उसकी आवाज सुनायी पड़ने लगती है। तुम्हारा अहंकार भीतर शोरगुल मचा रहा है, इसलिए तुम आवाज नहीं सुन पा रहे हो। तुम्हारा अहंकार शांत हो जाए, विचारों का उपद्रव भीतर न रहे, तत्क्षण उसकी आवाज सुनायी पड़ेगी। वह आवाज सदा दे रहा है। एक क्षण को भी आवाज से तुम टूटे नहीं।

मनुष्य के भीतर अंतःकरण है। जैसे आँख से तुम देखते हो, कान से तुम सुनते हो, ऐसा अंतःकरण तुम्हारे भीतर एक यंत्र है, जो परमात्मा की आवाज को पकड़ता है। आँख रोशनी को पकड़ती है। अभी तक वैज्ञानिक समझ नहीं पाए की कैसे पकड़ती है? अभी तक वैज्ञानिक हल नहीं कर पाए कि आँख से कैसे खबर जाती है मस्तिष्क तक कि बाहर एक सुंदर स्त्री खड़ी है, या फूल खिला है, या सूरज निकला है? आँख कैसे रोशनी को ले जाती भीतर, और कैसे रोशनी से चित्र बनाती है? अभी तक रहस्य खुल नहीं सका है। अभी तक रहस्य है और बड़ा तिलिस्म जैसा है।

हाथ छूते हैं। जब तुम किसीको छूते हो तो हाथ तो छू रहा है; लेकिन मन को पता चलता है छूने का, कि चमड़ी खुरदरी है, या चिकनी है, या मुलायम है, या कोमल है, या मखमली है। यह सारी घटना तो, अंगुली की चमड़ी पर बैठ रही है। लेकिन यह सारी सूचना कैसे पहुँच जाती है तुम्हारे मन तक ? क्षण भी नहीं लगता।

जैसे ये पाँच इंद्रियाँ हैं इस जगत से संबंधित होने की; एक छठवीं इंद्रिय है, जिसको हमने अंतःकरण कहा है, कान्सियन्स। वह छठवीं इंद्रिय भी तुम्हारे भीतर है और प्रतिपल काम कर रही है। लेकिन तुम दूसरी चीजों में उलझे हो। तुम विचार में उलझे हो और उसकी धीमी आवाज सुनायी नहीं पड़ती। जब तुम्हारे भीतर सब सन्नाटा हो जाता है, अचानक तुम पाते हो, कि उसकी आवाज सदा मिलती रहती है।

नानक कह रहे हैं, 'नानक रहणु रजाई,' उसकी आज्ञा में रहना। लेकिन पहले उसकी आज्ञा को खोजना पड़ेगा। और उस आज्ञा को खोजना कठिन नहीं है। तुम्हारे सोचने से कोई संबंध नहीं, कि क्या ठीक है, क्या गलत है! तुम्हारा सोचना बंद होना चाहिए। जैसे ही सोचना बंद हुआ, क्या ठीक है, वह सुनायी पड़ने लगता है। और तब तुम्हारी सारी चिंता खो जाती है, सारा दायित्व खो जाता है, उसकी जो मर्जी, वही तुम करते हो।

'उसकी मर्जी' नानक का मार्ग है। इसलिए उन्होंने जीवन के परम-सूत्र को 'हुक्म' कहा है--उसकी मर्जी। और उससे जुड़ने का तुम्हारे पास उपाय है। वह उपाय जन्म के साथ तुम लेकर पैदा हुए हो। लेकिन तुमने अब तक उसका उपयोग नहीं किया है। ध्यान तुम्हें अंतःकरण तक ले जाएगा, बस! और अंतःकरण तुम्हें परमात्मा से जुड़ाए हुए है। वह जो अंतस्तल जुड़ा हुआ तार है, वह प्रतिपल कह रहा है क्या करो, क्या न करो।

नानक कहते हैं, जब वह तुम्हें सुनायी पड़ने लगे, तो बस, उसकी सीमा में रहना। फिर तुम्हारे जीवन में कोई दुःख नहीं है। फिर तुम्हारे जीवन में उत्सव की घनी वर्षा होगी।

उस क्षण में कबीर ने कहा है, 'गरजे गगन बरसे अमी।' आनंद का जन्म हुआ है। आकाश गरज रहा है। पानी नहीं बरस रहा है, अमृत बरस रहा है।

अंतःकरण से जुड़ते ही तुम्हारे और परमात्मा के बीच सीधा संबंध हो गया, वह अभी भी है। परमात्मा की तरफ से अभी भी है। तुम्हारी तरफ से अभी नहीं हैं। चुप होने की कला अंतःकरण से जुड़ जाने का उपाय है। मौन मार्ग है।

• • •

आदेसु तिसै आदेसु

प्रवचन १४, दिनांक ४-१२-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : २८

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली
धिआन की करहि बिभूतीं ।
खिंथा कालु कुआरी काइआ
जुगति डंडा परतीति ॥
आई पंथी सगल जमाती
मनि जीतै जगु जीत ।
आदेसु तिसै आदेसु ॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति ।
जुगु जुगु एको वेसु ॥

पउड़ी : २९

भुगति गिआनु दइआ भंडारणि
घटि घटि वाजहि नाद ।
आपि नाथु नाथी सभ जा की
रिधि सिधि अवरा साद ॥
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि
लेखे आवहि भाग ।
आदेसु तिसै आदेसु ॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति
जुगु जुगु एको वेसु ॥

एक-एक शब्द बहुमूल्य है। और एक-एक शब्द को गहरे में समझने की कोशिश करें।

'मुंदा संतोखु, सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूती।'

'हे योगी, सन्तोष और लज्जा की मुद्रा बनाओ। प्रतिष्ठा की झोली धारण करो। और ध्यान की विभूति लगाओ।'

निरंतर ऐसा हुआ है, और सदा ऐसा होता भी रहेगा; क्योंकि आदमी के मन की कुछ बुनियादी भूलें हैं, जो बार-बार पुनरुक्त होती हैं। जब भी किसी धर्म का जन्म होता है, तो अनेक विधियाँ, अनेक उपाय, अनेक प्रयोग परमात्मा तक पहुँचने के खोजे जाते हैं।

धर्म के मूल-स्रोत के निकट तो केवल प्रतीक होते हैं, सहारे होते हैं। लेकिन जैसे-जैसे मूल-स्रोत दूर होता जाता है और धर्म एक परंपरा बन जाती है, वैसे-वैसे प्रतीक जड़ हो जाते हैं। उनका अर्थ खो जाता है। फिर लोग लाश की तरह उन्हें ढोते हैं। फिर धीरे-धीरे यह भी भूल जाता है कि किसलिए, क्यों प्रथम इन्हें स्वीकार किया था? एक औपचारिकता हो जाती है, जिसे निभाना सामाजिक कृत्य बन जाता है।

समझें। मैंने आपको संन्यास दिया, गैरिक–वस्त्र दिये। थोड़े ही दिनों में गैरिक-वस्त्र का भीतरी अर्थ खो जाएगा। जैसे-जैसे मुझसे दूर होंगे, वैसे-वैसे गैरिक-वस्त्र एक बाहरी प्रतीक हो जाएगा। लेकिन वस्त्र रंग लेने से कहीं आत्मा रँगी है! वस्त्र रंग लेना तो केवल एक सुरति का उपाय था, कि अब आत्मा को भी रँगना है।

वह तो ऐसे था, जैसे कोई आदमी बाजार जाता है, कुछ खरीद कर लाता है, भूल न जाएँ, तो अपने कुर्ते में एक गाँठ लगा लेता है। गाँठ थोड़ी बाजार से खरीद

कर लानी है ! गाँठ का कोई अपने आप में थोड़े ही अर्थ है ! तुम हजार गाँठें लगा लो, इससे क्या होगा ? वह तो स्मरण के लिए एक सहारा है। दिन भर बाजार में काम में उलझा रहेगा, बार-बार गाँठ पर ध्यान जाएगा, ख्याल आ जाएगा, कि कुछ खरीद कर लाना है । सुरति बनी रहेगी । संभावना कम रहेगी भूलने की । हजार कामों में उलझा हुआ भी, जो चीज खरीद कर लानी थी, खरीद कर ले आएगा । लेकिन गाँठ अपने आप में कुछ अर्थ रखती नहीं ।

उसका बेटा, हो सकता है यह देख कर, कि बाप जब भी बाजार जाता था, तो अक्सर अपने वस्त्र में गाँठ बाँध लेता था, जरूर इसमें कुछ राज होगा; जब बेटा भी बाजार जाएगा, तो कुर्ते में गाँठ बाँध कर जाएगा । न तो कुछ स्मरण रखने को है, न गाँठ का कोई संबंध स्मरण से रहा । अब तो गाँठ एक औपचारिक परंपरा हो गयी । उसका बेटा भी ऐसा करेगा । और तब हजारों साल तक यह बात चलती रहेगी ।

उस घर में गाँठ बाँधना परंपरा हो जाएगी । जो तोड़ेगा, नहीं मानेगा, वह अधार्मिक समझा जाएगा । जो मानेगा, वह धार्मिक समझा जाएगा । जो मानेगा, वह पुरखों का आदर करता है । जो नहीं मानेगा, वह बगावती है, विद्रोही है । लेकिन न माननेवाला बता सकेगा कि यह गाँठ किसलिए ? और न न माननेवाला बता सकेगा कि गाँठ किसलिए नहीं ?

सभी धर्मों में इस तरह का उपद्रव स्वाभाविक है । क्योंकि मन थोथे को पकड़ लेता है, गहरे को भूल जाता है । मन की कोई गहराई नहीं है । मन गहरे को याद रख ही नहीं सकता ।

मैंने तुम्हें गैरिक-वस्त्र दिये हैं । वे तो सिर्फ तुम्हारे भीतर एक याद बनी रहे चौबीस घंटे, कि तुम संन्यस्त हो । और तुम्हें ऐसे उठना, ऐसे बैठना, ऐसे चलना है, जैसे एक संन्यासी को उठना चाहिए, बैठना चाहिए, चलना चाहिए । तुम्हें वहीं बोलना है जो एक संन्यासी को बोलना चाहिए । तुम्हारा इस जगत में व्यवहार एक कैदी का न हो, एक मालिक का हो । इसलिए मैंने तुम्हें 'स्वामी' कहा । एक बँधे हुए व्यक्ति का न हो, मुक्ताचरण हो । माना कि आज तुम अचानक मुक्त नहीं हो जाओगे; लेकिन कहीं से तो शुरुआत करनी होगी । ये तो कपड़े तुम्हारे शरीर पर एक गाँठ की तरह हैं । इन का उपयोग है कि इनके कारण सुरति बनी रहेगी । और सुरति अभी बनाए रखना सब से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है ।

नानक ये जो वचन कह रहे हैं, वे नाथ-सम्प्रदाय के साधुओं को संबोधित कर के कहे हैं । उस समय नाथ-सम्प्रदाय के साधुओं का बड़ा प्रभाव था । देश के कोने-कोने में उनके मठ थे । और जिससे जन्म हुआ था नाथ-सम्प्रदाय का, वह

आदमी बड़ा अनूठा था-- गोरखनाथ । लेकिन जैसे ही गोरखनाथ खोया, वैसे ही साधारण आदमी के हाथ में उसकी विधियाँ पड़ गयीं । वे सब थोथी हो गयीं ।

नाथ-सम्प्रदाय के साधू अपने कान को छेद लेते हैं, नाथ लेते हैं । अब वह भी गाँठ है । और बड़ी उपयोगी है ।

'आक्युपंक्चर' चीन में एक बहुत पुरानी साइंस है। और अब पश्चिम में भी उसको स्वीकार किया जाता है । 'आक्युपंक्चर' मनुष्य के शरीर में सात सौ बिंदु मानता है, जहाँ जीवन-ऊर्जा प्रवाहित होती है । दोनों कानों का लटकता हुआ हिस्सा, एक बड़ा महत्त्वपूर्ण 'आक्युपंक्चर' का केंद्र है । और इस केंद्र से भीतर की स्मृति का बड़ा गहरा संबंध है । अगर कान छेद दिया जाए, तो उस भीतर की ऊर्जा में चोट लगती है । गहरी चोट लगती है । मस्तिष्क के कुछ विकारों को दूर करने का चीन में एक ही उपाय है, कि कान छेद दिया जाए । कान छिदते ही विकार दूर हो जाते हैं ।

इस गहरी अनुभूति के कारण नाथ-सम्प्रदाय के साधू कान छेदते हैं । और उनका एक वर्ग तो कनफटा होता है । वे छेदते ही नहीं, कान को बिलकुल फाड़ लेते हैं । क्योंकि शरीर की ऊर्जा के बिंदु हैं । और जब कान फट जाता है, तो वहाँ जो चोट पड़ती थी, वह खो जाती है । वहाँ से जीवन की विद्युत-धारा, सीधी मस्तिष्क की तरफ बहने लगती है । बीच का एक अवरोध अलग हो जाता है । यह भीतरी स्मृति को जगाने में बड़ा कीमती उपाय है ।

तुम कभी थोड़ी कोशिश करना । कान छेदने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन जब भी तुम्हारा मन उदास हो, चिंतित हो, उद्विग्न हो, क्रोध से भरा हो, तुम दोनों कानों के नीचे हिस्से को पकड़ कर जोर से रगड़ना । सिर्फ रगड़ने से ही तुम पाओगे कि भीतर चित्त की दशा बदलने लगी । पर इतना तो साफ ही है कि कान फाड़ने से कोई सिद्ध न हो जाएगा । और कान छेद लिया तो सब कुछ हो गया, ऐसा भी नहीं है ।

भारत में बहुत पुरानी ग्रामीण परंपरा है । अभी भी कुछ लोग गाँव में मिल जाएँगे । अगर तुम्हें कभी कोई आदमी मिले जिसका नाम हो 'कनछेदी लाल', या जिसका नाम हो 'नत्थूलाल', तो तुम पूछना कि यह नाम क्यों रखा गया ? जिस घरों में बच्चे मर जाते हैं, दो चार बच्चे हुए और मर गये, तो बहुत पुरानी परंपरा है कि जैसे ही बच्चा पैदा हो, तत्क्षण या तो उसकी नाक छेदो या कान छेद दो । अगर नाक छेदा तो उसका नाम नत्थूलाल, कान छेदा तो उसका नाम कनछेदी लाल ।

और यह बात बड़ी अनुभव की है कि फिर नाक या कान छेदने के बाद बच्चे

नहीं मरते। उनकी जीवन-ऊर्जा में कुछ बुनियादी अंतर आ जाता है। बच्चा बच जाता है। यह हजारों साल के अनुभव के बाद लोगों ने धीरे-धीरे प्रयोग खोजा है।

अब तो इसपर रूस में बड़ी खोज हुई है। और किरलियान फोटोग्राफी ने बड़े महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं कि मनुष्य के शरीर में जो विद्युत का प्रवाह है, सारा खेल स्वास्थ्य का, बीमारी का, जन्म का, मरण का, उस विद्युत के प्रवाह पर निर्भर है। और इस प्रवाह को कुछ बिंदुओं से बदला जा सकता है। उस प्रवाह के मार्ग को रूपांतरित किया जा सकता है। उस प्रवाह को एक तरफ जाने से रोका जा सकता है, दूसरी तरफ ले जाया जा सकता है।

'आक्युपंक्चर' की सारी कला यही है कि जब कोई आदमी बीमार होता है, तो किन्हीं शरीर के खास बिंदुओं पर वे गर्म सुई चुभोते हैं। और जरा सी सुई का चभन, और भीतर की विद्युत की धारा बदल जाती है। उस विद्युत के बदलने से सैकड़ों बीमारियाँ तिरोहित हो जाती हैं। चीन में तो कोई पाँच हजार सालों से वे इसका प्रयोग करते हैं। उन्होंने जो शरीर में माने हैं बिंदु, अब तो विज्ञान ने भी स्वीकृति दे दी है, कि वे बिंदु हैं। और यह भी स्वीकार हो गया है--रूस में कम से कम! और रूस के तो अस्पतालों में भी 'आक्युपंक्चर' का प्रयोग शुरू हो गया है। और अब तो उन्होंने यंत्र भी खोज लिए कि मरीज को वे यंत्र में खड़ा कर देते हैं। जैसे एक्स-रे से पता चलता है कि भीतर कहाँ खराबी है, उस यंत्र से पता चलता है कि शरीर में घूमनेवाली इलेक्ट्रिक करंट कहाँ बीमार पड़ गयी है। जहाँ बीमार पड़ गयी है वहाँ इलेक्ट्रिक का शॉक उसे देते हैं। इलेक्ट्रिक का शॉक देते ही विद्युतधारा प्रवाहित हो जाती है और बीमारी तिरोहित हो जाती है।

कान छेदना, नाथ-संप्रदाय के योगियों ने बड़े महत्त्वपूर्ण शॉक की तरह खोजा था। वह शॉक था। इस तरह के शॉक बहुत तरह खोजे गये हैं। तुम्हें पता है कि यहूदी और मुसलमान खतना करते हैं। खतना भी इसी तरह का शॉक है और बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यहूदी तो बच्चा पैदा होता है, उसके चौदह दिन के भीतर उसका खतना कर देते हैं। और जननेंद्रिय के ऊपर की चमड़ी को काट कर ऊपर अलग कर देते हैं।

इस संबंध में बहुत अध्ययन चलता आ रहा है कि क्या लाभ होते होंगे? और लाभ प्रगाढ़ मालूम होते हैं। क्योंकि यहूदियों से ज्यादा प्रतिभाशाली कौम खोजना कठिन है। उनकी संख्या तो थोड़ी है लेकिन जितनी नोबल-प्राइज यहूदी ले जाते हैं, उतनी कोई दूसरी जाति नहीं ले जाती। और यहूदी जिस दिशा में भी काम करेगा, हमेशा अग्रणी हो जाएगा। आगे पहुँच जाएगा। दूसरों को पीछे खदेड़ देगा। यहूदी के पास प्रतिभा तो ज्यादा मालूम पड़ती है। इस सदी में जिन लोगों ने बड़े प्रभाव पैदा किये हैं वे सब यहूदी हैं। कार्ल मार्क्स, सिगमन् फ्रायड और अलबर्ट

आइन्सटीन, तीनों यहूदी हैं। और इन तीनों ने इस सदी को निर्मित किया है। और यहूदियों ने जितने प्रगाढ़ विचारक पैदा किये हैं, वैज्ञानिक पैदा किये हैं, किसीने पैदा नहीं किये। उनका कोई मुकाबला नहीं है। और अभी इस संबंध में विचार शुरू हो रहा है कि हो सकता है, चौदह दिन के अंदर जो खतना किया जाता है उसका कुछ न कुछ गहरा संबंध प्रतिभा से है।

मुसलमान वह नहीं कर पाये, क्योंकि वे खतना बड़ी देर से करते हैं। यहूदियों का ख्याल है कि चौदह दिन के भीतर बच्चे को जो पहला शॉक मिलता है, क्योंकि खतना जननेंद्रिय की चमड़ी का किया जाता है, तो पहला शॉक जननेंद्रिय के पास जो इकट्ठी ऊर्जा है, जो विद्युत-ऊर्जा है, उसको लगता है। और वह शॉक इतना गहरा है कि वह विद्युत-ऊर्जा उस जगह से हट कर सीधी मस्तिष्क में चोट करती है। और छोटे बच्चे को वह जो चोट है, सदा के लिए महत्त्वपूर्ण हो जाती है। उसकी जीवन-धारा बदल जाती है। इस बात की संभावना है। किरलियान भी इससे राजी हैं रूस में। और 'आक्युपंक्चर' का तो बहुत पुराना ख्याल है, कि यह बात सच है। क्योंकि जननेंद्रिय सर्वाधिक संवेदनशील जगह है। उससे ज्यादा संवेदनशील कोई हिस्सा शरीर में नहीं है। और छोटे से बच्चे की चमड़ी काट देना, उसके लिए भारी शॉक है। और इस धक्के के लगते ही ऊर्जा छटक कर मस्तिष्क की ओर चली जाती है।

जब कभी ये चीजें खोजी गयीं, तो इनका उपयोग शुरू हुआ। फिर उपयोग का अर्थ खो जाता है। तब ऊपर-ऊपर चीजें लोग ढोते हैं। उन्हें भी पता नहीं, होता, वे क्यों कर रहे हैं?

गोरखनाथ ने बहुत-सी चीजें खोजीं। गोरखनाथ अनूठा अन्वेषक था। और उसका प्रभाव पड़ा। और लाखों लोग नाथ-सम्प्रदाय में सम्मिलित हुए। क्योंकि परिणाम साफ थे।

लेकिन नानक के वक्त तक आते-आते चीज धुंधली हो गयी। लोग ढो रहे थे। लेकिन गोरख ने जो अर्थ किये थे वे खो गये थे।

तो नानक कहते हैं, कि हे योगी, संतोष और लज्जा की मुद्रा बनाओ। क्योंकि गोरखनाथ ने बहुत सी मुद्राएँ खोजीं। मुद्राएँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं।

तुम्हें भी शायद कभी जीवन में अनुभव होता हो, कि तुम्हारी मन की दशा शरीर मुद्रा से जुड़ी होती है। जब तुम शांत होते हो तब तुम्हारे चेहरे, तुम्हारे हाथ, तुम्हारे शरीर की मुद्रा अलग होती है। जब तुम क्रुद्ध होते हो, तब अलग होती है। जब तुम किसीके प्रति करुणा से भरे होते हो, तब अलग होती है। तुम करुणा के समय घूंसा तो बाँध कर किसीके सामने खड़े नहीं हो जाओगे। क्योंकि

बेतुकी होगी मुद्रा। करुणा के समय तो तुम्हारे हाथ में भी करुणा होगी। हाथ में भी अभय होगा। हाथ में भी दान का भाव होगा। हाथ भी देगा। घूँसा तो किसी को नष्ट करने के लिए है। मुट्ठी बँधी नहीं हो सकती, क्योंकि बँधी मुट्ठी तो कृपण की है। मुट्ठी खुली होगी करुणा के क्षण में। तुमसे कुछ भी दिया जा सकता है।

मन और मन के भाव और शरीर की स्थितियों का गहरा संबंध है। तो गोरखनाथ ने बहुत सी मुद्राएँ खोजीं, जिसको साधने से योगी की भीतर की चित्त-दशा बदलती है। तुम समझो, कि तुम बिलकुल क्रोध की मुद्रा साध कर खड़े हो जाओ। क्रोध बिलकुल नहीं है लेकिन तुम क्रोध की मुद्रा साध लो; ठीक वैसी लाल आँखें कर लो, घूसा तान लो जैसे किसी की जान लेने जा रहे हो, तैयार हो जाओ, बिल्कुल हमला करना है, तो तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे भीतर क्रोध की सरसराहट शुरू हो गयी। सिर्फ मुद्रा तुमने बनायी, और क्रोध पैदा हो गया।

अमरीका में इस सदी में दो बड़े मनोवैज्ञानिक हुए जेम्स और लेंगे। उन दोनों ने मिल कर एक सिद्धांत विकसित किया जो 'जेम्स लेंगे' सिद्धांत कहलाता है। उन्होंने बड़ी उल्टी बात कही। उन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की, कि लोग कहते हैं भय लगता, इसलिए भयभीत आदमी भागता है। जेम्स और लेंगे ने सिद्ध किया कि आदमी भागता है इसलिए भय लगता है। जेम्स और लेंगे ने कहा कि मुद्रा महत्त्वपूर्ण है। हम कहते हैं कि आदमी डर गया इसलिए भाग रहा है। और जेम्स और लेंगे कहते हैं, वह भाग रहा है इसलिए डर रहा हैं। अगर वह भागना रोक दे, तो डर खो जाए। अगर मुद्रा बदल दे, तो भीतर की स्थिति बदल जाए।

चित्त की हर स्थिति के साथ जुड़ी मुद्रा है। इसका यह अर्थ हुआ कि चित्त और शरीर पैरेलल, समानांतर धारा में चलते हैं। जब तुम आनंदित होते हो, तब तुम्हारे शरीर की एक स्थिति होती है। जब तुम दुःखी होते हो, तब दूसरी होती है। तुम अध्ययन करना, जब तुम प्रसन्न हो, प्रफुल्लित हो, खुश हो, तो तुम पाओगे कि जैसे तुम्हारा शरीर फैल रहा है। जैसे तुम बड़े हो गये हो। एक विस्तीर्णता उपलब्ध होती है। तुम फैलते चले जाते हो।

जब तुम दुःखी हो, परेशान हो तब तुम सिकुड़ते हो। जैसे भीतर तुम सिकुड़ कर बंद होते जा रहे हो। जैसे वृक्ष बीज में बंद हो जाना चाहे। ऐसे तुम अपने भीतर सिकुड़ते जाते हो। और तुम ध्यान रखना, दुःखी आदमी का अगर तुम शरीर देखोगे, तुम उसे भी सिकुड़ा हुआ मुद्रा में पाओगे। अगर तुम मुद्राओं का अध्ययन करो तो तुम शरीर की स्थिति को देख कर बता सकते हो, कि भीतर

की स्थिति क्या होगी! जब आदमी प्रसन्न होता है, तो शरीर फैलाव की हालत में होता है, दुःखी हो तो सिकुड़ा होता है। जब क्रोध होता है तो माथे की अलग अवस्था होती है, रेखाएँ बदल जाती हैं। जब तुम चिंतित होते हो, तो माथे पर अलग बल पड़ते हैं। जब तुम निश्चित होते हो, बल खो जाता है।

इस रहस्य की खोज जेम्स-लेंगे ने नहीं की इस सदी में, इस रहस्य की खोज भारत में बहुत पुरानी है। 'हठयोग-प्रदीपिका' से लेकर गोरखनाथ तक, लाखों-लाखों योगियों ने अनुभव किया। योगियों से ज्यादा किसीने मनुष्य के चित्त और शरीर पर प्रयोग भी नहीं किये हैं, इतना अन्वेषण भी नहीं किया है, इतना निरीक्षण भी नहीं किया है।

उन्होंने पाया कि एक-एक चित्त की दशा के साथ शरीर की मुद्रा का जोड़ है। तब एक सूत्र हाथ लग गया। अगर चित्त को बदलना हो तो मुद्रा को बदलने से चित्त को बदलने में सहायता मिलेगी। तुम मुद्रा बदल लो। जब क्रोध आ रहा हो, तब तुम मुद्रा ऐसी करो जो कि शांत-चित्त की मुद्रा है। तुम अचानक पाओगे कि भीतर की ऊर्जा में रूपांतरण हुआ। वह जो शक्ति क्रोध बनने जा रही थी, वही शक्ति शांति बन गयी।

शक्ति निरपेक्ष है। तुम जैसा ढाँचा उसे देते हो, वैसी ही ढल जाती है। शक्ति तो जल की भाँति तरल है। तुम गिलास में उसको भर देते हो तो उस का ढंग गिलास का हो जाता है। तुम लोटे में भर देते हो तो उसका रूप लोटे का हो जाता है। मुद्राओं से तुम रूप देते हो। शक्ति तो निरपेक्ष है। अगर तुम क्रोध का रूप दे देते हो तो शक्ति क्रोध बन जाती है। मुद्रा ढाँचा है। और जब तुम प्रेम का रूप दे देते हो, वही शक्ति प्रेम बन जाती है। यह बड़ी से बड़ी गहरी खोज है।

तो अगर तुम शरीर की मुद्राओं को समझ लो, तो तुम पाओगे कि तुमने भीतर के मन को बदलना शुरू कर दिया।

लेकिन खतरा क्या है? खतरा यह है कि तुम भूल ही जाओ और तुम शरीर की मुद्रा के ही अभ्यास में लगे रहो। और तुम यह भूल ही जाओ कि भीतर के मन को बदलने का इससे कोई संबंध है। तो ऐसा हो सकता है कि तुम शरीर की मुद्रा का तो बिलकुल अभ्यास कर लो, और भीतर कुछ भी न हो।

यह तो केवल सहारा है। असली क्रांति तो भीतर करनी है। बाहर के जितने सहारे लिए जा सकें उतना अच्छा है।

जैसे कोई आदमी नया मकान बनाता है, तो मकान बनाने के लिए पहले एक स्ट्रक्चर खड़ा करता है। लेकिन अगर स्ट्रक्चर ही खड़ा कर के तुम रह जाओ, ढाँचे में ही रह जाओ, मकान कभी बनाओ ही न, तो वह ढाँचा मकान

नहीं है, उसमें रहा नहीं जा सकता। वह ढाँचा सहयोगी था जब मकान बन रहा था तब। ढाँचा हटा देना था। ढाँचा रहने के लिए नहीं है।

मुद्रा तो ढाँचा है। नानक के समय आते-आते तक ढाँचे को ही लोग मकान समझ कर रहने लगे। तो योगी बैठा है एक मुद्रा में। उसने मुद्रा तो करुणा की बना रखी है, लेकिन उसे याद ही नहीं कि करुणा के लिए भी कुछ भीतर करना जरूरी है। तो मुद्रा करुणा की है और भीतर क्रोध उबल रहा है। हाथ-पैर तो वह अभय के बनाए हुए हैं और अगर तुम उसके भीतर झाँको, तो वह खतरनाक है और तुम्हें नुकसान पहुँचा सकता है। द्वार पर खड़ा माँग तो भीख रहा है--नाथ-योगियों से लोग डरने लगे थे। अगर वह भीख माँगे और न दें तो वे अभिशाप दे दें। तो भिखारी का रूप उसका झूठा है।

बुद्ध ने, गोरख ने, अपने संन्यासियों को भिखारी बनने के लिए कहा है, क्योंकि उससे विनम्रता आएगी। जब तुम माँगोगे तो कैसी अकड़ बचेगी? जब तुम भिक्षापात्र लिए किसीके द्वार पर खड़े रहोगे, तो कैसा अहंकार? कर्तृत्व से अहंकार मिलता है। भिखारी हो गये, अब कैसा अहंकार? भिखारी का अर्थ है, मैं ना-कुछ हूँ। मेरा कोई मूल्य नहीं। यह भिक्षापात्र ही मेरा सब कुछ है। और तुम दे दोगे तो मैं राजी हूँ। तुम कहोगे कि चले जाओ, हट जाओ, तो मैं चुपचाप हट जाऊँगा। क्योंकि भिखारी का क्या बल? माँग पर जोर जबरदस्ती क्या? देनेवाला दे दे, उसकी मर्जी; न दे, उसकी मर्जी।

तो बुद्ध ने तो अपने भिक्षुओं को कहा था, कि तुम द्वार पर खड़े हो जाना, माँगना भी मत। क्योंकि माँगने से भी हो सकता है, जोर पड़े। माँगने से हो सकता है कि उस आदमी को इन्कार करना मुश्किल हो जाए। लाज, शर्म में दे दे। लेकिन वह तो लेना न हुआ। वह तो हिंसा हो गयी। तो तुम सिर्फ द्वार पर खड़े हो जाना। अगर उसे देना होगा तो वह दे देगा। अगर नहीं देना होगा तो तुम चुपचाप हट जाना। तुम उसे किसी पशोपेश में मत डालना। अगर तुमने माँगा भी, तो कम से कम उसे ना तो कहना होगा। हो सकता है, कि संकोची आदमी हो, न देना चाहता हो, लेकिन 'ना' कहना मुश्किल पाए, तो उसके संकोच का शोषण मत करना। तुम चुपचाप खड़े रहना, आँख बंद किये। थोड़ी देर प्रतीक्षा करना और हट जाना, ताकि उसे 'न' कहने का भी कष्ट न उठाना पड़े। और मजबूरी में देने की स्थिति मत बना देना। और तुम इतने विनम्र रहना कि मेरा क्या मूल्य? दे दिया तो उसकी मर्जी, नहीं दिया तो उसकी मर्जी। और हर हालत में तुम आशीर्वाद देना। उसके देने और न देने से तुम्हारे आशीर्वाद का कोई संबंध न हो।

बुद्ध का एक भिक्षु था पूर्ण। जब वह निष्णात् हो गया, बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया, तो बुद्ध ने कहा, अब तू जा। और दूसरों को दे, जो मैंने तुझे दिया है। बहुत दीये बुझे हैं, उनको जला। अब तेरी मेरे पास रहने की जरूरत नहीं, तू पा गया है। तो पूर्ण ने कहा कि मुझे आज्ञा दें कि, बिहार का एक इलाका था जिसका नाम 'सूखा' था, मैं वहाँ जाऊँ। बुद्ध ने कहा, 'वहाँ न जा तो अच्छा, क्योंकि वहाँ के लोग बहुत कठिन हैं, कठोर हैं। वे तुझे गालियाँ देंगे, अपमान करेंगे।' पूर्ण ने कहा, लेकिन जहाँ लोग बीमार हैं, वहीं तो चिकित्सक की जरूरत है। तो मुझे आज्ञा दें कि मैं वहीं जाऊँ। उन लोगों को जरूरत है।

तो बुद्ध ने कहा, मुझे तीन जवाब जाने के पहले दे दे। पहला, अगर वे गालियाँ देंगे, अपमान करेंगे, तो तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहा कि मुझे होगा कि कितने भले लोग हैं! सिर्फ गालियाँ ही देते हैं, अपमान ही करते हैं, मारते तो नहीं हैं। मार भी सकते थे।

तो बुद्ध ने कहा, और अगर वे मारें, पत्थर फेंकें, जूतों से स्वागत करें, फिर तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहा, कितने भले लोग हैं, कि सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते। मार डाल भी सकते थे।

तो बुद्ध ने कहा, आखिरी सवाल और। अगर वे मार ही डालें तो उस मरते क्षण में तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहा, यही होगा कि कितने भले लोग हैं कि उस जीवन से छुटकारा दिला दिया, जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी। बुद्ध ने कहा, 'अब तू पूर्ण भिक्षु हुआ। अब तू जा सकता है।'

इतनी विनम्रता हो, तो कोई भिक्षु है। लेकिन नानक के समय आते-आते, गोरख के भिक्षु दरवाजे पर खड़े हो जाते थे। अभी भी कभी गोरखपंथी साधू खड़ा हो जाए, तो वह खड़ा नहीं रहता, वह आगे-पीछे हटता है। और अपने डंडे को हिलाता है, या अपने चमीटे को बजाता है। चमीटे को बजाता है, और आगे-पीछे हटता है। खड़ा नहीं रहता एक जगह पर वह, घबड़ा देता है घर के लोगों को। और उसकी अकड़, उसकी आँख। जैसे अगर 'न' कहा, तो भयंकर उत्पात कर देगा।

तो नाथ-संप्रदाय के साधुओं ने ऐसा घबड़ा दिया था लोगों को, कि लोग उनको डर कर देते थे। क्योंकि अभिशाप पक्का था। हालत बिल्कुल उलटी हो गयी थी। आशीर्वाद तो नाथ-संप्रदाय का योगी देता ही नहीं था। तुमने दिया, इसमें कुछ आशीर्वाद का सवाल ही न था। तुम ही अनुगृहीत हो कि उसने लिया। आशीर्वाद तो देगा ही नहीं। आशीर्वाद क्या? उसका जैसे हक है। और अगर न दिया तो अभिशाप देगा। गोरख ने कहा था, कि कोई दे, कोई न दे, तो आशीर्वाद। लेकिन हालत बिल्कुल उलटी हो गयी। और वह मुद्राएँ बाँधकर खड़ा था।

ऐसे नाथ-योगी अब भी हैं, जो खड़े हैं तो दस साल से खड़े ही हैं। हिले नहीं हैं। इसका मूल्य तो था कभी। क्योंकि अगर तुम बहुत देर तक स्थिर होकर खड़े रहो और भीतर की याद रहे, तो चेतना भी खड़ी हो जाएगी। अगर तुम्हारा शरीर बिल्कुल स्थिर हो गया, तो चेतना भी स्थिर हो जाएगी। लेकिन यह ख्याल रहे; नहीं तो शरीर तो जड़ हो जाएगा और चेतना चलती रहेगी। और खड़े-खड़े तुम जमाने भर की यात्रा करोगे। सपने आएँगे हजार, विचार चलेंगे। सहारा मिल सकता है मुद्राओं से। लेकिन मुद्राएँ अंत नहीं हैं।

नानक के समय में आकर सब मुद्राएँ भ्रष्ट हो गयीं। सब पंथ विकृत हो गये।

तो नानक कह रहे हैं, 'हे योगी, संतोष और लज्जा की मुद्रा बनाओ।' मुद्राओं से न चलेगा। संतोष की मुद्रा है। लज्जा मुद्रा है। 'प्रतिष्ठा की झोली धारण करो।' यह झोली जो कंधे पर टाँग कर चल रहे हो, यह काम न देगी।

समझें। 'संतोष' बड़ा महत्त्वपूर्ण शब्द है, और विकृत हो गया है। कोई आदमी जब अपने को असहाय पाता है तो संतोष कर लेता है। उसका संतोष कन्सोलेशन है, सांत्वना है। उसका संतोष कांटेंटमेंट नहीं है। जब वह असहाय है, जब कुछ भी नहीं किया जा सकता, जब जो भी किया जा सकता था कर चुका और अपने को असफल पाता है, तब वह कहता है, 'सब ठीक।' यह संतोष की मुद्रा न हुई। यह तो मजबूरी की हालत हुई।

यह तो ऐसा हुआ, कि रामकृष्ण के पास एक भक्त आता था, जो हमेशा काली के उत्सव में बकरे चढ़ाता था। सैंकड़ों बकरे काटता था। फिर अचानक बकरों का काटना बंद कर दिया। और रामकृष्ण ने बहुत बार उसे कहा भी था, पर उसने कभी सुना नहीं। तो रामकृष्ण ने पूछा, कि क्या मामला हुआ? अब बकरे कटने बंद हो गये? और मैंने पहले कहा तो तुमने कभी सुना नहीं। उसने कहा, कि पहले कभी सुन नहीं सकता था। अब दाँत ही न रहे। तो बकरे कोई काली के लिए थोड़े ही काटता है! अपने दाँतों के लिए काट रहा है। अब दाँत ही न रहे तो मैंने संतोष कर लिया है।

बूढ़ापे में लोग संतोष कर लेते हैं। गरीबी में लोग संतोष कर लेते हैं। पर वह संतोष झूठा है। क्योंकि संतोष शक्ति है, निर्बलता नहीं। संतोष विधायक, पॉज़िटिव एनर्जी है, नकारात्मक नहीं। संतोष कोई असहायता, हेल्पलेसनेस नहीं है। संतोष तो परम सहाय है। वह तो बड़ी ऊँची अवस्था है। संतोष का तो मतलब है, कि जितना मुझे चाहिए उससे ज्यादा मेरे पास है। जो मेरी जरूरत है उससे ज्यादा मेरे पास है। जो मैंने माँगा था, जो मैंने नहीं माँगा था, वह भी मुझे मिला है। संतोष का अर्थ तो अनुग्रह का भाव है, कि परमात्मा तेरी मर्जी बड़ी अद्भुत है। तूने इतना दिया है।

वह किसी असहाय अवस्था में, किसी हारी, पराजित चित्त की दशा में पकड़ ली गयी सांत्वना का स्वर नहीं है, वह तो बड़ी विजय की यात्रा है। वहाँ तो हार का कोई सवाल ही नहीं। वह तो केवल विजेताओं को उपलब्ध होती है। योद्धाओं को उपलब्ध होती है। महावीर ने कहा है 'जिनों' को उपलब्ध होती है। 'जिन' यानी जिन्हों ने जीत लिया सब, उन्हींको संतोष उपलब्ध होता है।

नानक कहते हैं, 'योगी, संतोष की मुद्रा बनाओ।' यह हाथ-पैर की साधते-साधते बहुत समय हो गया। इनसे कुछ हो नहीं रहा है। छोड़ो इन्हें। भीतर की मुद्रा साधो। और सबसे बड़ी मुद्रा है 'संतोष'।

क्यों? क्योंकि जो संतुष्ट हुआ उसकी सब चिंताएँ गिर गयीं। सब चिंताएँ असंतोष से पैदा होती हैं। सभी चिंताएँ इस बात से पैदा होती हैं कि जो मुझे मिलना चाहिए, वह नहीं मिला है। अभाव से पैदा होती हैं। जिस दिन तुम संतुष्ट हुए, उस दिन तुम घोड़े बेच कर सो जाओगे। फिर कोई चिंता नहीं है। फिर रात कोई सपना भी न आएगा, क्योंकि सभी सपने असंतोष से पैदा होते हैं। दिन भर जो असंतोष तुम पालते हो वह रात सपना बन जाता है।

असंतोष का अर्थ है, भिखारीपन। संतोष का अर्थ है मालिक हो गये, स्वामी हो गये। वही संन्यासी का लक्षण है। वह संतुष्ट है हर हाल। तुम ऐसी कोई स्थिति पैदा नहीं कर सकते, जहाँ तुम उसे असंतुष्ट कर दो। क्योंकि हर स्थिति में वह शुभ को देखेगा। और हर स्थिति में 'उसके' हाथ को पहचान लेगा। दुःख की गहरे से गहरी अवस्था में भी, तुम उसकी सुख की किरण न छीन सकोगे। क्योंकि अँधेरे से अँधेरे में भी वह जानता है कि सुबह आ रही है, सुबह करीब है। गहन से गहन जब अँधेरा होता है, तब वह हँसता है, प्रसन्न होता है, कि यह सुबह के करीब आने का लक्षण है। तुम उसे अँधेरे में नहीं डाल सकते। उसे हर अँधेरे बादल में भी चमकती हुई बिजली की शुभ्रता दिखायी पड़ती है। गहरी से गहरी दुःख की अवस्था में भी, तुम उसका सूत्र नहीं छीन सकते। उसके संतोष का धागा उसके हाथ में है। वह सभी को स्वीकार करता है। उसने परम स्वीकार धारण किया है।

इसको नानक कहते हैं, मुद्रा बनाओ योगी। हाथ-पैर को साध लेने से कुछ-भी न होगा। शरीर के अभ्यास से कुछ भी न होगा। अभ्यास करो चैतन्य का। और चैतन्य के अभ्यास का पहला सूत्र है, संतोष।

मगर ध्यान रखना, गलत संतोष भी है। गलत संतोष असहाय अवस्था का है। मजबूरी है। अपनी तरफ से सब कर लिया।

मुल्ला नसरुद्दीन एक जंगल से यात्रा कर रहा था। एक मित्र साथ थे। दोनों अपनी बैलगाड़ी में जा रहे थे कि अचानक डाकुओं ने हमला किया। कोई

पचास कदम पर डाकू खड़े थे बन्दूकें लिए। और उन्होंने कहा, 'रुक जाओ।' मुल्ला नसरुद्दीन ने तत्क्षण अपने खीसे से पाँच सौ रुपये निकाले और मित्र को दिये, कि भाई! तुम से जो कर्ज लिया था, निपटारा कर लें। हिसाब साफ हो गया।'

तुम्हारा संतोष ऐसी ही अवस्था में होता है। जब तुम पाते हो, अब कुछ करने को बचा नहीं। सब जा रहा है। जब जा ही चुका होता है, तभी तुम छोड़ते हो। असल में तुम छोड़ते नहीं, तुमसे छीना जाता है। और जब तुमसे छीना जाता है, तब कैसा संतोष! जो छोड़ता है, वह संतुष्ट हो सकता है। जिससे छीना जाता है, वह ऊपर से कितनी ही मुद्रा साधे, भीतर तो असंतोष है। वह ऊपर से कितना ही कहे, 'सब ठीक है;' लेकिन उसके 'सब ठीक' में भी तुम स्वर को सुन लोगे कि वह कह रहा है, कि कुछ भी ठीक नहीं।

संतोष की सही रूपरेखा है कि पहला तो यह भाव, कि जो मुझे मिला है वह पहले से ही जरूरत से ज्यादा है। इससे ज्यादा हो भी क्या सकता है? जो सुख मैंने पाया है, उसके लिए मेरा अहोभाव है, धन्यवाद है। जो दुःख हैं उन दुःखों के पीछे भी छिपा हुआ सुख है। काँटे हैं, कहीं गुलाब खिल रहे होंगे। काँटे पर नजर न रहे, गुलाब पर नजर रहे।

कोई आदमी गाली भी दे जाए, तो संतोषी व्यक्ति सोचेगा कि या तो उसने ठीक ही कहा; तब अब मुझे धन्यवाद देना चाहिए कि उसकी गाली सच है। और या सोचेगा, कि गाली सच नहीं है। बिचारे ने नाहक मेहनत की, कष्ट उठाया, इतनी दूर तक आया। अगर सच है तो धन्यवाद होगा, अगर झूठ है तो दया का भाव होगा। लेकिन क्रोध किसी स्थिति में संतोषी व्यक्ति को नहीं हो सकता। वह हर हाल में कुछ खोज लेगा।

दो फकीरों की कहानी मुझे बड़ी प्रीतिकर रही है। जापान में हुए। दोनों वर्षाकाल के लिए अपने झोंपड़े पर वापिस लौट रहे थे। आठ महीने घूमते थे, भटकते थे गाँव-गाँव, उस परमात्मा का गीत गाते थे। वर्षाकाल में अपने झोंपड़े पर लौट आते थे। गुरु बूढ़ा था। जवान शिष्य था। जैसे ही वे करीब पहुँचे झील के किनारे अपने झोंपड़े के, देखा कि छप्पर जमीन पर पड़ा है। जोर की आँधी आयी थी रात, आधा छप्पर उड़ गया है। छोटा सा झोंपड़ा! उसका भी आधा छप्पर उड़ गया है। वर्षा सिर पर है। अब कुछ करना भी मुश्किल होगा। दूर जंगल में निवास है।

युवा संन्यासी शिष्य ने कहा, 'देखो, हम प्रार्थना कर-करके मरे जाते हैं, और उसकी तरफ से यह फल! इसलिए तो मैं कहता हूँ कि कुछ सार नहीं है। प्रार्थना, पूजा—मिलता क्या है? दुष्टों के महल साबित हैं, हम गरीब फकीरों की झोंपड़ी गिरा गयी आँधी। यह आँधी उसीकी है।'

जब वह क्रोध से बातें कह रहा था, तभी उसने देखा कि उसका गुरु घुटने टेक कर, बड़े आनंदभाव से आकाश की तरफ हाथ जोड़े बैठा है। उसकी आँखों से परम संतोष के आँसू बह रहे हैं। और वह गुनगुना कर कह रहा है, कि परमात्मा तेरी कृपा। आँधी का क्या भरोसा! पूरा ही छप्पर ले जाती। जरूर तूने बीच में रोका होगा और आधा बचाया। आधा छप्पर अभी भी ऊपर है। आंधी का क्या भरोसा? आँधी आँधी है। पूरा ले जाती। जरूर तूने बाधा डाली होगी। और आधा तूने बचाया होगा।

फिर वे दोनों गये। एक ही झोंपड़े में वे प्रवेश कर रहे हैं लेकिन दो भिन्न तरह के लोग हैं। एक असंतुष्ट, एक संतुष्ट। स्थिति एक है, लेकिन दोनों के भाव अलग हैं। इसलिए दोनों अलग झोपड़ों में जा रहे हैं। ऊपर से तो दिखायी पड़ता है, कि एक ही झोंपड़े में जा रहे हैं।

रात दोनों सोये। जो असंतुष्ट था, वह तो सो ही न सका। उसने अनेक करवटें बदलीं और बार-बार कहा कि क्या भरोसा कब वर्षा आ जाए। अभी वर्षा आयी नहीं। लेकिन वह चिंतित और परेशान है। उसने कहा, 'नींद नहीं आती। नींद आ कैसे सकती है? यह कोई रहने की जगह है?' और उसका क्रोध.....

लेकिन गुरु रात बड़ी गहरी नींद सोया। जब चार बजे उठा तो उसने एक गीत लिखा। क्योंकि आधे झोंपड़े में से चाँद दिखायी पड़ रहा था। और उसने लिखा कि परमात्मा, अगर हमें पहले से पता होता, तो हम तेरी आँधी को भी इतना कष्ट न देते कि आधा छप्पर अलग करे। हम खुद ही अलग कर देते। अब तक हम नासमझी में रहे। सो भी सकते हैं, चाँद भी देख सकते हैं। आधा छप्पर दूर जो हो गया! तेरा आकाश इतने निकट और हम उसे छप्पर से रोके रहे। तेरा चाँद इतने निकट, कितनी बार आया और गया, और हम उसे छप्पर से रोके रहे। हमें पता ही न था। तू माफ करना। अन्यथा हम तेरी आँधी को यह कष्ट न देते, हम खुद ही आधा अलग कर देते।

यह जो गीत गा सकता है, यह संतोष है। मजबूरी में नहीं, असहाय अवस्था में नहीं। वह तो नपुंसकों का मार्ग है। वे तो हमेशा ही ऐसा करते हैं। जब सब छिन जाता है, तब वे संतोष करते हैं। काश, उन्होंने संतोष पहले कर लिया होता! तो कुछ भी छिन नहीं सकता था। क्योंकि संतोषी से तुम कुछ भी छीन नहीं सकते। तुम छीनो, लेकिन तुम संतोषी से कुछ छीन नहीं सकते। तुम उसका संतोष नहीं छीन सकते, तुम क्या छीनोगे उससे कुछ? तुम उससे सब छीन लोगे लेकिन संतोषी वहीं रहेगा जहाँ था, क्योंकि उसकी संपदा भीतरी है।

नानक कहते हैं, 'संतोष की मुद्रा बना, लज्जा की मुद्रा बना, योगी! प्रतिष्ठा की झोली बना।'

वे भीतर के संकेत दे रहे हैं। असल में गोरखनाथ ने भी वही कहा था। बाहर के संकेत भीतर की याददाश्त के लिए थे। भीतर की बात तो भूल गयी। कमीज में लगी गाँठ हाथ में रह गयी। यह भूल ही गये, कि बाजार लेने क्या आए थे ? यह भी भूल गये कि गाँठ इसलिए लगायी थी कि बाजार में कुछ याद रखना है। बस, गाँठ हाथ रह गयी। अब गाँठ को ढो रहे हैं। गाँठ अपने आप में बोझ है।

लज्जा शब्द को समझने की कोशिश करें। क्योंकि शब्द बहुत गहरा है, और बहुत पूर्वीय है। पश्चिम की भाषाओं में ऐसा कोई शब्द नहीं है। क्योंकि लज्जा एक पूरब की अपनी अनूठी खोज है। लज्जा को हमने स्त्रैण व्यक्तित्व की आखिरी परम अवस्था माना है। वेश्या को हम निर्लज्ज कहते हैं, क्योंकि वह शरीर को बेच रही है। शरीर को बेचना निर्लज्ज दशा है। क्योंकि शरीर परमात्मा का मंदिर है, बेचने के लिए नहीं है। यह तो आराधना के लिए है। यह ठीकरों के लिए गंवाने के लिए नहीं है। यह तो परम-धन के पाने की सीढ़ी है। तो जो भी शरीर को बेच रहे हैं चाहे वेश्याएँ हों, और चाहे दुकानदार हों, और चाहे तुम हो, अगर तुम शरीर को बेच रहे हो और ठीकरे कमा रहे हो, तो निर्लज्ज हो।

निर्लज्ज का एक ही अर्थ होता है, कि जो शरीर को परमात्मा के खोजने के अतिरिक्त और किसी तरह से बेच रहा है। उसके जीवन में कोई लज्जा नहीं है। तुम वेश्या की तो निंदा करते हो लेकिन दूसरे लोगों की क्या हालत है ? फर्क क्या है ? अगर तुम शरीर को बेच रहे हो धन कमाने के लिए, इस संसार में इज्जत कमाने के लिए, तो वेश्या और तुम में फर्क क्या है ? वेश्या भी शरीर को बेच रही है धन कमाने के लिए, तुम भी बेच रहे हो शरीर को धन कमाने के लिए।

लज्जा की अवस्था का अर्थ है, शरीर को धन के लिए नहीं बेचना है। वह परमात्मा का मंदिर है। उसमें परमात्मा कभी अतिथि बनेगा। उसे परमात्मा के लिए प्रतीक्षा सिखानी है। और वह प्रतीक्षा निश्चित ही वैसी ही होगी जैसी प्रेयसी अपने प्रेमी के लिए करती है। और जब प्रेमी पास आता है तो प्रेयसी घूंघट डाल लेती है। छिपती है। प्रेमी के सामने अपने को प्रगट नहीं करती, क्योंकि प्रगट करना तो निर्लज्ज अवस्था है।

छिपाती है, अवगुंठित होती है। प्रेमी के लिए प्रतीक्षा करती है, प्रेमी को निमंत्रण भेजती है, जब प्रेमी पास आता है तो अपने को छिपाती है। क्योंकि प्रेमी के सामने प्रकट करना तो अहंकार होगा। सब प्रकट करने की इच्छा एक्ज़ीबिशन, अहंकार है। परमात्मा के सामने क्या तुम अपने को प्रगट करना चाहोगे ? तुम परमात्मा के सामने तो छिप जाओगे, जमीन में गड़ जाओगे। तुम तो परमात्मा के सामने घूंघटों में छिप जाओगे। परमात्मा के सामने अपने को प्रकट

करने का भाव तो अहंकार है। वहाँ तो तुम प्रेयसी की भाँति जाओगे, पंडित की भाँति नहीं। वहाँ तो तुम ऐसे जाओगे कि पदचाप भी पता न चले। वहाँ तो तुम छुपे-छुपे जाओगे। क्योंकि तुम्हारे पास है क्या कि दिखाएँ ? लज्जा का अर्थ है, है क्या हमारे पास जो दिखाएँ ? कुछ भी तो नहीं है दिखाने को, इसलिए छिपाते हैं।

इसलिए भारत में जो स्त्री का परम गुण हमने माना है, वह लज्जा है। इसलिए भारत की स्त्रियों में जो एक ग्रेस, एक प्रसाद मिल सकता है, वह पश्चिम की स्त्रियों में नहीं मिल सकता। क्योंकि पश्चिमी स्त्री को कभी लज्जा सिखायी नहीं गयी। लज्जा दुर्गुण मालूम होती है। उसे दिखाना है, प्रदर्शन करना है, उसे बताना है, उसे आकर्षित करना है बता कर। जैसे बाजार में खड़ी है। पूरब में हमने स्त्री को लज्जा सिखायी है। छिपाना है; इससे घूंघट विकसित हुआ। घूंघट लज्जा का हिस्सा था। फिर घूंघट खो गया। और जैसे ही घूंघट खोया, लज्जा भी खोने लगी। क्योंकि घूंघट लज्जा का हिस्सा था। वह उसका बाह्य अंग था। अब हमारी स्त्री भी प्रकट कर के घूम रही है। वह चाहती है लोग देखें। सज-सँवर कर घूम रही है। और जब तुम सज-सँवर कर घूम रहे हो, लोग देखें यह भीतर आकांक्षा है, तो तुम बाजार में खड़े हो गये।

नानक कहते हैं, परमात्मा के सामने हमारी लज्जा वैसी ही होगी जैसी प्रेमी के सामने प्रेयसी की होती है। वह अपने को छिपाएगी। दिखाने योग्य क्या है ? इसलिए लज्जा। बताने योग्य क्या है ? इसलिए लज्जा, इसलिए घूंघट है।

और ध्यान रखना, जितनी स्त्री लज्जावान होगी उतनी आकर्षक हो जाती है। जितनी प्रगट होगी, उतना आकर्षण खो जाता है। पश्चिम में स्त्री का आकर्षण खो गया है, खो ही जाएगा। क्योंकि जो चीज बाजार में खड़ी है उसका आकर्षण समाप्त हो जाएगा।

और परमात्मा के सामने तो हम बेचने को नहीं गये हैं अपने को। और परमात्मा के पास हमें क्या है दिखाने को ? इसलिए परमात्मा के सामने तो हम प्रेयसी की तरह जाएँगे। कँपते पैरों से, कि पता नहीं स्वीकार होंगे या नहीं ! संकोच से, कि पता नहीं उसके योग्य हो पाएँगे कि नहीं। लज्जा से, क्योंकि दिखाने योग्य कुछ भी नहीं है।

लज्जा बड़ी विनम्र दशा है। और उतनी विनम्रता से कोई उसके पास आएगा तो ही अंगीकार होगा। और जो भक्त जितना अपने को छिपाता है, उतना आकर्षक हो जाता है परमात्मा के लिए। और जो भक्त अपने को जितना खोलता है और ढोल पीटता है कि देखो मैं पूजा कर रहा हूँ, देखो मैं प्रार्थना कर रहा हूँ, कि देखो मैं मंदिर जा रहा हूँ, कि देखो मैंने कितने जप-तप किये, वह

उतना ही दूर हो जाता है। क्योंकि यह कोई अहंकार नहीं है; परमात्मा से मिलन एक निरअहंकार चित्त की बात है।

नानक कहते हैं, कि संतोष, लज्जा की मुद्रा बनाओ। प्रतिष्ठा की झोली धारण करो।

किस प्रतिष्ठा की ? जैसे ही किसी व्यक्ति को यह एहसास होना शुरू होता है कि मैं शरीर नहीं; आत्मा हूँ; प्रतिष्ठा मिली। आत्म-भाव प्रतिष्ठा है। क्योंकि शरीर में तो तुम प्रतिष्ठित हो ही नहीं सकते। वह रास्ते का पड़ाव है, मंजिल नहीं है। वहाँ कैसी प्रतिष्ठा ? वहाँ क्षण भर को रुक सकते हो, वह घर नहीं बन सकता। प्रतिष्ठित का अर्थ है, जिसने उसको पा लिया जो शाश्वत है। जिसने उसमें अपनी जड़ें जमा लीं जो कभी न मिटेगा। 'आदि सचु, जुगादि सचु'--जो सदा सच है। जिसने उसमें जड़ डाल दी, वह प्रतिष्ठित हुआ। और जो सदा झूठ है, जो उसके साथ तिरता रहा, उसकी कैसी प्रतिष्ठा ?

तुम जब तक परमात्मा के साथ खड़े न हो जाओगे तब तक प्रतिष्ठित नहीं हो। तब तक तुम राज-सिंहासनों पर बैठ जाओ भला, कोई प्रतिष्ठा न मिलेगी। इस संसार की कोई प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा नहीं है। क्योंकि इस संसार में तो सब लहरों का खेल है। चार दिन बाद कौन तुम्हें याद रखेगा ? आज भी जब तुम सिंहासन पर हो कौन तुम्हारी फिक्र करता है ?

सिंहासन पर बैठे लोगों की हालत देखो ! जहाँ जाएँ वहाँ जूते फेंके जाएँ, जहाँ जाएँ वहाँ पत्थरों से स्वागत हो। अगर तुमने फूल चाहे तो पत्थर मिलते हैं। अगर तुमने आदर चाहा तो अपमान मिलता है। तुम जबरदस्ती पद पर बैठे, तो कोई न कोई तुम्हारी टाँग खींचता ही रहता है। राजनीतिज्ञों से पूछो, अखबारों में भला नाम छपते हों, चर्चा होती हो, लेकिन उसी मात्रा में निंदा चलती है। उसी मात्रा में अपमान चलता है। इस जगत में तुमने अगर जीतना चाहा तो तुम हार ही जाओगे। और तुमने आदर चाहा तो अपमान पाओगे। प्रतिष्ठा तो सिर्फ परमात्मा के साथ होने में है।

तो नानक कहते हैं, प्रतिष्ठा की झोली धारण करो। यह अकड़ और अहंकार की झोली लेकर मत चलो। निरअहंकार, लज्जा, और संतोष--और तुम्हारी जड़ें परमात्मा में पहुँचने लगेंगी।

'ध्यान की विभूति बनाओ, योगी। राख लपेटने से कुछ भी न होगा।' भीतर ध्यान को उपलब्ध करो। वही तुम्हारी राख हो। उसीको तुम लपेटो।

'मृत्यु को गुदड़ी बनाओ कि उसकी याद बनी रहे सदा।'

जिसको मृत्यु की याद बनी रहती है, वह परमात्मा को नहीं भूल सकता।

और जिसको मृत्यु भूल गयी, वह परमात्मा को भूल जाता है। और हम सब मृत्यु को बिलकुल भूल कर रहते हैं। हम ऐसा मान कर चलते हैं कि हमें मरना ही नहीं है। इसलिए तो परमात्मा की याद भूल जाती है।

'मृत्यु को गुदड़ी बनाओ, योगी। काया को कुमारी।'

नाथ-संप्रदाय और तांत्रिकों के बहुत से संप्रदाय हैं जो साधना के लिए किसी कुँवारी स्त्री को खोजते हैं। क्योंकि कुँवारी स्त्री से विशेष तांत्रिक-संभोग के माध्यम से ध्यान की उपलब्धि हो सकती है। यह बात ठीक है। यह हो सकता है। तंत्र ने इसका मार्ग खोजा है।

लेकिन आदमी तो बेईमान है। तंत्र के नाम पर हजारों योगी और तांत्रिक कुँवारियों को लेकर घूम रहे थे। लाखों लोग थे जिनको तंत्र की आड़ मिल गयी, बताने को भी हो गया, कि हम तांत्रिक हैं। और यह जो कुँवारी है हमारे साथ, यह तंत्र की साथिनी है। और इस नाम से बहुत व्यभिचार चला। बौद्ध उखड़े इस व्यभिचार के कारण। और तांत्रिकों की एक बड़ी परंपरा खो गयी इस व्यभिचार के कारण। आदमी तो बड़ा होशियार है। वह हर चीज में आड़ खोज लेता है। उसने देखा कि यह तो बड़ी आड़ मिल गयी, कि हम तंत्र के साधक हैं। तो हम किसी भी कुँवारी स्त्री को लेकर साथ चल सकते हैं।

नानक कहते हैं, 'काया को कुँवारी बनाओ, योगी।'

नानक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यहाँ कह रहे हैं। और वह तंत्र का ही गहरे से गहरा सूत्र है। वह यह है, कि तुम्हारी काया ही तुम्हारी साथिनी बन जाए। और तुम्हारी आत्मा पुरुष हो और तुम्हारी काया कुँवारी हो। इन दोनों के बीच भी संभोग हो सकता है। और वह जो संभोग है, वह परम संभोग है। उससे ही कोई मुक्ति को उपलब्ध होगा। तंत्र का भी सूत्र तो यही था कि बाहर की कुँवारी तो केवल सहारा है। उस सहारे से धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुम्हें भीतर की कुँवारी को खोज लेना है।

हर पुरुष के भीतर छिपी स्त्री है। हर स्त्री के भीतर छिपा पुरुष है। और जब तुम्हारे दोनों स्त्री और पुरुष का भीतर मिलन होता है, तो समाधि की आखिरी अवस्था फलित होती है।

अब आधुनिक मनोविज्ञान भी इसे स्वीकार करता है कि आदमी 'बायो-सेक्सुअल है।' होगा भी; क्योंकि हरेक का जन्म माँ और बाप के मिलन से होता है। तो तुम्हारे भीतर माँ का हिस्सा भी है, बाप का हिस्सा भी है। तुम्हारे भीतर स्त्री भी है, पुरुष भी है। और अगर दोनों ऊर्जाएँ भीतर मिल जाएँ, तो बाहर का संभोग तो क्षण भर का है, यह संभोग शाश्वत हो सकता है।

तो नानक तंत्र की बड़ी गहरी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, 'योगी, काया को कुँवारी बनाओ। प्रतीति को मुक्ति का डंडा बनाओ। सारी जमात को एक समझना ही नाथ-पंथ है। मन को जीतना ही जगत का जीतना है। यदि प्रणाम ही करना हो उसको ही प्रणाम करो, वह आदि है, शुद्ध है, अनादि है, अनाहत है और युग-युग से एक ही वेशवाला है।'

मुंदा, संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूती ।
किथा कालु कुवारी काइआ जुगति डंडा परतीति ॥
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीत ।
आदेसु तिसै आदेसु ॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति
जुगु जुगु एको वेसु ॥

जो सदा एक ही वेश में है। जो एक सा है, उसको ही प्रणाम करो। किसी और को प्रणाम करने से कुछ भी न होगा। मंदिरों में, मस्जिदों में कितने ही प्रणाम करो, लेकिन अगर प्रणाम उस एक की तरफ ही नहीं जा रहे हैं तो व्यर्थ हैं। कहीं भी प्रणाम उसीको हो। वह याद बनी रहे।

इसे थोड़ा ख्याल रखना। जब गुरु को भी प्रणाम करो, तब भी ध्यान रखना कि गुरु के माध्यम से प्रणाम उसीको है—'आदेसु तिसै आदेसु'। मंदिर की मूर्ति के सामने झुको, तो भी याद रखना कि प्रणाम उसीको है—'आदेसु तिसै आदेसु।' उसीको प्रणाम है। तो फिर मूर्ति भी सहयोगी है।

अन्यथा मूर्ति भी खतरा है, और गुरु भी खतरा है। अगर प्रणाम उसको ही नहीं है, तो जिसको भी तुम प्रणाम करोगे वहीं बंधन पैदा हो जाएगा। वहीं रुकावट खड़ी हो जाएगी। और अगर उसको ही प्रमाण करना तुम जान जाओ, तो हर पत्थर से द्वार है। क्योंकि प्रणाम है उसको। कहाँ से तुम कर रहे हो इसका क्या मतलब है? कहीं भी तुम झुको; मस्जिद हो गुरुद्वारा हो, मंदिर हो; चर्च हो; पर एक बात ख्याल रहे कि—'आदेसु तिसै आदेसु।' प्रणाम उसको ही है।

'उसको, जो आदि है, शुद्ध है, अनादि है, अनाहद है। युग-युग से एक ही वेशवाला है।'

'ज्ञान को भोग बनाओ, योगी, और दया को भंडारी। घट–घट में जो अनाहद नाद बजता है उसे शंख बनाओ। वही नाथ है जिसमें सब नथे-गुथे हैं। ऋद्धि-सिद्धि तो घटिया स्वाद है। संयोग और वियोग ये दोनों समस्त कार्य चलाते हैं। और भाग्य-लेख के मुताबिक अपना-अपना दाय प्राप्त होता है। यदि प्रणाम ही करना हो तो उसको ही प्रणाम करो। वह आदि है, शुद्ध है, अनादि है, अनाहद है और युग-युग से एक ही वेशवाला है।'

ज्ञान को भोग बनाओ, दया को भंडारी। ज्ञान और दया; प्रज्ञा और करुणा दो पंख हैं। जिसने दोनों साध लिए, वह परमात्मा के आकाश में उड़ने लगा। भीतर ज्ञान, बाहर दया। क्योंकि खतरा है, कि भीतर अगर अकेला ज्ञान हो और बाहर दया न हो, तो भी तुम पूर्ण न हो पाओगे। तो भी तुम अधूरे रह जाओगे। एक पंख से कोई कभी उड़ा है? अगर बाहर दया हो और भीतर ज्ञान न हो, तो भी तुम अधूरे रह जाओगे। एक पैर से कोई कभी चला है?

ज्ञान का अर्थ है, स्वयं को जानना; दया का अर्थ है दूसरों को पहचानना। तब पूरी घटना घट जाती है। क्योंकि ज्ञान स्वयं को जानता है, जानते ही पाता है कि मैं ही सब के भीतर हूँ। जिस ज्ञान ने यह न पाया कि मैं ही सब के भीतर हूँ वह ज्ञान ज्ञान नहीं है।

तो जब ज्ञान का वास्तविक दीया जलेगा, तब दया का प्रकाश सब पर पड़ेगा ही। दीया जलेगा, तो दीया कोई अपने को ही थोड़ा प्रकाशित करेगा! दूसरों पर भी रोशनी पड़ेगी। वह जो दीये की रोशनी दूसरों पर पड़ रही है, उसी का नाम दया है। एक अपरंपार करुणा पैदा होगी, जब ज्ञान पैदा होगा। तुम लुटाओगे, बाँटोगे। तब तुम सब तरह का सहारा दोगे दूसरे को। तब तुमसे जो भी बन सकेगा, दूसरे को भी ले जाने की प्रक्रिया करोगे, उस परमात्मा तक पहुँचाने की। सभी भटक रहे हैं। तब तुम अपने ज्ञान में ही विलीन न हो जाओगे। क्योंकि वह भी स्वार्थ होगा। वह भी होगा कि अभी तुम पुराने से बँधे हो। अभी अहंकार गया नहीं। मगर यह घटना घटना है, इसलिए नानक याद दिलाते हैं।

ऐसे लोग हैं जो ज्ञान में डूब गये हैं। जैसे जैनों के संन्यासी हैं, मुनि हैं। उनका मतलब अपने से है। उन्हें कोई मतलब नहीं किसीसे। क्या हो रहा है बाहर, क्या घट रहा है दूसरों को, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। वे अपने में बंद हैं। वे अपना ही साध रहे हैं, अपनी मुक्ति साध रहे हैं। अपना ही उनका घेरा है, बस! इसलिए बाहर उन्हें रत्ती भर फिक्र नहीं है। और उनकी दया भी अगर है, तो वह भी ज्ञान ही साधने के लिए। दया भी उनकी झूठी है।

अगर जैन मुनि पाँव सम्हाल कर चलता है, कि चींटी न मर जाए, तो तुम यह मत सोचना, कि चींटी पर दया के कारण वह ऐसा कर रहा है। महावीर ने दया के कारण किया था। जैन मुनि नहीं कर रहा है। वह तो इसलिए सम्हाल-सम्हाल कर चल रहा है, कि कहीं पाप न हो जाए।

फर्क समझ लेना। उसको डर यह है कि चींटी मर गयी तो पाप होगा। पाप होगा तो भटकना पड़ेगा। लेकिन नजर अपने पर है, चींटी पर नहीं। अगर चींटी के मरने से पाप न होता हो, तो उसको रत्ती भर फिक्र नहीं। लेकिन पाप होता है,

इसलिए वह पानी भी छान कर पी रहा है। पानी छान कर इसलिए नहीं पी रहा है, कि पानी के कीटाणु मर जाएंगे तो उनको कष्ट होगा। नजर उसकी यह है, कि किसीको कष्ट देने से पाप होता है। और पाप होने से आदमी भटकता हैं। तो ऊपर से वह ठीक वैसे ही कर रहा है जैसा महावीर करते थे; लेकिन भीतर उसकी नजर अलग है, उसका स्वार्थ भिन्न है। वह यही देख रहा है चौबीस घंटे, कि वही करो जिससे अपनी मुक्ति हो। वह मत करो, जिससे कि नरक हो जाए।

तो इसमें दया भी इसकी झूठी है, वास्तविक नहीं। क्योंकि दया तो वास्तविक तभी होगी, कि अगर तुम्हें पहुँचाने में मुझे नरक भी जाना पड़े, तो भी मैं तैयार हूँ। दया तभी वास्तविक होगी। अभी यह तो अपना ही स्वार्थ का हिसाब है। वह तो गणित बिठा रहा है, कि वही करो जिससे अपना आनंद मिले, मोक्ष मिले। ऐसा कोई काम भूलकर मत करना, जिससे मोक्ष खो जाए। तो यह तो ठीक व्यापारी की नजर है।

और, इसलिए कुछ आश्चर्य नहीं कि महावीर के पीछे जो लोग चले, वे सभी व्यापारी हो गये। महावीर खुद तो क्षत्रिय थे। लेकिन उनके पीछे की जमात बनिया हो गयी। थोड़ी हैरानी की बात है, क्या हुआ? जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। और जमात क्यों बनिया हो गयी? क्या कारण हुआ? कौन सी दुर्घटना घटी कि पूरी जमात कायर, डरपोक और दूकान पर सिमट गयी? इस घटना में घटना छिपी है, कि महावीर की दया तो दया थी लेकिन होशियार और पीछे चलने वाले लोगों की दया गणित हो गयी, व्यवसाय हो गयी। उन्होंने व्यवसाय कर लिया। उन्होंने वे सब काम छोड़ दिये जिनसे पाप हो सकता था। खेती छोड़ दी, क्योंकि उससे पौधे मरेंगे। पौधे उखाड़ने पड़ेंगे। युद्ध के मैदान पर जाना छोड़ दिया, क्योंकि उसमें हिंसा होगी। तो फिर कुछ बचा नहीं उपाय। एक ही उपाय बचा, कि वे व्यवसायी हो जाएँ। वे उसमें सिमट गये।

यह बहुत सोचने जैसी बात है कि भारत में जितने ज्ञानी पुरुष हुए उनमें से नब्बे प्रतिशत क्षत्रिय हैं। नानक खुद भी क्षत्रिय हैं। नब्बे प्रतिशत! कृष्ण, राम, महावीर, बुद्ध सब क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय में कुछ गुण हैं, जिसके कारण ज्ञान तक पहुँचने में कुछ आसानी मालूम होती है। वह गुण है साहस का, हिम्मत का। वह खतरा मोल ले सकता है, और दाँव पर लगा सकता है। इतने ब्राह्मण भी नहीं पहुँचे। इतने कोई जाति के लोग नहीं पहुँचे परम सत्य तक, जितने क्षत्रिय पहुँचे।

कारण इतना ही है, कि क्षत्रिय दाँव पर लगा सकता है। वह खतरा मोल ले सकता है। और क्षत्रिय को मौत भूलनी संभव नहीं है। क्योंकि वह हर क्षण द्वार पर खड़ी है। और मौत की जिसे याद है, उसे परमात्मा की याद आनी शुरू हो जाती है। क्षत्रिय का धंधा तो मौत का धंधा है। वहाँ तो काम ही मौत से है। वह व्यवसाय ही मौत का है। वहाँ प्रतिपल, किसी भी क्षण मौत हो सकती है। और जिसको मौत की याद है उसे परमात्मा का विस्मरण नहीं हो सकता। क्योंकि परमात्मा की याद करनी ही पड़ेगी। वह एन्टी-डोट है। जब मौत की याद गहरी हो तो क्या करोगे? किसको याद करोगे? किसको पुकारोगे? कौन बचाएगा? तब अमृत स्मृति आनी स्वाभाविक हो जाती है।

'ज्ञान को भोग बनाओ, दया को भंडारी।'

ये ऊपर के भंडार चलाने से कुछ भी न होगा। लेकिन ऊपर के ही भंडार चल रहे हैं। नाथ-संप्रदाय भंडार चलाते थे, सिक्ख लंगर चलाते हैं। बाकी है सब मामला ऊपर का। भंडार को लंगर कहो, क्या फर्क पड़ेगा?

नानक कहते हैं, दया को लंगर बनाओ। तुम्हारे जीवन में दया हो प्रतिपल। तुम दूसरे का भी विचार करो। तुम दूसरे पर भी ध्यान दो। तुम जो भी कर रहे हो उसमें यह भी ख्याल रखो कि दूसरे का भी हित हो, कल्याण हो, मंगल हो। तुम अपना ज्ञान खोजो, लेकिन दूसरे के ज्ञान खोजने में भी सहयोगी बनो। तुम मोक्ष की तरफ जाओ, लेकिन दूसरों को भी साथ ले चलो। और ध्यान रखना, जितना ही तुमने दोनों साधे--बाहर दया, भीतर ज्ञान--उतने ही शीघ्र तुम पहुँच जाओगे। क्योंकि एक पंख से कोई कभी नहीं पहुँचा। और ये दोनों पंख साधने जरूरी हैं।

दूसरी तरफ ईसाई हैं। एक तरफ जैन, दूसरी तरफ ईसाई हैं। वे सेवा में लगे हैं। अस्पताल, स्कूल, खोलते चले जाते हैं सारी दुनिया में। उन जैसी सेवा कोई भी नहीं करता। लेकिन ज्ञान की उन्हें फिक्र ही नहीं है। और उन्हें भी फिक्र न होने का कारण है। क्योंकि उनको यह भ्रांति हो गयी है, जैसे जैनों को भ्रांति कि अपने को समझ लेना काफी है, उनको यह भ्रांति है कि सेवा कर देना काफी है। जिसने सेवा की, वह मोक्ष पा लेगा। उनको भी फिक्र नहीं है, कि जिस कोढ़ी के वे पैर दबा रहे हैं, या जिस बीमार का इलाज कर रहे हैं, या जिस अनाथ बच्चे को पढ़ा रहे हैं, इसको पढ़ाने से कुछ लाभ होनेवाला है? उनको भी इसकी फिक्र नहीं है। उनको कुल फिक्र इतनी है कि जितना तुम दूसरों को लाभ दोगे, उतना तुम्हारा मोक्ष निश्चित है। आदमी का स्वार्थ बड़ा अद्भुत है। ज्ञान में से स्वार्थ निकाल लेता है। दया में से स्वार्थ निकाल लेता है।

एक बड़ी पुरानी चीनी कथा है। एक गाँव में मेला भरा हुआ था। और एक छोटा सा कुँआ था उस मेले में, जिसमें एक आदमी भूल से गिर गया। वह आदमी चिल्लाने लगा, कि मुझे बचाओ। मेले में बड़ा शोरगुल था, कौन सुने? लोग अपने काम-धंधे में लगे हुए थे। चीजें बिकी जा रही थीं, खरीदी जा रही थीं।

और साँझ होने के करीब थी। लोग जल्दी में थे। मेला बंद होने को जा रहा था। कौन सुने ? लेकिन एक कन्फ्यूशियस को मानने वाला संन्यासी कुएँ के पास आकर बैठा। उसे आवाज सुनायी पड़ी।

उसने कहा, भाई, चुप रह। मैं अभी जाता हूँ और पूरी कोशिश करूँगा। क्योंकि यह बात कानून के विपरीत है कि बिना दीवाल के और कुआँ बनाया जाए। उसपर कोई घाट नहीं था कुएँ पर। इसलिए तू गिर गया है। लेकिन पक्का भरोसा रख कि हम क्रांति कर देंगे पूरे मुल्क में, और हर कुएँ पर घाट बनवा देंगे।

क्योंकि कन्फ्यूशियस नियम को माननेवाला है। समाज, व्यवस्था, नियम—कन्फ्यूशियस रिफॉर्मर है, रिवोल्यूशनरी है। सुधारक, क्रांतिकारी है। उसने कहा कि, तू बिलकुल फिक्र मत कर।

उस आदमी ने कहा, 'इससे क्या होगा कि कुओं पर घाट बन जाएँगे, मैं तो मर रहा हूँ।'

उस कन्फ्यूशियस को मानने वाले ने कहा, "सवाल तेरा नहीं है। सवाल सब का है। और एक-एक आदमी का सवाल नहीं है, समाज का सवाल है। व्यक्ति को बचाने का कहाँ उपाय है ? समाज को बचाना होगा, तो ही व्यक्ति बचेंगे।' वह गया कि क्रांति फैला दे। और खड़ा होकर चिल्लाने लगा, कि हर कुएँ पर घाट होना चाहिए।

उसके पीछे एक बौद्ध-भिक्षु आकर उस घाट पर बैठा। वह आदमी अभी भी चिल्ला रहा था। बौद्ध-भिक्षु नीचे झुक कर देखा और उसने कहा,

'भाई, तुमने पिछले जन्म में कुछ कर्म किये होंगे, जिसका फल भोग रहे हो। और अपना-अपना फल सभी को भोगना पड़ता है। इसमें कुछ किया नहीं जा सकता।'

उस आदमी ने कहा, 'यह तुम पीछे समझाना। मुझे कुएँ से बाहर निकाल दो।'

पर उसने कहा, 'मैं तो कर्मों का त्याग कर चुका हूँ। क्योंकि कर्मों से बंधन होता है। बंधन से आदमी संसार में भटकता है। और मैं सब कर्मों का त्याग कर दिया हूँ। मैं तो आवागमन से छूटना चाहता हूँ। अब तुझे बचाकर मैं झंझट नहीं लूँगा। और फिर क्या पक्का है कि तू बच कर न मालूम क्या करे! तू किसी की हत्या कर दे तो उसमें मैं भागीदार हो गया। न तुझे बचाता, न तू हत्या करता। किसी के घर में आग लगा दे। तो मैं तेरे पीछे कहाँ फँसने जाऊँ ? और तू शांत रह, क्योंकि तू, इस कुएँ पर मैं ध्यान करने रुका हूँ, और तू व्यर्थ उपद्रव मत मचा। तू अपना भोग, मुझे अपना भोगने दे। अपना-अपना! कोई किसीके मार्ग पर न आता है, न आ सकता है।'

ज्यादा शोरगुल सुनकर भिक्षु वहाँ से चला गया क्योंकि वह ध्यान नहीं करने देगा। और ध्यान बड़ी चीज है। अब ऐसे एक-एक कुएँ में बचाने जाने लगोगे तो कितने कुएँ हैं! कितने लोग हैं, कितने मेले हैं! तुम क्या कर पाओगे ? अपना ध्यान ही सम्हाल लिया कि सब सम्हल गया।

उसके पीछे एक ईसाई मिशनरी आकर उस कुएँ पर रुका। उसने आवाज सुनी और जल्दी अपने झोले से एक रस्सी निकाली, कुएँ में डाली। कुएँ में उतर कर गया, और उस आदमी को बाहर निकाल कर आया। उस आदमी ने उसके पैर पकड़ लिए और कहा कि भाई, तू ही एक सच्चा धार्मिक है। बाकी कन्फ्यूशियस को मानने वाला गया, बुद्ध को मानने वाला गया, किसी ने हमारी सुनी भी नहीं।

उस ईसाई ने कहा, कि भाई, बस एक ही प्रार्थना है कि तू गिरते रहना-ताकि हम बचाते रहें। हम हमेशा रस्सी अपने झोली में रखते हैं। क्योंकि न तुम गिरोगे, न हम बचाएँगे, तो मोक्ष कैसे जाएँगे ?

किसीको किसीसे मतलब नहीं है। आदमी का स्वार्थ बड़ा गहन है। बचाने, वाला भी अपने लिए बचा रहा है। नहीं बचानेवाला भी अपने लिए नहीं बचा रहा है। ध्यान करनेवाला अपनी फिक्र कर रहा है। सेवा करनेवाला भी अपनी फिक्र कर रहा है।

और दया का अर्थ है, दूसरे की फिक्र। 'केयरिंग फॉर अदर्स'। दूसरा भी जीवंत है। उसका भी मूल्य है। उसका मूल्य उतना ही है, जितना तुम्हारा मूल्य है। रत्तीभर कम नहीं, रत्ती भर ज्यादा नहीं। और दूसरे से परमात्मा प्रकट हुआ है। तो तुम अपने भीतर के परमात्मा को देखना, वह ज्ञान है। और तुम दूसरे के परमात्मा को मत भूलना, वह करुणा, वह दया है।

नानक कहते हैं, 'ज्ञान को भोग बना, दया को भंडारी। घट-घट में जो अनाहद नाद बजता है, उसे ही शंख बनाओ, योगी।'

शंखों को फूँकने से क्या होगा ? वह अंतर नाद बज रहा है, सतत, जो अनाहद, बिना किसी कारण के, जो सदा भीतर बज ही रहा है, उसीको बजाओ। और शंखों को बजाने से क्या होगा ?

'वही नाथ है, जिसमें सब नथे-गुथे हैं। उसकी ही याद करो। ऋद्धि-सिद्धि तो घटिया स्वाद हैं।'

तुमने कुछ चमत्कार कर लिए, कि हाथ से राख पैदा कर ली, कि सत्य साईं बाबा हो गये, कि ताबीज निकाल कर किसीको दे दिया, इससे क्या होगा ? ऋद्धि-सिद्धि तो घटिया स्वाद है।

क्यों ? क्योंकि ऋद्धि-सिद्धि भी अहंकार को ही भरते हैं। उनसे भी तुम्हारी अकड़ मजबूत होती है, कि मैं कुछ विशेष हूँ। मैं कुछ खास हूँ। तो धर्म की सिद्धि

तो एक ही है, कि मैं ना-कुछ हूँ। और जिसने इस 'ना-कुछ' होने को जान लिया, वह सब कुछ हो गया। जो इधर मिटा, वह परमात्मा हो गया। उससे कम पर राजी मत होना। उससे कम पर राजी हुए तो घटिया स्वाद पर राजी हो गये।

क्या होगा, कितने ही ताबीज हाथ से पैदा करो ? क्या होगा तुम्हारी मदारीगीरी से ? न तुम्हारा कोई हित है, न किसी दूसरे का कोई हित है। हाँ, इस बाजार में थोड़ी बहुत प्रतिष्ठा मिल जाएगी। लेकिन इस बाजार की प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा ही कहाँ है ?

और उस परमात्मा के सामने तुम्हारे हाथ से निकली हुई ताबीजों का क्या मूल्य होगा ? तुम्हारे हाथ से पैदा हुई राख का क्या मूल्य है ? जिस परमात्मा से सारी सृष्टि पैदा हो रही है, वहाँ तुम अपनी राख पैदा करके सोचते हो, परमात्मा में तुम्हारी प्रतिष्ठा हो जाएगी ? तुम्हारी तरकीबें मनुष्य को धोखा देने में भला समर्थ हो जाएँ और तुम्हारे अहंकार को थोड़ी तृप्ति मिल जाए, लेकिन इससे कुछ आत्मज्ञान नहीं होगा।

इसलिए नानक कहते हैं, कि ऋद्धि-सिद्धि तो घटिया स्वाद हैं। संयोग और वियोग ये दोनों समस्त कार्य चलाते हैं। तो एक ही सिद्धि है, कि संयोग और वियोग से मुक्त हो जाना। जो चीजें जुड़ती हैं वे अलग होंगी। जो चीजें बनती हैं, वे मिटेंगी। जिसका जन्म हुआ है, वह मरेगा। जो पाया है, वह खो जाएगा। जो आज संपत्ति है, वह कल विपत्ति हो जाएगी। जो आज सुख है, वह कल दुःख हो जाएगा। हर चीज अपने विपरीत में चली जाती है। संयोग और वियोग से यह चाक चलता है। जिससे आज मिलन हुआ है, कल वह छूट जाएगा।

जो इस सत्य को समझ लेता है, कि संसार का चाक संयोग और वियोग से चलता है, विपरीत से चलता है, ऑपोज़िट से; और दोनों के पार अपने को सँभाल लेता है--न तो संयोग में सुखी होता है और न वियोग में दुःखी होता है--यही एक सिद्धि है। इसको ही साध लो।

'और भाग्य के लेख के मुताबिक अपना-अपना दाय प्राप्त होता है।'

इसलिए जो मिले, जो घटे, उसमें शांत रहो। वह तुहारे भाग्य का हिस्सा है। ऐसा होना था, इसलिए हुआ है। जो होना था, वही हुआ, इसलिए क्या असंतोष ? इसलिए कैसा रोना-धोना ? इसलिए किससे शिकायत ? कैसी शिकायत ? इसलिए जो भाग्य में हो, उसे चुपचाप स्वीकार करना। और संयोग और वियोग से अपने को मुक्त करते चले जाओ। यही सिद्धि है। बाकी सब घटिया स्वाद हैं।

'यदि प्रणाम ही करना हो तो उसको ही प्रणाम करो; वह आदि है, शुद्ध है, अनादि है, अनाहद है, युग-युग से एक ही वेशवाला है।'

• • •

जुग जुग एको वेसु

प्रवचन १५, दिनांक ५-१२-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना.

पउड़ी : ३०

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै
जिव होवै फुरमाणु ।
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै
बहुता एहु विडाणु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ॥
आदि अनील अनादि अनाहतु
जुग जुग एको वेसु ॥

पउड़ी : ३१

आसणु लोइ लोइ भंडार ।
जो किछु पाइआ सु एका वार ॥
करि करि वेखै सिरजनहार ।
नानक सचे की साची कार ॥
आदेसु तिसै आदेसु ॥
आदि अनील अनादि अनाहतु ।
जुग जुग एको वेसु ॥

परमात्मा की खोज में, उसी मार्ग से वापिस जाना होगा, जिस मार्ग से परमात्मा संसार तक आया है। परमात्मा जिस भाँति सृष्टि बन गया है ठीक उससे विपरीत यात्रा करनी होगी। मार्ग तो वही होगा, दिशा बिलकुल बदल जाएगी।

आप अपने घर से यहाँ तक आए हैं। लौटते समय भी उसी रास्ते से लौटेंगे। रास्ता वही होगा, आप वही होंगे, पैर वही होंगे, चलने की शक्ति वही होगी, सिर्फ दिशा भिन्न होगी। यहाँ आते वक्त घर की तरफ पीठ थी, जाते समय घर की तरफ मुँह होगा।

सृष्टि तक परमातमा जिस तरह उतरा है, उसी भाँति तुम्हें वापिस लौटना होगा। आते समय परमात्मा की तरफ पीठ थी, जाते समय मुँह होगा। इसलिए विमुखता संसार में उतरने का मार्ग है, और परमात्मा की तरफ उन्मुखता उसके तक पहुँचने का मार्ग है। सीढ़ी वही, राह वही, सभी कुछ वही है सिर्फ दिशा बदल जाती है।

कैसे परमात्मा सृष्टि हुआ है, इस संबंध में नानक का यह सूत्र है। ये सूत्र, जिन्होंने भी उसकी खोज की है, ऐसा ही पाया है। न केवल धार्मिकों ने बल्कि वैज्ञानिकों ने भी। इस संबंध में धर्म और विज्ञान की सहमति है; होगी भी।

क्योंकि धर्म इस स्रष्टा को खोजता है, विज्ञान सृष्टि को खोजता है। एक छोर से धर्म खोजता है, दूसरी छोर से विज्ञान खोजता है। विज्ञान वहाँ से खोजता है जहाँ से तुम हो, और धर्म वहाँ से खोजता है जहाँ से तुम आए हो। और जहाँ तुम जाओगे। तुम्हारा प्रारंभ और अंत धर्म खोजता है, और मध्य विज्ञान खोजता है।

वैज्ञानिक उपलब्धियों में सबसे कीमती उपलब्धि है, कि जगत एक ही तत्त्व से बना है। उस तत्त्व को वैज्ञानिक कहते हैं विद्युत्, इलेक्ट्रिसिटी। वही ऊर्जा सारे

जगत की आधारभूत शिला है। विद्युत् के कणों से ही सब कुछ निर्मित हुआ है। एक से सब बना है। इस संबंध में धर्म से विज्ञान राजी है। धर्म उस एक को कहता है परमात्मा। विज्ञान उसे कहता है ऊर्जा, एनर्जी।

शब्द का ही भेद है। लेकिन शब्द के ही भेद से तुम्हारे लिए बहुत फरक पड़ जाएगा। क्योंकि विद्युत् की तो तुम कैसे पूजा करोगे? और विद्युत् से तुम कैसे प्रेम लगाओगे? और विद्युत् को तो तुम कैसे पुकारोगे? विद्युत् की तो कैसे प्रार्थना होगी, कैसी अर्चना होगी? विद्युत् का तो तुम कैसे मंदिर बनाओगे।

विद्युत् तो मस्तिष्क में रह जाएगी। हृदय से तो उसका कोई नाता न जुड़ेगा। लेकिन परमात्मा उसी ऊर्जा का नाम है। नाम से ही सब फरक पड़ जाता है। परमात्मा कहते ही बात मस्तिष्क की नहीं रह जाती, हृदय की हो जाती है। और जहाँ हृदय आया, वहाँ जुड़ने की संभावना है। मस्तिष्क तोड़ता है, हृदय जोड़ता है। मस्तिष्क से हम अलग होते हैं, क्योंकि मस्तिष्क भेद खड़े करता है। और हृदय से हम एक होते हैं, क्योंकि हृदय के पास अभेद है। वहाँ सीमाएँ मिटती हैं, निर्मित नहीं होतीं। वहाँ परिभाषाएँ बिखरती हैं।

जैसे धर्म उस एक को परमात्मा कहता है, वैसे ही हमने ऊर्जा को व्यक्तित्व दे दिया। और अब नाता-रिश्ता हो सकता है। और नाते-रिश्ते पर सब कुछ निर्भर करेगा। क्योंकि जिससे तुम जुड़ ही नहीं सकोगे उससे तुम्हारे जीवन में रूपांतरण न होगा। विज्ञान उपयोग कर सकेगा ऊर्जा का, पूजा न कर सकेगा। और धर्म उसी ऊर्जा की पूजा कर सकता है। तो विज्ञान गाँव-गाँव में विद्युत् पहुँचा देगा, अॅटामिक एनर्जी निर्माण कर सकेगा, विध्वंस के बड़े उपाय खोज लेगा, लेकिन वैज्ञानिक अछूता रह जाएगा। उसके जीवन में कोई फूल न खिलेंगे।

धार्मिक न तो गाँव-गाँव में रोशनी कर पाएगा, न अणु-बम बना सकेगा, लेकिन हृदय-हृदय में तो रोशनी कर सकेगा। और वह रोशनी बड़ी है। और हृदय-हृदय में एक गीत, एक नृत्य भर सकेगा, और वह प्रकाश बड़ा है। पर एक संबंध में सहमति है, कि एक से ही सब हुआ।

दूसरी बात में भी सहमति है, कि जब एक विघटित होता है तो तीन में विघटित होता है। विज्ञान कहता है इलेक्ट्रिसिटी तीन में टूटती है; इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोट्रॉन। फिर इन तीन कणों से सारा जगत निर्मित होता है। धर्म भी कहता है कि वह एक, त्रिमूर्ति हो जाता है। क्रिश्चियन कहते हैं वह एक, ट्रिनिटी हो जाता है।

हिंदुओं ने त्रिमूर्ति बनायी। उसके चेहरे तीन हैं लेकिन भीतर एक व्यक्ति है। चेहरे तीन हैं। अगर चेहरों से हम प्रवेश करें तो हम एक में पहुँच जाएँगे—

ब्रह्मा, विष्णु, महेश। हिंदुओं ने तीन नाम दिये हैं। जब वह एक विघटित होता है, सृष्टि तक आता है, तो तीन हो जाता है।

और बड़ी हैरानी की बात तो यह है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश को हिंदुओं ने जो अर्थ दिया है, वही अर्थ इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन, प्रोट्रॉन को विज्ञान ने दिया है। वही अर्थ! क्योंकि सृष्टि की पूरी प्रक्रिया के लिए जन्म चाहिए, जन्म देनेवाला चाहिए, फिर जिसका जन्म होगा उसकी मृत्यु होगी, तो मृत्यु चाहिए, मारनेवाला चाहिए। और जन्म और मृत्यु के बीच में समय बीतेगा। तो कोई सँभालने वाला चाहिए। तो ब्रह्मा जन्म का सूत्र, विष्णु सँभालने का सूत्र, और शिव विनाश का सूत्र। और ये ही तीन गुण इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और पाजिट्रॉन के हैं। उसमें एक सँभालता है; एक आधारभूत है, जिससे जन्म होता है; और एक विघटन में ले जाता है, जिससे विनाश होता है।

एक तीन में हुआ और फिर अनंत में हो गया है। अब परमात्मा तक जाना हो तो अनंत को पहले तीन में लाना पड़े, और तीन को फिर एक से जोड़ना पड़े, और एक हो जाना पड़े। यह उलटी यात्रा होगी। गंगा को गंगोत्री की तरफ ले जाना पड़ेगा; मूल स्रोत की तरफ।

तो अनेक से दृष्टि तीन पर रोकनी पड़ेगी। तीन बीच की मंजिल होगी। और तीन के बाद एक रह जाएगा।

साधारण सांसारिक आदमी अनेक में भटका हुआ है। कितनी वासनाएँ हैं। कितनी आकांक्षाएँ हैं, कोई हिसाब? हर वासना में कितनी-कितनी और वासनाएँ लग जाती हैं। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। कोई अंत नहीं। कितनी चाहें हैं। पूरी होनेका कोई उपाय नहीं दिखता। और कितना साधन, कितनी सामग्री है, सब भी तुम पा लो, तो भी कुछ न होगा। क्योंकि पाने वाला अतृप्त ही रहेगा। और जितना तुम पाते जाओगे उतना तुम अनेक में भटकते जाओगे। उतना एक से दूरी होने लगेगी। जितने तुम एक से दूर होते हो उतने ही दुःखी हो जाओगे। जितना फासला बढ़ेगा उतने दुःखी हो जाओगे। जैसे प्रकाश के स्रोत से दूर होता जाए, उतना अँधेरे में पड़ता जाएगा; बहुत दूर हो जाए, तो गहन अंधकार में हो जाएगा।

अनेक में जाने का अर्थ है, एक से बहुत फासला हो गया। और हम सब अनेक में हैं। इसी को हम सांसारिक कहते हैं, जो अनेक में है। जो अनेक से तीन में आ गया उसको हम साधक कहते हैं। वह दोनों के मध्य में है। और जो तीन से एक में आ गया उसको हम सिद्ध कहते हैं। वह वापिस वहाँ पहुँच गया है, जहाँ परमात्मा मूल में था।

अब इसे हम थोड़ा सा समझें।

अनेक से तीन को तुम कैसे पैदा करोगे ? अनेक से तीन को पैदा करने की विधि का नाम ही साक्षी-भाव है, विटनेसिंग है। अगर तुम अपनी वासनाओं को देखो, उनके साक्षी बन जाओ, भोक्ता नहीं। भोक्ता अनेक होने की विधि है। भोक्ता और कर्ता। मैं कर रहा हूँ, मैं भोग रहा हूँ; तो फिर तुम अनेक में बिखर जाओगे। इस अनेक को तीन में लाने की विधि है, साक्षी-भाव। तुम जो भी कर रहे हो, उसे करनेवाले की तरह नहीं दर्शक की तरह, देखने वाले की तरह; तुम्हारे जीवन में जो भी सुख-दुःख घट रहे हैं उनकी भी तुम द्रष्टा की तरह, तब तुम अचानक पाओगे कि तीन आ गये। एक है द्रष्टा, और एक वह जो अनेक का जगत है, वह पूरा का पूरा दृश्य हो गया। अब उसमें अनेकता न रही। वह सभी दृश्य हो गया, और दोनों के बीच में जो है, वह दर्शन। द्रष्टा, दर्शन और दृश्य--तुम तीन पर वापस आ गये।

जैसे ही साक्षी-भाव सधता है, तुम साधक हो जाते हो। वह संन्यासी की दशा है। अनेक से तीन पर आ जाना, संन्यास। तुम जो भी करो उसको दृष्टा-भाव से--रास्ते पर चलो, भोजन करो, कपड़े पहनो, पैर टूट जाएँ, दर्द हो, बीमारी आए, सुख हो, लाटरी मिल जाए, कुछ भी हो, तुम देखते रहना। और एक ही बात सँभालने की है, कि तुम अपने साक्षी-भाव को मत खोना।

और उसको खोने के दो ढंग हैं। अगर तुम भोक्ता बन गये, तो खो गया। अगर तुम कर्ता बन गये, तो खो गया। अगर तुमने कहा, 'यह मैंने किया', तो उस क्षण में तुम साक्षी न रह सकोगे। नशा पकड़ गया। अकड़ आ गयी। और जैसे ही नशा पकड़ता है, तुम वही न रहे, जो गैर-नशे के थें।

मैंने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा, कि रोज सुबह देखता हूँ, कि तुम्हारा नौकर थाली में सजा कर दो गिलास शराब के ले जाता है। कमरे में तो तुम अकेले ही हो। लगता ऐसे है, जैसे कोई और भी है। नसरुद्दीन ने कहा, कि मैं जब एक गिलास पी लेता हूँ तो दूसरा ही आदमी हो जाता हूँ, और दूसरे की भी खातिर करना मेरा फर्ज है।

जैसे ही तुम नशे में गये, कि तुम दूसरे आदमी हो गये, वही तो तुम नहीं हो। बस नशे में होने का फासला ही तो संन्यासी और संसारी का फासला है।

और नशा क्या है बड़ा से बड़ा ? बड़े से बड़ा नशा अहंकार का है। और सब नशे टूट जाते हैं, और सब नशे ऊपर-ऊपर हैं। घड़ी रहते हैं, चले जाते हैं। अहंकार का नशा बड़े से बड़ा है, क्योंकि जन्मों-जन्मों तक चलता है। छोड़-छोड़ कर भी तुम पाते हो, कि वह खड़ा है। भाग-भाग कर भी तुम पाते हो, कि छाया की तरह साथ चला आया है। हजार बचने के उपाय करते हो, फिर भी तुम पाते हो

कि वह तुम्हारे साथ ही बच गया है। विनम्रता की कितनी साधना करते हो, फिर भी पाते हो, वह भीतर मौजूद है।

अहंकार सूक्ष्मतम नशा है। साक्षी जगाना है, और अहंकार सो जाना है। जैसे ही तुम कर्ता बने, तुम सो गये, नींद आ गयी। जैसे ही तुम भोक्ता बने, कि मैं भोग रहा हूँ, तुम सो गये, नींद आ गयी। जैसे ही तुम साक्षी बने, जागरण उठा, होश आया।

होश आते ही अनेक खो जाते हैं, तीन रह जाते हैं। जिसका होश है वह, जिसको होश है, वह और दोनों के बीच जो नाता है। इसको हिंदुओं ने त्रिपुटी कहा है। और यह त्रिपुटी जिसकी जग गयी है, वह संन्यासी। वह साधना में डूबने लगा। जैसे-जैसे ये तीन में तुम रमोगे और अनेक का भटकाव कम होने लगेगा, धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति सध जाएगी, अनेक पैदा ही न होगा, तीन ही रहेंगे। जब अनेक के पैदा होने की सभी संभावना नष्ट हो जाएगी, जब तुम सदा ही साक्षी बने रहोगे, तब अचानक एक दिन तुम पाओगे, तीन भी खो गये। क्योंकि साक्षी जिसको देख रहा है वह, और जो देख रहा है वह, और दोनों के बीच का जो नाता है, जब तुम थिर हो जाओगे, तब तुम अचानक पाओगे कि वे तीनों तो एक हैं।

इसलिए कृष्णमूर्ति बार-बार कहते हैं, दि ऑब्ज़रव्हर इज़ दि ऑब्ज़र्व्हड, दह जो देख रहा है वह वही है, जिसे देख रहा है।

लेकिन यह तो आखिरी क्षण में जब तीनों की स्थिति भी एक हो जाती है; सधते, सधते, सधते अनेक का उपाय बंद हो जाता है, संसार विलीन हो जाता है, तीन ही रह जाते हैं, तब धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे तुम पाते हो, कि ये तीनों तो एक हैं। अचानक एक दिन जागकर तुम्हें दिखायी पड़ता है, कि ये तीन तो तीन नहीं हैं। जो देख रहा है वह वही है जिसको देख रहा है। और जब दृश्य और द्रष्टा एक हो गये तो बीच का संबंध खो गया।

क्योंकि संबंध तो तभी तक था जब तक दो थे। जहाँ दो हैं, वहाँ तीन होंगे, क्योंकि दो के बीच संबंध होगा। और जहाँ एक बचा, वहाँ कैसे संबंध होगा ? कौन किससे संबंधित होगा ? इसलिए बीच का संबंध खो जाता है।

यह है यात्रा वापस लौटने की। जहाँ तुम एक हो गये, वहाँ तुम परमात्मा। जहाँ तुम अनेक हो गये, वहाँ तुम संसार, और वह त्रिमूर्ति बीच में खड़ी है। यही नानक इन सूत्रों में कह रहे हैं। इन्हें समझने की कोशिश करें।

'एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ।'

'एक माया ने युक्तिपूर्वक तीन चेलों को जन्म दिया। उसमें एक संसारी ब्रह्मा हैं, एक भंडारी विष्णु हैं, और एक दीवाण प्रलयंकर महेश हैं। लेकिन परमात्मा अपनी इच्छा के अनुसार, फरमान के मुताबिक उन्हें भी संचालित करता है।

एक से तीन, तीन से अनेक; लेकिन कितने ही दूर तुम हो जाओ, उसके फरमान के बाहर नहीं हो पाते। कितने ही बिखर जाओ, कितने ही टूट जाओ अनेक में, वह फिर भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। क्योंकि उसके खोते तो तुम बचोगे ही न। तुम भटक सकते हो, तुम दूर जा सकते हो, लेकिन इतने दूर नहीं जा सकते जहाँ कि लौटने का उपाय न रह जाए। क्योंकि ऐसी कोई जगह ही नहीं जहाँ तुम जा सको, जहाँ से लौटने का संभव न हो।

इसलिए कोई भी व्यक्ति असाध्य नहीं है। गहन से गहन पाप में पड़ा हुआ, गहन से गहन अंधकार में पड़ा हुआ भी, असाध्य नहीं है। आध्यात्मिक अर्थों में असाध्य रोग होता ही नहीं। सभी रोग साध्य हैं। आध्यात्मिक अर्थों में तुम इतने दूर जा ही नहीं सकते जहाँ से लौटना असंभव हो जाए।

क्योंकि जहाँ भी तुम जाओगे, वह मौजूद है। जितने दूर भी जाओगे, वही तुम्हें ले जाएगा। उसके सहारे ही तुम भी जाओगे। पाप भी करोगे, उसका ही सहारा चाहिए। क्योंकि पापी में भी वही साँस ले रहा है। पापी के हृदय में भी वही धड़क रहा है। दूर हम जा सकते हैं, विस्मरण हम कर सकते हैं। लेकिन परमात्मा को खोने का कोई उपाय नहीं।

तो तुम जब पूछते हो, कि परमात्मा को कैसे खोजें? तुम्हारा प्रश्न ठीक नहीं है। क्योंकि तुमने उसे खोया नहीं। तुम चाहो तो भी उसे खो नहीं सकते। क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है। वह तुम ही हो, तुम उसे खोओगे कैसे? वह तुमसे भिन्न होता, तो तुम खो देते। कहीं भूल आते, कहीं रख आते। तुम भूल कर भी उसे कहीं रख कर नहीं आ सकते, क्योंकि वह तुम ही हो। तुम उसे भूल नहीं सकते। तुम उसे खो नहीं सकते।

फिर क्या हो जाता है? तुम सिर्फ विस्मरण कर सकते हो। अपने को भी भूलने का उपाय है। अपने को भी आदमी भूल सकता है। स्वभाव को भूल सकता है, फिर भी स्वभाव भीतर मौजूद रहेगा।

मेरे एक मित्र हैं, वकील हैं। भुलक्कड़, बहुत भुलक्कड़ स्वभाव के हैं। कुछ भी भूल जाते हैं। अदालत में किस पक्ष की तरफ से बोल रहे हैं, वह भी भूल जाते हैं। किसने उनको वकील किया है, यह भी भूल जाते हैं। पर बड़े वकील हैं। तो एक बार दूसरे गाँव किसी अदालत, किसी मामले के लिए गये। वहाँ जाकर वे मुवक्किल का नाम भूल गये। तो स्टेशन से उन्होंने तार किया अपने मुंशी को,

कि नाम क्या है? तो मुंशी ने तार किया, उन्हीं का नाम लिख भेजा--'लक्ष्मी-नारायण'। मुन्शी समझा कि शायद अब अपना ही नाम भूल गये!

अपने को भी भूलने की संभावना है। तुम सभी उसके सबूत हो। सारा संसार इसका प्रमाण है कि अपने को भूलने की संभावना है। और भूलने का उपाय क्या है? जो भूलने का उपाय है वही याददाश्त का उपाय होगा। जिस ढंग से भूले हो, उसी ढंग से याद आएगी।

भूलने का उपाय क्या है? भूलने का उपाय है, तुम्हारा ध्यान। वस्तुओं पर बहुत ज्यादा अटक आए तो तुम अपने को भूल जाओगे। क्योंकि ध्यान से ही स्मरण आता है, ध्यान से ही विस्मरण होता है। जिस तरफ तुम ध्यान देते हो, उसकी याद आ जाती है। जिस तरफ से ध्यान हट जाता है, उसकी याद खो जाती है। जब तुम किसी वस्तु के पीछे लग जाते हो, तब तुम्हारा ध्यान वस्तु की तरफ जाता है, और ध्यान के पीछे अँधेरा हो जाता है--दीया तले अँधेरा। तुम देखने लगते हो संसार को और अपने को भूल जाते हो। देखने में इतने लीन हो जाते हो, इसलिए अपने को भूल जाते हो। जागने का एक ही उपाय है, कि देखने की लीनता को तोड़ो। देखते वक्त भी याद रखो, कि मैं देख रहा हूँ। देखते वक्त भी देखनेवाले को मत भूलो। दृश्य कितना ही सुंदर हो, तुम झकझोर कर अपने को याद रखो। दृश्य कितना ही मनमोहक हो, दृश्य कितना ही पकड़ लेने को हो, तो भी तुम झकझोर कर अपने को याद रखो।

लेकिन असली में तो तुम भूलोगे ही। तुम तो एक फिल्म भी देखते हो, वह भी अपने को भूल जाते हो। तुम भूल ही जाते हो कि यह पर्दा है। तुम भूल ही जाते हो, कि धूप-छाँव का खेल है। वहाँ भी लोग रोते हैं, आँसू बहाते हैं, वहाँ भी लोग हँसते हैं। वहाँ भी लोग उदास हो जाते हैं। उदास चित्र हो, कोई ट्रेजेडी हो, तो तुम हाल के बाहर निकलते लोगों को देखो। जैसे कोई मर गया है, बड़ा मातम है।

फिल्म अगर बहुत सनसनीखेज हो, तो तुम देखो हाल में बैठे लोगों को; लोग उठ-उठ कर सजग हो जाते हैं, रीढ़ सीधी कर लेते हैं। फिर विश्राम करने लगते हैं। भूल ही जाते हैं कि सामने सिर्फ खाली पर्दा है, और धूप-छाँव का खेल है। और ऐसा नहीं, कि छोटे-छोटे लोग भूल जाते हैं, कि नासमझ भूल जाते हैं, बड़े समझदार भी भूल जाते हैं।

ईश्वरचंद्र के जीवन में एक उल्लेख है। बड़े विद्वान थे, विद्यासागर की उन्हें उपाधि थी, वे एक नाटक देखने गये थे। और उस नाटक में एक आदमी है, जो व्याभिचारी है, पापी है, चोर है, गुंडा है, लफंगा है। वह हर तरह से सता रहा है लोगों को। और अंततः उसने एक स्त्री को, रात के अंधकार में, एक जंगल में

पकड़ लिया है। ईश्वरचंद्र सामने ही बैठे थे। ख्यातनाम विद्वान थे, समादृत अतिथि की तरह वहाँ आए थे। उनको इतना गुस्सा चढ़ गया, कि वे यह भूल ही गये कि यह नाटक है। छलाँग लगा कर मंच पर चढ़ गये, जूता निकाल कर उस आदमी की पिटाई कर दी।

वह आदमी विद्यासागर से ज्यादा समझदार साबित हुआ। उसने जूते को ले लिया और कहा, कि यह जूता न लौटाऊँगा। क्योंकि यह मेरा सब से बड़ा पुरस्कार है। मेरे अभिनय से कोई इतना अभिभूत कभी भी नहीं हुआ था। यह जूता मैं आप को न दूँगा। जूता उसने लौटाया नहीं। विद्यासागर बहुत पछताए, कि कैसी यह भूल हो गयी।

लेकिन अगर ध्यान बहुत लग जाए, तो रोज यह भूल हो रही है। देखते-देखते द्रष्टा भूल ही जाता है। दृश्य सब कुछ हो जाता है। और जब दृश्य सब कुछ हो जाता है, तब तुम मृगमरीचिका में चले। अब तुम भटके। और यह आदत अगर मज़बूत हो जाए, तो जो भी तुम देखोगे, वही सच हो जाएगा।

इसलिए तो रात में सपना भी सच मालूम पड़ता है। क्योंकि यह आदत बहुत मज़बूत हो गयी है। जो भी दिखायी पड़ता है, वही सच है। तो रात तुम सपना देखते हो, रोज़ तुम देखते हो और सुबह उठ कर जानते हो, कि झूठ था। फिर तुम देखोगे और फिर भूल जाओगे। और जब रात सपना देखते हो तो बिल्कुल सच हो जाता है। अगर सपने में कोई तुम्हें मार डाल रहा है, तो तुम चीखते हो। सपना भी टूट जाता है, तब भी थोड़ी देर तक छाती धड़कती रहती है। सपने में कोई मर गया है, तो तुम रोते हो। सुबह उठ कर देखते हो कि आँसू बहे होंगे, क्योंकि तकिया गीला है। और तुमने कितनी बार सपना देखा। और हर बार सुबह तुमने पाया है कि सपना झूठा है। सपना सपना है। लेकिन दस-बारह घंटे बाद फिर भूल हो जाती है।

क्या कारण होगा कि सपना सच मालूम होता है? इतनी बार देखने के बाद भी सपना सच मालूम होता है। क्या कारण है? क्योंकि तुम जो भी देखते हो, उसको तुमने सच मानने की आदत बना ली है। जब तक यह आदत न टूटे तब तक बड़ी कठिनाई होगी।

तंत्र में एक बहुत पुरानी प्रक्रिया है। और वह प्रक्रिया यह है, कि तुम जब तक सपने में यह न जान लो कि यह झूठा है, तब तक तुम संसार को झूठा न जान सकोगे।

यह उलटा हुआ। अभी तुमने संसार को सच माना है, इसलिए सपना तक सच मालूम होता है। तंत्र कहता है, सपने में जब तक तुम न जान लो कि सपना

झूठा है, तब तक तुम संसार को माया न समझ सकोगे। और बड़ी सूक्ष्म विधियाँ तंत्र ने विकसित की हैं, सपने कैसे जानना?

तुम थोड़े प्रयोग करना। कुछ भी एक बात तय कर लो। रात सोते समय उसको तय किये जाओ। यह तय कर लो कि जब भी मुझे सपना आएगा, तभी मैं अपना बायाँ हाथ ज़ोर से ऊपर उठा दूँगा। या अपनी हथेली को अपने आँख के सामने ले आऊँगा—सपने में। इसको रोज याद करते हुए सोओ। इसकी गूँज तुम्हारे भीतर बनी रहे। कोई तीन महीने लगेंगे। अगर तुम इसको रोज़ दोहराते रहे, तो तीन महीने के भीतर, या तीन महीने के करीब, एक दिन अचानक तुम सपने में पाओगे, वह याददाश्त इतनी गहरी हो गयी है, अचेतन में उतर गयी, कि जैसे ही सपना शुरू होता है तुम्हारी हथेली सामने आ जाती है। और जैसे ही तुम्हारी हथेली सामने आयी, तुम्हें समझ में आ जाएगा, यह सपना है। क्योंकि वे दोनों संयुक्त हैं। सपने में हथेली सामने आ जाए।

तंत्र में एक प्रक्रिया है, कि सपने में तुम जो भी देखो; अगर तुम एक रास्ते से गुज़र रहे हो, बाजार भरा है, दूकानें लगी हैं, तो तुम किसी भी एक चीज को ध्यान से देखो, दूकान को ध्यान से देखो; और तुम हैरान होगे, कि जैसे ही तुम ध्यान देते हो दूकान खो जाती है। क्योंकि है तो नहीं; सपना है। फिर तुम और चीजें ध्यान से देखो। रास्ते से लोग गुज़र रहे हैं। जो भी दिखायी पड़े, उसको गौर से देखते रहो, एकटक। तुम पाओगे वह खो गया। अगर तुम सपने को पूरा गौर से देख लो, तुम पाओगे सपना खो गया। जैसे ही सपना खोता है, नींद में भी ध्यान लग गया। समाधि आ गयी।

सपने से शुरू करे कोई जागना, तो यह सारा संसार सपना मालूम होगा। यह खुली आँख का सपना है, लेकिन हमारी आदत गहन है। दृश्य में हम खो जाते हैं। और जब दृश्य में खो जाते हैं, तो द्रष्टा विस्मरण हो जाता है। हमारी चेतना का तीर एक-तरफा है।

गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था, कि जिस दिन तुम्हारे चेतना का तीर दुतरफा हो जाएगा, तीर में दोनों तरफ फल लग जाएँगे, उसी दिन तुम सिद्ध हो जाओगे। तो सारी चेष्टा गुरजिएफ करवाता था कि जब तुम किसीको देखो, तब उसको भी देखो, और अपने को भी देखने की कोशिश जारी रखो, कि मैं देख रहा हूँ। मैं द्रष्टा हूँ। तो तुम तीर में एक नया फल पैदा कर रहे, तीर तुम्हारी तरफ भी और दूसरे के तरफ भी।

मुझे तुम सुन रहे हो, सुनते वक्त तुम मुझ में खो जाओगे। तुम सुनने वाले को भूल ही जाओगे। तुम सुनने वाले को भूल गये, तो भूल हो गयी। सुनते समय सुनने वाला भी याद रहे। तो मैं यहाँ बोल रहा हूँ, तुम वहाँ सुन रहे हो, और तुम

यह भी जान रहे हो कि मैं सुन रहा हूँ, तब तुम सुनने वाले से पार हो गये। एक ट्रान्सेन्डेन्स, एक अतिक्रमण हो गया, साक्षी का जन्म हुआ।

और जैसे ही साक्षी पैदा होता है, वैसे ही मनुष्य अनेक से तीन में आ गया। त्रिवेणी आ गयी। त्रिवेणी के बाद एक तक पहुँचना बहुत आसान है, क्योंकि एक कदम और! और जैसे-जैसे त्रिवेणी सघन होती जाती है, वैसे-वैसे एक ही रह जाता है। क्योंकि त्रिवेणी, तीनों नदियाँ एक में खो जाती हैं।

हम प्रयाग को तीर्थराज कहते हैं। और तीर्थराज इसीलिए कहते हैं कि वह त्रिवेणी है। और त्रिवेणी भी बड़ी अद्भुत है। उसमें दो तो दिखायी पड़ती हैं और एक दिखायी नहीं पड़ती। सरस्वती दिखायी नहीं पड़ती। वह अदृश्य है। गंगा और यमुना दिखायी पड़ती हैं।

तुम जब भी किसी चीज़ पर ध्यान दोगे, तो ध्यान देनेवाला, और जिसपर तुमने ध्यान दिया—सब्जेक्ट और ऑब्जेक्ट—दो तो दिखायी पड़ने लगेंगे। उन दोनों के बीच का जो संबंध है वह सरस्वती है, वह दिखायी नहीं पड़ेगा। लेकिन तीनों वहाँ मिल रहे हैं। दो दृश्य नदियाँ, और एक अदृश्य नदी। और जब तीनों मिल जाते हैं, एक अपने आप घटित हो जाता है।

नानक कहते हैं, 'एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।' एक माँ से, एक माया से, तीन प्रामाणिक चेलों का जन्म हुआ। उसमें एक संसारी ब्रह्मा है, एक भंडारी विष्णु, एक दीवान प्रलयंकर महेश।

तुमने कभी ब्रह्मा का कोई मंदिर देखा? सिर्फ एक मंदिर है भारत में। लोगों ने ब्रह्मा के मंदिर बनाए नहीं। क्योंकि ब्रह्मा संसारी है। उनसे संसार का जन्म होता है, उनकी क्या पूजा करनी है!

शिव के मंदिर संसार में सर्वाधिक हैं। गाँव-गाँव, गली-गली, कहीं भी पत्थर रख दिया, और झाड़ के नीचे शिव का मंदिर हो गया। क्योंकि शिव के साथ संसार का अंत होता है। वे मृत्यु के देवता हैं। वे पूजा-योग्य हैं। ब्रह्मा संसार को जन्म देते हैं, शिव मिटाते हैं। और भारत की बड़ी आकांक्षा किस भाँति संसार मिट जाए, वही है। कैसे मुक्ति हो जाए। इसलिए शिव के मंदिर जगह-जगह हैं।

विष्णु के भी मंदिर हैं। क्योंकि हममें से बहुत से लोग हैं, जो मिटने से भयभीत हैं। डरे हुए हैं। वे विष्णु के पूजक हैं। इसलिए दूकानदार विष्णु के पूजक हैं। वे भयभीत हैं, वे संसार को पकड़ना चाहते हैं। विष्णु भंडारी है। वे मध्य हैं, वे सम्हाले हुए हैं। इसलिए वे लक्ष्मी-पति हैं। इसलिए उनकी पत्नी का नाम लक्ष्मी है। वे धन के देवता हैं। तो जिनको धन की पकड़ है, वे लक्ष्मी की पूजा कर रहे हैं।

यह भी बड़ा सोचने जैसा है। क्योंकि अगर पति को पकड़ना हो, तो पत्नी की तरफ से पकड़ने के सिवाय और कोई उपाय नहीं। छोटी-मोटी रिश्वत में भी वही करना पड़ता है, बड़ी से बड़ी रिश्वत में भी वही करना पड़ता है। अगर पत्नी को प्रसन्न कर लिया तो साहब प्रसन्न है। अगर पत्नी को प्रसन्न कर लिया तो मंत्री राजी है। अगर लक्ष्मी को प्रसन्न कर लिया तो विष्णु राज़ी हैं। आदमी के मन का विस्तार तो एक ही जैसा है।

विष्णु संसार को सम्हाले हुए हैं। इसलिए जिनको संसार में रहने की आकांक्षा है, वे विष्णु की पूजा कर रहे हैं। शिव अंत हैं। वह महामृत्यु हैं। संन्यासी के देवता शिव हैं। इसलिए शिव के बड़े मंदिर हैं, गाँव-गाँव, कूचे-कूचे। और सस्ते में बनने चाहिए, क्योंकि संन्यासी के देवता हैं। तो विष्णु के मंदिर तो बिरला बना देंगे। शिव का मंदिर कौन बनाएगा? इसलिए शिव का मंदिर बड़ा सस्ता है। उसमें कुछ खर्च होता ही नहीं। एक पत्थर तुमने रख दिया गोल, ढूँढ के कहीं से, वह शिव-लिंग हो गया। दो पत्ते चढ़ा दिये—फूल तक की भी जरूरत नहीं है। बेलपत्र चढ़ा दिये, पूजा हो गयी।

ये तीन देवता, जीवन के तीन सूत्र हैं। जन्म, जीवन, मृत्यु। और ध्यान रखना, जन्म तो हो चुका है, इसलिए ब्रह्मा की क्या पूजा? जो हो ही चुका है, उसकी बात खत्म हो गयी। जीवन अभी है, इसलिए कुछ विष्णु की पूजा में लीन हैं। लेकिन वे बहुत समझदार नहीं हैं, क्योंकि जीवन हाथ से जा रहा है। और जब तक तुम्हारे जीवन में मृत्यु का बोध न आए, तब तक तुम संन्यस्त न हो सकोगे। तुम संसारी बने रहोगे।

संसारी और संन्यस्त का फर्क क्या है? संन्यस्त को यह समझ में आ गया कि सब जीवन मृत्यु में समाप्त होगा। सब होना अंततः न होना हो जाएगा। जो बना है, वह मिटेगा। जो सजाया है, सँवारा है, वह उजड़ेगा। जो भवन निर्मित हुआ है, वह गिरेगा। जिसको मृत्यु दिखायी पड़ गयी। जिसको मृत्यु का स्मरण आ गया और जिसे लगने लगा कि यह तो खंडहर है जिसमें हम थोड़ी देर रुके हैं। यह ज्यादा से ज्यादा पड़ाव है, मंजिल नहीं। जिसके जीवन में मृत्यु का बोध आ गया, उसके जीवन मे क्रांति घट जाती है।

देखा, मनुष्य को छोड़ कर, पशु हैं, पक्षी हैं, पौधे हैं, उनमें कोई धर्म नहीं है। क्योंकि उनको मृत्यु का कोई बोध नहीं है। मरेंगे वे भी, लेकिन उन्हें कुछ पता नहीं कि मृत्यु आ रही है। क्योंकि मृत्यु को देखने के लिए जो चेतना चाहिए वह उनके पास नहीं है।

मनुष्यों में भी तुम तब तक पशु ही हो, जब तक तुम्हें मृत्यु साफ-साफ न दिखायी पड़ने लगे। जब तुम्हें साफ दिखायी पड़ने लगे, कि यह अंत आ रहा है,

जैसे ही तुम्हें अंत दिखायी पड़ेगा, तुम्हारे जीवन-मूल्य बदल जाएँगे। कल तक जो महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ता था, वह व्यर्थ मालूम पड़ने लगेगा। कल तक जो बड़ा सार्थक लगता था, मृत्यु दिखायी पड़ते ही व्यर्थ हो जाएगा।

कल तक बड़े सपने सँजोए थे, बड़े इंद्रधनुष बाँधे थे वासनाओं के, और मृत्यु ने द्वार पर दस्तक दी, सब गिर जाएँगे।

दस्तक तो मृत्यु ने उसी दिन दे दी जिस दिन तुम पैदा हुए। जिस दिन ब्रह्मा ने काम शुरू किया, शिव का काम उसी दिन हो गया। लेकिन तुम्हें होश नहीं है। होश आ जाए मृत्यु का, तो मृत्यु के होश के साथ ही परावर्तन होता है। कन्वर्शन होता है। जैसे मृत्यु का होश आता है, तुम लौटते हो स्रोत की तरफ। तुम्हारा मुख बदलता है। तुम फिर संसार की तरफ नहीं जाते, क्योंकि वहाँ सिवाय मृत्यु के कुछ नहीं है। तब तुम अपनी तरफ आते हो। और अपनी तरफ आना परमात्मा की तरफ आना है। जिसने जान लिया मृत्यु को, मृत्यु की चोट तुम्हें ईश्वर का स्मरण दिलाएगी। इसमें कम कुछ भी न होगा और जिसने भुला दिया मृत्यु को, वह ईश्वर को विस्मरण रखे रहेगा। बहुत बार तुम मरे हो, बहुत बार तुम जन्मे हो, लेकिन अब तक तुम मृत्यु को भुलाए हुए रहे हो।

मृत्यु को याद करो। मृत्यु को जीवन का केंद्रीय तथ्य बना लो। क्योंकि जीवन में और कुछ भी निश्चित नहीं है, एक मृत्यु ही सिर्फ निश्चित है। और सब तो अनिश्चित है। होगा, न होगा। लेकिन मृत्यु तो निश्चित ही होगी, उस निश्चित को तुम केंद्रीय तत्त्व बना लो। और उस निश्चित के आधार पर तुम जीवन की यात्रा करो तो तुम पाओगे कि अनेक से तीन की तरफ आने लगे। और जो तीन के पास आ गया, उसका एक के तरफ का द्वार खुल जाता है।

नानक कहते हैं, 'लेकिन परमात्मा अपनी इच्छा के अनुसार, अपने फरमान के मुताबिक ही, उन्हें भी संचालित करता है।'

इसे तुम ध्यान में रखना। कुछ भी तुम करो, पाप या पुण्य, अच्छा या बुरा, पास जाओ, दूर भटको या मार्ग पकड़ो; एक बात याद रखना, तुम उसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकते हो।

और अगर यह याद बनी रहे, तो पाप से भी बाहर आने का उपाय है। क्योंकि इसी याद के सहारे तुम वापिस बाहर आ जाओगे। यह याद बनी रहे तो पुण्य से भी बाहर आ जाओगे। क्योंकि इस याद का अर्थ है, कर्ता मैं नहीं हूँ। कर्ता वह है। मैं सिर्फ उपकरण हूँ। एक निमित्त हूँ, एक माध्यम हूँ, वह जो करवा रहा है मैं कर रहा हूँ। मेरा किया कुछ भी नहीं। फिर मैं की अकड़ कैसी? तो फिर अहंकार का उपाय क्या? वही जन्म देता, वही जीवन देता, वही ले लेता है। तो मैं क्यों अकड़ूँ? मैं बीच में व्यर्थ ही क्यों परेशान हो जाऊँ?

तुमने उस मक्खी की कहानी सुनी होगी जो एक रथ के पहिये पर बैठी थी। बड़ी धूल उड़ रही थी रथ की। क्योंकि अनेक घोड़े जुते थे। उस मक्खी ने चारों तरफ देख कर कहा, कि आज मैं बड़ी धूल उड़ा रही हूँ। मक्खी भी रथ के पहिये पर बैठ कर सोचती है, कि मैं आज बड़ी धूल उड़ा रही हूँ! तुम भी रथ के पहिये पर हो। यह विराट रथ है और जो धूल उड़ रही है, वह तुम्हारे कारण नहीं उड़ रही है। जिस दिन तुम समझ लोगे, उस समझ के साथ ही परमशांति अनुभव होगी। क्योंकि सब अशांति अहंकार की है। और अहंकार व्यर्थ ही बीच में चीजों को ले लेता है। जिन्हें तुम कर ही नहीं रहे हो, उन्हें भी अपने कंधे पर ले लेता है।

जैसे ही तुम्हारी समझ साफ हो जाएगी, तुम मक्खी से ज्यादा नहीं हो रथ के पहिये पर, और विराट रथ है, धूल तुम नहीं उड़ा रहे हो, धूल रथ से ही उड़ रही है, उसी दिन तुम शांत हो जाओगे। उसी दिन तुम्हें लगेगा, जब मैं ही नहीं हूँ तो अशांत क्या होना? अशांत होने को कौन बचा? जब तक तुम हो, तुम अशांत रहोगे।

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, हम कैसे शांत हो जाएँ? मैं उनसे कहता हूँ, जब तक 'हम' है, तब तक कैसे शांत होओगे? लोग पूछते हैं कि मुझे कोई शांति नहीं मिल रही, मुझे शांति दें। मैं उनको कहता हूँ, 'तुम' जब तक हो, तब तक शांति दी भी नहीं जा सकती। तुम्हारे न होने का नाम ही शांति है। तुम अपने को हटाओ। तुम एक झूठ हो। तुम एक सपना हो। अगर ठीक से समझो, तो तुम सपने में देखे गये सपने हो।

तुम सपने भी नहीं हो। तुम्हें कभी ख्याल है, कि कभी-कभी सपने में सपना भी आता है, कि तुम सपने में देखते हो, कि तुम सोने जा रहे हो, कि तुम बिस्तर पर सो गये, और फिर तुम देखते हो कि अब तुम सपना देख रहे हो। सपने में सपना आ सकता है।

चीन में एक बहुत प्राचीन कथा है कि एक लकड़हारा जंगल में लकड़ी काट रहा था। थक गया था। तो नीचे उतर कर लेट गया। उसे एक सपना आया। सपना आया, कि पास ही एक खज़ाना गड़ा है। और वह गया और उसने उघाड़ कर देखा तो निश्चित हंडे गड़े थे। और जरा सी धूल ऊपर पड़ी थी। हंडों में हीरे-जवाहरात थे। तो उसने सोचा, कि रात आकर, चुपचाप आकर निकाल ले जाऊँगा। अभी निकालूँगा तो फँस जाऊँगा। लकड़हारा, गरीब आदमी! और वह तो करोड़ों की संपदा थी। तो उसने वहाँ एक लकड़ी गड़ा दी, निशान के लिए। घर लौट आया।

रात जब हो गयी, तो वह गया। तो देखा लकड़ी तो गड़ी है लेकिन हंडे कोई निकाल चुका है। तो वह बड़ा हैरान हुआ। वह लौट आया और अपनी पत्नी से कहा, कि मेरी समझ में नहीं आ रहा है, मैंने सपना देखा या सच। क्योंकि लकड़ी गड़ी है। इससे सबूत मिलता है कि मैंने सपना नहीं देखा। मैं सच में ही....और हंडे भी थे क्योंकि अब सब खड्डे खाली पड़े हैं। वह भी प्रमाण है कि मैंने सपना नहीं देखा। लेकिन हंडे को कोई निकाल कर ले गया है।

उसकी पत्नी ने कहा कि तुमने सपना ही देखा होगा। तुमने यह भी सपना देखा होगा, कि तुम रात गये, और तुमने लकड़ी गड़ी देखी और लोग हंडे ले गये। शांति से सो जाओ।

लेकिन एक दूसरे आदमी ने उसी रात सपना देखा था, कि सपने में उसने भी इन हंडों को गड़े देखा, और एक लकड़हारा लकड़ी गड़ा रहा है। जब उसकी नींद खुली—उस आदमी की, तो वह भागा हुआ जंगल की तरफ गया। सच में वहाँ लकड़ी गड़ी थी। उसने हंडे निकाल लिये। और वह घर आ गया। घर आकर उसने भी अपनी पत्नी से कहा, मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने सपना देखा या सच में मुझे ऐसा अंतर-दर्शन हुआ। कुछ भी हो, हंडे मैं ले आया हूँ। हंडे ये रहे। इसलिए ऐसा लगता है, कि मैंने सपना नहीं देखा, सच में ही मैंने इस लकड़हारे को लकड़ी गड़ाते देखा, तभी तो मैं हंडे ले आया।

पत्नी ने कहा, कि हंडे तो साफ हैं, और अगर तुमने लकड़हारे को लकड़ी गड़ाते देखा, तो यह उचित नहीं है कि हम इन हंडों को रखें। ये सम्राट को पहुँचा दो। वह जो निर्णय करे।

आदमी भला था, हंडे सम्राट को पहुँचा दिये। तब तक शिकायत लकड़हारे की भी आ गयी थी। सम्राट बड़ा परेशान हुआ। उसने कहा, कुछ भी हो, तुमने दोनों ने सपना देखा है या असलियत में देखा, अब इसका निर्णय कौन करे? एक बात पक्की है, कि हंडे हैं। तब इस झंझट में तुम न पड़ो, हंडे मैं आधे-आधे कर देता हूँ। उसने हंडे आधे-आधे करके बाँट दिये। रात अपनी पत्नी से कहा, कि आज एक बड़ी अद्भुत बात हुई, कि इस तरह के दो आदमियों ने सपने देखे। अब सपने देखे, कि सच, कि झूठ? मगर हंडे थे, तो मैंने बाँट दिये। पत्नी ने कहा, तुम चुपचाप सो जाओ। तुमने सपना देखा होगा।

चीन में हजारों साल से इसपर विचार चलता है, कि सच में सपना किसने देखा? पर जिंदगी के आखिर में ऐसा ही होता है। जो भी हुआ, सब सपने जैसा हो जाता है। पक्का करना मुश्किल हो जाता है कि असलियत में हंडे थे, कि असलियत में लकड़ी गाड़ी थी? कि असलियत में, पति-पत्नी थे, बच्चे थे, परिवार

थे, मित्र थे, सुख-संपदा थी, अपने थे, दुःख थ, पराये थे, संघर्ष हुआ, प्रतियोगिताएँ हुईं? जीते, हारे; सफल-असफल हुए? मरते वक्त हर आदमी के सामने ये सब सपने दोहरते हैं। और उसे तय करना मुश्किल हो जाता है कि ये मैंने सपने देखे, या सच में ऐसा हुआ?

जिन्होंने जाना है वे कहते हैं, यह खुली आँख का सपना है। आँख खुली है जरूर, लेकिन है सपना। सपना इसलिए है कि इसका उससे कोई भी संबंध नहीं, जो सदा रहता है। यह बीच की भावदशा है। यह बीच का ख्याल है। और तुमने जागकर देखा है या सोकर देखा है, इससे क्या फर्क पड़ता है? सपने का लक्षण यह है, कि अभी है और अभी नहीं है। मरते वक्त यह सब खो जाता है।

और सपने के भीतर एक और सपना तुम देख रहे हो, जिसका नाम अहंकार है। इन सब सपनों के भीतर तुम अपने को कर्ता मान रहे हो। और तुम बड़े अकड़े हुए हो। और सारी दुनिया को तुम्हारा अहंकार दिखायी पड़ता है। सिर्फ तुम को दिखायी नहीं पड़ता। और उस सारी दुनिया को भी अपने-अपने अहंकार दिखायी नहीं पड़ते। तुम्हारा अहंकार सभी को दिखायी पड़ता है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, फलाँ आदमी बहुत अहंकारी है। वह आदमी भी आता है। वह भी दूसरों को अहंकारी देखता है।

मुल्ला नसरुद्दीन हमेशा कहा करता था, कि मैं एक सौ निन्यानबे कचौड़ी खा सकता हूँ। तो मैंने कहा, 'बड़े मियाँ, एक खाकर दो सौ पूरी क्यों नहीं कर लेते? एक और खा लो।' उसने कहा, 'क्या समझा है आपने मुझे? पेट है मेरा कि मालगोदाम?'

एक सौ निन्यानबे तक मालगोदाम नहीं है! अपना तो दिखायी ही नहीं पड़ता। लेकिन दूसरा एक भी जोड़ दे तो फौरन दिखायी पड़ जाता है। हम अपने तरफ बिल्कुल अंधे हैं। अगर दूसरा न हो, तो हमें पता ही न चले। इसलिए दूसरों की बड़ी कृपा है।

और साधक समझ लेता है कि अगर दूसरे न हों, तो तुम्हें न अपने अहंकार का पता चलेगा, न अपने रोग का पता चलेगा। इसलिए साधक आखिरी क्षणों में सभी को धन्यवाद देता है, जिन-जिनने याद दिलायी। जिन-जिनने सपना तोड़ा। इसलिए तो कबीर कहते हैं, 'निंदक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।' वह जो तुम्हारी निंदा करता हो उसको तो अपने घर ही ले आना। आँगन कुटी बना कर, छवा कर उसको तो अपने पास ही रखना। क्योंकि वह तो देख लेगा, तुम देख न पाओगे।

जब तक कि तुम्हारा अपना साक्षी न जग जाए तब तक तुम बिलकुल अंधे हो। सपने के भीतर एक सपना है, कि मैं हूँ। संसार माया है और माया के भीतर

एक कर्ता का भाव है, कि मैं हूँ। सपने का भी सपना है। और वही अड़चन है। और जिस दिन तुम मृत्यु को देखोगे, सब से पहले 'मैं' गिरता है।

क्या करोगे मृत्यु के मुकाबले तुम? कैसे बचाओगे अपने को? नहीं आएगी श्वाँस तो तुम क्या करोगे? मृत्यु के मकाबले तुम्हारी सामर्थ्य टूट जाती है। और इसीलिए तो हम मृत्यु को भूले रखते हैं। क्योंकि अगर मृत्यु को याद रखेंगे तो अकड़ टूट जाती है। क्योंकि मृत्यु के सामने हम बिलकुल असहाय हैं। और अकड़ हमारी कहती है, कि हम और असहाय? मैं और असहाय? मुझ जैसा बली, शक्तिशाली, मैं और असहाय? तो बेहतर यह है कि मृत्यु के तथ्य को ही भुला दो। न रहेगी याद मृत्यु की, न अपने अहंकार को चोट लगेगी।

ज्ञानी मृत्यु को याद रखता है। क्योंकि मृत्यु अहंकार को काटती है। जिस दिन तुम मृत्यु को पूरा समझ पाओगे, कैसे अहंकार को बचाओगे? क्या है बचाने योग्य फिर? मृत्यु के सामने तो पराजय है। वहाँ तो कभी कोई विजेता नहीं हुआ। न कोई सिकंदर, न कोई नेपोलियन, न कोई हिटलर। वहाँ तो सभी पराजित हैं। मृत्यु के सामने सभी हारे हुए हैं, सर्वहारा हैं। इसलिए हम छुपाते हैं। हम अहंकार को तो पकड़ते हैं, जो झूठ है। और मृत्यु को भूलते हैं, जो सच है। अगर तुम्हें निश्चित ही एक की तरफ जाना हो, तो मृत्यु को याद रखो। क्योंकि वह बड़ा सत्य है। और उस सत्य का सबसे बड़ा परिणाम यह है, कि अहंकार गिर जाता है।

च्वाँगतसू लौट रहा था एक रात अपने घर। एक मरघट से निकलता था, एक खोपड़ी पर उसकी लात पड़ गयी। रात का अंधेरा था। वह मरघट भी कोई छोटा मरघट न था। बड़े लोगों का मरघट था। रॉयल फैमिली! और बड़े से बड़े धनी और बड़े से बड़े संपन्न लोग ही वहाँ गड़ाये जाते थे। तो खोपड़ी कोई छोटी-मोटी न थी। उसने खोपड़ी को उठा लिया और कहा, माफ करना। वह तो जरा समय की देर हो गयी, अगर आज तुम जिंदा होते तो मेरी क्या गति होती! खोपड़ी को साथ ले आया। शिष्यों ने बहुत कहा, इसको फेंकिए। खोपड़ी को कोई घर में थोड़े ही रखता है।

क्यों नहीं रखते घर में खोपड़ी को? रखनी चाहिए सजा कर। उससे ज्यादा एंटीक, कीमती और क्या होगा? उससे ज्यादा स्मरण दिलाने वाला क्या होगा? ठीक अपने ड्रेसिंग-टेबल पर रखनी चाहिए कि अपनी शक्ल भी देख ली आइने में, और अपनी खोपड़ी भी देखी बगल में रखी।

च्वांगतसू ने रख ली थी। वह अपने बगल में ही रखता उसको। सब भूल जाता लेकिन खोपड़ी अपनी साथ लेकर चलता। लोग उससे पूछते कि इसको हटाइये। यह क्या कर रहे हैं आप?

च्वाँगतसू कहता, आप इतने नाराज़ क्यों हैं? इस खोपड़ी ने आपका क्या बिगाड़ा? और मैं इसे साथ रखता हूँ कि यह मेरी याददाश्त है, कि आज नहीं कल इसी खोपड़ी की तरह मेरी खोपड़ी कहीं पड़ी होगी। भिखारियों के पैर लगेंगे। कोई क्षमा भी नहीं माँगेगा। और मैं कुछ भी न कर सकूँगा। यह खोपड़ी यही रही, अभी भी वही है। च्वाँगतसू कहता, यह खोपड़ी मेरे पास रखी है तो तुम मेरे सर पर जूता मार जाओ तो मैं तुम्हारी तरफ न देखूँगा, इस खोपड़ी की तरफ देखूँगा और तब मैं मुस्कुराऊँगा, कि यह तो होना ही है। यह तो सदा होगा। कितनी देर बचाऊँगा?

जब मौत बिलकुल तथ्य की तरह दिखायी पड़ने लगती है तो अहंकार विसर्जित हो जाता है। मौत का स्मरण अहंकार के लिए जहर है। इसलिए हम मौत को भूले हुए हैं। और जब तक अहंकार है, तब तक तुम जाग न सकोगे। जैसे ही मौत दिखायी पड़ी, अहंकार टूटा कि तुम समझोगे कि सब परमात्मा की आज्ञा से हो रहा है। मैं करने वाला नहीं हूँ।

'वह प्रभू तो उन्हें देखता रहता है परंतु वह उनकी नजर में नहीं आता।'

यह बहुत आश्चर्य की बात है। इसे थोड़ा समझो।

'ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥'

यह बड़े आश्चर्य की बात है। नानक कहते हैं, वह प्रभू तो यह सब देखता रहता है। इन तीनों ब्रह्मा, विष्णु, महेश को देखता है। लेकिन ये तीनों उसे नहीं देख पाते।

इसे थोड़ा समझें; यह बड़ी कीमती और बड़ी बहुमूल्य बात है। और साधक इसे याद रखे। तुम अपनी आँख से सारे संसार को देखते हो और तुम्हारे भीतर छिपा हुआ दृष्टा तुम्हारे आँख को भी देखता है। लेकिन तुम्हारी आँख उसे नहीं देख सकती। तुम अपने हाथ से सारे जगत को छू सकते हो, और तुम्हारे भीतर बैठा हुआ दृष्टा तुम्हारे हाथ को भी देखता है। लेकिन तुम्हारा हाथ उस दृष्टा को नहीं छू सकता।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश परमात्मा की तीन आँखें हैं, या तीन चेहरे हैं। ये चेहरे संसार को तो देखते हैं, लेकिन लौट कर परमात्मा को नहीं देख सकते। क्योंकि जो भीतर छुपा है वह इनकी पहुँच के बाहर है। इसलिए तो तुम तभी उसे देख पाओगे जब तुम्हारी बाहर की आँख बिलकुल बंद हो जाए। इस आँख से तुम उसे न देख सकोगे। इस चेहरे से तुम उसे न पहचान सकोगे। यह चेहरा तो बिलकुल भूल जाए, तभी तुम उसे पहचान सकोगे। क्योंकि भीतर जाना हो तो बाहर जाने के जो-जो उपाय हैं वे सब छोड़ देने होंगे। क्योंकि वे कोई काम के नहीं

हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तो बाहर जाने के उपाय हैं। वह त्रिमूर्ति तो बाहर की तरफ है। उन तीनों के भीतर जो छिपा है, उसतक उन तीनों की कोई पहुँच नहीं।

बड़ी मीठी कथा है, भारत में। अनेक कथाएँ हैं जिनमें यह कहा गया है, कि जब भी कोई बुद्ध-पुरुष होता है, जैसे गौतम हुए, तो ब्रह्मा स्वयं उनके चरणों में आया। और ब्रह्मा ने उनके चरणों में सिर रखा और कहा, कि मुझे ज्ञान दें।

यह बड़ी मीठी कहानी है। नानक उसीकी तरफ इशारा कर रहे हैं। क्योंकि बुद्ध-पुरुष ब्रह्मा से ऊँचा हो गया। बुद्ध-पुरुष समस्त देवताओं के पार हो गया। ब्रह्मा, विष्णु, महेश पीछे छूट गये। क्योंकि वे तो चेहरे थे तीन के। इसने एक को जान लिया। और जिसने एक को जान लिया वह तीन को जाननेवालों से ऊपर हो गया। तीन के बनानेवालों से ऊपर हो गया। खुद ब्रह्मा भी उसके शरण आते हैं और कहते हैं कि मुझे बताएँ, कैसे मैं अपने को जानूँ और कैसे उसको पहचानूँ?

यह बात मूल्यवान है। क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन हैं अभी भी। और तीन से एक को नहीं जाना जा सकता। तीन छोड़कर एक को जाना जाता है। हिंदुओं ने बड़ी अद्‌भुत कथाएँ लिखी हैं। और सारे जगत में वैसी कथाएँ नहीं हैं। और जगत में उन कथाओं को समझना भी बड़ा कठिन है।

कथा है, कि ब्रह्मा ने पृथ्वी को पैदा किया। तो पृथ्वी तो उनकी बेटी है, और जैसे यह पृथ्वी पैदा हुई कि ब्रह्मा उस पर आसक्त हो गये। और उसके पीछे भागने लगे। अपने को बचाने के लिए, बेटी ने बहुत रूप रखे। और जो-जो रूप बेटी ने रखे, बाप ने भी वही रूप लेकर उसका पीछा किया। बेटी गाय हो गयी, तो बाप सांड हो गया।

पश्चिम में जब पहली दफा पूरब की कथाएँ पहुँची तो उन्होंने कहा, यह किस तरह का देवता! ये तो देवता जैसे मालूम भी नहीं होते। लेकिन भारत की कथाएँ मूल्यवान हैं। क्योंकि भारत यह कहता है, कि देवता भी सांसारिक हैं। उनका मुख भी बाहर की तरफ है। और ब्रह्मा भी अपनी बेटी की तरफ आसक्त हो सकता है। बेटी से मतलब यह है, कि जो उससे पैदा हुआ है, उसीके प्रति आसक्त हो जाता है।

हम भी तो वही कर रहे हैं। जो हमसे पैदा हुआ है, जो हमारा ही सृजन है, जो हमारा ही सपना है, उसीमें हम आसक्त हो जाते हैं। उसीके पीछे हम भागते फिरते हैं। जो वासना हमसे पैदा हुई उसीका हम पीछा करते हैं। यही उस कथा का अर्थ है। जो वासना हमारे ही चित्त का खेल है, जिसे हमने ही

जन्माया, जो हमारी पुत्री है, हम उसके पीछे जीवन लगा देते हैं। और अनेक अनेक रूपों में उसीका पीछा करते हैं, कि किसी तरह वह पूरी हो जाए। देवता उतने ही बँधे हैं, जैसा आदमी बँधा है। तो ब्रह्मा को भी आना पड़ता है बुद्ध-पुरुषों के चरणों में पूछने राज़ एक का।

नानक कहते हैं, यह आश्चर्यों का आश्चर्य है कि वह प्रभू तो उन्हें देखता है, उन तीनों को, परंतु वह उनकी नज़र में नहीं आता। यह बहुत आश्चर्य की बात है। आश्चर्य की है भी, और नहीं भी। आश्चर्य की इसलिए कि उनमें से एक तो देख रहा है। लेकिन ये तीन क्यों नहीं देख पाते? और आश्चर्य इसलिए नहीं भी है, कि ये तीन देख कैसे पाएँगे? क्योंकि ये पीछे अगर लौटे तो एक रह जाते, तीन नहीं रहते।

इसको तुम ऐसा समझो, आसान हो जाएगा। मैं निरंतर कहता हूँ कि तुम कभी परमात्मा से न मिल सकोगे। क्योंकि जिस दिन तुम मिलोगे, तुम न रह जाओगे। मिलने के पहले तुम्हें खो जाना होगा। और जब तक तुम हो तब तक मिलन न होगा। तो तुम्हारा मिलन तो कभी भी न होगा। तुम जब तक हो तब तक परमात्मा नहीं है। और तुम जब न रहे तो परमात्मा है। मिलन कैसे होगा?

वही घटना ब्रह्मा, विष्णु के साथ घटेगी। अगर वे पीछे मुड़ें तो एक हो जाएँ। एक होते ही वे नहीं रहे। और जब तक वे हैं, तब तक वे पीछे नहीं मुड़ें। इसलिए आश्चर्य भी, और आश्चर्य नहीं भी।

और ध्यान रखना, यह कोई ब्रह्मा, विष्णु, महेश की बात नहीं है, यह तुम्हारी बात हो रही है। ये तो सिर्फ प्रतीक हैं।

'यदि प्रणाम करना हो तो उसको ही प्रणाम करो।'

तो नानक कहते हैं, क्या ब्रह्मा, विष्णु, महेश को तुम प्रणाम कर रहे हो? ये तो उसे देख भी नहीं पाते। वही इन्हें देख रहा है। इसलिए अगर प्रणाम ही करना हो तो उसको ही प्रणाम करो।

'वही आदि, शुद्ध, अनादि, अनाहद, और युग-युग से एक ही वेशवाला है।'

'आदेसु तिसै आदेसु ॥'

आदि अनीलु अनादि अनाहतु जुग जुग एको वेसु ॥'

जो सदा एक है, उसको ही प्रणाम करो। उसको ही खोजो, जो आदि भी है, अनादि भी है। जो प्रारंभ भी सबका है और जिसका कोई प्रारंभ नहीं। जो सबके पहले है और जिसके पहले कोई और नहीं। और जो सबके अंत में होगा और जिस के अंत में कोई नहीं। उस एक को ही प्रणाम करो। उस एक से कम को [illegible]णाम किये, तो तुम भटकोगे।

लेकिन उस एक को प्रणाम करने की हमारी हिम्मत नहीं जुटती। क्योंकि हम तो प्रणाम भी मतलब से करते हैं। और उस एक को प्रणाम करना हो तो सब मतलब छोड़ना पड़े। हम तो मतलब से प्रणाम करते हैं।

अगर मतलब से प्रणाम करते हो तो देवताओं के पास जाओ। क्योंकि वे तुम्हीं जैसे हैं। तुम्हारी भी वासनाएँ हैं, उनकी भी वासनाएँ हैं। उनसे तुम माँग करो, तो वे तुम्हारी माँग पूरी कर देंगे। क्योंकि तुम्हारे और उनके बीच एक तारतम्य है। वे तुमसे ज्यादा शक्तिशाली होंगे, लेकिन तुमसे भिन्न नहीं हैं। और जैसी तुम्हारी आकांक्षाएँ हैं वैसी उनकी आकांक्षाएँ हैं। तो उनकी तुम स्तुति करो, उनकी तुम प्रार्थना-पूजा करो, लेकिन तुम माँगोगे संसार ही। इसलिए विष्णु की पूजा करो संसार चाहिए तो।

उस एक को तो तभी माँग सकोगे जब संसार को छोड़ने की तैयारी हो। और ध्यान रखना, उस एक को पाकर ही कुछ पाया। जिनने भी पाया, उस एक को पाकर ही पाया है, बाकी तो सब भटकाव है। इस संसार में कितने लोग श्रम करते हैं, कुछ भी तो मिलता नहीं। फिर भी तुम आँख खोलकर नहीं देखते। फिर भी तुम में बुद्धिमत्ता का जरा भी जागरण नहीं होता। इतने लोग खोजते हैं, पा भी लेते हैं, कुछ भी तो नहीं मिलता। यहाँ हारे हुए भी हारे हैं, यहाँ जीते हुए भी हारे हुए हैं।

दो मित्र एक होटल में बैठे थे। एक थोड़ा प्रौढ़ और एक जवान। और एक सुंदर स्त्री द्वार से प्रविष्ट हुई। जवान ने कहा, एक गहरी साँस उसके भीतर से निकल गयी, और कहा, कि यह स्त्री जब तक मुझे न मिल जाए मैं सुखी न हो सकूँगा। और इसके पीछे मैं पागल हूँ। और मेरी नींद खो गयी है इसके लिए। और मेरी शांति खो गयी है। मेरा सारा चैन खो गया है। और कोई रास्ता नहीं सूझता, मैं क्या करूँ? और जब तक यह मुझे न मिलेगी, मुझे न कोई शांति है, न कोई आनंद है।

उस दूसरे प्रौढ़ आदमी ने कहा, कि जब तुम इस स्त्री को फुसलाने में राजी हो जाओ, तो मुझे खबर कर देना। उसने कहा, क्या मतलब! आप को किसलिए खबर? उसने कहा, यह मेरी पत्नी है। और मेरा जबसे इससे सत्संग हुआ, मेरी सब शांति खो गयी है। मेरा आनंद वापस मिल जाएगा, अगर तुम इसे राज़ी करो किसी तरह!

यहाँ जिनको मिल जाता है वे रो रहे हैं, यहाँ जिनको नहीं मिला है वे रो रहे हैं। यहाँ होने का ढंग ही रोना है। यहाँ तुम सबको पाओगे, गरीब को और अमीर को, सफल को और असफल को, पराजित को, विजेता को, सबको रोते पाओगे। यहाँ एक संबंध में बड़ी समानता है, कि सभी दुःखी हैं।

उस एक को पाकर ही कुछ पाया जा सकता है। उस एक का कोई मंदिर नहीं है। ब्रह्मा का भी एक मंदिर है, विष्णु के बहुत हैं, शिव के अनंत हैं। उसका एक भी मंदिर नहीं है। उसका मंदिर हो भी नहीं सकता।

इसलिए नानक ने अपने मंदिर को जो नाम दिया वह बड़ा प्यारा है—गुरुद्वारा। वह परमात्मा का मंदिर नहीं, वह सिर्फ गुरु का द्वार है। उससे उस एक की तरफ पहुँचोगे, लेकिन वह सिर्फ दरवाजा है। वहाँ कुछ अंदर है नहीं। नाम बड़ा प्यारा है। तो वह सिर्फ द्वार है, जिससे तुम गुज़रोगे। वह कोई रुकने की जगह नहीं है। जो गुरुद्वारे में रुक गया वह नासमझ है। यह दरवाजे में बैठा है। दरवाजे में बैठने में न कोई सार है। वहाँ से गुज़रना है, वहाँ से पार जाना है। गुरु द्वार है। उसपर रुक नहीं जाना है। उससे गुजर जाना है। उसके पार हो जाना है। उसके पार वह एक है। उस एक का कोई मंदिर नहीं हो सकता।

और नानक कहते हैं, अगर प्रणाम ही करने का भाव उठा, अगर सच में ही प्रणाम करने की भावना जग गयी है, हृदय राजी है प्रणाम करने को—'आदेसु तिसै आदेसु—' तो उस एक को ही प्रणाम करो। लोक, अलोक, उसका आसन है। इसलिए उसका कोई मंदिर हो नहीं सकता।

लोक-लोक उसका भंडार है। उसने एक बार ही सदा के लिए पाने लायक सब कुछ उसमें धर दिया है। वह सर्जनहार रचना करके उसे देखता रहता है। नानक कहते हैं, सच्चे का काम सच्चा है। प्रणाम करना हो, तो उसे ही प्रणाम करो। वह आदि, शुद्ध, अनादि, अनाहद और जुग-जुगसे एक ही वेशवाला है।

नानक कहते हैं, सच्चे का काम सच्चा है।

'नानक सचे की साची कार॥'

उस परमात्मा का जो कुछ भी है, वह सत्य है। तुम्हारा जो कुछ भी है, वह असत्य है। क्योंकि तुम्हारा होना ही असत्य है। असत्य का सत्य से कोई जन्म नहीं हो सकता। तुम जो भी बनाओगे वे ताश के पत्तों के घर होंगे। हवा का ज़रा सा झोंका भी उन्हें गिरा देगा। तुम जो भी बनाओगे वह कागज की नाव होगी। छूटते ही डूबने लगेगी। उसमें यात्रा नहीं हो सकती। अहंकार से निर्मित सभी कुछ असत्य होगा, क्योंकि अहंकार असत्य है। उस परमात्मा का जो भी है वह सत्य है। तुम्हारा जो भी है, वह असत्य है।

यह जिस दिन तुम्हें समझ में आ जाएगा, उस दिन तुम असत्य को पैदा करने में श्रम न लगाओगे। उस दिन तुम असत्य को जानने में श्रम लगाओगे। संसारी का अर्थ है, जो असत्य को पैदा करने में लगा है। तुम्हारे संसार की असत्यता का तुम्हें ख्याल नहीं आता, क्योंकि उसमें तुम लीन हो। तुम कभी जरा दूर खड़े होकर नहीं देखे, कि असत्यता कितनी भयंकर है।

एक आदमी नोट इकट्ठे करते जा रहा है, वह कभी नहीं सोचता कि नोट सिर्फ एक मान्यता है। कल सरकार बदल जाए, कानून बदल जाए, सरकार तय कर ले ये नोट रद्द हुए, काम के न रहे, तो कागज हो गये। एक मान्यता को इकट्ठा कर रहा है यह आदमी। और मान्यता ऐसी कि जिसका कोई भरोसा नहीं।

अमरीका में एक होटल है। उन्नीस सौ तीस के जमाने में, जब कि अमरीका में बहुत बड़ी आर्थिक गिरावट आयी, जिस आदमी का यह होटल है, उसके करोड़ों रुपये के बाँड व्यर्थ गये। तो उसने सारी दीवाल पर बाँड चिपका दिये। वे जो करोड़ों रुपये के बाँड थे, पूरी दीवालें उस होटल की उसने बाँड से बना दीं। वे किसी काम के न रहे, वे दीवाल पर चिपकाने लायक हो गये। उनका कोई उपयोग न रहा।

और एक आदमी नोट पर जिंदगी लगा रहा है। बस, उसका काम ही इतना है कि कितने नोट बढ़ते जाते हैं, उनकी वह गिनती कर रहा है। तिजोड़ी में भरता जाता है नोट, उसे पता नहीं कि हर नोट के बदले में जिंदगी बेच रहा है। क्योंकि एक-एक पल कीमती है। और जिस ऊर्जा से परमात्मा से मिलन होता है, उस ऊर्जा को वह नोटों में लगा रहा है। और नोट सिर्फ मान्यता है। हजारों तरह की मान्यताएँ रहीं दुनियाँ में, हजारों तरह के सिक्के रहे।

मैक्सिको में लोग, इस सदी के प्रारंभ तक, कंकड़-पत्थरों को सिक्के की तरह उपयोग करते थे। कंकड़-पत्थर ही से काम हो जाता था, क्योंकि मान्यता की बात है। तुम कागज का उपयोग कर रहे हो। कंकड़-पत्थर कागज से तो ज्यादा कीमती हैं। सोना मान्यता के कारण सोना है। अगर दुनिया की हवा बदल जाए– कभी भी बदल सकती है– लोग सोने को कीमत न दें, लोहे को कीमत देने लगें, तो तुम लोहे के श्रृंगार कर लोगे।

कौमें हैं अफ्रीका में, जो हड्डियों की कीमत करती हैं, सोने की कीमत नहीं करतीं, तो हड्डियों को गले में लटकाए हुए हैं। सोना फिजूल है। तुम उनसे कहो कि सोने को लटका लो, वे राजी नहीं हैं।

मान्यता का खेल है। और उस मान्यता के लिए तुम जीवन गँवा देते हो। लोग प्रतिष्ठा दें, इसके लिए तुम जीवन गँवा देते हो। लोगों की प्रतिष्ठा का क्या अर्थ है ? कौन हैं ये लोग जिनकी प्रतिष्ठा के लिए तुम दीवाने हो ? ये वे ही लोग हैं जो तुम्हारी प्रतिष्ठा के लिए दीवाने हैं।

इनकी कीमत क्या है ? नासमझों से अगर प्रतिष्ठा मिल जाए तो इससे तुम्हें क्या मिलेगा ? और नासमझ भीड़ का कोई हिसाब है !

विन्स्टन चर्चिल अमरीका गया। एक सभा में बोला— बड़ी भीड़ थी, हाल खचाखच भरा था। सभा के बाद एक महिला ने उससे कहा, कि आप जरूर प्रसन्न होते होंगे। जब भी आप बोलते हैं, हाल खचाखच भरा होता है।

विन्स्टन चर्चिल ने कहा 'जब भी मैं हाल को खचाखच भरा देखता हूँ, तब सोचता हूँ कि अगर मुझे फाँसी लग रही होती तो कम से कम पचास गुना ज्यादा लोग मुझे देखने आए होते। इन लोगों का क्या भरोसा ? ये मुझे ताली बजाने आए हैं, ये मेरी फाँसी देखते, वहाँ भी ताली बजाते। तो जब भी मैं देखता हूँ कि हाल खचाखच भरा है, तो पहले मैं सोच लेता हूँ कि ये वे ही लोग हैं कि अगर मुझे फाँसी लग रही हो, तो भी देखने आएँगे और मजा लूटेंगे। और अपने बच्चों को भी लाएँगे कि चलो, देख आओ। ऐसा अवसर फिर आए, न आए। इनका कोई भरोसा नहीं।'

वे ही चेहरे, जब तुम गिर रहे होओगे तब भी ताली बजाएँगे; वे ही चेहरे, जब तुम उठ रहे होगे तब भी ताली बजाएँगे। इन चेहरों को देखकर, इनकी गिनती करके, इनका मत माँगकर तुम कहाँ पहुँच जाओगे ? ये तुम्हारे साथ हैं, इससे क्या साथ मिलता है ? ये तुम्हें सिर पर भी उठा लें, तो इनका मूल्य क्या ? इनकी ऊँचाई कितनी है ? इनके कंधे पर बैठकर तुम कितने ऊँचे हो जाओगे ? लेकिन आदमी जीवन लगा देता है। कैसे प्रतिष्ठा मिले ! कैसे पद मिले ! कैसे लोगों का आदर मिले!

नानक कहते हैं, कि अहंकार से तो जो भी पैदा होगा वह झूठ ही होगा। यह सब अहंकार की ही खोज है। और यह पारस्परिक है।

नेता तुम्हारे दरवाजे पर आता है। सिर झुका कर प्रणाम करता है, कि मत देना। तुम उसे मत देते हो, वह पद पर पहुँच जाता है। एक म्युचुअॅल, एक पारस्परिक अहंकार की तृप्ति कर रहे हो।

मैने सुना है, कि एक गाँव में ऐसा हुआ कि एक आदमी, गाँव का घंटाघर था, वह उसमें घंटे बजाता था। और गाँव में छोटा एक टेलीफोन एक्सचेंज था। रोज टेलीफोन एक्सचेंज नौ बजे सुबह, किसीका फोन आता था, कि कितना समय है ? तो टेलीफोन एक्सचेंज उसको समय बता देता था। वह नौ के घंटे बजा देता था। और नौ बजे टेलीफोन एक्सचेंज, घंटे बजते घंटाघर के, तो अपनी घड़ी ठीक कर देता था। यह सालों तक चला। यह तो अचानक एक दिन उस टेलीफोन एक्सचेंज वाले ने पूछा कि भाई, तुम हो कौन ? रोज ही पूछते हो ठीक नौ बजे। उसने कहा कि मैं घंटाघर का रखवाला हूँ। घंटे बजाने के लिए पूछता हूँ, कि कितना समय ? उन्होंने कहा कि हद हो गयी ! अब पता ही नहीं कि क्या हालत होगी समय की। क्योंकि हम तुम पर भरोसा कर रहे हैं, तुम हम पर भरोसा कर रहे हो।

एक पारस्परिक स्थिति है। मैं आप की तरफ देखता हूँ, आप मेरी तरफ देखते हैं। मैं आपका सम्मान करता हूँ, आप मेरा सम्मान करते हैं। मैं आपके

अहंकार को सहारा देता हूँ, आप मेरे अहंकार को सहारा देते हैं। ऐसे यह सारा का सारा झूठ का बड़ा जाल है।

नानक कहते हैं, 'उस मालिक का काम सच्चा। सच्चे का काम सच्चा।'

तुम पहले सत्य को खोजो। उसके पहले कुछ भी मत करो। क्योंकि उसके पहले तुम जो भी करोगे वह असत्य हो जाएगा। एक ही बात करने योग्य है कि सत्य को पहचानो। फिर तुम कुछ करना। क्योंकि फिर सत्य तुम्हारे भीतर से कुछ करेगा।

'प्रणाम करना हो तो उसे ही प्रणाम करो। वह आदि, शुद्ध, अनादि, अनाहद है। और युग-युग से एक ही वेशवाला है।'

यह 'एक ही वेशवाला है,' इसे याद रखना। जो चीज भी बदलती हो, वह माया है। वह संसार है, असत्य है, सपना है। और जो सदा शाश्वत रहती हो और कभी न बदलती हो, वही परमात्मा है। तो तुम इस सूत्र को अगर ठीक से पकड़ लोगे, तो तुम्हारे भीतर तुम आज नहीं कल, उसको खोज लोगे जो कभी नहीं बदलता है।

शायद निरीक्षण किया हो, न किया हो, तुम्हारे भीतर भी कोई ऐसा तत्त्व है जो कभी नहीं बदलता है। कभी क्रोध आता है। लेकिन चौबीस घंटे नहीं रहता। क्रोध माया है। कभी प्रेम आता है, लेकिन प्रेम चौबीस घंटे नहीं रहता। प्रेम माया है। कभी तुम प्रसन्न होते हो, लेकिन प्रसन्नता टिकती नहीं, माया है। कभी तुम उदास होते हो, उदासी चौबीस घंटे नहीं रहती, सदा नहीं रहती, इसलिए माया है।

फिर क्या है तुम्हारे भीतर कुछ, जो चौबीस घंटे टिकता है? वह साक्षी का भाव है जो चौबीस घंटे टिकता है। जो चौबीस घंटे है। चाहे तुम जानो, चाहे न जानो। कौन देखता है क्रोध को? कौन देखता है लोभ को? कौन देखता है प्रेम को, घृणा को? कौन पहचानता है कि मैं उदास हूँ? कौन कहता है कि प्रसन्न हूँ? कौन कहता है, बीमार हूँ, स्वस्थ हूँ? कौन कहता है कि रात नींद अच्छी हुई? कौन कहता है कि रात सपने बहुत आए? कि नींद हो ही न सकी?

चौबीस घंटे तुम्हारे भीतर एक जाननेवाला है। जाग रहा है। वही चौबीस घंटे है। बाकी सब आता है, जाता है। तुम उसीको पकड़ो। क्योंकि उसीमें थोड़ी परमात्मा की झलक है।

इसलिए नानक कहते हैं, कि तुम्हें प्रणाम करना है तो उसे ही। क्योंकि वह अनाहद है। युग-युग से एक ही वेशवाला है।

'आदेसु तिसै आदेसु॥ आदि अनीलु अनादि अनाहतु, जुग जुग एको वेसु॥'

● ● ●

नानक उतमु नीचु न कोइ

प्रवचन १६, दिनांक ६-१२-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : ३२

इकदू जीभौ लख होहि
लख होवहि लख बीस ।
लखु लखु गेड़ा अखिअहि
एक नामु जगदीस ॥
एतु राहि पति पवड़ीआ
चड़ीए होइ इकीस ।
सुणि गला आकास की
कीटा आई रीस ॥
नानक नदरी पाईऐ
कूड़ी कूड़ै ठीस ॥

पउड़ी : ३३

आखणि जोरू चुपै नह जोरु ।
जोरु न मंगणि देणि न जोरू ॥
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरू ।
जोरु न राजि मालि मनि सोरू ॥
जोरु न सुरति गिआन वीचारि ।
जोरु न जुगती छुटै संसारू ॥
जिसु हथि जोरू करि वेखै सोइ ।
नानक उतमु नीचु न कोइ ॥

सूत्र के पूर्व कुछ बातें समझ लें।
परमात्मा की खोज में हजारों हजार उपाय किये गये हैं। लेकिन जब भी किसीने उसे पाया है तो साथ में यह भी पाया, कि उपाय से वह नहीं मिलता है। मिलता तो प्रसाद से है। उसकी अनुकंपा से मिलता है।

लेकिन बात बहुत जटिल हो जाती है, क्योंकि उसकी अनुकंपा बिना प्रयास के नहीं मिलती। इसे थोड़ा समझ लें। क्योंकि जिन्हें भी उस मार्ग पर जाना है, इस विवाद, उलझन की स्थिति को बिना समझे वे न जा सकेंगे।

कुछ उदाहरण लें। कोई शब्द भूल गया, किसी का नाम भूल गया है। लाख उपाय करते हैं याद करने का। लगता है जीभ पर रखा है। अब आया, अब आया, फिर भी आता नहीं। सब तरफ से सिर मारते हैं। हजार तरकीबों से खोजने की कोशिश करते हैं और भीतर बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है, क्योंकि यह भी लगता है कि बिलकुल जीभ पर रखा है। इतने पास है, और फिर भी इतने दूर मालूम होता है। आखिर थक जाते हैं। क्योंकि आदमी क्या करेगा ? उपाय कर लेगा, बेचैन हो लेगा, फिर थक जाएगा। थक कर दूसरे काम में लग जाते हैं। अखबार पढ़ते हैं, बाहर मकान के घूमने निकल जाते हैं, मित्र से गपशप करते हैं, चाय पीते हैं और अचानक, अनायास, जब कि कोई भी प्रयास नहीं कर रहे थे, वह नाम उठ कर याद में आ जाता है।

जब हम बहुत चेष्टा करते हैं, तब हमारी चेष्टा भी बाधा बन जाती है। क्योंकि बहुत चेष्टा का अर्थ है कि मन में बड़ा तनाव हो जाता है। जब हम अति आग्रह से खोज करते हैं, तब हमारा आग्रह भी अड़चन हो जाता है। क्योंकि उतने आग्रह से हम खुले नहीं रह जाते, बंद हो जाते हैं। और मन जब बहुत

एकाग्र होता है, तब एकाग्रता के कारण संकीर्णता पैदा हो जाती है। चित्त का आकाश छोटा हो जाता है। और संकीर्णता इतनी छोटी हो सकती है कि एक छोटा सा शब्द भी उसमें से पार न हो सके।

एकाग्रता का अर्थ ही संकीर्णता है। जब तुम चित्त को एकाग्र करते हो तो उसका अर्थ है, सब जगह से बंद और केवल एक तरफ खुला हुआ। एक छेद भर खुला है, जिससे तुम देखते हो। बाकी सब बंद कर लिया। तभी तो एकाग्रता होगी।

जैसे किसी आदमी के घर में आग लगी है, तो उसका मन घर की आग पर एकाग्र हो जाता है। उस समय पैर में जूता काट रहा है, इसका पता न चलेगा। उस समय उसकी जेब में हाथ डाल कर किसीने रुपये निकाल लिए, पता न चलेगा। उस समय कुछ भी पता न चलेगा। उस समय वह आग बुझाने में लगा है। हाथ जल जाएगा, तो भी पीछे पता चलेगा। चित्त एकाग्र है। सारी शक्ति आग पर लगी है। सब भूल गया। एकाग्रता का अर्थ संकीर्णता है। जब तुम प्रयास करते हो किसी एक चीज को पाने का, एक नाम ही याद नहीं आ रहा है, तब तुम्हारा चित्त एकाग्र हो जाता है। एकाग्र होते ही संकीर्ण हो जाता है।

और जटिलता यहीं है। परमात्मा विराट है। संकीर्ण चित्त से उसे पाया नहीं जा सकता। एक छोटा शब्द याद नहीं आता, तो उस परमात्मा का नाम तो कैसे याद आएगा? और जीभ पर ही नहीं रखा है, हृदय पर रखा है; याद नहीं आता। फिर अनायास जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे होते, चित्त शिथिल हो जाता है। द्वार-दरवाजे खुल जाते हैं। एकाग्रता की संकीर्णता विलीन हो जाती है। फिर तुम खुल गये। उस क्षण में परमात्मा प्रवेश कर जाएगा।

लेकिन मजा यही है कि अगर तुमने पहले प्रयास किया हो, तो ही यह दूसरी घटना घटेगी। अगर पहले प्रयास ही न किया हो, तो यह दूसरी घटना न घटेगी। वह जो तुमने पहले जद्दोजहद की नाम को याद करने की, उस जद्दोजहद का ही यह अंतिम हिस्सा है। तुम इतने जोर से कोशिश किये, कि हार गये। फिर कोशिश छोड़ दी। लेकिन वह जो जोर की तुमने कोशिश की थी, चित्त से सरक कर अचेतन में चली गयी। वह कोशिश अब भी जारी है भीतर। अब ऊपर से तो कोशिश बंद हो गयी, लेकिन अब भीतर कोशिश जारी है। इसलिए चाय पीते वक्त, अखबार पढ़ते वक्त वह नाम आ गया।

तो कोशिश दो तरह की है। एक, तुम जो करते हो। तुम्हारी की गयी कोशिश से परमात्मा न मिलेगा। फिर तुम हार गये, थक गये, फिर तुमने कोशिश छोड़ दी। लेकिन तुमने जो कोशिश की, वह तुम्हारे रोएँ-रोएँ में समा गयी। तुम्हारी धड़कन-धड़कन में व्याप्त हो गयी। वह कोशिश तुम्हारे होनेका ढंग हो गया।

अब तुम उसे छोड़ भी नहीं सकते। अब तुम कुछ भी करो, वह भीतर चल रही है। उसकी एक अंतर्धारा बह रही है। उसी अंतर्धारा में परमात्मा का उदय होगा। क्योंकि अब वह कोशिश अचेतन की है, जिसको मनोवैज्ञानिक 'अनकॉन्शस' कहते हैं।

'कॉन्शस' बहुत छोटा है। चेतन मन एक हिस्सा है। अचेतन मन नौ गुना बड़ा है। तो चेतन मन का एक दरवाजा है, अचेतन मन के नौ दरवाजे हैं। ऐसा ही जैसे बर्फ का एक टुकड़ा पानी में तैर रहा हो, तो एक हिस्सा ऊपर होता है, नौ हिस्सा नीचे डूबा होता है।

जब तुम चेतन से कोशिश करते हो, तब तुम्हें कुछ लाभ न होगा। लाभ यही होगा, परोक्ष, कि चेतन की कोशिश जब आखिरी सीमा पर आ जाएगी, और तुम थक जाओगे, तब तुम तो कोशिश बंद कर दोगे, लेकिन कोशिश अचेतन में जारी रहेगी। तुम तो छोड़ दोगे, अचेतन अब छोड़ने वाला नहीं है।

इसका अर्थ यह हुआ, कि चेतन की कोशिश धीरे-धीरे अचेतन की कोशिश बन जाती है। और जब अचेतन की कोशिश बन जाती है, तब जप अजपा हो गया। अब तुम्हें जप करना नहीं पड़ता। अब हो रहा है। अब भीतर चल रहा है। तुम बाजार जाओ, दूकान पर बैठो, धंधा करो, सोओ, तो भी जप चल रहा है। क्योंकि जप अचेतन में प्रविष्ट हो गया। अब तुम्हारे राई-रत्ती, तुम्हारे कण-कण में वही धुन बज रही है। तुम्हें भी सुनायी न पड़े, लेकिन बज रही है।

चेतन का इतना ही उपाय है कि वह अचेतन तक पहुँचा दे। किसी दिन विस्फोट होगा। और अचानक परमात्मा सामने तुम पाओगे। तब तुम्हें लगेगा, उसकी अनुकंपा से मिला। क्योंकि तुमने तो खोज भी छोड़ दी थी। तुमने तो प्रयास भी न किया था। तुम तो थक कर हार भी चुके थे। तुम तो कभी के रुक गये थे, और मंजिल आ गयी। तो तुम्हारे चलने से तो नहीं आयी। क्योंकि जब तक तुम चलते रहे तब तक तो आयी ही नहीं। फिर तुम तो रुक गये। तुमने तो यात्रा ही बंद कर दी, और अचानक तीर्थ सामने आ गया। यात्रा बंद करते ही सामने आ गया। तो स्वभावतः तुम्हें लगेगा कि उसकी अनुकंपा से हुआ। सभी पहुँचने वालों को लगा है कि उसकी अनुकंपा से हुआ। तो एक तो कारण यह है।

लेकिन पहले चेतन से पूरी कोशिश कर लेनी है। तुम यह मत सोचना कि जब उसकी अनुकंपा से होना है, हम क्यों कुछ करें? जब होना ही उसकी कृपा से है, तो जब होना होगा हो जाएगा। हम क्यों झंझट में पड़ें? तब कभी भी न होगा। और अगर तुमने सोचा कि हमारी ही चेष्टा से होना है, तब भी न होगा। इसलिए हम चेष्टा से कभी भी बंद न होंगे, हम चेष्टा जारी रखेंगे, तब भी न होगा। तुम्हारी चेष्टा और उसकी अनुकंपा का जहाँ मिलन होता है, वहाँ तुम्हारी चेष्टा तो शांत हो गयी होती है, उसकी अनुकंपा ही रह जाती है।

तुम तुम्हारे चेतन तक सीमित हो, अचेतन में वही छिपा है। तुम तुम्हारे चेतन मन और विचार की सीमा में बंद हो। उससे गहरे में वही बैठा है। वह मिला ही हुआ है। लेकिन चेतन और अचेतन का बीच का दरवाजा तोड़ना तुम्हारी चेष्टा से होगा। और मिलने की प्रतीति उसके अनुकंपा से होगी।

जिन्हें खोजना है, उन्हें पू ी खोज करनी पड़ेगी, और खोज छोड़नी भी पड़ेगी। यह छोड़ना, बीच में छोड़ा तो व्यर्थ है। क्योंकि जब तुम्हारी खोज पूरी हो जाती है और तुमने अपने को दाँव पर पूरा लगा दिया, कुछ भी बचाया नहीं, उसी क्षण में जो चेतन की खोज थी वह अचेतन में प्रवेश कर जाती है। वही सीमा है। वहाँ तुम्हारे होश की दुनिया समाप्त हुई। वहाँ तुम समाप्त हुए, तुम्हारा अहंकार समाप्त हुआ।

नींद में तुम्हारा कोई अहंकार होता है? नींद में तुम्हारी कोई भी तो अकड़ नहीं रह जाती। नींद में कोई यह भी तो कहनेवाला नहीं रह जाता, कि मैं हूँ। सम्राट हूँ, धनपति हूँ। नींद में 'मैं' बिलकुल खो जाता है। ठीक ऐसे ही, अचेतन में तुम्हारे 'मैं' का कोई स्वर नहीं रह जाता। 'मैं' चेतन मन के बीच बनी हुई घटना है। प्रयास से 'मैं' टूटेगा, क्योंकि जब तुम थकोगे तब अहंकार विसर्जित हो जाएगा। अहंकार विसर्जित होते ही अचेतन के द्वार खुल गये। और अचेतन के द्वार ही परमात्मा के द्वार हैं। वहीं से कोई पहुँचा है। लेकिन तब वहाँ तुम तो हो ही नहीं कहने को, कि 'मैं।' इसलिए जब भी उपलब्धि होगी, तुम कहोगे उसकी कृपा, उसकी अनुकंपा।

इससे एक और भ्रांति पैदा होती है। इससे यह भ्रांति पैदा होती है कि क्या किसी पर उसकी ज्यादा कृपा और किसी पर उसकी कम कृपा है? क्योंकि अगर उसीकी कृपा से होता है, तो किसीको हो रहा है, और इतनों को नहीं हो रहा है। तब तो बड़ा अन्याय है। ध्यान रखना, तुम्हारे प्रयास से तुम उसकी कृपा के योग्य बनते हो। उसकी कृपा तो बरस ही रही है, लेकिन तुम योग्य नहीं होते। इसलिए जो मिल रहा है उसे भी तुम स्वीकार नहीं कर पाते। उसकी कृपा में कोई अंतर नहीं है।

नानक कहते हैं, उसके सामने न तो कोई ऊँच, न कोई नीच; उसके सामने न तो कोई योग्य, न कोई अयोग्य; वह बाँटे जा रहा है। लेकिन अगर तुम लेने को तैयार नहीं हो, तो तुम चूके चले जाओगे। तुम्हारी तैयारी के कारण वह तुम्हें नहीं देता है। वह तो दिए ही चला जाता है। तुम्हारी तैयारी के कारण तुम लेने में समर्थ होते हो।

जैसे एक जौहरी आए, और एक हीरा पड़ा हो और उठा ले। और तुम भी गुजरे थे उसके पास से। हीरा तुम्हारे लिए भी उतना ही उपलब्ध था, हीरे ने

जरा भी फासला न किया है कि जौहरी के हाथ जाऊँगा, और तुम्हारे हाथ न जाऊँगा। तुमने उठाया होता तो हीरा मना न करता। हीरा तुम्हारे लिए उतना ही प्राप्त था, लेकिन तुम्हारे पास आँख न थी कि तुम पहचान सको कि हीरा है। और तुम्हारे पास वह परख न थी कि तुम हीरे को उठा लो। जौहरी के पास परख थी। जौहरी के पास आँख थी, तैयारी थी।

परमात्मा तो तुम्हारे सामने ही पड़ा है। जहाँ भी तुम नजर उठाते हो, वही है। लेकिन तुम्हारे पास नजर नहीं है। तुम्हारी आँखें उसे देख नहीं पातीं। तुम्हारे हाथ उसे छू नहीं पाते। तुम्हारे कान उसे सुनते नहीं हैं। तुम बधिर हो, अंधे हो, लंगड़े हो। वह बुलाता है तो भी तुम दौड़ नहीं पाते। तुम उसे सुन ही नहीं पा रहे हो, और वह चारों तरफ मौजूद है। उसकी उपलब्धि में किसीको अंतर नहीं है। उसके सामने सब बराबर हैं। होंगे ही। क्योंकि सभी उसीसे आते हैं। सभी उसीमें लीन हो जाते हैं। भेद कैसे होगा?

तुम क्या अपने दायें हाथ और बायें हाथ में भेद करते हो, कि दायें हाथ में चोट लगे तो ज्यादा दर्द होता है, बायें हाथ में लगे तो कम होता है? दोनों तुम्हारे हैं। बायें और दायें का फर्क तो ऊपरी है, भीतर तो तुम एक ही हो।

तो क्या गरीब और अमीर में परमात्मा अंतर करता है? क्या ज्ञानी और अज्ञानी में अंतर करता है? क्या अच्छे और बुरे में अंतर करता है? पापी और पुण्यात्मा में अंतर करता है? तब तो उसका दान भी सशर्त हो गया, कंडीशनल हो गया। तब तो वह भी कहता है, तुम ऐसे होओगे तो मैं दूँगा। तब तो वह तुम्हें नहीं देता, अपनी शर्त को ही देता है। यह एक वह सौदा हो गया।

नहीं, परमात्मा तो दे ही रहा है बेशर्त; अनकंडीशनल उसकी वर्षा है। अगर तुम नहीं ले पा रहे हो तो कहीं तुम ही चूक रहे हो। वह तो द्वार पर दस्तक देता है, लेकिन तुम सोचते हो, शायद हवा का झोंका आया होगा। उसके पद-चिन्ह तुम्हें दिखायी पड़ते हैं, लेकिन तुम व्याख्या करते हो। और व्याख्या में ही चूक जाते हो। तुम व्याख्या ऐसी कर लेते हो जो कि तुम्हारे अंधेपन को बढ़ाती है।

बहुत तरफ से तुम्हारे तरफ परमात्मा आता है। उसके आने में जरा भी कमी नहीं है। जितना वह बुद्ध के पास आया, जितना नानक के पास आया, उतना ही तुम्हारे पास आता है। उसके लिए कोई भी फर्क नहीं है, तुम्हारे और नानक में। लेकिन नानक उसे पहचान लेते हैं, जौहरी हैं। बुद्ध उसका दामन पकड़ लेते हैं। तुम चूकते चले जाते हो। तुम्हारे प्रयास से तुम योग्य बनोगे, परख के लायक बनोगे और तुम्हारे प्रयास से तुम्हारा अंधापन टूटेगा। तुम्हारे प्रयास से तुम्हारा अहंकार गिरेगा। हारोगे, थकोगे, गिर जाओगे। और जैसे ही तुम न रहोगे, वैसे ही तुम

पाओगे, कि वह सदा सामने था, नाक के बिलकुल सीध में था, जहाँ नाक घूमती थी वहीं था। और वह सदा उपलब्ध था। अगर चूक रहे थे, तो तुम चूक रहे थे अपने कारण।

इसे ठीक से हृदय में समा लेना। अगर चूक रहे हो तो तुम चूक रहे हो अपने कारण। अगर पाओगे तो अपने कारण नहीं पाओगे, उसके प्रसाद से पाओगे। यह बात बेबूझ लगती है, जिन्होंने नहीं जाना। क्योंकि तब हमें लगता कि जब हम अपने कारण चूक रहे हैं, तो हम पाएँगे भी अपने ही कारण। यह ज्यादा साफ तर्क मालूम पड़ता है, कि जिस चीज को मैं अपने कारण चूक रहा हूँ, अपने ही कारण पाऊँगा। बस, यही तर्क की भूल हो जाती है। चूक तुम अपने कारण रहे हो, पाओगे तुम उसकी कृपा से।

इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि तुम जब तक हो, तब तक तो तुम उसे पा ही न सकोगे। इसलिए तुम अपने कारण कैसे पाओगे? तुम ही तो बाधा हो। तुम्हारे कारण ही तो तुम चूक रहे हो। तुम्हारे होने के कारण ही तुम चूक रहे हो। तो जिस कारण से तुम चूक रहे हो, उसीसे तुम कैसे पाओगे? वही तो कारण है चूकने का। तुम जितने समझते हो कि 'मैं हूँ', उतनी ही बाधा है। उतनी ही मजबूत दीवाल है। यह दीवाल हट जाए, वह मौजूद है। चेतन प्रयास से दीवाल टूटेगी, द्वार खुलेगा। लेकिन परमात्मा की रोशनी सदा बाहर मौजूद थी।

जब तुम उसे पाओगे तो बहुत बातें साफ हो जाएँगी। एक बात साफ होगी, कि अपने कारण चूका और तेरे कारण पाया। दूसरी बात साफ हो जाएगी, कि तू पास था लेकिन मैं दूर खोज रहा था। तू जहाँ था वहाँ न खोज कर, मैं वहाँ खोज रहा था जहाँ तू था ही नहीं। इसलिए भटक रहा था। मैं एक ऐसी चीज के सहारे खोज रहा था जिसके सहारे खोज हो ही नहीं सकती थी।

हर जीवन के आयाम में यात्रा के वाहन होते हैं। तुम नाव पर सवार होकर समुद्र की यात्रा कर सकते हो, लेकिन नाव पर सवार होकर तुम पृथ्वी की यात्रा न कर सकोगे। और तुम कितने ही कुशल नाविक हो, और तुमने कितने ही दूर के सागर पार किये हों, और तुम्हें कितना ही अनुभव हो सागरों का, अपनी नाव को उठा कर सड़क पर मत रख लेना। क्योंकि उसमें बैठ कर यात्रा नहीं हो सकती। उसके कारण चल भी न सकोगे। उसके कारण, पैदल भी चल सकते थे वह भी न हो सकेगा। वह नाव तुम्हारे गले से बँध गयी, और तुम्हारे अनुभव के कारण। क्योंकि तुमने बड़े-बड़े सागर पार किये हैं, क्या यह छोटी सी पृथ्वी का टुकड़ा? इतने खतरनाक सागर पार किये तो क्या इस छोटी सी जमीन को तुम पार न कर सकोगे? लेकिन नाव यहाँ वाहन नहीं बन सकती।

यही हो रहा है। अहंकार की नाव संसार में तो वाहन है। वहाँ तो उसके बिना कोई चल ही नहीं सकता। वहाँ तो जो उसके बिना चलेगा, गिरेगा। वहाँ तो अहंकार की ही प्रतिस्पर्धा है। वहाँ तो सारा संघर्ष 'मैं' का है। और जो जितने बड़े अहंकार से चलेगा उतना सफल होगा वहाँ। भला वह सफलता अंत में असफलता सिद्ध हो, वह दूसरी बात! लेकिन वहाँ अकड़ जीतती है। वहाँ अकड़ का पागलपन जीतता है, क्योंकि वह दुनिया पागलों की है।

लेकिन अगर इसी अहंकार को लेकर तुम परमात्मा की तरफ जाने लगे, तब भूल हो जाएगी। तुम चाहे कितने ही सफल रहे हो, सिकंदर रहे हो, नेपोलियन रहे हो, संसार में तुमने कितनी ही सफलता पायी हो, इसी नाव को लेकर तुम परमात्मा की तरफ मत जाना। क्योंकि यही बाधा हो जाएगी। इसीकी वजह से तुम जकड़ जाओगे। नाव को रख कर उसीमें बैठे रह जाओगे। यात्रा तो असंभव होगी।

जिस दिन कोई उसकी झलक पाता है, उस दिन पाता है, अपने कारण खो रहा था। तेरे प्रसाद से तू मिला। और यह भी समझ में आता है कि हमने जो प्रयास किये वे इतने छोटे थे, जो मिलता है वह इतना बड़ा है, कि उन दोनों के बीच कोई संगति नहीं हो सकती। जैसे कोई सुई से तो यात्रा कर रहा हो, सुई को पकड़ कर, और सागरों की उपलब्धि हो जाए। तो तुम यह भी नहीं सोच पाओगे कि सुई से और सागर की उपलब्धि का क्या लेना-देना?

आदमी के सभी प्रयास सुई के जैसे हैं। छोटे हैं, बहुत छोटे हैं। जब तक तुम्हें मिला नहीं परमात्मा, तब तक तुम तौल नहीं सकते कि तुम जो कर रहे हो उसका मतलब क्या है? कोई आदमी कह रहा है कि मैं मंदिर में पूजा कर रहा हूँ। क्या कर रहे हो तुम पूजा में? घंटा बजा रहे हो, फूल चढ़ा रहे हो। माना, कि बड़ा अच्छा कृत्य कर रहे हो; लेकिन क्या इसकी संगति है परमात्मा को पाने से? कि तुम कहो, कि मैं रोज घंटे भर बैठ कर तेरा जप करता हूँ। तुम पागल हो गये हो। तुम बार-बार नाम ले लेते हो परमात्मा का घंटे भर तक, इससे तुम सोचते हो कि परमात्मा के मिलने की कोई संगति है। तुमने किया क्या है? तुम कहते हो, मैं चिल्लाता था, आवाज लगाता था। तुम्हारा कंठ और तुम्हारी आवाज, उनका मूल्य कितना है? तुम्हारे चिल्लाने की पहुँच कितनी है?

और जो तुम पाओगे, पाते ही तुम्हें लगेगा कि मेरे प्रयास तो बिलकुल बचकाने थे। जिनका कोई भी मूल्य नहीं था। चाहे मंदिर जाओ, चाहे तीर्थ जाओ, काबा-काशी जाओ, पूजा करो, प्रार्थना करो, जप-तप करो, शीर्षासन करो, उलटे-सीधे आसनों में लगो, चिल्लाओ, पुकारो, नाम जपो, तुम जो भी कर रहे हो, तुम्हीं कर रहे हो। तुम्हारे करने का मूल्य कितना है? उस निर्मूल्य को पाने के

लिए तुम ये क्षुद्र प्रयास कर रहे हो, जिनकी बाजार में कीमत है। तुम अगर एक घंटे बाजार में जाकर काम करो, तो तुम्हें एक रुपया मिल जाता है। तुम एक घंटे पूजा करते हो, परमात्मा पाना चाहते हो ? एक रुपया समझ में आता है, कि तुम घंटे भर काम करते हो। अगर घंटे भर श्रम करोगे तो कुछ कमा लोगे, उसकी कुछ संगति है। लेकिन ध्यान से तुम कैसे कमा लोगे, इसकी क्या संगति है ?

जो मिलता है वह अपरंपार है। जो हमने किया था वह ना-कुछ है। जैसे ही तुम पाओगे, यह भेद दिखायी पड़ेगा, कि हम तो चम्मच लेकर चले थे और यह सागर उतर आया। उस क्षण तुम निश्चित ही कहोगे कि तेरी कृपा है, तेरी अनुकंपा है। इसलिए सभी संतों ने प्रयास किये हैं और सभी संतों ने अंतिम वक्तव्य प्रयास के विपरीत दिये हैं। और फिर भी अपने भक्तों को कहा कि प्रयास करते रहना। प्रयास मत छोड़ देना। इसलिए संतों की वाणी अतर्क्य मालूम पड़ती है, इलॉजिकल मालूम पड़ती है। हमारा सीधा-साफ गणित है कि अगर प्रयास से मिलता हो तो करते रहें।

मैं कभी बोलता हूँ, कि नहीं, प्रयास से नहीं मिलेगा। उसी साँझ मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, फिर हम प्रयास क्यों करें ? तो हम सब छोड़ द ? तो ध्यान इत्यादि का जो हम श्रम कर रहे हैं क्यों करें, अगर वह बिना प्रयास के मिलेगा ? और आप ही ने कहा कि प्रयास से नहीं मिलता, तो फिर प्रयास का क्या सार ?

इन पागलों को--इनका जो तर्क है वह जीवन की आत्यंतिक व्यवस्था से भी मेल खाना चाहिए, ऐसी इनकी धारणा है। जीवन का आत्यंतिक रूप तुम्हारे तर्क को मान कर नहीं चलता। तुम्हें अपने तर्क को ही उसके हिसाब से जमाना पड़ता है। वह तुम्हारी फिक्र नहीं करता। सत्य तुम्हारे मन की धारणाओं की चिंता नहीं करता। तुम्हें अपनी मन की धारणाएँ ही उसके अनुकूल जमानी पड़ती हैं।

ऐसा हुआ। इस सदी के प्रारंभ में भौतिक शास्त्रियों ने, फिजिसिस्ट ने एक खोज की। और वह खोज बड़ी तर्क के बाहर थी। वह खोज यह थी, कि जो पदार्थ का अंतिम कण है, इलेक्ट्रॉन है, उसका व्यवहार बड़ा बेबूझ है। वह संतों की वाणी से तो मेल खाता है, विज्ञान की परीक्षण और विज्ञान की प्रयोगशाला में उसकी कोई संगति नहीं है। उससे ज्यादा पहेली की घटना कभी वैज्ञानिक के समझ में नहीं आयी थी। वह जो इलेक्ट्रॉन है, वह एक साथ दोहरा व्यवहार करता है; जो कि बिलकुल गणित के बाहर है। एक साथ वह कण की तरह भी व्यवहार करता है और तरंग की तरह भी। यह असंभव है।

अगर ज्यॉमिति तुम ने पढ़ी है तो लकीर लकीर है, और बिंदु बिंदु है। बिंदु कभी लकीर जैसा नहीं हो सकता और लकीर कभी बिंदु जैसी नहीं हो सकती। क्योंकि बिंदु तो एक बिंदु है। लकीर बहुत से बिंदुओं का जोड़ है। अनंत बिंदुओं का जोड़ है। अगर किसी एक ऐसे बिंदु को बना सको अपनी पुस्तक में, जिसको तुम देखते रहो हो कभी तो वह लकीर हो जाए और कभी बिंदु हो जाए, तो तुम खुद ही घबड़ा जाओगे। या तो तुम पागल हो गये हो, या कोई मजाक कर रहा है, कोई जादू कर रहा है। क्योंकि बिंदु या तो बिंदु है, या लकीर। दोनों एक साथ, एक चीज के रूप नहीं हो सकते।

और ऐसे ही कण और तरंग हैं। कण एक बात है, बिंदु है; और तरंग है लहर। लेकिन फिजिसिस्ट्स इस सदी के प्रारंभ में इस नतीजे पर पहुँचे कि इलेक्ट्रॉन दोनों व्यवहार एक साथ कर रहा है। एक साथ, एक ही समय में। बड़ी मुसीबत हो गयी—सारा तर्क !

और विज्ञान तो तर्कनिष्ठ है। वह कोई रहस्यवादियों का खेल तो नहीं है। वह कोई काव्य तो नहीं है। वह तो गणित है। तो क्या करना ? जितना ही खोजा उतनी ही मुसीबत बढ़ती गयी। और आखिर में यह स्वीकार कर लेना पड़ा कि यह दोनों ही उसका एक साथ व्यवहार हो रहा है।

लोगों ने पूछा खोजियों से, कि आपको कहते शर्म नहीं आती ? ये दोनों चीजें एक साथ कैसे हो सकती हैं ? यह तो बिलकुल गणित के विपरीत है। और इससे यूक्लिड की पूरी ज्यामेट्री गलत हो जाती है।

तो वैज्ञानिक ने जो उत्तर दिये, उन्होंने कहा, हम करें भी क्या ? अगर वह 'कण' ज्यामेट्री को नहीं मानता, और यूक्लिड को नहीं मानता, तो हम क्या करें ? हमने सब तरफ से खोज कर देख लिया, कण जो व्यवहार कर रहा है हम तो वही कहेंगे। अगर वह तर्क के बाहर है, तो तर्क के बाहर है। तर्क को तुम सुधार लो। लेकिन इस कण को कौन समझाने जाए, कि तू तर्क के हिसाब से चल ?

इसलिए नयी ज्यामेट्री का जन्म हुआ—'नान यूक्लिडियन ज्यामेट्री'। बदलनी पड़ी ज्यामेट्री। वह कण तो मानेगा नहीं। इलेक्ट्रॉन, वह तो किसीकी सुनेगा नहीं। वह तो जैसा कर रहा है कर रहा है, तुम अपना गणित ठीक जमा लो। तुम अपने तर्क में फर्क कर लो।

पहली दफा इलेक्ट्रॉन के अध्ययन से यूक्लिड व्यर्थ हो गया। यूक्लिड की सब परिभाषाएँ खराब हो गयीं। और अरिस्टॉटल के सब तर्क के सिद्धांत व्यर्थ हो गये।

यही मुसीबत संतों की है। वे वैज्ञानिकों से पहले उसके दरवाजे पर दस्तक दिये हैं। और वहाँ उन्होंने पाया कि प्रयास के बिना नहीं मिलता और प्रयास से

भी नहीं मिलता। यह स्थिति ऐसी है। इसमें कुछ किया नहीं जा सकता। प्रयास भी करना पड़ता है, और मिलता बिना प्रयास के है। लेकिन अगर तुम समझो, तो भीतर एक गहरी संगति है। वह ख्याल में आ जाए तो अपनी तरफ से तुम पूरा दाँव पर लगा देना। मिलेगा तो वह उसकी अनुकंपा से। लेकिन उसकी अनुकंपा पाने के योग्य तुम तभी बनोगे, जब तुमने अपने को पूरा दाँव पर लगा दिया। यही इस सूत्र का सार है, अब इसको समझने की कोशिश करें।

'इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख बीस।
लखु लखु गेड़ा अखिअहि एक नामु जगदीस॥'

'यदि एक जीभ से लाख जीभ हो जाएँ, और लाख से भी बीस लाख हो जाएँ, तो मैं प्रत्येक जीभ से लाख-लाख बार जगदीश का नाम जपूँगा।'

तब तुम थकोगे, उसके पहले न थकोगे। तुमने अभी जपा ही क्या है? तुमने अभी ध्यान ही कितना किया? तुमने अभी पुकारा ही क्या है? तुम चिल्लाए ही कहाँ? तुमने पूरी ताकत ही नहीं लगायी है। अगर तुम्हारे घर में आग लगी हो, तो तुम जितनी तेजी से बाहर भागते हो, इतनी तेजी से भी तुम परमात्मा की तरफ नहीं भागे हो। कि तुम्हारी पत्नी मर जाए, तो जैसे जार-जार होकर तुम रोते हो, ऐसा तुम उसके वियोग के लिए अभी तक नहीं रोये। कि तुम्हारा बच्चा भटक जाए, तो तुम जैसे पागल होकर बेतहाशा खोजने निकलते हो, ऐसी तुमने अभी तक उसकी खोज नहीं की। तुम्हारी खोज कुनकुनी है। अभी तुम उबले नहीं।

नानक उस उबलने की बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, कि एक जीभ से लाख जीभ हो जाएँ, और लाख से बीस लाख हो जाएँ, तो मैं इस प्रत्येक जीभ से लाख-लाख बार एक जगदीश का नाम जपूँगा।

रोआँ-रोआँ उसीके नाम से भर जाए। और रोआँ-रोआँ उसी की प्यास अनुभव करे। और रोएँ-रोएँ में एक ही पुकार गूंजने लगे, कि मुझे पाना है। और जीवन में सब व्यर्थ हो जाए। बस, एक परमात्मा की सार्थकता बचे। और सब गौण हो जाए, और सब छोड़ने को तुम तैयार हो जाओ। एक उसको पाना ही लक्ष्य बचे, तब तुम एकाग्र होओगे।

'स्वामी के नाम की यही सीढ़ियाँ हैं, कि एक जीभ से लाखों जीभ हो जाएँ, और फिर एक-एक जीभ लाखों बार उसका ही नाम जपे। स्वामी के नाम की यही सीढ़ियाँ हैं जिनपर चल कर साधक इक्कीस हो जाता है। अर्थात् भगवत्स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।'

'इक्कीस' शब्द आता है सांख्यों की गणना से। क्योंकि सांख्य कहते हैं, दो तरह से इक्कीस हो सकते हैं। सांख्यों की गणना बड़ी कीमती है। सांख्य शब्द का

अर्थ भी होता है गणना, संख्या। उसीसे सांख्य बना है। क्योंकि उन्होंने पहली गणना की है मनुष्य के अस्तित्व की, इसलिए उस दर्शन का नाम ही सांख्य हो गया।

सांख्य कहते हैं कि पाँच महाभूत उस एक से पैदा होते हैं। ये जो पृथ्वी, जल, आकाश—ये पाँच महाभूत उससे पैदा होते हैं। लेकिन ये महाभूत तो स्थूल हैं। इन महाभूतों को बाँधने वाली पाँच तन्मात्राएँ हैं, जो सूक्ष्म हैं। जो आँख से दिखायी नहीं पड़तीं। वैज्ञानिक भी राजी हैं, कि तुम्हें जो दीवाल दिखायी पड़ती है, वह तो तुम्हें दिखायी पड़ती है। यह स्थूल है। जैसी दीवाल है—'तन्मात्रा'—वह तो तुमने कभी देखी नहीं। वह तो वैज्ञानिक को थोड़ी सी उसकी झलक मिलती है। क्योंकि यह दीवाल जो तुम्हें थिर मालूम होती है, यह थिर नहीं है। यहाँ बड़ी गति है, और बड़ा जीवन है। एक-एक कण प्रकाश की गति से घूम रहा है। लेकिन गति इतनी ज्यादा है कि तुम उसे पकड़ नहीं पाते। वह इतनी सूक्ष्म है और तीव्र है...

प्रकाश की किरण चलती है एक सैकंड में एक लाख छियासी हजार मील। एक सैकंड में एक लाख छियासी हजार मील प्रकाश की गति है। प्रकाश की गति से दीवाल के अति सूक्ष्म कण--इलेक्ट्रॉन--घूम रहे हैं। उनकी गति इतनी तीव्र है कि तुम देख नहीं पाते। इसलिए दीवाल थिर मालूम पड़ती है। लेकिन दीवाल महान सक्रियता से गुजर रही है। हर चीज, पत्थर भी सक्रिय है और जीवंत है। और बड़ा कारोबार चल रहा है। इसलिए तो यह दीवाल एक दिन गिर जाएगी और खंडहर होगी। क्योंकि अगर यह बिलकुल थिर होती तो खंडहर कैसे होता? अगर कोई चीज बिलकुल थिर हो तो नष्ट ही नहीं हो सकती। क्योंकि क्रिया न चल रही हो, तो भीतर संघर्षण ही नहीं होगा। संघर्षण नहीं होगा तो विनाश कैसे होगा?

इसलिए वैज्ञानिक सोचते हैं कि अगर किसी आदमी को बचाना हो लंबी उम्र तक, तो उसको शून्य डिग्री से नीचे ठंडा कर के बर्फ में रख देना चाहिए। तो फिर उसको अनंतकाल तक बचाया जा सकता है। क्योंकि गति कम हो जाती है। इसलिए तो हम फल को फ्रिज में रखते हैं। वह ठंडा रहता है, तो देर तक सड़ता नहीं। क्योंकि जितनी ठंडक होती है उतनी गति क्षीण हो जाती है। इसलिए तो ठंढे मुल्कों के लोग ज्यादा उम्र पाते हैं, गर्म मुल्क के लोगों की बजाय। क्योंकि जितनी गर्मी होती है, उतनी गति होती है। जितनी गति होती है, उतनी जल्दी जितनी गर्मी होती है, उतनी गति होती है। जितनी गति होती है, उतनी जल्दी...

यह दीवाल परम-गति में लीन है। इसलिए गिरेगी। क्योंकि इसके भीतर संघर्षण हो रहा है। और संघर्षण होते-होते शक्ति क्षीण होगी। यह बिखर जाएगी, खंडहर हो जाएगा।

सांख्य कहते हैं, कि पाँच तन्मात्राएँ हैं। वे सूक्ष्म रूप हैं। और उन पाँच तन्मात्राओं के पाँच महाभूत हैं, जो उनका स्थूल रूप हैं--दस।

फिर पाँच ज्ञानेंद्रियाँ हैं जो सूक्ष्म रूप हैं, और पाँच कर्मेंद्रियाँ हैं जो स्थूल रूप हैं। आँख तुम्हारी कर्मेंद्रिय है, और देखने की क्षमता तुम्हारी सूक्ष्मेंद्रिय है। देखने की क्षमता न हो, तो आँख खो जाएगी, आँख रहे तो भी! कभी-कभी ऐसा होता है कि तुम आँख होते हुए अंधे हो जाते हो। क्योंकि तुम्हारा ध्यान कहीं और चला गया। और जब ध्यान कहीं और चला गया तो देखने की क्षमता कहीं और चली गयी। कान है, वह स्थूल इंद्रिय है--कर्मेंद्रिय, सुनने की क्षमता सूक्ष्म इंद्रिय है।

इसलिए तो नानक बार-बार कह रहे हैं, कि 'सुनिए'। तो वे तुम्हारे इस कान के लिए नहीं कह रहे हैं। क्योंकि यह कान तो सुन ही रहा है। यह कान तो बंद ही नहीं होता। क्योंकि आँख तो कम से कम झपकती है, कान तो झपकता भी नहीं। तो क्या बार-बार कह रहे हैं, 'सुनिए'? वे भीतर की सूक्ष्म इंद्रिय को इशारा कर रहे हैं। जब वे कहते हैं 'सुनिए,' वे यह कह रहे हैं, कि कान के पास आ जाओ, इधर-उधर मत भटकना। नहीं तो कान तो सुन लेगा, तुम सुनने से वंचित रह जाओगे।

तो पाँच सूक्ष्म इंद्रियाँ हैं जिनका नाम ज्ञानेंद्रियाँ है, और पाँच स्थूल इंद्रियाँ हैं जिनका नाम कर्मेंद्रियाँ है; ऐसे बीस।

नानक कहते हैं कि जो अपना सब कुछ दाँव पर लगा देगा वह इक्कीस हो जाता है। वह इक्कीसवाँ परमात्मा है। और अगर तुमने दाँव पर न लगाया और उसे न खोजा तो भी तुम इक्कीस हो जाते हो, वह इक्कीसवाँ तुम्हारा अहंकार है।

इसलिए इक्कीस होने के दो ढंग हैं। बीस तो स्थिति है; इक्कीस होने के दो ढंग हैं। या तो तुम परमात्मा को पा लो अर्थात असली आत्मा को पा लो, अपने स्वरूप को पा लो, तो इक्कीस हो जाओगे। और या फिर, एक झूठे स्वरूप की कल्पना कर लो कि मैं यह हूँ। धनी हूँ, ज्ञानी हूँ, शक्तिशाली हूँ, त्यागी हूँ, राजा हूँ, कुछ अकड़ बना लो। तो भी इक्कीस हो जाओगे। लेकिन यह इक्कीसवाँ झूठ है।

तो या तो बीस में एक झूठ जोड़ दो; बीस झूठ। या बीस में सत्य जोड़ दो; बीस सत्य। तुम इक्कीस हो जाओगे। हम सब भी इक्कीस हैं, और नानक भी इक्कीस हैं। इससे ज्यादा तो कोई हो नहीं सकता। मगर हम झूठ को जोड़े हुए हैं। हमने बिना खोजे जोड़ लिया है। यह बड़े मजे की बात है।

तुमने कभी अपने को खोजा नहीं, और तुम्हें ख्याल है कि तुम अपने को जानते हो। इससे बड़ा झूठ जगत में दूसरा नहीं है। तुमने न कभी अपने को खोजा और न झलक पायी अपनी कभी। फिर भी तुम कहते हो, 'मैं हूँ'। और तुम्हें कोई भी पता नहीं कि तुम कौन हो? तुम्हें उतना ही पता है जितना दर्पण बताता है। दर्पण क्या खाक बताएगा? दर्पण में तुम थोड़े ही दिखायी पड़ते हो, तुम्हारी चमड़ी का बाहरी हिस्सा दिखायी पड़ता है। दर्पण में तो तुम्हारे वस्त्र दिखायी पड़ते हैं, देह दिखायी पड़ती है, तुम थोड़े ही दिखायी पड़ते हो। तुम्हारी आत्मा थोड़े ही दर्पण में झलकती है। तुम्हारा स्वरूप थोड़े ही दर्पण में झलकता है। दर्पण जितना बताता है उसको तुम समझते हो, 'मैं हूँ'।

और इस 'मैं' को तुम 'इक्कीस' माने हुए हो। यही दुःख है। यही नरक है। अगर तुमने इक्कीसवाँ झूठ जोड़ लिया, तो तुम दुःख में पड़ोगे ही। बीस तो वही रहेंगे। यह इक्कीसवाँ झूठ रहेगा, इसलिए तुम नरक में पड़ जाओगे। बीस तो जो हैं, तब भी वही रहेंगे। अगर यह इक्कीसवाँ सच हो जाए, तो सच होते ही तुम परम मुक्ति को अनुभव करोगे। क्योंकि बीस के कारण कोई उपद्रव नहीं है। वह तो जीवन की व्यवस्था है। यह इक्कीसवाँ उपद्रव है। अगर झूठ है तो पीड़ा लाएगा।

इसलिए अहंकार जितना दुःख देता है, उतना और कोई चीज दुःख नहीं देती। अहंकार के अतिरिक्त दुःख का कोई सूत्र ही नहीं है। जितना दुःख चाहिए हो उतना अहंकार बढ़ाओ। जितना अहंकार बढ़ाओगे, नरक तुम्हारी मुट्ठी में होगा। जो चाहो, पैदा कर लो।

जितना आनंद चाहिए हो, उतना अहंकार घटाओ। जिस दिन अहंकार बिलकुल न होगा, स्वर्ग तुम्हारी मुट्ठी में होगा। तुम्हारी छाया बन जाएगा। तुम जहाँ जाओगे, वहाँ स्वर्ग होगा। फिर तुम्हें नरक नहीं भेजा जा सकता। अगर तुम्हें नरक में भी पटक दिया जाए तो तुम पाओगे कि वहाँ भी स्वर्ग है। क्योंकि जिसके पास अहंकार नहीं, उसे सब जगह स्वर्ग है। और जिसके पास अहंकार है, उसे कोई जबरदस्ती स्वर्ग में भी डाल दे, तो वहाँ भी दुःख ही पाएगा। क्योंकि दुःख का संबंध, या सुख का संबंध स्थितियों से नहीं है। वह भीतर का इक्कीस सच है या झूठ--

नानक कहते हैं, कि जिसने सब दाँव पर लगा दिया, स्वामी के नाम की यही सीढ़ियाँ हैं--दाँव पर लगाना। लगाते जाना। ऐसी घड़ी आ जाए कि कुछ बचे ही न दाँव पर लगाने को, सब लगा दिया ...

'जिन पर चल कर साधक इक्कीस हो जाता है, अर्थात भगवत्स्वरूप को प्राप्त करता है। आकाश की, उच्च पद की चर्चा सुन कर, कीट के समान क्षुद्र लोगों को भी स्पर्धा हो जाती है।'

यहाँ एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात वे कह रहे हैं, कैसे धर्म विकृत होता है !

नानक कहते हैं, उसकी कृपादृष्टि से ही कोई उसको प्राप्त करता है। झूठे लोग तो झूठी डींगें हाँकते रहते हैं।

जब किसीके जीवन में उसका प्रकाश आता है, तो वह रुक नहीं सकता उसकी चर्चा करने से। जैसे फूल जब खिलेगा तो कैसे रुकेगा सुगंध देने से! और दीया जब जलेगा तो कैसे रुकेगा प्रकाश देने से ? जब किसीके भी जीवन में भगवत्ता का अवतरण होता है, तो वह उसकी चर्चा करेगा। उसकी महिमा के गीत गाएगा। जो उसने पाया है, वह उसके रोएँ-रोएँ से प्रकट होने लगेगा, सुगंध की तरह, प्रकाश की तरह। वह बोलेगा तो उसे बोलेगा। वह चुप रहेगा तो उसमें ही चुप रहेगा। उसका सब होना उसीकी खबर देगा।

नानक कहते हैं, इसे देख कर, आकाश की उच्च पद की चर्चा सुन कर, कीट के समान क्षुद्र लोगों को भी स्पर्धा हो जाती है। जो बहुत छोटे-छोटे लोग हैं, उनके मन में भी बड़ी प्रतिस्पर्धा और बड़ी ईर्ष्या जगती है, कि अच्छा, तुमने पा लिया। तो पहला तो काम यह है कि वे इन्कार करेंगे, कि पाया नहीं है, सब बातचीत है।

इसलिए जब भी कोई परमात्मा को अनुभव करेगा, तो पहली घटना तो यह घटेगी कि चारों तरफ लोग इन्कार करने लगेंगे, कि इस आदमी ने पाया-वाया नहीं है। यह सब बातचीत है। अब कहाँ कलियुग में कोई पा सकता है ? वे हो गयीं सतयुग की बातें। वे हजार तरह के छिद्रान्वेषण करेंगे। वे हजार तरह के उपाय निकालेंगे कि सिद्ध कर दें, कि इसने कुछ पाया नहीं।

अगर वे असफल हुए, जो कि वे असफल होंगे, अगर पाया है तो कोई सिद्ध करने का उपाय नहीं। न आचरण से तुम सिद्ध कर सकते हो, कि नहीं पाया। न व्यवहार से तुम सिद्ध कर सकते हो, कि नहीं पाया। न कपड़े-लत्तों से, न खाने-पीने से, फिर कोई चीज से तुम सिद्ध नहीं कर सकते, कि नहीं पाया। जिसने पा लिया है उसकी रोशनी सब तरफ से दिखायी पड़ेगी।

तब क्या करोगे ? तब दूसरा उपाय है कि तुम्हारे बीच जो सचमुच सर्वाधिक अहंकार और स्पर्धा से भरे लोग हैं, वे घोषणा करेंगे कि हमने भी पा लिया है। अहंकार पहले तो इन्कार करेगा, कि तुम कैसे पा सकते हो मुझ से पहले, जब मैं मौजूद हूँ ? जब देखेगा कि कोई उपाय असिद्ध करने का नहीं है, तो अहंकार दूसरी घोषणा करेगा, कि मैंने भी पा लिया है।

नानक कहते हैं, कि क्षुद्र लोग भी--सब से बड़ी क्षुद्रता अहंकार है, और कोई क्षुद्रता नहीं है--कीटों की तरह क्षुद्र लोग भी, स्पर्धा से भर जाते हैं। और तब वे झूठी डींगें हाँकने लगते हैं।

तो दुनिया में अगर एक सद्गुरु होता है, तो कम से कम निन्यानबे असद्गुरु होते हैं। इसी अनुपात में घटना घटती है। और मजा यह है कि असद्गुरु तुम्हें ज्यादा आसानी से आकर्षित कर सकता है, बजाय सद्गुरु के। क्योंकि असद्गुरु तुम्हारी ही भाषा बोलता है। और असद्गुरु तुम्हें भलीभाँति पहचानता है, और वही सब करता है जो तुम चाहते हो, जो तुम्हारी भीतरी मनोकांक्षा है। अगर तुम चाहते हो कि हाथ से राख प्रकट हो, तो राख प्रकट करवा देता है। अगर तुम चाहते हो कि तावीज हाथ में आ जाए आकाश से, तो ताबीज ला देता है।

यही धंधा तुम मदारी का सड़क पर देखते हो, लेकिन जरा भी प्रभावित नहीं होते हो। यही धंधा जब कोई साधू-संत करता है, तब तुम दीवाने हो जाते हो। कि बस, मिल गया सद्गुरु ! तुम जो चाहते हो; तुम चाहते हो कि बीमारी मिट जाए, तो आशीर्वाद देता है। तुम चाहते हो बेटा पैदा हो जाए, तो आशीर्वाद देता है। तुम चाहते हो मुकदमा जीत जाए, तो आशीर्वाद देता है। तुम्हारी वासनाओं को तृप्त करने की कोशिश करता है। इसलिए तुम असद्गुरु के पास लाखों की संख्या में इकट्ठे हो जाओगे। क्योंकि वह तुम्हारी ही जिंदगी का हिस्सा है।

सद्गुरु को पहचानना तुम्हें मुश्किल है। क्योंकि उसकी पहचान का मतलब ही है, जीवन में रूपांतरण ! तुम बदलो। असद्गुरु तुम्हें कुछ देगा। सद्गुरु तो तुमसे सब छीन लेगा। असद्गुरु तो तुम्हारी वासनाओं को तृप्त करने की कोशिश करेगा।

और मजा यह है जिंदगी का, और गणित बड़ा महत्त्वपूर्ण है, अगर तुम भी बैठ जाओ धूनी रमा कर और जो भी आएँ सब को आशीर्वाद देते जाओ, तो कम से कम पच्चास प्रतिशत आशीर्वाद तो सही होंगे ही। यह तो सीधा गणित है। इसमें कुछ करने जाने की जरूरत नहीं है। तुम सिर्फ आशीर्वाद देते जाओ। जो भी मुकदमेवाला आए, कहो कि जीतोगे। पच्चास प्रतिशत तो जीतेंगे ही। वे तुम्हारे बिना आशीर्वाद के भी जीतते। लेकिन अब तुम्हारे तरफ ध्यान रखेंगे, कि तुम्हारे आशीर्वाद के कारण जीते हैं। जो पचास हार जाएँगे, वे किसी दूसरे बाबा को, किसी दूसरे गुरु को खोजेंगे। क्योंकि यह उनके काम का नहीं है।

लेकिन जो पचास जीत जाएँगे, वे तुम्हारे पास आते रहेंगे। और इन पचास की भीड़ जो तुम्हारे पास इकट्ठी होगी, जब नया कोई ग्राहक आएगा, तो यह सारी भीड़ उसको प्रभावित करेगी, कि इतने लोगों की घटनाएँ घट चुकी हैं। कोई मुकदमा जीत गया, किसीकी कोई पत्नी मिल गयी, किसीका प्रेम सफल हुआ,

किसीकी बीमारी चली गयी, किसीका बच्चा बच गया, किसी का कुछ हुआ। इनकी भीड़ तुम पाओगे। क्योंकि जो हार चुके हैं वे तो कहीं और जा चुके है। वे तो वहाँ रुकेंगे, जहाँ जीतेंगे। वे भी किसी के पास कभी न कभी रुक जाएंगे। संयोग कहीं न कहीं घटेगा। कहीं न कहीं उनकी भी वासना पूरी होगी, वहाँ रुकेंगे।

तुम वासना से गुरु को पहचानते हो। तब तुम भटकोगे। क्योंकि गुरु का वासना से क्या लेना-देना है? गुरु तुम्हारी वासनाएँ पूरी करने को नहीं है, तुम्हें जगाने को है। और जगाने का मतलब है, तुम्हारी वासनाएँ जितनी टूट जाएँ उतना बेहतर। उसकी उत्सुकता, तुम्हारी बीमारी, तुम्हारी अदालत, तुम्हारी पत्नी और बच्चों में नहीं है। उसकी उत्सुकता तुममें और तुम्हारे परमात्मा में है। और वह रास्ता वासना का नहीं है, वह रास्ता तो निर्वासना का है। वह तुम्हें इसलिए आकर्षित कर भी नहीं पाएगा।

इसलिए अक्सर तुम भीड़ पाओगे। जहाँ भीड़ पाओ, वहाँ जरा सावधान हो जाना, क्योंकि भीड़ अक्सर गलत होती है। सही जगह तो तुम बहुत थोड़े लोगों को पाओगे। क्योंकि थोड़े लोगों को भी होना वहाँ मुश्किल है। वहाँ तुम चुने हुओं को पाओगे, कि जिनकी आकांक्षा परमात्मा की है। वहाँ तुम भीड़ न पाओगे। क्योंकि भीड़ तो वासनाग्रस्त लोगों की है।

नानक कहते हैं, फिर झूठे लोग झूठी डींगें हाँकने लगते हैं।

और मजा यह है, कि उनकी डींगें भी सिद्ध होती मालूम पड़ती हैं। क्योंकि जीवन का ढंग ऐसा है। पचास प्रतिशत तो सभी सही हो जाएँगे। और जो गलत सिद्ध होते हैं, वे कहीं और चले जाते हैं। उन्हें तुम पाओगे न। जो साईंबाबा के पास गलत हुआ, वह किसी और साईंबाबा के पास होगा। जो सही हुआ, वह वहाँ रुकेगा। वही तुम को मिलेगा। वह खबर देगा कि मेरा यह हो गया है। मुझे यह लाभ हुआ, मुझे यह लाभ हुआ। उनकी भीड़ बढ़ती जाएगी। एक भीतरी गणित से चीजें फैलने लगती हैं। और तुम जब देखोगे हजारों लोगों को लाभ हुआ है...

और तुम भी वासना के ही प्रेरित वहाँ तक आए हो। तुम भी श्रद्धा करते हो। बहुत बार तुम्हारी श्रद्धा के कारण भी परिणाम होता है। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, कि सौ बीमारियों में से सत्तर बीमारियाँ मानसिक हैं। अगर तुम्हें पूरा भरोसा आ जाए कि ठीक हो जाएँगे, तो ठीक हो जाती हैं।

बहुत से अस्पतालों में प्रयोग किये गये हैं। वैज्ञानिक उस प्रयोग को 'प्लेसबो' कहते हैं, झूठी दवा। तो अगर एक ही बीमारी के दस मरीज हों, तो पाँच को असली दवा देते हैं, पाँच को सिर्फ पानी देते हैं। और मजा यह है कि तीन पानी पीनेवालों में से भी ठीक हो जाते हैं। करो क्या? इसलिए तो इतनी 'पैथी' चलती

हैं दुनिया में। एलोपथी है, आयुर्वेदिक है, नैचरोपैथी है। हजार चीजें चलती हैं। और सभी से लोगों को लाभ होता है; नहीं तो चलेंगी कैसे?

ऐसा लगता है, दवा से आदमी कम ठीक होते हैं, श्रद्धा से ज्यादा ठीक होते हैं। वही दवा छोटा डॉक्टर तुम्हें दे, जिस पर तुम्हें भरोसा नहीं, अभी-अभी मेडिकल कालेज से आया है, काम न करेगी। अगर तुम्हारा ही बेटा हो मेडिकल कालेज से लौटा, तो बिलकुल काम न करेगी। क्योंकि बाप बेटे पर कभी भरोसा कर सकता है? वही दवा बड़ा डॉक्टर दे, और बड़ा डॉक्टर यानी बड़ी फीस ले। जितनी बड़ी फीस ले, उतना भरोसा आता है, क्योंकि उतना बड़ा डॉक्टर है। ठीक होना ही पड़ेगा। अब इसके आगे जाने का कोई उपाय नहीं। आधा इलाज तो डॉक्टर पर भरोसे से होता है। जिस डॉक्टर पर तुम्हें भरोसा है, उस डॉक्टर का इलाज काम करता है। जिस पर भरोसा नहीं, काम नहीं करता।

इसलिए डॉक्टर अपनी ऑफिस में अपने सर्टिफिकेट लटका कर रखता है। बीमारों के लिए वह भी दवा है। जितने ज्यादा सर्टिफिकेट—लंदन से कोई सर्टिफिकेट है तो बात ही और! सर्टिफिकेट लटका कर रखता है। उनको देख कर मरीज की काफी बीमारी तो ठीक हो जाती है। तुमने कभी ख्याल किया है, कि जब डॉक्टर तुम्हें परीक्षण करता है, तभी तुम्हारी आधी बीमारी ठीक हो जाती है। परीक्षण करते-करते। अभी उसने कोई दवा नहीं दी। नाड़ी देखी, स्टॅथस्कोप लगाया, ब्लॅडप्रेशर लिया, अगर तुम गौर करोगे तो तुम पाओगे कि काफी तो तुम ठीक ही हो गये। दर्द कम है, बुखार उतर रहा है।

भीड़ भरोसा दिलाती है। भरोसे से परिणाम होते हैं। और बीच में जो झूठा आदमी बैठा है, वह मुफ्त लाभ ले रहा है। तुम अपने ही मन के खेल में पड़े हो।

नानक कहते हैं, कि झूठे लोग झूठी डींगें हाँकते रहते हैं।

'सुणि गला आकास की कीटा आई रीस।'

उस आकाश की बात सुनकर, कीड़ों को भी ईर्ष्या पैदा हो जाती है। कीड़ा यानी अहंकार। अहंकारी भी रोब से भर जाते हैं। यह कैसे संभव है? यह नानक—नानक शब्द का अर्थ होता है 'छोटा', 'नन्हा'। यह छोटा सा आदमी पहुँच गया और हम न पहुँच पाए? हम, जो कि जिंदगी में इससे बहुत आगे हैं और यह कतार में कहीं भी नहीं, यह पहुँच गया? गैर पढ़ा-लिखा। धन न सम्पत्ति, पद न प्रतिष्ठा, परिवार नहीं, कुछ भी नहीं। कोई जानता है कि नानक के परिवार में पहले और कौन-कौन महान पुरुष हुए? कोई भी नहीं हुए। कौन सी कुलीनता? कौन सा घर-द्वार? क्या पता-ठिकाना है इस आदमी का? पहुँच गये। और हम न पहुँच पाए! यह नहीं हो सकता।

तो नानक कहते हैं, '**सुणि गला आकास की कीटा आई रीस।**' कीड़े को भी ईर्ष्या पैदा हो गयी। '**नानक नदरी पाईए कूड़ी कूड़ै ठीस।**'

मिलता तो परमात्मा उसकी कृपा से है, तुम्हारी अकड़ से नहीं। तुम कौन हो, इससे नहीं मिलता। तुम क्या हो, इससे नहीं मिलता। परमात्मा तो अनुकंपा से मिलता है, उसकी कृपा से मिलता है। और तुम्हारे पास जितनी अकड़ है कि मैं यह हूँ, उतना ही मिलना मुश्किल है।

लेकिन फिर झूठे लोग झूठी डींगें हाँकते हैं। और धर्म के जगत में झूठी डींग हाँकना सब से आसान है। इसलिए तो धर्म के जगत में जितना पाखंड चलता है, उतना किसी जगत में नहीं चल सकता। कोई दूसरी दिशा में इतना झूठ नहीं चल सकता जितना धर्म में चल सकता है।

क्योंकि बात आकाश की है। बात इतनी बड़ी है, इतने दूर की है, इतनी अलौकिक है, इतनी रहस्यपूर्ण है, कि झूठ चल सकता है। अगर बाजार में तुम ऐसा कपड़ा बेचो जो किसी को दिखायी न पड़ता हो, कितनी देर बेच पाओगे? पहला ग्राहक ही मिलना मुश्किल होगा। तुम्हारे पास हो ही न सामान, तो बाजार में कितनी देर दूकान चला पाओगे? आखिर बाजार का सामान दिखायी पड़नेवाला सामान है। कितनों को तुम धोखा दोगे? कैसा धोखा दोगे?

मैंने सुना है, कि अमरीका में उन्होंने स्त्रियों के बाल में लगाने की एक आलपिन खोज ली। यह भविष्य की घटना समझो। अदृश्य आलपिन स्त्रियाँ चाहेंगी, क्योंकि आलपिन दिखायी न पड़े। अदृश्य आलपिन खोज ली। एक औरत एक दूकान पर गयी और उसने कहा कि अदृश्य आलपिनों का एक डब्बा चाहिए। उसे एक डब्बा दिया गया। उस स्त्री ने पूछा कि इनकी बिक्री भी हो रही, या नहीं? उस दूकानदार ने कहा, बिक्री का पूछो ही मत। अदृश्य आलपिन तीन दिन से हमारे स्टॉक में नहीं है, और हजारों लोग ले जा चुके हैं। अब अदृश्य आलपिन हो, तो बिक्री हो सकती है। हो, या न हो। क्योंकि पहला ही तो मामला है कि वह दिखायी नहीं पड़ती। तुम डब्बा खोल कर देखोगे तो कुछ दिखायी तो पड़ता नहीं। हो, या न हो।

यह परमात्मा का धंधा अदृश्य आलपिनों का धंधा है। कुछ दिखायी तो पड़ता नहीं। इसलिए बड़ा पाखंड यहाँ है। इसलिए तुम हैरान होगे, कि जितना धार्मिक मुल्क हो, उतना पाखंडी हो जाता है।

यह हमारा मुल्क इसका सबूत है। इससे ज्यादा पाखंडी मुल्क दुनिया में कहीं भी नहीं। उसका कारण यह है, कि इस मुल्क ने धर्म के संबंध में इतना चिंतन किया है, और इस मुल्क ने धर्म के इतने सद्गुरु पैदा किये हैं कि हर गुरु के साथ निन्यानबे असद्गुरु पैदा होते हैं। सद्गुरु तो मर जाते हैं, असद्गुरु चलते

रहते हैं। उनकी जमात बढ़ती जाती है। और तय करना बहुत मुश्किल है। और मनुष्य को नास्तिक बनाने में जितने असद्गुरु सहयोगी होते हैं, उतना कोई भी सहयोगी नहीं होता। तुम इतने थक जाते हो, धोखे, बेईमानी, उपद्रव से, कि तुम धीरे-धीरे सोच लेते हो, कि परमात्मा का धंधा ही धोखाधड़ी है। धीरे-धीरे तुम सोच लेते हो कि इस उपद्रव में पड़ना ही नहीं, इससे बाहर ही रहना बेहतर है।

नानक कहते हैं, 'झूठे लोग झूठी डींगें मारते रहते हैं।' और तुम्हारा जितना भरोसा बढ़ता जाता है उतनी उनकी डींग बढ़ती है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने भतीजे को कह रहा था एक संस्मरण, कि मैं जंगल से निकल रहा था। दस लकड़बग्घों ने मुझे घेर लिया। पाँच मैंने उसी वक्त मार डाले। उस भतीजे ने बीच में टोक कर कहा, कि चाचाजी, तीन महीने पहले तो आप कह रहे थे कि पाँच लकड़बग्घों ने घेरा, और अब कहने लगे 'दस ने'। मुल्ला नसरुद्दीन ने सहज भाव से कहा, तब तू बहुत छोटा था। इतनी खतरनाक बात सुनने की तेरी योग्यता भी न थी, और तू समझ भी न पाता और घबड़ा जाता।

तो तुम्हारी जितनी योग्यता बढ़ने लगती है झूठ को सुनने की, वैसे-वैसे झूठ बोलनेवाले के दावे बढ़ते जाते हैं। वह देखता रहता है कि कितनी श्रद्धा बढ़ रही है, उतने दावे बढ़ते जाते हैं। तुम्हारी श्रद्धा न मालूम कितने झूठे गुरुओं को पालती-पोसती है। और जब तुम्हें भरोसा आ जाता है, तब तुम बिलकुल अंधे हो जाते हो। कुछ भी मान लेते हो।

कल रात ही मैं एक किताब पढ़ रहा था। एक ईसाई पादरी के वक्तव्य। किताब के पहले ही जो लिखा है, वह ऐसा सरासर झूठ है, कि उसे कोई कैसे मानेगा? लेकिन उसको मानने वाले बहुत लोग हैं। और वह पादरी काफी ख्याति-नाम है। पश्चिम में उसके हजारों भक्त हैं। भूमिका में जो उसने लिखा है, वह बड़ा पढ़ने जैसा है। भूमिका में उसने लिखा है, कि शीघ्र ही जीसस का आगमन होने वाला है। तारीख, दिन, सब तय हो गया है। और ज्यादा देर नहीं है। किसी भी दिन, रात, कभी भी जीसस का आगमन हो जाएगा। और जीसस अपने करोड़ों भक्तों को लेकर विलीन हो जाएँगे। तो पृथ्वी से करोड़ों ईसाई एकदम से विलीन हो जाएँगे। और पीछे सारी दुनिया चकित खड़ी रह जाएगी, कि क्या हुआ? और जैसे ही ईसा अपने भक्तों को ले जाएँगे, फिर दुनिया पर मुसीबतें आनी शुरू होंगी। फिर महानरक पैदा होगा। इसलिए देर मत करो। जल्दी से भरोसा लाओ ईसा पर, और ईसा के पीछे सम्मिलित हो जाओ। और भूमिका के अंत में लिखा है कि इस किताब को पढ़ने वाले लोगों के लिए केवल दो विकल्प हैं। एक विकल्प, अगर तुम पापी हो, तो इसमें जो भी कहा है उसपर तुम्हें भरोसा न

आएगा। और अगर तुम पुण्यात्मा हो, तो तुम शीघ्र, देर मत करो और जीसस के अनुयायी हो जाओ।

दो ही विकल्प छोड़े हैं। या तुम महापापी हो, तब तो तुमको किताब जंचेगी ही नहीं। अगर तुममें जरा भी बुद्धि है, पुण्य का भाव है, धार्मिकता है, किताब जंचेगी। जीसस के साथ खड़े हो जाओ।

जीसस के साथ खड़े होने में कोई बुराई नहीं है। लेकिन यह आदमी जीसस के नाम का शोषण कर रहा है। जीसस प्यारे हैं। लेकिन यह आदमी! और यह जो कह रहा है, सरासर झूठ है। लेकिन इसको सिद्ध कैसे करो? ऐसी हजारों घटनाएँ घट चुकी हैं।

उन्नीस सौ तीस में एक ईसाई पादरी ने घोषणा कर दी, कि एक जनवरी को जगत का विनाश हो जाएगा। वक्त आ गया, कयामत का दिन आ गया। उसके मानने वाले कोई पचास हजार लोग सब कुछ बेच-बाच डाले। क्योंकि जब आखिरी दिन आ गया तो क्या करना है अब रख कर? मकान बेच डाले, सामान बेच डाले, उत्सव मना लिया, धन-पैसा बाँट दिया। क्योंकि आखिरी दिन आ रहा है। जो मानेंगे वे पुण्यात्मा, और जो नहीं मानते हैं वे पापी हैं।

वे सब पहाड़ पर चले गये। क्योंकि आखिरी दिन! एक जनवरी को जब सुबह का सूरज उगेगा, जगत का विनाश होगा, उस वक्त वे सब पहाड़ पर प्रार्थना करते रहेंगे। उन्हें ईश्वर उठा लेगा। एक जनवरी आ गयी, सूरज निकल आया, कुछ भी नहीं हुआ। गाँव और आसपास के हजारों लोग पहाड़ों की तरफ चले, कि अब उनसे पूछें कि क्या हुआ? वे लोग वहाँ से उतर रहे थे। उन्होंने पूछा, कि कहो, अब अक्ल आयी? उन्होंने कहा कि अक्ल? हमारी प्रार्थना के कारण उसने दिन बदल दिया। वह जो हम पहाड़ पर प्रार्थना कर रहे थे परमात्मा से, कि दया कर, उसने सुन ली।

वह पंथ अभी भी चलता है। अभी यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि अंधापन कैसे चल सकता है? तुम उन्हें गलत भी सिद्ध नहीं कर सकते। लोगों ने सोचा था कि अब तो इनको अक्ल आ जाएगी, नासमझों को। तो पहाड़ पर लोग चढ़ कर गये देखने, कि अब तो वे रो रहे होंगे, कि हमसे भूल हो गयी। बरबाद हो गये। वे लोग प्रसन्न थे। उनके पादरी ने समझा दिया, कि देखो हमारी प्रार्थना का परिणाम!

मुल्ला नसरुद्दीन रोज अपने घर के बाहर नमक छिड़कता। किसीने पूछा कि यह तुम क्या करते हो रोज-रोज? उसने कहा कि जंगली जानवरों को भगाने के लिए। लोगों ने कहा कि जंगली जानवर यहाँ कहाँ बस्ती में? तो उसने कहा, यह नमक का परिणाम है।

अब ऐसे आदमी के साथ करोगे क्या? वह तुम्हें उपाय नहीं छोड़ता। कहता है कि लो प्रत्यक्ष प्रमाण है। मेरे घर के पास तो दूर, गाँव में भी नहीं आ पा रहे हैं। यह नमक छिड़कने से हो रहा है।

आदमी धोखे में पड़ने को तैयार है, क्योंकि धोखे के भी तर्क हैं। और धोखा भी प्रचार करता है। धोखा ही प्रचार करता है, और धोखा ही तर्क देता है, और धोखा तुम्हारी वासनाओं को रिझाता है। वह तुम्हें पर्सुयेड करता है।

नानक कहते हैं, कि झूठे लोग झूठी डींगें हाँकते हैं। '**नानक नदरी पाईए कूड़ी कूड़ै ठीस।**' और वह तो मिलता है उनको, जिनने सब डींग छोड़ दी। वह तो मिलता है उसको, जिसका 'मैं' का भाव चला गया। वह तो उसको मिलता है, जिसपर उसकी अनुकंपा हो जाए।

'न बोलने में शक्ति है, न मौन में शक्ति है, न माँगने में शक्ति है, न दान में शक्ति है, न जीवन में शक्ति है, और न मरण में शक्ति है, न राज्य-संपत्ति में, न मन के संकल्प-विकल्प में, न स्मृति में, न ज्ञान में, न विचार में, न संसार में संसार से छुटकारा पाने की युक्ति में शक्ति है। वास्तविक शक्ति तो उस परमात्मा के हाथ में है, जो सृष्टि रचता है और उसे देखता रहता है। नानक कहते हैं, कि वहाँ न कोई ऊँच है, न नीच।'

ये शब्द बड़े गहरे हैं–

'आखणि जोरु चुपै नह जोरु। जोरु न मंगणि देणि न जोरु ॥
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु। जोरु न राजि मालि मनि सोरु ॥
जोरु न सुरति गिआन वीचारि। जोरु न जुगती छुटै संसारु ॥
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ। नानक उतमु नीचु न कोइ ॥'

बड़े क्रांतिकारी वचन हैं। क्योंकि नानक पूरे जपुजी में एक ही बात पर जोर दे रहे हैं। उसके नाम का स्मरण, सुरति। और यहाँ वे कहते हैं, सुरति में भी जोर नहीं। यह आखिरी चरण करीब आ रहा है। नानक यहाँ पर तुम्हारे हाथ से सब छीन लेना चाहते हैं। क्योंकि तुम्हें अगर जरा भी ऐसा लगे कि किसी चीज में जोर है, तो तुम बचोगे, मजबूत रहोगे। सब जोर अंततः तुम्हारे अहंकार का जोर है।

तो नानक कहते हैं, कि न बोलने में शक्ति है, न तुम बोल कर उसे पा सकते हो। तो अनेक लोगों ने सोचा कि जब बोल कर उसे नहीं पा सकते, तो मौन रह कर पा लेंगे। नानक कहते हैं, कि न मौन में शक्ति है। वह तुम्हारे हाथ से सब छीन ले रहे हैं। अभी तक तुमने सोचा होगा कि बोलने में नहीं, तो चलो ठीक, बोलना बकवास है। लेकिन चुप हो गये, ध्यान में बैठ गये फिर।

नानक कहते हैं, उसमें भी शक्ति नहीं है। तुम्हीं तो मौन बैठोगे, जो बोल रहा था। गुणधर्म तो वही रहेगा। बोलने में अगर तुम पापी थे, तो चुप होने में कैसे तुम पुण्यात्मा हो जाओगे? इसे थोड़ा समझो। तुम्हारी क्वालिटी...

एक शैतान आदमी चुप बैठा है; शैतान ही रहेगा। कैसे फर्क हो जाएगा चुप होने से? चुप बैठने से क्या अंतर पड़ेगा? अच्छा आदमी चुप बैठे, अच्छा आदमी रहेगा। बोले, अच्छा आदमी ही रहेगा। बुरा आदमी बोले, बुरा। चुप बैठे, तो बुरा रहेगा। बुरा आदमी चुप में से भी कोई तरकीब निकाल लेगा कि कैसे दूसरों को नुकसान पहुँचाए। बुरा आदमी मौन में से भी शैतानी खोज लेगा। तुम्हारा गुणधर्म कैसे बदल जाएगा?

तुम सोचते हो, सिर्फ तुम चुप हो गये तो सब हो जाएगा, बड़ी शक्ति आ जाएगी। तुम्हीं तो चुप रहोगे। क्या फर्क पड़ेगा? चुप्पी तुम्हारी, वचन तुम्हारे। वचन में तुम मौजूद थे, चुप्पी में तुम मौजूद रहोगे। तुम तो रहोगे। तुम कहोगे, अब मैं मौन हो गया। मैं ध्यान में हो गया, मैं ध्यानी हूँ। यही अकड़ पहले थी, कि मैं वक्ता हूँ। बड़ा वक्ता हूँ। अकड़ अंधी है। बोलने में भी तुम अंधे हो।

मैंने सुना है, कि बहती गंगा देखकर मुल्ला नसरुद्दीन ने भी सोचा कि मैं भी हाथ धो लूं। तो वह एक राज्य में मिनिस्ट्री का बढ़ाव हो रहा था, मिनिस्टर हो गया। ख्याल उसे सदा से था कि मैं बड़ा बोलने वाला हूँ। इसलिए नेता होने में और तो कोई कमी है नहीं। बड़ा वक्ता हूँ। लेकिन उसने इतने लंबे भाषण दिये कि लोग बहुत बोर हुए। पोलिस को रखना पड़ता था चारों तरफ, जैसा कि सभी नेताओं की सभा में रखना पड़ता है। वह लोगों को बाहर जाने से रोकने के लिए। नहीं तो व्याख्यान चले, और लोग बाहर भाग जाएँ। तो उसने सख्त पहरा लगा दिया। लेकिन फिर भी लोग बोर तो होते ही। जम्हाई लेते उसके ही सामने।

तो उसने अपने पी. ए. को कहा, कि भाषण थोड़े छोटे लिखा कर। इतने-इतने बड़े भाषण लिखता है कि लोग बोर हो रहे हैं। हमारी प्रतिष्ठा खो रही है। पी. ए. ने छोटा भाषण लिखा। मुल्ला नसरुद्दीन बड़ी खुशी में बोला, लेकिन लोग फिर भी बोर हुए। लौट कर उसने कहा, कि मैंने हजार बार तुम्हें कहा है कि भाषण छोटा लिख। लोग बोर हो रहे हैं, ऊब रहे हैं। फिर भी तूने बड़ा लिखा? पी. ए. ने कहा, 'महाराज, मैंने तो छोटा ही लिखा। आप ने तीनों कापी पढ़ दीं।'

बुद्धि तो उधार नहीं मिल सकती। भाषण लोग लिखवा सकते हैं। गुण तो उधार नहीं मिल सकता। व्यक्तित्व का जो गुण है, उसे तो पाने के कोई सस्ते उपाय नहीं हैं। कोई दूसरा नहीं दे सकता।

तुम शैतान अगर हो, तो तुम चुप होकर बैठे जाओगे तो भीतर तो तुम शैतान ही रहोगे। और तुम्हारी अकड़ कल तक बोलने की तरफ से पकड़ती थी, अब शून्य की तरफ से, चुप होने की तरफ से पकड़ लेगी।

झेन फकीर बोकोजू अपने गुरु के पास गया। और उसने कहा, कि अब मैं बिलकुल चुप हो गया हूँ। शून्य आ गया। अब बोलें। उसके गुरु ने कहा, कि पहले तू बाहर जा और यह शून्य फेंक आ। फिर भीतर आ। बोकोजू ने कहा, कि शून्य फेंक आऊँ? और अब तक आप यही समझाते रहे, कि शून्य हो जा। बोकोजू के गुरु ने कहा, 'वह पहली सीढ़ी थी, अब यह दूसरी।' पहले मौन हो जाओ, फिर मौन फेंक दो। नहीं तो मौन से भी अकड़ जाओगे। अभी यह कौन कह रहा है, कि मैं शून्य हो गया? इसी को तो गिराना है।

तो नानक कहते हैं, '**आखणि जोरु चुपै नह जोरु।**' न बोलने में ताकत है, न चुप होने में ताकत है।

'**जोरु न मंगणि देणि न जोरु।।**' न माँगने में शक्ति है और न दान में शक्ति है।

क्या दोगे तुम? तुम्हारे पास है क्या? एक आदमी माँग रहा है। एक आदमी दे रहा है। माँगनेवाला भी वही माँगता है, देनेवाला भी वही देता है। क्या दोगे तुम? एक आदमी धन माँग रहा है परमात्मा से। तुम धन बाँट रहे हो, धन से मंदिर बना रहे हो, दान कर रहे हो। लेकिन दोनों की नजर तो धन पर है। माँगने वाले की भी और देने वाले की भी। और यह तो हो भी सकता है कि माँगने वाला विनम्र हो, दान करने वाला कैसे विनम्र होगा? वह तो कहेगा, मैं दाता हूँ। और दाता केवल एक है। तुम कैसे दाता हो सकते हो? दोगे तुम क्या? जो तुम्हारे पास है वही दोगे न! तुम्हारे पास क्या है? कंकड़-पत्थर, चाँदी-सोने के ठीकरे, कागज के नोट, सब आदमी की मान्यताएँ हैं। तुम दोगे क्या?

नानक कहते हैं, 'न माँगने में शक्ति है, न दान में शक्ति है। न जीवन में शक्ति, न मरण में शक्ति है।'

तुम जी कर उसे नहीं पा रहे हो, कई लोग सोचते हैं कि मर जाएँ। उनको पाओगे जगह-जगह आश्रमों में बैठे हुए। एकदम से मरने की हिम्मत नहीं है, तो धीरे-धीरे मरते हैं। धीरे-धीरे मरने का नाम लोगों ने संन्यास बना रखा है। क्रमशः मरते हैं।

पहले संसार से भाग गये, तो नब्बे प्रतिशत जिंदगी तो खत्म ही हो गयी। क्योंकि जिंदगी नब्बे प्रतिशत वहाँ थी। फिर आश्रम में बैठ गये। दो दफे खाना न खाया, एक दफा खाया, और पचास प्रतिशत मरे। ऐसे रोज काटते जाते हैं। ऐसे धीरे-धीरे अपने को काट कर पंगु करते हैं। फिर जीते हैं। वह जीना करीब-करीब मरने के जैसा है।

नानक कहते हैं, 'न तुम्हारे जीने में शक्ति है, न तुम्हारे मरने में।' तुम जी कर उसे नहीं पा सके, मर कर उसे कैसे पा लोगे? तुम्हीं तो मरोगे न? तुम फिर पैदा हो जाओगे। तुम यहाँ से हटोगे, वहाँ हो जाओगे। स्थान बदलेगा, तुम कैसे बदलोगे?

नानक बड़ी महत्वपूर्ण बातें कह रहे हैं। ख्याल रखना। हृदय में उनको गूँजने देना। न जीवन में शक्ति है, न मरण में।

'जोरु नह जीवणि मरणि नह जोरु जोरु न राजि मालि मनि सोरु॥'

न राज्य-संपति में शक्ति है, न मन के संकल्प-विकल्प में शक्ति है। कुछ लोग धन जोड़ते हैं, कुछ लोग योग जोड़ते हैं। वे बैठ कर संकल्प करते हैं। मन को एकाग्र करते हैं। बड़ी तपश्चर्या करते हैं। लेकिन नानक कहते हैं, न धन-संपत्ति में जोर है, न मन के संकल्प-विकल्प में जोर है।

और सब से महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं, कि न स्मृति में, न ज्ञान में, न विचार में।

'जोरु न सुरति गिआन वीचारि।'

विचार में तो जोर नहीं है, बहुत लोगों ने कहा है। क्योंकि विचार तो सतह की हलचल है। ज्ञान में जोर नहीं है, बहुत लोगों ने कहा है। क्योंकि शास्त्र से पढ़कर, संसार से सुनकर, गुरु के पास से, तुम जो भी इकट्ठा कर लेते हो, उसमें क्या जोर है? सब उधार और बासा है। लेकिन नानक आखिरी चोट करते हैं। वे कहते हैं, 'जोरु न सुरति।' तुम्हारी स्मृति में, तुम्हारी स्मरण करने की क्षमता में, उसमें भी कोई जोर नहीं है। तुम ही तो स्मरण करोगे न?

अब यह बड़े मजे की बात है। यही सारे रहस्य का जो विवादास्पद रूप है, जो पॅराडॉक्स है, वह प्रकट होता है। पूरे समय नानक कहते हैं, सुरति, उसकी याद। और यहाँ वे कहते हैं, उसकी याद में भी कोई जोर नहीं।

एक चरण है उसकी याद, और दूसरा चरण है यह अनुभव, कि उसकी याद से भी क्या होगा? मैं ही तो याद करूँगा न? वह याद भी तो मेरी ही होगी। मैं ही तो पुकारूँगा? वह पुकार भी मेरी होगी, और मेरा ही गुणधर्म उसमें समाया होगा। उसमें भी क्या जोर हो सकता है!

यह दूसरी घड़ी करीब आ रही है, जहाँ साधक सब छोड़ देता है—'सब कर के', ध्यान रखना! जल्दी मत करना छोड़ने की। अगर जरा भी बाकी रह गया, कोई फल न होगा। यह तो आखिरी है। जब करने को कुछ भी नहीं बचता। सच तो यह है कि तुम छोड़ते भी नहीं, छूट जाता है। क्योंकि तुम छोड़ोगे, तो अभी कुछ बाकी था। तुम कर लेते हो, कर लेते हो, थक जाते हो। आखिरी घड़ी आ जाती है, कि तुम गिर पड़ते हो। गिरते भी नहीं अपनी तरफ से। तुम अचानक पाते हो, कि गिर गये, अब कोई हिलने का उपाय न रहा, कोई जाने का उपाय न रहा, इसको वे कह रहे हैं, किसी चीज में जोर नहीं। क्योंकि जोर अगर थोड़ा बचा है, तो और चलोगे।

नानक कहते हैं, **'जोरु न सुरति गिआन वीचारि जोरु न जुगती छुटै संसारु॥'**

और संसार के छोड़ने की जितनी जुक्तियाँ हैं, साधन हैं, विधियाँ हैं, मेथड्स हैं, उनमें भी कोई जोर नहीं। वास्तविक शक्ति तो उस परमात्मा के हाथ में है, जो सृष्टि रचता और उसे देखता है।

'जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ। नानक उतमु नीचु न कोइ॥'

उसके हाथ में है। परमात्मा के हाथ में सारा जोर है, सारी ताकत है। तुम निर्बल हो जाओ, उसका सहारा मिल जाएगा। तुम सबल रहे, सहारे की कोई जरूरत ही नहीं है।

'निर्बल के बल राम।'

तुम यहाँ निर्बल हुए और वहाँ राम तुम्हें उपलब्ध हुए। पर वे निर्बल के हैं, बलशाली के लिए नहीं। बलशाली को कोई जरूरत ही नहीं। वह कहता है, चुप बैठो, तुम अपना काम करो। मैं खुद ही कर लूँगा। वह राम को बाद देता है। वह खुद अपनी अकड़ पर जिंदा है। वह राम का सहारा भी नहीं लेना चाहता। उसकी अकड़ अभी मिटी नहीं। अभी वह यह नहीं सोचता, कि मुझे उसकी जरूरत है। मैं खुद ही कर लूँगा।

ऐसा हुआ। एक ईसाई फकीर औरत हुई—सेंट थेरेसा। बड़ी बहुमूल्य स्त्री थी। उसने एक दिन गाँव के चर्च में जाकर घोषणा की, कि मैं एक बहुत बड़ा परमात्मा का मंदिर बनाना चाहती हूँ। गाँव छोटा था; चर्च भी बहुत छोटा था। लोगों ने कहा, हम कहाँ से पैसा इकट्ठा करेंगे? कहाँ से बड़ा मंदिर बनाएँगे यहाँ? कौन देगा, कहाँ से आएगा?

एक आदमी ने उससे पूछा, कि थेरेसा, यह तो ठीक है कि तुम बनाना चाहती हो, हम भी चाहेंगे। लेकिन तुम्हारे पास पैसे कितने हैं?

थेरेसा ने अपने खीसे में हाथ डाला; दो पैसे थे उसके पास। उसने कहा कि दो मेरे पास हैं—इनसे काम शुरुआत का हो जाएगा।

तो लोग हँसने लगे। लोगों ने कहा कि हमको पहले ही शक था, कि तेरा दिमाग खराब है। दो पैसे से महान मंदिर बनाने की योजना बना रही है? करोड़ों रुपयों की जरूरत पड़ेगी।

सेंट थेरेसा ने कहा कि तुम्हें ये दो दिखायी पड़ते हैं, यह तो ठीक है। मेरे पास दो हैं; लेकिन उसके पास? वह भी मेरे साथ है। दो पैसा+परमात्मा, कितना होता है हिसाब, उसने कहा? और दो पैसे तो सिर्फ शुरुआत के लिए हैं, आखिर में तो उसीको करना है। हम कर ही क्या सकते हैं? हमारी शक्ति क्या है? उसने कहा, 'दो ही पैसे की हमारी शक्ति है, बाकी तो उसीकी है। और दो पैसे हमारे पास हैं। उतने तक हम जाएँगे, फिर उससे कहेंगे, अब तेरी मर्जी।'

और वह मंदिर बना। वह मंदिर आज भी खड़ा है। विराट मंदिर बना है। वह मंदिर तुम्हारी शक्ति से नहीं बनता। तुम्हारे पास तो दो पैसे हैं। उससे तो तुम कल्पना ही नहीं कर सकते बनाने की। क्या बनेगा? तुम हो क्या? तुमसे, होगा क्या? तुम क्या पा सकोगे? बड़े मंदिर को बनाने चले हो; लेकिन दो पैसे और परमात्मा; तब अपार संपत्ति तुम्हारे पास है। फिर कोई हर्जा नहीं। फिर तुम जो भी बनाना चाहोगे, बनेगा। लेकिन तुम दो ही पैसा रहना।

जैसे ही तुम निर्बल हुए, परम शक्ति का स्रोत उपलब्ध हो जाता है। जब तक तुम सबल हो, तब दो पैसे से ज्यादा तुम्हारी शक्ति नहीं।

इसलिए नानक दोहरा रहे हैं, न इसमें शक्ति है, न उसमें शक्ति। वे तुमसे शक्ति छीन रहे हैं। इसलिए मैं कहता हूँ, सद्‌गुरु तुमसे छीन लेता है, तुम्हें देता नहीं। सद्‌गुरु तुमसे छीन लेता है, तुम्हें निर्बल बना देता है, तुम्हें असहाय कर देता है। तुम्हें उस हालत में छोड़ देता है जैसे मरुस्थल में कोई पड़ा हो और प्यासा हो, और जल-स्रोत कोई करीब न हो। उस क्षण जो प्यास प्रार्थना की तरह उठेगी, वहीं तुम पाओगे, 'निर्बल के बल राम।' वहीं तुम पाओगे, कि परमात्मा उपलब्ध है।

मरुस्थल से उठी प्यास जब तुम्हारे जीवन से उठेगी, उसी क्षण। जब तुम पूर्ण असहाय हो, तभी उस परम का सहारा मिलता है। इसलिए नानक कहते हैं, और ध्यान रखना, वहाँ न कोई ऊँच है, न कोई नीच।

'नानक उतमु नीचु न कोइ।'

इसलिए तुम यह फिक्र मत करना। वहाँ सब बराबर हैं। इसलिए डरना मत, कि शक्तिशाली पहुँच जाएँगे, कि जिन्होंने अच्छे कृत्य किये हैं वे पहले पहुँच जाएँगे। कि दानी पहले पहुँच जाएँगे, फिक्र मत करना। कि ध्यानी पहले पहुँच जाएँगें, फिक्र मत करना। वहाँ कोई ऊँच-नीच नहीं है।

अगर ऊँच-नीच हो तो तुम अपने कारण हो, उसके कारण नहीं। उसकी आँखों के कारण नहीं। अगर तुमने अपने को बिलकुल खोया, तुम ऊँच हो जाओगे। अगर तुमने अपने को बचाया, तुम नीच हो जाओगे।

जीसस का वचन है, 'जो अपने को खोयेगा, वह पा लेगा; और जो अपने को बचाएगा, वह सदा के लिए खो देगा।'

तुम अपने को बचाना मत। वही एकमात्र भूल है जो आदमी कर सकता है। तब दो ही पैसे पास रह जाते हैं। तब जीवन दरिद्र का हो जाता है। तुम अपने को बचाना मत। और तब तुम पाते हो, दो पैसे तो कुछ भी न रहे, पूरे परमात्मा की ऊर्जा तुम्हें मिल गयी। तब जीवन सम्राट का हो जाता है। भिखारी तुम अपने हाथ से हो, सम्राट तुम उसकी कृपा से हो सकते हो।

● ● ●

करमी करमी होइ वीचारु

प्रवचन १७, दिनांक ७-१२-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : ३४

रातो रुति थिति वार ।
पवन पानी अगनी पाताल ॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल ।
तिसु विचि जीअ जुगुति के रंग ।
तिनके नाम अनेक अनंत ॥
करमी करमी होइ वीचारु ।
सचा आप सचा दरवारु ॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु ।
नदरी करमि पवै नीसाणु ॥
कच पकाई ओथै पाइ ।
नानक गइआ जापै जाइ ॥

नानक के सूत्र के पहले कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली बात, कि जीवन को जो लक्ष्य मान लेता है, वह भटक जाता है। जीवन केवल एक अवसर है, लक्ष्य नहीं। मार्ग है, गंतव्य नहीं। उससे कहीं पहुँचना है। जीवित होने से ही मत समझ लेना कि पहुँच गये। जीवन कोई सिद्धि नहीं है। केवल एक प्रक्रिया है। उससे ठीक से गुजरे, तो पहुँच जाओगे। ठीक से न गुजरे, तो भटक जाओगे।

जीवन को ही जो सब कुछ मान लेता है, वही नास्तिक है। और जीवन के पार जिसके लिए पहुँचने को कोई मंजिल है, वही आस्तिक है। आस्तिक के लिए जीवन एक पड़ाव है। नानक कहते हैं, 'धर्मशाला'। वहाँ रुकना है थोड़ी देर, लेकिन सदा के लिए उसे घर नहीं बना लेना। जिसने उसे ही घर बना लिया, वह असली घर से वंचित रह जाएगा। चले थे कुछ पाने, मार्ग में ही घर समझ लिया, तो फिर मंजिल तक कैसे पहुँचोगे? कौन चलेगा?

संसार घर नहीं है। और जिन्होंने संसार को घर बना लिया, उन्हीं को हम गृहस्थी कहते हैं। गृहस्थी का अर्थ यह नहीं है कि आप घर में रहते हैं। गृहस्थ का अर्थ है, कि संसार को घर बना लिया।

संन्यासी का अर्थ है कि संसार धर्मशाला है, घर नहीं। रहता तो वह भी वहीं है, जाएगा कहाँ? रहना तो घर में ही पड़ेगा, लेकिन घर को देखने का ढंग बदल जाता है। तुम घर को समझते हो यही मंजिल है, पहुँच गये। और संन्यासी समझता है धर्मशाला है, सराय है, कहीं और जाना है। और भूलता नहीं मंजिल को। रुके कहीं, हजारों धर्मशालाओं में रुकना पड़े, तो भी मंजिल की याद रखता है, वही 'सुरति' है।

उस याद को जिसने रखा, जिसने उस याद के धागे को न खोया, सभी धर्मशालों में रुकेगा और पार होता जाएगा। कोई धर्मशाला उसे पकड़ न पाएगी। रहेगा संसार में, लेकिन संसार के बाहर रहेगा। तुम्हारी मंजिल जहाँ है, वहीं तुम हो; जहाँ तुम जा रहे हो, वहीं तुम हो। वहाँ तुम नहीं होते, जहाँ तुम हो। जहाँ तुम पहुँचना चाहते हो, जहाँ तुम्हारा ध्यान होता है, वहीं तुम हो। यह पहली बात समझ लेनी जरूरी है।

अधिक लोग, करीब-करीब सभी, करोड़ों में कभी एकाध को छोड़ कर, जो मिला है, समझते हैं यही अंत है। जो मिला है यह तो प्रारंभ भी नहीं है। यह तो भवन का द्वार भी नहीं है। ये तो भवन की सीढ़ियाँ भी नहीं हैं। तुम तो मार्ग पर हो, अभी सीढ़ियाँ आएँगी। जिसके जीवन में सीढ़ियाँ आ गयीं, धर्म आ गया। जो मार्ग पर है वह संसारी है। जिसके जीवन में सीढ़ियाँ आ गयीं, वह साधक; और जो भवन में प्रतिष्ठित हो गया, वह सिद्ध। तुम्हारे जीवन में अभी सीढ़ियाँ भी नहीं आयी हैं। अभी तुमने साधना भी शुरू नहीं की है।

और इस भ्रांति का गहरे से गहरा कारण यही है कि तुम्हें जो मिल गया है, तुम उससे संतुष्ट हो गये हो। ध्यान रखना, धार्मिक आदमी एक अर्थ में तो बिल्कुल संतुष्ट होता है, और एक दूसरे अर्थ में उससे ज्यादा असंतुष्ट आदमी खोजना कठिन है। संतुष्ट होता है इस अर्थ में, कि परमात्मा से उसकी कोई शिकायत नहीं। और असंतुष्ट होता है इस अर्थ में, कि अपने से उसकी बड़ी शिकायत है।

अधार्मिक आदमी की परमात्मा से तो शिकायत होती है—तूने यह नहीं दिया, तूने यह नहीं दिया, अपने से कोई शिकायत नहीं होती। अपने से अधार्मिक आदमी संतुष्ट होता है। वही संतोष कब्र बन जाती है। क्योंकि अगर तुम अपने से संतुष्ट हो, तो विकसित कैसे होओगे? बढ़ोगे कैसे? आकाश को छूने के लिए पंख कैसे खोलोगे? तुम अपने घोंसले में ही कैद हो जाओगे। तुम अपने पिंजड़े में ही मर जाओगे।

परमात्मा से तो संतोष चाहिए, अपने से असंतोष। हालत उलटी है। अपने से तो हम संतुष्ट हैं, परमात्मा से असंतोष है। सारे जगत के प्रति हमारा असंतोष है। कुछ भी ठीक नहीं मालूम होता, सिर्फ हम ठीक मालूम होते हैं। और वही ठीक नहीं है, बाकी सब ठीक है। तुम्हारे अतिरिक्त कहीं कोई भूल-चूक नहीं है। सारा जगत बड़ी शांति और आनंदमग्नता से प्रवाहित है। कहीं कोई बाधा नहीं है। सिर्फ तुम्हारे भीतर कहीं अवरोध है।

तो धार्मिक आदमी एक गहरा असंतोष है अपने प्रति, कि मैं जैसा हूँ परमात्मा के योग्य नहीं हूँ। मैं जैसा हूँ अभी अर्चना न कर सकूँगा, अभी पूजा न

कर सकूँगा। अभी मैं जैसा हूँ, कैसे स्वीकार हो सकूँगा? अभी मैं जैसा हूँ, वह उसके योग्य नहीं हूँ। उसके योग्य बनना है। उसके स्वीकार के योग्य पात्र बनना है। अपने को इस योग्य बनाना है कि वह मेहमान बनने को राजी हो जाए। मेरे हृदय में उसके लायक सिंहासन बनाना है।

तो धार्मिक व्यक्ति अपने से तो असंतुष्टित होता है। इसलिए एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि वह अपने को बढ़ाते-बढ़ाते, निखारते-निखारते, स्वर्ण-सिंहासन बन जाता है। वह परमात्मा के विराजने योग्य हो जाता है। उसके द्वार पर परमात्मा आज नहीं कल दस्तक देता है। एक क्षण की देरी भी न होगी। जिस क्षण तुम तैयार हो, उसी क्षण तुम्हारे द्वार पर दस्तक पड़ जाएगी। देर तभी तक है, जब तक तुम तैयार ही नहीं हो। रोने से कुछ न होगा। चीखने-पुकारने से कुछ न होगा। तैयारी चाहिए।

और तैयारी का अर्थ है, रूपांतरण, ट्रान्सफरमेशन। तुम्हें अपने को बदलना होगा, बहुत-बहुत रूपों में। अगर तुम गौर से अपने को देखोगे तो तुम खुद ही पाओगे, कि परमात्मा तो दूर, अगर तुमको भी इस घर में रहने के लिए पूछा गया होता, जो तुम हो, तो शायद तुम भी राजी न होते। तुम जैसे हो, अगर ऐसे ही व्यक्ति से तुम्हें प्रेम करना पड़े, तो तुम इनकार कर दोगे।

इसलिए तो कोई अपने को प्रेम नहीं करता। तुम अपने प्रेम के पात्र होने के योग्य भी नहीं हो, इसलिए तो लोग अकेले में परेशान होते हैं। अपने साथ रहने को कोई राजी नहीं। अगर तुम्हें घड़ी दो घड़ी अकेले बैठना पड़े, तो तुम बेचैन होते हो। कहते हो मित्र चाहिए, क्लब, सिनेमा, बाजार, रेडियो, टेलीविजन, अखबार, कुछ चाहिए। ऐसा अपने साथ कैसे बैठे रहें? बड़ी ऊब पैदा होती है। तुम अपने से ऊबे हुए हो। तुम अपने सत्संग में जरा भी नहीं रह सकते और तुम परमात्मा की आकांक्षा करते हो। जब तुम खुद ही अपने साथ रहने को राजी नहीं, तो इतना तो पक्का समझना कि तुम्हारे साथ कौन रहने को राजी होगा?

और, परमात्मा तो फिर बहुत दूर है। परमात्मा का अर्थ है, अस्तित्व का गहनतम शिखर तुम्हारे हृदय में उतरे। लेकिन फिर उसके लिए गहराई बनाओ। वहाँ उतनी गहराई तो चाहिए। तुम इतने छिछले हो, कि जरा सी बात तुम्हारे भीतर तूफान ले आती है। जरा से कंपन से तुम कँप जाते हो। जरा सा अपमान, और तुम आग हो जाते हो। जरा सा दुःख, और तुम समझते हो नरक टूट पड़ा। तुम छोटे-छोटे से इतने व्याकुल हो जाते हो कि तुम्हारी कोई गहराई तो नहीं है। कोई एक छोटा सा पत्थर फेंक दे तो तुम्हारे भीतर तूफान आ जाए, तो जाहिर है कि तुम कोई गहरे सागर नहीं हो।

सागर में तो हिमालय भी डूब जाए तो भी लहरों को कोई खबर न आएगी, कोई फर्क न पड़ेगा। इतनी नदियाँ गिरती हैं सागर में, इंच भर सागर ऊँचा नहीं उठता। जैसा है वैसा ही बना रहता है।

तुम परमात्मा की आकांक्षा कर रहे हो। कभी तुमने सोचा कि अगर परमात्मा आ जाए, तो तुम्हारी क्या गति होगी? तुम तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कहाँ बिठाओगे उसे? तुम कैसे उसका स्वागत करोगे? तुम तो भाग खड़े होओगे अपने घर।

तुम्हारे पास न सिंहासन है, क्योंकि सिंहासन कोई सोने का बनाना होता तो तुम बना भी लेते। सिंहासन हृदय का बनाना है। सिंहासन प्रेम का बनाना है। सोना तो बाजार में मिल जाएगा, प्रेम कहाँ पाओगे?

महल बनाना होता, तो बहुत महल हैं, बन जाते, मिल जाते। फिर तो सम्राटों के घर परमात्मा उतर आता। लेकिन भीतर महल को बनाना है। शून्य का महल बनाना है, ध्यान का महल बनाना है। बड़ा कठिन है। लंबी यात्रा है।

तुम जहाँ हो, अगर तुमने समझ लिया कि यही घर है, तो तुम गृहस्थ। और अगर तुमने समझा कि धर्मशाला है, थोड़ी देर टिके हैं, विश्राम करते ही आगे जाना है।

एक बहुत पुरानी सूफी कहानी है। एक सूफी फकीर से किसीने पूछा कि परमात्मा को पाने का राज क्या है? तो उसने कहा कि मैं तुझसे एक कहानी कहता हूँ। और उसने कहा कि एक लकड़हारा था और वह लकड़ियाँ काटता रोज, जंगल से शहर लाता। वह रोज यही करता रहा पूरे जीवन। इतना भी न कमा पाता कि दो जून रोटी मिल जाए। एक बार कभी रोटी मिल जाती, तो कभी भूखा सोता।

एक फकीर जंगल में रहता था, वह इसे रोज देखता था, उसे दया आ गयी। उसने कहा, कि तू बहुत नासमझ है। जरा जंगल में और आगे क्यों नहीं जाता? उस लकड़हारे ने कहा, 'आगे जाने से क्या होगा?' फकीर ने कहा, 'तू जरा आगे जा। तू यहीं से लकड़ियाँ काट कर लौट जाता है। नाहक दरिद्र है। जो जरा और आगे गया, समृद्ध हो गया। क्योंकि और आगे ताँबे की खदान है।'

वह आदमी थोड़ा और आगे गया। ताँबे की खदान मिल गयी। वह ताँबा बेचने लगा लाकर। फिर वह फकीर मिला, और उसने कहा कि नासमझ, अब भी तुझे ख्याल नहीं आया? अब लकड़ियों से तुझे ताँबा मिल गया। थोड़ा और आगे क्यों नहीं जाता, चाँदी की खदान है। जरा और आगे गया, चाँदी की खदान मिल गयी। संपन्न होने लगा।

वह फकीर फिर एक दिन गुजरता था, और उसने कहा कि तुझे अक्ल है या नहीं? तू मंत्र को समझ ही नहीं रहा। और आगे जा, सोने की खदान है। वह और आगे गया, मगर सोने में उलझ गया।

हमारे जैसा ही लकड़हारा होगा! जहाँ पहुँच जाते हैं, वहीं उलझ जाते हैं। जहाँ बैठ गये, वहाँ से उठने का नाम ही नहीं लेते। उस फकीर ने कहा, कि नासमझ, तुझे कितनी बार मैंने कहा कि और आगे! आगे सोने की खदान है। वह और आगे गया और सोने की खदान में उलझ गया, जहाँ कि बहुत लोग उलझ गये हैं।

फकीर ने एक दिन उसके पास से गुजरते हुए कहा, तुझे कभी भी अक्ल न आएगी। तू जड़-बुद्धि का जड़-बुद्धि रहा। तू बाहर से अब संपन्न हो गया लेकिन भीतर अब भी दरिद्र है। मुझे तुझ पर दया आती है। तुझसे कितनी बार कहा है, और आगे। आगे हीरों की खदान है। वह और आगे गया।

फिर कई वर्षों के बाद फकीर वहाँ से गुजर रहा था। तब वह हीरों में उलझा था। उसने बड़े महल खड़े कर लिए थे। उसके पास बड़ा धन था, अंबार थे। फकीर ने कहा, तू एक दया का पात्र, दया का पात्र ही बना हुआ है। तू भीतर गरीब का गरीब है। जैसा तू लकड़हारा था, वैसा ही है। क्योंकि सोना, संपत्ति, हीरे, जवाहरात सब बाहर हैं। तू और आगे क्यों नहीं जाता?

उस आदमी ने कहा, क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हो? तुम मुझे चैन से क्यों नहीं रहने देते? तुम क्यों और आगे, और आगे लगाए हुए हो? अब क्या और आगे मिल सकता है? अब हीरे मिल गये।

उस फकीर ने कहा, और आगे मेरा आश्रम है। और असली हीरे तुझे मैं दे सकता हूँ। वे ध्यान के हीरे हैं। अभी तक तू बाहर की खदानें ही खोजता रहा। और आगे भीतर की खदान शुरू होती है। उसने तब तक तो सुना था, लेकिन अब उसने कहा, कि यह जरा ज्यादा...। मेरी समझ के बाहर है। मुझे तो यहीं रुक जाने दें।

फकीर ने कहा, तेरी मर्जी। लेकिन यह खदान जो और आगे है, सदा नहीं रहेगी। क्योंकि मैं आज हूँ, कल नहीं हो जाऊँगा। जो खदानें तूने अब तक पायी हैं, वे सदा रहेंगी। हम रहें, या न रहें। हमसे पहले थीं, हमसे बाद भी रहेंगी।

ध्यान की खदान कभी-कभी प्रकट होती है। हजारों वर्षों में कभी-कभी प्रकट होती है। कभी कोई आदमी उस खदान को खोज लेता है, और द्वार बन जाता है। उसीको नानक गुरु कहते हैं। उसीके द्वार को नानक 'गुरुद्वारा' कहते हैं। जिस आदमी के जीवन में ध्यान की खदान आ जाती है, वह द्वार बन जाता है। लेकिन वह सदा नहीं रहता।

और तुम ऐसे अंधे हो, कि तुम उस द्वार के पास से भी निकल जाओगे, वह तुम्हें दिखायी न पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारी नजर तो दृश्य धन पर लगी है, अदृश्य धन की तो तुम्हें कोई खबर नहीं है।

यह 'और आगे' का सूत्र जिस आदमी को ख्याल में बना रहता है... तब तक तुम इस मंत्र को मत भूलना जब तक परमात्मा ही न मिल जाए। इसके पहले जो राजी हो गया, वह भटक गया, वह गृहस्थ हो गया।

इसलिए संन्यासी की अतृप्ति का कोई अंत नहीं है। परमात्मा को ही पी लेगा तभी प्यास को बुझाएगा। उससे छोटे पानी उसके काम के नहीं हैं। नानक इसलिए इस संसार को धर्मशाला कहते हैं। उनका सूत्र समझें।

रातो रुति थिति वार। पवन पानी अगनी पाताल ॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।

'परमात्मा ने रात, ऋतु, तिथि, वार, हवा, पानी, आग और पाताल रच कर, उस सब के बीच धरती को धर्मशाला के रूप में स्थापित किया। उसके बीच उसने रंग-रंग के जीवों का विधान किया, जिनके नाम अनेक और अनंत हैं। वहाँ अपने-अपने कर्म के अनुसार उनका विचार होता है।'

तो पहली तो बात, यह संसार धर्मशाला है, सराय है। इसे तुम जितने गहरे अपने भीतर ले जा सको, उतना ही उपयोगी है। क्योंकि जितनी यह बात तुम्हारे भीतर उतर जाए, कि तुम जहाँ हो वहीं रुक रहना मौत है। और आगे, और आगे, और आगे —जब तक कि परमात्मा का द्वार ही न आ जाए, तब तक यात्रा जारी रखना। तब तक यात्रा बंद मत करना। तब तक थको, तो विश्राम कर लेना, लेकिन विश्रामगृह को घर मत बनाना।

थकान होगी, क्योंकि यात्रा बड़ी है, मंजिल दूर है। हजारों बार तुम भटकोगे। क्योंकि कोई बँधा-बँधाया रास्ता नहीं है, कोई राजपथ नहीं है। कोई हाइ-वे नहीं है, कि तुम चले जाओ। आदमी चलकर ही अपना रास्ता बनाता है। परमात्मा का मार्ग इसलिए दूर है। जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, और उनके पैरों के कोई चिन्ह नहीं छूटते; ऐसे ही परमात्मा के आकाश में सिद्ध-पुरुष चलते हैं, पहुँच जाते हैं, पर उनके पैरों के कोई चिन्ह नहीं छूटते। आकाश फिर खाली का खाली होता है।

तुम जब चलोगे, तब तुम किसीके चरण-चिन्ह होकर नहीं चल सकते। उधारी सत्य के जगत में संभव नहीं है। सत्य कोई दूसरा तुम्हें दे नहीं सकता। इशारे मिल सकते हैं। प्रेम मिल सकता है। गुरु की कृपा मिल सकती है। लेकिन सत्य तुम्हें ही खोजना पड़ेगा। उसकी कृपा तुम्हारे पैरों को मजबूती दे सकती है, मार्ग नहीं दे सकती है। उसकी कृपा तुम्हें आश्वासन दे सकती है, रास्ता नहीं दे सकती। उसकी कृपा तुम्हें, डगमगाओ न, डरो मत, इसके लिए हिम्मत दे सकती है। लेकिन मार्ग पर तुम्हीं को चलना पड़े।

और मार्ग कुछ ऐसा है, कि तुम चलो तो बनता है; चलने से ही बनता है। बँधा-बँधाया, तैयार मार्ग नहीं है। 'रेडी मेड,' परमात्मा की तरफ जाने का कोई उपाय नहीं है। हर मनुष्य को अपना मार्ग खोजना पड़ता है।

यही कठिनाई है, लेकिन यही गरिमा भी है। क्योंकि अगर बँधा-बँधाया मार्ग होता, जिसपर लाखों लोग चल चुके होते, और तुम भी चलते, तो परमात्मा के पाने का कुछ मजा न रह जाता।

परमात्मा जब भी मिलता है किसी व्यक्ति को, तो ताजा, और नया, मौलिक। जैसे तुम्हें ही पहली बार मिल रहा है। इसके पहले यह मिलन की घटना कभी घटी ही नहीं। बासा नहीं, कि दूसरे भी उससे मिल गये हैं तुमसे पहले, कि दूसरे भी उसके द्वार पर अपने चरण-चिन्ह छोड़ गये हैं, कि दूसरों ने भी उसके दरवाजे पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। नहीं, तुम जैसे आए हो, पहली दफा आए हो। जैसे वह कुँवारा तुम्हारे लिए प्रतीक्षा कर रहा हो। परमात्मा सदा कुँवारा है। अगर बहुत लोगों से उसका विवाह पहले रच गया होता, तो जानने योग्य भी न रह जाता। उसका कुँवारापन शाश्वत है। जो भी पहुँचेगा, उसे कुँवारा पाएगा, ताजा और नया पाएगा; ऐसे जैसे सुबह की ओस ताजी होती है, जैसे सुबह की पहली किरण ताजी होती है। ठीक ऐसा ही ताजा तुम पाओगे। बँधे-बँधाये रास्ते नहीं हैं।

और न कोई नक्शा है, कि तुम्हें दे दिया जाए, कि इस नक्शे के अनुसार चलना। क्योंकि जीवन सतत परिवर्तन है। वहाँ सब प्रतिपल बदल रहा है। जिस ढंग से मैं पहुँचा, वह ढंग तुम्हारे काम न आएगा। वह ढंग मेरे काम आया। वह ढंग तुम्हारे काम न आएगा।

क्योंकि नानक कहते हैं, कि परमात्मा ने अनेक-अनेक जीव, अनेक-अनेक आत्माएँ भिन्न-भिन्न रंगों और रूपों में बनायी हैं। एक-एक व्यक्ति अनूठा है। अगर एक-एक व्यक्ति अनूठा है, तो जो मेरे काम पड़ा, वह तुम्हारे काम न पड़ेगा। मेरी समझ तुम्हारे काम पड़ सकती है, मेरा मार्ग नहीं। मेरी समझ तुम्हें मार्ग खोजने में सहयोगी हो सकती है, लेकिन तुम जो मार्ग खोजोगे वह बिलकुल तुम्हारा होगा। वह तुम्हारा निजी होगा। उसपर तुम्हारी छाप होगी। जैसे तुम्हारे अँगूठे का निशान बस तुम्हारा है। अरबों-खरबों लोग हुए हैं पृथ्वी पर, और अरबों-खरबों लोग आज हैं, और अरबों-खरबों लोग आगे होंगे, लेकिन तुम्हारे अँगूठे का निशान कभी फिर नहीं दोहरेगा। जब तुम्हारे अँगूठे का निशान तक अस्तित्व इतना मौलिक बनाता है, तो तुम्हारी आत्मा को कितनी मौलिक बनाता होगा, तुम सोच सकते हो!

नयी चिकित्सा-शास्त्र की खोजें बड़ी गहरी बातों में उलझ गयी हैं। उनमें एक गहरी बात यह है, तुम अगर चिकित्सा-शास्त्र की किताबें पढ़ो, तो तुम हृदय

का चित्र बना हुआ पाओगे। किडनी का, फुप्फुस का, फेफड़ों का चित्र तुम बने पाओगे। वे चित्र केवल औसत हैं। हर आदमी का फेफड़ा अलग रंग, आकार का है। किसी दूसरे आदमी का फेफड़ा वैसा नहीं है। नवीनतम खोजें कहती हैं, कि शरीर का हर अंग, हर आदमी का अनूठा है। दो आदमियों के हृदय एक जैसे नहीं हैं। अँगूठे की छाप नहीं शरीर का कण-कण तुम्हारा, बस तुम्हारे जैसा है। और परमात्मा तुम्हें दुबारा पैदा नहीं करता। तुम जैसा फिर वह किसीको नहीं बनाएगा। तुम अनूठे हो। तुम्हारे पहुँचने का मार्ग भी अनूठा होगा। तुम अद्वितीय हो। तुम्हारे पहुँचने का मार्ग भी अद्वितीय होगा। मजबूरी और कठिनाई भी है, गरिमा भी यही है, गौरव भी यही है, कि तुम नवीनतम, एकदम नूतन मार्ग से उस तक पहुँचोगे। वह तुम्हारे लिए बासा नहीं होगा।

यह जो बात है, अगर ठीक से समझ में आ जाए तो इसीका अर्थ आत्मा है। मशीनें हम एक जैसी हजारों बना सकते हैं। फोर्ड की एक कार जैसी लाख कारें हो सकती हैं, दस लाख कारें हो सकती हैं। एक का कल-पुर्जा दूसरे में फिट हो जाएगा। एक कार और दूसरी कार में फर्क करना मुश्किल होगा, कि क्या फर्क है? लेकिन दो आत्माएँ एक जैसी नहीं होतीं। प्रत्येक आत्मा अद्वितीय होती है।

इसका अर्थ यह है, अगर इसे हम कवि, संत या भक्तों की भाषा में कहें, तो इसका अर्थ यह हुआ, कि आत्मा किन्हीं यंत्रों में डाल कर नहीं बनायी जा सकती। परमात्मा जैसे एक-एक आत्मा को अपने हाथ से रचता है। यही उसके स्रष्टा होने का अर्थ है। जैसे एक चित्रकार चित्र बनाता है। तुम उससे कहो कि दुबारा इसीको बनाओ, तो वह ठीक वैसा चित्र दुबारा न बना सकेगा। खुद वही चित्रकार भी न बना सकेगा। भेद हो जाएँगे। क्योंकि समय बीत गया। चित्रकार भी भिन्न हो गया। उसकी भावदशाएँ भिन्न हो गयीं। जिस भावदशा में पहला चित्र बनाया था, अब वह भावदशा न रही।

पिकासो एक बार चित्र बना रहा था, और एक मित्र उसके पास आया। उसने देखा उसको चित्र बनाते, लेकिन वह इतना तल्लीन था कि वापिस लौट गया। फिर वह चित्र बाजार में बिका तो उस आदमी ने खरीद लिया। क्योंकि पिकासो के झूठे चित्र बाजार में बिक रहे हैं। लेकिन यह चित्र तो वह अपनी आँख से पिकासो को बनाते देख आया था। तो उसने खरीद लिया। लाखों रुपये उसमें लगे। चित्रकार से मिलने आया था, पिकासो से वह मित्र, तो उसने एक बार पूछा, वह चित्र साथ ले आया और उसने कहा, कि यह चित्र प्रामाणिक तो है न, क्योंकि मैंने तुम्हें बनाते देखा था। पिकासो ने कहा, कि बनाया तो मैंने ही है, लेकिन प्रामाणिक नहीं है। वह मित्र तो हैरान हुआ! क्योंकि प्रामाणिक का तो एक ही अर्थ होता है, कि चित्रकार ने स्वयं बनाया है। किसी ने नकल और कापी

नहीं की। अथेंटिक है, पिकासो ने कहा, कि इस अर्थ में कि मैंने बनाया है। और अथेंटिक नहीं, क्योंकि मैंने अपने पहले बनाए चित्रों की प्रतिकृति की है। बनाते वक्त मैं रचनाकार नहीं था। बनाते वक्त मैं सिर्फ कापी कर रहा था अपने ही चित्रों की। लेकिन बनाते वक्त मेरा स्रष्टा मौजूद नहीं था। उस मित्र ने पूछा, 'स्रष्टा का तुम्हारा क्या अर्थ है?' तो पिकासो ने कहा, 'स्रष्टा मैं तभी होता हूँ जब मैं अद्वितीय बनाता हूँ, यूनीक, बेजोड़!'

इसलिए कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, जब वस्तुतः कोई मौलिक चीज बनाते हैं, तब परमात्मा के निकटतम होते हैं। उतने ही निकट जितने भक्त, जितने संत। जितना ध्यान में बुद्ध निकट होते हैं परमात्मा के, उतना ही अजंता की मूर्तियों को, एलोरा के चित्रों को खोदता हुआ चित्रकार भी होता है। ये दूसरे मार्ग से।

जब भी तुम किसी चीज का सृजन करते हो, और अगर सृजन मौलिक है, तुम नकल नहीं कर रहे हो, इमिटेशन नहीं है तो इससे बड़ी कोई प्रार्थना नहीं हो सकती। क्योंकि परमात्मा के तुम निकटतम हो। तुम उसके ही जैसे हो उस क्षण में। तुम भी स्रष्टा हो। इसलिए सृजन का इतना आनंद है। तुम छोटी सी भी चीज बना लेते हो तो कितने प्रसन्न होते हो।

एक छोटा सा बच्चा ताश का घर बना लेता है तो खबर करता है आस-पड़ोस में कि मैंने एक घर बना लिया। एक रेत में घर बना लेता है जो अभी गिर जाएगा क्षण भर बाद। लेकिन बच्चे की खुशी देखो! वह नाच रहा है।

जीवन में आनंद के क्षण सृजन के क्षण हैं। जब तुम बनाते हो, तब तुम आनंदित होते हो। और जिनके जीवन बिना सृजन के बीत जाते हैं उनके जीवन में सिवाय दुःख के और कुछ भी नहीं होता।

क्यों ऐसा है? जब तुम कुछ बनाते हो तो क्यों आनंदित होते हो? क्योंकि बनाने के क्षण में एक झलक स्रष्टा की मिलती है। वह स्रष्टा है, तुम भी उस क्षण में छोटे-मोटे स्रष्टा हो जाते हो। तुम एक बगीचे में पौधा लगाओ, जब पौधे में फूल आए तब तुम्हें एक आनंद होगा। वह आनंद वही है। बड़ी छोटी मात्रा में, निश्चित ही बूँद की तरह है, लेकिन आनंद वही है जो परमात्मा को सारे जगत को खिलता हुआ देख कर होता है। मात्रा का भेद हो, गुण का भेद नहीं है।

नानक कहते हैं, 'उसने रंग-रंग के जीवों का विधान किया, जिनके नाम अनेक हैं, और अनंत हैं।'

यह जो परमात्मा का फैलाव है, जो सृजन है, क्रियेटिविटी है, अगर तुम इसे पहचान लो; परमात्मा को पहचानना तो मुश्किल है। क्योंकि वह तो छिपा हुआ है। लेकिन अगर तुम उसकी दृश्य-कृति को पहचान लो, तो पहली पहचान

हो गयी। एक कदम उठ गया। देखो, जगत को। एक गहन व्यवस्था से आपूरित है। चाँद उगता है, सूरज उगता है, तारे घूमते हैं, ऋतु आती है, फूल खिल जाते हैं, सुबह होती है, पंछी चहचहाते हैं। झरने बह-बह कर सागर पहुँचते रहते हैं। सागर बादलों में उमड़-घुमड़ कर वापिस झरनों में बरसता रहता है। एक व्यवस्था है। जगत एक कॉसमॉस है, केयास नहीं। एक अराजकता नहीं है। एक सुसंबद्ध व्यवस्था है। इस महत व्यवस्था को अगर तुम पहचानने लगो--

जितना तुम इस व्यवस्था को पहचानोगे और जितना तुम्हें जगत में चलते हुए नियम की धारा दिखायी पड़ेगी, उतना ही तुम्हें परमात्मा का हाथ स्मरण आने लगेगा। क्योंकि व्यवस्था बिना हाथों के नहीं हो सकती और जहाँ इतनी विराट व्यवस्था है वहाँ इतने ही विराट हाथ होंगे। इसलिए तो हिंदू कहते हैं, कि उसके हजार हाथ हैं, हजार का मतलब अनंत हाथ हैं क्योंकि दो हाथों से यह कृत्य नहीं हो सकता। यह जो अनंत अस्तित्व है, यह अनंत हाथों से ही सँभाला जा सकता है।

नानक कहते हैं, 'उसीने बनायी रात, उसीने बनायी ऋतु, उसीने बनायी तिथि, उसीने बनायी हवा, पानी, आग, पाताल, पृथ्वी। सब उसने बनाया है। और इन सब के बीच में उसने बनायी पृथ्वी, कि तुम इस अनंत की यात्रा में विश्राम कर सको।'

लेकिन वह धर्मशाला है। वहाँ तुम घर बना कर मत बैठ जाना। लोग अनेक-अनेक तरह के घर बना-बना कर बैठ गये हैं। भूल ही गये हैं। जैसे कोई आदमी रात धर्मशाला में ठहरे और सुबह भूल ही जाए कि धर्मशाला है। और फिर वहीं रहने लगे। और धर्मशाला की ही उलझन को अपनी उलझन बनाए। धर्मशाला की चिंता को अपनी चिंता समझ ले। फिर परेशान हो, दुःखी हो और पूछता फिरे शांति का मार्ग।

और जब भी कोई उससे कहे कि धर्मशाला को तुम घर क्यों बनाए हुए हो? तभी वह कहे कि अभी छोड़ना मुश्किल है। अभी जरा कठिनाई है। समझ में तो मुझे भी आता है लेकिन जरा वक्त की जरूरत है। धीरे-धीरे छोड़ूँगा।

सवाल धीरे-धीरे छोड़ने का नहीं है। सवाल छोड़ने का है ही नहीं। सवाल देखने का है। देखने के लिए क्या समय लगाने की जरूरत पड़ती है। एक क्षण में दिखायी पड़ जाता है। देखने के लिए समय बिलकुल ही गैरजरूरी है। अगर तुम देखने को राजी हो, तो तुम्हें बिल्कुल साफ दिखायी पड़ सकता है कि जहाँ तुम हो वह धर्मशाला है। क्योंकि तुम सदा तो वहाँ न थे। जन्म के पहले तुम कहाँ थे? मरने के बाद तुम कहाँ होओगे? थोड़े से दिन का मेला है। और इन थोड़े से दिन में तुम इतने जड़ होकर चिपक गये हो; जो है उसको भी पकड़ लिया है।

जो नहीं है उस तक को तुम पकड़े हुए हो। आदमी के पास जो संपत्ति है उसको तो वह पकड़ता ही है, भविष्य की जो वासनाएँ हैं और सपने हैं, उनको भी पकड़े हुए है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक घर बनाया। वह मुझे दिखाने ले गया। उसमें बड़ा बगीचा लगाया था। उसमें स्नान के लिए तालाब बनाए। उसने कहा कि यह गर्म पानी का तालाब है। यह सर्दियों में स्नान के लिए बनाया है। फिर उसने कहा कि यह ठंडे पानी का तालाब है। यह दूसरा तालाब है। यह हमने गर्मियों में स्नान के लिए बनाया है। फिर उसने तीसरा तालाब बताया कि यह बिना पानी का तालाब है। मैंने उससे पूछा कि यह किसलिए बनाया है? उसने कहा कि यह उन समयों के लिए जब न नहाना हो, उस मौके के लिए।

आदमी नहाने का भी इंतजाम करता है और न नहाने का भी इंतजाम करता है। जो तुम्हारे पास है उसका भी तुम इंतजाम करते हो; जो तुम्हारे पास नहीं है उसका भी तुम इंतजाम करते हो। तुम जो है उसकी तो पीड़ा से तो भरे ही हो, जो कभी होगा वह चिंता भी तुम्हें घेरती है। तुम कभी अपने मन को गौर से देखो, तो तुम पाओगे कि वह अतीत की चिंताओं से भरा है, जो अब है ही नहीं। कोई घटना जो बीस साल पहले घटी थी, वह तुम्हारे मन में चलती है। वह बची ही नहीं है। अब कुछ भी नहीं बचा है। और कोई बात जो बीस साल बाद होगी, उसका तुम विचार कर रहे हो। तुम अपनी चिंताओं को हजार गुना कर लेते हो।

और किसके लिए तुम चिंतित हो रहे हो? रास्ते पर बने हुए एक सराय के लिए। और इस सराय में जिनसे तुम्हारा मिलना हो गया है तुम उनके लिए परेशान हो गये हो। पति है, पत्नी है, बेटा है, माँ है, पिता है और सब की मुलाकात सराय में हुई है। रास्ते के किनारे मिलना हो गया है और तुम भारी परेशान हो। तुम्हें एक भर चिंता नहीं है कि तुम घर को खोजो। और सब चिंताएँ तुम्हारे पास हैं।

नानक कहते हैं, 'इस पृथ्वी को उसने धर्मशाला की तरह बनाया।' इस प्रतीक को ठीक से समझ लेना। और 'वहाँ अपने-अपने कर्म के अनुसार उनका विचार होता है।'

और इस जगत से तुम जो भी कर रहे हो वह बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अंततः तुम्हारे जीवन की नियति उसीसे निर्धारित होगी। जगत है धर्मशाला, जहाँ रुक कर आगे बढ़ जाने की जरूरत है। लेकिन वहाँ तुम बहुत से कामों में लगे हो। धर्मशाला तो छीन ली जाएगी, काम का जाल तुम्हारे पास रह जाएगा। मरोगे तुम; धर्मशाला तो छूट जाएगी पीछे, लेकिन तुम ने धर्मशाला में जो किया

वह तुम्हारा अनुगमन करेगा । वह तुम्हारी छाया हो जाएगी । वह तुम्हारा जन्मों-जन्मों तक पीछा करेगा । और अंतिम निर्णय, तुमने क्या किया, क्या तुम्हारे कर्म थे, उनपर निर्धारित होता है ।

अब यह थोड़ा सोच लेने जैसा है । अगर तुम्हें याद आ जाए कि तुम धर्मशाला में हो और यह याद बनी रहे, तो बहुत से कर्म तो तत्क्षण विलीन हो जाएँगे। तुम क्या पत्नी पर क्रोध करोगे ? क्रोध का प्रयोजन क्या है ? दो क्षण का मिलना है फिर छूट जाना है । इस दो क्षण में तुम पत्नी को अपना मान लेते हो, इसीलिए क्रोध भी करते हो । अपना मान लेते हो, इसलिए झगड़ते भी हो । पत्नी तो छूट जाएगी । क्योंकि मौत के समय तुम पत्नी को साथ न ले सकोगे। लेकिन तुमने जो क्रोध किया, तुमने जो नाराजगी की, तुमने जो दुःख पहुँचाया, वह सब कृत्य तुम्हारे साथ चले जाएँगे । सपने तो टूट जाएँगे, लेकिन सपनों में तुमने जो किया, वह तुम्हारा पीछा करेगा । यह सौदा महँगा है । यह सौदा बिल्कुल ही महँगा है। इससे मिलता तो कुछ नहीं सिवाय खोने के । संसार में आदमी पाता कुछ नहीं, सिर्फ खोता है ।

नानक कहते हैं, इस धर्मशाला में अगर तुम स्मरण रख सको कि यह धर्मशाला है तो तुम्हारे निन्यानबे प्रतिशत कृत्य तो बंद हो जाएँगे । तुम रेल्वे स्टेशन के प्लेटफार्म पर बैठे हुए हो, या विश्रामगृह में बैठे हुए हो, वेटिंग रूम में, वहाँ तुम कैसा व्यवहार करते हो ? वहाँ किसी आदमी का चलते वक्त अगर तुम्हारे पैर पर जूता भी पड़ जाता तो भी तुम कहते हो स्टेशन है, भीड़-भड़क्का है । तुम नाराज नहीं होते ।

मुल्ला नसरुद्दीन ने बहुत जीवन के देरी तक शादी नहीं की। जब वह पचास साल का हो गया तो मित्रों ने उससे पूछा कि तुम डरते क्यों हो ? शादी क्यों नहीं कर लेते ? उसने कहा, कि ऐसा हुआ कि मैं एक सिनेमागृह के बाहर निकल रहा था। और एक स्त्री के पैर पर मेरा पैर पड़ गया । वह झपट कर लौटी; और जैसे रण-चंडिका हो, काली का अवतार हो । और उसकी आँखों से आग ! और ऐसा लगा कि वह या तो मुझे मारेगी, या मेरी गर्दन दबा देगी, या झपट पड़ेगी । लेकिन तभी वह एकदम शांत हो गयी मुझे देखकर। और उसने कहा, 'कोई बात नहीं। मैं समझी कि मेरा पति है।' तभी मैंने तय कर लिया कि शादी की झंझट में नहीं पड़ना है। पराया आदमी है, क्या झंझट लेनी है ! हो गयी भूल उससे, पैर पड़ गया ।

हम परायों को माफ कर देते हैं लेकिन अपनों को माफ नहीं कर पाते । बड़ी हैरानी है, अजनबी को हम क्षमा कर देते हैं । निकट जो है उसे क्षमा नहीं कर पाते । क्यों ? क्या कारण है ? अजनबी और निकट में फर्क क्या है ?

अजनबी अजनबी है, उससे संबंध धर्मशाला का है । निकट जो है, वह अजनबी नहीं रहा है, ऐसी हमारी भ्रांति है । उससे संबंध घर का है ।

जो आदमी इस पूरे संसार को धर्मशाला समझ लेगा, उसके लिए सभी अजनबी हैं, स्ट्रेंजर हैं--हैं भी ! पत्नी चाहे तीस साल तुम्हारे पास रहे क्या तुम सोचते हो, वह अजनबी नहीं रही ? क्या तुम सोचते हो, तीस साल साथ रहने से जो पराया है वह अपना हो जाता है ? भ्रांति होती है ।

अपना तो हो ही नहीं सकता कोई इस जगत में । अपना होने का यह उपाय नहीं है । अपना तो सिर्फ परमात्मा हो सकता है । लेकिन उसकी तुम्हें कोई खोज नहीं है। तुम अजनबियों को अपना मान कर बैठे हो । एक बेटा तुम्हारे घर पैदा हुआ तो तुम सोचते हो, कि तुमसे पैदा हुआ इसलिए अजनबी नहीं है। तो जिंदगी तुम्हें गलत सिद्ध करेगी । बाप भी तो बेटे के जीवन के संबंध में कुछ तय नहीं कर पाता । बाप कुछ बनाना चाहता है, बेटा कुछ बनता है । बाप कुछ और चाहता था, बेटा कुछ और होता है । बाप की आकांक्षा कुछ और थी, बेटे की अभीप्सा कुछ और है । कौन बाप अपने बेटे से तृप्त होता है ? तुमने कोई बाप देखा जो बेटे से तृप्त हो ? तुमसे पैदा हुआ, लेकिन अजनबी है । बाप भी तो प्रेडिक्ट नहीं कर सकता बेटे को, कि क्या इसका भविष्य होगा । बाप भी तो तय नहीं कर सकता, कि बेटे को वही बना ले जो बनाना चाहता है । बड़े से बड़े बाप हार जाते हैं । कोई उपाय नहीं है । पति लाख चेष्टा करता है पत्नी को सुधारने की। पत्नी कितनी चेष्टाएँ करती है पति को सुधारने की । कौन किसको सुधार पाता है ? सुधारने में बिगाड़ हो जाता है भला, सुधार तो नहीं हो पाता ।

क्योंकि हम सब अजनबी हैं । हम सब अपने-अपने कर्मों से जी रहे हैं । हमें कोई दूसरा न सुधार सकता है, न बदल सकता है । हमारी अपनी-अपनी अलग-अलग यात्रा है । थोड़ी देर को चौराहे पर मिल गये हैं । और इस मिलने को हमने इतना ज्यादा मान लिया है । इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम एक स्त्री के साथ सात चक्कर लगा लिए अग्नि के ? सात चक्कर लगाने से कोई स्त्री तुम्हारी हो जाएगी ? सात क्या, तुम सात हजार चक्कर लगाओ । सात तो शुरुआत है, जिंदगी में कितने लाख चक्कर लगाने पड़ते हैं ! कुछ हल नहीं होता । तुम जहाँ थे वहीं हो ।

यहाँ इस संसार में परायापन मिट ही नहीं सकता । यहाँ तुम कितने ही निकट आ जाओ तो भी दूरी रहेगी । यही तो पीड़ा है सभी प्रेमियों की । प्रेमी चाहता है कि इतने निकट आ जाए कि दूरी न रहे । लेकिन जितने ही तुम निकट आते हो, उतने ही तुम पाते हो दूरी है । दूर थे, तो यह भी ख्याल था कि शायद पास आएँगे तो दूरी मिट जाएगी । पास आ-आ कर पता चलता है कि दूरी के मिटने

का उपाय ही नहीं है। यह दूरी का मिटना असंभव है। तुम बिल्कुल पास-पास बैठ सकते हो। शरीर ही पास-पास होंगे, तुम्हारी भीतरी दूरी तो बनी ही रहेगी। तुम अपने ख्याल में, तुम्हारी प्रेयसी अपने ख्याल में। तुम्हारे पास तुम्हारा मन है, तुम्हारी प्रेयसी के पास उसका मन है। इन दोनों का कैसे मिलना होगा।

इस जगत में मिलन झूठा है। बिछोह सच है। मिलन सपना है। मिलन तो सिर्फ परमात्मा से हो सकता है। एक ही मिलन है। इसलिए तो कबीर, नानक और दादू गाये चले जाते हैं कि हम राम की दुलहनिया हैं। कबीर कहते हैं कि बस, हम समझ गये कि दुल्हन तो सिर्फ राम की ही हुआ जा सकता है। वहीं मिलना पूरा होगा। जहाँ सब बाहर-भीतर की दूरी गिर जाएगी। वहीं प्यास तृप्त होगी। वहीं हम उससे मिलेंगे जो हमारा है। वहीं हम बिछोह को समाप्त कर पाएँगे। उसके पहले तो व्याकुलता रहेगी।

कितने ही कुओं से पानी पियो, प्यास न बुझेगी। कितने ही घाटों पर भटको, भटकाव ही रहेगा। सिर्फ उस एक के घाट पर भटकाव मिटता है, और उसकी हमें चिंता नहीं।

और तुम जो कर रहे हो इस भटकाव की अवस्था में वे सब कर्म तुम्हारे साथ इकट्ठे हो रहे हैं। वे सब संग्रहीत हो रहे हैं। और उन सब संग्रहीत कर्मों से तुम्हारा आगे का जीवन तय होगा। इसे थोड़ा समझो।

तुम जो भी कहते हो, उससे तुम्हारा भविष्य रोज तय होता है। अगर तुमने आज सुबह उठकर क्रोध किया तो तुम एक संस्कार पैदा कर रहे हो। अगर तुमने कल सुबह भी उठकर क्रोध किया था तो संस्कार और भी गहरा है। अगर परसों सुबह उठकर भी तुमने क्रोध किया था तो संस्कार की मजबूत लकीर बन गयी। अब कल सुबह जब तुम उठोगे तो बहुत संभावना है कि तुम फिर क्रोध करो। क्योंकि आदमी संस्कार से जीता है, जब तक कि आदमी प्रबुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाए। सिर्फ बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति संस्कार से नहीं जीता। वह आदत से नहीं जीता। वह होश से जीता है। तुम तो आदत से जीते हो। जो कल हुआ था वही आज हो रहा है। जो आज होता है, वही कल होगा। तो तुम जो भी कर रहे हो उससे तुम आदतें निर्मित करते हो।

कर्म का सिद्धांत बहुत वैज्ञानिक है। उसका फलसफा से कुछ लेना-देना नहीं। बस, सीधी-सादी बात है। वह मनोविज्ञान का सीधा सा तथ्य है कि तुम जो करते हो उसको करने की वृत्ति बढ़ती जाती है। तो जो तुम नहीं करते हो उसको न करने की वृत्ति बढ़ती जाती है। करना एक आदत हो जाती है। तुम यंत्रवत् उसे करते रहते हो। लौट कर अपने जीवन को विचार करो, तो तुम पाओगे कि तुम एक पुनरुक्ति हो, रिपिटीशन। तुम वही-वही रोज करते हो।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि क्रोध नहीं करना चाहते लेकिन हो जाता है। फिर मैं उनसे पूछता हूँ कि जब हो जाता है, तब तुम क्या करते हो? वे कहते हैं कि जब हो जाता है, तब हम पछताते हैं। फिर हम दुःखी होते हैं। तो मैं उनसे कहता हूँ कि तुम एक काम करो। क्रोध की तो फिक्र छोड़ो, तुम पछताना छोड़ दो कम से कम। वह तो कर सकते हो। वे कहते हैं, आप कैसी उलटी शिक्षा दे रहे हैं! पछता-पछता कर हम क्रोध छोड़ नहीं पाए और अगर पछताना छोड़ देंगे, फिर क्रोध कैसे छूटेगा?

मैंने कहा, कि तुम अपनी ही जिंदगी को देखो। पछता-पछता कर तुम छोड़ नहीं पाए, अब मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम बिना पछता कर प्रयोग करके देख लो। कम से कम आदत का आधा हिस्सा तो तोड़ो। क्रोध करते हो फिर पछताते हो, यह पूरी आदत है तुम्हारी। क्रोध कर-कर के तुम कोशिश कर लिए, वह नहीं छूटा। दूसरे हिस्से से कोशिश करो। कम से कम पछताना तो छोड़ दो, उसमें तो कुछ महँगा नहीं है। क्रोध में तो समझो कि महँगा है। लगता है कई दफा करना जरूरी है। लेकिन पछताना तो तुम्हारा व्यक्तिगत है। इसमें तो किसीका कोई लेना-देना नहीं।

क्रोध में तो दूसरा आदमी भी सम्मिलित है। किसी ने गाली दी, अब कैसे क्रोध न करें। और न करें तो लोग क्या कहेंगे? और इस तरह अगर जाने दिया एक आदमी को गाली देते, और गाँव में खबर लग गयी तो हर कोई गाली देगा। तो क्रोध सामूहिक है, पछतावा तो अकेला है। उसमें तो किसीका कुछ लेना-देना नहीं। उसमें तो दूसरे का कोई भी संबंध नहीं है। अकेले में बैठ कर पछताते हो, कृपा कर के उसको छोड़ो। वह आदमी कुछ दिन बाद आता है और कहता है कि जितनी मुसीबत क्रोध छोड़ने में है, उतनी ही मुसीबत पछतावा छोड़ने में है।

एक महिला मेरे पास आती है। उनके पति शराबी हैं। आज बीस साल से वह उनके पीछे पड़ी है। जब से वह ब्याही है तब से वह यही काम कर रही है कि शराब न पियो। वे शराब पिये जाते हैं, वही पीछे पड़ी है। उसने मुझ से कहा कि उनकी आदत नहीं छूटती, हद हो गयी। इनको किसी तरह समझाएँ। मैंने कहा, कि तू एक काम कर। तीन महीने तू इनके पीछे मत पड़। इनको तो शराब की आदत है। शराब तो जरा केमिकल मामला है। क्योंकि बीस साल से जो आदमी शराब पी रहा है, उसके शरीर के रोएँ-रोएँ में शराब चली गयी है। उसके खून में शराब है। और अभी यह उसके एकदम बस की बात नहीं है एकदम से शराब छोड़ देना। खैर, इनकी मैं पीछे फिक्र कर लूँगा। पहले तू सबूत दे एक बात का, कि तू तीन महीने इनके पीछे न रहेगी। तीसरे दिन आकर उसने कहा, कि यह मुझ से नहीं हो सकता। मेरी भी आदत पड़ गयी है।

तो मैंने उसको कहा कि अब तू समझ, कि इस तेरे पति की कितनी मुसीबत है। तू कहना तक नहीं छोड़ सकती। कहने का कौन सा नशा है? कहने का कोई केमीकल--कोई भी तो नहीं है। कहना ही छोड़ देना है। बीस साल कह कर भी शराब बंद नहीं हुई है, सिर्फ तीन महीने की बात है। तू तीन महीने इनसे मत कह। तो तू एक सबूत देगी कि तू आदत छोड़ सकती है, तो फिर मैं इनके भी पीछे पड़ूँ, कि जब तेरी पत्नी आदत छोड़ सकती है--मगर वह तीन महीने पूरे नहीं कर पाती। मैंने कहा, जब तक तू तीन महीने पूरे न करे, तेरे पति से मैं कुछ कहनेवाला नहीं।

अब तो वह समझ गयी कि मुश्किल है। क्योंकि वह कहती है दिन भर भी बीतना मुश्किल हो जाता है। दिन में कम से कम आठ-दस दफा की आदत है टोकने की। पति दिन में दो दफे शराब पीते हैं। वह दस दफे टोकती है, वह भी शराब है। सब आदतें शराब हैं। और जब तुम पुनरुक्ति करते हो, तुम उनको मजबूत करते हो।

कर्म का सिद्धांत सिर्फ इतना ही कहता है कि जो तुम करते हो, उनको करने की संभावना बढ़ जाती है। जो तुम नहीं करते, उसको न करने की संभावना बढ़ जाती है। ठहरे हो धर्मशाला में और व्यवहार ऐसा कर रहे हो जैसे घर में हो। यह गलत आदत बना रहे हो। धर्मशाला तो छूटेगी, वह तुम्हारी है ही नहीं। लेकिन जो तुमने धर्मशाला में किया, वह साथ चला जाएगा, वह तुम्हारा है। कर्म के अतिरिक्त तुम्हारे साथ कुछ भी नहीं जाता है। इसलिए सोच-समझ कर करना।

हीरा तुमने उठा लिया किसीका। वह हीरा तो पड़ा रह जाएगा जब तुम मरोगे। लेकिन तुमने उठाया था, वह कृत्य तुम्हारे साथ चला जाएगा। तुम जो कर रहे हो, वही तुम्हारी संपदा बन जाएगी। अगर तुम गलत कर रहे हो, तो तुम अपने भविष्य को गलत दिशा में मोड़ने के उपाय कर रहे हो। अगर तुम ठीक कर रहे हो, तो ठीक दिशा में मोड़ने के उपाय कर रहे हो।

और अगर तुम सजग होकर जी रहे हो, तो तुम मुक्त होने का उपाय कर रहे हो। क्योंकि जितना आदमी सजग होता है, उतनी आदत टूटती है। तब वह आदत से नहीं जीता। तब वह होश से जीता है। तब वह प्रत्येक परिस्थिति में होश से निर्णय लेता है, अतीत की आदत से नहीं। किसीने गाली दी; तुम्हारी पुरानी आदत है कि जब भी कोई गाली दे, बस खड़े हो जाओ झगड़ने को।

एक हवाई जहाज में पाईलट और एक यात्री का झगड़ा हो गया। गाली-गलौज की स्थिति आ गयी। पाईलट बड़े बेहूदे शब्द बोलने लगा। वह यात्री भी बोलने लगा। दूसरे यात्री ने कहा कि भाइयो, यह भी तो ख्याल रखो कि सभ्य महिलाएँ बैठी हैं। उस यात्री ने कहा कि सभ्य महिलाएँ भला नीचे उतर जाएँ,

मगर यह लड़ाई हो कर रहेगी। उड़ते हवाई जहाज में, आकाश में, वह कह रहा है कि सभ्य महिलाएँ भला ही नीचे उतर जाएँ....

वह अपने होश में नहीं है। वह क्या कह रहा है उसे कुछ पता नहीं है। लेकिन लड़ाई होकर रहेगी। वह अपने बस में नहीं है। कोई भी अपने बस में नहीं है। जो बेहोश है, वह अपने बस में नहीं है। तुम जो भी कर रहे हो, किये जा रहे हो। तुम्हें साफ नहीं है तुम क्या कर रहे हो, क्यों कर रहे हो।

थोड़ा जगो। पहला जागरण इस बात का कि यह संसार इतना मूल्यवान ही नहीं है कि उससे तुम इतने परेशान हो। कोई आदमी तुम्हें गाली देता है; न तो वह आदमी इतना मूल्यवान है, न गाली इतनी मूल्यवान है कि तुम परेशान होओ। न कि तुम्हारा अहंकार इतना मूल्यवान है कि उसके लिए तुम उपद्रव खड़ा करो। यह धर्मशाला है। किसी का पैर तुम्हारे पैर पर पड़ गया, परेशान मत हो।

मुल्ला नसरुद्दीन एक सिनेमा से बाहर आ रहा था इन्टरवॅल में। एक आदमी के पैर पर उसका पैर पड़ा। वह आदमी तिलमिला गया लेकिन उसने सोचा, कि अँधेरा है, अभी-अभी प्रकाश हुआ है, एकदम से लोगों को दिखायी भी नहीं पड़ता अँधेरे में रहने के बाद, हो गयी होगी भूल। फिर लौट कर नसरुद्दीन आया। उस आदमी के पास आकर पूछा कि क्या भाई साहब, आपके पैर पर मेरा पैर पड़ गया था? उस आदमी ने सोचा कि यह क्षमा माँगने आया है। उसने कहा, कि हाँ। मुल्ला ने पीछे लौट कर अपनी पत्नी से कहा, 'आ जाओ, यही अपनी लाइन है।' वे लाइन बनाने के लिए पैर पर पैर रख गये थे!

तो जो आदमी तुम्हें गाली दे रहा है, उसके अपने प्रयोजन होंगे। तुम्हें उससे परेशान हो जाने की कोई जरूरत नहीं है। भीड़-भड़क्का है यहाँ। काफी लोग हैं। सब अपना-अपना खोज रहे हैं। किसीसे तुम्हें न प्रयोजन है, न तुम्हें किसीसे प्रयोजन है। किसीका किसीसे कुछ लेना-देना नहीं है। यहाँ हर आदमी अपना खेल खेल रहा है। और थोड़े धक्के-मुक्के होंगे ही। क्योंकि इतनी भीड़ है। रास्ता है, इतना ट्रैफिक है।

अगर तुम थोड़ा देख पाओ और तुम इस बोध को रख सको, क्रोध गिरेगा, घृणा गिरेगी। ईर्ष्या गिरेगी, जलन..और उससे पैदा होनेवाले कृत्य विदा हो जाएँगे। जिस दिन तुम्हारे घृणा से संबंधित कृत्य गिर जाएँगे, उसी दिन तुम्हें लोगों पर दया आने लगेगी। क्योंकि हर आदमी मूर्च्छित है। कल क्रोध आता था, अब दया आएगी। और तुम्हें लगेगा हर आदमी भटका हुआ है। लोग अँधेरे में जी रहे हैं। किसी का कोई कसूर नहीं है। लोग सोये हुए हैं। सोया हुआ आदमी बड़बड़ा रहा हो, गाली बक रहा हो, तो भी तुम कुछ न कहोगे। 'नींद में है,' तुम कहोगे। लेकिन यही हालत सब की है।

एक शराबी गाली दे रहा हो, तो तुम कहते हो शराबी है, पी गया है। लेकिन यही हालत सब की है। जन्मों-जन्मों के कर्मों की शराब है। गहरी नींद है। तुम्हें दया आएगी। अगर तुम थोड़े भी जगोगे, तो तुम्हें दया आएगी कि चारों तरफ इतने लोग कितनी परेशानी उठा रहे हैं। धर्मशाला को घर समझे हुए हैं। अदालतों में मुकदमे लड़ रहे हैं, कि धर्मशाला किसकी है।

तुम्हें दया आनी शुरू होगी। और तुम्हारे दया के साथ, तुम्हारे कृत्यों का रूप बदलेगा। जहाँ कृत्य पाप थे, वहाँ पुण्य होने लगेंगे। जहाँ तुम दूसरे को नुकसान पहुँचाने को तत्पर हो जाते थे, वहाँ दूसरे को सहारा देने को तत्पर हो जाओगे। जो तुम्हें गाली देगा उसको भी सहारा देने की दया तुम्हारे भीतर होगी।

इसलिए तो नानक कहते हैं, 'ज्ञान और दया'। ज्ञान यानी जागरण, और दया यानी तुम्हारे कृत्यों में जागरण के कारण हुआ परिवर्तन। अज्ञान भीतर, हिंसा बाहर। उन दोनों का संघ है। ज्ञान भीतर, करुणा बाहर, उन दोनों का संघ है।

'कर्म के अनुसार विचार होगा।'

अब यह बहुत मजे की बात है कि तुम अच्छी-अच्छी बातें सोचते हो और बुरी-बुरी बातें करते हो। करते तुम बुरा हो, सोचते बड़ा अच्छा। लेकिन तुम्हारे सोचने का कोई विचार होने वाला नहीं है। तुमने क्या सोचा, इससे कुछ हिसाब नहीं है। तुमने क्या किया, वही तुम्हारा प्रमाण है। कृत्य तुम्हारा प्रमाण है, तुम्हारा विचार नहीं। विचार पापी भी बड़े अच्छे-अच्छे करते हैं। कारागृहों में जाकर अपराधियों को देखो, वे भी बड़े ऊँचे विचार करते हैं। ऊँचा विचार करना तो एक तरकीब है। बुरा काम करने की तरकीब है ऊँचा विचार करना।

इसे थोड़ा समझना। यह थोड़ा बारीक है। जब आदमी बुरा काम करता है तो उसके भीतर पछतावा होता है। जब आदमी किसी पर कठोर हो जाता है, क्रोध करता है, अमान कर देता है, तो भीतर पछतावा होता है। भीतर लगता है, यह उचित नहीं हुआ। तो भीतर अच्छे-अच्छे विचार करता है, करुणा के, दया के, कि दुबारा मौका आने पर दया करूँगा। पछतावा है कि जो किया, वह बुरा किया। इस भाँति जो बैलन्स खो गया है भीतर, जो संतुलन खो गया है बुरा कर के, उस पलड़े को वह भारी कर देता है विचार के, शुभ धारणाओं के कारण। तुम अच्छा-अच्छा सोचते हो ताकि तुम्हारी नजर में जो तुमने बुरा किया है वह ढँक जाए। बुरे आदमी हमेशा अच्छा विचार करते हैं।

और इससे उलटा भी सही है। अच्छे कृत्य करने वाले लोग अक्सर बुरा विचार करते हैं। और अगर तुम जाग जाओगे तो तुम पाओगे कि ये दोनों

स्थितियाँ ही भ्रांत हैं। चोर अक्सर सोचता है कि दान करूँ। इसलिए तुम चोरों को दान करते पाओगे भी। चोर अक्सर सोचता है कि मंदिर बना दूँ, कि गरीबों को भोजन करवा दें, कि सर्दी आ गयी कंबल बँटवा दूँ। और तुम चोरों को कंबल बँटवाते पाओगे भी। क्योंकि चोरी का दंश ऊपर होता है। लाख रुपये की चोरी की तो हजार रुपये के दान का मन तो होता ही है। उससे आदमी सोचता है कि संतुलन हो जाएगा। पापी गंगास्नान करने जाता है। वहाँ थोड़ी दान-दक्षिणा करता है, सोचता है, सब निपट गया। घर हलका होकर लौटता है। हलका होकर लेकिन तुम करोगे क्या? करोगे तुम वही, जो तुमने कल किया था। अब तुम हलके मन से करोगे। यह और खतरा है। अब तुम निश्चित भाव से करोगे।

एक महिला एक डाक्टर के पास जा रही थी। एक मनस्विद के पास। उसके हाथ से बर्तन छूट जाने की उसे बीमारी थी। बर्तन टूट जाते, गिर जाते और उससे वह ज्यादा नर्वस, बहुत बेचैन, व्याकुल, कँप जाती थी। बड़ी दुःखी होती थी। छः महीने की मनोचिकित्सा के बाद उसके मनोवैज्ञानिक ने पूछा कि अब तो सब ठीक है? अब घबड़ाहट तो नहीं होती? बर्तन तो नहीं गिरते? उस स्त्री ने कहा कि बर्तन तो अभी भी गिरते हैं लेकिन बाकी सब ठीक है। चिकित्सक ने कहा, कि फिर बाकी सब ठीक का क्या अर्थ है? उसने कहा, कि अब आप के समझाने से घबड़ाहट बिलकुल नहीं होती।

जो आदमी थोड़ा पुण्य कर लेता है, पुण्य के कारण अब घबड़ाहट बिलकुल नहीं होती। और सोचता है कि पुण्य कर के निपट गये। पाप तो खत्म हो गया, अब फिर किया जा सकता है। और एक तरकीब भी हाथ में लग गयी; जब भी पाप करो, पुण्य कर लेना।

इसलिए तो यह मुल्क इतना पापी हुआ है। क्योंकि इस मुल्क को पुण्य की तरकीब हाथ में लग गयी। आज भारत जैसा पापी मुल्क खोजना कठिन है। और उसका कारण यह है, कि गंगा यहाँ बहती है। गये, स्नान कर के आ गये। पाप किया, मंदिर में जाकर प्रसाद चढ़ा आए। पाप किया, हनुमान जी को एक नारियल फोड़ दिया। हनुमान जी का कोई संबंध भी नहीं है, कोई उनका कसूर भी नहीं है। तुम्हारे पाप में कुछ लेना-देना नहीं है और तुम उनको भी भागीदार बना रहे हो। इधर भूल की, उधर जाकर सुधार आए। फिर भूल करने को तैयार होकर वापिस आ गये। जब भी तुम बुरा करते हो, तब तुम भले विचार करते हो ताकि भूल का जो तुम्हारे भीतर दंश, काँटा लग गया, वह निकल जाए। और तुम्हारी जो प्रतिमा भीतर अच्छे आदमी की खंडित हो गयी, वह फिर अखंड हो जाए।

लेकिन तुम्हारे विचारों का कोई हिसाब होने वाला नहीं है। तुम क्या करते हो, वही तुम बनते हो। तुम क्या सोचते हो, इससे कोई संबंध नहीं है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जब भी कोई शुभ कृत्य करना हो तो तुम टालते हो, पोसपोन करते हो। तुम कहते हो कल करेंगे, जल्दी क्या है? और जब भी कोई बुरा कृत्य करना होता है तो तुम कभी नहीं कहते कि कल करेंगे। तुम कहते हो अभी हो जाए, इसी वक्त। जब तुम्हें किसी की हत्या करनी होती है, तब तुम उसी वक्त करते हो। क्यों? क्योंकि तुम भी भलीभाँति जानते हो, जो टाला, वह सदा के लिए टल जाएगा, वह कभी नहीं होगा। क्रोध करना हो तो उसी वक्त करते हो। तुमने कोई आदमी देखा जो कहे कि अच्छा भाई, अब हम जरा काम में हैं, कल आकर क्रोध करेंगे। तुमने गाली दी, वह हजार काम छोड़ कर देता है। पत्नी मर रही हो, वह दवा लेने जा रहा था। वह कहता है मर जाए कल की मरने वाली आज, लेकिन पहले यह निपटारा करना है। क्योंकि तुम भी भलीभाँति जानते हो कि तुमने टाला कि सदा के लिए टल जाएगा। फिर कभी न कर पाओगे।

गुरजिएफ का पिता मरा और उसने उससे कहा कि सिर्फ एक बात तू ख्याल रखना, कि जब भी क्रोध करना हो चौबीस घंटे रुक कर करना। कोई गाली दे, उससे कह आना, कि भई चौबीस घंटे बाद आकर कहूँगा उत्तर। क्योंकि क्या करूँ, बाप मरते वक्त यह वचन ले गया है। नौ साल का था गुरजिएफ। कुछ समझता भी न था। वचन दे दिया।

गुरजिएफ ने लिखा है बाद में, कि मेरी पूरी जिंदगी उस वचन के कारण बदल गयी। क्योंकि चौबीस घंटे में कहीं किसीने क्रोध किया है? चौबीस घंटे में तो मूर्खता समझ में आ जाती है कि यह बात ही फिजूल है। चौबीस घंटे में निन्यानबे मौकों पर तो यह भी समझ में आता है कि उस आदमी ने जो कहा था, वह ठीक ही कहा है। वह गाली नहीं है, मेरा वर्णन है। अगर उसने कहा, 'चोर', तो चौबीस घंटे में खुद ही समझ में आता है कि बात तो ठीक ही कह रहा है कि मैं चोर हूँ। उसने कहा, 'बेईमान'। चौबीस घंटे में खुद ही समझ में आ जाता है कि बात तो ठीक ही है, हूँ तो बेईमान। यह तो वर्णन हुआ, गाली कहाँ हुई!

तो गुरजिएफ बहुत दफा जा कर तो धन्यवाद दे आया, कि जो कहा था बिलकुल ठीक कहा था। क्रोध का तो कोई सवाल ही नहीं है। तुम्हारी बड़ी कृपा कि तुमने बताया। जो मुझे नहीं दिखता, तुमने समझाया। बीमारी जो बता दे वह चिकित्सक है। दुश्मन थोड़ी है। निदान कर लिया। डाइग्नोसिस हो गयी।

या चौबीस घंटे बाद जाकर वह कह आता कि भाई, मैंने बहुत सोचा लेकिन तुम्हारी बात बिलकुल ही गलत मालूम पड़ती है, मुझ पर लागू नहीं होती।

और जब लागू ही नहीं होती तो हम किस लिए क्रोध करें? हम से उसका कुछ लेना-देना नहीं, तुम किसी और के संबंध में कह रहे हो। इसकी कोई संगति ही नहीं है। या तो संगति पायी, तब धन्यवाद दे आता। या जब असंगति पायी तो झूठ के लिए कोई क्रोधित होता है?

तुमने कभी ख्याल किया? तुम जब भी क्रोधित होते हो, तो कोई सच बात कह रहा होता है, तभी क्रोधित होते हो। तुम 'चोर' हो, और कोई कह देता है 'चोर'। तुम अगर चोर नहीं हो, तो कोई कितना ही चोर कहे, क्रोध पैदा नहीं होता। क्योंकि क्या क्रोध करना! वह आदमी बात ही झूठ कह रहा है। वह किसी और के संबंध में कह रहा होगा। उससे मेरा कोई लेना-देना नहीं। उसकी चोट ही नहीं पड़ती।

लेकिन तुम छिपाये हो, कि तुम चोर हो। तुम सब तरफ साधू का वेश बनाए मंदिर जाते थे, माला जपते थे। तुम्हारा वेश धोखे का था। और इस आदमी ने असली बात पकड़ ली, उसने कह दिया 'चोर'; चोट लगती है। ध्यान रखना, सत्य से चोट लगती है; झूठ से कैसे चोट लगेगी? झूठ की कोई ताकत है? झूठ में कोई बल है? लेकिन हम बुराई को उसी वक्त करते हैं। और भलाई को हम कहते हैं, कल आना।

एक मारवाड़ी गर्मी के दिनों में अपनी खस की टट्टी के पीछे बैठा हुआ हिसाब-किताब कर रहा था। एक भिखारी माँगने आया। वह कहता है, 'मिल जाएँ चार पैसे।' उस मारवाड़ी ने कहा कि जाओ, पैसे-वैसे यहाँ नहीं हैं। उसने कहा, 'तो दो रोटी मिल जाएँ।' उस मारवाड़ी ने कहा, 'भागो यहाँ से, यहाँ कोई रोटी-वोटी नहीं है' उसने कहा, 'कुछ कपड़ा-लत्ता?' जैसे कि भिखारी अड़ियल होते हैं। लेकिन मारवाड़ियों से कोई जीता है? और उस मारवाड़ी ने कहा कि यहाँ कुछ नहीं है, आगे बढ़ो। उस भिखारी ने कहा, 'फिर भीतर बैठे क्या कर रहे हो? चलो हमारे साथ ही हो जाओ। जो भी मिलेगा आधा-आधा कर लेंगे।'

कोई दो पैसे भी माँगे तो तुम टालते हो। कोई दो रोटी भी माँगने जाए तो तुम प्राणपण से लग जाते हो, कि कैसे हटे। अच्छा करने की हिम्मत ही नहीं होती। और बुरा करने को तुम बिलकुल ही कमर बाँध कर तैयार खड़े हो। जैसे कि प्रतीक्षा ही कर रहे थे, कि 'आओ'।

बुरे को स्थगित करना और भले को स्थगित मत करना, तुम्हारा जीवन बदल जाएगा। बुरे को कहना, 'कल करेंगे।' भले को अभी कर लेना, क्योंकि कल का क्या भरोसा है? अगर तुम्हारे जीवन का यह सूत्र हो जाए कि बुरे को स्थगित करना, बुरा होगा ही नहीं। भले को तत्क्षण करना, बहुत भला होगा। अभी भी तुम वही कर रहे हो, उलटे ढंग से। अभी तुम बुरा करते हो,

भले को टालते हो। भला फिर कभी नहीं होता, बुरा रोज होता है। तुम्हारे सारे कृत्यों की श्रृंखला काँटों की हो जाती है। उसमें फूल फिर आते नहीं।

नानक कहते हैं, 'लेकिन विचार होगा कर्म का। वह परमात्मा सच्चा है, और उसका दरबार भी सच्चा है।'

और ध्यान रखना, कि तुम सच्चे हुए तो ही उसके दरबार में प्रवेश पा सकोगे। तुम किसे धोखा दे रहे हो? तुम सारे संसार को धोखा दे सकते हो, लेकिन क्या तुम स्वयं को धोखा दे सकते हो? तुम तो जानते ही हो कि तुम क्या हो! सारी दुनिया तुम्हें पूजे, कहे कि तुम साधु हो, लेकिन तुम तो भीतर जानते ही हो कि तुम कौन हो? उस भीतर छिपे को कैसे धोखा दोगे? वह जो तुम्हारा भीतर छिपा हुआ अस्तित्व है, वही तो परमात्मा है। परमात्मा के सामने तुम कैसे वंचना करोगे? वहाँ तो तुम नग्न हो। वहाँ तो सब खुला है। वहाँ तो कुछ ढँका नहीं हो सकता। उस दरबार में तो सच्चे ही तुम हो सकोगे तो ही प्रवेश पा सकोगे।

लोग पूछते हैं, 'परमात्मा कैसे पाएँ?' लोगों को पूछना चाहिए, सच्चे कैसे हों? परमात्मा को पाने की बात ही छोड़ देनी चाहिए। जैसे लोग पूछते हैं, 'परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता।' उन्हें पूछना चाहिए, 'मुझे परमात्मा क्यों दिखायी नहीं पड़ता?'

झूठी आँखें उसे नहीं देख सकतीं। सत्य को देखना हो तो सच्ची आँखें चाहिए। सत्य को अनुभव करना हो तो सच्चा हृदय चाहिए। सत्य को पहचानना हो तो तुम्हें भी सच्चा होना पड़े। क्योंकि समान ही समान को पहचान सकता है। तुम अभी जहाँ खड़े हो, बिल्कुल झूठ हो।

झूठ का मतलब इतना नहीं है कि तुम जो बोलते हो वह झूठ है। तुम्हारा होना ही झूठ है। तुम्हारे चेहरे झूठ हैं। तुम्हारा व्यवहार झूठ है। तुम कहते कुछ हो, तुम सोचते कुछ हो, तुम करते कुछ हो। तुम्हारी बात का, तुम्हारे होने का कोई भी भरोसा नहीं है। तुम्हें खुद ही भरोसा नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो। क्या तुम यही करना चाहते हो? तुम क्या कर रहे हो? क्या तुम यही सोचते हो जो तुम कह रहे हो?

लेकिन तुम डरोगे बहुत। क्योंकि अगर तुम सच्चे होने लगे तो धर्मशाला में जो तुमने घर बनाया है वह गिरने लगेगा। क्योंकि इस धर्मशाला में, धर्मशाला का अर्थ है वह पड़ाव है, घर नहीं है। बड़े से बड़ा झूठ तो तुमने यह खड़ा किया है, कि तुमने घर बना लिया है। अब तुम कागज की नाव में बैठे हो और यात्रा कर रहे हो। तुम यात्रा करोगे कैसे? किनारे पर ही बैठे रहोगे। नाव को पानी में उतारना ही खतरनाक है। क्योंकि कागज की नाव है, उतरी कि डूबी। उतरी कि गली।

लोग मेरे पास आते हैं, और वे कहते हैं कि अगर हम सच्चे हो जाएँ तो जीवन बहुत मुश्किल हो जाएगा। हो ही जाएगा। क्योंकि झूठ से तुमने जीवन को बनाया है, इसलिए। शुरू में तो बहुत मुश्किल होगा। न बदलो तो भी मुश्किल है। कौन सा सुख तुमने जाना है? कौन से आनंद का फूल तुम्हारे जीवन में खिला है? कौन सी सुगंध आयी है? क्या है कि जिसके कारण तुम कह सको कि जीना सार्थक हुआ? कुछ भी तो दिखायी नहीं पड़ता।

कठिन तो अभी भी है। लेकिन इस कठिनाई के तुम आदी हो गये हो। जब तुम सच में बदलने की कोशिश करोगे तो आदतें टूटेंगी। जिस आदमी से तुम्हें कुछ प्रेम नहीं है, उससे तुम कहते हो, 'आप आए, बड़ा सौभाग्य है।' और भीतर सोचते हो कि इस दुष्ट का चेहरा कैसे दिखायी पड़ गया सुबह। आज का दिन खराब हो गया।

अगर वह आदमी भी थोड़ा समझदार हो, थोड़ा सजग हो तो वह तुम्हारे झूठ को देख लेगा। क्योंकि तुम कहो कुछ भी, तुम्हारी आँखें खबर देंगी। तुम्हारा चेहरा, तुम्हारा हाव-भाव प्रसन्नता प्रकट नहीं करेगा। तुम्हारे शब्द और होंगे, तुम्हारे ओंठ और होंगे। उन दोनों में कोई संगति न होगी। क्योंकि जब कोई आदमी सच में ही प्रसन्न होता है, तो प्रसन्नता की बात कहता थोड़ी है! उसका रोआँ-रोआँ गद्‌गद्‌ हो उठता है। जब कोई आदमी सच ही प्रसन्न होता है तो उसको तुम पहचान सकते हो। लेकिन दूसरा भी सोया हुआ है। वह भी सोचता है कि तुम ठीक कह रहे हो। इसलिए तो खुशामद दुनिया में सफल होती है। सब झूठी है। और सुननेवाला भी अगर गौर से सुने तो समझेगा कि तुम बिल्कुल गलत बात कह रहे हो। यह है ही नहीं।

इंग्लैंड में कवि हुआ ईट्स। उसे नोबल-प्राइज मिली। उसका स्वागत किया गया। वह बहुत सच्चा आदमी था। बहुत सरल आदमी था। उसके काव्य में भी वैसी सच्चाई है। जब उसका स्वागत किया गया तो स्वागत में तो जैसा होता है, लोग स्तुति करते हैं। जो सदा गाली देते थे, वे भी वहाँ खड़े होकर स्तुति करते हैं। वह बड़ा हैरान हुआ और उसे बड़ा संकोच होने लगा कि ये सब झूठी बातें मेरे संबंध में कही जा रही हैं। वह अपनी कुर्सी में सिकुड़ता गया—दो घंटे!

जब स्तुति खत्म हुई तो लोगों ने देखा कि वह कुर्सी में बिलकुल ऐसा दबा बैठा है, कि जैसे अब उसके बर्दाश्त के बाहर है। उसे हिलाया सभापति ने, और उससे कहा, 'आप सो तो नहीं गये हैं?' उसने कहा कि मैं सो नहीं गया हूँ लेकिन अगर मुझे पता होता तो मैं न आता। कुछ समझा नहीं सभापति। उसने खड़े होकर घोषणा की, कि पच्चीस हजार पौंड हमने पूरे मित्रों ने इकट्ठे किए हैं तुम्हारी भेंट के लिए। सोचा सभी ने कि वह बड़ा प्रसन्न होगा। उसने खड़े होकर

कहा कि अगर मुझे पता होता कि सिर्फ पच्चीस हजार पौंड के लिए इतना झूठ मुझे सुनना पड़ता तो मैं आता ही नहीं। सिर्फ पच्चीस हजार पौंड के लिए इतना झूठ! महँगा सौदा रहा। दो घंटे!

अगर तुम थोड़े सजग हो तो तुम्हारी कोई खुशामद न कर सकेगा। क्योंकि तुम पाओगे कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। लेकिन तुम सजग नहीं हो, लोग झूठ बोल रहे हैं चारों तरफ, तुम्हारे ख्याल में नहीं आता। तुम खुद झूठ बोल रहे हो, वह तक तुम्हारे ख्याल में नहीं आता कि तुम क्या कह रहे हो? और तब तुम फँसते हो बड़ी झंझटों में। किसी स्त्री से कह बैठते हो कि तू बड़ी सुंदर है। तुझ से मुझे बड़ा प्रेम है। फिर तुम उलझन में पड़े। तुम शायद झूठ ही कह रहे थे। अब यह सिलसिला शुरू हुआ। कल तुम पछताओगे।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा उससे एक दिन सुबह चाय पीते वक्त, कि तुम ही मेरे पीछे पड़े थे। मैं तुम्हारे पीछे कभी नहीं पड़ी थी। और अब तुम्हारे ढंग! अगर यही व्यवहार करना था तो मेरे पीछे क्यों पड़े थे? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि तू बिल्कुल ठीक कह रही है। कभी किसी चूहादानी को चूहे को पकड़ने के लिए दौड़ते देखा है? चूहा खुद ही फँसता है। यह बात सच है, तेरा कहना कि हम खुद ही तेरे पीछे पड़े थे।

स्त्रियाँ होशियार हैं इस मामले में। इसलिए कोई पति कभी उनको यह नहीं कह सकता कि तू मेरे पीछे पड़ी थी। कोई स्त्री ऐसी भूल नहीं करती। क्योंकि यह झंझट आज नहीं कल तो आने ही वाली है। हमेशा पुरुष ही फँसता है। क्योंकि स्त्री चुपचाप देखती है। वह सुनती है, वह राजी होती है। सिर हिलाती है। बाकी कभी इनिशिएटिव नहीं लेती। पहल नहीं करती। वह नसरुद्दीन ठीक कहता है कि कोई पिंजड़ा चूहे के पीछे नहीं भागता। स्त्रियाँ ज्यादा होशियार हैं। वे अपने आप ही...

जब नसरुद्दीन मरने लगा तो उसके बेटे ने पूछा कि कोई सूत्र जीवन के अनुभव के? तो उसने कहा, 'तीन बातें सीखी हैं पूरे जीवन में। एक यह, कि अगर लोग थोड़ा धैर्य रखें तो फल अपने आप ही पक जाते हैं और गिरते हैं। उनको तोड़ने के लिए झाड़ पर चढ़ने की कोई जरूरत नहीं। और दूसरी बात, कि लोग अगर धैर्य रखें तो लोग अपने आप ही मर जाते हैं। उनको मारने के लिए युद्ध वगैरह करने की कोई जरूरत नहीं। और तीसरी बात, अगर लोग सच में धैर्य रखें तो स्त्रियाँ खुद पुरुषों के पीछे भागेंगी। उनके पीछे भागने की कोई जरूरत नहीं है।' उसने कहा, ये तीन चीजें मैंने जीवन का सार अनुभव की हैं। लेकिन कोई सार से तो चलता नहीं। न कोई अनुभव से चलता है।

क्या तुम बोलते हो? क्या तुम करते हो? होशपूर्वक करोगे तो तुम पाओगे निन्यानबे तो गिर गया। निन्यानबे प्रतिशत तो गिर गया। एक प्रतिशत बचेगा। वह एक प्रतिशत धर्मशाला के लिए काफी है। वह निन्यानबे प्रतिशत से घर बना रहे थे तुम। वह जो एक प्रतिशत बचेगा, वही संन्यासी का जीवन है। जो अनिवार्य है वही बचेगा। जो अपरिहार्य है वही तुम करोगे। जो अनावश्यक है वह कट जाएगा। अनावश्यक ही तो गृहस्थ का उपद्रव है। कितनी अनावश्यक चीजें तुम घर में खरीद ले आए हो।

एक घर में मैं मेहमान हुआ, तो वहाँ इतनी चीजें थीं कि उस घर में चलना-फिरना तक मुश्किल था। वह अमीर हैं लेकिन वे इस भाँति रह रहे हैं कि झोंपड़ों में भी ज्यादा जगह होती है। जो मिलता है बाजार से वह खरीदकर चला आता है। जो भी चीज अखबार में एडवरटाइज होती है, वह उनके घर होनी ही चाहिए। घर भर गया है चीजों से। वहाँ रहना ही मुश्किल है। वहाँ चलना मुश्किल है। मैंने उनसे कहा, कि यह अजायबघर है कि घर? यहाँ तुम रहते हो, कि यह कोई प्रदर्शनी है? इनमें से सभी चीजें करीब-करीब बेकार हैं। इनसे तुम छुटकारा पाओ। घर में जगह होनी चाहिए, जगह का नाम घर है। यहाँ तो रहना ही मुश्किल है। थोड़े दिन में तुम को बाहर रहना पड़ेगा, अगर यही सिलसिला रहा।

तुम घर में भी कबाड़ इकट्ठा करते हो। चीजें व्यर्थ हो जाती हैं तो भी रखे रहते हैं लोग, कि शायद कभी काम पड़ें। खराब हो गयी चीजों को भी रखे रहते हैं कि शायद कभी काम पड़े।

एस्कीमोज एक नियम मानते हैं, और उनका नियम अगर सारी दुनिया माने तो दुनिया में बड़ी शांति और बड़ा आनंद हो जाए। हर वर्ष, वर्ष के प्रथम दिन वे अपने घर की सब चीजें बाँट देते हैं। फिर से अ, ब, स, से शुरू करते हैं। तो एस्कीमो का छोटा सा घर जितना साफ-सुथरा होता है, दुनिया में किसी का नहीं होता। ऐसे भी उसके पास ज्यादा नहीं होता; लेकिन पहली तारीख को हर वर्ष की सब बाँट देना है। फिर सब चीजें शुरू करनी हैं। एक ताजगी! और व्यर्थ इकट्ठी ही नहीं करता वह, क्योंकि पता है कि एक तारीख को सब बाँट देना है। तुम्हीं सोचो अगर हर साल की एक तारीख को बाँट देना हो, तो कितनी चीजें तुम लाए हो जो कभी न लाए होते।

तुम व्यर्थ की चीजें ही घर में इकट्ठी नहीं करते, उसी तरह तुम व्यर्थ के विचार भी इकट्ठे करते हो। कोई आदमी तुम्हें सुना रहा है कुछ भी, तुम सुनते जाते हो। अखबार में तुम कुछ भी पढ़ते जाते हो। तुम यह भी नहीं पूछते कि ये विचार इकट्ठे करने हैं? तुमने कभी किसी आदमी से कहा, कि भाई मुझे इन

बातों की कोई भी जरूरत नहीं ? कोई आदमी किसीकी निंदा कर रहा है, अफवाह सुना रहा है, तुमने बीच में टोका कि इसकी मुझे कोई भी जरूरत नहीं, क्यों कचरा मेरी खोपड़ी में डाल रहे हो ? डाल देना आसान, निकाल देना मुश्किल है। ध्यान करनेवालों से पूछो ! जब वे निकालने बैठते हैं तब वह निकलता नहीं। वह जड़ें जमा लिए हैं। और इकट्ठा करते वक्त होश नहीं रखा। कृत्य भी तुम गलत करते हो, व्यर्थ का सामान इट्ठा करते हो, व्यर्थ के विचार इकट्ठे कर लेते हो। तुम धीरे-धीरे एक कबाड़खाना हो जाते हो। कबाड़ी की दुकान में और तुम्हारे जीवन में कोई अंतर नहीं है। थोड़ा सजग होओ।

नानक कहते हैं कि तुम्हारे एक-एक कृत्य से तुम्हारा जीवन निर्मित हो रहा है। तो एक-एक कृत्य को बहुत विचार के करो। उसके दरबार में सच्चा ही पहुँच पाएगा। उसमें प्रामाणिक पंच शोभा पाते हैं। जो श्रेष्ठ हैं, जो प्रामाणिक हैं केवल वे ही पहुँच पाते हैं। 'उसकी कृपादृष्टि से उन्हें प्रतीक की प्राप्ति होती है।'

और जैसे-जैसे तुम्हारे जीवन में सच्चाई आएगी, तुम्हें उसकी कृपादृष्टि के प्रतीक मिलने शुरू हो जाएँगे। तुम जगह-जगह पाओगे उसका इशारा। अभी तुम्हें उसका कोई इशारा दिखायी नहीं पड़ता। अभी तुम्हें उसकी कोई पहचान ही नहीं है। लेकिन तुम इधर सच्चे होने शुरू हुए और तुम पाओगे भीतर तुम्हारे अंतःकरण में उसके आदेश आने शुरू हो गये। इधर तुम सच्चे हुए, तुम पाओगे रत्ती-रत्ती, पत्ती-पत्ती में उसकी पहचान शुरू हो गयी।

वह तुम्हें चलाना चाहता है। वह तुम्हें खबर देना चाहता है कि क्या करो, क्या न करो। लेकिन उस खबर को सुनने योग्य तुम्हारे भीतर खालीपन नहीं है। तुम्हारा अपना शोरगुल इतना ज्यादा है, कि उसकी आवाज सुनायी नहीं पड़ती। रोज तुम्हें प्रतीक मिलेंगे उसकी कृपादृष्टि के।

अभी तुम्हें कोई प्रतीक नहीं मिलता। अभी तुम अपने ही सहारे जी रहे हो; और अपना सहारा भी कोई सहारा है ? जैसे ही तुम सच्चे होने शुरू होओगे, उसके सहारे जीना शुरू हो जाएगा। तब जीवन की एक नयी गति, और एक नया आयाम उपलब्ध होता है।

'वहाँ ही कच्चे और पक्के का निर्णय होता है।'

नानक कहते हैं वहाँ पहुँचने पर ही लोगों की परख होती है।

रातो रुति थिति वार। पवन पानी अगनी पाताल ॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल ।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग । तिन के नाम अनेक अनंत ॥
करमी करमी होइ वीचारु ।

सचा आप सचा दरबारु ।
तिथै सोहनि पंच परवाणु । नदरी करमि पवै नीसाणु ॥
कच पकाई ओथै पाइ । नानक गइआ जापै जाइ ॥'

सिर्फ परमात्मा के सामने ही परख होती है कौन कच्चा है, कौन पक्का है। क्या अर्थ है कच्चे और पक्के का ? परमात्मा के सामने जो गल जाए वह कच्चा। उसके सामने जो बच जाए वह पक्का। तुम इसे कसौटी बना लो, कि तुम जो भी करो यह सोच कर करना कि क्या इस कृत्य को मैं परमात्मा के सामने प्रकट कर सकूँगा ? या कि डरूँगा, या कि छिपाना चाहूँगा ? या कि चाहूँगा कि परमात्मा इसे न देख ले ? अगर तुम डरो, छिपाना चाहो, मत करना। क्योंकि उसके सामने कुछ भी छिपाया न जा सकेगा। वह तुम्हें आर-पार देख लेगा। उस दर्पण से कुछ भी छिप नहीं सकता।

अगर तुम इसे सँभाल लो अपने मन में, कि जो भी करो, जो भी सोचो, जो भी बोलो, एक कसौटी पर पहले कस लो। जैसे स्वर्णकार, सुनार खरीदता है सोना, तो पत्थर पास रखे रहता है। पहले कसता है। जब पत्थर कह देता है, ठीक, तभी आगे बढ़ता है। तुम इसको पत्थर बना लो कसने का, कि 'क्या इसे मैं परमात्मा के सामने प्रकट कर सकूँगा, जो भी मैं कर रहा हूँ ?' फिर निश्चित भाव से करो। अगर भीतर मन डरे, कँपे और कहे कि यह तो कैसे जाहिर कर सकोगे ? तो मत करना।

तुम पक्के होने लगोगे। कुम्हार घड़े पकाता है, कच्चे वर्षा में गल जाएँगे। पक्के जल को भर लेंगे। तुम बाजार जाते हो, दो पैसे का घड़ा खरीदते हो, तो ठोंक कर देखते हो कि कच्चा है या पक्का। क्योंकि पक्के की ध्वनि और है।

जैसे-जैसे तुम पकने लगोगे, वैसे तुम्हारे जीवन की ध्वनि बदलने लगेगी। तुम पाओगे अंतर-नाद अपने भीतर। और उसके इशारे और उसके प्रतीक तुम्हें मिलने लगेंगे। उसके इशारे हैं--तुम ज्यादा शांत होने लगोगे, तुम ज्यादा सुखी होने लगोगे, तुम ज्यादा आनंदित अपने को पाओगे। एक गहन संतोष की छाया तुम्हें सब तरफ से घेरे रहेगी। और तुम पाओगे एक अनुग्रह का भाव, एक अहोभाव—अकारण ! कुछ भी कारण न होगा और तुम पाओगे कि भीतर एक आनंद थिरक रहा है।

सहजोबाई ने कहा है—'बिन घन परत फुहार।' कोई बादल दिखायी नहीं पड़ता और वर्षा हो रही है। कोई कारण दिखायी नहीं पड़ता, अकारण तुम प्रफुल्लित हो। अकारण तुम्हारा रोआँ-रोआँ मुस्कुरा रहा है, आनंदित हो रहा है। कुछ मिल नहीं गया खजाना, लेकिन फिर भी हृदय धन्यवाद दे रहा है। ये प्रतीक हैं।

जैसे-जैसे तुम पक्के होने लगोगे, वैसे-वैसे तुममें वर्षा का जल भरने लगेगा। उसका आनंद तो बरस रहा है। वह फुहार तो हर वक्त पड़ रही है। लेकिन तुम कच्चे हो। उसी में तो गल जाते। तृप्ति तो नहीं पाते, उलटे गल जाते हो, उलटे मिट जाते हो। परमात्मा का आशीर्वाद तुम्हारे कच्चे होने के कारण अभिशाप हो जाता है। तुम पक्के हो जाओगे तो जिन्हें तुमने कल तक अभिशाप जाना था, तुम अचानक पाओगे, वे सभी आशीर्वाद हैं।

वहाँ पहुँचने पर ही लोगों की परख है। लेकिन उस समय तक प्रतीक्षा मत करो। क्योंकि तुम प्रतिक्षण बन रहे हो, निर्मित हो रहे हो। आज शुरू करो तो ही तुम उसके सामने प्रकट हो सकोगे। आज से तैयारी करो, ऐसे भी बहुत समय गँवाया है। ऐसे भी बहुत देर हो चुकी है। एक क्षण भी मत गँवाओ अब। परमात्मा को ध्यान में रख कर जीयो, क्योंकि वह घर है। और संसार धर्मशाला है।

• • •

नानक अंतु न अंतु

प्रवचन १८, दिनांक ८-१२-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : ३५

धरम खंड का एहो धरमु ।
गिआन खंड का आखहु करमु ॥
केते पवन पाणि वैसंतर केते कान महेस ।
केते बरमे घाड़ति घड़िअहि रूप रंग के वेस ॥
केतीआ करम भमी मेर केते केते धू उपदेस ।
केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस ॥
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस ।
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद ।
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद ॥
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु ॥

पउड़ी : ३६

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु ।
तिथै नाद विनोद कोड अनंदु ॥
सरम खंड की बाणी रूपु ।
तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥
ता कीआ गला कथीआ ना जाहि ।
जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि ।
तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि ॥

नानक ने अस्तित्व और उसकी खोज को चार खंडों में बाँटा है। उन चार खंडों को थोड़ा समझ लें। उनका विभाजन बहुत वैज्ञानिक है। पहले खंड को वे धर्म-खंड कहते हैं। दूसरे को ज्ञान, तीसरे को लज्जा और चौथे को कृपा।

धर्म से अर्थ है, दि लॉ, नियम; जिससे अस्तित्व चलता है। जिसको वेद ने ऋत कहा है। ऋत के कारण ही तो हम बदलाहट को मौसम के ऋतु कहते हैं। उन दिनों जब वेद लिखे गये तो ऋतुएँ बिल्कुल निश्चित थीं। रत्ती-पल फर्क न पड़ता था। हर वर्ष वसंत उसी दिन आता था जिस दिन सदा आता रहा था। हर वर्ष वर्षा उसी दिन शुरू होती थी जिस दिन सदा होती रही थी। आदमी ने प्रकृति को अस्त-व्यस्त कर दिया है। इसलिए ऋतुएँ भी अब ऋतुएँ नहीं हैं। क्योंकि ऋतु शब्द ही हमने इसलिए दिया था, कि अपरिवर्तित नियम के अनुसार जो चलती थीं। एक अनुशासन था। आदमी के तथाकथित समझदारी के कारण सब अस्त-व्यस्त हो गया है। ऋतुओं ने भी अपनी पटरी छोड़ दी।

अब पश्चिम में इस पर बहुत चिंता पैदा हुई है। एक नया आंदोलन चलता है, 'एकलॉजी'। वे कहते हैं कि प्रकृति को मत छुओ। हमने बहुत नुकसान कर दिया है। और प्रकृति को उसपर ही छोड़ दो। उसमें किसी तरह का मानवीय हस्तक्षेप खतरनाक है। उससे न केवल प्रकृति बल्कि मनुष्य का भी अंत करीब है।

वेद ने जब मौसम के परिवर्तन को ऋतु कहा तो 'ऋतु' शब्द के कारण कहा। ऋतु का अर्थ होता है अपरिवर्तित नियम, अनचेंजिंग लॉ; जिसको लाओत्से ने 'ताओ' कहा है।

उस नियम को जानने की जो विधि है, वह धर्म है। जीवन का जो परम नियम है, जो उसका गहनतम अनुशासन है, डिसिप्लीन है, उसे पहचान लेने की

कला का नाम धर्म है। बुद्ध ने तो 'धम्म' या धर्म शब्द का अर्थ 'नियम' के ही तरह उपयोग किया है। तो जब बौद्ध-भिक्षु कहते हैं, 'धम्मं शरणम् गच्छामि', तब वे ये कह रहे हैं कि अब हम नियम की शरण जाते हैं। अब हम अपने को छोड़ते हैं। और हम उस परम नियम की शरण हैं, जिससे हम पैदा हुए और जिसमें हम लीन हो जाएँगे। अब हम उसीके सहारे चलेंगे। सत्य को जान लेना, उस नियम को जान लेना ही है।

जीवन का जो मूल आधार है, उसको पहचान लेने को नानक कहते हैं, 'धर्म-खंड'। हम जीते हैं; लेकिन हम विचार से जीते हैं। हम सोच-सोच कर कदम रखते हैं। और जितना सोच-सोच कर हम कदम रखते हैं, उतने ही हमारे कदम गलत पड़ते हैं। जो-जो हम बिना सोचे करते हैं, वही-वही ठीक कदम पर ले जाता है।

तुम खाना खाते हो। फिर उसे पचाने के लिए तुम नहीं सोचते। फिर तो नियम उसे पचाता है। किसी दिन कोशिश कर के देखो। भोजन कर लो फिर सोचो, कि अब कैसे शरीर पचाएगा। फिर चौबीस घंटे पेट का ख्याल रखो कि पच रहा है कि नहीं पच रहा है? अपच हो जाएगी उसी दिन। क्योंकि जैसे ही विचार अचेतन नियम में बाधा डालता है वैसे ही उपद्रव हो जाता है। तुम रोज सोते हो साँझ, एक दिन सोते वक्त सोच कर सोओ कि किस तरह सोता हूँ, किस तरह नींद आती है, विचार करो, उस रात नींद खो जाएगी। इसलिए ज्यादा विचार करने वाले लोगों को अगर अनिद्रा का रोग हो जाता है तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

जीवन तो चल रहा है। वृक्ष फूल को खिलाते वक्त सोचता थोड़ी है, कि कब खिलाऊँ? कि समय पक गया या नहीं? मौसम आ गया है कि नहीं? वृक्ष जानता है अपनी जड़ों से, सोच कर नहीं। यह उसमें अंतर्भावित है। नदियाँ सागर की तरफ बहती हैं, उन्हें कुछ दिशा का बोध है? उनके पास कोई नक्शा है कि सागर कहाँ है? लेकिन एक अचेतन नियम उन्हें सागर की तरफ ले जाता है।

यह इतना विराट जगत चल रहा है बिना विचार के। और इस विराट जगत में कहीं भी कोई गलती नहीं हो रही है। कहीं कोई भूल-चूक नहीं हो रही, सब बिल्कुल ठीक है। सिर्फ आदमी गलत हो गया है। क्योंकि आदमी नियम से नहीं चल रहा है, विचार से चल रहा है। आदमी सोचता है, करूँ या न करूँ? ठीक है या गलत? उचित होगा कि अनुचित? परिणाम क्या होंगे? फल मिलेगा कि नहीं मिलेगा? लाभ होगा या हानि? लोग क्या कहेंगे? हजार विचार करता है। और इस हजार विचार के धुएँ में ही जीवन की नियम की सीधी रेखा उलझ जाती है और खो जाती है।

निर्विचार से जो चलने लगा वही सिद्ध है। निर्विचार से जो जीने लगा, वही आ गया शरण धर्म की।

तो धर्म कोई बुद्धिमानी नहीं है और न तुम्हारी बुद्धि का कोई निर्णय है। धर्म तो बुद्धि से थक गये आदमी की, जो बुद्धि से परेशान हो गया है, जिसने अपनी तरफ से सभी हाथ-पैर मार लिए और कुछ परिणाम न हुआ, जो सब तरफ से थक गया और असहाय हो गया, उस आदमी की खोज है धर्म। वह छोड़ देता है बुद्धि को। वह कहता है, 'अब तू जैसा चलाए'। उसको ही नानक 'हुक्म' कहते हैं। वे कहते हैं, अब उसके हुक्म से चलूँगा।

इससे तुम यह न समझना कि वहाँ बैठा हुआ कोई महापुरुष, कोई परमपिता, कोई परमात्मा हुक्म दे रहा है। वहाँ कोई बैठा हुआ नहीं है। हुक्म चल रहा है बिना हुक्मी के। नियम चल रहा है। नियम ही परमात्मा है। हमें भाषा ऐसी उपयोग करनी पड़ती है जिसे आदमी समझ ले। तो हमें प्रतीक बनाने पड़ते हैं। कई बार नासमझ आदमी प्रतीकों को जकड़ कर बैठ जाता है। वह सोचता है कि परमात्मा का कोई मुँह है, या हाथ-पैर हैं। वह किसी सिंहासन पर बैठ कर हुक्म चला रहा है। हम हुक्म को मानें या न मानें? न मानें तो अधार्मिक, मान लें तो धार्मिक। नहीं मानेंगे तो परमात्मा नाराज होगा, क्रुद्ध होगा, दंड देगा। मानेंगे तो पुरस्कृत करेगा।

ये सब व्यर्थ की बातें हैं। यह तुम प्रतीक को जरूरत से ज्यादा खींच लिए।

नियम है। कोई व्यक्ति वहाँ बैठा हुआ नहीं है। उस नियम की शरण जब तुम चले जाते हो तो तुमसे गलत होना बंद हो जाता है। क्योंकि वह नियम गलत करना जानता ही नहीं। और जब तुमसे ठीक होने लगता है तो सुख का संगीत बजने लगता है। ठीक का अर्थ ही यही है कि जब ठीक होगा तो तुम्हारे चारों तरफ सुख की सुगंध होगी। वह ठीक होने की खबर है।

जब कुछ गलत होगा, तब तुम्हारे पास दुःख की छाया होगी। जितना गलत होता जाएगा, उतनी चिंता गहन होगी। दुःख, पीड़ा होगी। तुम दुःख को दंड मत समझना। कोई दंड नहीं दे रहा है। तुम दुःख को तो सिर्फ गलत होने का सूचन समझना।

जैसे कोई आदमी सीधे-सादे रास्ते को छोड़कर जंगल में भटक जाए, काँटे चुभने लगें, तो समझ लेता है कि यह रास्ता नहीं है। इस पर कभी कोई चला नहीं। काँटे कोई दंड नहीं हैं। जहाँ कभी नहीं चला है, वहाँ चलने से काँटे स्वभावतः गड़ेंगे। वह आदमी रास्ता खोज कर ठीक जगह लौट आता है। जैसे ही ठीक जगह लौटता है, काँटे चुभने बंद हो जाते हैं। वहाँ काँटे नहीं हैं। तुम

जब दीवाल से टकराते हो तो सिर में चोट लगती है। कोई दीवाल तुम्हें दंड नहीं दे रही है। दीवाल को तुम से प्रयोजन क्या है? जब तुम दरवाजा खोज लेते हो, चोट नहीं लगती, तुम बाहर निकल जाते हो।

बस, ऐसा ही है। जिस दिन तुम नियम को पहचानने लगते हो, तुम्हें दरवाजा मिल गया। और जब तक तुम नियम को नहीं पहचानते तब तुम दीवाल से टकराते रहते हो। कितनी चोटें हैं तुम्हारे सिर पर। कितने घाव जन्मों-जन्मों में तुमने इकट्ठे कर लिए हैं। और सभी घाव रिसते हैं। सभी घाव पीड़ा देते हैं। और तुम सोचते हो, कोई तुम्हें दंड दे रहा है।

कोई तुम्हें दंड नहीं दे रहा है। तुम अपना किया ही, तुम अपना बोया ही काटते हो। और अगर यह तुम्हें समझ में आ जाए कि जब भी दुःख हो तो समझ लेना कि वहीं तुम प्रकृति से हटे। जब भी कोई बीमारी तुम्हें पकड़े तो उसका अर्थ यह है, कि तुम प्रकृति से कुछ यहाँ-वहाँ गये। बीमारी केवल सूचक है। और सूचक होने के कारण हितकर है, कल्याणदायी है। क्योंकि तुम्हें बीमारी न हो, तो तुम जान ही न पाओगे कि तुम नियम से हट गये हो, कि तुम जीवन की शाश्वत-व्यवस्था से विपरीत जा रहे हो। तब तो तुम भटकते ही चले जाओगे। तुम्हारे लौटने का कोई उपाय नहीं होगा। दुःख तुम्हें लौटाता है। इसलिए तो दुःख में परमात्मा की याद आती है। सुख में तुम भूल जाते हो।

संत प्रार्थना करते रहे हैं, 'हे परमात्मा, थोड़ा दुःख तो हमेशा ही देते रहना ताकि याद बनी रहे। और हम तुझे भूल न जाएँ। और प्रार्थना जारी रहे। हम तुझे पुकारते रहें। अगर दुःख न हुआ तो तुझे पुकारेंगे कैसे? सुख में हम भूल जाएँगे और खो जाएँगे।'

दुःख का एक ही अर्थ है, कि तुम धर्म से कहीं डगमगा गये हो। न तो दूसरे पर दोष देना, न भाग्य को दोष देना, न परमात्मा पर नाराज होना। इसको तुम सूचक समझना और खोज करना कि तुम प्रकृति से कहाँ विपरीत चले गये हो? और अनुकूल आने की कोशिश करना। प्रकृति के अनुकूल आना धर्म है। नानक पहले खंड को धर्म-खंड कहते हैं।

दूसरे खंड को ज्ञान-खंड कहते हैं। धर्म तो है। जिस दिन तुम उसे पहचान लेते हो, उस दिन ज्ञान। धर्म तो मौजूद है, लेकिन तुम आँख बंद किये हो। सूरज तो निकला है लेकिन तुम द्वार बंद किये बैठे हो। दीया तो जल रहा है लेकिन तुमने पीठ कर ली है दीये की तरफ। वर्षा तो हो रही है लेकिन तुम भीगने से वंचित हो। तुम किसी अँधेरी गुफा में छिपे बैठे हो। धर्म तो चल रहा है लेकिन तुम कहीं दूर हट गये हो।

वापिस लौट आने का नाम ज्ञान है। और हर मनुष्य को वापस लौटना पड़ेगा। क्योंकि मनुष्य की यह क्षमता है कि वह दूर जा सकता है। पशुओं में कोई धर्म नहीं है। पौधों में, पक्षियों में कोई धर्म नहीं है क्योंकि वे दूर जा ही नहीं सकते। वे कुछ भी अप्राकृतिक करने में असमर्थ हैं। वे जो भी करते हैं वही प्राकृतिक है। उनमें इतना भी बोध नहीं कि वे भटक सकें। भटकने के लिए भी थोड़ी समझ चाहिए। गलत जाने के लिए भी थोड़ी हिम्मत चाहिए। मार्ग से उतरने के लिए भी थोड़ा होश चाहिए। उतना होश तुम में है। पर मार्ग पर आने के लिए वापिस फिर, और भी ज्यादा होश चाहिए।

तो पशु हैं, वे भटक नहीं सकते इसलिए ठीक जगह हैं। वह कोई बहुत गौरव की स्थिति नहीं है। वह मजबूरी है। फिर सामान्य मनुष्य है; उसमें थोड़ा बोध है, वह भटक सकता है इसलिए वह भटक गया है। फिर बुद्धपुरुष हैं। नानक और कबीर हैं। उनके पास परम होश है। वे वापस लौट आए हैं। पशुओं को जो सहज उपलब्ध है वह तुम्हें साधना से उपलब्ध करना पड़ेगा। बुद्ध वहीं लौट आते हैं जहाँ पौधे सदा से हैं। वही परम आनंद है, जो साधारण पौधे को उपलब्ध है, बुद्ध को भी उपलब्ध होता है। लेकिन एक बुनियादी फर्क होता है। वह फर्क यह है कि बुद्ध को आनंद परम बोधपूर्वक होता है। वे होश से भरे हुए उन आनंद को भोगते हैं। पौधे पर भी वह आनंद बरस रहा है। वह भटक भी नहीं सकता, लेकिन उसके पास बोध भी नहीं है।

तो प्रकृति अचेतन है और बुद्धपुरुष सचेतन रूप से प्राकृतिक हैं और दोनों के बीच में हम हैं। प्रकृति अचेतन है। वहाँ सुख सहज है। वहाँ सुख हो ही रहा है। लेकिन वहाँ कोई जानने वाला नहीं। उस सुख की प्रतीति और साक्षात् करने वाला कोई भी नहीं है। जैसे तुम बेहोश पड़े हो और तुम्हारे चारों तरफ रत्नों की वर्षा हो रही है। पत्थर बरस रहे हैं या रत्न, कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि तुम बेहोश पड़े हो। फिर तुम आँख खोलते हो। फिर तुम होश से भरते हो। और तब तुम पहचान पाते हो कि कैसी अपरंपार वर्षा तुम्हारे चारों तरफ हो रही थी।

बुद्ध वही पाते हैं जो प्रकृति में सहज ही उपलब्ध पत्थरों को मिला हुआ है। वहीं लौट आते हैं। लेकिन लौट आना बड़ा नया है। जगह तो वही है जहाँ चट्टानें खड़ी हैं। जिस वृक्ष के नीचे बुद्ध को ज्ञान हुआ, वह वृक्ष भी वहीं है जहाँ बुद्ध हैं। होगा ही, क्योंकि परमात्मा कण-कण में छिपा है।

लेकिन उस बोधिवृक्ष में और बुद्ध में क्या फर्क है? फर्क महान है। जगह तो एक है और अंतर अनंत है। अंतर यह है कि बुद्ध सजग होकर, होशपूर्वक उस आनंद को, उस अपरंपार महिमा का अनुभव कर रहे हैं। वह महिमा वृक्ष पर भी बरस रही है, लेकिन उसे कुछ पता नहीं। वह महिमा तुम पर भी बरस रही है

लेकिन तुम पीठ किये खड़े हो। वृक्ष का मुँह है उसकी तरफ, लेकिन वृक्ष उसे जान नहीं सकता। तुम जान सकते हो लेकिन तुम पीठ किये खड़े हो। जिस दिन तुम सम्मुख हो जाओगे, जिस दिन तुम्हारी आँखें उस महिमा की तरफ उठेंगी और तुम पहचानोगे, उसे नानक ज्ञान कहते हैं।

ज्ञान-खंड मनुष्य की उपलब्धि है। अगर मनुष्य न हो तो धर्म तो होगा, ज्ञान नहीं होगा। जगत धर्म से चलता रहेगा। लेकिन ज्ञान नहीं होगा। इसका यह अर्थ हुआ कि अस्तित्व ने मनुष्य के भीतर से ज्ञान को खोजने की कोशिश की है। इसलिए मनुष्य बड़े शिखर पर है। तुम्हें पता ही नहीं कि तुम्हें कितनी महिमा सहज उपलब्ध होने की संभावना है। तुम्हारे द्वारा परमात्मा सजग होना चाहता है। तुम्हारे माध्यम से जागना चाहता है।

प्रकृति में परमात्मा सोया है। मनुष्य में उसने करवट बदली है। वह मनुष्य में होश में आना चाहता है। प्रकृति में आधी अँधेरी रात है, गहन नींद है। मनुष्य में सुबह ोने के करीब का क्षण है। तुम अगर चूको तो तुम अँधेरी रात में रह जाओगे। तुम अगर आँख खोल कर देख लो तो तुम भी बुद्ध, नानक और कबीर हो जाओगे। और जब तक तुम हो न जाओ, तब तक पीड़ा बनी रहेगी। इसको तुम शाश्वत नियम समझना कि जो तुम हो सकते हो अगर न हुए, तो दुःख में रहोगे। तुम जो हो सकते हो अगर हो गये, तो तुम्हारे जीवन में आनंद हो जाएगा।

आनंद का अर्थ है फुलफिलमेंट। वह उसे पा लेना है, जो पाने की तुम्हारी क्षमता थी। जो तुम्हारे बीज में छिपा था, वह जब तक फूल तक न पहुँच जाएगा, तब तक भीतर एक तनाव बना रहेगा।

जिस गीत को गाने के लिए तुम पैदा हुए हो अगर बिना गाये मर गये, तो तुम दुःख में मरोगे। और उस गीत को गाने के लिए तुम्हें बार-बार जन्म लेना पड़ेगा। क्योंकि प्रकृति अधूरे को स्वीकार नहीं करती। जिस दिन तुम पूरे हो जाओगे उसी दिन स्वीकार हो जाओगे।

इसलिए हिंदू कहते हैं कि जो पूर्ण हो गया उसका कोई आवागमन नहीं है। आवागमन इसलिए नहीं, कि उसने वह गीत गा लिया जो गाना था। उसने वह आनंद पा लिया जो पाना था। उसकी सरिता सागर में पहुँच गयी। अब लौटने की कोई वजह न रही। तुम लौटते हो बार-बार क्योंकि तुम बार-बार असफल हो रहे हो। तुम्हारी असफलता के कारण तुम्हें वापिस लौटना पड़ता है। और प्रकृति तुम्हें भेजती जाएगी। उसे कोई जल्दी नहीं है। प्रकृति को कोई भी जल्दी नहीं है। अनंत समय है उसके पास। तुम कितने ही टकराते रहो, वह तुम्हें वापस ही भेजती रहेगी।

मैंने सुना है, एक ट्रेन में एक बम्बई के सज्जन और एक बिहारी सज्जन की मुलाकात हुई। पूछा बिहारी ने, 'आप का नाम?' तो बम्बई के सज्जन ने कहा, 'वीनू।' पूछा बिहारी से, 'आप का नाम?' उन्होंने कहा, 'श्री श्री सत्यदेव नारायण प्रसाद सिन्हा।' बम्बईया की तो आँखें खुली रह गयीं। उसने कहा, 'इतना बड़ा नाम!' बिहारी ने कहा, 'हम बम्बई के रहने वाले नहीं हैं। हमारे पास एक-दूसरे का नाम बुलाने के लिए काफी समय है।'

परमात्मा बम्बई का निवासी नहीं है। वहाँ काफी समय है। प्रकृति को कोई जल्दी नहीं है। तुम हजार बार व्यर्थ हो जाओ, असफल हो जाओ, वापिस भेज दिये जाओगे। लेकिन तुम अनंत दुःख भोगोगे, जितनी देर तुम असफल लौटोगे। जब तक तुम्हें जो गीत गाना है तुमने नहीं गा लिया, जब तक तुमने अपनी नियति को पूरा नहीं कर लिया, तब तक तुम अंगीकार न होगे।

और एक ही तो दुःख है। एक ही दुःख है, पीड़ा है कि यह अस्तित्व तुम्हें अंगीकार नहीं करता, वापस लौटा देता है। जब यह अंगीकार कर लेता है तब उसमें लीन हो जाते हो, फिर कोई वापसी नहीं है।

नानक दूसरे खण्ड को ज्ञान-खंड कहते हैं। जाग कर जान लेना, 'जो है'; दैट व्हिज इज, जो है चारों तरफ मौजूद, उसे होशपूर्वक जान लेने का नाम ज्ञान है।

तीसरे खंड को नानक लज्जा-खंड कहते हैं। क्योंकि जो जान लेता है उसे ही पता चलता है कि कितना मैं अज्ञानी हूँ; इसलिए लज्जा-खंड। अज्ञानी तो अकड़े फिरते हैं। उन्हें तो कोई लज्जा ही नहीं है। उन्हें तो पता ही नहीं है कि वे कैसे अज्ञान से भरे हैं। अज्ञानी तो अपने को ज्ञानी समझ कर जीता है। सिर्फ ज्ञानी ही जान पाता है कि कैसा महान अज्ञान है। क्या मैं जानता हूँ? कुछ भी तो नहीं।

सुकरात ने कहा है कि जब मैंने जाना तो एक ही बात जानी कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। जब ज्ञान पूरा होता है तब तुम यही जानते हो कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। न केवल यही, बल्कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। मैं 'ना-कुछ' हूँ। तुम एक शून्य हो जाते हो। उस शून्य को नानक कहते हैं, लज्जा-खंड। तब तुम बड़ी शर्म से भर जाते हो कि मैं कुछ भी तो नहीं हूँ। कितना अकड़ा फिरता था। पानी का बबूला कितना फूला-फूला फिरता था। कितनी अतिशयोक्ति कर रखी थी तुमने अपने संबंध में। और अतिशयोक्ति करने के लिए हम हजार-हजार उपाय खोज लेते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बाप से कह रहा था। नदी से यात्रा कर के लौटा था। और कहने लगा कि सुनो, ऐसा तूफान आया कि नदी में पचास-पचास फीट लहरें उठने लगीं। नसरुद्दीन के बाप ने कहा, 'थोड़ी अतिशयोक्ति इतनी ज्यादा

मत कर ! मैं भी उस नदी से परिचित हूँ । पच्चास साल मैंने भी उस नदी में यात्रा की है । ऐसी लहरें उठती मैंने कभी नहीं देखीं । और पच्चास फीट लहरें नदी में उठती भी नहीं ।' नसरुद्दीन ने कहा, 'अजी, होश की बात करो ! हर चीज बढ़ती जा रही है । अनाज के ही दाम देखो, कितने बढ़ गये हैं ।'

आदमी अपनी अतिशयोक्ति को सब तरह के सहारे खोजता रहता है । और इन सहारों के आधार पर सबसे बड़ी अतिशयोक्ति खड़ी होती है, और वह है कि 'मैं हूँ' । मेरा होना इस जगत में सबसे बड़ा झूठ है । परमात्मा का होना अगर सबसे बड़ा सच है तो मेरा होना सब से बड़ा झूठ है । क्योंकि यहाँ दो 'मैं' तो हो ही नहीं सकते । अस्तित्व तो एक है । एक ही 'मैं' हो सकता है । पूरा अस्तित्व अगर एक है तो इसका एक ही केंद्र हो सकता है । लेकिन हर व्यक्ति, हर बूंद घोषणा करती है अपने 'मैं' की ।

ज्ञानी को यही शर्म आती है । वह लज्जा से भर जाता है । कितनी अतिशयोक्ति की । कितनी अपनी घोषणा की, जहाँ कुछ भी न था । पानी का बबूला था, जरा सा छुआ कि टूट गया । कागज की नावें थीं, बही नहीं कि डूब गयीं । ताश के पत्तों का घर था, हवा आयी नहीं कि गिर गया । पर कितने-कितने दावे किये । कितनी घोषणाएँ कीं ।

एक अदालत में मुल्ला नसरुद्दीन को पकड़ कर लाया गया । क्योंकि गाँव के नेता को उसने अपशब्द बोल दिये थे । कह दिया था कि तुम महा गधे हो । मैजिस्ट्रेट ने पूछा कि यह उचित नहीं है । गाँव के सम्मानित आदमी को, जो नेता है, जिसको हजारों लोग वोट देते हैं, उसको तुमने इस तरह के अपमानजनक शब्द बोले ? नसरुद्दीन ने कहा, 'मैं क्या करूँ ! मेरा कोई कसूर नहीं । इसी आदमी ने मुझ से कहा था कि जानते हो मैं कौन हूँ ? जब इसी ने पूछा, तो हमें कहना पड़ा ।'

तुम्हारी नजर पूछती है लोगों से, 'जानते हो मैं कौन हूँ ?' देखा, जरा किसी के पैर पर चोट पड़ जाए, जरा धक्का लग जाए, वह लौट कर कहता है कि जानते हो मैं कौन हूँ ? खुद भी नहीं जानता । कौन जानता है ! जो जानते हैं उनका तो 'मैं' मिट जाता है । जब तक नहीं जानते तभी तक तो 'मैं' है । तुम उससे यह पूछना, कि तुम जानते हो कि तुम कौन हो ?

लेकिन वह अकड़ की बात कर रहा है। वह यह कह रहा है कि मेरा पद पता है, मेरा धन पता है, मेरी प्रतिष्ठा पता है ? वह यह कह रहा है कि मैं तुम्हें नुकसान पहुँचा सकता हूँ । वह यह कह रहा है कि मैं खतरनाक सिद्ध हो सकता हूँ, पता है? तुम्हारा होना सिर्फ नुकसान पहुँचाने का दावा है । वह हिंसा की

एक घोषणा है । तुम उसी वक्त कहते हो--कि मैं कौन हूँ, जानते हो--जब तुम दावा करना चाहते हो कि मैं चाहूँ तो विध्वंस कर सकता हूँ ।

तुम्हारी सारी अकड़ हिंसा है । अहंकार हिंसा का सूत्र है । जाननेवाला तो कहता है, मैं कहाँ हूँ पता ही नहीं चलता । मैं कौन हूँ कुछ पता नहीं चलता । जाननेवाला तो खो जाता है । अज्ञानी अकड़ा रहता है । जो नहीं है वह तो कहता है, 'मैं हूँ' । और जो हो जाता है, वह यह भाषा बोलना बंद कर देता है ।

तो नानक इस तीसरे खंड को लज्जा-खंड कहते हैं । वे कहते हैं कि ज्ञानी को लज्जा आती है बड़ी, कि क्या कहूँ ? किससे कहूँ ? कुछ कहने को नहीं, कोई दावा नहीं । वह परमात्मा के सामने भी लज्जा से भर जाता है कि कितने झूठे दावे किये मैंने जन्मों-जन्मों में । तेरे सामने भी अकड़ कर खड़ा रहा । तेरे सामने भी मेरी अकड़ यही थी कि तू भी मुझे स्वीकार कर । अगर मैंने तेरी प्रार्थना भी की तो इसलिए, कि तू भी मुझे स्वीकार कर । अगर मैंने पुण्य किया तो भी इसीलिए, दान दिया तो भी इसीलिए, मंदिर बनाए, मस्जिद खड़ी की, गुरुद्वारे बनाए तो भी इसीलिए, कि तू भी जान ले कि मैं कौन हूँ ।

बड़ी लज्जा से ज्ञानी भर जाता है । बड़ी शर्म आती है । कैसे मुँह दिखाए । परमात्मा जब सामने आता है तो कौन सा मुँह दिखाएँ ? तुम्हारे सभी मुँह तो झूठे हैं । तुम्हारे सभी चेहरे झूठे हैं । दूसरों को दिखाने के लिए तुमने रंग-रोगन लगा कर खड़ा कर रखा था । थोड़ा सोचो; अगर आज परमात्मा मिलता हो तो तुम कौन सा चेहरा उसके पास ले कर जाओगे ? वह, जो तुम अपनी पत्नी को दिखाते हो, कि वह जो तुम अपने मालिक को दिखाते हो ? या वह, जो तुम अपने नौकर के सामने ओढ़ लेते हो ? या वह, जो तुम प्रेयसी को प्रकट करते हो ? या वह, जो तुम दीन, दरिद्र, गरीब के सामने दिखाते हो ? या वह, जो शक्तिशाली के सामने दिखाते हो ? कौन सा चेहरा तुम परमात्मा को दिखाओगे ?

शक्तिशाली के सामने तुम्हारी पूँछ हिलती रहती है । तुम उसकी खुशामद करते रहते हो । तुम्हारे चेहरे पर बड़ी खुशामद का भाव होता है । गरीब के सामने तुम ऐसे अकड़ कर खड़े हो जाते हो । क्योंकि गरीब से तुम वही खुशामद की अपेक्षा करते हो जो तुम अमीर के सामने प्रकट करते हो । तुम चाहते हो वह पूँछ हिलाए । जो आदमी किसी की स्तुति माँगता है, वह आदमी कहीं न कहीं स्तुति कर ही रहा होगा । वह असल में बदला चाहता है । लेकिन जिस आदमी ने ठीक से अपने को देखा, न वह स्तुति करता है किसी की, न स्तुति चाहता है । एक ही परमात्मा है, उसी की स्तुति हो जाए तो काफी है । वह किससे स्तुति माँगे ? क्योंकि वही चारों तरफ है ।

नानक कहते हैं, बड़ी लज्जा आती है। सत्य के सामने जब आदमी खड़ा होता है तो पाता है कि अपने कोई भी चेहरे तो काम के नहीं। सभी गंदे हैं और सभी झूठे हैं।

झेन फकीर कहते हैं अपने शिष्यों को, कि अगर तुमने अपना मौलिक चेहरा, 'ओरिजनल फेस' खोज लिया तो खोज पूरी हो गयी। वे कहते हैं कि खोजो उस चेहरे को, जो जन्म के पहले तुम्हारे पास था। खोजो उस चेहरे को, जो मरने के बाद तुम्हारे साथ होगा। बीच के सब चेहरे तो झूठे हैं।

छोटे-छोटे बच्चे भी! मनस्विद कहते हैं कि आदमी अगर लौट कर याद-दाश्त को जगाए तो चार साल या तीन साल के करीब याददाश्त रुक जाती है। तुम भी याद करोगे तो बस, पाँच साल, चार साल, या तीन साल--वहाँ जाकर रुक जाओगे। तीन साल तक की कोई याददाश्त नहीं होती, जन्म से लेकर तीन साल तक की। क्यों? क्योंकि उस समय इतने सरल होते हो कि तुम्हारे पास कोई चेहरा नहीं होता है। याददाश्त किसकी बनानी है? कोई दावा ही नहीं होता।

अहंकार याददाश्त बनाता है। सब याद अहंकार की है। वह स्मरण रखता है, वह हिसाब-किताब रखता है। तीन साल तक तुम भोले-भाले होते हो। तुम्हें पता ही नहीं होता है कि तुम कौन हो? दावा क्या? तुम्हारा कोई दावा ही नहीं होता है। तीन साल का बच्चा स्कूल से प्रसन्न भी लौट आता है, किंडर गार्टन स्कूल से, हँसता हुआ, चिल्लाता हुआ आता है, कि मैं क्लास में सबसे आखिरी आया। उसको कुछ पता ही नहीं है कि 'आखिरी' का क्या मतलब है? अभी अहंकार निर्मित नहीं हुआ है। अभी जाति-पाँति का पता नहीं है, घर-द्वार का पता नहीं है, कुलीनता-अकुलीनता का पता नहीं है। ब्राह्मण है कि शूद्र, पता नहीं है। अभी कुछ भी पता नहीं है। अभी चेहरा साफ है। यही चेहरा तुम परमात्मा के सामने ले जा सकोगे।

लेकिन माँ-बाप झूठ को ओढ़ाना शुरू कर देते हैं पहले ही दिन से। पहले ही दिन से माँ चाहती है कि जब वह बच्चे की तरफ देखे, तो वह मुस्कुराए। बच्चे को अगर मुस्कुराहट नहीं आ रही है तो भी मुस्कुराए। अगर बच्चा नहीं मुस्कुरा रहा है तो माँ नाराज होती है। मुस्कुरा रहा हो तो प्रसन्न होती है। थोड़े ही दिनों में बच्चा समझने लगता है कि चाहे मुस्कुराहट भीतर हो या न हो, जब माँ देखे तो मुस्कुराओ; झूठ शुरू हो गया। चेहरा ओढ़ना शुरू हो गया। फिर झूठ पर झूठ इकट्ठी होती जाती है।

इन झूठे चेहरों को लेकर तुम परमात्मा के सामने जाओगे? नानक कहते हैं, बड़ी शर्म आती है। जब कोई जानता है तब वह लज्जा से भर जाता है। तब

वह खोजता है, खोजता है और पाता ही नहीं कि कौन सा चेहरा असली है। और जितना वह खोजता है उतना ही पाता है, जैसे कोई प्याज को छीलता जाए। जैसे-जैसे पर्त उतरती है, नयी पर्त सामने आ जाती है। एक झूठ को निकालो, दूसरा झूठ; क्योंकि पर्त दर पर्त पर झूठ जमा है। जन्मों-जन्मों का झूठ जमा है। तुमने इकट्ठा ही झूठ किया है. कुछ और तो इकट्ठा किया नहीं है। लेकिन जब तुम पर्त-पर्त निकालते जाते हो, तब आखिर में पाते हो कि कुछ बचता ही नहीं, प्याज की सब पर्तें निकल जाती हैं। शून्य हाथ आता है। नानक कहते हैं, वह जो शून्य हाथ आता है तो बड़ी लज्जा आती है। कि न-कुछ था और सब कुछ होने के दावे किये। इसे वे तीसरा खंड कहते हैं।

चौथा खंड वे कहते हैं, कृपा-खंड। वे कहते हैं, कि जब तुम लज्जा से भर जाते हो तब उसकी कृपा बरसती है। जब तुम शून्य हो जाते हो तब पूर्ण उतरता है; उसके पहले नहीं। तुम्हारी अकड़ उसकी कृपा में बाधा है। तुम जब तक अकड़े हो, तब तक तुम उसकी कृपा न पा सकोगे। वह तुम्हें जरूरत ही नहीं है। तुम अपने ही पैरों पर खड़े हो। तुम्हें सहारे की जरूरत ही नहीं है। तुम प्रार्थना भी कर रहे हो और अपने पैरों पर खड़े हो। तुम माँग भी उससे रहे हो, लेकिन वह भी तुम्हारी और बहुत चेष्टाओं में एक चेष्टा है, कि शायद कौन जाने, कुछ सहारा उधर से मिल जाए। और जब कुछ मिल जाएगा, तब तुम दावा यही करोगे, कि मैंने पाया।

मुल्ला एक वृक्ष पर चढ़ रहा था। बेर पक गये थे। जैसे-जैसे मुल्ला ऊपर चढ़ने लगा उसे डर लगने लगा। क्योंकि बेर बिलकुल ऊपर की शाखा पर थे। तो उसने परमात्मा से कहा, कि देख, अगर मैं बिना गिरे इन बेरों को तोड़ पाया तो एक पैसा मस्जिद में चढ़ाऊँगा। तू बिलकुल पक्का भरोसा रख। जैसे-जैसे करीब पहुँचने लगा डाल के, उसने सोचा कि इतने से बेरों के लिए एक पैसा जरा ज्यादा है। और मैं अपनी ही चेष्टा से पहुँचा जा रहा हूँ। नाहक मैं परमात्मा को बीच में लाया। जब बेरों पर उसका हाथ ही पड़ गया तो उसने कहा, एक पैसे में इससे ज्यादा बजार में खरीद लूँगा। और तूने तो कुछ किया ही नहीं है। कुछ बेर ही चढ़ा दूँगा। जब वह ऐसा सोच ही रहा था— सोचने में हाथ चूक गया, पैर सरक गया और धड़ाम से नीचे गिर गया। वे बेर हाथ आए नहीं। नीचे गिरकर उसने चिल्ला कर कहा, 'क्या मामला है? क्या तू जरा सी मजाक भी नहीं समझ सकता? जरा धैर्य रखता तो मैं एक पैसा चढ़ाता ही।'

तुम प्रार्थना भी करो, तुम पूजा भी करो, तो भी तुम्हारी अकड़ का ही श्रृंगार है तुम्हारी पूजा। तुम्हारे अहंकार का ही आभूषण है। और पूजा तो तब

होती है, जब तुम नहीं हो। जब पुजारी मिट जाता है, तभी पूजा शुरू होती है। नानक कहते हैं, लज्जा में तुम तो पिघल जाते हो ! लज्जा में तुम तो मिट जाते हो, तुम तो बचते नहीं। और तब अचानक, जैसे ही तुम यहाँ खोते हो, तुम पाते हो कि वहाँ से वर्षा हो रही है आनंद की। वह सदा ही हो रही थी। तुम अपनी अकड़ से इतने भरे थे कि तुम्हारे भीतर कोई जगह ही नहीं थी, कि वह प्रवेश पा सके। कोई ऐसा नहीं है कि तुम जब लज्जा से भरते हो तब उसकी कृपा तुम पर बरसती है। कृपा तो बरस ही रही है। तुम जब लज्जा से भरते हो तब तुम खाली होते हो, और तुम्हारे भीतर प्रवेश हो सकता है।

ये चार खंड हैं नानक के। और यह चारों का विभाजन बड़ा बहुमूल्य है। आज दूसरे खंड की बात है।

धरम खंड का एहो धरमु ।
गिआन खंड का आखहु करमु ॥
केते पवन पाणि वैसंतर केते कान महेस ।
केते बरमे घाड़ति घड़िअहि रूप रंग के वेस ॥
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस ।
केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस ॥
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस ।
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद ।
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद ॥
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु ॥

जैसे ही कोई व्यक्ति जागता है अस्तित्व के प्रति, परम विस्मय से भर जाता है। महान आश्चर्य घेर लेता है।

तुम्हें तो कोई विस्मय पकड़ता ही नहीं। तुम तो ऐसे चलते हो जैसे तुम जानते हो। पंडित को विस्मय होता ही नहीं। वह सभी चीजों के उत्तर जानता है, विस्मय कैसा ? विस्मय तो बालक को होता है। चलता है तो हर चीज के संबंध में सवाल पूछता है। तुम यह मत समझना कि वह जवाब पाने के लिए सवाल पूछता है। सवाल तो केवल उसके विस्मय को प्रगट करने का ढंग है। इसलिए तुम्हारे जवाब के लिए रुकता भी नहीं। दूसरा सवाल खड़ा कर देता है। तुम्हारे जवाब की फिक्र भी नहीं करता। क्योंकि जवाब की उत्सुकता ही नहीं है।

तितली निकल जाती है और वह पूछता है कि तितली पर इतने रंग क्यों ? वह यह नहीं कह रहा कि तुम जवाब दो। 'तितली पर इतने रंग क्यों,' वह सिर्फ इतना कह रहा है कि मैं अवाक् हूँ। मैं विस्मय से भर गया हूँ। ये वृक्ष हरे

क्यों ? फूल रंगीन क्यों ? आकाश में बादल क्यों ? सूरज सुबह रोज क्यों निकल आता है समय पर ? यह बच्चा पूछ रहा है। यह सिर्फ विस्मय खड़े कर रहा है। इसके प्रश्न उत्तर की माँग नहीं रखते। यह तो पूछ रहा है इसलिए, क्योंकि हर चीज इसे आश्चर्य से भर देती है।

पंडित कोई नहीं पूछता प्रश्न, क्योंकि उसके पास सभी चीज के उत्तर हैं। पंडित का अर्थ है, जिसके पास प्रश्न है ही नहीं, उत्तर हैं। और ज्ञानीका अर्थ है, जिसके पास प्रश्न हैं और उत्तर नहीं है। इसे थोड़ा ख्याल से समझ लेना। ज्ञानी बच्चों जैसा अवाक् रह जाता है। और भी ज्यादा अवाक्, क्योंकि बच्चे क्या ! तितली देख सकते हैं, फूल देख सकते हैं ! ज्ञानी देखता है पूरे अस्तित्व को। बच्चों की नजर कितनी दूर जाती है ! ज्ञानी की नजर होती है आर-पार। और वह जो देखता है, वह उसे विस्मय-विमुग्ध कर देता है।

नानक के ये वचन उनके विस्मय के सूचक हैं। वे कहते हैं, 'कितने पवन, कितने पानी, कितने अग्नि के देवता, कितने कृष्ण, कितने महेश, कितने ब्रह्मा, कितनी उनकी रचनाएँ, कितने रंग, रूप-वेश, कितनी कर्म-भूमियाँ, कितने सुमेरु पर्वत, कितने ध्रुव, कितना उपदेश, कितने इंद्र, चंद्र, सूर्य, कितने मंडल, कितने देश, कितने ही सिद्ध, कितने ही बुद्ध, कितने ही नाथ, कितने ही देवियों के वेश, कितने ही देवता, कितने ही दानव, कितने ही मुनि, कितने ही रत्न, कितने समुद्र, कितनी योनियाँ, कितनी वाणियाँ, कितने बादशाह, कितने बादशाहों के बादशाह—शहंशाह, कितनी सुरतियाँ, कितने ही सेवक; नानक कहते हैं, इसका अंत नहीं है, इसका अंत नहीं है।'

यह विस्मय-बोध है। नानक कहते हैं इसका उत्तर मेरे पास नहीं है। यह ज्ञानी का लक्षण है। तुम तो ज्ञानी का लक्षण तब समझोगे जब तुम्हें नानक उत्तर दें। तुम लौट ही गये होते नानक के पास से, कि इसको कुछ आता ही नहीं। 'कितने-कितने' का क्या राग लगा रखा है? कुछ उत्तर दो। तुम पूछने आए हो 'क्यों है,' और वे गिना रहे हैं, 'कितने हैं!'

तुम उत्तर चाहते हो, तुम जानकारी चाहते हो, क्योंकि जानकारी के तुम मालिक हो सकते हो। विस्मय के तुम मालिक नहीं हो सकते हो। आश्चर्य से तो तुम भर जाओगे। आश्चर्य तो तुम्हारा मालिक हो जाएगा। आश्चर्य में तुम घिर जाओगे, आश्चर्य तुम्हें डुबो लेगा। आश्चर्य में तुम बचोगे न, मिट जाओगे। उत्तर चाहते हो तुम, क्योंकि उत्तर को तुम अपनी मुट्ठी में रख सकते हो। उत्तर का तुम उपयोग कर सकते हो। उत्तर से तुम दूसरों को हरा सकते हो, पराजित कर सकते हो। उत्तर से तुम दूसरों के प्रश्न चुप कर सकते हो। उत्तर से तुम्हारी अकड़ बढ़ेगी। लोग ज्ञान की खोज में नहीं हैं, लोग उत्तरों की खोज में हैं। लोग चाहते हैं कि सब उत्तर हमें पता चल जाएँ, तो हम ज्ञानी हो जाएँ।

और ध्यान रखना, ज्ञानी उत्तरों की खोज से होता ही नहीं कोई कभी। ज्ञानी तो प्रश्न में गहरे उतरने से होता है। और जितना ही कोई प्रश्न में गहरा उतरता है उतने ही विस्मय के द्वार खुलते जाते हैं। एक द्वार तुम प्रवेश करते हो और हजार द्वार खुल जाते हैं। नानक उसी विस्मय की बात कर रहे हैं।

नानक तो ग्रामीण हैं। वे तो गाँव के अपढ़ आदमी हैं। इसलिए उनकी भाषा की चिंता मत करना। मगर ग्रामीण भी जब उस विस्मय के जगत में जाता है तो मुखर हो जाता है! इतने विस्मय में वे यही कह रहे हैं 'केते पवन पाणी वैसंतर, केते कान महेश।'

कितने कृष्ण! जब तुम्हें दिखायी पड़ेगा, तब तुम पाओगे कितनी बाँसुरियाँ बज रही हैं। कितनी गोपियों का रास चल रहा है। अनंत है यह अस्तित्व। तुम्हारी पृथ्वी पर यह सीमित नहीं है। और तुम तो इस अकड़ में भरे हो कि शायद यह तुम पर ही सीमित है। तुम तो सोचते हो, शायद सारा नाच तुम्हारे लिए चल रहा है।

ऐसा हुआ कि एक ट्रेन में एक देहाती पकड़ लिया गया बिना टिकट के। और वह जो टिकट-चेकर था, अड़ियल था। बहुत गिड़गिड़ाया ग्रामीण, मुझ पर कुछ है नहीं, अपनी पोटली खोल कर बता दी। तब टिकट-चेकर ने वहीं चेन खींच दी बीच जंगल में और कहा, फिर तुम यहीं उतर जाओ। उसने बहुत हाथ-पैर जोड़े कि मुझे स्टेशन पर उतार देना आगे। जो भी स्टेशन आए, उतार देना। यहाँ बीच जंगल में तो मत उतारो। लेकिन वह अड़ियल था। उसने कहा, 'उतरना ही पड़ेगा।' अपनी पोटली सँभाल कर, कंधे पर रख कर ग्रामीण उतर गया और जिस तरफ ट्रेन को जाना था उसी पटरी पर चलने लगा। ड्राइवर ने देखा कि एक आदमी पोटली लिए और पटरी पर ही चला जा रहा है तो वह सीटियाँ बजाने लगा। ग्रामीण ने पीछे लौट कर जोर से कहा, 'अब कितनी ही सीटियाँ बजाओ, मैं चढ़ूँगा नहीं। पहले ही क्यों उतारा था?'

ग्रामीण सोच रहा है कि शायद सीटियाँ उसे चढ़ने के लिए बजायी जा रही हैं! सीटियाँ हटने के लिए बजायी जा रही हैं। ग्रामीण सोच रहा है कि चढ़ने के लिए बजायी जा रही हैं। तुम हटो, लेकिन तुम सोच रहे हो कि जमे रहो और चढ़ जाओ। तुम मिटो, इसलिए सीटियाँ बजायी जा रही हैं। तुम मार्ग में न आओ, इसलिए सीटियाँ बजायी जा रही हैं।

लेकिन हर आदमी यही सोचता है, सभी गीत उसके लिए चल रहे हैं। हर आदमी सोचता है, मैं केंद्र हूँ और पूरा अस्तित्व मेरे आसपास घूम रहा है। इसलिए तो पुराने लोगों को पसंद था कि पृथ्वी केंद्र है और सूरज घूम रहा है।

बर्नार्ड शा ने पीछे एक मजाक किया, और उसने कहा कि मैं यह सिद्धांत मान नहीं सकता कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है, मान ही नहीं सकता। यह

सिद्धांत गलत है। किसी ने सभा में खड़े होकर पूछा कि बीसवीं सदी में छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं कि पृथ्वी चक्कर लगा रही है। और आप के पास क्या प्रमाण है? विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है। बर्नार्ड शा ने कहा, 'प्रमाण की कौन फिक्र करता है? प्रमाण यह है कि बर्नार्ड शा जहाँ रहता है, वह पृथ्वी किसी चीज के चक्कर नहीं लगा सकती। सूरज ही चक्कर लगा रहा है।'

वह मजाक हम सभी के अहंकार की तरफ कर रहा है। तुम भी मान नहीं पाते कि तुम्हारी पृथ्वी और चक्कर लगा सकती है!

इसलिए आदमी ने बड़ा उपद्रव मचाया, चर्चों ने बड़ा विरोध किया, पादरी बड़े खिलाफ हुए, पोपों ने बड़ा इन्कार किया, कि नहीं। यह सिद्धांत हम मान नहीं सकते। गैलेलियो से कहा, कि क्षमा माँगो। गैलेलियो की क्षमा भी बड़ी अद्‌भुत है। उसने क्षमा माँगी। वह बड़ा होशियार आदमी था। बड़ा सच्चा आदमी था। और शहीद होने की व्यर्थ उसे कोई चिंता नहीं थी। न शहीद होना चाहता था और न डरता था, कि शहीद हो जाऊँ तो कोई हर्जा है। उसने कहा, 'अगर आप कहते हैं, तो मैं कहे देता हूँ कि पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती, सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। लेकिन मेरे कहने से कुछ भी न होगा। चक्कर तो पृथ्वी ही सूरज का लगाती है, मेरे कहने से क्या होनेवाला है? इससे क्या, तुम कहो तो मैं कह देता हूँ, लिख कर दस्तखत किये देता हूँ, लेकिन मेरी कोई चलती है? और यह कोई सिद्धांत मैंने गढ़ा थोड़े ही है कि, मैं इनकार कर दूँ कि सिद्धांत टूट जाएगा। ऐसा हो रहा है। इसमें हजार गैलेलियो भी कह दें कि नहीं, कोई फर्क न पड़ेगा।'

कारण यही था कि आदमी ने सदा यही सोचा है। और क्रिश्चियॅनिटी इस संबंध में हिंदू-विचार से बहुत दीन-दरिद्र है।

हिंदुओं की बड़ी पुरानी धारणा यही है कि अनंत पृथ्वियाँ हैं। कोई हमारी पृथ्वी ने ठेका नहीं ले रखा है। अब तो विज्ञान भी कहता है कि कम से कम पच्चास हजार पृथ्वियाँ हैं जिन पर जीवन की संभावना है। पर हिंदू सदा से कहते रहे हैं, अनंत पृथ्वियाँ हैं, अनंत योनियाँ हैं। और यहीं सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता है। यह पृथ्वी तो ना-कुछ है। सूरज इससे साठ हजार गुना बड़ा है। और सूरज और दूसरे सूरजों के सामने ना-कुछ है। उससे करोड़ों-करोड़ों गुने बड़े सूरज हैं। अब तो विज्ञान भी स्वीकृति देता है कि हमारा सूरज बहुत मीडियाकर, बहुत मध्यमवर्गीय है। कोई बहुत बड़ा सूरज नहीं है। तो हमारी पृथ्वी की क्या गणना!

रसेल ने एक छोटी सी कहानी लिखी है, कि एक पादरी ने रात सपना देखा कि वह मर गया है। तो उसने जा कर स्वर्ग के द्वार पर दस्तक दी। लेकिन वह बड़ा चकित हुआ। उसने सोचा था कि वह इतना धर्मात्मा है। इतनी सेवा की उसने अस्पतालों में, स्कूलों में, हजार तरह के मरीजों के पैर दबाए। तो परमात्मा दरवाजे पर खड़ा होगा स्वागत के लिए। वहाँ कोई भी नहीं था। दरवाजा बंद

था और दरवाजा इतना बड़ा था कि उसने बहुत देखने की कोशिश की तो उसका ओर-छोर न दिखायी पड़े। वह बहुत चिल्लाया, लेकिन दरवाजा इतना बड़ा था कि उसको साफ हो गया कि मेरी आवाज भीतर पहुँच नहीं सकती, इतना बड़ा दरवाजा है! खुद को ही इसकी आवाज लौटती हुई न मालूम पड़े, प्रतिध्वनि वापिस ही न लौटे। सिर मार-मार कर थक गया। जैसे कोई चींटी तुम्हारे दरवाजे पर सिर मार कर थक जाए, कहीं आवाज पहुँचती है? सब अहंकार धूल में मिल गया। सोचा था, स्वर्ग के द्वार पर परमात्मा स्वागत के लिए मिलेगा। इतना मैंने दान किया, पुण्य किया, सेवा की, धर्म किया, पूजा-प्रार्थना की, हजारों लोगों को ईसाई बनाया और इधर कोई पूछताछ ही नहीं है! यह क्या गजब हो रहा है?

बामुश्किल, अनंत वर्ष बीत जाने के बाद––तब तक तो वह भूल ही चुका था, सिकुड़ा-मुकड़ा वहीं बैठा था––दरवाजा खुला और एक हजार आँख वाला आदमी बड़े गौर से देखने लगा, जैसे कोई दूरबीन से किसी कीड़े-मकोड़े को देखे। वह और भी सिकुड़ गया। उसने समझा, कि यही परमात्मा है। और कहा, कि हे परमात्मा, इतने जोर से मत देखो, और तुम्हारी आँखें मुझे डराती हैं। क्योंकि एक-एक आँख सूरज की भाँति थी। देखना मुश्किल था। वह आदमी हँसा और उसने कहा, 'मैं परमात्मा नहीं, यहाँ का पहरेदार हूँ। और तुम यहाँ क्या कर रहे हो?

उसकी तो हिम्मत ही टूट गयी। यह पहरेदार है! वह तो समझा कि परमात्मा है। अब परमात्मा का सामना करना तो मुश्किल ही मामला है। हजार सूरज आँखोंवाला आदमी, हजार आँखोंवाला आदमी यह पहरेदार है! उसने कहा, कि मैं पृथ्वी से आया हूँ और पृथ्वी पर मेरे चर्च की बड़ी महिमा है। मैं जीसस का मानने वाला हूँ, भक्त हूँ। हिम्मत टूटी जा रही थी उसकी, क्योंकि उसके चेहरे पर कोई भाव ही नहीं आ रहा था। वह कह रहा था, 'जीसस, पृथ्वी,...?'

उसने कहा, 'तुम किस पृथ्वी की बात कर रहे हो? इंडेक्स नंबर? पृथ्वियाँ अनंत हैं। किस पृथ्वी से आ रहे हो? और किस जीसस की बात कर रहे हो? हर पृथ्वी के अपने-अपने जीसस हैं।'

सोचो तुम, उस पादरी की गति कैसी हो गयी होगी! उसने कहा, कि मैं उसी जीसस की बात कर रहा हूँ जो एकलौता बेटा है परमात्मा का। उसने कहा कि तुम पागल हुए हो? सभी पृथ्वियों पर ऐसे अनंत जीसस पैदा होते हैं और उनके भक्त सभी जगह ऐसा दावा करते हैं। लेकिन हिसाब मिल जाएगा, तुम पहले नंबर बताओ। उसने कहा, 'हम तो कभी सोचते ही नहीं नंबर। हम तो समझते रहे कि एक ही पृथ्वी है।' 'तो तुम अपने सूरज का नंबर बताओ, कि तुम किस सौरगृह से आ रहे हो?'

उसने कहा कि हम तो एक ही सूरज को जानते रहे हैं। उसने कहा, 'कठिनाई है, लेकिन फिर भी तुम रुको। खोज-बीन करने से पता चल सकेगा।'

फिर कहते हैं अनंत काल बीत गया, वह आदमी लौटा ही नहीं। क्योंकि खोज-बीन कोई छोटी है! वह पता लगाएगा, जाकर लाइब्रेरियन को मिलेगा, इंडेक्स नंबर खोजेगा, और इसको कुछ भी पता नहीं, यह आदमी आया है। पर इसकी आशा तो धूमिल हो गयी, कि अब यहाँ कुछ प्रवेश वगैरह, स्वागत, बैंड-बाजा—जो उसने सब सोच रखा था, और परमात्मा के बिलकुल बगल में बैठूंगा, सब जा चुका। इसी घबड़ाहट में और पसीने से बहता हुआ, उसकी नींद खुल गयी। सपना था यह तो। पर उस दिन के बाद उसकी हिम्मत टूट गयी।

और यह सपना सच है। इसी सपने की सचाई की बात नानक कर रहे हैं।

नानक कहते हैं, कि कितने पवन, कितने पानी, कितनी अग्नियाँ, कितने उनके देवता, कितने कृष्ण, कितने महेश।' अगर नानक से पूछा होता उस पादरी ने तो वे कहते, कितने जीसस, कितने कृष्ण, कितने महेश, कितने ब्रह्मा, कितनी रचनाएँ। कितने रंग, रूप, वेश, कितनी कर्मभूमियाँ, कितने सुमेरु पर्वत, कितने दुर्ग, कितने उपदेश, कितने चंद्र, कितने सूर्य, कितने इंद्र, कितने मंडल, कितने देश। कितने सिद्ध, बुद्ध, कितने नाथ, कितनी देवियों के वेश। कितने देवता, दानव, कितने मुनि, कितने रत्न, समुद्र। कितनी ही योनियाँ। कितनी ही वाणियाँ। कितने बादशाह, कितने सम्राट, कितनी श्रुतियाँ, कितने ही सेवक। नानक कहते हैं, इसका अंत नहीं है, अंत नहीं है।'

'केतीआ सुरती सेवक केते। नानक अंतु न अंतु।'

नानक सिर्फ अपने विस्मय को प्रकट कर रहे हैं। इसी विस्मय से लज्जा पैदा होगी, दावे मिट जाएँगे। क्या दावा करें?

बड़ी प्रसिद्ध घटना है, कि अमीर आदमी, बहुत अमीर आदमी, यूनान का सबसे बड़ा आदमी, सुकरात से मिलने गया, तो वही अकड़! स्वाभाविक थी उसकी अकड़ तो। जिसके पास कुछ नहीं है अकड़ते वे हैं, उसके पास तो बहुत कुछ था। एथेन्स में वह सबसे बड़ा अमीर था। सुकरात ने जैसे कुछ ध्यान ही न दिया। तो उसने कहा, 'जानते हो मैं कौन हूँ?' सुकरात ने कहा, 'बैठो, समझने की कोशिश करें।' उसने सारी दुनिया का नक्शा सामने रखवा लिया।

और उस अमीर से कहा, 'एथेन्स कहाँ है?' तो एथेन्स तो एक बिंदु है दुनिया के नक्शे पर। अमीर ने खोज-बीन करके एथेन्स के बिंदु पर अँगुली रखी और कहा, 'यह रहा एथेन्स!' इस एथेन्स में तुम्हारा महल कहाँ है?' वह तो बिंदु ही था, उसमें महल कहाँ बताए! उसने कहा, 'इसमें कहाँ महल बताएँ?' सुकरात ने कहा, 'इस महल में तुम कहाँ हो? और यह नक्शा केवल पृथ्वी का

है। अनंत पृथ्वियाँ हैं, अनंत सूर्य हैं, तुम हो कौन ?' कहते हैं वह जब जाने लगा, तो सुकरात ने नक्शा उसे भेंट कर दिया, कि इसे सदा अपने पास रखो। और जब भी अकड़ पकड़े कि मैं कौन हूँ, नक्शा खोल कर देख लेना--कहाँ एथेन्स ? कहाँ मेरा महल ? मैं कौन हूँ ? अपने से पूछ लेना।

हम ना-कुछ हैं। सब कुछ होने की अकड़ हमें पकड़े है, वही हमारा दुःख है, वही हमारी नरक है। जिस दिन जागोगे और देखोगे चारों तरफ, क्या कह सकोगे कौन हो तुम ? तुम खोते जाओगे, खोते जाओगे, तुम इधर छोटे होओगे, उधर परमात्मा की विराटता प्रकट होगी। उधर उसका विराट रूप प्रकट होगा, इधर तुम शून्य होते जाओगे। वह तभी प्रकट होगा, जब तुम बिलकुल शून्य हो जाओगे।

और विस्मय तुम्हें मिटाएगा। विस्मय आत्मघात है। शरीर का ही नहीं, पूरा ही आत्मघात है। पूरी अस्मिता की मृत्यु हो जाती है। इसलिए तुम उत्तर चाहते हो। और ज्ञानी तुम्हें प्रश्न देते हैं। और ज्ञानी तुम्हें ऐसे प्रश्न देते हैं, जिनके उत्तर हो ही नहीं सकते। ताकि तुम कभी अकड़ न उठा सको।

थोड़ा जाग कर, आँखों की धूल झाड़ कर देखो चारों तरफ, क्या उत्तर आदमी के पास है ? विज्ञान ने इतने-इतने उत्तर खोजे हैं, लेकिन कौन सा उत्तर उत्तर है ? कोई उत्तर उत्तर नहीं है। सब उत्तर प्रश्न को एक कदम और पीछे हटा देते हैं और कुछ भी नहीं होता।

एक बच्चे ने पूछा डी. एच. लारेन्स से बगीचे में घूमते वक्त, 'व्हॉय द ट्रीज़ आर ग्रीन ?' ये वृक्ष हरे क्यों हैं ? डी. एच. लारेन्स को उत्तर नहीं पता था, ऐसा नहीं है। उत्तर साधारण है। विज्ञान से पूछो तो वह कहता है, क्लोरोफिल के कारण हरे हैं। लेकिन यह कोई उत्तर है ? सवाल तो वहीं का वहीं खड़ा है। पूछा जा सकता है कि क्लोरोफिल क्यों है वृक्षों में ? क्या जरूरत है क्लोरोफिल को वहाँ होने की ? तुम जो भी उत्तर दोगे, प्रश्न उसके पीछे हट जाता है। कुछ फर्क नहीं पड़ता है। डी. एच. लारेन्स निश्चित ही बहुत बुद्धिमान आदमी था। नानक से उसकी बैठ जाती। उसने कहा कि अगर तुम सही उत्तर चाहते हो तो-- ट्रीज़ आर ग्रीन, बीकाज दे आर ग्रीन। वृक्ष हरे हैं क्योंकि हरे हैं। ज्यादा बकवास में मैं नहीं पड़ता।

यह एक कवि का उत्तर है। यह एक ऋषि का उत्तर है, जो तुम्हारे विस्मय को नष्ट नहीं करता, सिर्फ विस्मय को बढ़ाता है। यह कोई उत्तर है ! यह उत्तर है ही नहीं। लारेन्स यह कह रहा है कि मैं खुद ही विस्मय-विमुग्ध हूँ कि ये हरे क्यों हैं ? इतना ही कह सकते हो, कि हरे हैं क्योंकि हरे हैं, और ज्यादा क्या कहें ? और कोई उपाय भी तो नहीं है जानने का, कि हरे क्यों हैं ?

जिस दिन तुम उत्तर की खोज छोड़ दोगे--क्योंकि सभी उत्तर की खोज सिर्फ प्रश्न को पीछे हटाती है। इसीलिए तो दर्शनशास्त्र कहीं भी नहीं पहुँचता। पूछता जाता है, उत्तर खोजता जाता है, हर उत्तर नये प्रश्न खड़े कर देता है। बर्ट्रेण्ड रसेल ने लिखा है कि जब मैं बच्चा था तो मैं विश्वविद्यालय में पढ़ने गया, तो मैंने दर्शन-शास्त्र, फिलॉसफी चुनी। सिर्फ इसलिए, ताकि मुझे जीवन के सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाएँ। और अब मरते वक्त इतना ही कह सकता हूँ, कि उत्तर तो मुझे एक न मिला, प्रश्न मेरे हजार गुने हो गये।

तो एक तो दर्शनशास्त्री है, वह उत्तर की खोज में जाता है। हर उत्तर नये प्रश्न खड़े करता है। उनमें जो बहुत कमजोर होते हैं, यात्रा रोक देते हैं। उत्तरों को पकड़ कर बैठ जाते हैं। जो सबमें हिम्मतवर होते हैं, वे आखिरी तक पीछे जाते हैं। और अगर कोई भी व्यक्ति दर्शनशास्त्र में अंत तक पीछे जाए, तो एक न एक दिन उसे यह भूल दिखायी पड़ जाएगी कि यात्रा व्यर्थ है। और तभी धर्म का जन्म होता है। और तभी रहस्य पकड़ता है।

ये नानक रहस्य-अभिभूत होकर कह रहे हैं, कि इसका कोई अंत नहीं है। नानक कहते हैं, इसका अंत नहीं है, इसका अंत नहीं है।

गिआन खंड महि गिआनु परचंड । तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु ॥
सरम खंड की बाणी रूपु । तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥
ताकीआ गला कथीआ ना जाहि । जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि । तिथै घड़ीऐ सुरा सिधी की सुधि ॥

ज्ञान के जगत में जागरण की प्रचंडता। 'गिआन खंड महि गिआनु परचंड।'

वह जो ज्ञान का आयाम है, वहाँ होश, जागरण की प्रचंडता है। उसका बाहुल्य है। उत्तर का नहीं, शास्त्र का नहीं, सिद्धांत का नहीं, होश का। ज्ञान का अर्थ ही होश है। ज्ञान का अर्थ शास्त्रीय ज्ञान नहीं, सूचनाएँ नहीं, शब्द नहीं। ज्ञान का अर्थ है, 'होश।'

'ज्ञान के खंड में ज्ञान की प्रचंडता है। वहाँ नाद है, बिनोद है, कौतुक है, आनंद है।'

शास्त्र की तो बात ही नहीं उठाते। सिद्धांत की तो बात ही नहीं है वहाँ। वहाँ उत्तर नहीं है। क्या है वहाँ ? नाद है।

नाद एक अनुभव है। जैसे-जैसे तुम जागते हो, जैसे सुबह तुम सोये थे गहरे निद्रा में, पक्षी गीत गाते रहे, और तुम्हें सुनायी न पड़े। और तुम जागने लगे, नींद टूटने लगी और होश आने लगा और तुमने करवट बदली--आँखें अभी भी

बंद हैं—लेकिन पक्षियों के गीत तुम्हें सुनायी पड़ने लगे। सुबह की ताजी हवाएँ तुम्हें छूने लगीं, चारों तरफ जो नाद है वह तुम्हें स्मरण आने लगा। जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे ही अस्तित्व का एक नाद है जो तुम्हें दिखायी पड़ेगा।

ठीक ऐसे ही एक और सुबह है। और, एक और जागरण है। तुम्हारा सारा जीवन सोया हुआ है। अभी तो तुम नींद में चल रहे हो। अभी तो तुम जो भी कर रहे हो वह बेहोशी में है। लड़ रहे हो बेहोशी में, प्रेम कर रहे हो बेहोशी में। मिलन, जुदाई सब बेहोशी में हो रहा है।

ऐसा हुआ, एक गाँव के अखबार के संपादक ने शराबियों के खिलाफ एक लेख लिख दिया। शराबी बहुत नाराज हो गये। एक लठैत शराबी लट्ठ लेकर चला संपादक की तलाश करने, वह जाकर अंदर संपादक के कमरे में घुस गया। दुबला-पतला संपादक और यह मुस्टंड लठैत शराबी! डोल रहा है; उसने कहा, कहाँ है संपादक का बच्चा? उस संपादक ने कहा, 'आप बैठिये अभी आते हैं।' वह बाहर आया, देखा कि दूसरा लठैत चला आ रहा है। उसने पूछा, 'कहाँ हैं संपादक जी?' उसने कहा, 'अंदर बैठे हैं, आप अंदर चले जाइये।' फिर जो अंदर हुआ, आप जानते हैं।

वही हो रहा है। कोई होश में नहीं है। क्या तुम कर रहे हो, इसका तुम्हें ठीक-ठीक पता नहीं है। क्यों कर रहे हो, करनेवाले का ही तुम्हें कोई बोध नहीं है। पर तुम किये जा रहे हो। एक निद्रा में चलते हुए लोगों की भीड़ है। इस भीड़ में दुःख न हो तो और क्या होगा? इस भीड़ के अंतर-संबंधों में नरक न आ जाए तो और क्या होगा?

नानक कहते हैं, 'ज्ञान के खंड में होश की प्रचंडता है।' तुम अभी अज्ञान के खंड में हो। वहाँ बेहोशी की प्रचंडता है। वहाँ नींद असली तत्त्व है।

वहाँ नाद है। जो पहली घटना घटती है ज्ञानी को वह नाद है; जिसको ओंकार कहा उन्होंने। जिसको नानक कहते हैं, 'एक ओंकार सतनाम'। वह नाद का नाम है। यह ओंकार तो सिर्फ प्रतीक है उसको बताने के लिए। क्योंकि अस्तित्व एक गहन संगीत से निर्मित है। अस्तित्व संगीत है। और बड़ा गहन संगीत है। अनाहत संगीत है। कोई उसे पैदा नहीं कर रहा है। किसी चीज से पैदा नहीं हो रहा है। उसका कोई कारण नहीं है। अस्तित्व के होने का ढंग संगीत है। इसलिए तो संगीत में तुम लीन हो जाते हो। और अगर संगीत में तुम लीन होते हो, तो उसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि उस संगीत में कहीं नाद की थोड़ी परछाईं है।

महान संगीतज्ञ का एक ही अर्थ है कि वह उस नाद को वाद्य में पकड़ ले। उस ओंकार को थोड़ा सा तुम्हारे लिए, तुम्हारे नींद की दुनिया में उतार लाए। संगीत का अर्थ तुम्हारी वासनाओं को उत्तेजित करना नहीं है।

दुनिया में दो तरह के संगीत हैं। एक पूर्वीय संगीत है, जिसकी गहरी से गहरी खोज हिंदुओं ने की है। उन्होंने नाद पर उसको आधारित किया। जब संगीत नाद की तरफ ले जाता है, तो संगीत को सुनते-सुनते ध्यान निर्मित होने लगता है।

और फर्क समझ लेना। ध्यान का अर्थ है, तुम ज्यादा जागने लगोगे। तुम परिपूर्ण होश से भर जाओगे, जैसे एक दीया अचानक भीतर जल जाए। तुमने सुना है, कि संगीतज्ञ अपने संगीत से बुझे दीये जला सकता है। तुम बाहर के दीयों का ख्याल मत करना। बाहर के दीयों से इसका कुछ लेना-देना नहीं है। तुम बुझे हुए हो। और अगर संगीतज्ञ खुद भी समाधिस्थ है तो हो! क्योंकि वह समाधिस्थ हो, तो ही ओंकार की ध्वनि को संगीत में पिरो पाएगा, और तुम्हारे जगत में ला पाएगा। थोड़ी सी भी झलक ले आए, एक बूंद भी ले आए उस अमृत की तो तुम पाओगे, कि तुम जाग गए हो, तुम होश से भरे हो, तुम्हारी नींद से किसीने तुम्हें झकझोर दिया है—और यह संगीत ध्यान बन जाएगा।

फिर एक दूसरा संगीत है ठीक इसके विपरीत, जो सुलाता है। जो तुम्हें और तंद्रा में ले जाता है। उस संगीत को सुनकर तुम्हारी वासना जगेगी। इस्लाम ने उसी संगीत के कारण संगीत को वर्जित कर दिया, क्योंकि इस्लाम को पता ही न था कि हिंदुओं ने एक और संगीत खोज लिया है, जो सहस्रार से संबंधित है।

दो संगीत हैं। एक तो कामवासना से, सेक्स सेंटर से संबंधित है। और एक संगीत है, जो सहस्रार से संबंधित है। सहस्रार से संबंधित संगीत तो नाद है। सेक्स सेंटर से, काम वासना से संबंधित संगीत तो केवल वासना को फुसलाना है। इस्लाम को वही पता था। जहाँ इस्लाम पैदा हुआ, वहाँ एक ही संगीत का बोध था, संगीत लोगों को वासना में ले जाता है, कामवासना में ले जाता है, राग-रंग में ले जाता है। इसलिए इस्लाम ने तो बिल्कुल इनकार ही कर दिया, कि संगीत को जगह ही नहीं दी है। मस्जिद के सामने बैंडबाजा तक मत बजाना।

और यह भी ठीक है। क्योंकि दुनिया में चल रहा निन्यानबे प्रतिशत संगीत ऐसा ही है, जो तुम्हें मंदिर में नहीं ले जा सकता। मंदिर से दूर ले जाएगा। पश्चिम में संगीत की हजारों नयी धाराएँ हैं। वे सब की सब विकृत हैं। उस संगीत में तुम अपना होश खो दोगे। वह शराब जैसा है। उससे तुम जागोगे नहीं, तुम उससे और वासना में लीन हो जाओगे। वेश्या उस संगीत का उपयोग करती है। संतों ने भी उस संगीत का उपयोग किया है। संगीत वही है। लेकिन वही व्यक्ति उसको नाद बना सकता है जिसको नाद का अनुभव हुआ हो।

नानक तो संगीतज्ञ हैं। वे तो बोलते नहीं, गाते हैं। वे तो उत्तर भी देते हैं, तो गीत गा कर देते हैं। और ये गीत कोई बनाए हुए गीत नहीं हैं। ये सहज हैं।

किसीने कुछ पूछा और नानक मर्दाना को इशारा करेंगे, और वह बजाने लगता है। और नानक गीत गाने लगते हैं। गा कर ही उन्होंने कहा है। क्योंकि पूरा अस्तित्व गीत की भाषा को समझता है। और जब कोई व्यक्ति खुद समाधिस्थ हो, तो उसके संगीत में नाद उतर आता है।

नाद का अर्थ है, वह परम ध्वनि जो अस्तित्व में चुपचाप पैदा हो रही है। जैसे कभी रात के सन्नाटे में तुम्हें सुनायी पड़ती है सन्नाटे की आवाज। ठीक वैसा ही चौबीस घंटे एक नाद चलता है। एक 'रिदम' अस्तित्व का है। जब कुछ भी नहीं हो रहा है, तब भी वह चल रहा है। पर उसके लिए तुम्हें बड़ा शांत हो जाना पड़ेगा, तब तुम समझ पाओगे। तुम्हारी भीतर की सब आवाज बंद हो जाए, तब तुम समझ पाओगे। अभी तो तुम हजार तरह के बाजार से भरे हो। अभी तुम्हारे भीतर बड़ा शोरगुल है। इसी शोरगुल में तुम्हें जो पसंद पड़ता है संगीत वह भी शोर को बढ़ाने वाला ही हो, तो ही पसंद पड़ता है। वह भी अराजक हो, उपद्रव हो, तुम्हारी विक्षिप्तता को प्रकट करता हो, तो ही पता चलता है।

मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में एक आदमी आलाप भर रहा था। आधी रात को नसरुद्दीन उसके पास गया और उसने कहा कि आप को तो अपने संगीत का कार्यक्रम लंडन, मास्को, पीकिंग, वहाँ देना चाहिए। उस आदमी ने कहा, कि नसरुद्दीन, मैंने कभी सोचा भी नहीं कि तुम संगीत के इतने प्रेमी हो। क्या तुम्हें मेरा संगीत इतना पसंद आता है? उसने कहा कि नहीं, कम से कम वहाँ से तुम्हारी आवाज हमें सुनायी न पड़ेगी।

तुम्हारे तरफ जो चल रहा है संगीत के नाम, वह विसंगीत है। उसकी आवाज तुम्हें सुनायी ही न पड़े तो अच्छा है। तुम वैसे ही विसंगीत से भरे हो। तुम्हें, काफी वैसे ही जहर तुममें भरा है। और उस जहर को उठाने की सब चेष्टाएँ चल रही हैं। नाच रहे हैं लोग, तो वासना को जगाने के लिए। गा रहे हैं लोग, तो वासना को जगाने के लिए।

पर जिस चीज से भी वासना जग सकती है उसी चीज से वासना सो भी सकती है। इसको याद रखना। जो चीज जहर है, वही अमृत हो सकती है, इसको याद रखना। उपयोग पर निर्भर है। उपयोग पर ही परिणाम निर्भर है। जहर औषधि बन जाती है। और जहर मृत्यु भी बन जाती है। जहर मौत से बचाता भी है, मौत में ले भी जा सकता है।

नानक कहते हैं, जो पहला अनुभव होता है ज्ञान-खंड में वह नाद है। दूसरा अनुभव विनोद है। यह बड़ी समझ लेने की बात है। क्योंकि तुम सोच ही नहीं सकते, कि संत और विनोद का क्या संबंध? विनोद का मतलब है कि जिंदगी गंभीर नहीं रह जाती है। एक हँसी-खुशी हो जाती है। विनोद का अर्थ है, जिंदगी

एक हल्का आनंद हो जाती है। निर्भार, जिसमें कोई वजन नहीं। तुम साधू-संतों को देखते हो, जो गंभीर हैं, बड़े चेहरे वाले हैं। जिनके चेहरे पर ऐसा लगता है कि जैसे दुनिया भर की मुसीबत इन्हीं के ऊपर आ पड़ी है।

नानक कहते हैं, जिसने नाद सुन लिया वह कैसे उदास होगा? उसके जीवन में उदासी नहीं होगी, विनोद होगा। वह हँसेगा। वह हँस सकेगा। वही हँस सकता है। तुम तो हँसोगे कैसे? तुम्हारी तो हँसी भी झूठी है। तुम्हारे प्राणों में प्रफुल्लता नहीं है। तुम्हारे होठों पर हँसी कैसे होगी? जिसने जाना, हँस सकता है। वह ही हँस सकता है।

नानक कहते हैं, जिसने नाद को पहचान लिया उसके जीवन का ढंग विनोद का होगा। उसके जीवन में तुम गंभीरता न पाओगे। प्रामाणिकता पाओगे, गंभीरता न पाओगे। उसके जीवन में हँसी-खुशी पाओगे, उदासी न पाओगे। उसकी आँखों में कालिमा न होगी। उसके आँखों में एक उत्सव होगा।

तीसरी चीज है कौतुक। उसके जीवन में विस्मय होगा, उत्तर नहीं। उत्तर वह जानता नहीं। जो उत्तर दूसरे भी जानते हैं, वह भी उसके लिए न रहे। उसका कौतुक जग गया है। वह आश्चर्य से भरा है। वह छोटे बच्चे कि भाँति पुलकता है। हर चीज रहस्य बताती है। वह जहाँ भी देखता है, पाता है अनंत रहस्य हैं। कहीं कोई उत्तर नहीं है। कहीं भी उत्तर मिल जाए, अहंकार को पैर रखने की जगह मिल गयी। और जब कहीं भी कोई उत्तर नहीं मिलता तो अहंकार अपने आप विसर्जित हो जाता है। जगह न बची खड़े होने की।

रहस्य है! रहस्य का अर्थ हुआ, कि तुम्हारे हाथ के भीतर, तुम्हारी मुट्ठी के भीतर कुछ भी नहीं आ सकता है। हाँ, तुम चाहो तो रहस्य के भीतर जा सकते हो। रहस्य को तुम मुट्ठी में कब्जा नहीं कर सकते। तिजोड़ी में बंद नहीं कर सकते। शास्त्र में कैद नहीं कर सकते। रहस्य मुट्ठी में नहीं आता। उस पर कोई नियंत्रण नहीं हो सकता। हाँ, तुम चाहो तो उसमें जा सकते हो। जैसे कोई सागर में उतर जाए, ऐसा कोई रहस्य में उतर सकता है। लेकिन मुट्ठी में बंद नहीं होता रहस्य। रहस्य आकाश जैसा है।

तो नानक कहते हैं, पहला तो नाद, विनोद, कौतुक और आनंद। विनोद, आनंद की तरह है। और आनंद विनोद की गहराई है। विनोद सतह है, जैसे लहरें उठती हैं सागर में। और आनंद सागर की गहराई है। मुस्कुराहट, प्रसन्नता, उस आनंद की पुलकें हैं जो तुम्हारे ओंठों तक आ जाती हैं। तुम हँस सकते हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर परम आनंद भरा है। विनोद सतह है; आनंद गहराई है। और जब आनंद विनोद से जुड़ता है तो जीवन में परम धन्यता आ जाती है।

तुम्हारा विनोद भी रुग्ण है। जब तक कोई गंदी मजाक न करे, तुम हँस भी नहीं सकते। तुम्हें हंसने के लिए भी कोई गंदगी चाहिए। इसलिए तो दुनिया में

नब्बे, बल्कि निन्यानबे प्रतिशत मजाक सेक्स से संबंधित होती हैं, गंदी होती हैं, अश्लील होती हैं। जब तक कोई अश्लील बात न कहे, तुम हँस भी नहीं सकते। तुम्हारी हँसी रुग्ण है।

जब तक कोई आदमी रास्ते पर गिर ही नहीं पड़े, पैर न फिसल जाए केले के छिलके पर, तब तक तुम हँस ही नहीं सकते। जहाँ करुणा चाहिए थी, वहाँ तुम्हें हँसी आती है। जहाँ उस आदमी को सहारा देना था, वहाँ तुम व्यंग करते हो। तुम्हारा हंसना रुग्ण है। तुम्हारा हँसना स्वस्थ नहीं है। एक आदमी अगर गिर पड़ा है तो हँसने जैसा क्या है? उसको सहारा चाहिए, लेकिन तुम हँस रहे हो।

क्यों? क्योंकि तुम्हारे भीतर तुम दूसरों को गिराना चाहते हो हर हालत में। और जिनको तुम ज्यादा गिराना चाहते हो, अगर वे गिरेंगे तो तुम ज्यादा हँस सकोगे। समझो, कि एक भिखारी गिर जाए, तुम ज्यादा न हँसोगे। इंदिरा गाँधी गिर जाए तो तुम बहुत खिलखिला कर हँसोगे। एक भिखारी गिरा, इसमें क्या हँसने की बात है? गिरा ही हुआ था। उसको तुमने गिराने का कभी सोचा ही न था। लेकिन एक अचेतन वासना है कि इंदिरा गिर जाए; तो तुम्हें हँसी आएगी। नौकर गिरे तो ज्यादा न हँसोगे, मालिक गिर जाए तो हँसोगे।

तुम्हारी अचेतन हिंसा ही तुम्हारी हँसी तक में भरी है। तुम्हारा हँसना तक जहर है। इसलिए तुम्हारा विनोद, विनोद नहीं है, व्यंग है। और व्यंग और विनोद का वही फर्क है। कड़वा है तुम्हारा विनोद। उसमें दंश है। काँटे हैं, फूल नहीं हैं।

संत भी हँसता है। उसके हँसी में दंश नहीं है, काँटे नहीं हैं। और अक्सर वह अपने पर हँसता है। क्योंकि वह अपनी हालत को देखता है। जब वह तुम पर भी हँसता है तब भी वह अपने पर ही हँसता है, क्योंकि तुममें भी वह अपनी ही झलक देखता है। जब एक आदमी गिरता है, तब वह आदमीयत को गिरते देखता है, आदमी को गिरते नहीं। तब वह जानता है कि आदमी असहाय है, हँसीयोग्य है, रिडिक्युलस है। कितनी अकड़ के चला जा रहा था, टाई-वाई लगायी हुई थी। सब तरह सजा-बजा, और एक छिलके ने गिरा दिया! एक केले के छिलके ने मजाक कर दी!

अगर वह इस आदमी को देखता है तो उसे दिखायी पड़ता है आदमी की असहाय, हेल्पलेसनेस की अवस्था। कितना कमजोर है, और अकड़ कितनी! एक केले का छिलका गिरा देता है, और हिमालय पर चढ़ने की अकड़ लेकर चलता है आदमी। परमात्मा को पराजित करने का ख्याल रखता है, केले का छिलका गिरा देता है। वह अगर हँसता है, तो मनुष्य की असहाय अवस्था पर हँसता है। अपनी असहाय अवस्था पर हँसता है, लज्जा से। लेकिन किसीको निंदा से,

किसी को गिराने के भाव से नहीं। उसका विनोद है। वह भीतर आनंदित है। और उसके आनंद की लहरें, उसके ओठों तक आ जाती हैं।

लज्जा या शील, ज्ञान-खंड की वाणी रूप है। जितना-जितना ज्ञान गहन होता है, जागरूकता बढ़ती है, उतनी लज्जा। नानक कहते हैं, 'सरम खंड की वाणी रूप।' और वह जो लज्जा है, वही वाणी है।

बुद्धपुरुष झिझक कर बोलते हैं। बुध्दू टेबल ठोंक कर बोलते हैं। इसलिए बुध्दू बहुत से अनुयायी इकट्ठे कर लेते हैं। अनुयायी तो देखते हैं कि कौन कितने जोर से बोल रहा है। अगर कोई आदमी झिझक कर बोल रहा है तो तुम उसके पीछे जाओगे ही नहीं, कि यह आदमी खुद ही संदिग्ध है, तुम समझोगे। वह संदेह के कारण नहीं झिझक रहा है, वह लज्जा के कारण झिझक रहा है। वह इसलिए झिझक रहा है कि कहना कितना मुश्किल है।

बुद्ध के पास बहुत लोग आते थे नये-नये सवाल, अलग-अलग सवाल लेकर। बुद्ध जवाब तो कम देते थे। बहुत थोड़े सवालों के जवाब देते थे। खास सवालों के तो जवाब देते ही नहीं थे। क्योंकि खास सवालों का जवाब ही नहीं। सिर्फ गैर-खास सवालों का जवाब हो सकता है। जो मुसीबत आदमी ने खुद पैदा की है, उसका जवाब हो सकता है। लेकिन जो रहस्य परमात्मा का है उसका कोई जवाब नहीं।

तो बुद्ध चुप रह जाते। बहुत लोग यही सोच कर लौट जाते कि अभी इसे पता नहीं है, पता होता तो बोलता। तुम चुप्पी को समझ ही न पाओगे। वह लज्जा जो बुद्ध में है, बहुत कम लोगों में रही है। तो बुद्ध के समय भी बहुत से मतवादी थे, जो अकड़ कर जवाब देते थे। लोग उनके पीछे इकट्ठे हो जाते। वे भी समझाते थे लोगों को कि पूछ लो यह सवाल जाकर। अगर ज्ञान हो गया है तो जवाब चाहिए। तुम भी सोचते हो यही, कि जिसको ज्ञान हो गया, उसके पास सब जवाब होने चाहिए।

जिसको ज्ञान हो जाता है उसके सब जवाब खो जाते हैं। उसके पास कोई जवाब नहीं बचता। उसे बड़ी लज्जा आती है कि क्या तुमसे कहे? उसे लज्जा आती है, कि क्या तुम पूछ रहे हो, उसका भी तुम्हें पता नहीं। रास्ते पर चलते आदमी ने मुझे पकड़ लिया है कई बार, और कहा, कि ईश्वर है? रास्ते पर मैं चला जा रहा हूँ; ट्रेन पकड़ने के लिए प्लेटफॉर्म पर हूँ, कोई आदमी बीच में रोक लेता है, 'जरा एक मिनट। ध्यान क्या है?'

उनको क्या कहा जाए? ये क्या पूछ रहे हैं इसका इन्हें पता नहीं है! ये उत्तर चाहते हैं। अगर इन्हें उत्तर दे दिया जाए तो उत्तर ये ऐसा चाहते हैं, जैसे दो और दो चार। काश, जिंदगी गणित होती! बड़ा आसान हो जाता।

जिंदगी गणित नहीं है। जिंदगी एक काव्य है, जिसको समझने की क्षमता चाहिए। जिसे मौन में सुनने की योग्यता चाहिए। और काव्य के उत्तर गणित जैसे दो और दो चार जैसे नहीं हैं। काव्य तो विस्मय जगाता है। वह तुम्हें उठाता हैं तुम जहाँ हो वहाँ से। वह तुम्हें उत्तर देकर वहीं स्थापित नहीं करता। वह तुम्हारी जड़ों को उखाड़ता है और तुम्हें नयी यात्रा पर ले जाता है। विस्मय से और विस्मय की ओर। नानक कहते हैं, इसका अंत ही नहीं, अंत ही नहीं है।

'लज्जा या शील वाणी रूप हैं।'

बुद्ध चुप रह जाते हैं। जब कोई पूछता है, 'ईश्वर है'? तो बुद्ध चुप रह जाते हैं। इस कारण दो भ्रांतियाँ पैदा हुई। हिंदुओं ने तो समझा कि इस आदमी को पता ही नहीं है। क्योंकि पता होगा, गाँव के साधारण पंडित से पूछो, वह कहता है कि हाँ, ईश्वर है, और प्रमाण देता है। जब हमारा पंडित प्रमाण दे देता है, तो यह आदमी ? गाँव का साधारण पंडित जानता है!

मैंने सुना, कि ऐसा हुआ कि एक मूढ़ देश में, एक महामूढ़ मूढ़-नेता हो गया। वह प्रधानमंत्री बन गया। वह बोल लेता था। भाषण करने में तेज था। नेता होने के लिए उतनी ही जरूरत है। और कोई योग्यता चाहिए भी नहीं। वह काफी चिल्ला-चिल्ला कर बोलता था और प्रभावित कर देता था आवाज से। और जब कोई इतना चिल्लाकर बोलता है तो लोगों को भरोसा आ जाता है, कि इतना चिल्लाकर बोल रहा है तो कुछ पता ही होगा। पढ़ा-लिखा बिलकुल नहीं था।

मुसीबत तो तब आयी जब वह प्रधानमंत्री हो गया। क्योंकि नियम यह था कि प्रधानमंत्री भाषण न दे, पढ़ कर बोले। तो पढ़ तो सकता ही नहीं था, और आदमी होशियार था, और नेता होने के लिए चालाकी तो चाहिए ही। तो उसने सोचा, कोई हर्जा नहीं! तो वह कोई भी कागज रख लेता था। अखबार की कटिंग काट ली, रख ली। भाषण तो जो उसे देना था वही देना था, लेकिन वह उसमें से पढ़ कर देता था। पढ़ा-लिखा तो था नहीं, तो अक्सर कभी उलटा भी पकड़ लेता था। ऐसा हुआ, कि कोई परदेश से आदमी आया हुआ था किसीका मेहमान, उसने इसका व्याख्यान सुना। वह हैरान हुआ क्योंकि एक अखबार की कटिंग रखे था पुरानी कोई। और वह भी उलटी पकड़े था।

तो उसने खड़े होकर कहा कि यह तो हद हो गयी! यह आदमी उसमें जो लिखा है वह तो पढ़ ही नहीं रहा है। और पढ़ भी नहीं सकता, क्योंकि उसको उलटी रखे हुए है।

पर नेता, जैसे कि नेता चालाक होते हैं--गाँव के लोगों को बात जँची। उन मूढ़ों को बात जँची, कि अरे! यह बिलकुल बेपढ़ा-लिखा आदमी है। इसको यह भी पता नहीं कि सीधा...

नेता ने कागज नीचे रख कर कहा कि सुनो, जिस को पढ़ना आता है उसको क्या सीधा और क्या उलटा ? यह गाँव के लोगों को बिलकुल जँची, कि बात बिलकुल ठीक है। जिसको पढ़ना ही आता है। उस नेता ने कहा, कि 'तुम ने सुनी कहावत--'नाच न आवै आँगन टेढ़ा'। अरे आँगन टेढ़ा होने से क्या होता है? नाच आना चाहिए। पढ़ना आना चाहिए, कागज कैसा ही हो! मैं उसको किसी भी तरह रखूँ, हर हालत में पढ़ सकता हूँ। यह आदमी गैरपढ़ा-लिखा है।' और वह आदमी अब भी नेता है। गाँव के लोगों को जँच गयी बात।

बुद्ध से लोग पूछते, 'ईश्वर है ?' वे चुप रह जाते। तो एक तो यह भ्रांति पैदा हुई, कि ईश्वर है नहीं इसलिए बुद्ध चुप हैं। हिंदुओं ने समझा, इस आदमी को पता नहीं है। और बौद्धों ने समझा, जो बुद्ध के अनुयायी थे, कि ईश्वर है नहीं इसलिए बुद्ध चुप हैं, नहीं तो क्यों चुप रहें? इसलिए बुद्ध को लोग नास्तिक समझते हैं। खुद उनके मानने वाले बुद्ध को नास्तिक समझते हैं, और इससे महान आस्तिक कभी जमीन पर हुआ नहीं।

नानक की बात से तुम्हें समझ में आ जाएगा : 'लज्जा वाणी है।' जब तुम पूछते हो, 'ईश्वर है ?' तो बुद्ध चुप रह जाते हैं। चुप रह जाते हैं कि कैसे कहें ? किस मुँह से कहें ? कौन कहे ? रहस्य इतना बड़ा है, कि कहा नहीं जा सकता है। बुद्ध चुप रह कर कुछ कह रहे हैं और तुम समझ ही नहीं पा रहे हो। या तुम जो भी समझ पा रहे हो, वह गलत है।

नानक कहते हैं, 'उसमें जो रचना होती है, वह अत्यंत अनूप और अनुपम हैं।' उस लज्जा में जो बोध की नयी-नयी रचनाएँ होती हैं, नयी-नयी तरंगें आती हैं, वे अनुपम हैं। अत्यंत अनूठी हैं। उनका कोई जोड़ नहीं, अद्वितीय हैं।

'उसकी चर्चा शब्दों में नहीं की जा सकती और जो ऐसा करने का प्रयास करता है, वह पीछे पछताता है।'

क्यों पीछे पछताता है, जो प्रयास करता है? क्योंकि जैसे ही शब्द में कोई बात बोली जाती है, वैसे ही लगता है कि जो कहना था वह तो कहा नहीं गया। यह तो कुछ और हो गया। जो कहना था वह तो पीछे छूट गया। और जब वह सुनने वाले की आँखों को देखता है तब उसे लगता है, जो कहना था वह तो पहुँचा ही नहीं। नब्बे प्रतिशत तो पहले छूट गया, शब्द जब बनाया। और दस प्रतिशत जो थोड़ा बहुत शब्द में था, वह भी सुनने वाले तक नहीं पहुँचा। उसने कुछ और ही सुना है। तुमने कुछ और ही कहा था।

बुद्ध कुछ और ही कहते हैं, अज्ञानी कुछ और ही सुनते हैं। और जो अज्ञानी सुनते हैं, उसपर संप्रदाय निर्मित होते हैं। इसलिए बुद्धों से उन संप्रदायों का बिल्कुल संबंध टूट जाता है। कोई संबंध नहीं रह जाता।

इसलिए पीछे पछताता है, कि जो कहेगा वह पछताएगा । इसलिए जिन्होंने कहने की भी कोशिश की है उन्होंने भी निरंतर साथ में यह कहा है, कि तुम शब्द को मत पकड़ लेना ।

अब नानक ने ही यह कहा, अब वे पछता रहे होंगे । सिक्खों को देखेंगे, पछताएँगे । यह कभी सोचा भी न होगा, कि यह जमात खड़ी होगी । बुद्ध पछता रहे हैं कि जो बौद्धों की जमात खड़ी हुई है, यह कभी सोचा ही न होगा। महावीर पछता रहे हैं। वे लोग सब मोक्ष में मिलते होंगे और अपना-अपना रोना रोते होंगे । रोएँगे ही ।

क्योंकि सुन कर वह बात समझी नहीं जा सकती । सुनने वाला शब्द पकड़ लेता है । फिर शब्द को ढोता है । फिर शब्द के आसपास संप्रदाय खड़ा होता है। फिर वह संप्रदाय चलता है हजारों-हजारों साल तक । और हजारों तरह की भूलें उस संप्रदाय के कारण पैदा होती हैं और हजारों तरह की विकृतियाँ । वह जमीन पर एक घाव की तरह छूट जाता है, मनुष्य की चेतना पर एक बीमारी की तरह ।

'जो ऐसा कहने का प्रयास करता है वह पीछे पछताता है । वहीं स्मृति, मति, मन और बुद्धि की रचना होती है ।'

उस ज्ञान-खंड में, जहाँ होश जगता है, वहीं से स्मृति की धाराएँ, मति, मन और बुद्धि की रचना होती है । वहीं चेतना के सभी रूप ढलते हैं ।

'वहीं देवता और सिद्ध की सुधि या मनीषा गढ़ी जाती है ।'

उस होश में यह सब दिखायी पड़ता है; ये सारे रूप । जैसे मिट्टी से कोई हजारों चीजें बनाए, मूर्तियाँ बनाए, ऐसे ही चेतना के सब रूप हैं; बुद्धि, मन, सुधि, स्मृति, मनीषा, प्रतिभा सब चेतना के रूप हैं ।

लेकिन जब तुम जाग कर इनके ऊपर उठते हो, तब तुम्हें पता चलता है कि ये सब तो चेतना के रूप हैं और इनसे जो भी जाना जाता है, सीमित होगा । क्योंकि रूप से तुम अरूप को नहीं जान सकते। मति, बुद्धि, सुधि, प्रतिभा इन सब के पीछे जो अरूप छिपा है, वह है जागरण । वह है बोध। वह है होश । वह है चेतना ।

उस अरूप को तुम पकड़ो और इन रूपों को भीतर छोड़ दो । जैसे ही तुम अरूप का धागा भीतर पकड़ लेते हो, वैसे ही सारे जगत में निराकार की पहचान शुरू हो जाती है । बुद्धि से तुम जो भी जानोगे, वह सीमित होगा । साकार होगा । बुद्धि तो ऐसे ही है जैसे कोई घर की खिड़की पर खड़ा होकर आकाश को देखे, तो खिड़की का जो चौखटा है, आकाश उतना ही दिखायी पड़ेगा जितना वह चौखटा है ।

चेतना बहुत रूप लेती है । जैसे पदार्थ ने बहुत रूप लिए हैं, कहीं चट्टान है, कहीं बादल है, कहीं बर्फ है, कहीं आकाश है । जैसे पदार्थ ने अनंत रूप लिए हैं ऐसे ही चेतना ने भी अनंत रूप लिए हैं । कहीं बुद्धि है, कहीं सुधि है । बुद्धिमान में बुद्धि है, पंडित में बुद्धि है । सुधिमान में, साधू में सुधि है । स्मरण है, सुरति है । जो लोग बड़ी याददाश्त रखते हैं, चाहे उनमें बुद्धि न हो, स्मृति होती है । अक्सर ऐसा होता है कि बहुत-बुद्धिमान लोगों में स्मृति नहीं होती । और बहुत-स्मृतिवान लोगों में बुद्धि नहीं होती । ऐसे बहुत से प्रमाण हैं, जहाँ बड़ी स्मृति के लोग बड़े बुद्धू पाए गये । क्योंकि स्मृति का काम अलग है । जो है उसे जान लिया, उसकी याददाश्त । बुद्धि का काम दूसरा है । जो नहीं जाना है, जिससे कोई पहचान नहीं, उसमें से रास्ता बनाना । दोनों अलग-अलग हैं । स्मृति अतीत है, और बुद्धि की खोज भविष्य में है ।

और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि बहुत स्मृति हो तो सारी चेतना उसी में जकड़ जाती है, तो बुद्धि ज्यादा नहीं हो पाती । और अभी सारी शिक्षण-संस्थाएँ स्मृति पर ही बल देती हैं, इसलिए अगर दुनिया में बड़ा बुद्धूपन है तो कोई आश्चर्य नहीं । क्योंकि स्मृति का शिक्षण होता है । बुद्धिमत्ता का कोई शिक्षण नहीं होता । तो एक बच्चा पढ़-लिख कर लौट आता है, बिल्कुल जड़ हो कर लौट आता है । सौभाग्यशाली हैं वे लोग, जो विश्वविद्यालय से अपनी बुद्धि बचा कर लौट आते हैं । नहीं तो नष्ट हो ही जाती है । याद करते-करते, करते-करते याद ही पकड़ जाती है । स्मृति अलग है, बुद्धि अलग है ।

प्रतिभा और ही अलग बात है । प्रतिभा का अर्थ है, सहज जीवन को जानने की और पहचानने की क्षमता । बिना किसी तर्क के जीवन के उत्तर की झलक पा लेने की क्षमता का नाम प्रतिभा है । अगर तुम बड़े से बड़े वैज्ञानिक आइन्स्टीन से पूछो तो वह यही कहेगा, जो भी मैंने जाना वह बुद्धि से नहीं जाना; प्रतिभा से। उसके लिए कोई उत्तर नहीं है। अनेक-अनेक रूपों में प्रतिभा घटित होती है ।

मैडम क्यूरी खोज कर रही थी, जिसके लिए उसको नोबेल प्राइज मिला; वह थक गयी वर्षों तक खोज करते, कुछ न कुछ । और एक रात नींद में उठ कर टेबल पर जाकर नींद में ही उसने उत्तर लिख दिया । फिर वापिस सो गयी । सुबह तो हैरान ही हुई कि उत्तर आया कहाँ से ? क्योंकि जब तक उसे याद है, शाम तक वह परेशान थी, उत्तर नहीं आया । तब उसे धीरे-धीरे याद आया कि जैसे उसने एक सपना देखा । वह उठी और सपने में उसने कुछ लिखा था। फिर उसे अपने अक्षर भी पहचान गये । और रात में उसने उत्तर लिख दिया, जो दिन में खोज-खोज कर थक गयी थी । सभी कवियों का यह ख्याल है कि जब तक तुम कोशिश करो, कुछ नहीं होता । गीत उतरता है । वह प्रतिभा का हिस्सा है।

लेकिन नानक कहते हैं, कि ये सब मति, स्मृति, मन, बुद्धि, प्रतिभा, सुधि, सब खेल हैं चेतना के। अलग-अलग ढाँचे हैं। इन ढाँचों से तुम जो भी जानोगे, वह सीमित होगा। इन ढाँचों के भी ऊपर जाना है। एक को ही जानना है बाहर, एक को ही जानना है भीतर। और जब तुम एक को भीतर पहचानोगे, तभी तुम एक को बाहर पहचानोगे। क्योंकि भीतर जब तुम एक होगे तभी बाहर की एक की पहचान आ सकती है।

और जब तुम एक भीतर, एक बाहर को पहचान लेते हो, तो दो नहीं बनते। अचानक तुम पाते हो कि जो भीतर है, वही बाहर है। तुम अचानक पाते हो कि बाहर भीतर भी फासला हमारा निर्मित किया हुआ है।

जो आकाश बाहर है तुम्हारे घर के, वही भीतर है। दीवालें तुमने बना रखी हैं। द्वार-दरवाजे तुमने लगा रखे हैं। आकाश को तुम खंडित नहीं कर पाते। तुम सोचते हो कि आकाश खंडित हो गया? कि तुमने दीवाल खड़ी कर दी तो आकाश दो टुकड़ों में हो गया? आकाश अखंड है। तुम्हारी दीवाल बने न बने; आज है, कल गिर जाएगी, आकाश जैसा है वैसा ही बना रहेगा।

जैसे ही तुम एक को भीतर, एक को बाहर पहचानते हो, दोनों गिर जाते हैं। अद्वैत का जन्म होता है। ज्ञान-खंड की जो आखिरी ऊँचाई है वह अद्वैत का अनुभव है। एक का अनुभव है।

• • •

सच खंडि वसै निरंकारु

प्रवचन १९, दिनांक ९-१२-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : ३७

करम खंड की वाणी जोरु ।
तिथै होरु न कोई होरु ॥
तिथै जोध महाबल सूर ।
तिन महि राम रहिआ भरपूर ॥
तिथै सीतो सीता महिमा माहि ।
ताके रूप न कथने जाहि ॥
न ओहि मरहि न ठागे जाहि ।
जिनकै राम बसै मनमाहि ॥
तिथै भगत वसहि के लोअ ।
करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥
सच खंडि वसै निरंकारु ।
करि करि वेखै नदरि निहाल ॥
तिथै खंड मंडल वरभंड ।
जे को कथै त अंत न अंत ॥
तिथै लोअ लोअ आकार ।
जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार ॥
वेखै विगसै करि वीचारु ।
नानक कथना करड़ा सारु ॥

मनुष्य असहाय है। लेकिन तभी तक, जब तक परमात्मा से दूर है। मनुष्य दुर्बल है, दरिद्र है, दीन है, लेकिन तभी तक जब तक परमात्मा से दूर है। उससे हमारी दूरी ही हमारी दरिद्रता है। और जितने हम उससे दूर होते जाते हैं, उतना ही जीवन अर्थहीन हो जाता है।

पश्चिम में इस सदी में बहुत से विचारक हुए जिनकी ऐसी प्रतीति है, कि जीवन में न कोई अर्थ है, न कोई प्रयोजन है, न कोई नियति है। जीवन एक व्यर्थ की कथा है। ए टेल टोल्ड बाई ऍन ईडियॉट फुल ऑफ फ्यूरी एंड नॉइज़, सिग्नीफाइंग नथींग– जैसे कोई मूढ़ कहे एक कहानी, शोरगुल बहुत मचाए लेकिन अर्थ उसमें बिल्कुल न हो।

ऐसा लगेगा ही। ऐसी प्रतीति होगी। तुम अपने ही जीवन को देखो, शोरगुल बहुत है। बड़े काम में तुम संलग्न हो। चल ही नहीं रहे, दौड़ रहे हो। लेकिन कभी पूछा अपने से, कहाँ पहुँच रहे हो ? दौड़-दौड़ कर भी वहीं खड़े हो जहाँ जन्म के बाद तुमने अपने को पाया था। रत्ती भर तो उपलब्धि न हुई। पाया क्या है ? अगर हाथ देखोगे तो खाली है। तिजोड़ी भर गयी हो भला, लेकिन तिजोड़ी यहीं पड़ी रह जाएगी। तुम खाली हो। और तुम जितने भी भरेपन के सपने देख रहे हो, उनमें सच्चाई जरा भी नहीं है।

तुम कितना ही इकट्ठा कर लो संसार का, लेकिन मरते समय संसार छूट जाएगा। और जो छूट ही जाना है वह तुम्हारा होकर भी तुम्हारा नहीं हो पाता। जिन्होंने इस जगत की संपदा को अपना आधार बनाया उन्होंने रेत पर महल खड़े किये हैं, वे गिरेंगे। और तुम कितनी देर अपने को धोखा दे पाओगे ? कभी तो जागोगे, कभी तो होश आएगा, कभी तो तुम विचार करोगे कि चला इतना, पहुँचा कहीं भी नहीं।

तुम्हारी अवस्था कोल्हू के बैल जैसी है। चलता बहुत है। चलता ही रहता है दिन-भर। शोरगुल भी होता है उसके आसपास क्योंकि तेल पिरता है, घानी चलती है, पहुँचता कहाँ है ? साँझ वहीं पाता है जहाँ सुबह अपने को पाया था। फिर कल सुबह वहीं से यात्रा होगी।

तुम्हारा जीवन भी कोल्हू के बैल जैसा है। तुम कितना ही सजाओ, तुम कितना ही छिपाओ, तुम कितने ही ऊपर से रंग-रोगन करो, भीतर तुम्हें भी पता है कि भिखारी का पात्र है तुम्हारा हृदय। माँगता है और खाली है। और भरता कभी भी नहीं। जितना दूर आदमी होता जाता है परमात्मा से, उतना ही दरिद्र होता जाता है। स्वामित्व तो उसके साथ है।

और हम केवल दूर ही होते तो ठीक था, हम उसके विपरीत हैं। दूर होना भी इतना बुरा नहीं जितना विपरीत होना है। हम जो भी कर रहे हैं वह उससे विपरीत है। दूर होकर भी अगर हम उसके साथ हों, तो तत्क्षण क्रांति हो जाए।

जैसे कोई आदमी नदी में उलटी धार में बह रहा हो, स्रोत की तरफ तैरने की कोशिश कर रहा हो, लड़ रहा हो; नदी से दूर ही नहीं है, दुश्मन है। और मजा यह है कि तुम जितना नदी से लड़ोगे उतना ही तुम पाओगे नदी तुम्हारी दुश्मन नहीं है। नदी को क्या लेना-देना ? तुम पहुँचो या न पहुँचो, नदी को क्या प्रयोजन है ? नदी दुश्मन नहीं है। नदी तो अपनी धार में बही जा रही है अपनी मस्ती में। उसे अपना सागर खोजना है। तुम उससे उल्टे बह रहे हो। तुम्हारे कारण ही नदी तुम्हें दुश्मन मालूम होती है। तुम्हारे कारण ही तुम्हें संसार में सब तरफ शत्रु दिखायी पड़ते हैं। और जीने का मौका कहाँ मिले ? शत्रुओं से सुरक्षा करने में ही समय व्यतीत हो जाता है। कैसे अपने को बचाएँ, इसी में अवसर खो जाते हैं।

परमात्मा से दूर तो जीवन अर्थहीन होगा ही। परमात्मा से विपरीत न केवल अर्थहीन बल्कि एक दुःस्वप्न भी होगा। दूर, सपना होगा; विपरीत, दुःख का सपना हो जाएगा। और तुम जिसे जीवन कहते हो वह एक नाईट मेयर है—दुःस्वप्न है।

तुमने कभी दुःस्वप्न का विचार किया ? दुःस्वप्न का अर्थ होता है, तुम जागना चाहते हो, जाग नहीं सकते। दुःस्वप्न का अर्थ होता है, छाती पर कोई चढ़ा है। तुम हटाना चाहते हो लेकिन हाथ नहीं हिलते। हटाना चाहते हो, लेकिन कोई शक्ति नहीं है। तुम पाते हो कि कोई तुम्हें पहाड़ों से गिरा रहा है। लेकिन तुम्हारे पास कुछ भी उपाय नहीं कि तुम अपने को बचा सको। तुम आँख खोलना चाहते हो और आँख नहीं खुलती है। तुम हाथ हिलाना चाहते हो, कि रोक दो, लेकिन हाथ नहीं उठता है। तुम चीखना चाहते हो और कंठ से आवाज नहीं निकलती है। ऐसी जो स्वप्न की दशा है वह दुःस्वप्न है, नाईट मेयर है।

परमात्मा से दूर जो है, वह सपने में है; विपरीत जो है, वह दुःख के सपने में है। तुम अपने जीवन को देखोगे, तो ऐसा ही पाओगे। न आँख खोले खुलती है, न हाथ हिलाए हिलता है। न छाती से वजन हटता है, और फिर भी जी रहे हो। तो फिर तुम्हारा जीवन सिवाय संताप के और कुछ भी नहीं हो सकता।

कीर्कगार्ड, सार्त्र, मार्सेल, हायडेगर, पश्चिम के बड़े विचारक कहते हैं कि जीवन संताप है, एंग्वीश है। इसमें चिंता से मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। उनकी बात बहुत दूर तक सच है। जैसा तुम्हारा जीवन है, अगर उसका अध्ययन किया जाए तो जीवन एक संताप है।

लेकिन एक और जीवन भी हमने जाना है, नानक का, कबीर का, बुद्ध का, कृष्ण का, क्राइस्ट का। हमसे बिल्कुल विपरीत। जहाँ हम संताप से दबे हैं वहाँ उनके जीवन में एक नृत्य है। और जहाँ हमारे भीतर सिवाय दुःख के और कुछ भी नहीं गूँजता वहाँ उनके जीवन में एक संगीत है, एक नाद है। जहाँ हम ऐसे चलते हैं जैसे पैरों में भयंकर भारी जंजीरें बँधी हों, वहाँ उनके पैरों में नृत्य है और पुलक है। जहाँ हमें देख कर ऐसे लगता है, कि होना एक महापाप का फल है, वहाँ उन्हें देख कर लगता है यह एक आशीर्वाद है।

एक और भी ढंग है जीने का। उस ढंग की कुंजी है ईश्वर से दूर नहीं, ईश्वर के पास। और ईश्वर के विपरीत नहीं, ईश्वर के अनुकूल। जो धर्म के अनुकूल बहने लगता है, उसके जीवन में रूपांतरण हो जाता है। जरूरत भी नहीं है, कि तुम विपरीत लड़ो, लेकिन अहंकार लड़ाता है—जितना तुम जीतोगे उतने ही तुम बड़े हो जाओगे।

और मजा यही है कि हो उल्टा रहा है। जितने तुम जीतते हो उतने तुम छोटे होते जाते हो। गरीब आदमी के पास तुम बड़ा हृदय भी पा लो, अमीर आदमी के पास इतना बड़ा हृदय भी नहीं होता। और छोटा हो गया है। दरिद्र दान भी दे दे, अमीर की देने की हिम्मत ही खो जाती है। गरीब थोड़ा प्रेम भी कर ले, अमीरों के जीवन से प्रेम की धुन भी खो जाती है। प्रार्थना तो बहुत दूर, परमात्मा तो बहुत दूर—साधारण प्राकृतिक प्रेम की धुन खो जाती है।

जितना तुम इस संसार में इकट्ठा करते हो, लगता है उतने ही सिकुड़ते जाते हो, छोटे होते जाते हो। यह बड़ा विरोधाभास है। जितना तुम्हारे पास होता है उतने ही तुम छोटे होते हो। तुम्हारे भीतर का आकाश सिकुड़ जाता है। और जो तुम्हारे पास है तुम उसीके लिए डरे होते हो। तुम उसीसे परेशान होते हो।

नानक कहते हैं, कि शक्ति का सूत्र है उसकी कृपा। और उसकी कृपा तब उपलब्ध होती है जब तुम अपने को बिल्कुल असहाय समझ लेते हो; बिल्कुल ! टोटल ! रत्ती भर भी चालाकी वहाँ न चलेगी। तुम ऐसा ऊपर से कहो कि मैं

असहाय हूँ, इससे कुछ न होगा ।

यह प्रतीति गहरे में प्रविष्ट हो जाए । यह प्रतीति तुम्हारे हृदय के गहनतम में उतर जाए । यह प्रतीति तुम्हारे रोएँ-रोएँ में गूँजे । यह ओंठों की प्रार्थना न हो, यह कंठ का उद्‌गार न हो, यह हृदय की प्रतीति हो । यह तुम्हारे आँसुओं से जाहिर हो । यह तुम्हारे शब्द-शब्द में समा जाए, यह तुम्हारे निःशब्द में भी गूँजती रहे । तुम उठो, बैठो, और ऐसे जैसे कि तुम परम असहाय हो ।

तुम कर क्या सकते हो ? तुम्हारा किया कुछ भी तो नहीं होता । तुम्हारे किये अनकिया ही होता है । तुम जो करते हो उससे जो नहीं घटना चाहिए वही घटता है । तुम्हारे किये कुछ भी नहीं होता ।

बड़ी प्रसिद्ध कहावत है । और उस तरह की कहावतें हैं, सारी दुनिया की अलग-अलग भाषाओं में हैं । लोग कहते हैं, मैन प्रपोजेज एंड गॉड डिस्पोजेज । इससे गलत कोई कहावत नहीं हो सकती कि मनुष्य प्रस्तावना करता है और ईश्वर इन्कार कर देता है । हालत बिल्कुल उलटी है । गॉड प्रपोजेज एंड मैन डिस्पोजेज । परमात्मा प्रस्ताव करता है और आदमी इन्कार करता रहता है । परमात्मा तुम्हें सभी कुछ दे डालना चाहता है ।

यह अस्तित्व लुट जाना चाहता है तुम्हारे लिए । लेकिन तुम्हारे द्वार बंद हैं । यह अस्तित्व तुम पर बरसना चाहता है लेकिन तुम्हारा घड़ा उलटा रखा है । यह अस्तित्व सब तरफ से तुम्हारे भीतर आना चाहता है । लेकिन भय के कारण तुमने संध भी नहीं छोड़ी कि कोई भीतर प्रवेश कर सके । और भीतर तुमने इतना कूड़ा-करकट और कबाड़ इकट्ठा कर रखा है कि वहाँ भी जगह नहीं है, कि कोई प्रवेश भी करे तो बैठ सके । परमात्मा को बैठने लायक स्थान भी तुम्हारे भीतर नहीं ।

उसकी कृपा तो तब उपलब्ध होती है जब बिल्कुल असहाय हो जाते हो । और असहाय अवस्था की परिपूर्ण प्रतीति ही लज्जा है । तब तुम शर्माते हो । तुम 'मैं' कहने तक में शर्माते हो । तुम कहते हो, किस आधार पर कहूँ कि मैं हूँ ? किस बुनियाद पर कहूँ, कि मेरे किये कुछ होता है ?

सारा जीवन तो उल्टी ही बात कह रहा है । तुमने जो किया सब असफल हुआ । तुमने जो किया सब हार गया, सब मिट गया । तुम्हारे बनाए सब महल गिर गये । फिर भी तुम चेतते नहीं, फिर भी तुम कर्ता को पकड़े चले जाते हो । फिर भी तुम कहते हो मैं करने वाला हूँ । जब तक तुम कहते हो, मैं करने वाला हूँ, तब तक तुम लज्जा से न भरोगे । और नानक कहते हैं लज्जा प्रार्थना है । तुम कहते हो, 'मैं जानने वाला हूँ,' तब तक तुम झुकोगे नहीं । पंडित कहीं झुक सकता है ? उसका माथा झुक नहीं सकता । शरीर को भला ही झुका ले, माथा अकड़ कर खड़ा रहता है ।

बड़ी प्रसिद्ध घटना है । सूफी उस कहानी का उपयोग किये हैं । कि दो मित्र एक स्कूल में साथ ही साथ पढ़े और बड़े हुए । फिर संयोग और भाग्य, और जीवन की यात्रा उन्हें अलग-अलग ले गयी । एक तो बड़ा सम्राट हो गया और दूसरा एक बड़ा फकीर हो गया । सम्राट राजमहल में रहने लगा और फकीर नग्न गाँव-गाँव में भटकने लगा । सम्राट की बड़ी ख्याति, फकीर की भी कुछ कम न थी । आखिर एक बार राजधानी आया तो सम्राट ने बड़ा आयोजन किया । उसने गाँव भर को दीयों से सजा दिया, फूल बरसा दिये । उसका मित्र आ रहा है !

फकीर जब आ रहा था, रास्ते में कुछ तो यात्रियों ने उससे कहा, 'तुम्हें कुछ पता है ? वह सम्राट अपना वैभव दिखाना चाहता है; अहंकारी है । उसने सारे रास्ते फूलों से भर दिये हैं । घर-घर पर, इंच-इंच पर दीये लगा दिये हैं । सारा गाँव दिवाली मना रहा है । वह तुम्हें दिखाना चाहता है । जिन सीढ़ियों से तुम महल में जाओगे उन सीढ़ियों को उसने स्वर्ण से मढ़ दिया है । उन पर बहुमूल्य हीरे-जवाहरात जड़ दिये हैं । वह अपनी अकड़ दिखाना चाहता है । वह दिखाना चाहता है, कि देखो तुम क्या हो ? एक नंगे फकीर ! और मैं क्या हूँ !' उस फकीर ने कहा, 'देख लेंगे उसकी अकड़ ।'

फिर दिन आया, फकीर गाँव में पहुँचा । सारी राजधानी उसे लेने पहुँची । लेकिन सम्राट चकित हुआ । वर्षा के दिन नहीं हैं, फकीर के घुटने तक कीचड़ लगी है । वहाँ तो पूछना अशोभन मालूम होता है इतने लोगों के सामने; जब वे सीढ़ियाँ पार करके महल के एकांत में पहुँच गये, और जो बहुमूल्य गद्दे-गलीचे बिछाये गये थे वे सब उस फकीर ने अपने पैर की कीचड़ से गंदे कर दिये, तब सम्राट ने पूछा, 'मैं बहुत हैरान हूँ, क्योंकि वर्षा का कोई समय नहीं, रास्ते सब सूखे पड़े हैं और तुम्हारे पैर में इतनी कीचड़ कैसे लग गयी ? क्या हुआ ?' उस फकीर ने कहा, 'अगर तुम अपनी अकड़ दिखाना चाहते हो तो हम भी अपनी फकीरी दिखाना चाहते हैं ।'

तो सम्राट खिलखिला कर हँसने लगा और उसने कहा कि 'फिर आओ हम गले लग जाएँ । क्योंकि न मैं कहीं पहुँचा, न तुम कहीं पहुँचे । हम दोनों वहीं के वहीं हैं, जैसे हम स्कूल से बिदा हुए थे । मैं भी कहीं नहीं पहुँचा, तुम भी कहीं नहीं पहुँचे ।'

तुम धन से भी अकड़ से भरते हो । तुम त्याग से भी अकड़ से भर जाते हो । और अकड़ ही बाधा है । अकड़ मिट जाए, उसका नाम लज्जा है ।

तो नानक कहते हैं, जो लज्जा से भर गया उस पर परमात्मा की अनुकंपा बरसने लगती है । लज्जा पात्रता है । जब तक तुम अकड़ से भरे हो तब तक तुम्हें परमात्मा की जरूरत ही नहीं । और जिसकी तुम्हें जरूरत नहीं, वह तुम्हें कैसा

मिल सकेगा ? तुमने कभी उसे बुलाया नहीं, तुमने कभी उसे माँगा नहीं, तुमने कभी उसे चाहा नहीं। और कभी तुमने बुलाया भी तो कुछ और चाहने के लिए— कि बच्चा बीमार है, कि अदालत में मुकदमा है। तुमने उसे कभी नहीं माँगा, कि हम तुझे ही चाहते हैं। न अदालत, न बाजार, न दूकान, न बीमारी, न शरीर, हम किसी और कारण से नहीं, हम तुम्हें ही चाहते हैं।

जब तक तुम उसे ही न पुकारोगे–– सिर्फ उसके लिए ही, तब तक तुम्हारी प्रार्थना झूठी है। तुम्हारी प्रार्थना भी संसार के लिए है। उस प्रार्थना का दिव्यता से कोई लेना-देना नहीं है। तुम कुछ माँग रहे हो, जो संसार का है। शायद परमात्मा से मिल जाए।

एक अमीर आदमी मर रहा था। जैसा उसका जिंदगी भर का गणित था, कि हर चीज धन से मिल जाती है, तो उसने अपने पुरोहित को बुलाया और कहा कि मैं अगर दस करोड़ रुपये तुम्हारे मंदिर को दान दूँ तो क्या मुझे स्वर्ग में प्रवेश मिल सकेगा ?

उस पुरोहित ने कहा, 'चेष्टा कर लेने में कुछ हर्ज नहीं है, लेकिन भरोसा मैं नहीं दिला सकता। क्योंकि मैंने कभी सुना नहीं, कि कोई धन से स्वर्ग में प्रवेश पा सका हो। लेकिन कोशिश कर लेने में कुछ हर्ज नहीं है। धन तो छूट ही जाएगा। एक आखिरी कोशिश कर देख लो।'

तुमने अगर धन से सब पाया है तो तुम कहीं न कहीं मन में यह भाव सँजोए ही बैठे होगे कि प्रार्थना भी, पूजा भी, ध्यान भी उसीसे पा लेंगे। धन तो अहंकार से मिलता है। वह तो महत्त्वाकांक्षा से मिलता है। और पूजा, प्रार्थना, ध्यान लज्जा से मिलता है। वह मिलता है जहाँ सब महत्त्वाकांक्षाएँ गिर गयीं और जहाँ तुमने अपने को सब भाँति व्यर्थ पाया, जहाँ तुम्हारा किया कुछ भी नहीं होता, जहाँ तुम बिलकुल असहाय हो, जहाँ तुम पाते हो कि मैं क्या कर पाऊँगा ! बस, उसी क्षण।

और करने का ही अहंकार नहीं, जानने का भी अहंकार गिर जाना चाहिए। तुम वेद के ज्ञाता हो, कि तुम चतुर्वेदी हो, कि तुम चारों वेद जानते हो, कि तुम कुरान को कंठस्थ किये हो, कि बाइबिल का तुमसे बड़ा कोई ज्ञाता नहीं ! नहीं, इस ज्ञान से भी तुम उसे न पा सकोगे। क्योंकि ज्ञान भी सूक्ष्म कर्ता का ही भाव है–– 'मैं जानता हूँ।' न तुम्हारा जानना, न तुम्हारा कृत्य। वे दोनों ही तुम्हारे अहंकार के पहलू हैं। जहाँ दोनों गिर जाते हैं...

क्या जानते हो तुम ? कभी तुमने इसे बहुत होशपूर्वक पूछा, कि क्या जानता हूँ मैं ? द्वार पर पड़े पत्थर को भी तुम ठीक से नहीं पहचानते और दूर परमात्मा को जानने का तुम दावा करते हो। एक फूल को भी जान नहीं सके हो अब तक।

अँग्रेज कवि टेनीसन ने एक महत्त्वपूर्ण बात कही है। उसने कहा है, कि अगर मैं एक छोटे से फूल को भी जरा जान लूँ, तो जानने को शेष क्या बचता है ? सभी कुछ जान लिया। एक फूल के खिलने को तुमने जान लिया, तो तुमने इस पूरे अस्तित्व की खिलावट पहचान ली। एक फूल के सौंदर्य को तुमने पहचान लिया, तो तुमने सारे जगत के सौंदर्य को पहचान लिया। एक फूल के सत्य में तुम उतर गये, तो बचता क्या है ? जिसने बूँद जान ली, उसने सागर जान लिया। क्योंकि गुणधर्म तो दोनों का एक ही है। बूँद में सब कुछ तो समाया हुआ है। वह तो सागर का ही तो संक्षिप्त संस्करण है। जिसने एक अणु जान लिया, उसने सब जान लिया।

लेकिन हम जानते क्या हैं ? हमारी जानकारी क्या है ? उधार है, बासी है, परायी है। हजारों हाथों से चल कर आयी है। अगर हजारों लोग जूतों को पहन चुके हों तो तुम उन जूतों में पैर डालने को राजी न होओगे। लेकिन तुम्हारा ज्ञान ऐसा ही है। पैर ही नहीं डाले हैं तुमने, सिर डाल दिया है। उधार है, बासा है। किन्हीं ने जाना होगा, कि नहीं जाना होगा, तुम्हें कुछ पक्का पता नहीं है। बस, तुम किताब से पढ़ते हो। जिससे सुना है, उसका भी तुम्हें पक्का पता नहीं कि वह जान कर कह रहा है, कि उसने खुद जाना है। वह भी हो रहा हो, उसने भी किसी से सुना होगा।

एक फिल्म अभिनेत्री के बाबत मैंने सुना है, कि रात जब वह अपने गहने उतार कर रखती––तो बड़ी होशियार थी, चालाक थी––एक चिट गहनों के पास रख देती, कि 'ये गहने नकली हैं। असली गहने तो बैंक में हैं।' लेकिन एक सुबह जागी तो पाया, कि गहने नदारद हैं और टेबिल पर दूसरी चिट रखी है, जिस पर लिखा है, 'मुझे नकली गहनों की जरूरत है। क्योंकि मैं नकली चोर हूँ। असली तो जेल में है।'

तुम जिससे सुन रहे हो, तुम जिससे समझ रहे हो, तुम जिसके शब्दों को उधार ले रहे हो, वह भी असली है ? तुम्हारे पास कोई भी तो उपाय नहीं जानने का। कोई भी तो कसौटी नहीं जिससे तुम परख लो, कि कौन असली हैं। और कसौटी तो तभी होगी जब तुम्हारा अनुभव होगा। लेकिन जब तुम्हारा अनुभव होगा तब तो तुम्हें किसी से सुनने की जरूरत भी न रह जाएगी।

यही तो मुसीबत है। जब हाथ में सोना होता है तो कसौटी नहीं, जब कसौटी आती है तब सोने के कसने की जरूरत नहीं होती। जब तुम्हारे पास अनुभव होता है जिस पर तुम कस सको, तब कोई जरूरत नहीं रह जाती। और जब तक तुम कस नहीं सकते तब तक बड़ी गहन जरूरत है। और तुम अपने ज्ञान

को उधार ज्ञान से ढांकते रहते हो। फिर इससे अकड़ पैदा होती है, कि मैं जानता हूँ। वही अकड़ बाधा है।

ज्ञान भी नहीं, कर्तृत्व भी नहीं; तुम मिट गये। तुम्हारे दोनों आधार गिर गये। भवन भूमिसात हो गया। इस भूमिसात अवस्था को नानक कहते हैं, लज्जा। और जब लज्जा सघन हो जाती है तो उसकी कृपा की वर्षा शुरू हो जाती है। तुम्हारी लज्जा में ही उसकी अनुकंपा उतरेगी। तुम्हारी लज्जा ही उसकी अनुकंपा से मिल सकेगी। उन दोनों का ताल-मेल है। लज्जा गड्ढे की भाँति है और उसकी अनुकंपा वर्षा की भाँति। वर्षा तो पहाड़ों पर भी होती है लेकिन पहाड़ खाली रह जाते है। गड्ढे में पानी भर जाता है लेकिन पहाड़ खाली रह जाते हैं। गड्ढे में पानी भर जाता है। झीलें बन जाती हैं। वर्षा तो सभी पर हो रही है। उसकी वर्षा में कोई भेद-भाव नहीं।

नानक कहते हैं, उसके लिए न कोई नीच है, न कोई ऊँच है। न कोई पात्र है, न अपात्र है। वह तो बरस सभी पर रहा है। लेकिन कुछ गड्ढों की भाँति हैं, वे भर जाते हैं। कुछ पहाड़ों के शिखरों की भाँति हैं, वे खुद अपने से इतने भरे हैं कि जगह कहाँ ?

तुम गड्ढे की भाँति हो जाओ तो नानक की लज्जा को उपलब्ध हुए। इधर लज्जा बनी, गड्ढा तैयार हुआ, वर्षा तो हो ही रही थी। तुम झील बन जाओगे। तुम जानने की झील बन जाओगे, तुम चैतन्य की झील बन जाओगे। तुम्हारे होने का सारा ढंग बदल जाएगा। तुम रहोगे नहीं। गड्ढे का मतलब है तुम मिट गये। तुम्हारे भीतर परमात्मा हो गया। तब तुम असहाय नहीं हो। तब तुमसे ज्यादा शक्तिशाली भी कोई नहीं।

'कृपा-खंड की वाणी शक्ति है।'

करम खंड की वाणी जोरु । तिथै होरु न कोई होरु ॥
तिथै जोध महाबल सूर । तिन महि राम रहिआ भरपूर ॥

'कृपा का जो खंड है वहाँ की वाणी शक्ति है। इसको छोड़कर उसमें दूसरा कुछ भी नहीं है। उसमें महाबली शूरवीर हैं, जिन सब में राम ही भरपूर समाया हुआ है।'

जैसे ही कोई व्यक्ति लज्जा को उपलब्ध हुआ, कृपा शुरू हुई बरसनी, भरनी। दीन जो था वह सम्राट हो जाता है। संतों ने कहा है, उसकी कृपा से लंगड़े पहाड़ पार कर गये। उसकी कृपा से अंधों ने देखा। ये साधारण अंधों और लंगड़ों की बातें नहीं हैं। ये तुम्हारे संबंध में बातें हैं।

बहरे सुनने लगे। जब तक तुम अपने अहंकार से भरे हो, तुम्हारे कान बहरे रहेंगे, आँखें अंधी रहेंगी। तुम्हारा हृदय पथरीला रहेगा--पाषाण। उसमें कुछ भी प्रतीति न होगी। उसमें कोई संवेदना न होगी। तब तक तुम करीब-करीब मृत रहोगे। तुम्हारा जीवन ऐसा रहेगा जैसा दीया बुझा-बुझा जलता है। आखिरी तेल चुका जाता है। तुम भभक कर न जीओगे। तुम्हारा जीवन ऐसा न होगा कि जिसमें एक त्वरा हो, जिसमें एक सघनता हो, जिसमें संवेदना की एक गहराई हो। जिसमें हृदय ऐसे मुर्दे की भाँति न धड़कता हो। जहाँ जीवन में एक बाढ़ हो। तुम न केवल भरे-पूरे हो, बल्कि बाँट भी सको इतना तुम्हारे पास है। तुम्हारे भीतर एक आंतरिक वैभव हो, एक सुगंध हो, जो तुम कितना ही बाँटो और चुके न। और तुम कितना ही दो, बढ़ता जाए। तुम्हारे पास जीवन का अनंत स्रोत हो।

कृपा के साथ यह घटित होता है। यह बड़ी उलटी पहेली है। यह बड़ी उलटवाँसी है। और इसलिए संतों के वचन बड़े रहस्यपूर्ण मालूम होते हैं। सीधे-सादे, पर रहस्यपूर्ण। क्योंकि बड़ी उलटी बातें कहते मालूम पड़ते हैं। वे कहते हैं मिटो, ताकि हो सको। वे कहते हैं खो दो अपने को, ताकि तुम पाने के हकदार हो जाओ। मर जाओ, ताकि तुम्हें अमृत जीवन उपलब्ध हो सके।

तुम बचाते हो इसीलिए तुम नहीं हो। तुम जितना अपने को पकड़ते हो, उतना ही दीन, दरिद्र, उतने ही अर्थहीन। तुम जितना अपने को सँभालोगे उतने ही भटकोगे। बड़ी उलटी बातें हैं। एकदम से पकड़ में नही आतीं। क्योंकि हमारे तर्क के बिलकुल विपरीत है। क्योंकि हमारा तर्क कहता, बचना है तो अपने को बचाओ। संतों का तर्क कहता है, बचना है ? अपने को खो दो। बचाने वाला कभी अपने को बचा पाया है ? हमारा तर्क कहता है कहीं मौत न आ जाए। इसलिए हम जीवन को जोर से पकड़े हैं। और संत कहते हैं, जिन्होंने जोर से पकड़ा, उनकी मौत तो पहले आ गयी। और भी पहले आ गयी। और जिन्होंने मरने को खुद अपनी स्वीकृति दे दी, जो खुद मौत से मिलने चले गये हैं, उन्होंने अमृत को जाना। उन्होंने पाया, मौत तो केवल चेहरा था, पीछे अमृत छिपा है। भय के मारे भागते थे, अमृत से वंचित रह जाते थे। मौत से जाकर गले मिल गये, अमृत से मिलन हो गया। कृपा, अनुकंपा का जो जीवन में हिस्सा है वहाँ शक्ति लक्षण है।

कार्लोज केस्टिनेडा की चौथी पुस्तक मैं पढ़ रहा हूँ। पुस्तक का नाम है, 'टेल्स् ऑफ पावर'। वह इसी चौथे खंड के संबंध में लिखी गयी पुस्तक है। जैसे ही तुम्हारे जीवन में प्रभु की किरण उतरती है, तुम अनंत शक्तिशाली हो जाते हो।

तुम्हारे ऊपर अपरंपार शक्ति की क्षमता आ जाती है। तुम मिट्टी छुओ, सोना होने लगता है।

पहले ठीक उलटा था। तुम सोना छूते थे, मिट्टी हो जाता था। क्योंकि तुम थे। अब तुम जिस तरफ देखो, वहीं स्वर्ग नजर आता है। पहले बिलकुल उलटा था। तुम्हारी नजर जहाँ जाती थी, वहाँ नर्क हो जाता था। जहाँ तुम्हारे पैर पड़ जाते थे वहीं अपशगुन हो जाते थे, जो तुम करते थे वहीं विषाद हाथ में आता था। तुम प्रेम भी करने जाते थे, घृणा हो जाती थी। तुम मित्र बनाने जाते थे और शत्रु निर्मित होते जाते थे। तुम जो भी करते थे—क्योंकि तुम गलत थे, इसलिए विपरीत परिणाम होते थे, और तुम परमात्मा के विपरीत चल रहे थे। वही शक्ति का स्रोत है। तुम उसकी तरफ पीठ किये थे। तुम्हारे कारण कुछ भी नहीं हो रहा था। अब तुम नहीं हो। अब सब हो सकता है। अब तुम्हारी छाया में जादू होगा। तुम्हारी आँख जिस तरफ पड़ेगी वहाँ स्वर्ग के द्वार खुल जाएँगे। तुम जहाँ जाओगे, तुम जहाँ उठोगे, बैठोगे, वहाँ की सुबह बदल जाएगी। तुम्हारे संग-साथ जो खड़ा हो जाएगा वह भी तुम्हारी महिमा से मंडित हो जाएगा, वह भी थोड़ी सुगंध तुमसे ले जाएगा।

इसलिए तो नानक कहते हैं--'साध-संगत'। वे कहते हैं साधुओं के संग रहो। जिन को शक्ति का स्रोत मिल गया है उनके साथ रहो, उनके पास बैठो। उनका सत्संग महिमावान है। क्योंकि उनके पास बैठने से ही...

शक्ति संक्रामक है। स्वास्थ्य संक्रामक है। बीमारी ही नहीं पकड़ती, ध्यान रखना, स्वास्थ्य भी पकड़ता है। बुराई ही नहीं पकड़ती दूसरे से, भलाई भी अवतरित होती है तुममें और बह जाती है। ताजे आदमी के पास तुम भी ताजगी अनुभव करते हो। बासे, उदास, मुर्दा आदमी के पास थोड़ी देर में तुम मुर्दा होने लगते हो। दस-पच्चीस लंबी शकलवाले लोग उदास बैठे हों, उनके पास जरा जाकर बैठो; थोड़ी देर में ही तुम पाओगे कि तुम आए कुछ और थे, तुम हो कुछ और गये। तुम भी उदास हो। तुम भी रो रहे हो। जहाँ लोग हँस रहे हों, खिल रहे हों, उनके पास थोड़ी देर बैठो। तुम शायद उदास आए हो, रोते हुए आए हो, आँसू सूख जाएँगे--मुस्कुराहट आ जाएगी।

आदमी इतना अलग-अलग थोड़े ही है! हम सब भीतर से जुड़े हैं और हम सब भीतर से एक-दूसरे में बह रहे हैं।

साध-संगत पर नानक का बड़ा जोर है। वे कहते हैं, तुम्हारे किये क्या होगा? तुम उनके पास रहो जिन्होंने उसका सहारा पा लिया है। उनके माध्यम से उस परमात्मा का हाथ तुमको भी छुएगा। उनके माध्यम से उसकी हवाएँ तुम्हारे

हृदय तक भी पहुँच जाएँगी। फूल के बगीचे से कोई ऐसे भी गुजर जाए तो भी थोड़ी सी सुगंध उसके वस्त्रों में समा जाती है। बुद्धों के पास कोई ऐसे भी गुजर जाए, अकारण भी, संयोगवशात् भी, तो भी बुद्धत्व की सुगंध कपड़ों को पकड़ जाती है। वह आदमी वही नहीं, कुछ बदल जाता है।

साध-संगत बड़ी कीमती है। परमात्मा से संबंध जोड़ना तो आज मुश्किल है। मुश्किल इसलिए है कि तुम्हें उसका कुछ भी पता-ठिकाना तो मालूम नहीं। संत उसके प्रतीक हैं। उनका तुम्हें पता-ठिकाना मालूम हो सकता है। तुम उन्हें आसानी से खोज ले सकते हो। परमात्मा को तुम कहाँ खोजोगे? और संत का अर्थ है जिसमें परमात्मा सघन है। जहाँ परमात्मा की किरणें सघन हो कर पड़ रही हैं। जहाँ ताप गहन है।

संत ने अपने व्यक्तित्व में परमात्मा को इस तरह इकट्ठा किया, जैसे काँच के एक टुकड़े में से किरणों को पार करो और वे इकट्ठी हो जाएँ, एकाग्र हो जाएँ। परमात्मा तुममें भी है, लेकिन विरल है। उससे आग पैदा नहीं होती। बस, कुनकुनापन--तुम किसी तरह जी लेते हो। संत में आग है। वह अग्नि है। उसके पास तुम्हें भी ताप लगेगा। उसके पास तुम्हारे भीतर भी कुछ जलेगा और मिटेगा।

जिस दिन उसकी कृपा मिलनी शुरू होती है उसी दिन तुम शक्तिशाली हो जाते हो। लेकिन ध्यान रखना, वह शक्ति तुम्हारी नहीं है। अगर तुम्हें यह अकड़ आ गयी, कि वह शक्ति तुम्हारी है, तो मिली हुई कृपा भी खो जाती है। और अंत तक गिरने का डर है। क्योंकि अंत तक सूक्ष्म अहंकार पीछा करता है। वह आखिरी चीज है, जो मनुष्य का छुटकारा होता है जिससे, वह आखिरी है, अंतिम है। वह छाया की तरह तुम्हारे पीछे आता है। न तो उसकी पग-ध्वनि सुनायी पड़ती है। न कोई आवाज होती है। और वह तुम्हारे पीछे होता है इसलिए तुम्हें दिखायी भी नहीं पड़ता। वह छाया की भाँति तुम्हारे पीछे चलता है।

जैसे शरीर की छाया है, ऐसे ही चेतना की छाया अहंकार है। इसलिए तुमने सुनी होगी यह बात, कि जो व्यक्ति परमात्मा को पा लेता है उसकी छाया नहीं बनती। इससे तुम यह मत समझना कि जब जमीन पर चलता है और सूरज उगा होता है तो जमीन पर उसकी छाया नहीं बनती। वह छाया तो बनती है, क्योंकि शरीर की छाया बनेगी। लेकिन उसके भीतर की छाया खो जाती है। वह चलता है, उठता है, बैठता है, करता है, बोलता है, सब जीवन की क्रिया चलती रहती है, लेकिन अब कोई छाया नहीं बनती। अब चेतना पारदर्शी हो गयी। अब वह है ही नहीं।

ध्यान रखना, तुम यह मत सोचना कि तुम शक्तिशाली हो जाओगे। उसकी अनुकंपा गिरेगी, बरसेगी--तुम तो होओगे ही नहीं। वही होगा तुम्हारे द्वारा शक्तिशाली। तुम निमित्त हो जाओगे। यह निमित्त शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जैसे बाँसुरी से स्वर निकलता है किसी गायक का; बाँसुरी केवल निमित्त है। स्वर बाँसुरी का नहीं है। स्वर तो गायक का है। और बाँसुरी की खूबी क्या है, कभी तुमने ख्याल किया? बाँसुरी की खूबी इतनी है कि वह पोली है। उसका पोलापन, उसकी शून्यता ही उसकी खूबी हैं। उस खूबी के कारण स्वर प्रवाहित होता है। जिस दिन भी परमात्मा की अनुकंपा तुम पर बरसती है तुम बाँसुरी की भाँति हो जाते हो।

कबीर ने कहा, मैं तो बाँस की पोंगरी हूँ। गीत सब उसके हैं। वही गाता है। मैं तो केवल माध्यम हूँ, वाहन हूँ। और वाहन की भी खूबी इतनी, कि मैं पोला--पोली बाँस की पोंगरी हूँ।

'कृपा-खंड की वाणी शक्ति है। वहाँ शक्ति बोलती है।'

वहाँ परम-ऊर्जा बोलती है। एक बड़ा सघन मेग्नेटिज़म जिस व्यक्ति को उसकी अनुकंपा मिली है उसको उपलब्ध हो जाता है। तुम उसकी तरफ खींचे जाते हो। तुम अपने को रोको तो भी नहीं रुक पाते हो। तुम उससे बचना चाहो तो बचा नहीं पाते हो। तुम खींचे जाते हो। कोई अलौकिक आकर्षण तुम्हें उस व्यक्ति की तरफ बाँधे रखता है। तुम अपनी सारी चेष्टाओं के बावजूद भी पाते हो कि तुम खींचे जाते हो।

शक्ति बोलने का, शक्ति के वाणी होने का यही अर्थ है। 'इसको छोड़ कर उसमें दूसरा कुछ भी नहीं है। उसमें महाबली शूर वीर हैं जिन सबमें राम ही भरपूर समाया हुआ है।'

जैसे ही इस घड़ी को कोई उपलब्ध होता है वह महावीर हो जाता है। वह महायोद्धा हो जाता है। अपने सहारे हम दीन-हीन थे, परमात्मा के सहारे हम महावीर हो जाते हैं। लेकिन वह सारी ऊर्जा उसकी है। वह सभी कुछ उसका है। हम बीच से बिलकुल हट जाते हैं। हम मार्ग दे देते हैं।

'जिन सब में राम ही भरपूर समाया हुआ है।'

तिथै जोध महाबल सूर तिनमहि राम रहिआ भरपूर ॥

'उसमें, उसकी महिमा में सीता ही सीता समायी है।'

तिथै सीतो सीता महिमा माहि ताके रूप न कथने जाहि॥

इस वचन को गहनता से समझना जरूरी है। क्योंकि वैसा व्यक्ति जिसमें उसकी शक्ति उतरती है एक दोहरी ऊर्जा से आप्लावित हो जाता है, आविष्ट हो जाता है-- दोहरी ऊर्जा से। उसमें सिर्फ राम ही नहीं उतर आता, उसमें सीता भी उतर आती है।

ये तो प्रतीक हैं-- राम और सीता। लेकिन ये प्रतीक बड़े गहन हैं। क्योंकि अगर सिर्फ राम ही उतरे तो व्यक्ति अधूरा होगा। आधा होगा। तो उसमें पुरुष की शक्ति तो आ जाएगी लेकिन पुरुष की शक्ति अधूरी होकर विध्वंसक है। उसमें स्त्री की महिमा न उतरेगी। और स्त्री का सौम्य रूप न उतरेगा। राम अकेले बिलकुल अधूरे हैं। राम की मूर्ति को अकेली खड़े करके देखना, बहुत अधूरे लगेंगे। राम को सीता के साथ खड़े कर के देखना, तभी वे पूरे लगेंगे।

क्यों? क्योंकि स्त्रैण शक्ति एक दूसरा आयाम है शक्ति का, जो संतुलन देता है। पुरुष की शक्ति अकेली हो तो हिटलर पैदा होगा, जिससे विध्वंस होगा। क्योंकि उसे संतुलन करने के लिए विपरीत शक्ति मौजूद नहीं है। सीता मौजूद नहीं है। स्त्री सृजनात्मक शक्ति है। वह माँ है, वह जन्मदात्री है। वह जीवन के मूल स्रोत से जुड़ी है और सौम्य है। उसकी शक्ति करुणा है। उसकी शक्ति ममता है। उसकी शक्ति सूरज जैसी नहीं है, उसकी शक्ति चाँद जैसी है, शीतल है। शक्ति है, फिर भी शीतल है। और जहाँ सूरज और चाँद दोनों मिल जाते हैं, जहाँ प्रगाढ़ता और सौम्यता दोनों मिलते हैं, प्रचंडता और विनम्रता दोनों मिल जाते हैं; वहाँ राम और सीता हैं।

यह बड़ी हिंदू-विचार की गहन खोज है और बहुतों की समझ में नहीं आयी है। ईसाई, मुसलमान, जैन, बौद्ध सभी इस हिंदू-विचार की गहनता को समझने में असमर्थ रहे हैं। जैन तो इसीलिए राम को भगवान नहीं मान सकते क्योंकि सीता खड़ी है। ये कैसे भगवान हैं, जिनके पास स्त्री खड़ी है? उसका तर्क है कि भगवान को अनासक्त होना चाहिए, वीतराग होना चाहिए। तो महावीर तो भगवान हैं, क्योंकि वीतराग हैं। कोई स्त्री आसपास नहीं है, दूर-दूर तक।

यह मामला यहाँ तक खींचा जैनों ने, कि उन्होंने यह भी इनकार कर दिया कि महावीर की कभी कोई पत्नी थी। उन्होंने यह भी इनकार कर दिया कि कभी उनको बच्चे पैदा हुए थे, कि उनका लड़का था, लड़की थी--सब इनकार कर दिया। उन्होंने इतिहास भी बदल डाला। महावीर की पत्नी थी। उनको एक लड़की भी हुई। जैन शास्त्रों में उसका उल्लेख है। उस लड़की का विवाह भी हुआ। महावीर का दामाद भी था। लेकिन सब पोंछ डाला। सबको इनकार कर दिया। क्योंकि यह बात ही उनके सोचने के बाहर हो गयी कि महावीर कैसे स्त्री

के साथ ! कैसे उनको बच्चा पैदा हो ! महावीर और संभोग करते हुए ! यह सोचना ही कठिन हुआ। कहानी को ही बदल डाला। महावीर को निपट अकेला खड़ा कर दिया।

तो महावीर में प्रचंडता तो मालूम होती है। लेकिन अकेले सौम्यता नहीं हो सकती। जीवन का एक छोर कम है। इसलिए जैन-विचार बहुत दूरगामी न हो सका। और जैन-विचार के माध्यम से कोई संस्कृति खड़ी न हो सकी। सिर्फ एक आइडोलाजी रही। एक कल्चर खड़ा नहीं हुआ। अगर जैनों से कहो कि तुम एक गाँव बसा कर बता दो--सिर्फ जैनों का, तो वे नहीं बसा सकते। क्योंकि कौन चमार का काम करेगा? कौन भंगी का काम करेगा? कौन सड़क साफ करेगा? कौन नाई का काम करेगा? संस्कृति नहीं है। एक गाँव नहीं बसा सकते अपना। किस तरह की संस्कृति है? दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। सिर्फ आइडोलाजी है, एक विचार है। पंगु है।

और वह पंगुता का गहन से गहनतम कारण यह है, कि स्त्री अस्वीकार है। उससे पंगुता पैदा हुई है। स्त्री को जैन-विधान में मोक्ष जाने की सुविधा नहीं है। उसे पहले पुरुष होना पड़ेगा एक जन्म में, तब वह स्वर्ग जा सकती है। पहले पुरुष का पर्याय लेना पड़ेगा। स्त्री को समानता नहीं है जैन विचार में, हो नहीं सकती। पुरुष ही पा सकता है।

और तुम हैरान होओगे, अगर खोजने जाओगे तो कारण क्या है? क्योंकि कारण यह है कि पुरुष तो ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है लेकिन स्त्री का मासिक-धर्म तो रोका नहीं जा सकता। तो वह ब्रह्मचारिणी भी हो जाए, तो भी मासिक-धर्म तो नहीं रुक सकता। और जब तक संपूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य उपलब्ध न हो जाए तब तक कोई कैसे मुक्त हो सकताहै?

जैन समझ ही न पाए। राम को समझना मुश्किल है, कृष्ण को तो समझना बिलकुल असंभव है। बौद्ध न समझ पाए। फिर इस्लाम और ईसाइयत तो बहुत दूर है। उनको भी पहचान न हो सकी।

लेकिन हिंदू-विचार की बड़ी गहनता है। हिंदू-विचार यह कह रहा है, शक्ति के दो रूप हैं। एक रूप स्त्री की तरफ प्रकट होता है, एक रूप पुरुष की तरफ। स्त्री और पुरुष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, शक्ति के दो रूप हैं, जो एक-दूसरे का संतुलन करते हैं। पुरुष में प्रचंडता है, सौम्यता नहीं है। इसलिए सभी सौम्य गुण स्त्रैण हैं। शब्द भी स्त्रैण हैं--करुणा, ममता, दया सब शब्द भी स्त्रैण हैं। होना भी चाहिए।

इसलिए जब कोई व्यक्ति ठीक परम स्थिति को उपलब्ध होता है तब उसमें दोनों--स्त्री और पुरुष का मिलन हो जाता है। वह प्रचंड होता है। सौम्य भी होता है। वहाँ सूर्य और चाँद दोनों मिल जाते हैं। वहाँ उत्ताप भी होता है और बड़ी गहन शीतलता भी होती है। और जब ये दोनों रूप संगृहीत हो जाते हैं, एक हो जाते हैं, इंटिग्रेटेड हो जाते हैं, तो परम पुरुष का जन्म होता है। वह परम जो अवस्था है, स्त्री-पुरुष के पार है। क्योंकि उन दोनों की ऊर्जा का मिलन है। वहाँ 'एक पैदा' होता है, लेकिन जब दो बड़े गहन मिलन में डूब जाते हैं।

इसलिए सूत्र नानक का कहता है, कि राम ही अकेले काफी नहीं। राम भरपूर समाया हुआ है उसमें। उसकी महिमा में सीता भी समायी हुई हैं।

तिन महि राम रहिआ भरपूर।

तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि॥

और फिर उसका रूप कहना असंभव है। क्योंकि तुम स्त्री के रूप की चर्चा कर सकते हो, पुरुष के रूप की चर्चा कर सकते हो, लेकिन जहाँ राम और सीता का मिलन हो गया, वहाँ चर्चा मुश्किल हो जाती है, क्योंकि विपरीत गुण मिल गये। अब तुम यह कहो तो उससे विपरीत भी मौजूद है। तुम वह कहो, उसका भी रूप मौजूद है।

जापान में एक मूर्ति है, जिसका आधा चेहरा बुद्ध का है। और उस चेहरे के पास जो हाथ है उस हाथ में एक जलता हुआ दीया है। उस दीये की रोशनी बुद्ध के आधे चेहरे पर पड़ती है। वह बड़ा सौम्य चेहरा है--स्त्रैण। दूसरे हाथ में एक तलवार है और उस तलवार की चमक चेहरे पर पड़ती है। चेहरा वही है, लेकिन वह ऐसा है जैसे अर्जुन का चेहरा रहा हो--योद्धा का।

और उसको जापान में समुराई पूजते हैं। समुराई वहाँ का वर्ग है। वहाँ के क्षत्रियों का वर्ग है। वे इस मूर्ति को पूजते हैं। आधी बुद्ध की, आधी अर्जुन की। स्त्रैण, पुरुष दोनों मिल गये हैं।

नीत्से ने आलोचना की है बुद्ध की, कि बुद्ध स्त्रैण हैं। उसकी आलोचना में थोड़ी सचाई है, क्योंकि बुद्ध में सारी स्त्री का समग्र रूप प्रकट हुआ है। लेकिन बुद्ध में वह जो पुरुष-ऊर्जा है उसके लक्षण नहीं मिलते हैं। बिलकुल शांत हो गये हैं। करुणापूर्ण हैं। चाँद हो गये हैं। बड़े शीतल हैं। लेकिन सूर्य खो गया है।

हिंदू, राम और सीता को साथ खड़ा करता है, कृष्ण और राधा को साथ खड़ा करता है। न केवल साथ, बल्कि जब भी नाम लेता है पहले सीता को कहता है--'सीताराम'। 'राधाकृष्ण'। क्योंकि स्त्री जननी है। वह प्रथम है। पुरुष

द्वितीय है। प्रचंडता द्वितीय है। करुणा प्रथम है। और जब करुणा में आविष्टित प्रचंडता होती है तब उसका सौंदर्य अपरंपार है। और जब ममता में छिपी हुई ऊर्जा होती है तब कैसे उसका वर्णन करें ? जैसे ठंढी आग हो, कैसे उसका वर्णन करें ? विपरीत जहाँ मिल जाते हों वहाँ वर्णन असमर्थ हो जाता है।

इसलिए नानक कहते हैं, 'ताके रूप न कथने जाहि' ॥

'उसके रूप का वर्णन नहीं हो सकता। जिनके मन में राम बसते हैं, न वे मरते हैं और न ठगे जाते हैं। वहाँ अनेक लोकों के भक्त बसते हैं। सच्चे नाम को मन में बसाए हुए वे आनंद मनाते हैं।'

'न ओहि मरहि न ठागे जाहि जिनके राम बसै मन माहि ॥

तिथै भगत वसहि के लोआ करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥'

'जिनके मन में राम बस गया, जिनके मन में परमात्मा आ गया और जिनका हृदय आपूर भर गया उससे, उसकी कोई मृत्यु नहीं है।'

इसे थोड़ा समझ लें। तुम्हारी मृत्यु है। परमात्मा की कोई मृत्यु नहीं। लहरें बनती हैं, मिटती हैं। सागर सदा है। जब तक तुम लहर के साथ अपना तादात्म्य किये हो तब तक मरोगे। इसलिए तो हम भयभीत हैं मृत्यु से। क्योंकि लहर अपने को एक माने हुए है। मृत्यु सुनिश्चित है। लहर तो मरेगी, तुम्हारा तादात्म्य मरेगा, तुम्हारी आइडेंटिटी मरेगी। तुमने गलत संबंध जोड़ रखा है।

लेकिन अगर तुम राम से जुड़ गये, तुम परमात्मा से जुड़ गये, फिर कैसी मौत ? इसलिए ज्ञानी मरने के पहले मर जाता है। वह अपना संबंध खुद ही तोड़ लेता है। वह तादात्म्य को अलग कर लेता है। वह जान लेता है, कि न मैं शरीर हूँ, न मैं मन हूँ। ये दोनों मरेंगे। न मैं अहंकार हूँ। वह भी मरेगा। वह मरण-धर्मा है। वह तो छोटा सा लहरों में उठा हुआ रूप है। और लहर कितनी ही सुंदर मालूम पड़े और कितनी ही ऊँची उठ जाए, एक क्षण में आकाश को छूने का दंभ भरे, दूसरे ही क्षण विघटन शुरू हो जाता है। जवानी में सभी लहरें आकाश को छूने का दंभ भरती हैं। बुढ़ापे में उन्हींसे पूछो।

मैंने सुना है कि एक लोमड़ी सुबह-सुबह उठी। सुबह के नाश्ते की तलाश में निकली। सूरज पीछे उग रहा था। बड़ी लंबी छाया पड़ी। उस लोमड़ी ने अपनी छाया देखी और उसने कहा, कि आज तो नाश्ते में कम से कम एक ऊँट की जरूरत पड़ेगी। इतनी लंबी छाया! तो जितनी लंबी छाया उतना बड़ा 'मैं'। और लोमड़ी के पास और उपाय भी तो अपने को जानने का नहीं है। छाया ही दर्पण है। इतना बड़ा मेरा शरीर, एक ऊँट चाहिए नाश्ते में!

खोजती रही। दोपहर हो गयी, सूरज सिर पर आ गया। छाया सिकुड़कर छोटी हो गयी। बिलकुल ना के बराबर हो गयी। दोपहर तक ऊँट खोज न पायी। खोजती भी कैसे ? लोमड़ी ऊँट को पाती भी कैसे ? और पा भी लेती तो कैसे नाश्ता करती ? भूख बढ़ गयी; नीचे झुक कर देखा, छाया बड़ी छोटी हो गयी है। उसने कहा, कि अब तो एक चींटी भी मिल जाए तो भी काम चल जाएगा।

जवानी में लहर बड़ी ऊपर होती है। इसलिए तो जवानी मूढ़ है। इसलिए पूर्व में जवानी पर कभी भरोसा नहीं किया। पश्चिम ने भरोसा किया है तो मुसीबत है। मुसीबत रोज बढ़ती जाती है। पूर्व ने जवानी पर कभी भरोसा नहीं किया। जवानी को कभी महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया। क्यों मूढ़ता को स्थान देना है ? वह तो लहर की ऊँचाई है। छाया बड़ी पड़ती है उस समय। उस छाया के बड़े पड़ने में बड़े-बड़े सपने उठते हैं। हर आदमी क्या नहीं होना चाहता है! पूर्व ने बुढ़ापे को आदर दिया है, जब छाया बिलकुल सिकुड़ जाती है। और अगर बुढ़ापे में भी तुम न जागे अहंकार से, तो फिर कब जागोगे ? जवानी में जाग जाओ, तुम महिमाशाली हो। बुढ़ापे में न जागो, तो तुम महामूढ़ हो। जवानी में क्षम्य है न जाग सको, बुढ़ापे में क्षमा भी नहीं की जा सकती।

जैसे ही कोई जाकर जीवन को देखना शुरू करता है वैसे ही पाता है कि मैंने गलत से संबंध जोड़ रखा है—शरीर से। अगर तुम शरीर को देखो तो हर सात साल में बदल जाता है—पूरा का पूरा। तुम तो फिर भी रहते हो। एक दिन माँ के पेट में इतना छोटा था कि बड़ी खुर्दबीन से देखते तो ही देख पाते; वह भी तुम्हारा शरीर था। फिर एक दिन जब तुम मर जाओगे, राख की छोटी सी पोटली लेकर तुम्हारे परिवार के लोग गंगा जाएँगे फूल चढ़ाने। वह भी तुम्हारा ही शरीर होगा। फिर बीच में कितने उतार-चढ़ाव देखे! इस शरीर के साथ तुम अपने को एक कर लोगे तो मृत्यु से डरोगे, कँपोगे, भयभीत रहोगे। इसलिए ज्ञानी मरने के पहले मर जाता है। वह खुद ही अपने हाथ मर जाता है।

नानक के जीवन में ऐसा उल्लेख है, कि एक रात वे घर से उठे और मर-घट पहुँच गये। खोजते हुए घर के लोग पहुँचे, उन्होंने कहा, यह कोई जगह है ? अगर ध्यान ही करना हो तो घर में, मंदिर जाते। मरघट आए! नानक ने कहा, मैंने सोचा, जहाँ आखिर में जाना है, किसीके कंधे पर चढ़ कर क्या जाना! अपने हाथ ही चला आया। और जहाँ अंत में पहुँचना है उसे पहले ही ठीक से देख लेना चाहिए। यहीं ध्यान करूँगा। क्योंकि मौत ही ध्यान है। और क्या ध्यान है ? अगर तुम मृत्यु पर ध्यान कर लो तो धीरे-धीरे मृत्यु हट जाती है। जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान गहरा घुसता है वैसे-वैसे मृत्यु की ऊपरी पर्त हट जाती है। भीतर तुम अमृत को छिपा हुआ पाते हो। लहर खो जाती है, सागर मिलता है।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को मरघट भेजते थे, कि वहाँ चले जाओ अगर बुद्धत्व पाना है। जलते हुए देखना लोगों को। हड्डियों को राख होते देखना। चमड़ी से धुआँ उठते, लपटें उठते देखना। देखना, अपने ही सगे-संबंधी आकर सिर फोड़ जाते हैं। देखना, जिन पर इतना भरोसा किया था, मरते ही एक क्षण देर नहीं करते। जल्दी अर्थी उठाते हैं और भागते हैं। क्योंकि कौन घर में रखेगा मुर्दे को? जिन्होंने कहा था सदा-सदा साथ रहेंगे, वे भी चार रोज के बाद ऊब जाते हैं, रोने से ऊब जाते हैं। वे फिर अपने काम में संलग्न हो जाते हैं। और जब सब छोड़ कर चले जाएँ किसी मुर्दे को तो तुम शांत उस मुर्दे को जलते हुए देखना। यही तुम्हारी भी स्थिति होगी। आज नहीं कल, समय का फासला है। बुद्ध पहले अपने भिक्षुओं को मरघट भेज देते, कि पहले तुम मरघट से गुजर जाओ। वे इसलिए भेजते कि तुम मर के आ जाओ तो काम एकदम आसान हो जाए।

एक तीन महीने भिक्षु दिन और रात देखता मौत--और मौत--और मौत! मौत सघन हो जाती चारों तरफ। सब तरफ से मौत दिखायी पड़ने लगती। हर चीज जलती हुई मालूम पड़ती। फिर भी वह पाता, कि भीतर कोई सजगता है, जिसे जलने का कोई उपाय नहीं। जो जल नहीं सकती। आग चैतन्य को छू भी तो नहीं सकती। चेतना और अग्नि का कोई लेना-देना भी तो नहीं हो सकता। कहीं रास्ता भी तो एक-दूसरे का नहीं कटता। वह ज्यादा सचेतन हो कर लौटता है। वह अपने पुराने तादात्म्य को तोड़ देता है। तब बुद्ध कहते हैं, अब आसान है।

इब्राहिम एक सूफी फकीर हुआ। वह पहले सम्राट था। फिर फकीर हो गया, तो गाँव के बाहर ही रहता था अपनी राजधानी के। अक्सर यात्री वहाँ से आते-जाते पूछते उससे, कि बस्ती का रास्ता कहाँ है? तो वह कहता, बाएँ चले जाओ, भूल कर दाएँ मत जाना। कई लोग दाएँ जा कर भटक जाते हैं। बाएँ बस्ती है, दाएँ मरघट है। लोग जाते बाएँ, उसका मान कर। दो चार मील चल कर पाते, कि मरघट में पहुँच गये। बड़े नाराज होकर लौटते, कि तुम्हारा दिमाग तो ठीक है? फिर जब दाएँ जाते तो बस्ती पाते।

तो इब्राहिम उनसे कहता, 'मैं भी उस बस्ती में था। लेकिन यह मुझे समझ में आ गया कि यह तो मरघट है। यहाँ सभी मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जहाँ लोग मरने की प्रतीक्षा कर रहे हों, जो मृत्यु का प्रतीक्षालय हो, उसको बस्ती क्या कहना! जहाँ सभी उजड़ेंगे, आज नहीं कल, उसको बस्ती क्या कहना! और जहाँ मरघट है, जहाँ लोग मरघट कहते हैं, वहाँ बसा हुआ फिर कभी भी नहीं उजड़ता। वहाँ जो बस गया, बस गया। उसको मैं बस्ती कहता हूँ।'

हमारी बस्तियाँ मरघट हैं, हमारे मरघट आखिरी बस्तियाँ हैं। ज्ञानी मरने के पहले मर जाता है और अज्ञानी मरते-मरते तक आखिरी चेष्टा करता है--बचा रहूँ, बचा रहूँ, बचा रहूँ। ज्ञानी एक ही बार मरता है। अज्ञानी लाखों बार मरता है। क्योंकि जितना तुम बचाते हो, फिर मरना पड़ता है। फिर-फिर मरना पड़ता है। जब तक तुम यह पाठ सीख ही न लो तब तक तुम्हें बार-बार मरना पड़ेगा।

मृत्यु एक शिक्षण है। जैसे कोई बच्चा स्कूल जाए और एक ही क्लास में अनुत्तीर्ण होता रहे, फेल होता रहे, तो बार-बार उसी क्लास में भेज दिया जाता है। वैसे मृत्यु एक महाशिक्षण है। उसके द्वारा जब तक तुम अमृत को न पहचान लोगे तब तक बार-बार लौटते रहोगे।

एक संगीतज्ञ गीत गा रहा था। हॉल बार-बार कहता, 'फिर से। वन्स मोर।' सारी भीड़ कहती जोर से, 'फिर से।' वह फिर गाता। ऐसा होते-होते आठवीं बार आ गयी। उसका गला तक रुँधने लगा, थक गया। उसने कहा 'भाईयो, बहुत-बहुत धन्यवाद, कि तुमने इतनी बार मेरे गीत की माँग की। लेकिन अब मैं थक गया हूँ। आखिरी बार गाये देता हूँ। फिर मत कहना। फिर और दुबारा मत कहना 'वन्स मोर।' एक आदमी ने खड़े होकर कहा, कौन तुम्हारे गीत के लिए कह रहा है, 'वन्स मोर'? जब तक तुम ठीक से न गाओगे तब तक हम कहते ही रहेंगे। तुम बिलकुल गलत गा रहे हो, और जब तक तुम रास्ते पर न आओगे तब तक हम बार-बार माँग करते रहेंगे।

आवागमन परमात्मा की बार-बार तुमसे माँग है, कि ठीक से गाओ। वह प्रशिक्षण का हिस्सा है। उससे गुजरना जरूरी है। जो समझ जाता है वह मृत्यु से अपना तादात्म्य तोड़ लेता है।

नानक कहते हैं, 'जिनके मन में राम बस गया, न वे मरते हैं और न ठगे जाते हैं'।

मरते नहीं। ठगे भी नहीं जाते हैं। और तुम कितनी ही होशियारी करो, तुम कितनी ही कुशलता करो, तुम ठगे ही जाओगे। क्योंकि कोई दूसरा थोड़े ही तुम्हें ठग रहा है! तुम खुद ही ठग रहे हो। कोई दूसरा थोड़े ही तुम्हें लूट रहा है! कोई दूसरा तुम्हें लूट ही नहीं सकता। तुम गलत से अपने को जोड़े हो, इसलिए दूसरा लूट पाता है। और तुम्हारी दृष्टि ऐसी भ्रांति से भरी है कि उस भ्रांति के कारण चारों तरफ तुम्हें दुश्मन दिखायी पड़ते हैं। हर एक तुम्हें लूटने को तैयार है।

रामकृष्ण कहते थे, कि एक चील एक माँस के टुकड़े को लेकर उड़ी। बहुत सी चीलों ने उसका पीछा किया। चीलें उसे चोंच मारने लगीं। उसपर झपट्टे

मारने लगीं। वह भी अपने माँस के टुकड़े को बचाने के लिए बड़ी कोशिश करने लगी। लेकिन चीलों की बड़ी भीड़ थी। पंख उसके लहूलुहान हो गये और सभी उसके माँस को छीन लेने की कोशिश में थीं। अंततः उसने माँस का टुकड़ा छोड़ दिया। माँस का टुकड़ा छोड़ते ही सारी चीलें उसे छोड़कर चली गयीं। वह अपने वृक्ष पर बैठ कर विश्राम करने लगी। रामकृष्ण कहते थे, जिस दिन मैंने उसे देखा, मैंने भी माँस का टुकड़ा छोड़ दिया। फिर मेरा कोई दुश्मन न रहा। दुश्मन मेरा कोई था नहीं। वह माँस का टुकड़ा ही उपद्रव था।

तुम जब तक धन को पकड़े हो, तब तक कोई दुश्मन होगा। जब तक तुम पद को पकड़े हो, तब तक कोई दुश्मन होगा। दुश्मन नहीं है असली में, तुम्हारी पकड़ में कहीं भूल है। और जब तक तुम कुछ पकड़े हो तुम्हें हर एक—मित्र भी--दुश्मन जैसा दिखायी पड़ेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बहुत नाराज थी। और अनर्गल बक रही थी। मुल्ला सीधा-सादा, अपने पैंट की दोनों खीसों में हाथ डाले खड़ा था, जैसाकि अक्सर पति खड़े रहते हैं! पत्नी ने अंततः काफी गाली-गलौज करने के बाद कहा, कि बंद करो यह। क्यों अपने खीसे में मुट्ठियाँ ताने मेरी तरफ खड़े हो? 'खीसे में मुट्ठियाँ ताने'? वह बेचारा सिर्फ अपने बचाव के लिए चुपचाप खड़ा है।

लेकिन अगर तुम नाराज हो तो सभी मुट्ठियाँ तनी हुई मालूम पड़ती हैं। खीसे में पड़े हुए हाथ भी मुट्ठियों जैसे दिखायी पड़ते हैं। तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारी सृष्टि बनती है। तुम जैसा देखते हो, और माँस का टुकड़ा तुम पकड़े हो तो ठगे जाओगे। माँस का टुकड़ा यानी शरीर। जब तक तुम शरीर को पकड़े हो तब तक ठगे जाओगे। तब तक बचने का कोई उपाय नहीं। कितनी ही कुशलता करो।

कबीर कहते हैं: 'काहे की कुशलात?' 'कर दीपक कुंभे पड़े।' तुम्हारी कुशलता का कोई भी मूल्य नहीं। दो कौड़ी की भी तुम्हारी कुशलता नहीं है। क्योंकि तुम कहते हो हाथ में दीया है, फिर भी तुम कुएँ में गिरते हो। 'कर दीपक कुंभे पड़े'-- कैसी तुम्हारी कुशलता है कि चेतना का दीपक है, गिरते कुएँ में हो?

नहीं, ठगे ही जाओगे। क्योंकि तुम ठगे जाने की ही तैयारी कर रहे हो। तुम गलत से संबंध जोड़ते हो। जिसने गलत से संबंध जोड़ा, उसने अपना ही रास्ता बना दिया कि ठगा जाए। माँस के टुकड़े को पकड़ते हो, फिर चीलें झपटेंगी।

जिसके मन में राम बसे हैं, न वह मरता है न ठगा जाता है। यह जो लोक है— कृपा का लोक-- कृपा का खंड, वहाँ अनेक लोकों के भक्त बसते हैं। सच्चे नाम को मन में बनाए हुए वे आनंद मनाते हैं।

'सच खंडि वसै निरंकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल ॥
तिथै खंड मंडल वरभंड। जेको कथैत अंत न अंत ॥
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार ॥
वेखै विगसै करि वीचारु। नानक कथना करड़ा सारु ॥'

ये चार खंड यात्रा के, मार्ग के। धर्म—प्रकृति। ज्ञान--होश, जागरण उस प्रकृति का। जो है, उसके प्रति जागना। लज्जा--अपनी स्थिति समझ कर विनम्र हो जाना, असहाय, शून्य। और कृपा --उसकी अनुकंपा को अपने भीतर उतरने देना। बाधा न खड़ी करना।

ये चार यात्रा के खंड, पाँचवा मंजिल है। वह है सत्य। 'सत्य-खंड में निराकार परमात्मा का निवास है'। वह मंजिल है। 'वह सृष्टि रचना कर उसको अपनी दृष्टि से निहाल करता है।'

उसे मार्ग के खंडों में बाँटने की कोई जरूरत नहीं है। यहाँ मार्ग समाप्त हो जाता है। जब अनुकंपा तुममें उसकी पूरी भर जाती है, तुम पूरे घुल जाते हो, तुम्हारे पास अपनी कुछ भी स्थिति नहीं बचती। तुम बह ही जाते हो पूरे। तुम खोजते हो और पाते नहीं कि मैं कहाँ हूँ। तुम्हें कुछ पता नहीं चलता, कि मैं कहाँ खो गया हूँ। तुम्हें अपना ही कोई भान नहीं होता है कि मैं कहाँ हूँ? बोध पूरा होता है और अपना कोई पता नहीं चलता है। खोजते हो, खोजते हो और पाते हो कि वही है, मैं नहीं हूँ। ऐसी प्रतीति जहाँ समग्र हो जाती है। जहाँ तुम निमित्त मात्र भी नहीं रह जाते।

अनुकंपा के खंड में तुम निमित्त मात्र रहोगे-- बाँसुरी। गीत उसके। अब बाँसुरी भी नहीं रह जाती है। अब तुम बिलकुल नहीं हो, वही है। अब यह कहने वाला भी नहीं बचता है, कि 'तू ही है,' क्योंकि जब तक तुम कहते हो 'तू ही है', तब तक तुम थोड़े बहुत बचे हो। अन्यथा कौन कहेगा?

'यह सत्य-खंड है। यहाँ निराकार परमात्मा का निवास है। वह सृष्टि रचना कर उनको अपनी दृष्टि से निहाल करता है। उसमें खंड, मंडल और ब्रह्मांड हैं जिनके वर्णन का अंत नहीं है। वहाँ लोक के बाद लोक हैं। सृष्टि के बाद सृष्टियाँ हैं। उसका जो हुक्म है उसके अनुसार सारा काम चलता है। उसका

विचार कर वह देखता है और प्रसन्न होता है। नानक कहते हैं, उसका वर्णन करना लोहे के चने चबाने जैसा है। '

एक अति महत्त्वपूर्ण बात; उसे गाँठ बाँध कर रख लेना। नानक उस पर बार-बार जोर देते हैं। और वह यह है, कि परमात्मा सृष्टि को बना कर पृथक नहीं हो गया है। परमात्मा सृष्टि को बनाकर विमुख नहीं हो गया है। परमात्मा सृष्टि को बना कर भूल नहीं गया है। परमात्मा सृष्टि को प्रतिपल बना रहा है। बनाने की घटना कभी घटी और बंद नहीं हो गयी, सृजन शाश्वत चल रहा है। असल में सृजन परमात्मा के होने का ढंग है। वह प्रतिपल बना रहा है। वह बनाता ही चला जा रहा है। और वह दूर नहीं हो गया है। वह जो बनाता है, उसमें उसका रस है।

अब यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। साधक को हम कहते हैं तुम अनासक्त हो जाओ तो परमात्मा मिलेगा। लेकिन परमात्मा स्वयं अनासक्त नहीं है। अनासक्त हो तो सृष्टि का क्रम टूट जाए। सब रुक जाए। क्यों जीवन चले ? हम साधक को कहते हैं तुम अनासक्त हो जाओ। क्योंकि जब तक तुम आसक्त हो, तुम परमात्मा को न जान सकोगे। जैसे ही तुम परमात्मा के साथ एक होते, तब एक नयी आसक्ति, एक नये रस का उदय होता है। जहाँ विराग और राग में कोई भेद नहीं है। जहाँ अनासक्ति और आसक्ति में कोई भेद नहीं है, जहाँ सारे भेद गिर जाते हैं।

परमात्मा बनाता है। परिपूर्ण आसक्त। फिर भी अनासक्त। इसे तुम कैसे समझोगे ? क्योंकि यह कठिन है। इसलिए नानक कहते हैं लोहे के चने चबाने जैसा है। परमात्मा बना रहा है इसलिए उसका लगाव तो है ही। लेकिन उस लगाव में वैसा अंधापन नहीं है जैसा हमारे लगाव में होता है। उस लगाव में 'पजेसिवनेस' नहीं है। उस लगाव में मालिकियत का दावा नहीं है। वह बनाता है और तुम्हें स्वतंत्र छोड़ता है। इसलिए तो तुम भटक सकते हो, पाप कर सकते हो, बुराई की तरफ जा सकते हो। वह तुम्हें बाँध नहीं लेता बुराई की तरफ से। उसका लगाव है, लेकिन तुम्हारी स्वतंत्रता में वह बाधा नहीं डालता है। तुम परमस्वतंत्र हो। ऐसा भी नहीं है कि वह तुम्हारी तरफ विमुख है। यही जरा कठिनाई है।

समझो, एक माँ है जो अपने बेटे में लगाव रखती है। लगाव रखती है तो स्वतंत्रता को मार डालती है। क्योंकि वह कहती है, वहाँ मत जाओ, यह मत करो, ऐसे उठो, ऐसे बैठो, क्योंकि उसका लगाव है। वह उसकी गर्दन दबाती जाएगी। प्रेम में वह उसको मिटा डालेगी। वह उसे इतनी भी स्वतंत्रता न देगी,

कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो जाए। वह इसे इतने भी दूर न जाने देगी जहाँ वह जीवन का खुद अनुभव ले सके। वह उस बच्चे को पंगु कर देगी। इस माँ के रहते वह युवक कभी भी प्रौढ़ न हो पाएगा। और अगर यह माँ चली भी जाए दुनिया से तो भी उस युवक की प्रौढ़ता में बड़ी कठिनाइयाँ होंगी। वह किसी दूसरी स्त्री के प्रेम में न गिर पाएगा। कठिन होगा। क्योंकि माँ उसको पीछे से खींचेगी। वह माँ के अतिरिक्त किसीको भी प्रेम करने में अपराध अनुभव करेगा।

इस माँ में लगाव तो था, लेकिन लगाव अंधा था, आँख वाला न था। क्योंकि आँख वाला लगाव तुम्हारी सुरक्षा भी करता है लेकिन तुम्हारी स्वतंत्रता का अंत नहीं करेगा। सुरक्षा ही इसलिए करता है ताकि तुम स्वतंत्र हो सको। और ये दोनों बड़ी विपरीत बातें हैं। तुम्हें रोकता भी इसलिए है ताकि तुम जाने के योग्य हो सकों। तुम्हें मजबूत करता है। तुम्हें धीरे-धीरे सहारा देता है। लेकिन सहारा इसीलिए देता है ताकि कल तुम अपने सहारे खड़े हो सको। सहारे कों पंगुता नहीं बनाता।

फिर एक दूसरी माँ है। जिसको अगर समझाएँ कि यह खतरनाक है तुम्हारा लगाव, तो वह लगाव अलग कर लेती है। लेकिन लगाव अलग करते ही वह स्वच्छंदता दे देती है। स्वतंत्रता नहीं, स्वच्छंदता। अब लड़का जहाँ जाए, जो करे, शराब पीये तो क्या कर सकते हैं ? स्वतंत्रता देनी है। वेश्या के घर जाए, तो स्वतंत्रता देनी है। जुआ खेले, चोरी करे, हत्या करे; स्वतंत्रता देनी है। यह माँ विमुख हो गयी। इसने पीठ फेर ली। पहले लगाव था, वह अंधा था। अब उपेक्षा है, जो अंधी है। और संतुलन दोनों के बीच में है।

वह संतुलन परमात्मा का स्वभाव है। उसकी सृष्टि की तरफ वही उसकी दृष्टि है। तुम्हारी सुरक्षा करता है ताकि तुम स्वतंत्र हो सको। तुम्हें स्वतंत्रता देता है ताकि तुम एक दिन समर्पित हो सको। ये बड़ी विपरीत बातें हैं। तुम्हें मौका देता है ताकि तुम दूर जाओ। क्योंकि तुम दूर न जा सकोगे तो तुम पास कैसे आ सकोगे ? तुम्हें मौका देता है ताकि तुम थोड़ा भटको। क्योंकि तुम भटकोगे नहीं तो तुम प्रौढ़ कैसे होओगे ? तुम्हें मौका देता है ताकि तुम गिरो। क्योंकि तुम गिरोगे नहीं तो तुम सम्हलोगे कैसे ?

और फिर भी तुम्हारी सुरक्षा करता है। और फिर भी तुम्हारा पीछा करता है। सब तरफ उसकी नजर है। सब तरफ उसकी छाया है। सब तरफ से वह तुम्हें घेरे हुए है। तुम कितने ही दूर चले जाओ तो भी वह तुम्हारे पास बना रहता है। ताकि जब भी तुम्हें जरूरत हो, मुड़ो, और तुम उसे उपलब्ध कर लो।

'जब जरा गर्दन झुकाई'...जब भी तुमको जरा सी गर्दन झुकाने की याद आ जाए तभी तुम उसे देख ले सकते हों।

दिल के आईने में है तस्वीरे यार, जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।

तुम कितने ही दूर जाओ, वह तुम्हारे पीछे-पीछे चलता है। तुम्हें बाधा भी नहीं डालता, तुम्हें रोकता भी नहीं। तुमसे कहता भी नहीं, कि यह गलत है, यहाँ मत जाओ। तुम्हें गलत तक होने देता है। फिर भी अपनी ऊर्जा को तुमसे खींच नहीं लेता। और प्रतीक्षा करता है, और बाट जोहता है, कि तुम लौट आओगे। जब तुम लौट आते हो तब प्रसन्न होता है।

नानक कहते हैं, उसका विचार कर वह देखता है और प्रसन्न होता है। उसका वर्णन करना लोहे के चने चबाने जैसा है।

निश्चित ही! क्योंकि वहाँ सभी विपरीत विश्राम पाते हैं। वहाँ सभी 'कांट्रडिक्शन' एक हो जाते हैं।

हम एक में से कुछ भी कर सकते हैं। मैंने बहुत लोगों के जीवन को अध्ययन कर के नतीजा पाया कि हम कोई भी एक कर सकते हैं, और हर अति खतरनाक है।

एक पति है; वह अतिशय पज़ेसिव है। अपनी पत्नी के पीछे वह छाया की तरह नहीं, भूत-प्रेत की तरह लगे हैं। पत्नी किससे बोलती है, हँसती तो नहीं है किसीसे, कहीं जाती तो नहीं, दफ्तर में भी यही सोच रहे हैं। बीच बीच में घर आ जाते हैं। पत्नी अगर किसीके साथ हँस भी ले तो उनके लिए भारी कष्ट हो जाता है। वह यह सोच ही नहीं सकते कि मेरी पत्नी औंर मेरे बिना कैसे हँस सकती है? यह असंभव है। वह तो मानकर यही चलते हैं, जैसे कालिदास वर्णन करते हैं। अगर वे गये पंद्रह दिन के लिए बाहर, पत्नी तो सूखकर हड्डी हो जानी चाहिए उनकी याद में। और मेघों से संदेश भिजवाना चाहिए।

उनका पत्नी के चारों तरफ यह जो घेराव है, इस घेराव ने पत्नी को उनके प्रेम से नहीं भरा है बल्कि बड़ी तीव्र ऊब और सूक्ष्म घृणा से भर दिया है। और पत्नी उनके प्रेम में थी। लेकिन प्रेम मर जाता है, जब स्वतंत्रता मरती है। उन दोनों का प्रेम-विवाह हुआ था। मैं उन्हें भलीभाँति अध्ययन करता रहा हूँ। दोनों बड़े प्रेम में थे एक-दूसरे के। लेकिन जब प्रेम पति का इतना अतिशय हो गया, कि गले का हार न रहा और फंदा बनने लगा। कभी भी हार फंदा बन सकता है, ध्यान रखना। हीरे-जवाहरात का हार भी फंदा बन सकता है, फाँसी लग सकती है। जब फंदा सिकुड़ कर फाँसी बनने लगा, तो पत्नी का प्रेम शून्य होता गया। पत्नी स्वतंत्र

होने की आकांक्षा करने लगी। जितनी पत्नी ने स्वतंत्र होने की आकांक्षा की, पति उतना पागल हो कर चारों तरफ से घेरे बाँधने लगा।

मैंने पति को बहुत समझाया, कि यह पागलपन है। तुम प्रेम को मार ही डाल रहे हो। प्रेम को भी स्वतंत्रता चाहिए, श्वाँस लेने का मौका चाहिए। प्रेम को भी थोड़ी दूरी चाहिए। थोड़ा अकेलापन चाहिए। प्रेम को भी थोड़ी निजता चाहिए। तुम इतने ज्यादा पीछे मत पड़ो। तुम अपने ही हाथ से आत्मघात कर रहे हो।

बहुत समझाने से समझ में आया। जब से समझ में आया तब से उन्होंने उपेक्षा करनी शुरू कर दी। अब पत्नी अगर किसी दूसरे पुरुष के साथ सो भी रही है, तो उन्हें मतलब नहीं। अब वे कहते हैं कि मैंने 'पज़ेसन' का भाव ही छोड़ दिया। अब मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। अब जो उसे करना हों, करे। अब मेरा कोई नाता ही नहीं है उससे। वे एक ही नाता जानते हैं--फंदे का।

स्वाभाविक है मनुष्य के लिए यही। या तो हम पूरी स्वतंत्रता दे देते हैं, जों स्वच्छंदता बन जाए; जैसा पश्चिम में हो रहा है। या हम पूरी परतंत्रता खड़ी कर देते हैं, जों कि मौत बन जाए; जैसा कि पूर्व में हुआ है।

परमात्मा के संबंध में कहना चने चबाने जैसा ही कठिन है। क्योंकि वह दोनों है। वह तुम्हें पूरी स्वतंत्रता देता है और प्रेम इस स्वतंत्रता के कारण रत्ती भर कम नहीं होता। वह तुम्हें मुक्त करता है। और प्रेम वही, जो मुक्त करे। उसके प्रेम में और उसकी स्वतंत्रता में, तुम्हें स्वतंत्रता देने के भाव में, कहीं कोई विरोधाभास नहीं है। वह तुम्हें रोकता भी नहीं। तुम बुरे की तरफ जाते हो तब भी वह प्रतीक्षा करता है, कि तुम लौट जाओगे। जब तुम लौट आते हो तब वह प्रसन्न होता है।

नानक कहते हैं--'**वेखै विगसै करि वीचारु**'। वह तुम्हारे संबंध में चिंता करता है। तुम्हारे संबंध में विचार करता है। वह तुम्हारे जीवन में जब फूल खिलते हैं तो प्रसन्न होता है। वह निरपेक्ष नहीं खड़ा है। उसकी अनासक्ति उसके बड़े गहरे आसक्त-रस से भरी है। वह दूर है और फिर भी पास है। उसने तुम्हें छोड़ा है स्वतंत्रता के लिए, फिर भी कभी छोड़ा नहीं है। फिर भी वह सदा साथ खड़ा है। तुम्हारा दुःख, तुम्हारी पीड़ा, उसे छूती है। तुम्हारी प्रसन्नता, तुम्हारा आनंद भी उसे आल्हादित करता है। तुम इस जगत में अजनबी नहीं हो। यह तुम्हारा घर है। इस जगत में तुम अकेले नहीं हो। परमात्मा तुम्हारे साथ है।

भक्त के लिए यह आश्वासन बड़ा गहरा है। नहीं तो कुछ भी तो पता नहीं चलता। अगर तुम परमात्मा के ख्याल को छोड़ दो, तो जगत तटस्थ हो जाता

है। तुम क्या करते हो, जगत को कुछ लेना-देना नहीं। जिंदा हो कि मरते हो, कुछ मतलब नहीं। तूफान आए, मिट जाओ, कुछ मतलब नहीं। कोई है ही नहीं वहाँ। तो तुम एक संयोग हो।

लेकिन भक्त के लिए बड़ा आश्वासन है। वह संयोग नहीं है, परमात्मा प्रसन्न होगा। घर लौट कर कोई है जो उसकी प्रतीक्षा करता है। घर को खाली नहीं पाया जाएगा। जब तुम लौटोगे स्वभाव में, तो तुम परमात्मा को वहाँ प्रतीक्षा करते पाओगे। न केवल प्रतीक्षा करते बल्कि तुम्हारे लौट आने से समारोह, उत्सव होगा।

जीसस की कहानी समझ लेने जैसी है। जीसस ने कई बार कहानी दोहराई है, कि एक धनी बाप के दो बेटे थे। एक बेटा बिगड़ गया। जवान हुआ, तो उसने अपनी आधी संपत्ति माँग ली। संपत्ति ले कर वह शहर चला गया। क्योंकि गाँव में खर्च करने के उपाय भी न थे। न जुआघर थे, न शराबघर था, न वेश्याएँ थीं। शहर में उसने सब बरबाद कर दिया। सड़क का भिखारी हो गया। बाप को खबर मिलती रही। बाप दुःखी और पीड़ित भी हुआ, क्योंकि यह नहीं सोचा था। लेकिन बाप जानता था कि जबरदस्ती तो की भी नहीं जा सकती। जब वह समझेगा तब लौट आएगा। उसकी समझ ही लौटा सकती है। प्रतीक्षा कर सकता है। आग्रह नहीं कर सकता है। आग्रह खतरनाक है। आग्रह और दूर ले जाएगा।

बड़ा बेटा घर पर रहा। जो संपत्ति उसे मिली थी उसने दुगुनी कर दी। वह खेत में काम करता, बगीचों में अंगूर लगाता, बड़ी मेहनत करता। सुबह से साँझ तक जुटा रहता।

फिर एक दिन भिखारी बेटे को ख्याल आया कि ऐसे तो मैं भीख माँग-माँग कर मर जाऊँगा। मैं घर लौट सकता हूँ। मेरा पिता अभी भी जिंदा है। और पिता के प्रेम पर मैं भरोसा कर सकता हूँ। और जिसने मुझे इतनी स्वतंत्रता दी, और जिसने कभी यह भी न कहा, यह गलत है मत करो; जिसने मुझे मौका दिया ताकि मैं खुद ही जान लूँ कि क्या गलत है, उसकी करुणा मुझे इन्कार न करेगी, स्वीकार कर लेगी। उसे अपने बाप पर भरोसा है।

उसने एक दिन ख़बर दी, कि मैं वापिस आ रहा हूँ। बाप ने समारोह आयोजन किया। जो स्वस्थ से स्वस्थ भेड़ें थीं, उसने कटवायीं। सुंदर सुस्वादु भोजन बनवाए। बेटा घर आ रहा है। गाँव में फूल-वंदनवार लगवाए। सारे गाँव के मित्रों को आमंत्रित किया, कि मेरा बेटा घर आ रहा है। बड़े बेटे को खेत में ख़बर लगी।

किसीने बताया, कि हद हो गयी। तुम तो जीवन भर इस बूढ़े की सेवा करते रहे, कभी उसके विपरीत न गये, कभी तुमने उसकी आज्ञा का उल्लंघन न

किया, धन को तुमने दुगुना कर दिया, लेकिन तुम्हारे स्वागत में कभी समारोह न हुआ, कभी भेड़ें न काटी गयीं, कभी सुस्वादु भोजन न बने, कभी गाँव निमंत्रित न किया गया। और आज वह भ्रष्ट लड़का वापिस लौट रहा है, जिसने सब बरबाद कर दिया वेश्याओं में, शराबघरों में, जुआघरों में, उसके स्वागत का आयोजन हो रहा है? यह अन्याय है।

बड़े बेटे को भी लगा कि यह अन्याय है। वह उदास और दुःखी घर वापिस लौटा। यह स्वागत-समारोह देख कर, जलते दीये देख कर, फूल लगे देख कर उसकी छाती पर बड़ा भारी बोझ हो गया। वह जा कर अपने बाप के पास पहुँचा। और उसने कहा, यह अन्याय है। मैं तुम्हारी सेवा कर रहा हूँ। मेरे लिए कभी कोई वंदनवार न लगे, बैंड-बाजे न बजे। और वह भ्रष्ट वापिस लौट रहा है, उसके स्वागत की ये तैयारियाँ हैं। मैं अपनी आँखों पर भरोसा नहीं कर सकता।

बाप ने कहा, 'तुम मेरे पास ही हो। तुम कभी बिगड़े ही न। तुम कभी गलत रास्ते पर न गये। तुम्हारे स्वागत का कोई सवाल नहीं उठता। तुम मेरे पास ही हो। हर घड़ी तुम्हारा स्वागत है। तुम मेरे हृदय के करीब हो। लेकिन जो बिगड़ गया, भ्रष्ट हो गया, जिसके लिए मैंने बहुत चिंताएँ कीं—तुम्हारे लिए कभी चिंता का कोई कारण न रहा—तुमसे मैं सदा प्रसन्न हूँ, इसलिए अतिरिक्त प्रसन्नता की कोई भी जरूरत नहीं है। और जिसके लिए मैं चिंतित हुआ, रात सो न सका, वह वापिस लौट रहा है। उसको स्वागत की जरूरत है।

जब भूला-भटका वापिस आता है तो समारोह की जरूरत होती है। जीसस कहते थे, पुण्यात्मा, साधु और संत बड़े बेटे की भाँति हैं। जो भटक गये हैं, दूर निकल गये हैं, पापी हैं, अपराधी हैं, वे छोटे बेटे की तरह। और जीसस ने एक बड़ा अद्भुत सूत्रपात किया। और यहीं यहूदी धर्म से उनका विरोध हो गया। क्योंकि यहूदी मानते थे—जिसने गलती की है, परमात्मा उसे दंड देगा। और जीसस ने कहा—वह उसका स्वागत करेगा, क्योंकि उसका प्रेम है। तुम कितना ही गलत करो, तुम उसके प्रेम को नष्ट नहीं कर सकते हो। तुम कितने ही दूर जाओ, तुम उसके हृदय से दूर नहीं जा सकते हो। तुम पीठ कर सकते हो, वह पीठ नहीं करेगा। वह पिता है।

अस्तित्व से हमारा एक गहन संबंध है। और अस्तित्व प्रसन्न होगा। हिंदू इस बात को बहुत प्राचीन समय से जानते रहे। हमने तो कहा है, जब बुद्धत्व को कोई उपलब्ध होता है तो असमय में फूल खिल जाते हैं। जहाँ से बुद्ध निकलते हैं वहाँ असमय में, अभी फूल खिलने का मौका न था, और फूल खिल जाते हैं। क्योंकि अस्तित्व प्रसन्न होता है।

नानक वही कह रहे हैं--**वेखै विगसै करि वीचारु**। और बड़ा प्रसन्न होता है परमात्मा, जब कोई लौटता है। स्वतंत्रता और प्रेम का संयोग ! तुम कुछ भी करो, तुम उसे नाराज न कर सकोगे। उसका लगाव तुम्हारे सब करने से गहरा है। लेकिन उसकी आसक्ति हमारी आसक्ति नहीं है, कि तुम्हारी गर्दन को पकड़ ले, कि तुम्हारे लिए बंधन बन जाए। परमात्मा कारागृह नहीं है, परमात्मा प्रेम है। प्रेम+स्वतंत्रता। बड़ी कठिन बात है कहनी, क्योंकि दोनों विपरीत बातें हैं। या तो तुम प्रेम करते हो तो तुम स्वतंत्रता छीन लेते हो, तुम स्वतंत्रता देते हो तो तुम प्रेम को विदा कर देते हो।

आसक्त और अनासक्त दोनों; राग और विराग दोनों; जहाँ सभी विपरीत संयुक्त हो जाते हैं, वह महासंगम है।

इसलिए नानक कहते हैं-- '**नानक कथना करड़ा सारु ।।**'

उसके संबंध में कुछ भी कहना लोहे के चने चबाने जैसा है।

• • •

नानक नदरी नदरि निहाल

प्रवचन २०, दिनांक १०-१२-१९७४, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पउड़ी : ३८

जतु पहारा धीरजु सुनिआरु ।
अहरणि मति वेदु हथीआरु ॥
भउ खला अगनि तपताउ ।
भांडा भाउ अंमृत तितु ढालि ॥
घड़ीए सबदु सची टकसालु ।
जिन कउ नदरि करमु तिन कार ॥
नानक नदरी नदरि निहाल ॥

सलोकु :

पवणु गुरु पाणी पिता
माता धरति महतु ।
दिवस राति दुइ दाई दाइआ
खेले सगलु जगतु ॥
चंगिआइआ बुरिआइआ
वाचै धरमु हदूरि ।
करमी आपा आपणी
के नेड़े के दूरि ॥
जिनी नामु धिआइआ
गए मसकति घालि ।
नानक ते मुख उजले
केती छूटी नालि ॥

एक-एक शब्द समझने जैसा है ।

'संयम भट्टी है, धीरज सुनार है, बुद्धि निहाई है, और ज्ञान हथौड़ा है। भय ही धौंकनी है और तपस्या अग्नि है। भाव ही पात्र है, जिसमें अमृत ढलता है। सत्य के टकसाल में शब्द का सिक्का गढ़ा जाता है। जिनपर उसकी कृपादृष्टि होती है वे ही यह कर पाते हैं। नानक कहते हैं, वे उस कृपादृष्टि से निहाल हो उठते हैं।'

संयम का अर्थ है जीवन को दिशा देना, जीवन को मार्ग देना, जीवन को लक्ष्य देना, मंजिल देना। बिना संमय के आदमी ऐसा है, जो सभी दिशाओं में भाग रहा हो। जिसे ठीक पता न हो कहाँ जाना है, जिसे ठीक पता न हो क्या पाना है, जिसका कोई लक्ष्य न हो। बिना संयम का जीवन ऐसा है, जैसे अँधेरे में अंधा आदमी तीर को चला दे। संयम का जीवन है लक्ष्य का ठीक बोध, निशाना और तीर को उसी दिशा में छोड़ना ही लक्ष्य है। अगर तुम कहीं भी तीर को छोड़ दोगे, अगर किसी भी दिशा में छोड़ दोगे अंधेरे में और अंधे की भाँति, कोई संभावना नहीं है कि तुम किसी स्थिति को उपलब्ध हो पाओ। कोई सिद्धि संभव नहीं है बिना संयम के।

तो संयम का पहला अर्थ तो यह है, एक दिशा, एक गंतव्य। गंतव्य जैसे ही तुमने पकड़ा, उस गंतव्य के विपरीत जो भी है, उसे छोड़ने की सामर्थ्य इकट्ठी करनी पड़ेगी। जीवन में सभी कुछ नहीं पाया जा सकता। अगर तुम एक चीज पाना चाहते हो, हजार चीजें छोड़नी पड़ेंगी। जिसने सभी कुछ पाने की कोशिश की, वह बिना कुछ पाए समाप्त हो जाता है। पाने का अर्थ ही है कि तुमने चुनाव किया।

तुम मुझे सुनने चले आए हो। तुम्हें बहुत कुछ संयम करना पड़ा है, इस चुनाव के लिए। कुछ काम अधूरा है, जो तुम घर पर छोड़ आए हो। इस समय का दूसरा उपायोग भी हो सकता था। तुम बाजार में धन कमा सकते थे। इस समय की उपयोगिता बहुत थी, लेकिन तुमने एक निश्चय किया है। तुम यहाँ चले आए हो। इसका अर्थ है तुमने कुछ छोड़ा है। इस समय से जो-जो संभावनाएँ थीं वे सब तुमने छोड़ीं, और एक संभावना को चुना है।

प्रत्येक क्षण की अनंत संभावनाएँ हैं। एक-एक पल हजारों दिशाओं में ले जा सकता है। जो आदमी वेश्या के घर गया है वह मंदिर का त्याग कर के गया है। वह मंदिर भी जा सकता था। उसने संयम रखा है मंदिर न जाने का। जो मंदिर गया है वह भी वेश्या के घर जा सकता था। उस ने भी संयम रखा है, वेश्या के घर न जाने का। और हज़ार संभावनाएँ थीं।

एक कदम तुम उठाते हो, तब तुम हजारों कदम छोड़ते हो। जो चलता ही नहीं है, उसे ही संयम की जरूरत नहीं है। जो भी चलेगा, उसे तो बोधपूर्वक चुनाव करना होगा एक-एक कदम।

तो दिशा, मार्ग, लक्ष्य; और जब इन तीनों का तालमेल बैठ जाता है, तब तुम्हारे जीवन में संयम की उपलब्धि होती है। नानक कहते हैं संयम भट्टी है, जिससे सोना निखरता है, कचरा जल जाता है। सचेतन रूप से लक्ष्य को चुन लेना; तुम्हारा जीवन तब तीर बन जाता है। तब तुम कहीं जा रहे हो। तुम ऐसे ही ठोकरें खा कर इस कोने से उस कोने नहीं गिर रहे हो। तुम ऐसे ही भीड़ के धक्के में कहीं नहीं चले जा रहे हो। तुम ऐसे ही वासनाओं के द्वारा कहीं भी नहीं ले जाए जा रहे हो।

और वासनाग्रस्त आदमी और संयमी आदमी का यही बुनियादी भेद है। वासनाग्रस्त हजार दिशाओं में एक साथ दौड़ता है। इसलिए वासनाग्रस्त धीरे-धीरे विक्षिप्त हो जाता है। हो ही जाएगा। जिसके जीवन में दिशा न हो वह पागल हो ही जाएगा। क्योंकि वह हजार काम साथ करना चाहता है। इधर बैठ कर भोजन करता है, वह भी पूरा नहीं करता तब इसके मन में दूकान चलती रहती है। दूकान पर बैठ कर वह हज़ार दूसरे काम मन में करता रहता है। उसके हजार हाथ होते, हजार पैर होते, हजार शरीर होते, तो तुम उसकी असली स्थिति देख पाते। वह हजार तरफ एक साथ चला गया होता। दुबारा उन हजार आदमियों का कभी मिलना भी नहीं होता।

पर यही भीतर स्थिति है। तुम्हारा मन तो बिना हाथ, बिना पैर के हजार दिशाओं में एक साथ चला जाता है। तुम इसलिए तो खंडित हो, टुकड़े हो। और जब तक तुम अखंड न हो जाओ, तब तक प्रभु के चरणों में चढ़ने के योग्य न हो सकोगे। वहाँ तो अखंड ही चढ़ेगा।

इस अखंडता के कारण ही बहुत पुरानी प्रचलित धारणाएँ हैं। इस्लाम में एक धारणा है, कि अगर कोई आदमी मरे, और मरने के पहले उसका हाथ टूट गया हो, या अंगुली कट गयी हो, या कोई ऑपरेशन हुआ हो, तो वह परमात्मा के चरणों में पहुँचने के योग्य न रह जाएगा। इसलिए मुसलमान डरता है ऑपरेशन कराने से। कराता भी है तो भी अपराध-भाव अनुभव करता है। क्योंकि वह परमात्मा के अयोग्य हुआ जा रहा है।

पख्तूनिस्तान में पख्तून ऑपरेशन भी करते हैं, अगर उनका हाथ कट गया तो हाथ को सम्हाल कर रखते हैं। मरते वक्त उनकी कब्र में उनके साथ वह हाथ रख दिया जाता है, ताकि परमात्मा के सामने जब वे जाएँ तो अधूरे न हों।

यह बात तो बड़ी महत्त्वपूर्ण है, लेकिन इसका अर्थ बड़ा गलत ले लिया गया है। परमात्मा के सामने तुम अखंड ही पहुँच सकोगे। ऐसी धारणा हिंदुओं में भी है।

तुमने कहानियाँ सुनी होंगी, कि अगर यज्ञ में जब आदमी की बलि दी जाती थी, तो सर्वांग आदमी खोजा जाता था। अगर जरा सी अंगुली भी कटी हो तो यज्ञ में आहुति के योग्य न था।

एक राजकुमार का हाथ दब गया दरवाजे में। अंगुली टूट गयी। वह एक भक्त था। उसने अपने नौकर को पीछे मुड़ कर कहा, 'परमात्मा की बड़ी कृपा है। फाँसी भी लग सकती थी।' उस नौकर ने कहा, 'यह जरा भक्ति मेरी समझ में नहीं आती।' नौकर तर्कनिष्ठ था। बुद्धिशाली था। उसने कहा, 'यह जरा अतिशय है। यह आस्था मेरी पकड़ में नहीं आती। अंगुली कट गयी, खून बह रहा है, चोट लगी है। तुम धन्यवाद दे रहे हो। यह धोखा है। यह तुम अपने को समझा रहे हो।'

उस राजकुमार ने कहा, 'रुको, समय ही बताएगा। क्योंकि आस्था के लिए कोई भी तर्क नहीं दिया जा सकता है। सिर्फ समय ही बताएगा। समय ही बता सकता है कि आस्थावान सही था या गलत था। कोई और दूसरा प्रमाण नहीं हो सकता।

शिकार को दोनों गये थे, मार्ग भटक गया, और जंगल में कुछ अवधूतों ने उन्हें पकड़ लिया, जो आदमी की बलि देना चाहते थे। जब उन्होंने राजकुमार को बलि के लिए खड़ा किया, तो देखा कि उसकी एक अंगुली कटी है। तो उन्होंने कहा यह आदमी बेकार है, यह हमारे किसी काम का नहीं। नौकर सर्वांग था। उन्होंने उसकी बलि दे दी। जब उसकी बलि दी जा रही थी तब राजकुमार ने कहा, 'याद करो, मैंने कहा था कि परमात्मा की कृपा है, मेरी अंगुली टूट गयी। फाँसी भी हो सकती थी। और समय ही बता सकता है कि मैं सही था या गलत था, और समय अब बता रहा है।'

यज्ञ में भी पूरे आदमी की बलि दी जाती थी। मगर यह बात भी नासमझी की हो गयी। मतलब सिर्फ इतना है, कि परमात्मा में वही आदमी प्रवेश पा सकता है जो अखंड हो। जिसका कोई भी टुकड़ा यहाँ-वहाँ न पड़ा हो। जो पूरा हो, 'इंटीग्रेटेड' हो। पूरे तुम तभी होओगे।

अंगुली कटने से कोई अधूरा नहीं होता। सिर भी कट जाए तो भी कोई अधूरा नहीं होता। लेकिन चेतना जब कट जाती है, तब आदमी अधूरा हो जाता है, तुम्हारा मन जब बिखर जाता है। और तुम्हारा मन ऐसे है जैसे पारा हो। पारे को छोड़ दो, हजार टुकड़े हो जाते हैं तत्क्षण। उन्हें पकड़ना मुश्किल हो जाएगा। तुम पकड़ने जाओगे, जिस पारे के बिंदु को पकड़ोगे वही दस बिंदुओं में टूट जाएगा। तुम्हारा मन पारे की भाँति है। कितने टुकड़े उसके हो गये हैं, और सब टुकड़े अलग-अलग जा रहे हैं। अगर तुम ठीक से अपने भीतर जागरूक हो जाओ, तो तुम देखोगे, एक मन पूरब जा रहा है, एक पश्चिम जा रहा है, एक उत्तर जा रहा है, एक दक्षिण जा रहा है। एक धन पाना चाहता है, एक धर्म पाना चाहता है। सब तरफ जा रहे हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन पत्नी की तलाश में था। चाहता था, बहुत सुंदर स्त्री मिल जाए। लेकिन जब शादी कर के लौटा तो एक बहुत कुरूप स्त्री ले आया। तो मित्रों ने उससे पूछा कि यह तुमने क्या किया? उसने कहा, बड़ी मुसीबत हो गयी। जिस आदमी के घर मैं लड़की को देखने गया था, उस आदमी ने मुझसे कहा कि मेरी चार लड़कियाँ हैं। पहली लड़की की उम्र पच्चीस साल है। और उसके लिए मैंने पच्चीस हजार रुपये की दहेज की व्यवस्था कर रखी है। वह लड़की बड़ी सुंदर थी। लेकिन मैंने उस आदमी से पूछा कि तुम्हारी और लड़कियों के संबंध में क्या खबर है? तो कहा, दूसरी लड़की की उम्र तीस साल है। उसके लिए मैंने तीस हजार की व्यवस्था कर रखी है। तीसरी की उम्र पैंतीस साल है, उसकी मैंने पैंतीस की व्यवस्था कर रखी है। और वह आदमी डरा चौथी की उम्र बताने में। लेकिन मैंने पूछा, तुम चौथी के संबंध में भी निःसंकोच कहो। उसने कहा, उसकी उम्र पचास साल है, और मैंने उसके लिए पचास हजार की व्यवस्था कर रखी है। तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, कि मुझे पता ही नहीं कैसे मेरे मुँह से निकल गया--मैंने उनसे पूछा, और लड़की नहीं है तुम्हारी जिसकी उम्र साठ साल हो? और पचास वर्ष की औरत से शादी कर के घर लौट आया। यह तो रास्ते में ही मुझे पता चला, कि यह मैंने क्या कर लिया।

लेकिन मन बहुत खंड है। एक खंड सौंदर्य को माँगता है, एक खंड धन को माँगता है। इसलिए अपने मन पर भरोसा मत करना। तुम कुछ लेने जाओगे, कुछ ले कर लौट आओगे। और तुम्हें ऐसा बहुत बार हुआ है, कि बाजार तुम लेने कुछ गये थे, और लेकर तुम कुछ लौट आए। इस पृथ्वी पर भी तुम कुछ

और ही लेने आते हो, और कुछ और ही ले कर लौट जाते हो। तुम अपने मन पर भरोसा मत करना। तुमने अगर अपने मन पर भरोसा किया, तो तुम कहीं के न रह जाओगे। मन का भरोसा अगर तुमने किया, तो तुम खंड-खंड हो जाओगे, पारे की तरह टूट जाओगे।

संयम का अर्थ है, मन का भरोसा छोड़ देना। मन की मत सुनना। और साक्षी की तुम सुनोगे, तो तुम याद रख सकोगे कि तुम क्या पाने इस संसार में आए हो। क्या खरीदने आए हो बाजार में। वह याद तुम्हारा लक्ष्य बनेगी। तब तुम बहुत से रास्ते, जो टूटते हैं अलग-अलग दिशाओं में, उनको छोड़ने का सामर्थ्य रख सकोगे। संयम का अर्थ है, सार के लिए असार को छोड़ने की क्षमता। व्यर्थ के लिए, जिसको कोई मूल्य नहीं है, जिससे अंतिम कोई सिद्धि पूरी नहीं होगी, जिससे जीवन में कोई शांति, कोई आनंद, कोई सत्य फलित न होगा.....

उसका भी 'टेम्प्टेशन' है, उसकी भी बड़ी उत्तेजना है। वह भी आकर्षित करता है। और तुम कई बार कहते हो, कि क्या हर्जा है? रास्ते से उतर कर थोड़ा सा फूल को तोड़ लें, फिर रास्ते पर आ जाएँगे। लेकिन फूल को तोड़ने जब तुम उतरते हो, और चार कदम तुम फूल की तरफ चलते हो, तब और भी फूल हैं आगे। और तुम्हारी यात्रा बदल गयी। तुम जरा इंच भर यहाँ-वहाँ हटे, तुमने जरा सा क्षणभंगुर का मोह अपने भीतर बचाया, तुम जरा झुके, कि तुम गये।

तुम्हारे भटकने के लिए हजार मार्ग हैं, और पहुँचने के लिए एक मार्ग है। इसलिए बड़ी याददाश्त की जरूरत है। निरंतर स्मरण की जरूरत है, कि भटकने के लिए हजार उपाय हैं, पहुँचने के लिए एक उपाय है। भटकानेवाले करोड़ हैं, पहुँचानेवाला एक है। भटकना चाहो तो कोई अंत नहीं है। जन्मों-जन्मों तक भटकते रहो। वही तुमने किया है, वही तुम अभी भी कर रहे हो। तो एक मार्ग है।

स्मरण रखना, सत्य अनंत नहीं हैं; सत्य एक है। असत्य अनंत हैं। उन की कोई गिनती करनी संभव नहीं है। पाने योग्य एक है, छोड़ने योग्य अनंत हैं। तुमने अगर कभी बच्चों की पहेलियाँ देखी हैं--'पजल्स', जिनमें बच्चों के लिए बहुत से रास्ते होते हैं। द्वार एक हो जाता है निकलने का, या पाने का, भटकने के लिए बहुत से रास्ते होते हैं। जो लगते बिलकुल रास्ते जैसे हैं, लेकिन जब तुम चलते हो उसपर तो तुम पाते हो कि आगे आकर दरवाजा बंद हो गया। कहीं निकल नहीं पाते।

जिंदगी भी वैसी ही एक पहेली है। और बच्चों की पहेलियाँ तो बहुत छोटी होती हैं। एक कागज पर बनी होती हैं। जिंदगी की पहेली अंतहीन है। न उसका आदि है, न कोई अंत है। बड़ी पहेली है। इसलिए तो गुरु का मूल्य

है। क्योंकि पहेली इतनी बड़ी है, अगर तुम अपने ही सहारे खोजने की कोशिश किए और अगर तुम अपने ही हाथ चलते रहे, तो तुम हजारों बार भटकोगे।

और तब खतरा यह है कि कहीं हजारों बार भटक कर तुम यह न समझ लो, कि निकलने का कोई रास्ता ही नहीं है। कहीं तुम निराश न हो जाओ, कहीं तुम हताश होकर बैठ ही न जाओ। खतरा यह भी है, कि कहीं भटकते-भटकते भटकना तुम्हारी आदत न हो जाए। क्योंकि जिस काम को हम बहुत बार करते हैं, उसे हम करने में कुशल हो जाते हैं। वह काम कोई भी हो। अगर तुम बहुत बार भटकते हो, तो तुम भटकने में कुशल हो जाते हो। तुम इतना कुशल हो जाओगे भटकने में, कि ठीक रास्ता तुम्हारे सामने पड़ेगा तो तुम उससे बच ही जाओगे।

गुरु का अर्थ केवल इतना ही है, कि जिसने द्वार पा लिया हो, और जो तुम्हें भटकने से रोके। और जो तुम से कहे, कि वह रास्ता कितना ही प्रलोभन वाला दिखायी पड़ता हो, कहीं पहुँचाता नहीं है। आखिर में तुम दीवाल पाओगे, वहाँ कोई द्वार नहीं है। तुम धन को कितना ही पा लो, क्या पाओगे? आखिर में पाओगे दीवाल खड़ी हो गयी। तुम पद को पा कर क्या पाओगे? आखिर में पाओगे मार्ग खो गया। तुम प्रतिष्ठा सम्हालो, कितनी ही प्रतिष्ठा इकट्ठी कर लो, क्या मिलेगा? जिनसे तुमने प्रतिष्ठा पायी उनके पास ही कुछ नहीं है। वे तुम्हें क्या दे सकेंगे? जिन का खुद का कोई मूल्य नहीं है, उनके मंतव्य का क्या मूल्य होगा? तुम किससे पूछते फिर रहे हो? तुम किसकी आँखों में प्रतिष्ठा पाने के लिए उत्सुक हो? जिसके पास अपनी आँखें नहीं, जो अंधे हैं, उन्होंने अगर तुम्हारा सम्मान भी किया, तो सम्मान में क्या मूल्य होगा? वह पानी का बबूला है। मिलेगा भी नहीं और फूट जाएगा।

नानक कहते हैं, संयम भट्टी है।

'भट्टी' भी बड़ा विचार कर के कहते हैं। क्योंकि संयम कोई फूलों की सेज नहीं है, आग है। मन तो चाहेगा फूलों की सेज। और संयम तो आग है। इसलिए मन संयम से बचता है। मन असंयम के लिए सब तर्क खोजता है। और संयम के विरोध में तर्क खोजता है। मन असंयम को कहता है भोग; संयम को कहता है दुःख। जब कि स्थिति बिलकुल उलटी है।

भोग दुःख है, क्योंकि जितना तुम भोगते हो उतना तुम सड़ते हो। हर भोग तुम्हें विषाद में छोड़ जाता है। हर भोग के बाद तुम पाते हो कि तुम और भी टूट गये। तुम और भी विकृत हो गये। पहले ही तुम्हारे पास कुछ न था। जो था वह भी अब छीन लिया गया। हर भोग तुम्हें भिखारी बना जाता है। फिर भी मन कहता है भोग लो, समय भागा जा रहा है। कौन जाने फिर

समय मिले या न मिले! मन कहता है भोग लो, यह जीवन का अवसर फिर आए न आए।

लेकिन मन यह नहीं कहता, कि संयम कर लो, जीवन का अवसर फिर आए न आए; संयम कर लो, जीवन भागा जा रहा है, समय प्रतिपल चुकता जा रहा है। नहीं, मन समझाता है संयम के विपरीत। क्योंकि मन हमेशा सुख की आकांक्षा करता है।

इसे थोड़ा गहरा समझ लें। मन सदा सुख की आकांक्षा करता है, लेकिन पाता सदा दुःख है। ऐसा लगता है, कि हर जगह सुख के दरवाजे पर दुःख लिखा है। सुख देख कर मन प्रवेश कर जाता है और भीतर दुःख पाता है। और ऐसा लगता है हर दुःख के दरवाजे पर जैसा सुख लिखा है, ऐसे ही हर सुख के दरवाजे पर दुःख लिखा है।

जिब्रान की एक बड़ी प्रीतिकर कहानी है, कि संसार के जन्म के समय परमात्मा ने जब सब बनाया, तब उसने एक सौंदर्य की देवी और कुरूपता की देवी भी बनायी। उन दोनों को उसने पृथ्वी पर भेजा। मार्ग लंबा है आकाश से पृथ्वी तक आने का; धूल से भर गये उनके वस्त्र, उनके शरीर--लंबी यात्रा थी। तो वे दोनों एक झील के किनारे उतरीं, और स्नान करने झील में उतरीं। दोनों ने अपने कपड़े बाहर रख दिये झील के किनारे। कोई था भी नहीं आसपास। दोनों नग्न होकर, झील में स्नान किये। सौंदर्य की देवी तैरती हुई दूर तक निकल गयी। तभी कुरूपता की देवी बाहर निकली। सौंदर्य की देवी ने पीछे लौट कर देखा तो वह बड़ी हैरान हुई। देखा कि कपड़े तो जा चुके। सुबह हुई जा रही थी, गाँव के लोग जगने लगे थे। और आसपास के लोगों की आने-जाने की चहल-पहल शुरू हो गयी थी। मजबूरी में सौंदर्य की देवी को कुरूपता की देवी के वस्त्र पहन लेने पड़े। और जिब्रान ने कहा है, तब से सौंदर्य की देवी के वस्त्र पहन कर कुरूपता की देवी घूम रही है। और सौंदर्य की देवी कुरूपता की देवी के वस्त्र पहने घूम रही है।

ऐसा ही कुछ हुआ है। दुःख सुख के वस्त्र पहने हुए घूम रहा है। असत्य सत्य के वस्त्र पहने हुए घूम रहा है। और मन वहीं धोखा खा जाता है। वस्त्रों के भीतर विपरीत है।

संयम का अर्थ है, पहले तो तुम्हें दुःख मालूम पड़ेगा। संयम का अर्थ है, पहले तो बड़ी कठिनाई मालूम पड़ेगी। सुबह पाँच बजे ही उठना चाहो तो कितनी कठिनाई हो जाती है! सारा शरीर बगावत करता है, सारा मन इनकार करता है। कहता है, उठ लेना कल, जल्दी क्या है, आज बहुत सर्दी है, और सोना कितना सुखद है। सोने से कुछ मिला भी नहीं है। और सोना कितना सुखद है, मन समझाता है।

तुम्हें उस सुख का कोई भी पता नहीं है, जो बाहर उग रहा है सूरज के रूप में। तुम्हें उस सुख का भी कोई पता नहीं है, जो बाहर पक्षी गीत गा रहे हैं, जो फूलों के खिलने में छिपा है, जो सुबह की ओस में छिपा है, जो सुबह के होने में छिपा है। क्योंकि सुबह से ज्यादा सुंदर फिर कोई क्षण नहीं है। उतना ताजा क्षण फिर कहाँ से पाओगे? जो सुबह को चूक गया, वह दिनभर ताजगी की तलाश करेगा लेकिन पा न सकेगा। लेकिन मन कहता है, थोड़ी देर और सो लो। थोड़ी देर और मूर्छित रह लो। थोड़ी देर और विश्राम कर लो, एक करवट और।

और यह हर तरह की नींद के संबंध में मन की दलील है। जागना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है। सोना सुखद मालूम पड़ता है। और जागने से ही सुख मिलता है, महासुख मिलता है। सोने से आदमी सिर्फ खोता है।

इसलिए नानक कहते हैं, संयम भट्टी है। सोना उससे निखरेगा। लेकिन आग से गुजरने की सामर्थ्य, तैयारी चाहिए। कष्ट से गुजर कर ही कोई महासुख तक पहुँचता है। दुःख से तो तुम भी गुजरते हो, लेकिन बेमन से गुजरते हो। तब वह संयम नहीं है। जब तुम दुःख के साथ होशपूर्वक गुजरते हो, जब तुम दुःख को अंगीकार कर लेते हो, मार्ग मान लेते हो, और दुःख को समझ लेते हो, कि यह अनिवार्य भट्टी है जीवन की, जिससे गजर कर मैं निखरूँगा, साफ होऊँगा, शुद्ध होऊँगा, वह दुःख की पूरी कीमिया बदल जाती है।

दुःख से तो सभी गुजरते हैं, संसारी भी और संन्यासी भी। संसारी बेमन से गुजरता है, रोता हुआ गुजरता है, चूक जाता है इसलिए। जो जाग कर गुजरता है, स्वीकार के भाव से गुजरता है, दुःख को अंगीकार कर लेता है, वह दुःख को सीढ़ी बना लेता है। वह दुःख के पार चला जाता है। संयम का अर्थ है, दुःख को मार्ग बना लेना, साधन बना लेना। दुःख से अभिभूत न होना, बल्कि दुःख को सीढ़ी बना कर उसके पार उठ जाना। भट्टी जैसा है।

और धीरज सुनार है। भट्टी में जब सोने को डाला जाता है, तो बड़ा धीरज रखना पड़ता है। जल्दबाजी वहाँ न चलेगी। जिसने जल्दी की, वह चूका। और जिसने जल्दी न की, वह हमेशा पहुँच गया है। जल्दी का अर्थ ही यह है, कि तुमने दुःख को स्वीकार नहीं किया। इसलिए तुम जल्दी कर रहे हो। तुमने दुःख की महिमा नहीं जानी, कि दुःख निखारता है, कि दुःख सँवारता है, कि दुःख व्यर्थ से छुटकारा देता है। तुमने अभी दुःख का मैत्रीभाव नहीं पहचाना। जिसने दुःख में मित्र को देख लिया, वह संयमी है। और जिसने मित्र को देख लिया, जल्दी क्या है? वह धैर्य रख पाता है। और परमात्मा की उपलब्धि धैर्य से होती है। अनंत प्रतीक्षा चाहिए। यह कोई क्षुद्र नहीं है, कि तुम अभी पा लो।

तुम बीज बोते हो। मौसमी फूलों का बीज दो सप्ताह, तीन सप्ताह में अंकुरित हो जाता है। छठवें सप्ताह में तो फूल लग जाते हैं। लेकिन बारहवाँ सप्ताह पूरे

होते-होते पौधा नष्ट हो जाता है। फिर तुम देवदार के वृक्ष लगाते हो। जो सौ साल जिएँगे, दो सौ साल जिएँगे, चार सौ साल जिएँगे। फिर अमेरिका में ऐसे वृक्ष हैं, जो पाँच हजार साल पुराने हैं। उनको बढ़ने में बड़ा वक्त लगता है। सालों बीज दबा रहता है, तब कहीं अंकुरण होता है। मौसमी फूल जल्दी खिल जाते हैं।

इस जीवन के जो क्षुद्र सुख हैं वे जल्दी मिल जाते हैं। मगर उतने ही जल्दी खो भी जाते हैं। ध्यान रखना इस गणित को, जितनी जल्दी मिलेगा, उतनी ही जल्दी खो जाएगा। अगर परमात्मा को ही पाना हैं, जो सदा रहेगा, तो अनंत धैर्य की जरूरत है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि अनंत काल बीतेगा तब तुम्हें मिलेगा। मिल तो एक भी क्षण में सकता है। लेकिन तुम्हें धैर्य रखने की अनंत क्षमता चाहिए।

और इस बात को भी ठीक से समझ लो। जितना तुम धैर्य रख सकोगे, उतना जल्दी मिल जाएगा। और जितनी तुम जल्दबाजी करोगे, उतनी देर लग जाएगी। क्यों? क्योंकि जितना तुम धैर्य रखते हो उतने ही तुम गहरे हो जाते हो। जल्दबाजी उथले आदमी का लक्षण है। जल्दबाजी बचकाने स्वभाव का लक्षण है। छोटे बच्चे आम के बीज बो देते हैं। घड़ी भर बाद फिर निकाल कर देखते हैं, अभी तक अंकुर आया कि नहीं आया? यह अंकुर कभी भी नहीं आएगा। तुम बार-बार उघाड़ोगे, अंकुर कैसे आएगा। धीरज तो रखो थोड़ा।

तुमने देखा, गाँव में किसान है, उसमें धैर्य ज्यादा होता है। उसमें शांति भी भिन्न होती है। शहर का दुकानदार है, उसमें धैर्य कम होता है। शांति भी उतनी ही मात्रा में कम होती है। जितने तुम गहरे प्रवेश करोगे देहात में, उतना ही तुम लोगों को शांत पाओगे। उसका कारण है, कि प्रकृति के साथ उनको धीरज रखना पड़ता है। तुमने आज बो दिया तो कल ही फसल नहीं काट लोगे। तुम्हें धैर्य रखना पड़ेगा। वे धैर्य के मार्ग से गुजर-गुजर कर शांत हो जाते हैं। लेकिन जिसको परमात्मा के फूल पाने हैं, उसने तो अनंत की खेती करने का विचार किया है।

नानक से उनके पिता बार-बार कहते थे, कि कुछ काम करो। कुछ न बन सके तो तुम खेती-बाड़ी शुरू कर दो। नानक ने कहा, खेती-बाड़ी तो मैं करता हूँ। बाप ने कहा, तुम्हारा दिमाग बिलकुल खराब हो गया है। तुमने कब खेती-बाड़ी की? कहाँ है फसल? क्या कमाया? मैं तो तुम्हें बैठे देखता हूँ घर में। नानक ने कहा, 'वह आप ठीक ही देखते हो। मैं जरा दूसरे ढंग की खेती-बाड़ी करता हूँ। और जो मैंने कमाया है वह मेरे भीतर है। और परमात्मा की कृपा हो और आपको आँखें मिलें, तो वह दिखायी पड़ सकता है। कमाया तो मैंने बहुत है, फसल भी बहुत काटी है। लेकिन फसल भीतरी है, जरा सूक्ष्म है। साधारण आँखों से दिखायी नहीं पड़ेगी।'

जो व्यक्ति धर्म के मार्ग पर गया है उसने अनंत की फसल काटनी चाही है। उतना ही धैर्य भी चाहिए। धैर्य का अर्थ यह है, कि तुम अपेक्षा मत करना। धैर्य का अर्थ यह है, कब होगा यह मत पूछना। जब होगा, उसकी मर्जी। जब हो जाएगा तब स्वीकार है। अनंत काल व्यतीत हो जाए तो भी तुम यह मत कहना कि मैं इतनी देर से प्रतीक्षा कर रहा हूँ, अभी तक नहीं हुआ !

एक बड़ी पुरानी हिंदू कहानी मुझे बहुत प्रीतिकर रही है, कि नारद स्वर्ग जा रहे हैं; और उन्होंने बूढ़े संन्यासी को पूछा, कुछ खबर-वबर तो नहीं पूछनी है ? तो उस बूढ़े संन्यासी ने कहा, परमात्मा से मिलना हुआ तो जरा पूछ लेना कि कितनी देर और है ? क्योंकि मैं तीन जन्मों से साधना कर रहा हूँ। वह बड़ा पुराना तपस्वी था। नारद ने कहा, जरूर पूछ लूँगा।

उसके ही पास एक दूसरे वृक्ष के नीचे एक जवान बैठा हुआ अपना एकतारा बजा रहा था। गीत गा रहा था। नारद ने उसे मजाक में पूछा, कि क्यों भाई, तो तुम्हें भी तो कोई बात नहीं पुछवानी है भगवान से ? मैं जा रहा हूँ स्वर्ग। वह अपना गीत ही गाता रहा। उसने नारद की तरफ आँख उठा कर भी न देखा। नारद ने उसको हिलाया तो उसने कहा, कि नहीं, उसकी कृपा अपरंपार है। जो चाहिए वह हमेशा मुझे मिला ही हुआ है। कुछ पूछना नहीं है। मेरी तरफ से उसे कोई तकलीफ मत देना। मेरी बात ही मत उठाना, मैं राजी हूँ। और सभी मिला हुआ है। बन सके तो मेरी तरफ से धन्यवाद दे देना।

नारद वापिस लौटे। उस बूढ़े संन्यासी को जा कर कहा कि क्षमा करना भाई ! मैंने पूछा, उन्होंने कहा कि वह बूढ़ा संन्यासी जिस वृक्ष के नीचे बैठा है, उस वृक्ष के जितने पत्ते हैं, उतने ही जन्म अभी और लगेंगे। बूढ़ा तो बहुत नाराज हो गया। वह जो पोथी पढ़ रहा था फेंक दी, माला तोड़ दी, गुस्से में चिल्लाया, कि हद हो गयी ! अन्याय है। यह कैसा न्याय ? तीन जन्म से तप कर रहा हूँ, कष्ट पा रहा हूँ, उपवास कर रहा हूँ, अभी और इतने ? यह नहीं हो सकता।

उस युवक के पास भी जा कर नारद ने कहा, कि मैंने पूछा था, तुमने नहीं चाहा था फिर भी मैंने पूछा था। उन्होंने कहा कि वह जिस वृक्ष के नीचे बैठा है उसमें जितने पत्ते हैं-- वह युवक उठा तत्क्षण, अपना एकतारा लेकर नाचने लगा और उसने कहा, 'गजब हो गया। मेरी इतनी पात्रता कहाँ ? इतने जल्दी ? जमीन पर कितने वृक्ष हैं, उन वृक्षों में कितने पत्ते हैं, सिर्फ इस वृक्ष के पत्ते ? बस, इतने ही जन्मों में हो जाएगा ? यह तो बहुत जल्दी हो गया, यह मेरी पात्रता से मुझे ज्यादा देना है। इसको मैं कैसे झेल पाऊँगा ? इस अनुग्रह को मैं कैसे प्रगट कर पाऊँगा ?' वह नाचने लगा खुशी में, और कहानी कहती है, वह उसी तरह नाचते-नाचते समाधि को उपलब्ध हो गया। उसका शरीर छूट गया।

जो अनंत जन्मों में होने को था, वह उसी क्षण हो गया। जिसकी इतनी प्रतीक्षा हो, उसी क्षण हो ही जाएगा।

नानक कहते हैं, 'धीरज सुनार है, बुद्धि निहाई है, ज्ञान हथौड़ा।'

बुद्धि के साथ हम दो काम कर सकते हैं, और एक काम हमने किया है। बुद्धि का झोले की तरह उपयोग करते हैं, निहाई की तरह नहीं। बुद्धि का हम झोले की तरह उपयोग करते हैं और ज्ञान की जगह हम सूचनाएँ इस झोले में भरते हैं। शास्त्र पढ़ते हैं, सद्गुरुओं को सुनते हैं। जो भी जहाँ से मिलता है, सब उसमें भरते जाते हैं-- एक झोले की तरह। और वह झोला भी भिखारी का। उसमें सब कूड़ा-कबाड़ भी ! अखबार भी उसीमें हैं, वेद भी उसीमें हैं, रेडियो भी उसीमें पड़ा हुआ है। किसीने गाली दी, वह उसीमें है; और किसीने मंत्र दिया, वह भी उसीमें है। वह झोला है। उसमें सब खिचड़ी है। उसमें मंत्र गाली के साथ मिल गया है। उसमें वेद, अखबार में खो गये हैं। इस झोले को हम ढोते हैं।

इसको हम स्मृति कहते हैं। यह ज्ञान नहीं है। यह सिर्फ कचरा, कूड़ा-कबाड़ है। क्योंकि ज्ञान तो वही है जो अपने अनुभव से मिलता है। इसमें कुछ भी तुम्हारा अनुभव नहीं है, बासा है, उधार है। तुमने बुद्धि का उपयोग झोले की तरह किया। और नानक कहते हैं, बुद्धि निहाई है, और ज्ञान हथौड़ा है।

नानक कहते हैं, कि ज्ञान तो चोट है, हथौड़ा है। और जब भी तुम्हें ज्ञान होगा, कोई भी छोटा सा भी ज्ञान होगा, तो तुम्हारा रोआँ-रोआँ कँप जाएगा उस चोट से। इसलिए तो हम ज्ञान से बचते हैं, क्योंकि वह 'शॉक' है। उस धक्के को हम नहीं सहना चाहते। हम तो सूचनाएँ इकट्ठी करते हैं। सूचनाएँ इकट्ठी करने में कोई भी धक्का नहीं है।

तुम उस शास्त्र में पढ़ लेते हो कि परमात्मा परम सत्य है, इसमें कौन सा धक्का है ? तुम शास्त्र में पढ़ लेते हो, ध्यान मार्ग है; इसमें कौन सा धक्का है ? पढ़ लिया, याद कर लिया, दूसरे को बता दिया।

एक छोटी बच्ची; माँ उसकी ऊपर से बुला रही थी सीढ़ियों पर खड़ी और वह ऊपर नहीं जा रही थी। वह नीचे आँगन में खेल रही थी। तो बच्ची की दादी भी नीचे धूप ले रही थी। उसने कई बार कहा, कि खेलने भी दो, स्नान बाद में करवा देना। लेकिन माँ जिद पर अड़ी थी। उसने बार-बार कहा कि चल, चल ऊपर और स्नान कर। मजबूरी में बच्ची ने अपना खिलौना छोड़ा और ऊपर चढ़ी। चढ़ते वक्त उसने कहा कि यह कैसा आश्चर्य है, कि तुम सदा मुझे कहती हो कि अपनी माँ की सुनो; और अपनी माँ की जरा भी नहीं सुन रही !

तुम जिस ज्ञान को दूसरे को देते हो, उसकी तुमने कभी खुद सुनी है ? तुम जो सलाह दूसरे को देते हो वह तुम्हारे जीवन में कभी आयी है ? नहीं, तुमने भी बासी पायी है और तुम दूसरे को भी दिये दे रहे हो। देने से तुम्हारा छुटकारा होता है, झंझट मिटती है। वह तुम्हारे लिए न तो धक्का थी और न दूसरे के लिए धक्का होगी।

इसलिए सलाह दुनिया में सब से ज्यादा दी जाती है, और सबसे कम ली जाती है। ज्ञान लोग मुफ्त बांटते हैं, कौन लेता है ? ऐसे ज्ञानियों से लोग बच कर भागते हैं। क्योंकि ऐसा ज्ञानी आप को उबाता है। आप नहीं भी चाहते, वह अपना झोला आपमें उंडेलता है। वह बोझ ढो रहा है, वह बाँटना चाहता है। वह कचरा सम्हाले हुए है। उसने खुद भी उसका कोई उपयोग नहीं किया है।

ज्ञान तो चोट है। क्योंकि वास्तविक ज्ञान जीवन के अनुभव से पैदा होता है, जीवन के घर्षण से। अस्तित्व में जब तुम छलाँग लेते हो, तब ज्ञान उत्पन्न होता है; शास्त्रों से नहीं, शब्दों से नहीं, अनुभव से; अनुभव चोट है। इसलिए हम अनुभव से तो बचते हैं।

गुरजिएफ कहता था, जैसे रेलगाड़ियों में बफर लगे होते हैं। हर दो डब्बे के बीच में तुमने देखे होंगे, बफर लगे हैं। बफर लगाते हैं इसलिए, ताकि अगर धक्का लगे तो दोनों डब्बे टकरा न जाएँ। या, जैसा कि कार के नीचे स्प्रिंग लगे होते हैं, 'शॉक ॲब्ज़ॉर्बर्स' लगे होते हैं, ऐसा, गुरजिएफ कहता था, कि हमारा ज्ञान 'शॉक ॲब्ज़ॉर्बर' का काम करता है। जब कि वास्तविक ज्ञान 'शॉक' का काम करता है।

तुम्हारा घर में कोई मर गया है, तो तुम कहते हो, 'आत्मा तो अमर है।' इस ज्ञान का तुम्हारे जीवन में कभी कोई धक्का नहीं लगा। इसका तुम उपयोग 'शॉक ॲब्ज़ॉर्बर' की तरह कर रहे हो।

जिन ज्ञानियों ने यह कहा है, कि आत्मा अमर है, उन्होंने बड़े संयम, बड़ी तपश्चर्या, बड़ी भट्टियों से गुजर कर कहा। बड़ी अग्नियों से गुजर कर कहा है। उनके लिए यह ज्ञान तो हथौड़ी की तरह निहाई पर पड़ा है। इस ज्ञान में तो वे चकनाचूर हो गये हैं। इस ज्ञान ने तो उनकी खोपड़ी तोड़ दी है। उन के अहंकार को मिट्टी में गिरा दिया है। इस ज्ञान ने तो उनके सारे शरीर से सब संबंध विच्छिन्न कर दिये हैं। इस ज्ञान से उनका सारा संसार डगमगा कर बिखर गया है, टूट गया है। इस ज्ञान से तो वे संन्यस्त हुए हैं। इस ज्ञान ने तो उन्हें इस संसार में कहीं का न रखा। इस ज्ञान ने तो उनकी यहाँ से जड़ें उखाड़ दी हैं। यह ज्ञान उनके लिए तो झंझावात की तरह आया था।

और तुम्हारे लिए ? तुम्हारे लिए लोरी की तरह, जब भी तुम्हें नींद नहीं आती तब तुम यह ज्ञान गुनगुना लेते हो, और सो जाते हो। घर में कोई मर गया, तुम कहते हो आत्मा तो अमर है। तुम मृत्यु और अपने बीच 'शॉक ॲब्जॉर्बर' की तरह उसका उपयोग कर रहे हो। मौत तुम्हें घबड़ा देगी।

यह हो भी सकता था, कि तुम्हारे घर में कोई मरता और तुम पूरा अनुभव करते तो ज्ञान उपलब्ध होता। क्योंकि वह मौत की घटना हथौड़ी बन जाती, तुम निहाई बन जाते। और वह चोट तुम पर पड़ती तो उस चोट में तुम जागते। दुनिया में कोई बिना चोट के नहीं जागता है। और तुम सब चोटों से बचने का उपाय कर लिए हो। तुमने चारों तरफ 'शॉक ॲब्जॉर्बर' लगा रखे हैं। कोई भी तुम्हें लग नहीं सकती। तुम भीतर सुरक्षित हो।

कोई मरता है, तुम कहते हो आत्मा अमर है। सड़क पर कोई भीख माँगता है, तुम कहते हो बेचारा ! अपने कर्मों के फल भोग रहा है। तुम दो पैसा देना नहीं चाहते। अगर वह कर्मों का फल नहीं भोग रहा है तो तुम भी जिम्मेवार मालूम पड़ोगे। तुम उस समाज के हिस्से हो, जो उसे दरिद्र बना रहा है। भिखमंगा बना रहा है। तुम उस समाज के भागीदार हो जिसने उसे इस दीनता में पटक दिया है। तुम पर भी थोड़ी जिम्मेवारी है। वह जिम्मेवारी चोट करती है। तुम ने एक 'शॉक ॲब्जॉर्बर' बना लिया। तुम कहते हो, बेचारा ! अपने कर्मों का फल भोग रहा है। अपने रास्ते पर चले जाते हो। तुम्हारे मनमें इससे कोई चिंता पैदा नहीं होती।

तुम बड़े कुशल हो। तुम्हारी चालाकी की कोई सीमा नहीं है। ज्ञानियों को ज्ञान धक्के से मिलता है। तुम उसी धक्के का उपयोग 'शॉक ॲब्जॉर्बर' की तरह करते हो। कुछ भी हो जाए तुम अपने को सम्हाल लेते हो। तुम गिरते नहीं। तुम अपने अहंकार को बचा लेते हो। और वही अहंकार है, जो टूटना चाहिए।

बुद्धि निहाई है और ज्ञान हथौड़ा है; पड़ेगा किस पर ? इस निहाई और हथौड़े के बीच में अगर तुम आ जाओ, तो ही तुम्हारे जीवन में ज्ञान उत्पन्न होगा। अगर तुम बिखर जाओ, तो ही ! लेकिन तुम बिखरते नहीं। तुम तो बहुत तरह से अपने को सम्हालते हो।

एक दिन सुबह-सुबह मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर गया। खाँस रहा था। डॉक्टर हजारों बार कह चुके थे, सिगरेट पीना बंद करो। वह बंद करता नहीं। उससे मैंने कहा, इतनी तकलीफ पाते हो, बंद ही कर दो। उसने कहा, कि जब आपने पूछ ही लिया, और आपने कहा, तो असलियत बता दूं। बंद तो मैं भी

करना चाहता हूँ, लेकिन डरता हूँ। मैंने कहा, क्या कारण है डरने का ? इतना कष्ट भोगते हो, इतनी तकलीफ, रात सो नहीं सकते हो, रातभर खाँसते-खँखारते हो।

उस ने कहा, पहली दफा जब मैंने बंद की थी, तो उसी दिन दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ था।

इनकी सिगरेट बंद करने की वजह से, दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया था, उसी दिन ! इस डर से अब सिगरेट पीना बंद नहीं करते, कि कहीं फिर युद्ध हो जाए।

तुम अपने अहंकार के लिए बड़ी अनूठी तरकीबें खोजते हो। तुम ऐसा सोच कर चलते हो, कि सारा जगत तुम्हारे लिए चलता रहा है, और तुम नियंता हो। तुम बिखर जाओगे तो सब बिखर जाएगा। तुम मरोगे तो सब मर जाएगा। तुम नहीं रहोगे तो दुनिया कैसे चलेगी ? तुम्हारे सिगरेट पीने या न पीने से युद्ध हो जाते हैं। तुम पर सब कुछ निर्भर है। तुम अगर गौर करोगे तो इस तरह की ही हास्यास्पद बातें तुम्हारे आसपास तुम इकट्ठी पाओगे।

बुद्धि निहाई है और ज्ञान हथौड़ा है। तुम बुद्धि का उपयोग झोले की तरह मत करो। अन्यथा झोला बड़ा होता जाएगा और तुम छोटे होते जाओगे। और एक दिन ऐसा आ जाएगा कि तुम अपने ही झोले में खो जाओगे। तुम उसी के नीचे दब कर मरोगे। पंडित ऐसे ही मरते हैं। अपने ही ज्ञान के नीचे दब के समाप्त हो जाते हैं।

बुद्धि को निहाई बनाओ। बुद्धि उतनी ही चमकती है जितने ही जीवन के अनुभव उस पर पड़ते हैं। हर चोट से निखर जाती है।

और तुमने कभी ख्याल किया ? नहीं तो जाओ लोहार के यहाँ और सुनार के यहाँ, जहाँ निहाई होती है; तुम बड़े हैरान होओगे। हथौड़ा चोट मारता है। सैकड़ों हथौड़े टूट जाते हैं, एक निहाई चलती रहती है। तुम हैरान होओगे। टूट जाते हैं हथौड़े, जो चोट मारते हैं। निहाई बची रहती है, और निहाई निखरती जाती है। निहाई में एक चमक आ जाती है।

लाओत्से ने कहा है, कि निहाई क्यों नहीं टूटती ? क्योंकि वह झेल लेती है। हथौड़ा टूट जाता है क्योंकि वह आक्रमण करता है।

आक्रमण टूट जाएगा अपने-आप। तुम इसकी चिंता मत करो, तुम सिर्फ झेलने में समर्थ हो जाओ। हर आक्रमक स्थिति, हर घटना जो तुम्हें हिला जाती है, तुम्हें और मजबूत कर जाएगी। पूछो, सुनार से, एक निहाई और कितने हथौड़े ? तो वह कहेगा, सैकड़ों हथौड़े टूट गये, एक निहाई न टूटी। टूटना था

निहाई को, क्योंकि कितने आक्रमण हुए। लेकिन तोड़ने वाले टूट जाते हैं। सहने वाले बच जाते हैं। निहाई में पूरा राज छिपा है।

नानक कहते हैं, बुद्धि निहाई है। बुद्धि टूटेगी नहीं, डरो मत। खोलो अनुभव के लिए, पड़ने दो चोटें। जितनी चोटें पड़ेंगी तुम्हारे जीवन चेतना पर, उतने ही तुम निखरोगे। जीवन को एक अभियान बनाओ, एक 'एडवेंचर'।

और जहाँ भी चोट पड़ सकती हो वहाँ से भागो मत। जिसने पलयान किया, वह हारने के पहले ही हार गया। उसने चुनौती स्वीकार ही न की। वह भाग खड़ा हुआ। भगोड़े मत बनो। जीवन के संघर्षण से भागो मत।

इसलिए मैं उसको संन्यासी नहीं कहता, जो भाग गया। क्योंकि वह तो हथौड़ों से ही भाग गया। उसकी निहाई पर जंग लगेगी हिमालय में, और कुछ नहीं हो सकता। तुम देखो अपने संन्यासियों को, जाओ हिमालय। तुम उनमें बुद्धि का प्रखार न पाओगे। तुम उनमें चमक न पाओगे। तुम उन पर पाओगे जंग लग गयी। अगर तुम्हारे पास आँखें हैं तो तुम देखोगे उनकी प्रतिभा दीन हो गयी, क्षीण हो गयी। वे मरे से हुए हैं। उनके भीतर जीवन की ज्योति प्रगाढ़ता से नहीं जलती है। उनके भीतर सब फीका-फीका, उदास-उदास हो गया है। क्योंकि जीवन की ज्योति के जलने के लिए संघर्षण चाहिए। संघर्षण भोजन है। उससे भागो मत।

नानक कहते हैं, बुद्धि निहाई है और ज्ञान हथौड़ा है। और जब भी तुम्हारे जीवन में चोट पड़े तभी ज्ञान का एक क्षण उत्पन्न होता है। उसको तुम चूको मत। जैसे रात, कभी अंधेरी रात में बिजली चमकती है। ऐसे तो तुम कँप जाते हो लेकिन उसी कंपन में एक प्रकाश होता है, और सब अँधेरा खो जाता है। एक क्षण को सब रास्ते साफ हो जाते हैं।

ज्ञान की हर चोट बिजली की चमक है। बादलों में घर्षण होता है तब चमक पैदा होती है। और जब जीवन में घर्षण होता है तब चमक पैदा होती है। तो जीवन की किसी भी स्थिति से भागो मत। रुको, और उससे गुजरो। उसी से प्रौढ़ता और 'मेच्योरिटी' आएगी। उसीसे समझ का जन्म होगा, 'अंडरस्टैंडिंग' पैदा होगी।

इसलिए नानक ने अपने शिष्यों को संसार से भागने को नहीं कहा। क्योंकि वह हथौड़ियों से भागना है। वहीं तो सारा ज्ञान उत्पन्न होगा। तुम भाग जाओगे पत्नी से, तुम बचकाने रह जाओगे। क्योंकि पत्नी के साथ संघर्षण में एक प्रौढ़ता है। तुम भाग जाओगे अपने बच्चों से, लेकिन तुम बचकाने रह जाओगे। क्योंकि बच्चों के साथ, जीवन को बड़ा करने में तुम्हारी एक प्रौढ़ता है जो विकसित होती है।

तुमने कभी ख्याल किया ? जैसे ही एक बच्चा पैदा होता है किसी स्त्री को, वह स्त्री वही नहीं रह जाती जो बच्चे के पहले थी। क्योंकि बच्चा ही पैदा नहीं होता, माँ भी पैदा होती है उसीके साथ। उसके पहले वह साधारण स्त्री थी, अब वह माँ है। और माँ होना एक अलग गुणधर्म है, जिसका साधारण स्त्री को कोई भी पता नहीं। जब एक बच्चा पैदा होता है, अब तक जो जवान आदमी था, अब बाप बनता है। उस बाप बनने में एक प्रौढ़ता है। बाप होने का ख्याल, बाप होने की स्थिति, एक नये अनुभव की शुरुआत है। तुम भागो मत। जीवन ने जितने द्वार खोले हैं, उन सबका उपयोग करो।

इसलिए नानक ने अपने भक्तों को जंगल भाग जाने को नहीं कहा। कहा कि जीवन में रुकना। पड़ने देना हथौड़ियाँ, डरना मत। क्योंकि बुद्धि निहाई है, और ज्ञान हथौड़ा है।

'भय धौंकनी है और तपस्या अग्नि है।'

भय का उपयोग भी तुम दो तरह से कर सकते हो। एक तो तुम कर ही रहे हो। वह उपयोग है कि जहाँ-जहाँ तुम भयभीत हो जाते हो, वहीं-वहीं से तुम भाग खड़े होते हो। तुम शुतुरमुर्ग का तर्क मानते हो। देखता है दुश्मन को, रेत में सिर गड़ा कर खड़ा हो जाता है। न दिखायी पड़ता है दुश्मन, सोचता है नहीं रहा। जो दिखायी नहीं पड़ता वह होगा कैसे ? तुम जहाँ-जहाँ भय पाते हो वहीं से हट जाते हो। तो तुम कैसे बढ़ोगे ? भय अवसर है। भय क्या है ? भय एक ही है कि तुम मिट न जाओ। जहाँ-जहाँ तुम भय पाते हो वहीं से तुम हट जाते हो। और अगर तुम मिटने को राजी नहीं हो, तो परमात्मा होगा कैसे ?

भय क्या है ? एक ही भय है कि मैं मर न जाऊँ, समाप्त न हो जाऊँ। मृत्यु के अतिरिक्त कोई भी भय नहीं। और जो मरने को राजी नहीं है वह परमात्मा में लीन होने को कैसे राजी होगा ? जो मरने को राजी नहीं है वह परमात्मा में जाने को कैसे राजी होगा ? जो मरने को राजी नहीं है वह प्रार्थना में कैसे प्रवेश करेगा ?

तो भय की दो संभावनाएँ हैं। या तो तुम पलायन कर जाओ, या तुम समर्पण कर दो। या तो तुम भाग जाओ, या तुम समर्पण कर दो। तुम राजी हो जाओ कि ठीक है, मौत है। स्वीकार कर लो, आँख मत छिपाओ। और जिस दिन तुम मौत को खुली आँख से देखोगे, स्वीकार कर के देखोगे, उसी दिन तुम पाओगे कि मौत तिरोहित हो जाती है। तुमने उसे कभी खुली आँख से देखा नहीं था। तुमने कभी आमना-सामना न किया था, इसलिए मौत थी। जीवन के सब भय धीरे-धीरे तिरोहित हो जाते हैं, अगर तुम जाग कर देखना शुरू करो।

नानक कहते हैं, 'भय धौंकनी है।' तुम भय से डरो मत। क्योंकि तुम भय से जितने भागोगे, डरोगे, उतनी ही तुम्हारे जीवन की तपश्चर्या और अग्नि क्षीण हो जाएगी। क्योंकि भय तो धौंकनी है। उससे तो अग्नि प्रज्वलित होती है। जहाँ भय हो, वहीं चुनौती को स्वीकार कर के प्रवेश करो।

उसीसे तो योद्धा पैदा होता है। जहाँ भय है, वहीं प्रवेश करता है। जहाँ मौत है उसीको निमंत्रण मान लेता है। जहाँ खतरा है, वहाँ सजग हो कर चलता है, लेकिन चलता है। भीतर जाता है। और जितने भीतर तुम भय के जाओगे, उतना ही अभय उत्पन्न होता है। जितना भागोगे, उतना भय संग्रहीत होता है।

जो भय को उपयोग करना सीख लेता है, नानक कहते हैं, उसके लिए भय धौंकनी हो जाता है। और हर भय की अवस्था तपस्या की अग्नि को प्रज्वलित करती है।

भक्त में भय है। लेकिन उसने अपने भय को भक्ति में रूपांतरित कर दिया। अब वह सिर्फ परमात्मा से भयभीत है और किसीसे भी नहीं। और परमात्मा से क्यों भयभीत है ? परमात्मा से सिर्फ इसलिए भयभीत है, कि उस भय के द्वारा वह अपने जीवन में संयम रख सकेगा। भय के द्वारा वह अपने जीवन को गलत जाने से बचा सकेगा। वह भय साधारण भय नहीं है। तुम जिस से भी डरते हो उसके दुश्मन हो जाते हो।

परमात्मा का भय बहुत अनूठा है। तुम उससे डरते हो, उतने ही उसके प्रेम में गिरते जाते हो। क्योंकि डरने का कुल इतना ही अर्थ है, कि कहीं मैं तुझ से चूक न जाऊँ। कहीं ऐसा न हो कि मैं भटक जाऊँ। तुम्हारा भय केवल इतना ही बताता है, कि मेरे भटकने की संभावना है। तू मुझे भटकने मत देना। तेरी याद कहीं मुझे भूल न जाए। क्योंकि तेरी अनुकंपा न हो तो मैं तेरी याद भी तो सतत न रख सकूँगा। मैं तुझे खोजता हूँ, लेकिन तेरा सहारा न हो तो मैं तुझे खोज भी तो न सकूँगा। भय का अर्थ है, मेरी दीनता। मेरी असहाय अवस्था।

भक्त भय को प्रार्थना बना लेता है। भागता नहीं। वह हर भय को प्रार्थना बना लेता है। जहाँ-जहाँ भय उसे पकड़ता है वहाँ-वहाँ वह उसकी प्रार्थना का अवसर पाता है।

'भय धौंकनी है, तपस्या अग्नि है।'

जब भी तुम छोटा सा भी कृत्य संकल्पपूर्वक करते हो, तो तुम्हारे भीतर एक अनूठा ताप पैदा होता है। इसे तुमने शायद कभी निरीक्षण न किया हो। लेकिन तुम अगर छोटा सा भी कृत्य संकल्पपूर्वक करो--तपश्चर्या का वही अर्थ है।

समझो, कि तुम आज उपवास कर लो। उपवास किसी स्वर्ग को पाने के लिए नहीं। क्योंकि भूखे रहने से अगर स्वर्ग मिलता होता, तो बड़ी आसान बात थी। उपवास किसी पुण्य के लिए भी नहीं। क्योंकि भूखे रहने से कैसे पुण्य का संबंध है? कोई संबंध नहीं। उपवास तो संकल्प के तपश्चर्या की एक प्रक्रिया है। तुमने संकल्प किया, कि मैं आज भूखा रहूँगा। शरीर माँग करेगा रोज की आदत के अनुसार, 'भोजन चाहिए।' वक्त भोजन का आएगा, शरीर कहेगा, 'भूख लगी है'। तुम यह सब सुनोगे। तुम इसे झुठलाओगे नहीं। तुम यह नहीं कहोगे, कि भूख नहीं लगी है। तुम शरीर को कहोगे, भूख लगी है, बिल्कुल ठीक है। समय भी हुआ है, यह भी ठीक है। लेकिन मैंने निर्णय किया है, कि आज भूखा रहूँगा। तो आज भूखा रहना पड़ेगा। मैं अपने निर्णय को शरीर के लिए नहीं झुकाऊँगा। लेकिन इसको सजगता से। शरीर की माँग सही है। लेकिन आज मैं अपने निर्णय से जीयूँगा।

इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है, कि तुम अपने को शरीर के ऊपर उठा रहे हो। तुम शरीर से बड़े हो रहे हो। तुम शरीर को अनुगामी बना रहे हो। मन भोजन की याद करेगा, उसको करने देना। तुम उसको भी कहोगे, कि ठीक है, तुझे सोचना है सोच। मैं साक्षी रहूँगा, मैं साथी नहीं हूँ। मैं अपने निर्णय से जीयूँगा। मेरा संकल्प है। और तब तुम पाओगे तुम्हारे भीतर एक ताप, एक अग्नि, एक ऊर्जा पैदा हो रही है। एक अनूठी ऊर्जा, जो तुमने कभी नहीं जानी थी। वह ऊर्जा संकल्प की मालिकियत से आयी है। तुम अपने मालिक हो।

कल सुबह तुम उठोगे, और ही तरह से उठोगे। सुबह तुम पाओगे, कि मैं शरीर से ऊपर उठ सकता हूँ। एक नया अनुभव हुआ, कि मैं मन के भी ऊपर उठ सकता हूँ। एक नयी प्रतीति हुई, एक साक्षात्कार हुआ, कि मैं शरीर और मन से भिन्न हूँ, इसकी एक छोटी झलक मिली।

यही तपश्चर्या है। तपश्चर्या न तो पुण्य के लिए है, न मोक्ष जाने के लिए है। तपश्चर्या तो स्वयं के जीवन-चेतना को शरीर और मन के ऊपर जानने के लिए है। लेकिन जिसने उसे ऊपर कर लिया, उसके लिए अनायास ही मोक्ष के द्वार खुल जाते हैं।

नानक कहते हैं, 'तपस्या अग्नि है। भय धौंकनी है।'

नानक यह कह रहे हैं, कि तुम किसी भी चीज से भागो मत; उसका उपयोग खोजो। और हर चीज का सदुपयोग है। ऐसी कोई भी चीज जीवन में नहीं है जिसका उपयोग न हो सके। कामवासना ब्रह्मचर्य बन जाती है। क्रोध करुणा हो जाता है। भय प्रार्थना बन जाता है। दुःख तपश्चर्या हो जाता है। कलाकार

चाहिए, कुशलता चाहिए। और नहीं तो जीवन तो महल बन सकता था, वही तुम्हारे लिए कारागृह बन जाता है। तुम पर सब निर्भर है।

तुम्हारे पास सभी कुछ मौजूद है। उसका ठीक संयोजन चाहिए। उस संयोजन का नाम संयम है। तुम्हारे भीतर सब मौजूद है। लेकिन तुमने उसे कभी संजोया नहीं। उसको ठीक व्यवस्था, लय, और संगीत नहीं दिया। चीजें पड़ी हैं। तुम जानते नहीं क्या करें? तुम्हारे घर के सामने एक पत्थर पड़ा है। तुम सोचते हो, यह बाधा है। दूसरा आदमी उसी पर चढ़ कर आगे निकल जाता है। वह सीढ़ी बन जाती है। सब मौजूद है। परमात्मा मनुष्य को पूरा ही बनाता है, अधूरा नहीं। लेकिन संयोजन की सुविधा है, स्वतंत्रता है।

तुम अगर गौर करोगे, अध्ययन करोगे, तो जिनको तुम अपराधी कहते हो और जिनको तुम पापी या पुण्यात्मा कहते हो, जिनको बुरे और अच्छे लोग कहते हो, तुम उनमें वे ही चीजें पाओगे, वे ही चीजें; सिर्फ संयोजन का फर्क है।

एक चोर है, वह रात दूसरे के घर में प्रवेश करता है। आसान काम नहीं है। उसने भी अपने भय को बदला है। दूसरे के घर में वह ऐसे प्रवेश करता है रात, जैसे कोई भय नहीं। दीवाल में छेद करता है, सेंध लगाता है। इतने ढंग से और शांति से करता है, जरा भी खटर-पटर नहीं होती। फिर इस तरह से प्रवेश करता है, और इतनी सजगता रखता है, दूसरे के घर में अंधेरे में घुसना, कि कोई चीज गिर न जाए, किसी चीज से टकरा न जाए। बड़ी एकाग्रता से, बड़े होश से।

झेन फकीर कहता है, कि परमात्मा के घर में जाना हो तो चोर की कला सीखनी पड़ती है। क्योंकि वहाँ भी इतना ही होश चाहिए, जैसा चोर घुसता है दूसरे के घर में, कि टकरा न जाए। और भय को वहाँ भी रूपांतरित करना जरूरी है। जैसे अपना ही घर है, ऐसे चोर घुसता है।

झेन कथा है, एक बहुत बड़ा चोर था। जब वह बूढ़ा हुआ तो उसके बेटे ने कहा कि अब मुझे भी अपनी कला सिखा दें। क्योंकि अब क्या भरोसा?

वह चोर इतना बड़ा चोर था, कि कभी पकड़ा नहीं गया। और सारी दुनिया जानती थी कि वह चोर है। उसकी खबर सम्राट तक को थी। सम्राट ने उसे एक बार बुला कर सम्मानित भी किया था, कि तू अद्भुत आदमी है। दुनिया जानती है, हम भी जानते हैं, कि तू चोर है। तूने कभी इसे छिपाया भी नहीं, लेकिन तू कभी पकड़ाया भी नहीं। तेरी कला अद्भुत है।

तो बूढ़े बाप ने कहा, कि यह कला तू जानना चाहता है, तो सिखा दूँगा। कल रात तू मेरे साथ चल। वह कल अपने लड़के को लेकर गया। उसने सेंध लगायी। लड़का देखते खड़ा रहा।

वह इस तरह सेंध लगा रहा इतनी तन्मयता से, कि कोई चित्रकार जैसे चित्र बनाता हो, कोई भक्त मंदिर में पूजा करता हो, ऐसी तन्मयता, ऐसा लीन। इससे कम में काम भी नहीं चलेगा। वह 'मास्टर थीफ' था। वह कोई साधरण चोर नहीं था। सैकड़ों चोरों का गुरु था।

लड़का कँप रहा है खड़ा हुआ। रात ठंडी नहीं है, लेकिन कँपकँपी छूट रही है। उसकी रीढ़ में से बार-बार घबड़ाहट पकड़ रही है। वह चारों तरफ चौंक-चौंक कर देखता है, लेकिन बाप अपने काम में लीन है। उसने एक बार भी आँख उठा कर यहाँ-वहाँ नहीं देखा। चोरी की सेंध तैयार हो गयी, बाप बेटे को लेकर अंदर गया। बेटे के तो हाथ-पैर कँप रहे हैं। जिंदगी में ऐसी घबड़ाहट उसने कभी नहीं जानी। और बाप ऐसे चल रहा है, जैसे अपना घर हो। वह बेटे को अंदर ले गया, उसने दरवाजे के ताले तोड़े। फिर एक बहुत बड़ी अलमारी में, वस्त्रों की अलमारी में उसका ताला खोला, और बेटे को कहा, कि तू अंदर जा। बेटा अलमारी में अंदर गया। बहुमूल्य वस्त्र हैं, हीरे-जवाहरात जड़े वस्त्र हैं।

और जैसे ही वह अंदर गया, बाप ने ताला लगा कर चाबी अपने खीसे में डाली। लड़का अंदर! चाबी खीसे में डाली, बाहर गया, दीवाल के पास जा कर जोर से शोरगुल मचाया, 'चोर, चोर!' और सेंध से निकल कर अपने घर चला गया। सारा घर जाग गया, पड़ोसी जाग गये। लड़के ने तो अपना सिर पीट लिया अंदर, कि यह क्या सिखाना हुआ? मारे गये! कोई उपाय भी नहीं छोड़ गया बाप निकलने का। चाबी भी साथ ले गया। ताला भी लगा गया। घर भर में लोग घूम रहे हैं। सेंध लग गयी है, पैर के चिन्ह हैं। नौकरानी उस जगह तक आयी जहाँ अलमारी में चोर बंद है।

उसे कुछ नहीं सूझ रहा, क्या करें। बुद्धि काम नहीं देती। बुद्धि तो वहीं काम देती है अगर जाना-माना हो, किया हुआ हो। बुद्धि तो हमेशा बासी है। ताजे से बुद्धि का कोई संबंध नहीं। यह घटना ऐसी है, इतनी नयी है, कि न तो कभी की, न कभी सुनी, न कभी पढ़ी, न कभी किसी चोर ने पहले कभी की है कि शास्त्रों में उसका उल्लेख हो। कुछ सूझ नहीं रहा। बुद्धि बिलकुल बेकाम हो गयी। जहाँ बुद्धि बेकाम होती है, वहाँ भीतर की अंतःचेतना जागती है।

अचानक जैसे किसी ऊर्जा ने उसे पकड़ लिया। और उसने इस तरह आवाज की जैसे चूहा कपड़े को कुतरता हो। यह उसने कभी की भी नहीं जिंदगी में; वह खुद भी हैरान हुआ अपने पर। नौकरानी चाबियाँ खोज कर लायी, उसने दरवाजा खोला, और दीया लेकर उसने भीतर झाँका, कि चूहा है शायद!

जैसे उसने दीया लेकर झाँका, उसने दीये को फूँक मार कर बुझाया, धक्का देकर भागा। सेंध से निकला। दस-बीस आदमी उसके पीछे हो लिए। बड़ा

शोरगुल मच गया। सारा पड़ोस जग गया। वह जान छोड़ कर भागा। ऐसा वह कभी भागा नहीं था। उसे यह समझ में नहीं आया, कि भागने वाला मैं हूँ। जैसे कोई और ही भाग रहा है। एक कुएँ के पास पहुँचा, एक चट्टान को उठा कर उसको कुएँ में पटका। उसे यह भी पता नहीं, कि यह मैं कर रहा हूँ। जैसे कोई और करवा रहा है। चट्टान कुएँ में गिरी, सारी भीड़ कुएँ के पास इकट्ठी हो गयी। समझा, कि चोर कुएँ में कूद गया।

वह झाड़ के पीछे खड़े होकर सुस्ताया। फिर घर गया। दरवाजे पर दस्तक दी, उसने कहा, आज इस बाप को ठीक करना ही पड़ेगा। वह सिखाना हुआ? अंदर गया। बाप कंबल ओढ़े आराम से सो रहा है। उसने कंबल खींचा और कहा, कि क्या कर रहे हो? वह तो घुर्राटे ले रहा था।

उसने जगाया। उसने कहा, कि यह क्या है? मुझे मार डालना चाहते हैं? बाप ने कहा, तू आ गया, बाकी कहानी सुबह सुन लेंगे। मगर तू सीख गया। अब सिखाने की कोई जरूरत नहीं। बेटे ने कहा, कुछ तो कहो। कुछ तो पूछो मेरा हाल। क्योंकि मैं सो न पाऊँगा। तो बेटे ने सब हाल बताया, कि ऐसा हुआ।

बाप ने कहा, बस! तुझे कला आ गयी। तुझे आ गयी कला, यह सिखायी नहीं जा सकती। लेकिन आखिर तू मेरा ही बेटा है। मेरा खून तेरे शरीर में दौड़ता है। बस, हो गया। तुझे राज मिल गया। क्योंकि चोर अगर बुद्धि से चले तो फँसेगा। वहाँ तो बुद्धि छोड़ देनी पड़ती है क्योंकि हर घड़ी नयी है। हर बार नये लोगों की चोरी है। हर मकान नये ढंग का है। पुराना अनुभव कुछ काम नहीं आता। वहाँ तो बुद्धि से चले, कि उपद्रव में पड़ जाओगे। वहाँ तो अंतःचेतना से चलना पड़ता है।

झेन फकीर इस कहानी का उल्लेख करते हैं, वे कहते हैं, ध्यान की कला भी चोरी जैसी है। वहाँ इतना ही होश चाहिए। बुद्धि अलग हो जाए, सजगता हो जाए। जहाँ भय होगा, वहाँ सजगता हो सकती है। जहाँ खतरा होता है, वहाँ तुम जाग जाते हो। जहाँ खतरा होता है वहाँ विचार अपने-आप बंद हो जाते हैं।

इसलिए नानक कहते हैं, भय धौंकनी है, भय का उपयोग करो। भय है, तो जागो। भय से सुरक्षा मत करो।

हम क्या करते हैं? जहाँ भय होता है, वहाँ सुरक्षा करते हैं। अगर भय है कहीं, तो हम तलवार ले कर जाते हैं। बंदूक साथ रख लेते हैं, कि चार नौकर रख लेते हैं कि जो हमारी रक्षा करें।

अगर भय है, तो हम बड़ी दीवाल बनाते हैं; पहाड़ खड़ा कर देते हैं दीवाल का कि कोई भीतर न आ सके। हम भय से सुरक्षा करते हैं।

नहीं, भय से सुरक्षा करने में तो हमारी चेतना और भी क्षीण हो जाएगी। हम तो और भी बेहोश हो जाएँगे। इसलिए जितने सुरक्षित लोग तुम पाओगे, उतने ही निर्बुद्धि पाओगे। धनी आदमी में बुद्धि पाना जरा मुश्किल है। उसके पास सुरक्षा का इंतजाम है, इसलिए बुद्धि की जरूरत नहीं। दूसरे लोग उसकी सेवा कर रहे हैं। बुद्धि का काम वह कर रहे हैं। उसे क्या जरूरत है।

इसलिए धनी घरों में जब बेटे पैदा होते हैं तब तुम उन्हें हमेशा मंदबुद्धि पाओगे। वे 'मिडीयाकर' होंगे। उनमें कभी तुम चेतना की झलक न पाओगे। तुम ऐसा न पाओगे, कि उनके भीतर प्रतिभा जलती है। कोई जरूरत ही नहीं प्रतिभा की। नौकर-चाकर में प्रतिभा चाहिए, उन्हें प्रतिभा की क्या जरूरत है?

नानक कहते हैं, भय को धौंकनी बना लो। भय से जागो। भय बड़ी अद्भुत स्थिति है। कंपन आएगा, रोआँ-रोआँ थर-थर हो जाएगा, वहीं तो मौका है, कि जब सारा शरीर कँपता हो तब भी तुम्हारी चेतना न कँपे। तब चेतना अकंप रहे। तो भय धौंकनी हो गयी।

'तपस्या अग्नि है'।

और जीवन में जहाँ-जहाँ दुःख है, वहाँ-वहाँ दुःख को तुम तपश्चर्या समझ लो। और संकल्पपूर्वक उसे स्वीकार कर लेना। जब तुम बीमार पड़ो, बीमारी को स्वीकार कर लेना, लड़ना मत। और तब तुम पाओगे, बीमारी के बाद शरीर ही स्वस्थ नहीं हुआ, चेतना भी एक नये स्वास्थ्य को उपलब्ध हुई है। जब बीमारी आए तो तुम उसे देखना और स्वीकार करना, कि ठीक है। लड़ना मत, घबड़ना मत। मन को यहाँ-वहाँ मत लगाना। अन्यथा तुम बीमारी के अवसर से चूक गये। ये सारे जीवन की सभी स्थितियाँ परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग बन सकती हैं, याद रखना। हर घटना उसके द्वार की सीढ़ी है। अगर तुम जानते हो, अगर तुम समझते हो, तो उसका उपयोग कर लोगे।

'भाव ही पात्र है जिसमें अमृत ढलता है।'

और नानक कहते हैं, विचार से नहीं, भाव से। भाव का अर्थ है, जो विचार के पार तुम्हारी चेतना है। विचार तो मस्तिष्क में है, भाव तुम्हारे हृदय में है। भाव तर्क नहीं है, प्रेम है। उससे तुम गणित नहीं बिठा सकते। लेकिन भाव एक उद्रेक की अवस्था है। हर्षोन्माद की अवस्था है। और जब तुम भावित होते हो, तब तुम जगत से, उसकी गहराई से संयुक्त होते हो।

विचार तो तुम्हारी सब से ऊपरी सतह है। अगर ठीक से समझो, तो वह तो घर के चारों तरफ लगायी हुई 'फेंसिंग' है। वह घर थोड़ी है। वह घर का आंतरिक कक्ष थोड़ी है। विचार तो 'फेंसिंग' है। वह तो हमने पड़ोसियों से रक्षा

के लिए लगा रखी है। वह तो सीमा बनाती है। तुम नहीं हो वह, तुम तो तुम्हारा भाव हो।

लेकिन भाव से हम डर गये हैं। और हमने धीरे-धीरे भाव अवरुद्ध कर दिया है। काट ही डाला है अपने को भाव से। हम हृदय की बात ही सुनते नहीं। हम तो बुद्धि की बात सुनते हैं। हम तो बुद्धि के तर्क से चलते हैं। बुद्धि जहाँ ले जाती है वहाँ हम जाते हैं। और बुद्धि कहाँ ले जा सकती है? बुद्धि सब से उथली चीज है तुम्हारे भीतर, इसलिए उथले तक ले जाती है। इसलिए तुम धन इकट्ठा करते हो। इसलिए तुम कचरा इकट्ठा करते हो। इसलिए तुम पद-प्रतिष्ठा की चिंता करते हो।

नानक कहते हैं, भाव पात्र है जिसमें अमृत ढलता है। तुम विचार से थोड़े हटो और भाव में थोड़े डूबो। बड़ा मुश्किल है। क्या करोगे, जिससे तुम भाव में डूब जाओ? सुबह तुम उठे हो, हिंदू उठते थे पुराने दिनों में, सूरज के उगते ही वे सूर्य-नमस्कार करेंगे। वे झुकेंगे सूरज के सामने। वे सूर्य का अनुग्रह स्वीकार करेंगे। वे धन्यवाद देंगे, कि तुम फिर आ गये, एक दिन और मिला। फिर तुमने प्रकाश किया। फिर फूल खिलेंगे, फिर पक्षी गीत गाएँगे, फिर जीवन की कथा चलेगी। तुम्हारा धन्यवाद है। तुम्हारा अनुग्रह है। वे सूर्य के सामने हाथ जोड़े सूर्य का प्रकाश पीते थे। और वह जो भाव, अनुग्रह का भाव था, वह उनके हृदय में एक पुलक भर देता था। नदी जाएँगे तो स्नान करने के पहले प्रणाम करेंगे। एक भाव का संबंध जोड़ेंगे नदी से। तब शरीर तो नदी धोएगी ही, वह तो तुम्हारा शरीर भी धोती है, लेकिन भीतर भी कुछ धुल जाएगा। क्योंकि वे स्नान करते समय सिर्फ स्नान नहीं कर रहे हैं, नदी पवित्र है, वह परमात्मा की है, एक भीतर भाव सघन हो रहा है। वे भोजन करेंगे तो भी पहले परमात्मा को स्मरण करेंगे, पहले भोग लगाएँगे। पहले उसे, पीछे स्वयं को।

अन्न को हिंदुओं ने ब्रह्म कहा है। वह है भी। क्योंकि तुम्हें जीवन देता है। हिंदुओं ने हर चीज को परमात्मा की स्मृति बना ली। हर जगह से उसके भाव की चोट पड़नी चाहिए। उठते, बैठते, सोते हर जगह उसकी याद।

हमने सब इनकार कर दिया। हमने कहा, यह तुम क्या करते रहे हो? नदी में नहा रहे हो, नदी सिर्फ पानी है। और पानी में क्या है? 'सिर्फ एच$_2$ओ'। कहाँ का भगवान? सूरज को प्रणाम कर रहे हो, सूरज कुछ भी नहीं है। आग का गोला। किसको प्रणाम कर रहे हो? अगर यह बात सच है, सूरज आग का गोला है, नदी सिर्फ 'एच$_2$ओ', तो फिर कहाँ तुम भगवान को पाओगे? फिर पत्नी क्या है? पत्नी भी कुछ नहीं है, हाड़-माँस। फिर बेटा क्या है? माँस-मज्जा। फिर तुम कहाँ भाव को जगाओगे?

भाव को जगाने का अर्थ है, कि जगत सचेतन है। जो दिखायी पड़ता है, वहाँ समाप्त नहीं है, उससे भीतर है। बहुत गहरा है। भाव का अर्थ है, कि जगत में एक व्यक्तित्व है, एक आत्मा है। माना कि बच्चा हाड़-माँस है। वह हाड़-माँस ही नहीं है, उसके भीतर कुछ अवतरित हुआ है। उसके भीतर भगवान आया है। वह अतिथि है हमारे घर में।

वृक्ष, माना कि वृक्ष है; लेकिन वृक्ष ही नहीं है, उसके भीतर भी कोई बढ़ रहा है। उसके भीतर भी कोई आनंदित होता है, दुःखी होता है। उसके भीतर भी मूड, भाव, संवेग आते हैं। उसके भीतर भी जागरण, तन्द्रा आती है।

अभी वैज्ञानिकों ने बड़ी खोज-बीन की है, कि वृक्ष भी उतना ही अनुभव करता है, जितने मनुष्य। और वृक्ष की अनुभूति बड़ी गहरी है। उसकी प्रतीति गहरी है। वह उतना ही संवेदनशील है, जितने हम। चट्टानें भी संवेदनशील हैं।

हर जगह संवेदना है और तुम संवेदना खो दिये हो। भाव खो दिये हो। इसलिए जगत बिल्कुल उदास, रौनकहीन, अर्थहीन मालूम पड़ता है। जैसे ही तुम्हारा भाव जगेगा वैसे ही जगत रूपांतरित हो जाता है। जगत तो यही रहता है, सब कुछ यही रहता है, फिर भी सब बदल जाता है, क्योंकि तुम बदल जाते हो।

भाव ही पात्र है, जिसमें अमृत ढलता है। और नानक कहते हैं, तुम्हारे पास भाव नहीं तो तुम परमात्मा से वंचित रह जाओगे।

लेकिन भाव को जगाने में एक ही बाधा है, कि भाव बुद्धि से विपरीत है। बुद्धि से भिन्न है। संसार में बुद्धि कारगर है, भाव कारगर नहीं है। धन कमाना हो तो भाव से न कमा सकोगे। लुट जाओगे। बुद्धि कहेगी कोई भी लूट लेगा। अगर राजनीति के शिखर पर चढ़ना हो, तो भाव से न चढ़ सकोगे। वहाँ तो कठोरता चाहिए। वहाँ तो प्रगाढ़ आक्रमक विचार चाहिए। वहाँ शांति और मौन काम न देंगे। वहाँ हृदय को तो भूल ही जाना, कि जैसे वह है ही नहीं।

मैंने सुनी है भविष्य की कहानी, कि ऐसा हुआ—भविष्य में; कि आदमी के सभी शरीर के अंग, हृदय, शरीर, फेफड़े, गुर्दे सभी 'स्पेयर पार्टस' की तरह मिलने लगे। मिलने ही लगेंगे एक दिन। कि तुम्हारा गुर्दा खराब हो गया, तुम गये वर्क-शॉप में और तुमने अपना गुर्दा बदलवा दिया, और चल पड़े। जैसे कि मोटर को ले जाते हैं। चीज बिगड़ गयी, बदल ली, चल पड़े।

एक आदमी का हृदय खराब हो गया। तो वह दुकान पर गया जहाँ हृदय बिकते थे। कई तरह के हृदय थे वहाँ। तो उसने पूछा, कि इनके दाम और इनमें भेद क्या है? तो उस आदमी ने कई तरह के हृदय बताए। कि यह एक मजदूर

का हृदय है, एक किसान का हृदय है, यह गणितज्ञ का हृदय है, यह एक राजनीतिज्ञ का हृदय है। और इसके दाम सबसे ज्यादा हैं। तो उसी आदमी ने कहा, इसका क्या मतलब? तो उसने कहा, इसका उपयोग कभी नहीं हुआ है। 'ब्रांड न्यू।' वह बिना उपयोग का पड़ा है इसलिए इसके दाम ज्यादा हैं। यह एक कवि का हृदय है, इसका दाम सब से कम है। इसका बहुत उपयोग हो गया है, बिल्कुल 'सेकेंड हैंड' है। राजनीतिज्ञ को हृदय की जरूरत क्या है? उसका उपयोग खतरनाक है वहाँ।

तुम अपने हृदय का उपयोग धीरे-धीरे शुरू करो। धीरे-धीरे ही हो सकता है। एक ही बात याद रखो, कि विचार को थोड़ा हटाओ, भाव को लाओ। वृक्ष के पास बैठो। विचार मत करो कि यह गुलाब है। नाम से क्या लेना-देना। यह विचार मत करो, कि बड़ा गुलाब है। बड़े-छोटे से क्या लेना-देना। उसमें एक अदृश्य सौंदर्य है, तुम उसे पीओ। सोचो मत उसके संबंध में। तुम फूल के पास बैठ कर मौन, फूल के साक्षी रहो।

जल्दी ही तुम पाओगे, कि तुम्हारे हृदय में जो क्रिया चल रही है, उसने तुम्हारे मस्तिष्क की क्रिया को बंद कर दिया है। क्योंकि दो में से एक ही जगह जीवन ऊर्जा चल सकती है। जैसे ही तुम्हारे हृदय में पुलक आएगी और वह पुलक अनुभव से ही जानी जा सकती है। कोई नहीं कह सकता, क्या है वह पुलक! अनुभव से ही जानी जा सकती है, कोई नहीं कह सकता, क्या है वह पुलक! वह गूंगे का गुड़ है। क्योंकि हृदय के पास कोई भाषा नहीं है।

तुम बैठो फूल के पास, तुम सुनो पक्षी का गीत। तुम वृक्ष से पीठ टेक कर बैठ जाओ, आँख बंद कर लो, उसकी खुरदरी देह को अनुभव कर लो। तुम रेत पर लेट जाओ, आँख बंद कर लो, रेत के शीतल स्पर्श को अनुभव करो। तुम झरने में बैठ जाओ, बहने दो पानी को तुम्हारे सिर पर से, और तुम उसका प्रीतिकर स्पर्श अपने में डूबने दो। तुम सूरज के सामने खड़े हो जाओ आँख बंद कर के, छूने दो उसकी किरणों को तुम्हें।

और तुम सिर्फ अनुभव करो, सोचो मत, कि क्या हो रहा है? तुम सिर्फ अनुभव करो। जो हो रहा है उसे होने दो और हृदय को पुलकित होने दो। तुम जल्दी पाओगे कि एक नयी गतिविधि शुरू होती है हृदय में। जैसे एक नया यंत्र जो अब तक बंद पड़ा था, सक्रिय हो गया। एक नयी धुन बजती है तुम्हारे जीवन में। तुम्हारे जीवन का केंद्र बदल जाता है। उसी बदले हुए केंद्र पर अमृत की वर्षा होती है।

'सत्य के टकसाल में शब्द का सिक्का गढ़ा जाता है।'

नानक जिसको शब्द कहते हैं वह 'ओंकार'; तुम्हारे शब्द नहीं। 'सत्य के टकसाल में'—और तुम्हारे जीवन में जितनी सचाई आती जाएगी उतना ओंकार ढलेगा। उतना ही तुम ओंकार के रूप में लीन होते जाओगे।

झूठ से तुम दूसरे को नुकसान पहुँचाते हो वह बड़ा नुकसान नहीं है। झूठ से तुम सत्य की टकसाल नहीं बन पाते। जहाँ कि जीवन का परम अनुभव ढलेगा, जहाँ ओंकार की धुन बजेगी। वही असली नुकसान है।

'जिनपर उसकी कृपादृष्टि होती है वे ही यह काम कर पाते हैं।'

लेकिन नानक हर पद के बाद यह बात भूलते नहीं हैं दोहराना, कि याद रखना, तुम्हारी वजह से न होगा। तुम कहीं मत अकड़ जाना, कि मैं बड़ा भक्त, कि मैं बड़ा भावुक, कि मेरा हृदय बड़ा तरंगित, कि मैं बड़ा तपस्वी, कि मैं बड़ा संयमी। नहीं, नानक कहते हैं, यह तो तुम याद ही रखना, कि जिन पर उसकी कृपादृष्टि होती है, वे ही यह काम कर पाते हैं।

'जिन कउ नदरि करमु तिन कार।
नानक नदरी नदरि निहाल।'

'नानक कहते हैं, वे कृपादृष्टि से निहाल हो उठते हैं।

पवन गुरु है, पानी पिता है और महान धरती माता है। रात और दिन दाई और सेवक। उनके साथ सारा जगत खेल रहा है। शुभ-अशुभ कर्म उसके दरबार में धर्म के द्वारा बाँचे जाते हैं। सब के अपने-अपने कर्म हैं, जिससे कोई उसके निकट है, और कोई दूर है। नानक कहते हैं, जिन्होंने उसका नाम का ध्यान किया, और सचाई से श्रम किया उसके मुख उज्ज्वल होते हैं। उनके साथ अनेकों मुक्त हो जाते हैं।'

पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।
दिवस राति दुइ दाई दाइआ खेले सगलु जगतु॥
चंगिआइआ बुरिआइआ वाचै धरमु हदूरि।
करमी आपा आपणी के नेड़े के दूरि॥
जिनी नामु धिआइआ गये मसकति घालि।
'नानक' ते मुख उजले केती छूटी नालि।

नानक के प्रतीक मूल्यवान हैं। बहुत भाव से चुने हैं।

'पवन गुरु।' कहते हैं, गुरु तो पवन की भाँति है। दिखायी नहीं पड़ता, अनुभव किया जा सकता है। जो देखने जाएँगे, वे चूक जाएँगे। पवन दिखायी नहीं पड़ता, अनुभव किया जा सकता है। उसका स्पर्श ही जाना जा सकता है। तुम उसे मुट्ठी में बंद नहीं कर सकते।

गुरु को मुट्ठी में बंद नहीं किया जा सकता। और जो गुरु शिष्यों की मुट्ठी में बंद हो, जान लेना गुरु नहीं। तुम सौ में निन्यानबे गुरु शिष्यों की मुट्ठी में बंद पाओगे। शिष्य उन्हें चला रहा है। शिष्य बताते हैं, क्या करना उचित, क्या करना उचित नहीं। शिष्य तय करते हैं कि क्या आचरण, क्या अनाचरण। शिष्यों की पंचायतें हैं, जो साधुओं को चलाती हैं। पंचायत तय करती है, कि कौन साधु योग्य, कौन अयोग्य! पंचायत तय करती है, किस साधु को पूजो, किस को बाहर निकाल दो। बड़ी उलटी दुनिया है हमारी। गुरुओं को हम निर्णय करते हैं! तुम ऐसे बैठो, ऐसे उठो, ऐसे चलो। और जो गुरु इससे राजी हो जाते हैं, वे गुरु नहीं हैं इसीलिए राजी हो जाते हैं।

तुम अपने मठों में, आश्रमों में गुरुओं को न पाओगे। गुरुओं के नाम से चलते हुए झूठे सिक्के पाओगे। गुरु को कोई मुट्ठी में बाँध नहीं सकता। तुम महावीर को, बुद्ध को, नानक को चला नहीं सकते। वे अपनी मर्जी से चलते हैं। पवन अपनी मर्जी से बहता है। जब बहता, है बहता है; जब नहीं बहता, नहीं बहता। और तुम मुट्ठी बाँधोगे, तो पवन तुम्हारे हाथ में था वह भी बाहर हो जाएगा। जो मुक्त करते आए हैं, उसे बाँधा नहीं जा सकता। जिनसे तुम मुक्ति खोज रहे हो, उनको तुम कैसे बाँध सकते हो?

इसलिए नानक कहते हैं, 'पवन गुरु, पानी पिता, धरती माता।'

धरती के बिना तुम्हारी देह नहीं हो सकती। इसलिए माता अत्यंत जरूरी है। उसके बिना कोई जन्म नहीं है। लेकिन सब से स्थूल है पृथ्वी। इसलिए माता तो पशु-पक्षियों में भी होती है, पिता नहीं होता। पिता के लिए तो बड़ी सभ्यता की, संस्कार की अवस्था चाहिए। पिता मन है, माता देह है। जहाँ-जहाँ देह है, वहाँ-वहाँ माँ है, लेकिन पिता नहीं है। जहाँ मन का जन्म हुआ, वहाँ पिता शुरू होता है। तो पिता बड़ी नयी घटना है।

सिर्फ मनुष्यों में पिता है। और वह भी बहुत प्राचीन नहीं है। कोई पाँच हजार साल ज्यादा से ज्यादा। उसके पहले पिता नहीं था। क्योंकि स्त्री सामाजिक संपदा थी। अनेक लोग उसे भोगते थे। पिता का पता चलाना मुश्किल था। वह ठीक पशुओं जैसी ही स्थिति थी। तो वह जान कर तुम्हें हैरानी होगी, कि 'काका', 'अंकल' पुराना शब्द है पिता से। उन दिनों 'चाचा' तो होता था, 'काका' तो होता था, लेकिन पिता नहीं होता था। क्योंकि जितने ही बड़ी उम्र के लोग होते थे, पिता होने की योग्यता के लोग होते थे, वे सभी काका थे। और पता नहीं उनमें कौन पिता था, इसका कोई पता न था।

पिता बहुत बाद में आया। क्योंकि पिता मन है, संस्कार है, सभ्यता है। इसलिए पिता एक सामाजिक उपलब्धि है, प्राकृतिक नहीं। प्रकृति में पिता की

कोई भी पहचान नहीं है। सिर्फ समाज जब बहुत विकसित होता है तब पिता आता है।

इसलिए नानक कहते हैं, माँ तो धरती जैसी है, उसके बिना तो कोई हो नहीं सकता। सब से स्थूल है वह।

'पानी पिता;' और पिता का संबंध ज्यादा तरल है। माँ का संबंध ज्यादा स्थूल है। तरलता की खबर देने के लिए वे कहते हैं, पानी। और पवन गुरु।

ये तीन सीढ़ियाँ हैं, माँ--धरती, बहुत स्थूल, 'मटीरीयल', पदार्थ। इसलिए स्त्री को हमने प्रकृति कहा है। उसके बाद की ऊँची स्थिति है जहाँ पिता का संबंध शुरू होता है, सभ्यता, समाज, संस्कृति। और उससे भी ऊँची एक स्थिति है जहाँ गुरु का संबंध शुरू होता है, धर्म, योग, तंत्र।

अगर तुम माँ पर ही रुक गये, तो करीब-करीब पशु जैसे रह जाओगे। अगर पिता पर रुक गये, तो मात्र मनुष्य रह जाओगे। जब तक तुम गुरु तक न पहुँचो तब तक तुम्हारे आत्मवान होने की स्थिति बनती नहीं।

तुम्हारे जीवन की तीन सीढ़ियाँ हैं। माँ तक तो सभी पशु पहुँच जाते हैं। पिता तक सभी मनुष्य पहुँच जाते हैं। गुरु तक बहुत थोड़े पहुँच पाते हैं। और जब तक तुम गुरु तक न पहुँचे, तब तक तुम्हारी पूरी ऊँचाई न आएगी। क्योंकि माँ शरीर का संबंध, पिता मन का संबंध, गुरु आत्मा का संबंध है।

वह इस जगत् में सब से बड़ा संबंध है। उससे न तो गहरा कोई संबंध है, न ऊँचा कोई संबंध है। इसलिए जो लोग बिना गुरु के हैं, करीब-करीब अधूरे हैं। गुरु के साथ ही तुम पूरे होते हो। इस जगत की यात्रा पूरी होती है और दूसरे जगत की यात्रा शुरू होती है। गुरु इस जगत का अंत और दूसरे जगत का प्रारंभ है। वह द्वार है। इसलिए तो नानक ने अपने मंदिर को गुरुद्वार कहा। द्वार का मतलब होता है एक दुनिया समाप्त, दूसरी दुनिया शुरू। इस तरफ एक दुनिया उस तरफ दूसरी दुनिया। गुरु बीच में है।

'रात और दिन दाई और सेवक हैं, उनके साथ सारा जगत खेल रहा है।'

समय के साथ सारा जगत खेल रहा है। खेलनेवाले दो तरह के हैं। एक, जिन्होंने नौकर को, सेवक को मालिक बना लिया है। और एक, जिन्होंने नौकर को, सेवक को नौकर ही समझा है।

समय तुम्हारा मालिक नहीं है, तुम्हारा गुलाम है। तुम उसका उपयोग करो। लेकिन समय को तुम अपना उपयोग मत करने दो। हालत बिल्कुल उलटी है। समय तुम्हारा उपयोग कर रहा है।

लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान करना है लेकिन समय नहीं है। ध्यान करने के लिए समय नहीं है? समय तुम्हारा मालिक है, या तुम समय के मालिक हो? समय काटे नहीं कटता, लोग कहते हैं। और जब ध्यान की बात आती है, तो वे कहते हैं समय कहाँ? वही के वही लोग! ऐसे समय बहुत है, काटे नहीं कटता। टेलिविजन देखो, क्लब जाओ, फिर भी बचा रहता है। कहाँ बिताओ, यह सवाल उठता है।

छुट्टी के दिन लोग बड़ी कठिनाई में होते हैं, क्या करो?

छुट्टी के दिन बिल्कुल थक जाते हैं, कुछ न कर-करके। सोमवार को वे बड़े प्रसन्न होते हैं। जब सुबह वे दफ्तर की तरफ जा रहे हैं, तब बड़े प्रसन्न हैं, कि किसी तरह रविवार टल गया। या रविवार को कुछ उपद्रव कर लेते हैं। दस-पचास, सौ मील का चक्कर लगा आएँगे। समुद्र तट पर जा रहे हैं, पहाड़ी पर जा रहे हैं। वह जो एक दिन विश्राम का मिला था उसको भी काम में...अमरीका में कहावत है, कि छुट्टी के दिन लोग इतने थक जाते हैं, जितने कि कभी भी काम के दिन नहीं थकते।

समय तुम्हारा उपयोग कर रहा है। अगर तुम मालिक हो, तो समय बहुत है। तुम गुलाम हो, तो बिल्कुल नहीं। गुलाम के पास क्या हो सकता है? समय भी नहीं है।

नानक कहते हैं, 'उनके साथ सारा जगत खेल रहा है।' खेल दो तरह का चल रहा है। एक, जो मालिक हैं, वे समय का उपयोग कर लेते हैं। वे इस समय में ही उसको जानने का रास्ता बना लेते हैं, जो समय के बाहर है। वही ध्यान है। अन्यथा दूसरे लोग हैं, जो समय के द्वारा उपयोग कर लिए जाते हैं।

मैंने सुना है, एक भिखमंगा अनाज की दुकान पर गया। और उसने कहा कि मेरे पास बिल्कुल पैसे नहीं है। और आज तो तुम्हें अनाज उधार ही देना पड़ेगा। दुकानदार को दया आ गयी। उसने कहा ठीक है, अनाज तो मैं दिये देता हूँ। लेकिन एक बात ख्याल रखना। मुझे थोड़ा शक होता है। गाँव में सरकस आया हुआ है। तुम इस को बेच कर सरकस मत देख लेना। उस आदमी ने कहा, तुम इसकी बिल्कुल फिक्र मत करो। सरकस देखने के लिए पैसे मैंने पहले से ही बचा रखे हैं।

व्यर्थ के लिए तो तुम पहले ही समय बचाए हुए हो। सार्थक के लिए समय नहीं बचता। समय के मालिक बनो, तो ही समय के पार जा सकोगे।

'शुभ और अशुभ कर्म उसके दरबार में धर्म के द्वारा बाँचे जाते हैं। सबके अपने-अपने कर्म हैं, जिससे उसके कोई निकट है और दूर है।'

परमात्मा सब के पास है। उसकी तरफ से न तो तुम दूर हो और न तुम पास हो। वह सब के पास एक जैसा है। लेकिन तुम्हारी तरफ से तुम दूर हो या पास हो। तुम्हारे कर्म के कारण या तो तुम निकट हो या दूर हो।

करमी आपा आपणी के नेड़े के दूरि।

तुमने अगर ऐसे कर्म किये हैं, जो तुम्हें सुलाते हैं, मूर्छित करते हैं, तो तुम पीठ किये खड़े हो। सूरज वहीं है, तुम पीठ किये खड़े हो। तुमने अगर ऐसे कर्म किये, जो तुम्हें जगाते हैं, होश से भरते हैं, तो तुमने सूरज की तरफ मुंह कर लिया। खड़े तुम वहीं हो, सूरज भी वहीं है, तुम भी वहीं हो, फर्क सिर्फ पड़ जाता है कि तुम्हारी पीठ सूरज की तरफ है, तो बहुत दूर; मुँह सूरज की तरफ है, तो बहुत पास।

परमात्मा सदा तुम्हारे एक सा ही पास है। उसकी नजर में, नानक कहते हैं, न कोई ऊँच है, न कोई नीच। न कोई पात्र, न कोई अपात्र। अगर तुम अपात्र हो तो अपने ही कारण। अपने में थोड़ा फर्क करो, और तुम पात्र हो जाओगे। क्योंकि जो पात्र हैं, उनमें और तुम में सिर्फ एक ही फर्क है। वे परमात्मा की तरफ उन्मुख हैं, तुम परमात्मा की तरफ विमुख हो।

नानक कहते हैं, 'जिन्होंने उसका नाम का ध्यान किया, और सचाई से श्रम किया उनके मुख उज्ज्वल होते हैं। और उनके साथ अनेकों मुक्त होते हैं।'

नानक कहते हैं जब भी कोई मुक्त होता है, अकेला ही मुक्त नहीं होता। क्योंकि मुक्ति इतनी परम घटना है, और मुक्ति एक ऐसा महान अवसर है—एक व्यक्ति की मुक्ति भी--कि जो भी उसके निकट आते हैं वे भी उस सुगंध से भर जाते हैं। उनकी जीवन-यात्रा भी बदल जाती है। जो भी उसके पास आ जाते हैं, वे भी उस 'ओंकार' की धुन से भर जाते हैं। उनको भी मुक्ति का रस लग जाता है। उनको भी स्वाद मिल जाता है थोड़ा सा। और वह स्वाद उनके पूरे जीवन को बदल देता है।

'जिन्होंने उसका ध्यान किया, सचाई से उसके लिए श्रम किया, उनके मुख उज्ज्वल होते हैं।'

उनके भीतर एक प्रकाश जलता है। जो अगर तुमने प्रेम से देखा, तो तुम्हें दिखायी पड़ सकता है। तुम अगर पूजा के भाव से पहचानो, तो तत्क्षण पहचान आ सकता है। उनके भीतर एक दीया जलता है। और उस दीये की रोशनी उनके चारों तरफ पड़ती है।

इसलिए तो हमने संतपुरुषों, अवतारों के चेहरे के आसपास आभा का मंडल बनाया है। वह आभा का मंडल सभी को दिखायी नहीं पड़ता। वह उन्हींको

दिखायी पड़ता है जिनके भीतर भाव की पहली किरण उतर आयी है। उन्हीं को दिखायी पड़ता है जिनके पास श्रद्धा है। जिनके पास श्रद्धा की पहचान है।

और जिनको यह दिखायी पड़ता है, वे उस जले हुए दीये से अपना बुझा हुआ दीया भी जला लेते हैं। जब भी कोई एक मुक्त होता है, तो हजारों उसकी छाया में मुक्त होते हैं। एक व्यक्ति की मुक्ति कभी भी अकेली नहीं घटती। घट ही नहीं सकती। क्योंकि जब इतना परम अवसर मिलता है, तो ऐसा व्यक्ति बहुतों के लिए द्वार बन जाता है।

तुम अपनी श्रद्धा और भाव को जगाए रखना, ताकि तुम्हें गुरु पहचान आ सके। और गुरु को जिसने पहचान लिया, उसने इस जगत में परमात्मा के हाथ को पहचान लिया; गुरु को जिसने पहचान लिया, उसने इस जगत में जगत के जो बाहर है उस को पहचान लिया। उसे द्वार मिल गया।

और द्वार मिल जाए तो सब मिल गया। खोया तो कभी भी कुछ नहीं। द्वार से गुजर के तुम्हें अपनी पहचान आ जाती है। जो प्रकाश सदा से तुम्हारा है, उसकी सुरति आ जाती है। जो संपदा सदा से तुम्हारे पास है, आविष्कार हो जाता है। जो तुम सदा से ही थे, जिसे तुमने कभी खोया न था, गुरु तुम्हें उसकी पहचान करा देता है।

कबीर ने कहा है, 'गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पाँव'? किसके छुऊँ चरण?

अब दोनों सामने खड़े हैं। कबीर बड़ी दुविधा में पड़ गये हैं। किसके छुऊँ चरण? अगर परमात्मा के चरण पहले छुऊँ, तो गुरु का असम्मान होता है। अगर गुरु के चरण पहले छुऊँ, तो परमात्मा का असम्मान होता है। तो कबीर कहते हैं, किस के चरण छुऊँ?

फिर वे गुरु के ही चरण छूते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, 'बलिहारी गुरु आप की, जिन गोविंद दियो बताय'। जब वे दुविधा में पड़े हैं, तब गुरु ने ही कहा, कि तू गोविंद के ही चरण छू। क्योंकि मैं यहीं तक था। यह बड़ी मीठी बात है। जब कबीर दुविधा में पड़े हैं तो गुरु ने कहा, इशारा किया, कि तू गोविंद के चरण छू, मैं यहाँ तक था। मेरी बात यहीं समाप्त हो गयी। अब गोविंद सामने खड़े हैं। उन्हीं के चरण छू।

'बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविंद दियो बताय।'

लेकिन कबीर ने चरण फिर गुरु के ही छुए, क्योंकि उसकी बलिहारी है, उन्होंने गोविंद बताया।

श्रद्धा हो तुम्हारे पास, तो तुम पहचान लोगे। बस! श्रद्धा चाहिए, भाव चाहिए। विचार से न कोई कभी पहुँचा है, न कोई कभी पहुँच सकता है। तुम

वह असफल चेष्टा मत करना। वह असंभव है। वह कभी भी नहीं हुआ, और तुम भी अपवाद नहीं हो सकते।

और गुरु सदा मौजूद है। क्योंकि ऐसा कभी नहीं होता, कि संसार के इन अनंत लोगों में कुछ लोग उसे न पा लेते हों। कुछ लोग हमेशा ही उसे पा लेते हैं। इसलिए कभी भी धरती गुरु से खाली नहीं होती। दुर्भाग्य ऐसा कभी नहीं आता, कि धरती गुरुओं से खाली हो। लेकिन ऐसा दुर्भाग्य कभी-कभी आ जाता है, कि पहचानने वाले बिलकुल नहीं होते।

● ● ●

भगवान श्री रजनीश का नवीनतम हिंदी साहित्य

रा. = राज संस्करण   सा. = सामान्य संस्करण

	रु. पै.
१. एक ओंकार सतनाम (नानक-वाणी)	रा. ७५–०० सा. ५०–००
२. दिया तले अँधेरा	रा. ७५–०० सा. ५०–००
३. ताओ उपनिषद् (भाग–३)	रा. ७५–०० सा. ५०–००
४. ताओ उपनिषद् (भाग–२)	४०–००
५. महावीर-वाणी (भाग–३)	६०–००
६. महावीर-वाणी (भाग–२)	३०–००
७. महावीर-वाणी (भाग–१)	३०–००
८. महावीर : मेरी दृष्टि में	४०–००
९. कृष्ण : मेरी दृष्टि में	४०–००
१०. तत्त्वमसि	४०–००
११. शिव-सूत्र	रा. ५०–०० सा. २५–००
१२. गूंगे केरी सरकरा (कबीर-वाणी)	रा. ५०–०० सा. ३०–००
१३. कस्तूरी कुंडल बसै (कबीर-वाणी)	रा. ५०–०० सा. ३०–००
१४. बिन घन परत फुहार (सहजो-वाणी)	रा. ५०–०० सा. ३०–००
१५. अकथ कहानी प्रेम की (फरीद-वाणी)	रा. ५०–०० सा. ३०–००
१६. गीता-दर्शन (अ.–१०)	५०–००
१७. गीता-दर्शन (अ.–४)	३०–००
१८. गीता-दर्शन (अ.–८)	२५–००
१९. गीता-दर्शन (अ.–११)	२५–००
२०. गीता-दर्शन (अ.–५)	१५–००
२१. ईशावास्योपनिषद्	१५–००
२२. निर्वाणोपनिषद्	१५–००

शीघ्र प्रकाश्य :

१. सहज समाधि भली
२. सुनो भाई साधो
३. मेरा मुझमें कुछ नहीं
४. कहै कबीर दीवाना
५. सबै सयाने एकमत
६. एस धम्मो सनंतनो (धम्मपद)
७. भक्ति-सूत्र (नारदकृत)
८. भज गोविन्दम् (शंकराचार्यकृत)
९. पिव-पिव लागी प्यास (दादू-वाणी)
१०. गीता-दर्शन (अध्याय–१८)

आश्रम से प्रकाशित पाक्षिक पत्रिका :

रजनीश फाउंडेशन न्यूजलेटर

(नवीनतम प्रवचनों सहित हिंदी व अँग्रेजी भाषा में)

वार्षिक शुल्क (प्रत्येक का) : २४–०० रु

पूर्व-प्रकाशित और नवीनतम समस्त साहित्य हेतु सम्पर्क-सूत्र :

सचिव, रजनीश फाउंडेशन,
१७, कोरेगांव पार्क,
पूना–४११००१.

Latest Books of Bhagwan Shree Rajneesh

D.—Deluxe edition   O. – Ordinary edition

	Rs. Ps.
1. The Mustard Seed (Sayings of Jesus)	D. 105-00 O. 75-00
2. The Way of the White cloud	66–00
3. The Book of the Secrets-I (Tantra : 112 ways of meditation)	65–00
4. The Book of the Secrets-II (Tantra : 112 ways fo Meditation)	D. 65–00 O. 50–00
5. The Supreme Doctrine (ken-upanishad)	D. 65–00 O. 50–00
6. Tantra : The Supreme Understanding (Tilopa's : Song of Mahamudra)	65–00
7. No Water, no Moon (Zen)	D. 65–00 O. 40-00
8. Roots and Wings	65–00
9. The Empty Boat	60–00
10. And the Flowers Showered	60–00
11. When the Shoe fits	60–00
12. The Grass grows by itself	60–00
13. Returning to the Source	60–00
14. Neither this Nor that	60–00
15. Just like That	60–00
16. I am the Gate	15–00

Forthcomming Books

1. The Hidden Harmony (Heraclitus)
2. Until you Die
3. The three Treasures – I (Lao–Tzu)
4. The three Treasures – II (Lao–Tzu)
5. The True Sage (Hasidism)
6. Come follow me (The life of Jesus)
7. The Alpha and the Omega (Patanjali)

Periodicals

1. Rajneesh Foundation Newsletter (Fortnightly)
   Annual Subscription Rs. 24-00
2. SANNYAS (Bi-monthly)
   Annual Subscription Rs. 60-00

For all books contact or write to :

Secretary, Rajneesh Foundation
Shree Rajneesh Ashram
17, Koregaon Park
Poona – 411 001 (India) Tel. 28127

भगवान श्री रजनीश

विवशता है कि व्यक्ति को परमात्मा के संबंध में भी कुछ कहना हो, तो शब्दों का आश्रय लेना होता है। गहरे में, प्राणों को यह पता भी है कि शब्द कैसे व्यक्त कर सकेंगे उस निःशब्द सत्ता को, फिर भी और कोई उपाय भी नहीं सूझता।

भगवान श्री रजनीश के संबंध में कुछ कहना हो तो ऐसी ही बेबस हालत हो जाती है, कि क्या कहो? उस परम शून्यता, उस परम विस्तार, उस परम दिव्यता, उस स्वयंप्रकाश परमचैतन्य के संबंध में, जो रजनीश नाम व रूप में प्रकाशित हुआ है, क्या कहो? मन, इंद्रियों की सीमा से परे उसका वर्णन! एक ही उपाय उसका तो है कि प्रत्येक उस सुगंध, उस आलोक, उस संगीत, उस दिव्यता का अनुभव स्वयं कर ले उनके निकट होकर।

कभी-कभी ये अवसर आता है—सदियों-सदियों के अंतराल पर—जब किसी रजनीश, किसी कृष्ण; किसी राम, किसी नानक; बुद्ध या क्राइस्ट के रूप में परमचैतन्य अपने समस्त द्वार खोले—जहां से हम अति सरलता से उसमें प्रवेश पा सकें—हमारे इतने निकट होता है। पर तभी हम चूक जाते हैं। हमारे मिथ्या-अहंकार की आंखें उसे देख-देखकर भी अनदेखा करती हैं, उसे पहचान-पहचानकर भी न पहचानने का छल खड़ा करती हैं।

क्या विकास के अपार चरणों से गुजरने के बाद भी चेतना का इतिहास फिर इन्हीं चूकों को दोहराएगा? नहीं, ऐसा लगता तो नहीं।

और ध्यान रहे, एक प्रज्वलित दीप अनंत-अनंत दीपों को जलाने की सामर्थ्य से भरा होता है।

रजनीशरूपी ज्योति-पुंज को कोटि-कोटि प्रणाम!

भगवान श्री रजनीश

विवशता है कि व्यक्ति को परमात्मा के संबंध में भी कुछ कहना हो, तो शब्दों का आश्रय लेना होता है। गहरे में, प्राणों को यह पता भी है कि शब्द कैसे व्यक्त कर सकेंगे उस निःशब्द सत्ता को. फिर भी और कोई उपाय भी नहीं सूझता।

भगवान श्री रजनीश के संबंध में कुछ कहना हो तो ऐसी ही बेबस हालत हो जाती है, कि क्या कहो ? उस परम शून्यता, उस परम विस्तार, उस परम दिव्यता, उस स्वयंप्रकाश परमचैतन्य के संबंध में, जो रजनीश नाम व रूप में प्रकाशित हुआ है, क्या कहो ? मन, इंद्रियों की सीमा से परे उसका वर्णन ! एक ही उपाय उसका तो है कि प्रत्येक उस सुगंध, उस आलोक, उस संगीत, उस दिव्यता का अनुभव स्वयं कर ले उनके निकट होकर।

कभी-कभी ये अवसर आता है—सदियों-सदियों के अंतराल पर—जब किसी रजनीश, किसी कृष्ण; किसी राम, किसी नानक; बुद्ध या क्राइस्ट के रूप में परमचैतन्य अपने समस्त द्वार खोले—जहाँ से हम अति सरलता से उसमें प्रवेश पा सकें—हमारे इतने निकट होता है। पर तभी हम चूक जाते हैं। हमारे मिथ्या-अहंकार की आँखें उसे देख-देखकर भी अनदेखा करती हैं, उसे पहचान-पहचानकर भी न पहचानने का छल खड़ा करती हैं।

क्या विकास के अपार चरणों से गुजरने के बाद भी चेतना का इतिहास फिर इन्हीं चूकों को दोहराएगा ? नहीं, ऐसा लगता तो नहीं।

और ध्यान रहे, एक प्रज्वलित दीप अनंत-अनंत दीपों को जलाने की सामर्थ्य से भरा होता है।

रजनीशरूपी ज्योति-पुंज को कोटि-कोटि प्रणाम !